891.2

सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रंथमाला—१५

वाल्मीकि रामायण एवं राम-चरित-मानस का तुलनात्मक अध्ययन

2289

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)

प्रधान सम्पादक
डा० दीनदयालु गुप्त,
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

लेखिका
डा० विद्या मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

विश्वविद्यालय हिंदी प्रकाशन
लखनऊ विश्वविद्यालय

सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला--१५

वाल्मीकि रामायण एवं राम-चरित-मानस का तुलनात्मक अध्ययन

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रवन्ध)

प्रधान सम्पादक
डा० दीनदयालु गुप्त,
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

State Museum, Library, Lko.
2,289
18.2.65
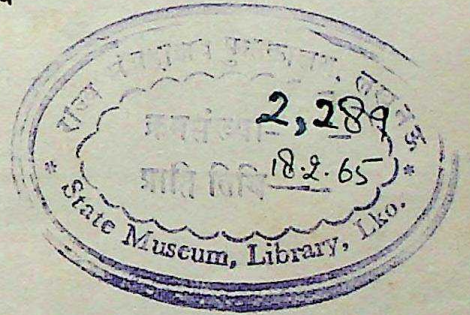
लेखिका
डा० विद्या मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन
लखनऊ विश्वविद्यालय

294.5922
ग ब

प्रकाशक : विश्वविद्यालय हिंदी प्रकाशन,
लखनऊ विश्वविद्यालय
मूल्य : सोलह रुपये
मुद्रक : नवभारत प्रेस, नादान महल रोड, लखनऊ
फो०न० : २२१४२

कृतज्ञता प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के अवसर पर बिसवाँ शुगर फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्त्र रुपये का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेक्सरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' में संगृहीत है। हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी साहित्य के भंडार की समृद्धि करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी तथा
आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

संस्कृत का आदि महाकाव्य जिस प्रकार अनेक शताब्दियों से विद्वज्जन की प्रशंसा पाता रहा है, उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का 'मानस' भी पिछली चार शताब्दियों से लोकप्रिय है। संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का क्षेत्र संकुचित हो जाने से सामान्य पाठक-वर्ग तो वाल्मीकि-रामायण से आज अपरिचित-सा हो गया है, परन्तु गोस्वामी जी का प्रबन्धकाव्य जन-जन के कंठ में बसा हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र को लेकर लिखे गये इन दोनों प्रबन्धकाव्यों पर यद्यपि दो-चार आलोचनात्मक पुस्तकें हिन्दी में लिखी जा चुकी हैं, तथापि दोनों के सर्वांगीण तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता थी। इस कार्य को प्रस्तुत प्रबन्ध की विदुषी लेखिका, डा० विद्या मिश्र ने पूरा किया है। इस प्रबन्ध पर उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी थी। प्रबन्ध के परीक्षकों ने लेखिका के अध्यवसाय से पूर्ण संतोष व्यक्त किया था और मुझे विश्वास है कि हिन्दी जगत भी इसका स्वागत करेगा।

मेरी हार्दिक कामना है कि डॉ० विद्या मिश्र इसी प्रकार के मौलिक लेखन-कार्य में निरंतर संलग्न रहें और उच्चकोटि के ग्रंथ लिखने में सफल हों।

दीनदयालु गुप्त
अध्यक्ष हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा-विभाग
एवं अध्यक्ष कला-संकाय

लखनऊ विश्वविद्यालय
१२/५/६३

भूमिका

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र का व्यक्तित्व युग-युग से भरातीय जनता को कर्त्तव्य एवम् धर्म के क्षेत्र में अनुप्राणित करता आ रहा है। भगवान् के चरित्र की रश्मियों में वह दिव्य शक्ति एवम् अलौकिक आभा सन्निहित है जो पाप-पंक-निमज्जित हृदयों को भी पुनीत कर देने की सामर्थ्य रखती है। उन्हीं प्रभु के नाम में भी अप्रतिम शक्ति विद्यमान है।

'उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना॥'

परब्रह्म राम का स्वरूप ऐसा ही है जिसके प्रकाश से आलोकित महर्षि वाल्मीकि आदि कवि के सम्मान से विभूषित हो गये। धार्मिक जगत् में यह प्रसिद्ध है कि तुलसी दास अभिनव वाल्मीकि थे। कलि-पावनावतार गोस्वामी तुलसीदास यदि अवतार न भी माने जायँ तो इतना निश्चित है कि उन्होंने वाल्मीकि की राम कथा का आधार लेकर राम के चरित्र का गुण गान किया। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि तुलसी की मौलिकता अक्षुण्ण है। इन दोनों महाकवियों द्वारा ऐसे दो ग्रन्थ रत्नों का सृजन हुआ जो युग-युगान्तर तक आर्त्त मानवता, त्रस्त जनता के लिए आशा का पथ आलोकित करते रहेंगे।

वाल्मीकि रामायण एवम् राम चरित मानस मानव जीवन के सर्वांगीण सजीव चित्र हैं। इन दोनों ग्रन्थों में मानव जीवन के जो-जो दृश्य अभिव्यक्त किये गये हैं वे शाश्वत और चिरन्तन हैं। उभय ग्रन्थों में प्रचुर साम्य एवम् किंचित् भेद भी है। इस भेद का प्रमुख कारण है दोनों महान् कवियों की मौलिकता एवम् प्रतिभा।

प्रस्तुत प्रबन्ध में 'वाल्मीकि रामायण एवम् राम चरित मानस' का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। महर्षि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदास जी विश्व की विश्रुत गाथा से कौन परिचित नहीं है। आदि कवि का आदि काव्य 'रामायण' राम कथा का आदि श्रोत होने के साथ ही महाकाव्यत्व के सभी लक्षणों से उपेत है। प्रायः अपने परवर्ती राम काव्य का उपजीव्य काव्य बनकर यह अपनी अति व्याप्ति का संदेश दे रहा है। अतएव यह अकाट्य सत्य ही कहा गया है 'मधुमय-भणतीनां मार्ग-दर्शी महर्षिः।'

हिन्दी साहित्य एवम् अध्यात्म क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास जी का राम चरित मानस भी लोकप्रिय ग्रन्थों में सर्वोत्तम है क्योंकि यह सिद्धान्त ग्रन्थ केवल भक्ति-मार्ग का सर्वोच्च ग्रन्थ होने के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है अपितु यह सार्वजनीन एवम् सार्वकालिक भी है। श्री बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसारः—

'यह साङ्गोपाङ्ग दिव्य भक्ति शास्त्र है जो सार्वभौम धर्म समन्वयकारी तथा भारतीय है।'[1]

---

१. मानस मन्थन, पृष्ठ २।

इस ग्रन्थ की लोकप्रियता के विषय में भी तुलसी:तत्वान्वेषक डा० ग्रियर्सन जैसे विदेशी आलोचकों की उक्ति है।

'वह (मानस) नौ करोड़ मनुष्यों की बाइबिल कहा गया है और उत्तर भारत का प्रत्येक व्यक्ति उससे इतना अधिक परिचित है जितना विलायत का औसत दर्जे का किसान बाइबिल से भी परिचित न होगा।'[1]

वाल्मीकि रामायण तथा राम चरित मानस का आकर क्षेत्र इतना विस्तृत एवम् गहन है, उसमें इतने अमूल्य रत्न निहित हैं जिनके उद्घाटन एवम् उल्लेखनार्थ असंख्य अनुसन्धायक वैकटिकों की आवश्यकता है। दोनों महान् ग्रन्थों के तुलनात्मक विवेचन के अभाव की पूर्ति हेतु यह प्रबन्ध लिखा गया है। इसका प्रमुख लक्ष्य दोनों काव्य ग्रन्थों की प्रमुख विशेषताओं की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन करना है:—

प्रस्तुत प्रवन्ध सात परिच्छेदों में विभाजित है:—

(१) श्री राम भक्ति का भारत में विकास
(२) रामायण एवम् मानस के प्रमुख आधार ग्रन्थ
(३) रामायण एवम् मानस में राम का स्वरूप
(४) रामायण एवम् मानस की कथावस्तु
(५) रामायण एवम् मानस में चरित्र-चित्रण
(६) रामायण एवम् मानस में विभिन्न परिस्थितियाँ
(७) रामायण एवम् मानस में काव्य-कला

प्रथम परिच्छेद में 'भारत में श्री राम भक्ति के विकास' का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। इस परिच्छेद में भक्ति के प्रामाणिक ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करके भक्ति की विकासात्मक रूप रेखा प्रस्तुत की गई है। इस परिच्छेद में राम भक्ति का व्यापक परिशीलन प्रस्तुत है। राम भक्ति के विकास का अनुशीलन करने के हेतु भक्ति के विविध रूपों का ऐतिहासिक क्रम भी वर्णित है।

द्वितीय परिच्छेद में 'रामायण एवम् मानस के आधार ग्रन्थों' का अध्ययन किया गया है। रामायण स्वतः आदि काव्य है अतः यह स्वयं आधार ग्रन्थ बन गया है परन्तु समन्वयवादी तुलसी के 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' 'रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि' कथन को प्रमाणित करने के लिये तथा मानस के यथार्थ रूप का ज्ञान करने के लिये प्राचीन आर्य ग्रन्थों का अध्ययन भी अनिवार्य है। अतएव मानस के प्रमुख आधारभूत ग्रन्थों का अध्ययन कर उसका मानस पर प्रभाव तथा उस प्रतिबिम्ब भाव में भी कवि के महत्व एवम् व्यक्तित्व को यत्र-तत्र देखने का प्रयास किया गया है। यह परिच्छेद लेखिका के मौलिक प्रयास का फल है।

तृतीय परिच्छेद में रामायण एवम् मानस में अभिव्यक्त 'राम के स्वरूप' का तात्विक एवम् तुलनात्मक अध्ययन किया गया है जिसमें साम्य के अतिरिक्त वैषम्य के तत्वों का भी सम्यक् निरीक्षण करने का मौलिक प्रयास किया गया है। इसी अध्याय में राम के

---

१. मानस मन्थन, पृष्ठ ३।

स्वरूप के विविध अंगों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण भी किया गया है। प्रस्तुत परिच्छेद इस अध्ययन का मौलिक अंश है।

चतुर्थ परिच्छेद में रामायण एवम् मानस, इन दोनों काव्य ग्रन्थों की मूलाधार स्वरूपा 'कथावस्तु' का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। 'साम्य' के स्थलों के उल्लेख के अतिरिक्त 'भेद' के कारणों एवम् लेखक के अन्य आधारसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह परिच्छेद पूर्णतया मौलिक है।

पञ्चम परिच्छेद में दोनों ग्रन्थों के पात्रों के व्यापक चरित्र-चित्रण के साथ-साथ उनमें साम्य एवम् वैषम्य स्थलों पर सम्यक् रीति से विचार किया गया है। उक्त विवेचन करते समय लेखकों के मौलिक व्यक्तित्व तथा पात्रों में उसकी अभिव्यक्ति भी वर्णित की गई है। प्रस्तुत परिच्छेद भी लेखिका के मौलिक प्रयास का द्योतक है।

षष्ठ परिच्छेद में दोनों ग्रन्थों में व्यापक दृष्टिकोण से विभिन्न परिस्थितियों का सम्यक् उद्घाटन किया है। विभिन्न शास्त्रों (सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक इत्यादि) के आधार पर प्रस्तुत काव्य ग्रन्थों में अभिव्यक्त विभिन्न परिस्थितियों का आकलन, विस्तृत अध्ययन एवम् सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया गया है। इस अध्याय का अध्ययन करते समय इस दृष्टिकोण पर भी व्यापक विचार किया गया है कि कवि निजकालीन परिस्थितियों से कहाँ तक प्रभावित हुआ है तथा उसने अपने युग को कहाँ तक मौलिक संदेश दिया है। यह विस्तृत परिशीलन भी पूर्णतया मौलिक है।

सप्तम् परिच्छेद में दोनों काव्य ग्रन्थों का काव्य कला की दृष्टि से विशेष अध्ययन किया गया है। काव्य शास्त्रों के आधार पर दोनों ग्रन्थों की काव्य कला की समीक्षा का तुलनात्मक विवेचन करना ही इस अध्याय का उद्देश्य है। इस अध्याय से भी लेखिका की मौलिकता का परिचय प्राप्त होता है।

अद्यावधि तुलसी पर की गई आलोचनाओं के क्षेत्र में यह नितान्त मौलिक एवम् नवीन प्रयास है जिसमें दोनों महान् कवियों के विशिष्टतम लक्षणों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। गोस्वामी जी ने स्वयं लिखा है :—

'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥'[1]

उपर्युक्त चौपाई के अनुसार उसी मग का अन्वेषण करना ही प्रस्तुत प्रबन्ध का मौलिक लक्ष्य है। इसमें दोनों कवियों की तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिकोण में रखते हुए युग की आवश्यकतानुसार साहित्य सृजन के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है। गोस्वामी जी ने महर्षि द्वारा निर्मित राम कथा के सेतु का तो आधार लिया ही परन्तु उस सेतु के पथिकों के हेतु अपनी भक्ति माधुरी एवम् काव्य सौष्ठव का स्वर्ण सुगंध संयोग कर सुपाथेय भी प्रदान किया है।

इस शोधन में आलोचना की विविध प्रणालियों को भी व्यवहृत किया गया है। जिनमें प्रमुख रूप ये हैं :—

१. मा० १।१२।१०।

सैद्धान्तिक, व्याख्यात्मक एवम् मूल्य निर्धारणात्मक। उक्त प्रकारों में तुलनात्मक रूप तो माला में सूत्र की भाँति सर्वत्र ही पिरोया हुआ है। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों के प्रति सहज श्रद्धा से अभिभूत होने की प्रेरणावश कतिपय स्थलों में आलोचना का रूप निसर्गत: भावात्मक हो गया है जो कि उर प्रेरक की उर प्रेरणा का ही निस्सृत अबोध प्रवाह है।

लेखिका प्रस्तुत प्रबन्ध लेखन की संस्कारात्मक प्रेरणा प्रदान करने वाले पूज्य पिता श्रीयुत् चन्द्रभाल जी अवस्थी के चरण कमलों में श्रद्धा सर्मपित करती है जिन्होंने ५ वर्ष की अवस्था से ही 'मानस' तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों के प्रति अनुराग सक्रिय करने का बीज वपन किया तथा अनवरत अपने उत्तम प्रवचनों द्वारा रस सिंचन कर उस अनुराग का परिवर्धन करते रहे हैं।

प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की अनुमति और प्रेरणा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त एम० ए०; एल-एल० बी०; डी० लिट् से प्राप्त हुई। उनका स्नेह और वात्सल्य लेखिका को सदैव से अनुप्राणित करता रहा है। लेखिका उनके प्रति असीम श्रद्धा से अवनत है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रचना सन्त साहित्य के मर्मज्ञ डा० त्रिलोक नारायण जी दीक्षित एम० ए०; पी-एच० डी०, डी० लिट्० के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुई है जिनके असीम कृपामय निर्देशन के ही प्रसाद रूप यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अनुसन्धान पथ पर चलते समय अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव हुआ। ऐसे अवसरों पर उन्होंने पूर्ण मनोयोग से पथ प्रदर्शन किया है। लेखिका श्रद्धयावनत होकर गुरूदेव के प्रति कृतज्ञतार्पण करती हुई आशीर्वचनों की अभिलाषिणी है।

इस प्रबन्ध के लिये अपेक्षित सामग्री के अनुसन्धानार्थ कई पुस्तकालयों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है जिनमें से प्रमुख उल्लेखनीय हैं:—काशी विश्वविद्यालय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, लखनऊ विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, राम कृष्ण मिशन, विद्यान्त पुस्तकालय, अमीनुद्दौला पुस्तकालय, विधान सभा पुस्तकालयादि। उक्त विविध पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति लेखिका हृदय से धन्यवाद प्रकट करती है।

श्रद्धेय पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, डा० राजपति दीक्षित, स्वर्गीय पं० चन्द्रबली पांडे आदि की रचनाओं से लेखिका को प्रचुर सहायता प्राप्त हुई। अतएव लेखिका हृदय से उनके प्रति आभारी है। विद्यान्त कालेज के प्रधानाचार्य श्री शारदा चरण मुकर्जी ने अत्यन्त उदारता से इस शोध कार्य हेतु अनुमति प्रदान कर सदैव मानसिक प्रेरणाएं भी दी। अतएव उनके प्रति भी मैं आभार प्रदर्शन करती हूँ।

अपनी अभिन्न 'बाल सखी श्रीमती जगरानी 'कृष्णा' के प्रति लेखिका सतत् सस्नेह ऋणी है जिन्होंने उसे अनवरत स्नेहमयी प्रेरणा एवम् प्रोत्साहन का सम्बल प्रदान कर प्राणान्वित किया है। इसके अतिरिक्त लेखिका के अनुज कृष्ण प्रेम एवं ब्रज मोहन

अवस्थी तथा शिष्या कुन्ती एवं दया भी धन्यवाद की पात्राएँ हैं जिन्होंने लेखिका को अन्य कार्यों में अत्यन्त मनोयोग से सहायता प्रदान की है। प्रबन्ध की वाह्य रूप रेखा में सहायक श्री रघुराज स्वरूप सिंहल (गोल्ड मेडलिस्ट) के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अल्प समय में इस विस्तृत अध्ययन का टंकण कार्य अत्यन्त स्वच्छता एवम् शुद्धता से सम्पादित किया।

यदि प्रस्तुत प्रबन्ध पाठकों को इन महान् कवियों के काव्य का किंचित मात्र भी रस पान कराकर आनन्द रस में निमज्जित कर सका तो लेखिका अपने इस अथक अध्यवसाय एवं स्वाध्यायमय शोधन कार्य को सफल एवं धन्य समझेगी और फिर भी यही कहेगी —

'कहं रघुपति के चरित अपारा।
कहं मति मोरि.....'

संवत् २०१५

विनीता
विद्या मिश्र

— — —

विषय तालिका

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

पञ्चम परिच्छेद

षष्ठ परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद

श्री राम-भक्ति का भारत में विकास

श्री राम-भक्ति का विकासात्मक अध्ययन करने के पूर्व भारत में भक्ति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन परम अनिवार्य है।

भक्ति की इस विकसित धारणा के मूल में एक विस्तृत इतिहास है, जो हमें पौराणिक युग से भी पूर्व वैदिक-युग तथा उससे भी पूर्व वैदिक-काल की उपासना-पद्धति से अवगत कराता है।

वैदिक-युग से पूर्व द्राविड़-सभ्यता में भी शक्ति-पूजा का विधान बताया जाता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि उपास्य की कल्पना स्त्री रूप में ही की जाती थी, वेद के पुरुष रूप की भाँति नहीं। तत्कालीन पूजा विधान की प्रेरणा बौद्धिक या हार्दिक न होकर वाह्य अथवा भय प्रेरित थी।

धर्म के कई दृष्टिकोण कहे गये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में उसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है।

"शब्दावलम्बी शासनपक्षदर्शी शुष्क धार्मिक के लिए धर्म राजा है, जिसके सामने वह प्रजा की तरह बड़े अदब कायदे के साथ नियम और विधि के पूरे पालन के साथ डरता जाता है, बुद्धिपक्षदर्शी के लिए धर्म गुरू या आचार्य है, जिसके सामने वह विनीत शिष्य के रूप में शंका समाधान करता पाया जाता है, पर भक्त धार्मिक के लिए धर्म प्यार से पुकारने वाला पिता है। उसके सामने वह भोले-भाले छोटे बच्चे की तरह जाता है, कभी उसके ऊपर लौटता है, कभी सिर पर चढ़ता है⋯वह धर्म को प्यार करता है, धर्म उसे अच्छा लगता है। उसका आनन्द लोक भी शुष्क धार्मिकों के स्वर्ग से ऊपर है। वह प्रिय या उपास्य का सामीप्य है।"[1]

उपर्युक्त कथन के अनुसार वैदिक-युग की उपासना भयजनित ही थी। असभ्य समाज भय एवं आतंक से देव-पूजन करता था कि कहीं उनका कुछ अनिष्ट न हो सके। अतः वह सर्व प्रथम प्राकृतिक शक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित कर अपनी कल्याण कामना करता था। इस प्रकार उस समय की उपासना भय, लोग और कृतज्ञता मिश्रित थी। इस पूजा का प्रकार द्रव्य यज्ञ के नाम से कहा जाता था। वाह्य उपादानों से विभिन्न देवों की

---

१. सूरदास भक्ति का विकास पृ० ४।

पूजा कर लोग अपना अभ्युदय मनाते थे। उस प्रकार यह केवल वाह्य साधना थी। शनैः शनैः हृदय-पक्ष का भी संयोग हुआ। उन देव प्रार्थनाओं में केवल वाह्य शिष्टाचार के अतिरिक्त उनमें प्रेम-भावना का भी संचार होने लगा। मननशीलता और भावुकता का ही प्रतीक उषा स्तुति आदि की गई और भगवान की पुरुष रूप में भावना ऋग्वेद के पुरुष सूक्त-द्वारा व्यक्त की गई और इस प्रकार नारायण रूप में उपासना प्रारम्भ हो गई। जिसका व्यापक विवेचन निम्नांकित है।

हिन्दू-धर्म की ऐतिहासिक परम्परा वैदिक-काल से प्रारम्भ होती है, जिसका स्थूल वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(१) कर्म-प्रधान वैदिक-युग।
(२) ज्ञान-प्रधान औपनिषद-युग।
(३) भक्ति-प्रधान पौराणिक-युग।

वेदों के प्रमुख चार अंग हैं।

(१) संहिता।
(२) ब्राह्मण।
(३) आरण्यक।
(४) उपनिषद्।

वेदो में भक्ति-भावना

सामान्यतः लोगों की यही धारणा है कि वेद 'यज्ञ प्रधान' है अतएव उनमें भक्ति का विवरण नहीं मिलता परन्तु तथ्य ऐसा नहीं है। वेदों में 'भक्ति' के भी बीज विद्यमान हैं।

संहिता में भक्ति

संहिताओं में कर्मों की विविधता प्रमुखतः वर्णित है। परन्तु इसके साथ ही साथ इन संहिताओं में उल्लिखित विविध स्तुतियाँ संहिताओं को भक्ति का उद्गम-स्थल प्रमाणित कर देती हैं। इन प्रार्थनाओं में अनुरागात्मिका भावना दर्शनीय है। संहिता-युग में प्रत्यक्ष देवों की स्तुतियाँ की जाती थीं क्योंकि उस युग के प्रधान देव अग्नि, सूर्य, इंद्र, वरुण, वायु माने जाते थे। इन देवों के प्रति सम्बन्ध भावना स्थापित कर प्रार्थनाएँ की गई हैं, जोकि पूर्ण-रूपेण भक्ति के बीच परिलक्षित कराती हैं।

ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति परमेश्वर के स्तुत्य महत्व की ओर निर्देश करती है।

'त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वंविष्णुरूरुगायो नमस्यः।'
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विघर्तः सचसे पुरंध्या॥[1]

अर्थात् 'हे' अग्ने! परमात्मन्! तू इन्द्र अर्थात् अनन्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न है, इसीलिये तू सज्जनों के लिये वृषभ अर्थात् उनकी समस्त कामनाओं का पूरक है। तू विष्णु है, विभु,

१. ऋग्वेद, २१३, भक्ति अंक, पृष्ठ ३५।

व्यापक है, इसीलिये तू उरुगाय है, बहुतों से गाने के द्वारा स्तुति करने योग्य है एवं नमस्कार्य है। हे ब्रह्म अर्थात् वेद के पति ! तू ब्रह्मा है और रयि अर्थात् समस्त फलों का ज्ञाता एवं दाता है। हे विधारक सर्वाधार ! तू पुरन्धि अर्थात् पवित्र एकाग्र बुद्धि द्वारा प्रत्यक्ष होता है।'

भक्त का ही रूप नहीं अपितु भगवान् की भक्त वत्सलता भी संहिता में वर्णित है।

'ॐ गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायां अभिनोऽन्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ।।'[1]

अर्थात् "जैसे गायें ग्राम के प्रति शीघ्र ही जाती हैं, जैसे शूर वीर योद्धा अपने प्रिय अश्व पर बैठने के लिये जाता है, जैसे स्नेह पूरित मनवाली, बहुत दूध देने वाली हम्मा रव करती हुई गाय अपने प्रिय बछड़े के प्रति शीघ्रता से जाती है, एवं जैसे पति अपनी प्रियतमा सुन्दरी पत्नी से मिलने के लिये शीघ्र जाता है, वैसे ही समस्त विश्व द्वारा वरण करने योग्य निरतिशय शाश्वत आनन्दनिधि सविता भगवान हम शरणागत भक्तों के समीप में आता है।"

संहिता में भक्त की भावना एवं भगवान् की भक्त-वत्सलता के अतिरिक्त भगवान् का स्वरूप भी वर्णित है। वह विविध रूपों में भी अक्षुण्ण एकता ही प्रतिपादित करने वाला है।

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।"[2]

अर्थात् 'ब्राह्मण लोग एक सत्य-तत्त्व को अनेक रूप से कहते हैं। कभी उसे अग्नि, कभी यम, कभी मातरिश्वा कहते हैं।'

श्री बलदेव उपाध्याय का निष्कर्ष है कि—

"भक्ति की भावना हमें सबसे अधिक मिलती है वरुण के सूक्तों में। वैदिक देवताओं में वरुण का स्थान सर्वतोभावेन मूर्धन्य है। वह विश्वतश्चक्षुः है अर्थात् सब ओर दृष्टि रखने वाला है। वह धृतव्रत। (नियमों को धारण करने वाला) सुक्रतु (शोभन कर्मों का निष्पादक)। तथा सम्राट् है। वह सर्वज्ञ है, वह अंतरिक्ष में उड़ने वाले पक्षियों का मार्ग उसी प्रकार जानता है जिस प्रकार वह समुद्र पर चलने वाली नावों का। स्तोता वरुण को दया तथा करुणा गुणों का निकेतन मानता है।............"[3]

ब्राह्मण में भक्ति

'ब्राह्मण' का शब्द व्युत्पत्ति है 'ब्रह्मणोऽयमिति ब्राह्मण' जो ब्रह्म (वेद) से सम्बन्ध है वह ब्राह्मण कहलाता है। 'ब्राह्मण' शब्द के इस व्यापक अर्थ के अनुसार वेदों की प्रत्येक ऋचा, प्रत्येक प्रार्थना मंत्र, प्रत्येक वस्तु जो देवताओं को समर्पित होती है, ब्राह्मण है।'............

---

१. ऋग्वेद १० (१४८) ४, भक्ति अंक, पृष्ठ ३५।
२. ऋग्वेद १। १६४।४६, भक्ति अंक, पृष्ठ ४२।
३. भागवत संप्रदाय, पृष्ठ ६७,६८।

'वेदों का वह भाग जो विविध वैदिक यज्ञों के लिये वेद मंत्रों के प्रयोग के नियमों, उनकी उत्पत्ति एवं विवरण पूर्ण व्याख्या का कथन करना है तथा जिसमें समय-समय पर सुविस्तृत दृष्टान्तों के रूप में परम्परागत कथाओं एवं कहानियों का समावेश रहता है।'[1]

ब्राह्मण युग में यज्ञानुष्ठान में जटिलता अवश्य आई और यज्ञ ही एक मात्र धर्म माना गया। यद्यपि यज्ञ इन्द्रादि देवों के निमित्त किये गये परन्तु प्रधान लक्ष्य यज्ञ ही रहे।

कर्म कांड प्रबल होते हुये भी भक्ति की भावना में न्यूनता नहीं आई अपितु श्रद्धा की अभिवृद्धि से हृदय की रागात्मिका वृत्ति में भी स्वाभाविक रुपेण वृद्धि हुई।

'संहिता में भक्ति भावना' के विवेचन के अन्तर्गत अग्नि से हेतु कृत प्रार्थना में अग्नि का विष्णु के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया है तथैव ब्राह्मण युग में भी विष्णु का यज्ञ के साथ स्थापन किया गया।[2] समस्त देवताओं में विष्णु ऋत्विजों द्वारा श्रेष्ठतम देव माने गये।

'ब्राह्मणों' में विष्णु 'सोम' के प्रतिनिधि कहे गये क्योंकि 'सोम' में पोषण तत्व विद्यमान होता है, विष्णु में भी पोषक शक्ति मानी गई। इसी प्रकार रूद्र अग्नि के प्रतिनिधि माने गये।

'अग्निर्वै स देवः। तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते।

भव इति यथा बाहीकाः। पशनां पती रुद्रो तान्यस्य अशान्तान्येवेतराणि नामानि। अग्निरित्येव शान्ततमम्।'[3]

आरण्यक में भक्ति

इन 'ब्राह्मण ग्रन्थों के ही अन्तर्गत आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ आते हैं। विषय सादृश्य एवं समय जन्य पौर्वापर्य्य के दृष्टिकोण से ब्राह्मणों के पश्चात् 'आरण्यक' का स्थान है। ये 'आरण्यक धार्मिक एवं दार्शनिक हैं जिनका सम्बन्ध वन से विशेष है। अरण्य में जो व्याख्यान हुये या जिनका अध्ययन किया गया उनका नामकरण आरण्यक हो गया। इनका विशेष अनुशीलन वानप्रस्थी लोग किया करते थे। इनमें नाना प्रकार की याज्ञिक क्रियाएँ एवं वानप्रस्थियों के 'कर्त्तव्य वर्णित हैं। इनमें बहिर्यज्ञ की अपेक्षाकृत अन्तर्यज्ञ की ओर विशेष महत्व प्रदान किया गया। इस समय योग का प्रचार हो रहा था। अतएव आन्तरिक

---

१. वैदिक साहित्य परिशीलन, पृष्ठ ८७,८८

२. विलियम चार्ल्स मैकडोनल लिखते हैं।

"Vishnu also became very early a nucleating centre around which much of the Bhakti development grew. Until the Shatpath he becomes the personification of the sacrifice.'

The way of Salvaton in the Ramayan of Tulsidas. page 66)

३. शतपथ १।७।८।

साधना पर विशेष ध्यान आकर्षित हुआ। अतएव साधक भक्ति के प्राबल्य की ओर स्वतः आकृष्ट हुये। अन्तर्यज्ञ स्वयं भक्ति की वह पृष्ठ भूमि है जिस पर भक्ति का विशाल प्रासाद निर्मित हो सकता है। बिना आन्तरिक निरोध के मानव की बहिरंग वृत्ति कभी शमित नहीं होती और बिना अन्तरंग वृत्ति हुये कोई भक्त नहीं बन सकता।

उपनिषद् में भक्ति

औपनिषद् युग ज्ञान-प्रधान युग कहलाता है। अतएव उपनिषद् 'ज्ञान कांड' के प्रमुख ग्रन्थ माने जाते हैं। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इनमें भक्ति या कर्म की चर्चा ही नहीं है। अपितु उपनिषद् ज्ञान, भक्ति, कर्म समन्वित हैं।

उपनिषद् में प्रत्येक वस्तु का तात्विक विवेचन किया गया है। परन्तु इसके साथ ही साथ उपनिषद् में उपासना का महत्व, उपास्य का स्वरूप तथा उपासक के लक्षणों का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है। केनोपनिषद् में लिखा है—

'तद्वनमित्युपासितव्यम्।'[1]

अर्थात् 'भजनीय वस्तु होने के कारण ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये।'

उपास्य के स्वरूप का निम्नांकित विवेचन कठोपनिषद् में वर्णित है।

'अणो रणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।'[2]

अर्थात् 'आत्मा अणु से भी अणु है, महान् से भी महान् है। यह प्राणी की हृदय गुहा में अवस्थान करता है। उसका दर्शन करने पर साधक में सर्वज्ञता आदि महिमा का आविर्भाव होता है तथा वह शोक से उत्तीर्ण हो जाता है।'

उस परमात्म-तत्व के प्रति भक्ति-भावना की चर्चा इस प्रकार है।

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुतेतनूँस्वाम्॥'[3]

अर्थात् 'यह आत्मा उत्कृष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेधा के द्वारा नहीं प्राप्त होता, बहुत पांडित्य के द्वारा, भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। उसके सामने यह आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

उपर्युक्त उद्धरण में स्पष्टतः ब्रह्म कृपा का उल्लेख किया गया है। ब्रह्म-कृपा प्राप्ति के लिये भक्ति ही अपेक्षित है।

इतना ही नहीं उपनिषद् में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में 'सख्य-भाव' की उपासना का भी वर्णन है।

---

१. **केनोपनिषद्** ।४। ६ ।
२. **कठोपनिषद्** १ ।२। २० ।
३. **कठोपनिषद्** १ ।२। ३ ।

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।[१]

अर्थात् 'एक वृक्ष पर दो पक्षी सखा के समान एकत्र रहते हैं। उनमें से एक पक्षी स्वादु फल (कर्मफल) खाता है । दूसरा पक्षी आहार नहीं करता, केवल देखता रहता है।"

उपनिषदों में प्रतीकोपासना का भी रूप अनेक स्थानों पर मिलता है।

उपनिषद्-काल में उपासना का स्वरूप विस्तृत होता चला गया जिसके परिणाम स्वरूप ब्रह्म का स्वरूप नर रूप में ही नहीं वरंच अन्न, प्राण, मन, ज्ञान, आनन्द सभी अन्तर्बाह्य रूपों में व्याप्त माना गया। अन्तर्यामी तथा सर्वव्यापी रूप भी पूर्णतः स्वीकृत किये गये।

ब्रह्म के साकार रूप में विष्णु का रूप उपास्य माना गया और उसके प्रति यह धारणा की गई कि वह पालक और रक्षक है। ईश्वर की विभिन्न शक्तियों का समन्वित रूप कोई एक प्रेरिका शक्ति मानी गई जिसके प्रति दार्शनिकों की यह जिज्ञासा हुई कि वह कैसा है ? क्या है। उसकी कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं ? उसके क्या लक्षण हैं ?........ इत्यादि। उपनिषदों में इस ज्ञान पिपासा को शान्त करने के विशेष प्रयास किये गये। भावना और ज्ञान दोनों का समन्वीकरण होने लगा। अब भय आतंक जैसी स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों के स्थान पर सात्विक प्रवृत्तियों का उदय हुआ। बुद्धि-योग और भावयोग का स्वर्ण सुगंध संयोग हुआ। ज्ञान-मार्ग में कुछ उपासक संसार से विरक्त होकर अपनी जिज्ञासा को शान्त करने लगे और कुछ निष्काम कर्मयोगी बनकर। इस प्रकार केवल द्रव्ययज्ञ के स्थान पर ज्ञान यज्ञ होने लगा।

ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों के साथ भक्ति का सिद्धान्त मान्य हुआ। हृदय पक्ष को उसकी साकार भावना से आकर्षित करके उसकी अव्यक्त सत्ता तक पहुँचाना भक्ति-मार्ग का लक्ष्य हुआ। साकार और निराकार दोनों का सापेक्षिक महत्व समझना एक दार्शनिक के लिये अनिवार्य हो गया। भक्ति-तत्व की पूर्णता दोनों रूप के समन्वित रूप के ज्ञान में थी। कर्म और उपासना के समन्वय पर भक्ति आधारित हुई। निष्काम कर्म पर विशेष महत्व डाला गाया। ज्ञान, कर्म, उपासना का समन्वित रूप भारतीय भक्ति मार्ग का मूलाधार रूप हुआ। इसमें लोक कल्याण कामना, अहिंसात्मक प्रवृत्ति, सर्ववाद की भावना का प्रवर्त्तन हुआ। ईश्वर की विभूतियों का दर्शन करके मनुष्य का मन उसकी ओर आकर्षित हुआ। यही भक्ति का मूल-तत्व हुआ जिसमें अकारण प्रेम स्वतः हो जाना ही भगवद्भक्ति का मूल रूप कहलाया।

सूत्र-ग्रंथ में भक्ति

जब कर्म एवं ज्ञान-कांड का साहित्य विस्तृत हो गया, तब ऋषियों ने 'सूत्र-ग्रन्थों' की रचना की, जिनमें सूत्रात्मक शैली में गहन एवं व्यापक विषयों का समाहार किया गया।

---

१. मुंडकोपनिषद् ३।१।१

विविध विषयों के व्यावहारिक रूप को 'सूत्र' रूप में स्मरण रखना सुलभ हो गया। कर्म कांड सम्बन्धी सूत्र तीन प्रकार के हैं।

श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र और धर्म-सूत्र।

इन सूत्रों में विविध विधानों का विवरण दिया गया है। इन विधानों में स्पष्टतः 'वैधी' भक्ति का स्वरूप है। उदाहरणतः गृह्य सूत्रों में पंच महायज्ञों का उल्लेख किया गया है [1] जिनका चरम लक्ष्य विराट् उपासना ही है।

इस प्रकार ये 'सूत्र' ग्रन्थ अप्रत्यक्ष रूपेण भक्ति के ही पृष्ठभूमि-विधायक हैं।

वेदान्त तथा उपवेदों में भक्ति

वेदाङ्ग में ६ अंग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष। परन्तु इनमें से 'कल्प' के अतिरिक्त अन्य सभी अंग वैदिक साहित्य के कला-पक्ष एवं अन्य विषयों की ही व्याख्या करते हैं, केवल 'कल्प' ही वह अंग है, जिसमें विविध प्रकार के श्रोत्र, गृह राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों की विधियाँ वर्णित हैं। इनका उल्लेख 'सूत्र ग्रन्थों' के सम्बन्ध में पूर्व ही किया जा चुका है।

'उपगतः वेदम् इति उपवेदः' के अनुसार प्रत्येक वेद के अन्तर्गत उपवेद भी हैं। ऋग्वेद के अन्तर्गत आयुर्वेद, यजुर्वेद के अन्तर्गत धनुर्वेद, सामवेद के अन्तर्गत गान्धर्व-वेद तथा अथर्ववेद के अन्तर्गत स्थापत्य वेद है। इनमें से आयुर्वेद स्वास्थ्य से सम्बन्धित है तथा गान्धर्व-वेद गायन, वादन, नृत्यादि से पूर्णतया सम्बन्धित है तथा 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' कहा गया है। धनुर्वेद शक्ति वर्धन में पूर्ण सहायक है। अतएव प्रभु-भक्ति से इसका अटूट सम्बन्ध है। संगीत के मधुर ताल में निबद्ध 'प्रभुस्तवन' 'कीर्त्तन भक्ति का रूप धारण कर प्रभु सामीप्य लाभ कराता है। भगवान् स्वयं कहते हैं।

'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र-तिष्ठामि नारद॥'

'स्थापत्य' उपवेद का भी प्रभु की उपासना से पूर्ण सम्बन्ध है, क्योंकि प्रतीकोपासना भक्ति का एक प्रधान अंग है और स्थापत्य इन विविध प्रतीकों से सम्बन्धित शास्त्र ही है।

अस्तु! उपर्युक्त वेदाङ्ग एवं उपवेदों में भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपेण भक्ति की पृष्ठभूमि एवं तत्व विद्यमान हैं।

वेदोपांग में भक्ति

वेद के ६ उपाङ्गों को ही षड्-दर्शन कहते हैं।

सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्व-मीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा।

महामहोपाध्याय डा० उमेश जी का कथन है—

भारतीय दर्शनों का 'एक मात्र लक्ष्य है 'आत्म दर्शन' जितने दर्शन हैं, वे सब इसी आत्म दर्शन के लिये हमें उपाय दिखाते हैं।....यह सभी जानते हैं कि दर्शन 'ज्ञान' की एक

---

१. इन यज्ञों का विवरण 'सांस्कृतिक परिस्थितियों के अध्याय में दिया गया है।

विशेष अवस्था है।......उसके लिये 'निदिध्यासन' की आवश्यकता होती है।........इस एकाग्रता के लिये अभ्यास और वैराग्य की सहायता से चित्त की चंचल वृत्तियों को रोक कर समाधि में स्थिर हो जाना पड़ता है।.......

यह ध्यान में रखना चाहिये कि किसी वस्तु के साथ तन्मय होने के लिये उस वस्तु में अनन्य भक्ति रखना तथा उस वस्तु को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के प्रति सर्वथा वैराग्य प्राप्त करना आवश्यक है। अतएव 'आत्म दर्शन' के लिये आत्मा के प्रति अनन्य भक्ति एवं आत्मा से इतर वस्तुओं के प्रति वैराग्य का होना आवश्यक है।[1]

इस प्रकार भक्ति-मार्ग के प्राथमिक रूप धार्मिक-भावना का शनैः शनैः रसात्मक विकास हुआ जिसमें भगवान् का स्वरूप चिन्तन प्रधान लक्ष्य बना। यह साधना सहज रागात्मिका प्रवृत्ति पर आधारित हुई जिसमें केवल विशुद्ध प्रेम था। प्रेम ही साधन और प्रेम ही साध्य था। उसमें ज्ञान की कोरी चर्चा नहीं, योग-मार्ग की सिद्धियों से कोई सरोकार नहीं था। धीरे-धीरे कर्म से ज्ञान और ज्ञान से उपासना के सोपानों पर अग्रसर होती हुई भक्ति अपनी चरम भावात्मक सत्ता पर स्थित हो गई। यथा सर्वप्रथम वैदिक कर्म-कांडों के रूप में काम्य स्तुतियाँ की गईं फिर उस सकामता में निष्कामता का प्रयोग हुआ। तत्पश्चात् ज्ञानी ऋषियों ने 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के रूप में अपने आध्यात्मिक ज्ञान का प्राकट्य उपनिषदों एवं दर्शन-शास्त्र के रूप में किया, जो भगवत्स्वरूप और तत्व—निरूपण का पूर्ण समर्थक हुआ। उस ज्ञान के परिणाम स्वरूप ईश्वर के स्वरूप की प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् उसके प्रति आत्म-निवेदन या भाव-समर्पण का साधन लेकर उपासना का रूप हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ जिसकी अनेक धाराएँ प्रवाहित हो चलीं।

तंत्र या आगम में भक्ति

"वैदिक साहित्य के समान ही प्राचीनता का दावा रखने वाला आगम अथवा तंत्र साहित्य है।........वे अधिकांश में शाक्तसिद्धान्त है और सर्व शक्तिमान् को पिता रूप में नहीं प्रत्युत माता रूप में भजने की सलाह देते हैं।........भक्ति मार्ग में इन ग्रन्थों का भी पूरा प्रभाव पड़ा है। देवी सूक्त ने तो वैदिक साहित्य तक में आसन पा लिया है। शैव सम्प्रदाय भी बहुत कुछ इन्हीं ग्रन्थों पर आश्रित है। वैष्णव सम्प्रदाय के पाञ्चरात्र-आगम इसी साहित्य के अन्तर्गत कहे जाते हैं।'[1]

यद्यपि वैदिक साहित्य में भक्ति के बीज विद्यमान थे परन्तु भक्ति के सम्प्रदायों का आरम्भ लगभग १५०० ई० पूर्व से माना जाता है। सात्वतों से लेकर गुप्त राजाओं के समृद्धिकाल में वैष्णव धर्म एवं भागवत धर्म का विकास हुआ। गुप्त-वंश के राजाओं ने वैष्णव धर्म को राष्ट्र धर्म के पद पर स्थित किया। इसी युग में पाञ्चरात्र संहिताओं का निर्माण हुआ। भगवान् के भक्तों को भागवत कहा जाने के कारण यह धर्म भागवत धर्म या पाञ्चरात्र मत कहलाया। इसका अन्य नाम सात्वत मत भी है क्योंकि सात्वत-नरेशों ने इस मत का विशेष प्रचार किया। इनका समय महाभारत काल माना जाता है।

---

१. भक्ति अंक, पृष्ठ ४७।

२. तुलसी दर्शन, दूसरा भाग डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ४४, ४५।

पाञ्चरात्र

पाञ्चरात्र की शब्द व्युत्पत्ति है, पाञ्चरात्र । 'रात्र' का अर्थ ज्ञान है, । इन ग्रन्थों में परमतत्व, भुक्ति, मुक्ति, योग तथा विषय (संसार), इन पाँच विषयों का निरूपण किया गया है इसलिये इनका पाञ्चरात्र नाम है ।[1]

महाभारत के अनुसार पाञ्चरात्र को भी उपनिषद् माना गया । इसमें चारों वेद तथा सांख्य योग के सिद्धान्तों का विवेचन होने के कारण भी इसे पाञ्चरात्र कहा गया ।[2]

इसी भाँति पाञ्चरात्र के सम्बन्ध में अनेक सम्मतियाँ प्रचलित हैं ।

पाञ्चरात्र के प्रमुख सिद्धान्त

उक्त विविध सम्मतियों से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह तंत्र अत्यन्त प्राचीन, महान् एवं वासुदेवोपासना का परिपोषक है क्योंकि कुछ लोग वेद की 'एकायन शाखा' से भी इसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।[3]

इस मत का व्यापक उल्लेख महाभारत के शान्ति-पर्व में किया गया है ।

'पाञ्चरात्र, मतानुसार पाँच व्यापारों से साधक भगवान् को प्रसन्न करता है ।

(१) अभिगमन-काय, वाक् तथा चित्त को अवहित कर देव-गृह में गमन करना ।

(२) उपादान-पूजा द्रव्य का अर्जन अथवा संग्रह ।

(३) इज्या—पूजा ।

(४) स्वाध्याय-अष्टाक्षर आदि मंत्रों का जप तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों का अभ्यास ।

(५) योग-ध्यान ।

ये पाँचों व्यापार ईश्वराराधन के स्वरूप के अन्तर्गत हैं ।[4],

इन ग्रन्थों में भी ब्रह्म, जीव, जगत् के स्वरूप की व्यापक विवेचना की गई है इस मतानुसार ब्रह्म को अद्वितीय, अनादि, आनन्द रूप, षाड्गुण्य विग्रह[5] भगवान् बताया । गया है । इनमें ईश्वर के साकार तथा निराकार दोनों रूपों को मान्यता प्रदान की है ।

---

१. नारद पाञ्चरात्र १४४

२. इदं महोपनिषदं तेन पाञ्चरात्रानुशाब्दितम् ।
नारायणमुखोद्गीतं नारदो श्रावयत् पुनः ।।
महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय ३३९

३. शतपथ ब्राह्मण १३ ।६। १

४. भागवत् सम्प्रदाय, द्वारा श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ १०९

५. ऐश्वर्य, वीर्य, श्री, यश, ज्ञान, वैराग्य भगवान् के ६ विग्रह कहलाते हैं ।

पाञ्चरात्र के अनुसार जीव भी अनादि, चिदानन्द-घन तथा भगवान् प्रेरित माना गया। परन्तु वह भगवान् की निग्रह-शक्ति माया, अविद्यादि के कारण अल्पज्ञ हो जाता है जिससे वह बंधन रहित होने पर भी भव बंधन में बंध जाता है, परन्तु भगवत्कृपा से जीव कष्ट-मुक्त होता है। उसे आगम शास्त्र में शक्तिपात कहा गया है जिसका तात्पर्य भगवत्कृपा ही है। इस कृपा की उपलब्धि के लिये पाञ्चरात्र में भगवदर्चा की विधियों का भी उल्लेख किया गया है। इनमें वाह्य सात्वत-विधियों से अर्चना के अतिरिक्त भगवत्कृपा-प्राप्ति का सर्वप्रमुख साधन शरणागति एवं प्रपत्ति बतलाया गया है। यह शरणागति भी ६ प्रकार की होती है।

(१) आनुकूल्यस्य संकल्पः--भगवदनुकूल होने का दृढ़ निश्चय।
(२) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्--ईश्वर से प्रतिकूल वस्तुओं का परिहार।
(३) रक्षिष्यतीति विश्वासः—ईश्वर के रक्षकत्व पर अटल प्रतीति।
(४) गोप्तृत्व वरणम्—प्रभु को 'रक्षक' मानकर वरण करना।
(५) आत्मनिक्षेपः—आत्म समर्पण।
(६) कार्पण्यम्—दैन्य भाव।

पाञ्चरात्र में वर्णित पूर्वोक्त प्रपत्ति-मार्ग तो परवर्ती भक्तों का प्राणाधार ही बन गया है।

इस मत के अनुसार सृष्टि के विषय में सामान्य कथन यह है कि समस्त प्रकृति आत्म तत्व से प्रेरित होने के कारण ही चैतन्य रूप में प्रतिभासित होती है और उसी के कारण कार्य-संचालन में प्रवृत्त भी होती है।

अन्य तत्वों की ही भाँति इनमें मोक्ष तत्व भी वर्णित है। मोक्ष का अर्थ इनमें 'ब्रह्म-भावापत्ति' या 'अपुनर्भवता' माना गया। भगवान् की अनुग्रह-शक्ति के बल पर उसी के साथ एक रूप हो जाना ही मोक्ष है। जीव ब्रह्म के साथ उस तद्रूप स्थिति में आनन्दानुभव करता है और ज्ञानालोक से आलोकित रहता है।

नारद पाञ्चरात्र में भक्ति

भक्ति के विकास में देवर्षि नारद के भक्ति सूत्रों का अत्यन्त महत्व है। भक्ति सम्प्रदाय की सभी शाखाएँ एवं प्रशाखाएँ इन सूत्रों के रस से अभिसिंचित हो प्राणान्वित हो उठीं।

नारद भक्ति के स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं —
'सा त्वस्मिन् परमप्रेम रूपा, अमृतस्वरूपा च।'[1]

उस भक्ति का उपलब्धकर्ता इच्छा रहित, शोक रहित, द्वेषरहित होकर निर्विकार हो जाता है।[2] इतना ही नहीं वह 'आत्माराम' भी हो जाता है।[3] वह भगवदभक्ति अनन्य-रूपिणी है जो अन्य विषयों के प्रति उदासीनता उत्पन्न करती है।[4] उस भक्ति की वास्तविक

---

१. नारद भक्ति-सूत्र २, ३।
२. नारद भक्ति-सूत्र ५।
३. नारद भक्ति-सूत्र ६।
४. नारद भक्ति-सूत्र ९।

स्थिति है प्रभु के विस्मरण में अत्यन्त आकुलता का होना।[1] इस भक्ति को कर्म एवं ज्ञान से भी श्रेष्ठतर निर्दिष्ट किया है।[2]

प्रभु कृपा एवं सज्जन कृपा से इस प्रेमा-भक्ति की प्राप्ति होती है।[3] अतएव कुसंगति त्याज्य है।[4] भक्ति के प्रकारों का भी नारद-भक्ति-सूत्र में उल्लेख किया गया है।[5]

नारद ग्यारह प्रकार की आसक्तियों का विवरण देते हुए भक्ति की श्रेष्ठता वर्णित करते हैं।[6]

उक्त विविध तत्व-निरूपण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति के उन्नयन में पाञ्चरात्र मत को विशेष श्रेय प्राप्त है।

पुराणों में भक्ति

सनातन धर्म के सुदृढ़ स्तम्भ, भक्ति भावना के अमूल्य मणि-रत्न इन पुराणों का भक्ति के विकास में प्रमुखतम स्थान है। जिस परम तत्व को वेदों ने गूढ़ रक्खा, इन पुराणों ने उसी को सौंदर्य-शिरोमणि रूप में प्रेम वश रूप प्रदान कर दिया।

'पुराण रत्न' श्री रसिक मोहन जी की उक्ति नितान्त संगत एवं यथार्थ है कि 'भक्ति साधना का जो बीज वेदों के संहिता भाग में ही निहित है, वही क्रम विकास के पथ में उपनिषद् में आकर अंकुरित और पल्लवित हुआ है। पुराणों में वह शाखा-प्रशाखा-युक्त, फूल फल से समृद्ध महावृक्ष के रूप में परिणत होता है।'[7]

इन १८ पुराणों में से अधिकांश पुराण वैष्णव धर्म से सम्बन्धित हैं। ब्रह्म-वैवर्त्त, पद्म, विष्णु एवं श्रीमद्भागवत पुराण भगवान् विष्णु के स्वरूप, उनके महत्व निरूपण तथा भक्ति-निरूपण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इन सभी पुराणों में श्रीमद्भागवत् की महिमा अवर्णनीय है। यह सभी दृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ पुराण है, भक्ति-शास्त्र है। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि भागवत् उपजीव्य-ग्रन्थ है। सभी पर-कालीन भक्ति-सम्प्रदाय इसी पर आधारित हैं।

भागवत् में भगवान् ने स्वयं अपना तात्विक निरूपण ब्रह्म से किया है,[8] जिससे

---

१. नारद भक्ति सूत्र १६।
२. नारद भक्ति सूत्र २५।
३. नारद भक्ति सूत्र ३८।
४. नारद भक्ति सूत्र ४३।
५. नारद भक्ति सूत्र ५६।
६. नारद भक्ति सूत्र ८२।
७. भक्ति अंक, पृष्ठ ५४, ५५
८. 'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च यो वशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥' भा० २९३२।

यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि ब्रह्म निर्गुण, सगुण दोनों हैं, जीव, जगत् भी वही हैं। जीव अविद्या से ग्रसित होने के कारण उसी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब रूप माना जा सकता है। जगत् उसी का विवर्त रूप ही है।

भागवत के अनुसार भगवान अपने भक्तों पर विशेष अनुग्रह करने के लिये ही अवतरित होते हैं, लीलाएँ करते हैं जिनमें निमज्जित होकर जीव तन्मय होकर आनन्द-रस-मग्न हो उठता है।

भगवांन के स्वरूप का विस्तृत विवेचन भागवत् में मिलता है। भगवान् के त्रिगुणात्मक रूप (सत्, रज, तम धारी) विष्णु, ब्रह्मा, महेश की व्याख्या के साथ साथ दशम स्कंध में शुद्ध तत्व रूप परात्पर ब्रह्म परम विष्णु रूप का स्वरूप भी वर्णित है। यही प्रभु अपने भक्तों की भावनानुसार अनेक रूप धारण करता है।

इस ग्रन्थ में भगवान के विविध अवतारों एवं प्रमुख शक्तियों का भी उल्लेख किया गया है। भगवान के अवतार कई प्रकार के हैं पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार एवं स्वल्पावतारादि। उनकी शक्तियाँ भी प्रमुख ये हैं।

(१) स्वरूप शकित - चिच्छक्ति या अन्तरंग शक्ति

(२) माया शक्ति—जड़ शक्ति या वहिरंग-शक्ति

(३) जीव शक्ति—मध्य शक्ति या तटस्थ-शक्ति

इस प्रकार पुराण में भगवान् के 'अवतारवाद' का विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रभु के अवतार कारणों का उल्लेख, उनकी लीलाओं का रसास्वादन, भक्त को उसके उपासना मार्ग में उत्तरोतर अग्रसारित करता है।

भागवत् में भक्ति के स्वरूप एवं प्रमुख साधनों का भी उल्लेख किया गया है।

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णो भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।'[1]

उक्त भक्ति में ज्ञान एवं वैराग्य का समावेश स्पृहणीय माना गया है।

'इत्यच्युताङ्घ्रिभजतोऽनुवृत्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥'[2]

कपिल मुनि ने भक्ति का तात्विक विवेचन अन्य प्रकार से किया है जिसमें भक्ति का विस्तृत निरूपण किया गया है। कपिल मुनि भक्ति के दो प्रमुख भेद करते हैं—

(१) सगुणा (२) निर्गुणा

---

१. भा० ७।५।२३, २४
२. भा० ११।३।४३

उन्होंनें सगुणा को भी गुणों के अनुसार विभाजित किया है । निर्गुणा या अहैतुकी भक्ति सर्वोत्तम कही गई है । यही सर्वश्रेष्ठ प्रेम है ।[1]

इस भक्ति तक पहुँचने के लिये पहले सात्विकी भक्ति के सोपान पर आरूढ़ होना परम अनिवार्य है । इसमें भक्त कर्मजन्य वासनात्मक प्रवृत्ति की निवृत्ति के लिये इस भक्ति योग का अवलम्ब लेता है और भगवत्कृपा से तत्वज्ञान प्राप्त कर भगवदर्पण भाव से कर्मानुष्ठान करता है । इस प्रकार की भावना से देह, मन, इन्द्रिय, बुद्धि पवित्र होती है और आत्म रूप उज्ज्वल भाव में प्रतिभासित होता है, तथा भगवत्प्रेम फिर साधन नहीं साध्य, आराध्य और स्वभाव ही बन जाता है ।

सर्वोत्तम भागवत् के भी लक्षण भागवत् में वर्णित हैं ।

'सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।'[2]

यह ग्रन्थ भक्ति के आलम्बन भगवान् के तत्वों के विशद विश्लेषण के साथ-साथ भक्ति तत्व का भी अपार समुद्र है जिसमें अनेक कथाओं के साथ-साथ भक्ति-तत्व की रसपूर्ण भाव ऊर्मियाँ तरंगित हो रही हैं जिनमें सबसे ऊँची, तरल, उन्नयन-कर्त्री ऊर्मि निष्काम-भक्ति की है । प्रेमा-भक्ति सर्वोपरि है । उस भक्ति के साम्राज्य के सन्मुख ब्रह्म-लोक, स्वर्ग लोक, भूलोक, योग सिद्धियाँ सभी हेय हैं । उस प्रेमाभक्ति के सामने अन्य सभी साधन यहाँ तक कि कोरा ज्ञान भी व्यर्थ ही है । भगवच्चरणारविन्द में अपने मन को अहर्निश भ्रमर की भाँति रस निमज्जित कराकर प्रीति पराग का पान कराना ही भागवत का परम लक्ष्य है ।

---

२. 'भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ।।
अभिसन्धाय-यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ।।
विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ।।
कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यामिति वा पृथग्भावः स सात्विकः ।।
मदगुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ।।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।।
सालोक्यसार्ष्टि सामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।।' भा० ३।२९। ७ से १३ तक

२. भा० ११।२।४५

भागवत्-पुराण के पश्चात् 'विष्णु-पुराण' की गणना की जाती है। 'रामानुज-सम्प्रदाय' में इस पुराण का विशेष महत्व माना जाता है। इसमें आध्यात्मिक-तत्वों की विस्तृत विवेचना की गई है।

विष्णु-पुराण में परब्रह्म का दूसरा नाम 'भगवान्' भी कहा गया है। उनकी प्राप्ति का उपाय स्वांध्याय तथा योग बताया गया है। योग और भक्ति का समन्वय मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन वर्णित है।[1]

ब्रह्म-वैवर्त-पुराण में परमात्मा की शक्ति राधा के चरित्र तथा उनके रहस्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पद्म-पुराण में राम तथा कृष्ण का चरित्र-चित्रण, वैष्णव-तीर्थों एवं व्रतों की व्याख्या की गई है।

इस प्रकार पौराणिक युगों में 'विष्णु' की महत्ता विशेष रूप से स्थापित हुई, जिसका निदर्शन विष्णु-पुराण, नारदीय, गरुड़, पद्म, ब्रह्म, वैवर्त, भागवत-पुराणादि हैं। परन्तु विष्णु के साथ-साथ अन्य देवताओं का भी अभ्युदय हुआ। शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश से सम्बन्धित पुराणादि में इन देवों की महिमा वर्णित की गई। इनमें से भी वैष्णव, शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों ने प्रमुखता धारण की। शैव-पुराण में भी देव-कृपा को ही भक्ति का साधन माना गया।[2] शाक्त'. पुराणों में भी भक्ति की महिमा उद्घोषित की गई है। इसमें भी तीन प्रकार की भक्ति वर्णित की गई है।

उपर्युक्त पुराणों के समक्ष श्रीमद्भागवत विशेषत: भक्ति की दृष्टि से विशेष अनुपमेय है। यह भक्ति का उज्ज्वल, स्निग्ध, शीतल, मधुर प्रकाश-स्तम्भ है। सभी वैष्णव सम्प्रदाय इसी पर आधारित हैं। उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र की भाँति इसका भी समान स्थान है। इसकी सरस गीतियों में, सरस एवं ललित भाषा में आध्यात्मिकता से परिप्लावित भक्ति-रस-आनन्द-जलधि में भक्त-वृन्द को आप्यायित कर चिर तृप्त कर देता है। विविध कथाओं के भोज्य पदार्थ के साथ-साथ भक्ति शर्करा से पर्यवेष्टित हो यह ग्रन्थ उपासक को तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा निवृत्ति करता है।

वेदान्त में वर्णित 'अपरोक्षानुभूति' ही पुराणों में प्रेमलक्षणा भक्ति एवं पराभक्ति के नाम से विकसित हुई। वैधी भक्ति की अपेक्षाकृत रागानुगा भक्ति का पूर्ण रूपेण विकास हुआ। बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग भाव तरंगित हो उठा।

---

१. वि० पु० ६।८।१९, २०

२. 'प्रसादाद् देवता भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः।
यथेहाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः॥'

शिव पुराण १।१४

दक्षिण भारत में भक्ति

आलवार संतों में भक्ति

'पुराण काल' के अनन्तर उत्तर भारत की अपेक्षाकृत दक्षिण भारत में भक्ति का विकास हुआ। इस समय द्रविड़ देश में भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठी। आलवार[1] सन्तों ने मधुर, सरस एवं पवित्र पदों में भक्ति-रस का पान करना एवं कराना प्रारम्भ कर दिया। इन १२ सन्तों ने भक्ति के क्षेत्र को रस-प्लावित कर भक्ति के बीजों के पूर्ण विकास को पूर्ण रूपेण प्रोत्साहन प्रदान किया। इस क्षेत्र पर ही आचार्यों ने भक्ति को शास्त्रीय पद्धति पर आरूढ़ कर दिया।

अस्तु! इन आलवार सन्तों एवं वैष्णव आचार्यों का भक्ति के विकास में अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थान है। श्री बलदेव उपाध्याय ने नितान्त संगत-रूपेण इसका निष्कर्षात्मक विवेचन इस प्रकार किया है।

'आलवारों की भक्ति उस पावन-सलिला सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है, जो स्वयं उद्वेलित होकर प्रखर गति से बहती जाती है और जो कुछ सामने आता है उसे तुरन्त बहाकर अलग फेंक देती है। आचार्यों की भक्ति उस तरंगिनी के समान है जो अपनी सत्ता जमाये रखने के लिए रुकावट डालनेवाले विरोधी पदार्थों से लड़ती झगड़ती आगे बढ़ती है। आल-वारों के जीवन का एक मात्र आधार थी प्रपत्ति, विशुद्ध भक्ति परन्तु आचार्यों के जीवन का एक मात्र सार था, भक्ति और कर्म का मंजुल समन्वय।....आलवारों में हृदय पक्ष-की प्रब-लता थी, तो आचार्यों में बुद्धि पक्ष की दृढ़ता थी।'[2]

ये आलवार सन्त दो प्रकार के थे।

(१) शैव सन्त (२) वैष्णव संत

शैव सन्तों की संख्या ६४ तथा वैष्णवों की १२ कही जाती है[3]. इन शैव सन्तों के दो प्रसिद्ध ग्रंथ 'देवरम्' (भगवत्प्रेम के हार) और 'तिरुवाचकम'। पवित्र वाणी हैं, वैष्णव सन्तों के पदों का संग्रह 'नालायिर-प्रबन्ध' के नाम से विख्यात है। इन्हें 'तामिल वेद' भी

---

१. 'आलवार' शब्द तामिल भाषा का है जिसका अर्थ है 'भगवद्भक्ति रस में लीन व्यक्ति।

२. दक्षिण के सम्प्रदाय, पृष्ठ १८६।

३. इन वैष्णव सन्तों के नाम इस प्रकार हैं—

पोयगै आलवार (सरो योगी), भूतत्तालवार (भूत योगी), पेयालवार (महत् योगी), भक्तिसार तिरुमडिमे आलवार, शठकोप नम्मालवार (परांकुश मुनि), मधुरकवि, कुलशेखर आलवार, विष्णुचित्त (परि आलवार), गोदा आ डाल (रंगनायिकी), विप्रनारायण (भक्तपदरेणु), तो डरडिप्पोलि, मुनिवाहन (योगवाह), तिरुप्पन तथा नीलम् (परकाल), तिरुमंगेयालवार।

कहते हैं। इन आलवार सन्तों की भक्ति का प्रवाह अबाध था जिनमें किसी प्रकार का वर्ग-भेद न था।

वैष्णव आलवार—सन्तों में 'शठकोप की' प्रसिद्धि विशेष है, क्योंकि आपने विष्णु के प्रमुख अवतारों का वर्णन किया है। आपके ही शिष्य नाथ-मुनि हुए, जिन्होंने चार हजार पदों का संग्रह किया है।

वैष्णव आचार्यों में भक्ति

आलवार सन्तों की अपेक्षाकृत वैष्णव आचार्यों ने विधि-विधानों से युक्त कर भक्ति को कर्म एवं ज्ञान से समन्वित किया। इन आचार्यों ने वेदों एवं आलवार सन्तों के भक्ति-ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन कर, दोनों का समन्वय कर भक्ति को शास्त्रीय पद प्रदान किया। यही कारण है कि इन्हें उभय वेदान्ती भी कहा गया। इन आचार्यों में प्रमुख ये हैं—

(१) रंगनाथ मुनि। (नाथ मुनि)
(२) श्री रामानुजाचार्य
(३) श्री मध्वाचार्य

श्री रंग नाथ मुनि में भक्ति

आप शठकोपचार्य की शिष्य-परम्परा में थे। आपने प्राचीन तामिल भक्ति-काव्यों के पुनरुद्धार के साथ-साथ वैष्णव-मत के प्रचार का कार्य सम्पन्न किया। आपके द्वारा प्रवर्तित मत 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहलाया। आपने 'न्यायतत्व' एवं 'योग रहस्य' नामक ग्रंथों में इस मत की दार्शनिक व्याख्या की। आपकी शिष्य-परम्परा में भी इसी प्रकार आलवार एवं वैदिक ग्रंथों का प्रचार एवं प्रसार हुआ।

श्री रामानुजाचार्य में भक्ति

नाथ मुनि द्वारा अंकुरित वैष्णव—सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को उनकी शिष्य-परम्परा में यामुनाचार्य ने विकसित करने का प्रयास किया परन्तु उस सम्प्रदाय को पूर्ण रूप से पल्लवित करने का समस्त श्रेय श्री रामानुज को ही है। आपके प्रसिद्ध ग्रंथ वेदार्थ-संग्रह, वेदान्तसार, वेदान्त-दीप, गद्यत्रय, गीता-भाष्य एवं श्री भाष्य हैं। श्री—भाष्य में आपने विशिष्टाद्वैत का समर्थन तथा बौद्धों की अनीश्वरवादिता एवं शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया। 'गद्यत्रय' में भगवान् तथा 'प्रपत्ति' सम्बन्धी तत्वों की सुन्दर विवेचना है।

श्री रामानुज के सिद्धान्तों की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं। आपके अनुसार केवल तीन तत्व हैं। चित्, अचित् तथा ईश्वर। चित् जीव का वाचक है, अचित् जगत् का वाचक है तथा ईश्वर से तात्पर्य घट-घट व्यापी परमात्मा से है।

आपके अनुसार ईश्वर ब्रह्म सगुण एवं सविशेष हैं। आपकी प्रमुख शक्ति माया है। वे अचित्-जगत् के उपादान कारण हैं। जीव-जगत् उनका शरीर है, वे उसकी आत्मा हैं। प्रभु का स्वरूप ५ प्रकार का है। पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा।

जगत् ब्रह्म का ही वाह्य रूप है। जगत् भी सत्य है, जीव भी ब्रह्म का ही शरीर है। अन्तर केवल यह है कि ब्रह्म ईश्वर है, जीव दास, ईश्वर कारण है, जीव कार्य। जीव कर्त्ता

और भोक्ता है तथा विविध उपाधियों के कारण सांसारिक भोग के वशीभूत होता है। ब्रह्म की भाँति जीव भी पाँच प्रकार के हैं—नित्य, मुक्त, केवल, मुमुक्षु और बद्ध।

उस प्रभु की दासता ही मुक्ति है। यह मुक्ति भी पाँच प्रकार की है। कर्मयोग, ज्ञान योग, प्रपत्ति योग एवं आचर्य्याभिमान योग। ये पाँचों रूप भक्ति के ही विभिन्न रूप हैं। भक्त अपनी वेदना, ध्यान एवं उपासना द्वारा अपनी भक्ति उस प्रभु को व्यक्त करता है। प्रभु के प्रति सर्वस्व न्यास ही 'प्रपत्ति' है। प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण ही भगवत्प्रसन्नता का प्रमुख साधन है।

इस प्रकार इस मत में 'भागवत कैंकर्य' को ही विशेष महत्व दिया गया है। भक्त और प्रपन्न में भावना का अन्तर है।

भगवच्चरणों में अपने आपको समर्पित कर देना प्रपन्न का प्रमुख लक्षण है। भक्त भगवान् को केवल अपना ही मानता है परन्तु प्रपन्न अपने को भगवान का समझता है, उसका सर्वस्व भगवान् का है।

'प्रपत्ति' की विशेषता का निर्देश करते हुये उपमा द्वारा श्री जय नारायन मल्लिक ने इसकी सुन्दर व्याख्या की है।

'भक्त और प्रपन्न में वही अन्तर है जो सेवक और 'पत्नी' में पाया जाता है। सेवक भी अपने स्वामी के आज्ञानुसार सभी कैंकर्य करता रहता है पर पत्नी का तो पति सर्वस्व ही है। मालिक के छोड़ देने पर भी नौकर अपना निर्वाह कर लेता है, पर पति के परित्याग कर देने पर पत्नी कहाँ जाय ? ....पति ही उसका उपाय है, अवलम्ब है। इसी प्रकार प्रपन्न का भी आधार, अवलम्ब और उपाय एकमात्र भगवान् ही हैं।'[1]

प्रपन्न अपने को अनन्त अपराधी, निराधार और आर्त्त मानता है। साथ ही उसका आधार भी अति महान् है 'भगवत्कृपा'। 'प्रपत्ति' भाव के अन्तर्गत यह भी परमावश्यक है अर्थ-पञ्चक[2] का ज्ञान, अनन्य-शषत्व अनन्य[3] शरणत्व[4] तथा अनन्य भोग्यत्व।[5]

साधन-समष्टि के अन्तर्गत 'प्रपत्ति' मार्ग का अपना विशिष्ट स्थान है। व्यावहारिक

---

१. कल्याण, २६ वर्ष, अंक ६, पृष्ठ १२८८
२. 'अर्थ पञ्चक' के अन्तर्गत निम्नांकित तत्वों का ज्ञान है :—
   (१) जीवात्मा का स्वरूप
   (२) परमात्मा का स्वरूप
   (३) पुरुषार्थ
   (४) जीव को परमात्मा से मिलने के उपाय (कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्ति योग, प्रपत्तियोग)
   (५) जीव के मोक्ष मार्ग के विरोधी
३. भगवान् के अतिरिक्त किसी का दासत्व स्वीकार न करना।
४. ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी यन्त्र मन्त्र या देवातान्तर की शरण न जाना।
५. अपने को ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी का भोग्य न मानना।

क्षेत्र में यह सर्वश्रेष्ठ सुगम, सरल राजपथ है भगवत्सान्निध्य प्राप्त करने का। भक्ति-मार्ग का दृढ़तम साधन है। गीता में योगिराज कृष्ण इसी साधन की ओर शंखनाद करते हुये जीव-मात्र के कल्याण के लिये उद्यत हैं।[1]

इस योग में कर्म कांड की निष्कामता भी स्वतः ही इसके अन्तर्गत आ जाती है। आसक्ति और फलाभिलाषा तो हो ही नहीं सकती जब कि शरीर, मन, आत्मा सभी कुछ प्रभु को समर्पित कर दिया तब वासना का स्थान रहा ही कहाँ ? उस प्रपन्न का तो समस्त जीवन भगवत्कैंकर्य अथवा भगवदनुरंजन मात्र के लिये समर्पित हो जाता है।

इस विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अन्तर्गत 'गुरु महत्व' का भी विशेष स्थान निर्धारित किया गया। भगवत्सान्निध्य या भगवदुन्मुख कराने का प्रेरक अथवा संचालक गुरु या आचार्य होता है। गुरुद्वारा पुरस्कृत जीव को भगवान् ग्रहण कर लेते हैं।

इस सम्प्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय पड़ा। इसमें विष्णु या नारायण की उपासना की गई। भगवान् का सर्वश्रेष्ठ रूप वैकुंठाधिनायक श्रीमन्नारायण भगवान् का है जिसमें वे श्री देवी से समन्वित रहते हैं। अतः सदा उसी रूप का चिन्तन, स्मरण, गुणगान द्वारा हृदय भवन के कालुष्य को दूर कर जगन्माता श्री देवी के सहित भगवान् नारायण की मूर्ति स्थापित करना ही परम कैंकर्य है। उस प्रभु के दो रूप हैं। अन्तर्यामी और बहिर्व्यापी। अतः दोनों रूपों में ही उसका कैंकर्य-पालन अभिवांछनीय है। सर्वत्र सब में उसका मन्दिर समझना उसकी उपासना का ही रूप है।

श्री मध्वाचार्य में भक्ति

मध्वाचार्य ने अपना मत महाराष्ट्र प्रान्त के दक्षिणी भाग में चलाया जो माध्यम-मत, भेदवादी, द्वैतवादी या ब्रह्म-सम्प्रदाय कहलाया। इस सिद्धान्त के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं।

श्री विष्णु ही परम तत्व हैं, जगत् सत्य हैं, उसमें भेद वास्तविक है। सभी जीव भगवान के सेवक हैं, सभी जीवों में एक तारतम्य है। वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। यह मुक्ति कई प्रकार की है। कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अचिरादि मार्ग और भोग (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। इस मुक्ति का सर्वोत्तम साधन है 'अमला-भक्ति' या 'अहैतुकी भक्ति'। इसे 'अनन्या भक्ति' भी कहते हैं।

आप के मत का समाहार निम्नांकित श्लोक में दिया गया है।

> 'श्री मन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्वतो।
> भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।।
> मुक्तिर्निजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत् साधन।
> ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायेकवेद्यो हरिः ।।'[2]

---

१. 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा-शुचः ।।' गीता १८।६६

२. भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ २२३,२२४

उक्त पद्य में आपके प्रमुख नौ सिद्धान्तों का विवेचन है कि विष्णु सर्वोत्तम तत्व है. संसार सत्य है, भेद वास्तविक है, समस्त जीव भगवदाधीन हैं, जीवों में ऊँच नीच का भाव कर्मानुसार होता है, वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है, मुक्ति का सर्वोत्तम साधन निर्दोष भक्ति है, तीन प्रमुख प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तथा वेदों में प्रमुख वार्य तत्व 'विष्णु' ही हैं।

मध्वाचार्य ने भी अपने अधिकांश ग्रन्थों में भक्ति को ही मुक्ति का साधन माना है।

'अतो विष्णो: पराभक्तिस्तद्भक्तेषु रमादिषु।
तारतम्येन कर्तव्या पुरुषार्थमभीप्सता ।।'[1]
'विना ज्ञानं कुतो भक्ति : कुतो भक्तिं विना च तत्।'[2]

दक्षिण-भारत में श्री सम्प्रदाय और मध्व सम्प्रदाय भक्ति के विकास की अटूट श्रृंखलायें हैं जो पुराणकाल और उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन के मध्य काल को दृढ़तम रूपेण सम्बन्धित एवं ग्रथित करते हैं। इस विशाल दृढ़तम पृष्ठभूमि पर भक्ति का भव्य प्रासाद निर्मित करने को विशाल प्रेरणा मिली और इसके परिणाम स्वरूप भाव-भूमियों का अनन्त विस्तार भी हुआ। दक्षिण भारत को भक्ति की प्रबल लहर ने उत्तरी भारत में १५वीं शती से प्रबलतम रूप धारण कर लिया। इतना ही नहीं उस भक्ति पूर्ण साहित्य ने हिन्दी साहित्य के काल को 'स्वर्ण युग' नाम प्रदान किया और भक्ति सरिता अबाध रूप से प्रवाहित होने गगी।

उत्तर-भारत में भक्ति

भक्ति का तृतीय उत्थान काल लगभग १५वीं शताब्दी से माना जाता है। इस काल में भक्ति-सरिता की दो अविरल अजस्र धाराएं प्रवाहित हुईं, एक पूर्ण रसाप्लावित श्याममयी कालिन्दी के रूप में, द्वितीय शिवं सत्यं समन्वित राम गंगा के रूप में प्रवहमान हुई। इन दोनों धाराओं ने भक्ति के दोनों पुलिनों को रसमय ही नहीं किया अपितु साहित्य साहित्य-भांडार की भी विशेष वृद्धि की।

दक्षिण भारत की अपेक्षाकृत उत्तर भारत में भक्ति अबाध रूपेण विकसित हुई।

राम भक्ति शाखा का विकास

उत्तर भारत में भक्ति धारा के प्रवाहकों में श्री रामानन्द प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं।

मध्य युग में सर्वप्रथम जन साधारण के मध्य राम भक्ति प्रचार का श्रेय उत्तर भारत में रामानन्द को है। पूर्व वैष्णव भक्तों ने विशेषतः स्वान्तः सुखाय रचनाएं कीं जब कि रामानन्द ने अपने गुरू रामानुजाचार्य के मत का अवलम्ब लेकर एक नवीन सुधार आन्दोलन द्वारा जन समूह में भक्ति भावना प्रतिष्ठित कर दी। आपने अपने गुरु की अपेक्षाकृत अपना उपास्य बैकुंठ निवासी विष्णु न मानकर लोक संग्रह कर्ता अवतारी राम माना। इस प्रकार आपने विष्णु के सभी रूपों में लोक कल्याणकारी रूप ही ग्रहण किया। आपने अपने गुरु से

---

१. ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान, भक्ति अंक, पृष्ठ १८९
२. गीताभाष्य, भक्ति अंक, पृष्ठ १८९

भी अधिक विशाल दृष्टिकोण अपनाया। वर्णभेद, जातिभेद, देशभेद, की संकीर्ण परिधियों से अपने भक्ति मार्ग को अछूता रक्खा जिसका प्रमाण उनके विभिन्न वर्ग के शिष्य हैं, कबीर, रैदास, सेन नाई, राजा पीपा। उनकी भक्ति सभी-वर्णों एवं वर्गों के लिये समान थी।

अनेक तत्वान्वेषी आलोचकों ने रामानन्द से भी अधिक भक्ति प्रसार का श्रेय इनके गुरु राघवानन्द को दिया है।

'उत्तर भारत के विष्णु-भक्ति के जनान्दोलन के वास्तव नेता तथा राम मंत्र के प्रचारक स्वामी राघवानन्द जी ही थे, परन्तु इनके पट्ट शिष्य रामानन्द स्वामी के विशाल व्यक्तित्व तथा कार्यावली ने इनके वास्तविक गौरव को इतना आवृत कर दिया कि इनका महत्व ही लुप्त हो गया।'[१]

श्री राघवानन्द की 'सिद्धान्त तन्मात्रा' नामक पुस्तिका में उनकी उपासना में योग एवं भक्ति का समन्वित रूप मिलता है। साथ ही उसमें वैष्णव धर्म से सम्बन्धित क्रियाओं का भी उल्लेख है।

राम-भक्ति के विकास में श्री रामानन्द का वही स्थान है जो कृष्ण-भक्ति विकास में वल्लभाचार्य का। तत्कालीन परिस्थिति एवं भगवद्भक्ति से अनुप्राणित इन आचार्यों ने भक्ति के उज्ज्वल भाव मणि निर्मित रत्न जटित सोपान निर्मित कर दिये, जिन पर आरूढ़ होकर जनता 'ब्रह्मानन्द सहोदर' के आनन्द के साथ साथ परमानन्द लाभ कर अपने मानव जीवन को कृतकृत्य कर जनता जनार्दन से पूर्ण तादात्म्य करने में पूर्ण सफल हो सकती थी।

श्री रामानन्द जी को 'मध्य युग की स्वाधीन चिन्ता का गुरु' कहा जाता है। आपने क्षीराब्धि नायक शेष शायी विष्णु के स्थान पर राम रूप की प्रतिष्ठा की, जो तत्कालीन परिस्थिति की परम आवश्यकता थी। अत: विदेशियों से अभिशप्त भारतीयों का हृदय लोकरंजक तथा उससे भी अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न मनोनीत रूप में लोक रक्षक का पावन दर्शन कर आनन्दातिरेक व अपना कल्याण व आनन्द देखकर शान्ति से नाच उठा। अभी तक राम भक्ति के ग्रन्थों की परम्परा की शृंखला की कड़ियाँ संस्कृत की व्याकरण बद्ध अमर वाणी में ही जुड़ती चली आ रही थीं परन्तु काल की कठोर आवश्यकता, जन साधारण की अनिवार्य मांग लोक भाषा में भक्ति का संदेश पाने की थी। इसके अतिरिक्त रूढ़िवादिता के पुराण पंथी पंडितों ने केवल द्विजातियों को ही भक्ति का विशेषाधिकारी माना था, जिससे उन्होंने भक्ति क्षेत्र को संकीर्ण परिधि में बाँधकर समाज के महान् अंश को उपेक्षित कर घृणित मान लिया था। इससे जन साधारण का लाभ भी न हो सकता था। निम्न श्रेणी के लोग भक्ति को सातवें स्वर्ग की वस्तु मान केवल दूर से ही 'टुकुर टुकुर' ताकने मात्र का ही संतोष कर लिया करते थे। इससे आगे उनकी न पहुँच ही थी और न वहाँ तक जाने की दुश्चेष्टा करने का दुस्साहस ही वे बिचारे कर सकते थे।

उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का बीड़ा रामानन्द जी ने उठाया और अपने जगतपावन भक्ति-सागर में निम्न वर्ग धारा को पूर्ण रूपेण आत्मसात् कर विकलांग समाज

---

१. रामावत् सम्प्रदाय, पृष्ठ २४४

को पूर्ण बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। जन साधारण की भाषा में जन-कल्याण-हित ग्रन्थ रचे जाने लगे। कोने कोने में, वर्ग वर्ग में भक्ति को अविरल निर्झरिणी प्रवाहित हो उठीं। भक्त गण 'समाऽहं सर्वभूतेषु' का वास्तविक रूप अब आचार्यों के रूप में देखने लगे। इस प्रकार यह भक्ति प्रवाह केवल ब्राह्मणों के राजपथ में ही नहीं, सभी भक्तों की गलियों में भी उमड़ पड़ा और उनके हृदय उसमें निमज्जित हो उठे।

श्रीराम भक्ति के विकास में रामानन्द जी के मान्य सिद्धान्तों का भी उल्लेख परमावश्यक है। आपअ प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' द्वारा हम उनके विशिष्टाद्वैत-सम्मत सिद्धान्तों का सम्यक् अनुशीलन कर सकते हैं।[1] आपने भक्ति तत्वों को शंकर के अद्वैतवाद से समन्वित करने का प्रयास किया। तत्कालीन प्रचलित गोरखपन्थ के योग को भी अपने वैष्णव धर्म में स्थान देकर ज्ञान, योग एवं भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित की जिसमें सभी वर्ग एवं रुचि के व्यक्ति समुचित आनन्द लाभ एवं कल्याण प्राप्ति कर सकते थे।

आचार्य जी ने अपने सिद्धान्त में 'तत्वत्रय' को सर्वथा मान्य मान कर उनकी समुचित व्याख्या भी की है। आपने भी चिद्चिद् विशिष्ट सभी रूपों में एक ही माना परन्तु नाम व पदार्थ भेद से उसके तीन प्रकार स्वीकृत किये।

(१) चित्—(चेतन—जीव

(२) अचित्—(अचेतन) · प्रकृति

(३) ईश्वर

ईश्वर चित् अचित् दोनों का कारण कार्य रूप है। परन्तु ईश्वर से भिन्न चित् या अचित् की सत्ता नहीं है। वह विशिष्ट रूप से दोनों दशाओं में एक ही है। यही विशिष्टाद्वैत का मूल तत्व है।

रामानन्द ने 'तत्वत्रय' के दार्शनिक तत्वों को अपना आधार मान कर श्रीराम चन्द्र को परम पुरुष का रूप प्रदान किया तथा उनकी आराधना बड़े ही मनोयोग एवं निष्ठा के साथ प्रचलित की। अतएव उनका सम्प्रदाय 'वैष्णव रामावत सम्प्रदाय' के नाम से अभिहित किया गया।

आपकी भक्ति के 'तत्वत्रय' के समान 'रहस्य-त्रय भी अवलोकनीय हैं। राम भक्ति के प्रमुख अंग राम मंत्र हैं, जो तीन रूपों में हैं।

(१) मूल मंत्र—'श्री रां रामाय नमः' (राम षडक्षर मंत्र)।

(२) द्वय मंत्र—'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः'।

(पंच विंशत्यक्षर मंत्र)

(३) चरम मंत्र—'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते,
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।'

विशिष्टाद्वैत मत के त्रितत्वों के समास उनकी त्रिमूर्ति का ध्यान भी तथैव है।

---

१. **उसमें राम तारक मंत्री की विस्तृत व्याख्या, तत्वोपदेश, अहिंसा का महत्व, प्रपत्ति, वैसणवों की दिनचर्या एवं षोडशोपचार पूजनादि की व्याख्या की गई हैं।**

श्रीराम लक्ष्मण सीता' की पूजा का विधान किया गया है, जिसमें राम ईश्वर के प्रतिरूप, लक्ष्मण जीवरूप तथा सीता प्रकृतिस्थानीया हैं। सतत् भगवदाराधना ही एकमात्र मुक्ति का साधन मानी गई।

'सा तैल धारा समनित्यसंस्मृति सन्तानरूपेशि परानुरक्तिः।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथां यमाद्यष्ट सुबोधकाङगा॥'[1]

इस अविच्छिन्न भक्ति धारा प्रवाह के मूल स्रोत सा तू बताए गए हैं।

(१) विवेक – (विवेचना सक्ति)।
(२) विमोक—(काम में अनाशक्ति)।
(३) अभ्यास—(राम का संतत शीलन)।
(४) क्रिगा—(पंच महायज्ञों का अनुष्ठान)।
(५) कल्याण—(सत्य, आर्जव, दान, दयादि)।
(५) अनवसाद—(सतत् सोत्साह)।
(७) अनुद्धर्ष—(साँसारिक सुखों की अपेक्षा आनन्दातिरेक)।

सभी साधनों एवं उपसाधनों का चरम लक्ष्य एवं प्राप्य लक्ष्य श्री भगवान् रामचन्द्र की प्राप्ति है। रामावत सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक श्री रामानन्द ने संसार के भरण पोषण कर्ता, अशेष-गुण-जलाधि, शरण्य एवं प्रभु राम की प्राप्ति को ही चरम लक्ष्य मानकर गुरू की सहायता से उस परम तत्व को उपलब्ध करना सुलभ समझा। इस प्रकार गुरू के प्रभाव से भक्त अपने कर्मों का न्यास कर बंधन मुक्त हो ऊर्ध्व पद को प्राप्त होता है और मृत्यु के पश्चात् वैकुण्ठ रूप साकेत धाम को प्राप्त होता है, वह श्री राम का कृपा पात्र बन सायुज्य लाभ करता है और वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

'सीमान्त सिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा परब्रह्म सुवीक्षितोऽनिशम्।
प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु ततः पुनः सः॥[2]

भक्ति के क्षेत्र में आपने एक अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न की और जनता को राम भक्ति का दृढ़ावलम्ब प्रदान किया। सामाजिक क्षेत्र में भी रामानुज द्वारा प्रतिपादित 'प्रतिपत्ति-मार्ग' के आधार पर श्री रामानन्द जी ने 'वैरागी' नामक उत्साही विरक्त दल का संगठन किया, जिसमें हिन्दुओं के निम्न वर्ग के व्यक्तियों को ही नहीं अपितु हठात् विधर्मी बनाये गये हिन्दुओं को भी 'संयोगी' नाम से अपने शिष्ट दल में संगठित किया।

परम्परा से प्राप्त संस्कृत आचार्यों की नियमबद्ध वैधों भक्ति सर्वसाधारण के लिये दुरुह एवं अलम्य थी अतः रामानन्द्र ने उसको प्रेमा-भक्ति का रूप प्रदान कर जन साधारण के लिये सुलभ बनाया। इस प्रकार नवधा भक्ति के साथ-साथ दशधा भक्ति का आपने प्रतिपादन किया, जिसमें नारद की ११ आसक्तियों एवं भाव प्रधान पाँच रसों की रस प्लावित सरिता उमड़ पड़ी।

१—वैष्णव माताब्ज भास्कर श्लोक ६५
२—वैष्णव माताब्ज भास्कर श्लोक १८७।

रामानन्द की शिष्य परम्परा में भक्ति

श्री रामानन्द की राम भक्ति आपके अनेक शिष्यों के रूप में पल्लवित एवं विकसित हुई। आपके प्रमुख शिष्य १२ माने गये हैं।

सेननाई, कबीर, पीपा जी, रैदास, धन्ना-भगत, अनंतानंद, सुरसुरानंद, नरहरियानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, भवानन्द तथा गालवानन्द। इनके अतिरिक्त कुछ लोग पद्मावती नामक शिष्या का नाम भी इस शिष्य सूची में रखते हैं।

इस शिष्य मंडली में ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों के उपासक थे। दोनों प्रकार की उपासना-विधियों का केन्द्रीकरण रामानन्द के शिष्य वर्ग में हुआ। दोनों का समन्वय भी परिलक्षित हुआ। दोनों वर्ग के उपासकों की भावना में ईश्वर भक्ति को प्राधान्य प्राप्त हुआ।

इसकी आलोचना करते समय श्री बलदेव उपाध्याय ने इसका समुचित अनुशीलन किया है।

'यह सच है कि रामानन्द जी खुले हुये विश्व के बीच भगवान् की कला की भावना करनेवाले विशुद्ध वैष्णव भक्ति मार्ग के अनुयायी थे और इसी में जनता का कल्याण मानने वाले आचार्य थे। परन्तु फिर भी यदि उन्होंने कहीं-कही निर्गुण ब्रह्म की चर्चा तथा योग साधना की प्रक्रिया का निर्देश किया है तो यह उक्त मार्ग से नितान्त विरुद्ध नहीं पड़ता। रामानन्द का भारतीय इतिहास में यही एक विलक्षण वैशिष्ट्य है।'[1]

निराकारोपासक भक्तों में भी भक्ति की भावना को विशेष महत्व प्राप्त हुआ, उसमें साकारता का आभास होने लगा यथा—

'निराकार भावना का रूप स्पष्टता पाकर कुछ कुछ साकार आभास देने लगता है। निराकार तभी तक शुद्ध रहता है जब तक उसमें उपासना का भाव अविच्छिन्न रूप से वर्त्तमान रहता है। जब उसमें भक्ति की कोमल भावना आ जाती है तो निराकार का भाव बहुत कुछ विकृत हो जाता है। उस भाव में व्यक्तित्व का आभास होने लगता है।'[2]

यद्यपि भक्ति भावना का विकास दोनों प्रकार के भक्तों में हुआ परन्तु राम भक्ति का रूप दोनों में भिन्न रूपों में है। निर्गुण भक्तों में 'राम' का अर्थ केवल दाशरथि राम से नहीं वरन् सर्वत्र रमनेवाले ब्रह्म से लिया गया तथा सब धर्मों की एकता व अखंड ब्रह्म का रूप माना। कबीर आदि निर्गुण शिष्यों ने स्वतन्त्र निर्गुण पंथ का अवलम्ब लिया तथा सगुण भक्त शिष्यों में अनन्तानन्द सर्वप्रधान माने गये हैं। आपके शिष्य कृष्णदास पयहारी का नाम 'वैरागी सम्प्रदाय' में विशेष उल्लेखनीय है। आपने रामानन्दी सम्प्रदाय की परम्परा को जयपुर में स्थापित कर वैष्णव-भक्ति आन्दोलन का विस्तार किया। आपने यह भक्ति विस्तार व प्रचार उस स्थान पर किया जहाँ पर नाथ पंथियों का प्रभाव

१—रामावत सम्प्रदाय, पृष्ठ २८४।

२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २८७।

था। अतः उनके शिष्यों में योग साधना का भी समावेश हुआ। आपके दो शिष्य प्रधान हुये।

(१) अग्रदास। (२) कील्हदास।

राम भक्त अग्रदास जी ने अपने विविध ग्रन्थों में (हितोपदेश, उपाख्यान बावनी कुण्डलिया रामायण और ध्यान मंजरी) नीति के विषय एवं राम लक्ष्मण का ध्या वर्णित किया है।

इसके अतिरिक्त कोल्हदास ने राम भक्ति के साथ साथ योगाभ्यास की ओर भी ध्यान दिया। आपके शिष्यों में वैरागियों की शाखा 'तपसी शाखा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

मध्ययुग में यद्यपि रामानन्द ने राम भक्ति को प्रतिष्ठित किया परन्तु कबीरादि ने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर रामनामाश्रय से 'संत मत' का प्रचार किया परन्तु उस राम भक्ति का विकास तुलसी द्वारा सम्यक् रूपेण हुआ।

यद्यपि तुलसी से पूर्व भी हिन्दी में राम चरित्र—लेखकों के नाम मिलते हैं जिनमें सर्वप्रथम 'भूपति' कवि कहे जाते हैं और उनकी पुस्तिका का नाम 'रामचरित-रामायण' कहा जाता है। तत्पश्चात् मुनिलाल की रीति के 'राम प्रकाश' आधार पर लिखित 'राम कथा' का उल्लेख मिलता है।

तुलसी में भक्ति

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठतम कलाकार एवं परम भागवत गोस्वामी तुलसीदास जी राम-भक्ति परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण शृंखला थे, जिन्होंने उस शृंखला को ही केवल बनाये नहीं रक्खा वरन् युग युगान्तर तक अपने 'रामचरित-मानस' को भक्ति का उज्ज्वल संबल व आधार स्तम्भ भी बना दिया।

आपके पूर्व के राम ग्रन्थ केवल पंडितों के पांडित्य-निरूपण ही रह गये थे। जनता उनका समुचित लाभ न उठा सकती थी। अतः फुटकर पद राम महिमा का सर्वांग रूप चित्रण करने में नितान्त अपूर्ण थे। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का निष्कर्षात्मक कथन पूर्ण रूपेण संगत है कि --

'हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि राम भक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्त-शिरोमणि द्वारा संगठित हुआ, जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ।'[१]

राम-भक्ति की श्रेष्ठता का आधार-ग्रन्थ रामचरित-मानस वस्तुतः सभी दृष्टियों में सर्वोत्तम है, जिसकी आलोचना अनेक आलोचकों[२] एवं तत्वान्वेषकों ने अनेक प्रकार से की है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र लिखते हैं—

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १२४।

२—'तुलसी की प्रतिभा और काव्य कला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरिन सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्ध न प्राप्त कर सकी।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, द्वारा डा० रामकुमार वर्मा।

तुलसी का कवित्व तुलसीमत के चरणों पर आप नतमस्तक हुआ जा रहा है। जिस मत की ऐसी महिमा है, उसकी असाधारणता के विषय में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा ही है। लोक-कल्याण-कारिणी हरि चर्चा ही को गोस्वामी जी ने काव्य का प्रकृत उद्देश्य माना है और आजीवन इसी साधना में रत रहकर उन्होंने अपने को यथार्थ ही सरस्वती का वरद पुत्र सिद्ध कर दिया है।'[1]

इस प्रकार भारतीय जनता के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी जी की भक्ति-रसाप्लावित वाणी वस्तुत: 'एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोक पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोक धर्म की अत्यन्त उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।'

तुलसी में भक्ति का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विशाल है। उन्होंने श्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ में 'विरति विवेक' का समन्वय कर व्यापकता प्रदान की, साथ ही उसे विरलों का मार्ग न मानकर सर्व सुलभ एवं सर्व ग्राह्य कर दिया। योग-मार्गी एवं कृष्ण-भक्ति शाखा में उपेक्षित लोक धर्म की आपने व्यापक समीक्षा की। तत्कालीन परिस्थिति की विषमताओं का सम्यक् विचार रखते हुए आपने भक्ति मार्ग का पूर्ण संयमित दृढ़ एवं समन्वित रूप प्रतिष्ठित किया। संक्षेप में राम-भक्ति का रूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यथार्थ रूपेण चित्रित किया है।

'गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है, सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं, योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का, जितना ध्यान के लिए चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।'[2]

तुलसी की राम-भक्ति की व्यापक समीक्षा अन्य अध्याय में विस्तृत रूपेण की जायगी। यहाँ तो इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि राम भक्ति की विकासोन्मुख परम्परा में गोस्वामी जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

(प्रस्तुत प्रबन्ध भक्ति रसायन मानस पर आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत करता है अतएव इस अध्याय में भी तुलसी की भक्ति का विस्तृत अध्ययन करना नितांत संगत है।)

तुलसी की उपासना का स्वरूप

तुलसीदास ने अपने मानस में स्थान स्थान पर भक्ति के तत्वों का व्यापक निरूपण भी किया है तथा अपने पात्र पात्राओं के चरित्र चित्रण में उसका व्यवहारात्मक रूप भी निदर्शित किया है। 'भक्ति' में तीन पक्ष प्रधान होते हैं :—

(१) भगवान् (२) भक्त (३) भक्ति

---

१. **तुलसी दर्शन**, पृष्ठ ३६६।

२. **हिन्दी साहित्य का इतिहास**, पृष्ठ १४०

आपने भक्ति को भाव प्रधान ही मानकर कहा है कि 'भावबस्य भगवान सुख-निधान करुणा-भवन'। स्वयं राम भक्ति के स्वरूप का तात्विक विवेचन करते हैं :—

'जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ।।'[1]

उक्त चौपाई का सारांश है कि भक्ति का प्रधान लक्षण है द्रवणशील भाव उत्पन्न करना।

तुलसी की भक्ति-परम्परा प्राप्त शास्त्रीय-पद्धति का प्रतिरूप नहीं है, अपितु उसमें पूर्व भक्ति के सम्प्रदायों के विविध रूपों का समन्वय है, जिसमें तुलसी की सहज मौलिकता भी जाज्वल्यमान हो रही है। भगवान् के प्रति भाव-समर्पण के कई रूप है, जिनमें से तुलसी सैद्धान्तिक रूप से तो यही कहते हैं कि 'तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावै' परन्तु व्यावहारिक रूप 'दास्य' का ही प्रधान है।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त'[2] का सिद्धान्त उनको सर्वमान्य है।

अनेक कथा प्रसंगों में तुलसी ने इस दास्य भावना को प्रतिष्ठित किया है। मुनि सुतीक्ष्ण भी यही कहते हैं :—

'अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ।।'[3]

निषाद भी राम के प्रति सर्वत्र 'नाथ' का ही सम्बोधन कर अपना दासत्व प्रगट करता है। उनके दास्य भाव से प्रणीत राम उसे भक्ति का अधिकारी मानकर उसे अपनी 'अमला भक्ति' प्रदान करते हैं :—

'विदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल बरु देइ ।।'[4]

काग भुसुण्डि के माध्यम से तुलसी इस दास्य भावना पर अपना सैद्धान्तिक निष्कर्ष भी देते हैं :—

'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त विचारि ।।'[5]

यह 'कैंकर्य भाव' आजीविकोपार्जन वाला भाव नहीं है। इसमें तन्मयतासक्ति का पूर्ण रूपेण समावेश है। इसमें तुलसी चातक,[6] मीन,[7] कामी पुरुष[8] तथा अविवेकी पुरुष[9] के उदाहरण देते हैं, जिनमें अनन्यता एवं पूर्णासक्ति ही परिलक्षित है।'

---

१. मा० ३। १५। २
२. मा० ४। ३
३. मा० ३। १०। २१
४. मा० २। १०२
५. मा० ७। ११९। क
६. 'चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े पेमु सब भाँति भलाई ।।' मा० २। २०४/४ ।।
७. 'जग जस भाजन चातक मीना।' (मा० २। २३३। ३)
८. 'लोभिय प्रिय जिमि दाम' (मा० ७। १३०)
९. 'जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि।' (मा० २। १४१। २)

तुलसी की भक्ति साधन नहीं अपितु साध्य स्वरूपा भी है।

'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं'।[1]

साधन-स्वरूपा भक्ति दो प्रकार की होती है :—

(१) वैधी (२) रागानुगा

रागानुगा भक्ति के विविध रूपों का वर्गीकरण मानस-तत्वान्वेषी श्री भैरवानन्द जी ने नितान्त उपयुक्त किया है :—

'**अविरल भक्ति**, यथा अबिरल भगति बिरति सतसंगा ।।

अविरल प्रेम भक्ति, यथा अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई ।।

अनूपा भक्ति, यथा पंथ कहत निज भगति अनूपा।

भगति तात अनुपम सुख मूला। राम भगति निरुपम निरुपाधी ।।

दृढ राम भक्ति, यथा राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ।।

परम भक्ति, यथा लान्हेसि परम भगति बर मांगी ।।

अनपायिनी भक्ति, यथा अपनायिनी भगति प्रभु दीन्ही ।।

निर्भरा भक्ति, यथा भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे।

भाव भक्ति, यथा भाव भगति आनंद अघाने ।।

अखंड भक्ति, यथा मति अकुंठ हरि भगति अखंडा ।।

विशुद्ध अविरल भक्ति, यथा अबिरल भक्ति बिसुद्ध तव।

सब सुख खानि भक्ति, यथा सब सुख खानि भगति तैं मांगी।

चिन्तामणि भक्ति, यथा राम भगति चिंतामनि सुन्दर।

फलरूपा भक्ति, यथा सब कर फल हरि भगति सुहाई।

संजीवनी भक्ति, यथा रघुपति भगति सजीवनि मूरी।

आदि अनेक भक्ति के विधानों का 'मानस' में यथास्थान निरूपण हुआ है।'[2]

भक्ति के अनेक साधनों का उल्लेख मानव में कई प्रकार से किया गया :—

(१) शबरी के प्रति राम द्वारा कथित नवधा भक्ति[3]

(२) वाल्मीकि द्वारा कथित भक्ति की १४ साधनाएं[4]

(३) भागवतोक्त नवधा भक्ति का प्रसंग[5]

उक्त त्रिविध रूपों में शबरी के प्रति कथित साधन इस प्रकार हैं :—

सत्संग, कथा-रति, मानरहित गुरु-भक्ति, कीर्तन, जप, सन्तवृत्ति, अनन्यता, सन्तोष, भगवदवलम्ब।

बाल्मीकि द्वारा वर्णित १४ निवास स्थानों के मिस १४ प्रकार की इन भक्ति साधनाओं का उल्लेख किया गया है :—

---

१. **मा० ७।११८।४**

२. **भक्ति अंक, पृष्ठ ४१७।**

३. **मा० ३।३४।८ से ३।३५।५ तक।**

४. **मा० २।१२७।३ से २।१३१ तक।**

५. **मा० ३।१५।८।**

श्रवण, दर्शन, भजन, सेवा, गुरु-भक्ति पूर्वक जप, निर्विकार भाव, अनन्य-शरणागति, कामिनी-कांचन में अनासक्ति, भगवान् को सर्वस्व मानना, परितृप्ति, विश्वास, ऐश्वर्य-त्याग, मुक्ति के लिये अलोलुप होना, स्वाभाविक अनुराग।

भागवतोक्त नवधा-भक्ति की चर्चा के प्रसंग में गोस्वामी जी ने मौलिकता का समावेश इस प्रकार किया है :—

'विप्रचरन-प्रेम', श्रुति-विहित कर्मों में निरत होना, उससे विराग की उत्पत्ति।

इसी प्रसंग में गोस्वामी जी प्रभु के प्रति भक्ति-भावना के सभी सम्बन्धों का भी उल्लेख करते हैं।

'गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहं जाने दृढ़ सेवा।'[1]

तुलसी के विविध भक्ति के साधनों का मूल है तुलसी का समन्वयवाद। तुलसी की भक्ति स्वतन्त्र[1] होते हुए भी ज्ञान-मार्ग एवं कर्म मार्ग समन्वित है। तुलसी ने सभी वेद वर्णित साधनाओं को भी अपने भक्ति मार्ग में समन्वितकिया है। उनकी भक्ति भी अन्य भक्ति नहीं है अपितु ज्ञान एवं वैराग्य से पूर्ण-रूपेण समन्वित है जैसा कि वे स्वयं कहते हैं—

'श्रुति-संमत हरि-भक्ति-पथ संजुत बिरति-बिवेक।'[3]
'बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति····।।'[4]

पूर्वोक्त प्रसंग में ज्ञान एवं वैराग्य भी भक्ति के ही प्रमुख साधन वर्णित हुये हैं या यों कहना असंगत न होगा कि ज्ञान और वैराग्य तुलसी की भक्ति का पूर्व अवस्था के प्रतिरूप है।

नारद के 'भक्ति सूत्र' में वर्णित ११ आसक्तियों का भी निदर्शन मानस में मिलता है।

'गोस्वामी जी ने सब प्रकार की आसक्तियों के भक्तों के दृष्टान्त उपस्थित किये हैं, यथा गुणमाहात्म्यासक्त-भक्तों में नारद, भुशुंडि एवं शिव, रूपासक्त भक्तों में मिथिला के नर-नारी, राजा जनक तथा दंडकारण्य के ऋषि, पूजासक्त भक्तों में भारत, स्मरणासक्त भक्ति की कोटि में प्रह्लाद, ध्रुव सनकादि, दास्यासक्त भक्तों में हनुमान् एवं लक्ष्मण, सख्या सक्त भक्तों में निषाद, सुग्रीव और विभीषण, कान्तासक्त भक्तों में जानकी, वात्सल्यासक्त भक्तों में मनु, शतरूपा, दशरथ तथा कौसल्यादि, आत्मनिवेदनासक्त भक्त की कोटि में विभीषण एवं हनुमान्, तन्मयतासक्त भक्तों में सुतीक्ष्ण, परम विरहासक्त भक्तों में महाराज दशरथ को समझना चाहिये।'[5]

तुलसी का उपास्य रूप

जिस प्रकार उक्त विवेचन में विविध साधन मार्गों में समन्वय किया गया है, उसी प्रकार भक्ति के साध्य रूप में भी तुलसी की समन्वयात्मिका प्रतिभा प्रकाशित हुई है।

१' मा० ३।१५।१०।
२—'भक्ति स्वतन्त्र सकल सुख खानी।' मा० ७।४४।५।
३—मा० ७।१००।ख।
४—मा० ७।१२०।ख।
५—तुलसीदास और उनका युग, द्वारा डा० राजपति दीक्षित, पृष्ठ १५४, १५५।

तुलसी के राम का स्वरूप अन्य अध्याय में पूर्ण रूपेण उल्लिखित किया ही गया है जिससे उनके भगवान् रूप की व्यापकता का स्पष्ट दिग्दर्शन हो जाता है। (इस स्थान पर तुलसी के भगवान् का विवेचन करना पुनरावृत्ति मात्र ही होगा)।

तुलसी के अनुसार भक्त या उपासक का स्वरूप

तुलसी के अनुसार भक्त और संत दोनों एक ही हैं। संतों के लक्षण ही भक्त के लक्षणों के रूप में अनेक स्थलों पर[1] विस्तार पूर्वक वर्णित हैं जिनका मूल है भक्त का निष्कपट रूप। भगवान् स्वयं कहते हैं—

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा'।।[2]।।

उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त भक्तों के वर्गीकरण भी आपने कई प्रकार से किये हैं—

(१) ज्ञानी भक्त[3]

(२) जोगी, साधक, आर्त, ज्ञानी[4]

तुलसी ने भक्त के विविध रूपों में 'शरणागति' या 'प्रपन्न-भाव' का विशेष महत्व वर्णित किया है। स्वयं भगवान् से भी यही कहलाया है—

'......मम पन सरनागत भय हारी'।।[5] इत्यादि

इतना ही नहीं भगवान् राम तो यहाँ तक कहते हैं—

'कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजऊँ नहिं ताहू'।।[6]

सर्वत्र तुलसी ने भक्त में दैन्य-भाव को प्रमुखता प्रदान की है।

'तुलसी की उपासना पद्धति वेद, पुराण तथा अन्यान्य सच्छास्त्रों में वर्णित सदाचार, शिष्टाचार और सूक्ष्मातिसूक्ष्म धर्म तत्वों को अपनाती हुई चलती है।'[7]

तुलसी ने भक्ति को केवल 'भाव' ही नहीं अपितु रस-रूप प्रदान किया हैं इसलिये आप कहते हैं—

१—(१) मा० ३। ४३ से ४६ दोहे तक।
(२) मा० ७। ३७ से ३८ दोहे तक।

२—मा० ५। ४३। ५।

३—'मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी।।
जनहि मोर बल निज बल ताही।............' मा० ३। ४२ ८, ९।

४—'नाम जीहं जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच वियोगी।।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।

५—जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहं जपि जानहिं तेऊ।।
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।।
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।
चहूँ चतुर कहुँ नाम आधारा। ग्यानी प्रभुहिं विशेषि पिआरा।।'
मा० १। २१। १-७ तक

६—मा० ५। ४२। ७।

७—मा० ५। ४३। १।

'सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुं किए मन मीन।।[१]'

भक्त भरत के प्रति भी भरद्वाज इसीलिये कहते हैं—

'राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।।[२]'

वस्तुत: तुलसी की भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक, उदार एवं सर्वग्राह्य है। भक्ति का महत्व एवं मूल्य निर्धारण कर तुलसी अपना निष्कर्ष भी देते हैं।

'विनिश्चतं वदामि ते न अन्यथा वचाँसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं-तरन्ति ते।।[३]'

तुलसी द्वारा वर्णित यह भगवत्कृपा-साध्य भक्ति वस्तुत: चिन्तामणि ही है जिसके प्रकाश से जीव आलोकमय होकर तेज पुंज बन जाता है और फिर केवल एक मात्र यही उसकी पुकार शेष रह जाती है कि—

'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करहुँ दिन राती।।[४]'

और सिद्धगण भी 'मुक्ति निरादर भगति लुभाने' होकर कृतकार्य हो जाते हैं।

तुलसी के पश्चात् राम शाखा का विकास

तुलसी के पश्चात् रामचरित-ग्रन्थों में केशव की राम चन्द्रिका' का नाम आता है परन्तु इसमें हृदय पक्ष का प्रवाह विशेष न होने के कारण भक्ति-सरिता प्रवाहित नहीं हुई है, क्योंकि इसमें आचार्य केशव का आचार्यत्व प्रधान हो गया है। डा० रामकुमार वर्मा ने उचित ही आलोचना की है। '

'राम चन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोक शिक्षा का कोई रूप ही. जैसा मानस में है।'[५]

राम-भक्त कवियों में अग्रदास का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। आपकी प्रसिद्धि का आधार-स्तम्भ 'भक्त-माल' है, जिसमें भगवान् से अधिक भागवतों का परिचय विशेष कराया गया है। यद्यपि इनमें भक्ति की भावना का पूर्ण समावेश है परन्तु इनमें इतिवृत्तात्मकता का समावेश अधिक है। आप स्वयं परम रामभक्त थे, तुलसी के समान ही राम के प्रति व्रज भाषा में अपनी प्रबल भावनाओं का अर्पण किया।

प्राणचन्द, हृदयराम और लालदास ने भी रामचरित पर रचनाएँ लिखीं, जो क्रमश: इस प्रकार हैं :—

रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक, अवध विलास।
परन्तु इन ग्रंथों में भी राम भक्ति का अभाव है।

१—तुलसीदास और उनका युग, द्वारा डा० राजपति दीक्षित, पृष्ठ १५८।
२—मा० १। २२।
३—मा० २। २०८।
४—मा० ७। १२२। ग, श्लोक।
५—मा० ४। ६। २१।
६—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

गोस्वामी जी के पश्चात् रामभक्ति-धारा में क्षीणता आने लगी। इस कुंठित प्रवाह का प्रमुख कारण साम्प्रदायिकता का प्रवेश था। राम काव्य में प्रगतिशीलता का अभाव होने लगा था। भक्ति का अजस्र एवं निर्मल प्रवाह ज्यों ज्यों क्षीण होने लगता है, साम्प्रदायिकता को अवकाश मिलने लगता है और उसमें बाह्य आचरणों एवं आडम्बरों के प्रति प्रवृत्ति अधिक होने लगती है। राम भक्ति धारा में भी यही संकीर्ण वृत्ति आने लगी।

कृष्ण-भक्ति शाखा के समान रामोपासना में भी 'माधुर्य भाव' की उपासना का प्रारम्भ हुआ। सखी सम्प्रदाय का संगठन होने लगा, जिसमें श्रृंगार भावना का समावेश मुख्यत: हुआ। राम सीता की श्रृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन और भक्तों का सीता के साथ सपत्नी भाव इसका प्रधान लक्षण बना। इसका प्रमुख रूप हमें रामचरण दास की 'स्वसुखी शाखा' में मिलता है, जिसमें पति पत्नी भाव की उपासना की गई।

इस श्रृंगारी भावना में जीवाराम ने 'सखी भाव का' रूप परिवर्तित किया, जिसका नाम 'तत्सुखी शाखा' रक्खा।

इसी प्रकार रसिक-पंथ का प्रचार राम भक्ति शाखा के अन्तर्गत होने लगा और वृन्दावन लीलाओं के स्थान पर चित्रकूट की निकुञ्ज-लीलाओं के विवरण होने लगे। पतित पावनी राम-भक्ति की सुरसरि-धारा में रहस्य भावों के आवरण में श्रृंगार की अश्लील भावनाओं का समावेश होने लगा और उसने भक्ति के विकास में विस्तृत रूप धारण कर लिया।

इस रसिक पंथ के आचार्य 'कृपा निवास' कहे जाते हैं और 'कृपानिवास-पदावली' उनका प्रमुख ग्रन्थ कहा जाता है।

तत्पश्चात् सेनापति में रीति-कालीन प्रवृत्ति के बीज के साथ साथ राम की भक्ति भी परिलक्षित होती है। आप स्मार्त वैष्णव थे। आपके राम भक्ति युक्त पद्यों में भले ही मानस की गम्भीरता एवं विनय की दैन्य-प्रधान निश्छल भावना न मिले परन्तु इनमें भी भक्त की तन्मयता और एकनिष्ठता की भावना भी मिलती है। भक्त वत्सल 'राम-रूप आपको इष्ट था। उनका वीर रूप में ओज गुण का विशेष चित्रण आपने ही किया है। रसायन' में आपकी दैन्य-भावना का चित्र मिलता है। राम की शरण को ही आपने कल्याणप्रद लक्ष्य माना है।

भिखारीदास जी ने लगभग १० ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें अधिकांश रीति ग्रंथ हैं आपके 'रघुनाथ नाटक' में राम की भक्ति का रूप श्रृंगारिक भावना से समन्वित मिलता हैं।

रीवाँ महाराज विश्वनाथ सिंह ने अनेक राम-भक्ति ग्रन्थ लिखे हैं। आप सगुण रामोपासक थे। आपके प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

आनन्द-रघुनन्दन, गीता-रघुनन्दन-शतिका, रामायण, गीता-रघुनन्दन, प्रामाणिक, विनय पत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी, आनन्द रामायण तथा संगीत रघुनन्दन।

आपकी ही भाँति रीवाँ महाराज श्री रघुराज सिंह के राज्य दरबार में राम-भक्ति का प्रचार सर्वाधिक हुआ। आपने भी स्वयं कई राम ग्रन्थ लिखे, जिनमें से प्रमुख ग्रन्थ ये

हैं—राम-स्वयम्बर, रुक्मिणी-परिणय, आनन्दाम्बुनिधि, रामाष्टयाम, रघुराज-विलास। आपकी भक्ति भावना में सखी सम्प्रदाय का प्रभाव भी परिलक्षित होता हैं।

१८ वीं शताब्दी के अन्त में अवधी में जानकी रसिक शरण ने राम चरित्र माधुर्य भाव की उपासना के साथ गाया है। 'अवधी सागर' में शृंगारी भावों का प्राधान्य है।

आपकी ही भाँति जनकराजकिशोरी शरण ने भी शृंगारिक भावना को ही राम-भक्ति में स्थान दिया। आपके द्वारा विरचित ग्रन्थों के नाम जानकीशरणाभरण, राम-रस तरंगिणी, रघुबरकरुणाभरण तथा सीताराम सिद्धान्तमुक्तावली हैं।

१९वीं शताब्दी में भी यही परम्परा विकसित होती रही। नवलसिंह का 'रामचन्द्र विलास' तथा प्रताप सिंह का 'जुगल नखसिख' इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार राम भक्ति में शृंगारिक भावना का विकास होता रहा।

इस विवेचन से यह प्रत्यक्ष हो गया कि यद्यपि तुलसी के पश्चात् भी राम-भक्ति की परम्परा विकसित होती रही परन्तु आधुनिक काल तक इसमें कोई महत्वपूर्ण विकास न हो सका और न प्रतिभाशाली कवि ही। उसका सर्वप्रमुख कारण तथा भाव विस्तार का अभाव एवं वैयक्तिक अनुभूति का ह्रास हिन्दी साहित्य के 'आधुनिक काल' में अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ राम भक्ति का विकास महत्वपूर्ण हुआ। शृंगारिक परम्परा का अन्त हो गया।

द्विवेदी युग में राम का आदर्श मानव रूप चित्रित किया गया। इस निरूपण में बुद्धिवाद की प्रेरणा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर कवियों ने राम को ईश्वराव-तार के साथ साथ पुरुषोत्तम रूप चित्रित कर 'वीर-पूजा' की प्रवृत्ति विशेष परिलक्षित की है, जिसमें पूर्व प्रयुक्त अश्लीलता का नितान्त अभाव है।

'नवीन कवि' ने 'सुधासागर' नामक ग्रन्थ में राम समाज का शिष्ट एवं संयत वर्णन किया है। भारतेन्दु जी के पिता गिरिधरदास ने राम कथामृत, वाल्मीकि रामायण (अनुवाद), अद्भुत रामायण, श्रीरामस्तोत्र, श्रीरामाष्टक आदि द्वारा अपने प्रबल शुद्ध भक्ति-भावना का दिग्दर्शन किया है।

राम-भक्ति का पुनरुत्थान द्विवेदी युग की विशेषता है। राम भक्त कवियों ने राम में विश्वव्यापी रूप पर विशेष ध्यान रक्खा है। विश्वव्यापित्व, विश्व-बंधुत्व की भावना उनके राम की निजी विशेषता है। गुप्त जी की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ इस भावना के विकास को स्पष्टतः परिलक्षित करती हैं—

'राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुये नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे॥'

इस प्रकार वाल्मीकि ने राम को केवल मानवों में श्रेष्ठ माना, गोस्वामी जी ने उसमें पूर्ण ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा की, परन्तु गुप्त जी के राम परब्रह्म रूप होते हुये भी पूर्ण मानव भी हैं, जैसा वे स्वयं कहते हैं।

'राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र।
पर न हमसे भिन्न हैं साकेत का गृह चित्र ।।'

इसमें लौकिक भावना का अधिक समावेश हुआ। साकेत में वे पूर्ण आदर्श समाज सेवक रूप में चित्रित हुये हैं। जैसा कि स्वयं राम से कहलाया है—

'संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।'

मैथिलीशरण गुप्त की ही भाँति अयोध्या सिंह उपाध्याय जी ने कृष्ण की भाँति राम को भी महान् मानव माना है। आपकी राम के प्रति भावना का चित्र स्वयं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—

'महाराज रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम लोकोत्तर चरित्र और आदर्श नरेन्द्र अथ च महीपाल हैं, श्रीमती जनकनन्दिनी सती शिरोमणि और लोक-पूज्या आदर्श बाला हैं। इनका आदर्श-आर्य संस्कृति का सर्वस्व है, मानवता कीमहान् विभूति है और है स्वर्गीय संपत्ति सम्पन्न।'[१]

गुप्त जी तथा हरिऔध की ही भाँति राम-भक्ति के अन्य भी उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। श्री रामचरित उपाध्याय का रामचरित-चिन्तामणि, जोतिसी जी का राम-चन्द्रोदय, बलदेव प्रसाद मिश्र का का कौशल-किशोर, तथा साकेत-सन्त आदि।

पं० रामचरित उपाध्याय संस्कृत के आचार्य थे। देश-भक्त होने के कारण आपकी रामसंवाहिनी कविता 'रामचरित-चिन्तामणि' में भी इससे पूर्णतया प्रभावित है परन्तु उपदेशात्मकता के आधिक्य से कवित्व का अभाव है। परन्तु फिर भी शरणागत धर्म एवं भक्ति-भावना का समुचित समावेश है यथा—

'शरण में गिरिये रघुनाथ के, निर्बल के बल केवल राम हैं।'

आचार्य जोतिसी जी की राम-चन्द्रोदय ब्रज भाषा में है। आपका काव्य भी केशव की भांति कला पक्ष की ओर विशेष उन्मुख है और आचार्यत्व की छाप लिये हुए क्लिष्ट एवं रीतिकालीन प्रवृत्तियों से समन्वित है अतः इसकी गणना राम चन्द्रिका के समान करना अनुपयुक्त न होगा।

बलदेव प्रसाद मिश्र की रचना कौशल-किशोर एक महाकाव्य हैं, जिसमें समी महा-काव्य के लक्षण विद्यमान हैं।

इनके अतिरिक्त रहस्यवादी कवियों में निराला जी का भी अपना विशिष्ट स्थान है। वे अद्वैतवाद के सिद्धान्तों के परिपोषक हैं पर स्नेह धारा में भक्ति के तरल श्रोत में आनन्दपूर्ण अवगाहन करना उनका परम ध्येय है, जिसकी पूर्ति अद्वैत भावना में नितान्त असम्भव है। उनका लक्ष्य भक्ति है। यथा

'बहता हूँ माता के चरणामृत सागर में,
मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रहे काफी है।'

---

१. वैदेही-वनवास भूमिका, पृष्ठ ९।

भगवान की असीम करुणा की बल पर उन्हें अटूट श्रद्धा एवं अडिग आस्था है कि
'एक दिन थम जायगा रोदन, तुम्हारे प्रेम-अंचल में।'

छायावादी कवियों में 'राम की शक्ति-पूजा' नामक ग्रन्थ लिखकर आपने ही राम भक्ति पर लिखा है जो कि उल्लेखनीय काव्य है। इसके साथ ही राम-भक्ति के अग्रदूत महात्मा तुलसीदास जी का भी आपने सजीव चित्रण किया है।

इन सब कवियों के अतिरिक्त हरदयालु सिंह का 'रावण' नामक महाकाव्य तथा सत्यनारायण सिंह का उत्तर रामचरित का अनुवाद भी राम-काव्य की परम्परा को अक्षुण्ण रखने में पूर्ण सहायक हैं।

इस भक्ति के विकास का परम्परागत इतिहास हमें अटूट आशा, असीम श्रद्धा और जीवन सम्बल प्रदान करता हुआ भविष्य के राम काव्य की अक्षुण्ण परम्परा को भी पूर्ण आशा करता है, जो कि वस्तुतः श्लाघ्य है।

उत्तर भारत के अन्य सम्प्रदाय

निम्बार्काचार्य में भक्ति

उत्तर भारत के समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्काचार्य का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। इनके मत की परम्परा प्राचीनतम मानी जाती है। इस मत के सर्वप्रथम उपदेशक हंसावतार भगवान् कहे जाते हैं, जिन्होंने सनत्कुमार को इस मत का उपदेश दिया। सनत्कुमार से नारद ने ग्रहण किया। नारद से निम्बार्काचार्य को प्राप्त हुआ। इसीलिए इसे हंस, सनकादि एवं देवर्षि सम्प्रदाय के नाम से भी अभिहित करते हैं। निम्बार्काचार्य ने 'वेदान्त भाष्य' लिखा, जिसमें सभी मतों का मंडन करते हुए द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इनके सिद्धान्त के अनुसार जीव को अवस्थान्तर की दृष्टि से ब्रह्म का भिन्न एवं अभिन्न अंग दोनों ही रूप माना है। संसार दशा में नानात्मक जीव रूप ब्रह्म से भिन्न है परन्तु मुक्ति दशा में अभिन्न हैं। जीव अपने ज्ञान एवं भोग के लिये ईश्वराधीन रहता है। इस प्रकार जीवन नियम्य है, ईश्वर नियन्ता। वह प्रत्येक दशा में प्रभु पर आश्रित रहता है। भगवान् की कृपा से ही वह अंश रूप जीव सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है। जीव की दो दशाएँ वर्णित की गई हैं:—

(१) मुमुक्षु। (२) बुभुक्षु।

प्रथम मुक्ति का अभिलाषी है तथा द्वितीय विषयानन्दी होता है।

इस मत के अनुसार ब्रह्म, कल्पना सगुण की गई है जिसको परब्रह्म, नारायण, भगवान् कृष्ण एवं पुरुषोत्तमादि नामों से पुकारा गया है।

इस मत में भक्ति के साधनों में प्रपत्ति एवं भगवदनुग्रह को विशेष महत्व दिया गया है। इस मत में 'नान्या गतिः कृष्ण पदारविन्दात्' कहा गया है। भगवान् कृष्ण की चरण सेवा को भक्ति का प्रमुख साधन माना है। श्री बलदेव उपाध्याय इस मत की भक्ति की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार करते हैं।

'कृष्ण की प्राप्ति का साधन है भक्ति, जो पाँच भावों से पूर्ण कही जाती है— शांत दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल। उज्ज्वल रस के भक्त हैं गोपी तथा राधा। वल्लभ' तथा चैतन्य मत के अनुसार इस मत में उज्ज्वल अथवा मधुर भाव को उत्कृष्टता दी गई है। निंबार्क ने युगल उपासना के साथ भगवान् की माधुर्य तथा प्रेम-शक्ति रूपा राधा की उपासना पर जोर दिया था, क्योंकि राधा में ही भक्तों की सफल कामनाओं के पूर्ण करने की शक्ति मानते हैं।'[1]

इस मत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण उपास्य देव हैं, परन्तु उनकी शक्ति-समन्वित उपासना विशेष फलदायिनी कही गई है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय प्रेम लक्षणा अनुरागात्मिका पराभक्ति को ही प्रमुख साधना मानता है।

इस सम्प्रदाय की ही एक शाखा रूप-वृन्दावन का 'सखी सम्प्रदाय' है, जिसके प्रवर्तक स्वामी 'हरिदास' कहे जाते हैं।

वल्लभाचार्य में भक्ति

वृन्दावन में वल्लभाचार्य ने कृष्ण-भक्ति-रस-धार प्रवाहित कर दी। भक्ति के विकास में वल्लभाचार्य की अपार देन है। वल्लभाचार्य का भक्ति-सम्प्रदाय विष्णु स्वामी के रूद्र-सम्प्रदाय से सम्बन्धित कहा जाता है। इस सम्प्रदाय में त्रिलोचन, नामदेव और ज्ञान-देवादि प्रमुख सन्त हुये। वल्लभाचार्य ने भी उक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन इन ग्रन्थों द्वारा किया—अणु, भाष्य, पूर्व, मीमांसा, भाष्य, तत्वदीप-निबन्ध, सुबोधिनी, षोडश-ग्रन्थ।

उनके द्वारा प्रवर्त्तित मत पुष्टिमार्ग कहलाया।

'तात्विक दृष्टि से इस सम्प्रदाय को शुद्धाद्वैत सिद्धान्तवादी, ब्रह्मवादी तथा अविकृत परिणामवादी कहते हैं और साधन की दृष्टि से यह मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने' पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा-भेद नामक ग्रन्थ में तीन मार्ग बताये हैं।

(१) मर्यादा मार्ग।
(२) प्रवाह मार्ग।
(३) पुष्टि मार्ग।

'वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार श्री कृष्ण ही पूर्णानन्दस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं.......श्री कृष्ण के अवतार रूप में दो रूप वल्लभ सम्प्रदाय में मान्य हैं, एक लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम और दूसरा लोकवेदातीत पुरुषोत्तम।'[2]

---

१. (१) 'अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्॥'

दशश्लोकी, श्लोक ५।

(२) भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ ३४३, ३४४।

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, द्वारा डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ३९३, ४०३, ४०४।

भक्ति के विकास में वल्लभ सम्प्रदाय का साधन पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'पुष्टि' का अर्थ ही भगवत्कृपा, क्योंकि।

'ईश्वरानुग्रहस्वरूपा-हि पुष्टि :'

इस मार्ग के अन्तर्गत भक्ति के दो प्रमुख भेद हैं :—

(१) वैधी।

(२) रागानुगा।

इसी को अन्य शब्दों में मर्यादा-भक्ति एवं पुष्टि-भक्ति भी कहते हैं। विविध साधनों पर आश्रित भक्ति वैधी या मर्यादा-भक्ति है। साधन-निरपेक्ष भगवत्कृपा पर अवलम्बित भक्ति प्रेम-प्रधान, पुष्टि-भक्ति या रागात्मिका कहलाती है। परन्तु भगवदनुग्रह प्राप्त करने के लिये भक्त को, शुद्ध प्रेम सहित अनन्य सेवा अनिवार्य होती है। सेवा तीन प्रकार की कही गई है। तनजा, वित्तजा एवं मानसी।

उपर्युक्त भक्ति का विभाजन भागवत् की ही भांति चार प्रकार से किया गया है। भागवत् की भाँति ही इसमें भी त्रिगुणा भक्ति के विवेचन के अनन्तर निर्गुणा भक्ति को विशेष स्थान दिया है, जिसको सुधा-सार भक्ति कहा गया है। वल्लभाचार्य के अनुसार प्रभु को अनेक भावों से भजन करना विहित, है परन्तु प्रेम भाव को स्थायित्व प्रदान किया है, जिनमें चार रूपों को प्रमुखता प्रदान की गई है वात्सल्य, सख्य, दास्य, कान्त अथवा मधुर भाव।

नारद-भक्ति-सूत्र द्वारा वर्णित समस्त आसक्तियों का भी वल्लभ सम्प्रदाय में उल्लेख किया गया है, जो सभी प्रेमलक्षणा भक्ति के ही विभिन्न रूप हैं।

'श्री वल्लभाचार्य, श्री विट्ठलनाथ, श्री गोकुलनाथ तथा श्री हरिराय जी, इन चार आचार्यों के ग्रन्थों के तथा अष्टछाप भक्तों की रचनाओं के देखने से ज्ञात होता है कि यद्यपि भक्ति सिद्धान्त के आकलन में इन आचार्य और भक्तों ने ब्रह्मसूत्र श्रीमद्भागवत और गीता का तो मुख्य आधार लिया ही है, महाभारत के अन्तर्गत 'नारायणीयोपाख्यान,' 'शांडिल्य-भक्ति-सूत्र,' 'नारद-पाञ्चरात्र' तथा 'नारद-भक्ति-सूत्र' के वचनों का भी इनके कथनों में तथा भक्ति के अभ्यास में प्रभाव है। इस प्रकार अष्टछाप की रचना में रागानुगा भक्ति का जो स्वरूप हमें मिलता है, उसमें सभी व्यापक भाव (दास्य, वात्सल्य, सख्य, कान्तानों) तथा 'नारद-भक्ति-सूत्र' में बताई हुई ग्यारह आसक्तियों के रूप मिलते हैं।'[1]

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टछाप एवं वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख वात्सल्य एवं शृंगार रसों में भक्ति की अबाध धारा प्रवाहित हुई।

हितहरिवंश में भक्ति

हितहरिवंश द्वारा प्रवर्तित राधावल्लभी सम्प्रदाय एक स्वतन्त्र मत है, जिसने समस्त ब्रज मण्डल को रससिक्त कर दिया। इसमें भी प्रेमा-भक्ति का उपदेश दिया

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, द्वारा डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ५२९।

गया परन्तु इसमें 'राधावल्लभ' को उपास्य माना गया। हितहरिवंश की दो रचनाएँ प्रधान हैं राधा-सुधानिधि एवं हित-चौरासी। दोनों में ही भावुकतामयी भक्ति का प्रदर्शन है।

भक्ति के विकास में अन्य पूर्व सम्प्रदायों की अपेक्षाकृत इसमें कुछ निजी विशिष्टताएँ हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में जिस प्रकार वात्सल्य भाव को प्रधानता दी गई है, निम्बार्क मत किशोर रूप में स्वकीया, परकीया भाव की उपासना को प्रधान माना गया है, परन्तु हरिवंश के प्रेम-पथ में 'प्रेम विरहा' को अपनी भक्ति सारिणी का प्रमुख तत्व माना गया है। इसमें राधा को भी अपनी आराध्या-शक्ति माना है।

'हरिवंशी सम्प्रदाय वस्तुतः रस सम्प्रदाय है, जिसमें प्रेमामृत मूर्ति श्री राधा तथा लाल जी के नित्य मिलन के अवसर पर साधन तन्मय भाव से उनकी सुचारु सेवा में लगा रहता है।'[१]

पूर्वी सम्प्रदाय में भक्ति

जिस प्रकार उत्तर एवं दक्षिण भारत में अजस्र धारा प्रवाहित हुई, तथैव पूर्व भारत में भी वैष्णव-सम्प्रदाय की रस-परिप्लावित सरिता भी तरंगित हो उठी। चैतन्य-महाप्रभु ने इस भक्ति-क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। आपके पूर्व भी इस क्षेत्र में सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय का अस्तित्व था, जो कि वज्रयान के तांत्रिक रूप से प्रभावित था। 'सहजिया वैष्णव भक्त भी विशुद्ध 'प्रेमा-भक्ति' को ही प्रश्रय देते थे। चैतन्य महाप्रभु से बंगाल एवं उड़ीसा ही नहीं अपितु समस्त उत्तर आपके उदारता मधुर भाव की धार से परिप्लुत हो उठा। आपने नाम-संकीर्तन को भक्ति का प्रधान साधन और तन्मयतासक्ति को विशेष आसक्ति माना। इनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय गौडीय सम्प्रदाय भी कहलाया। चैतन्य की शिष्य-परम्परा में 'रूप-गोस्वामी' का 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' भक्ति का महनीय ग्रन्थ है। इसमें 'रति' के विभिन्न रूपों का विवेचन किया है, जिसमें माधुर्य भक्ति सर्वोच्च बताई गई है। इस प्रकार चैतन्य-सम्प्रदाय में रस साधना ही प्रमुख भक्ति का स्वरूप है।

इस चैतन्य सम्प्रदाय का प्रभाव उत्कल देश पर भी पड़ा। 'शाक्त सम्प्रदाय' का दृढ़ गढ़ रूप उत्कल प्रदेश भी कृष्ण-भक्ति-सरिता में तरंगित हो रस-प्लावित हो उठा। इस प्रदेश में वैष्णव-भक्ति-धारा को प्रवाहित करने का श्रेय 'पंच शिखा' (बलरामदास, अनन्त दास, यशोवन्त दास, जगन्नाथ दास, अच्युतानन्द दास) को है।

महाराष्ट्र में भक्ति

महाराष्ट्र प्रदेश सदैव से भक्ति का प्रधान-केन्द्र रहा है। इस स्थल के भागवत धर्म का नाम 'बारकरी सम्प्रदाय' हुआ। इस मत के उपास्य देव बिट्ठल देव हैं। भगवान् कृष्ण के रूप को विट्ठल नाम से पुकारा गया है, जो कि विष्णु का ही प्रतिबिम्ब रूप है। इस पंथ को 'मालकरी पंथ' अथवा 'भागवत-पंथ भी कहा गया। विट्ठल की उपासना का यह पंथ

---

१. भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ ४४२।

१३वीं शती से माना जाता है परन्तु इसे पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित ज्ञानदेव ने किया। उनके द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद में 'कृष्ण-भक्ति' का भी योग दर्शाया गया। ज्ञानदेव ने भक्ति को सर्वोत्तम सोपान पर प्रतिष्ठित कर दिया, जिसका निदर्शन 'ज्ञानेश्वरी' में किया गया है। इसी पंथ में नामदेव, एकनाथ, तुकारामादि प्रसिद्ध सन्त हुये। इन सन्तों का युग महाराष्ट्र देश में भक्ति का स्वर्ण युग माना जाता है, क्योंकि ज्ञानेश्वरी द्वारा इस प्रदेश में भक्ति की नींव सुदृढ़ हुई, नामदेव ने भजनों द्वारा गुण-गान गाकर भक्ति का विकास किया, एकनाथ ने भागवत धर्म को ही ऊँचा उठाया तथा तुकाराम ने अपने 'अभंगों' द्वारा इस पथ को लोकप्रिय बनाया। ये अभंग मराठी भक्ति साहित्य के उज्जवल मणि हैं। इस पंथ के प्रमुख चार सम्प्रदाय हुये।

चैतन्य, स्वरूप, आनन्द एवं प्रकाश।

इस बारकरी सम्प्रदाय में साकारोपासना को साधन माना, परन्तु निर्गुणा के हरि के नाम को प्रवरता दो, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय हुआ विट्ठल नाम, कंठ में तुलसी माला, एकादशी व्रत ये तीनों ही इस मत के प्रमुख सिद्धान्त हैं। इस मत में कृष्ण के सौन्दर्य रूप को ही आराध्य नहीं माना अपितु, उनके लोक संग्रहत्व रूप के प्रति भी श्रद्धा अर्पित की।

इस भक्ति के क्षेत्र में रामदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने दासबोध के चतुर्थ दशक में 'नवविधा भक्ति' का उल्लेख भागवतोक्त 'नवधा भक्ति' के अनुसार ही किया है। रामदास ने 'राम को अपना 'उपास्य' माना है। आपके भक्ति-मार्ग की यह विशेषता है कि आपने राम भक्ति में ज्ञान एवं कर्म का भी संयोग किया है। इनका मत 'रामदासी सम्प्रदाय' कहलाया।

रामदास जी के रामदासी सम्प्रदाय की भाँति 'कर्णाटक' प्रदेश में 'हरिदासी' सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन हुआ, जिसमें विट्ठल देव को अपना आराध्य माना।

ईसा की १६ वीं शताब्दी में 'गुजरात प्रदेश' में भक्ति का उत्तरोत्तर विकास हुआ। इस क्षेत्र में भक्ति के विकास का श्रेय नरसिंह मेहता को है।

आपके पद कृष्ण एवं गोपी विरह मिलन से विशेषतः सम्बन्धित हैं। नरसी भक्त ने अपनी भक्तिमय साहित्य-सृजन-शक्ति द्वारा भक्ति रस का अपूर्व प्रवाह प्रवाहित किया। इसी प्रकार मीरा की मधुर-भाव की तरंगिणी ने तो भक्ति क्षेत्र में अनवरत अमरता प्राप्त की।

भारत में भक्ति रस के विकास पर विहंगम दृष्टि डालने से हृदय भाव-गद्‌गद् होकर श्रद्धया अवनत हो 'भगति-मणि' के जाज्वल्यपान चतुर्दिक प्रकाश से चमत्कृत होकर भूरि-भूरि सराहना करने में तत्पर होकर यह कह उठता है कि

'राम भगति चिन्तामणि सुंदर'

———

द्वितीय परिच्छेद

रामायण एवं मानस के प्रमुख आधार ग्रंथ

रामायण स्वतः आदि काव्य है अतः उसके आधार ग्रन्थों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। रामायण से प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। वेद में राम कथा का अभाव है। इसकी पुष्टि डा० वुल्के के निम्नांकित निष्कर्ष द्वारा होती है।

'वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा राम कथा सम्बन्धी गाथाएं प्रसिद्ध हो चुकी थीं। इसकी समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कोई भी सूचना नहीं दी जाती।[1]

इस प्रकार वाल्मीकिकृत रामायण राम कथा की प्राचीनतम रचना प्रमाणित होती है।

श्री बलदेव उपाध्याय के निम्नांकित कथन से भी रामायण की प्राचीनता ही प्रमाणित होती है।

'प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से प्रसूत कतिपय ऐसे मर्म-स्पर्शी काव्य हुआ करते हैं जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेंकर अवान्तर कालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते है। ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभाव संसम्पन्न होने के हेतु 'उप-जीव्य काव्य' के नाम से पुकार सकते हैं।''''आदि कवि की वाणी पुण्य सलिला भागीरथी हेतु हैं, जिसमें अवगाहन कर पाठक तथा कवि अपने आपको पवित्र ही नहीं जानते, प्रत्युत रसमयी काव्यशैली के हृदयावर्जक स्वरूप के समझने में भी कृतकार्य होते हैं। काव्य तथा नाटकों को विषय निर्देश देने में रामायण एक अक्षुण्ण श्रोत है।'[2]

डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने भारतीय साहित्य और संस्कृति पर रामायण का प्रभाव प्रदर्शित करते हुए लिखा है।

भारतीय साहित्य के आधे से अधिक हिस्से को वाल्मीकि रामायण ने प्रेरित किया है। संस्कृत साहित्य तो रामायण का चिर ऋणी है। मुरारि के शब्दों में 'समस्त कवि रूपी

---

१. वैदिक साहित्य और राम कथा, पृष्ठ २९।
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५।

व्यापारियों के लिए वाल्मीकि ने एक सामूहिक पूंजी प्रस्तुत कर दी है, 'अहो सकल कविसार्थ-साधारणी खल्विदं वाल्मीकीया सुभाषित नीवी।'[१]

इस कथन द्वारा भी रामायण स्वयं समस्त साहित्य का आधार-ग्रन्थ ही सिद्ध होता है, आधेय नहीं अतएव केवल मानस के आधार-ग्रन्थों की ओर ही अवलोकन करना उपयुक्त होगा।

मानस के आधार-ग्रन्थ

स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने विशाल ग्रन्थ रामचरितमानस के आधार स्तम्भों की ओर संकेत करते हुए मानस की सारग्राहिणी शक्ति के स्वरूप का परिचय दिया है।

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'[२]

श्री राम नरेश त्रिपाठी ने लिखा है :—

'संस्कृत नन्दन-कानन में विचरण करके तुलसी दास रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू जाति को दान किया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियों को नाश करने में औषधियों को सहायता पहुंचाता है, वैसे ही 'रामचरितमानस' रूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियों को नाश करने में सहायक होता है।

तुलसीदास ने 'मानस' में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से अधिक सहायता ली है। इसके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुन कर उन्होंने उनका रूपान्तर करके मानस में भर दिया है।[३]

मानस के आधार ग्रन्थों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक परिचय देने के पूर्व तुलसी के पूर्व के राम-साहित्य का सिंहावलोकन करना भी नितान्त अपेक्षित है, जिसका उल्लेख 'राम कथा के विकास' के प्रसंग में विस्तृत रूपेण किया गया है।

संस्कृत के ललित काव्यों में उपलब्ध, बौद्ध एवं जैन साहित्य में उपलब्ध, संस्कृत के धार्मिक साहित्य में उपलब्ध तथा विदेशों में उपलब्ध राम-साहित्य तुलसी के पूर्व साहित्य-क्षेत्र में विद्यमान था, फिर भी तुलसी ने सबसे प्रेरणा लेकर मौलिक उद्भावना कर नवीन निर्माण-कला का प्रदर्शन किया।

तुलसी ने अपने जीवन की परिस्थितियों से प्रेरित एवं तत्कालीन वातावरण से क्षुब्ध होकर कलिकाल के दुर्गुणों पर विजय कराने के हेतु विभिन्न तीर्थों का पर्यटन, सत्संग, शास्त्रानुशीलन का राजपथ का निर्माण किया, जिसमें स्वान्तः सुखाय के साथ-साथ बहु जन-हिताय का प्रमुख दृष्टिकोण सम्मुख रक्खा। अपनी समन्वयात्मिका प्रतिभा के बल पर

---

१. कल्याण १३—१, पृष्ठ १२२।
२. मा० प्रारम्भिक सातवां श्लोक।
३. तुलसीदास और उनका काव्य—द्वारा पं० रामनरेश त्रिपाठी पृष्ठ १४२।

परम्परा-प्रेमी तुलसी ने सभी पुराण ग्रन्थों, नाटकों, नीति प्रधान काव्यों के अध्ययन की विशालता के आधार पर अनुभूति की व्यापकता प्राप्त की। ग्रन्थानुशीलन से चिन्तन में गम्भीरता आ गई। मानस-निर्माण की नींव परिपक्व एवं प्रौढ़ हो गई, जिस पर मानस-प्रासाद जाज्वल्यमान हो, उठा अपनी मौलिक प्रतिमा एवं भाव प्रवणता की कुशल निर्माण कला के आश्रय पर।

तुलसी की तत्वग्राहिका-शक्ति का परिचय इस प्रकार दिया है कि आपने अपने मानस में विविध राम काव्यों से ही नहीं अपितु अन्यान्य काव्य ग्रन्थों को सूक्तियों एवं मनोरम वाक्यावलियों को अपने मानस में आत्मसात् कर रत्न सम प्रभा प्रदान की है। कहीं अविकलांग अनुवाद के रूप में, कहीं भावानुवाद के रूप में, कहीं कथा-संक्षिप्ति के रूप में, कहीं कथा विस्तार रूप में अन्य ग्रन्थों से आधार लेकर मानस की मौलिक प्रबन्ध-योजना की है।

इन ग्रन्थों में आधार ग्रहण करते समय तुलसी ने जागरुकता का परिचय दिया है। उन्हीं के कथनानुसार

'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने'[1]

उक्त कथन द्वारा आधार ग्रहण में भी अपनी कुशलता को ही प्रमाणित किया है। अपने प्रबन्ध-प्रवाह को अविच्छिन्न बनाए रखना, अनभीष्ट प्रसंग विस्तार को अनावश्यक समझ वर्णन न करना, आराध्य एवं इष्ट देव भगवान् राम के चरित्र के विपरीत उनमें दोष-दर्शन वाले प्रसंगों का अभाव तथा भक्ति-प्रदर्शक वर्णनस्थलों का प्रसार इत्यादि भी आधार ग्रहण करते समय आपके प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

धार्मिक एवं ललित साहित्य के समान ही प्रमुख इतिहास साहित्य भी था, जिसमें राम तथा कृष्ण का ऐतिहासिक रूप चित्रित था। उनमें से गोस्वामी जी ने लोक-कल्याण की भावना से भावित राम-कथा परम्परा का अनुसरण कर लोक कल्याणकारी रूप को चित्रित किया।

वाल्मीकि की राम कथा का आधार लेकर उसमें श्रद्धा उत्पादक रूप का प्रस्फुटन कर संवादों के मधुर आकर्ष के साधन द्वारा लोक-मुग्धकारी मानस की रचना की। संवादात्मक रामायणों की शैली का आधार ग्रहण कर तुलसी ने कल्याण तत्व का मनोहर ढंग से रूप चित्रित किया। विभिन्न दृष्टिकोण एवं स्तर के पाठकों के लिए संवाद उपस्थित किए।

आध्यात्मिक स्तर वालों के लिए तत्वज्ञ शिव एवं पार्वती संवाद, आधिदैविक श्रेणी के भक्त-प्रवर काकभुशुंडि एवं गरुड़ संवाद तथा आधिभौतिक स्तर पर कर्मकांड के प्रतीक याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज संवाद का समन्वित रूप गोस्वामी जी ने उपस्थित किया। इस दृष्टि से अध्यात्म-रामायण संवाद-शैली का प्रमुख आधार कहा जा सकता है।

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र जी मानस के आधार-ग्रन्थों का समीक्षात्मक विवेचन करते हैं।

'मूल कथा ली गई वाल्मीकीय रामायण से, संवाद तथा विवेचन की शैली ली

---

१. भा० १।५।२।

गई' भक्ति-परक अध्यात्म रामायण से, भाव प्रबणता और आकर्षण के लिये मसाले लिये गये धार्मिक एवं ललित साहित्य के अन्य उपयुक्त ग्रन्थों से। इसीलिये गोस्वामी जी का कवि रूप 'नानापुराण निगमागमसम्मतं यत्' के बाद ही कह उठा 'रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि' व्यासदेव के महाभारत के विषय में विद्वानों ने कहा है, 'यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' (जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र कहीं नहीं है)—भागवत का क्रम चलाकर मानों स्वतः व्यास जी ही सिद्ध कर गये हैं कि माधुर्य के लिए महाभारत के अतिरिक्त कुछ अन्यत्र भी (क्वचिदन्यतोऽपि) टटोला जाय। गोस्वामी जी के मानस में रामायण और महाभारत की प्रभविष्णुता के साथ ही साथ भागवत की भाव-प्रवणता भी पूरी मात्रा में आ विराजी। अतएव उनका 'क्वचिदन्यतोऽपि' मानों महाभारत-प्रेमियों को संकेत कर उठा कि 'जरा इधर आकर इस मानस की भी सैरकर ली जाय।'[1]

'राम कथा' के विकास नामक शीर्षक के अन्तर्गत राम-काव्य-ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन किया जा चुका है। अब विचारणीय यह है कि किन ग्रन्थों से मानस में विशेष सहायता ली गई है।

अध्यात्म रामायण एवं रामचरित मानस

अन्य ग्रन्थों की अपेक्षाकृत मानस उमामहेश्वर संवाद के रूप में लिखित अध्यात्म रामायण से विशेष प्रभावित है। उसकी संवाद-शैली का ही प्रतिरूप मानस के चार घाट के चार वक्ता एवं श्रोता हैं। इतना ही नहीं अध्यात्म रामायण के उमामहेश्वर को भी अपने मानस के वक्ता श्रोता बनाने का लोभ संवरण न कर तुलसी ने उन्हें प्रमुख वक्ता का स्थान दे डाला। ज्ञानघाट के अधिनायक शंकर ज्ञान-प्रधान कथा के वक्ता हैं।

वाल्मीकि रामायण तथा मानस की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन करते समय अध्यात्म रामायण के भी प्रसंगों का यथास्थान उल्लेख किया जा चुका है। इस स्थल पर दोनों ग्रन्थों में साम्य के विशेष प्रसंगों का विवेचन किया जायगा।

अध्यात्म रामायण 'श्रीराम हृदय' के अन्तर्गत 'सीताराममरूत्सूनुसंवाद' में सीता ने श्री ज्ञानापेक्ष 'महामतिमान्' 'कृतकार्य' हनुमान से राम तत्व एवं राम कथा का उल्लेख किया।[2] उसी को शंकर ने पार्वती को जिज्ञासु जानकर वर्णित किया।[3] पार्वती ने अपने हृदय के संशय की निवृत्ति करने के लिये शंकर से निवेदन किया कि 'कुछ लोग कहते हैं कि परमात्म स्वरूप होने पर भी राम अपने आत्मस्वरूप से अपरिचित थे और उन्हें वशिष्ठादि के उपदेश प्राप्त करने पर आत्मबोध हुआ और यदि राम आत्मज्ञानी नहीं थे, साधारण जन की भाँति सीता के लिये विलाप करते थे, तो फिर सभी लोगों द्वारा उनका भजन क्यों किया जाय।'[4]

१—मानस में राम कथा पृष्ठ ८०, ८१।
२—अ० रा० १।१।३१।
३—अ० रा० १।१।७ से १६।
४—अ० रा० १।१।१२ से १४।

मानस में भी ऐसे प्रश्नों का उल्लेख है पर उनमें निजी सौन्दर्य, माधुर्य एवं, सुव्यवस्था है।

'प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी।।
सेस सारदा वेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना।।
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती।।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई।।
जौ नृप तनय तो ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनति भ्रमति बुद्धि अति मोरि।।'[१]

अध्यात्म रामायण में संक्षेप रूप में समस्त राम-कथा का उल्लेख है[२] इसी संक्षेप शैली का प्रयोग मानस में भी कई स्थानों पर है। नाम-माहात्म्य प्रकरण,[३] मानस सर प्रसंग में,[४] काक भुसुण्डि गरुड़ संवाद[५] इसके स्पष्ट प्रतीक हैं।

अध्यात्म रामायण का सीता द्वारा राम का ब्रह्म तत्व निरूपण भी मानस के ब्रह्म निरूपण का आधार है।

अध्यात्म रामायण के सीताराम मरूत्सूनुसंवादान्तर्गत 'श्रीराम हृदय' का तात्विक विवेचन सुनकर पार्वती की राम-विषयक सन्देह-ग्रन्थि खुल गई तथा उनमें राम-तत्व रूप अमृत रसायन पान करने की उत्तरोत्तर पिपासा परिवर्द्धित हो गई।[६]

मानस में भी संशयोच्छेदानन्तर रामावतार धारण करने का कारण पूँछकर उमा विस्तार पूर्वक राम-कथा का मधुर रस-पान करने की इच्छा प्रकट करती हैं।[७]

अध्यात्म रामायण में रावणादि घोर तमीचरों के अत्याचार से भारावनत पृथ्वी गोरूप धारण कर ब्रह्म लोक गई।[८]

अध्यात्म-रामायण के इस अवतार हेतु से मानस का पूर्ण साम्य है।[९] पर मानस में एक विशेषता यह है कि जहाँ अध्यात्म रामायण में सभी आर्त जन अपनी आर्त वेदना सुनाने विष्णु के पास क्षीर सागर गये हैं[१०] वहीं मानस में शंकर की प्रेरणा से घट-घट

१—मा० १।१०७।५८ से १।१०८ तक।
२—अ० रा० १।१।३५ से ४२।
३—मा० १।२३ से २५ दो० तक।
४—मा० १।३९।७ से १।४१।५ तक।
५—मा० ७।६३।७ से ७।६७।६ तक।
६—अ० रा० १।२।१ से ३।
७—मा० १।११९।१ से ७।
८—अ० रा० १।२।६।
९—मा० १।१८३।७।
१०—अ० रा० १।२।७।

व्यापी, सर्वव्यापी, परात्पर ब्रह्म से वहीं स्थित होकर स्तुति कर गगन-गिरा द्वारा आश्वासन प्राप्त किया है।[१]

मानस[२] में राम-जन्म के उपरान्त कौशल्या को राम के प्रति स्तुति भी अध्यात्म रामायण से पूर्ण साम्य रखती है।[३] केवल इसी स्थल पर ही नहीं, आगे भी अनेक भक्ति के प्रसंगों में अनेक भक्त जन-कृत स्तुतियाँ[४] अध्यात्म रामायण[५] के समान ही भाव-गरिमा का प्रदर्शन करती हैं। इसका कारण देते हुये तत्वज्ञ श्री चतुर्वेदी जी का कथन है—

'राम कथा को एक धार्मिक व साम्प्रदायिक रूप देने तथा अनेक स्थलों पर स्तुतियाँ और माहात्म्यों का समावेश करने में मानस के रचयिता ने सर्वथा 'अध्यात्म' की वर्णन-शैली का ही अनुकरण किया है।'[६]

अध्यात्म रामायण के बालकांड में अन्य प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अधिक समकक्ष हैं।

अयोध्या कांड में अध्यात्म रामायण के गुह लक्ष्मण संवाद[७] पर मानस का यह संवाद[८] आधारित है।

वाल्मीकि-राम-संवाद के अन्तर्गत वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट राम के निवास स्थान[९] भी मानस[१०] की आधार भूमि हैं।

पंचवटी में स्थित राम का लक्ष्मण के प्रति आध्यात्मिक उपदेश[११] भी अध्यात्म रामायण[१२] से प्रेरित है। पर दोनों में अन्तर यह है कि मानस में अध्यात्म रामायण के दार्शनिक पक्ष की अपेक्षाकृत भक्ति-पक्ष अधिक प्रबल एवं सरस है।

मानस की शूर्पणखा का रावण के प्रति राजनीतिक उपदेश[१३] तथा रावण का मोक्ष प्राप्ति का आध्यात्मिक संकल्प[१४] अध्यात्म रामायण[१५] के समकक्ष है।

१—मा० १। १८६ से १ से ८।
२—मा १। १९१ से १९२ छन्द तक।
३—अ० रा० १। ३। २० से २९ तक।
४—मा० १। २१० से २११। मा० ३। १० से ११।
५—अ० रा० १। ५। ४३ से ६०। अ० रा० ३। २। २७ से ३४।
६—मानस की राम कथा पृष्ठ १३२।
७—अ० रा० २। ६। ४ से १५।
८—मा० २। ९१। ३। ९३ तक।
९—अ० रा० २। ६। ५२ से ६३।
१०—मा० २। १२७। ४ से १३१।
११—मा० ३। १३। ५ से १६ तक।
१२—अ० रा० ३। ४। १९ से ५५।
१३—मा० ३। २०। ८ से २१ तक।
१४—मा० ३। २२। २ से ५।
१५—अ० रा० ३। ५। ४२ तथा अ० रा ३। ५। ५८ से ६१।

अध्यात्म रामायण की जटायु स्तुति में भी मानस की जटायु प्रसंग का पूर्णाधार है।

शबरी की[1] नवधा भक्ति में दोनों में पूर्ण साम्य है।

किष्किन्धा काण्ड में हनुमान-प्रश्नावली[2] तथा सुग्रीव-मैत्री[3] दोनों में एक समान ही वर्णित है। बालि का राम के प्रति भक्ति-अर्पण[4] एवं उक्तियाँ, तारा राम संवाद[5] तथा लक्ष्मण का क्रोधावेश सहित किष्किन्धा नगरी में प्रवेश करना[6] तथा स्वयंप्रभा प्रसंग[7] इत्यादि समस्त प्रसंगों का पूर्ण प्रतिबिम्ब मानस में विद्यमान है। संपाति कथा[8] एवं जाम्बवान का हनुमान को आदेश[9] भी अध्यात्म रामायण से पूर्ण साम्य रखता है।

दोनों ग्रन्थों में सुन्दरकाण्ड की कथावस्तु में भी भेद होने पर भी कुछ प्रसंगों में तो नितान्त साम्य है।

राम-स्मरण कर हनुमान का पर्वत पर आरोहण,[10] जलनिधि का मैनाक पर्वत से आग्रह,[11] देवता द्वारा हनुमान के बल-बुद्धि-परीक्षणार्थ मुरसाप्रेषण एवं हनुमान का चातुर्थ-प्रदर्शन,[12] हनुमान् सीता-संवाद का भक्ति-प्रमुख अंश,[13] हनुमान्-रावण-संवाद,[14] मधुवन, संवाद,[15] राम का हनुमान को कृतज्ञतार्पण[16] आदि सभी प्रसंगों में भाषा एवं भाव की पूर्ण समानता है।

मानस के उत्तरार्ध में वर्णित प्रसंग अध्यात्म रामायण के युद्ध कांड में है।

विभीषण-राम-मिलन के कतिपय अंश,[17] शुक-रावण-संवाद[18] तथा सागर निग्रह[19] प्रसंगों में भी साम्य है।

१—अ० रा० १० । २२ । से ३१ । मा० ३ । ३४ । ७ से ३ । ३५ । ५ तक ।
२—अ० रा० ४ । १ । १२-१६ । मा० ४ । १ । ४ ।
३—अ० रा० ४ । १ । ४४ । मा० ४ । ४ ।
४—अ० रा० ४ । २ । ६५-६९ । मा० ४ । ९ से ४ । १० तक ।
५—अ० रा० ४ । ३ । १४-३५ । मा० ४ । १० । ३ से ६ ।
६—अ० रा० ४ । ५ । २५ २८ । मा० ४ । १८ । ८ से १९ । २ तक ।
७—अ० रा० ४ । ६ । ४०-८४ । मा० ४ । २४ से २५ तक ।
८—अ० रा० ४ । ८ । मा० ४ । २७ से ४ । २८ तक ।
९—अ० रा० ४ । ६ । १६ २० । मा० ४ । २९ । ३ से ६ ।
१०—अ० रा० ५ । १ । २, ३ । मा० ५ । ४ से ८ ।
११—अ० रा० ५ । १ । २६-३० । मा० ५ से ९ तक ।
१२. अ० रा० ५।१।८-२५ । मा० ५।१ से २ तक ।
१३. अ० रा० ५।३।४-४८ । मा० ५।१२।४-५।१६। ४ ।
१४. अ० रा० ५।४।८-२५ । मा० ५।२०।-२३ तक ।
१५. अ० रा० ५।५।१९-३० । मा० ५।२७।७। से २८ तक ।
१६. अ० रा० ५।५।६० । मा० ५।३१।५ से ८ ।
१७. अ० रा० ६।३।१-३४ । मा० ५।४१-४९ ।
१८. अ० रा० ६।४ । मा० ५।५६।३-७ ।
१९. अ० रा० ६।३।६०-८५ । मा० ५।५७-५९ ।

लंका कांड में सेतुबंध प्रसंग,[१] रामेश्वर-माहात्म्य,[२] रावण-मंदोदरी-संवाद,[३] माल्यवान्-रावण-संवाद,[४] लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध वर्णन,[५] हनुमान् का संजीवनी बूटी लाना,[६] कुम्भकरण-रावण-संवाद,[७] कुम्भकरण का युद्ध वर्णन,[८] मेघनाद-यज्ञ वर्णन[९] मेघनाद वध का प्रसंग,[१०] रामद्वारा रावण की नाभिका अमृत शोषण,[११] रावण के तेज का मरणान्तर राम में समाविष्ट हो जाना,[१२] देवों की राम विजय पर जय जय ध्वनि,[१३] मन्दोदरी का राम के प्रति कृतज्ञतार्पण,[१४] रामाज्ञा प्राप्त कर लक्ष्मणद्वारा भ्रातृ-मृत्यु से दु:खित विभीषण को प्रबोध,[१५] लंका से सीता का आनयन,[१६] सीताद्वारा लक्ष्मणको अग्नि प्रज्वलित की आज्ञा,[१७] अग्निदेव द्वारा सीता का राम को अर्पण,[१८] देवस्तुति,[१९] राम की वानर भालु को जीवित करने की इन्द्र की आज्ञा और उनका पुनर्जीवन,[२०] राम को भरत की तीव्र स्मृति,[२१] राम का पुष्पक विमान में वानर सहित आरोहणादि[२२] सभी प्रसंगों में पूर्ण साम्य है।

भरद्वाज-मिलन[२३] तथा हनुमान् का भरत के प्रति प्रेषण[२४] में भी समानता है पर

---

१. अ० रा० ६।३।८६, ८७। मा० ६।१।१।
२. अ० रा० ६।४।१-४। मा० ६।२।१-४।
३. अ० रा० ६।१०।३६-६१। मा० ६।५।१ ६।७।५।, ।६।१३।७ से १५।७।
४. अ० रा० ६।५।२७-३६। मा० ६।४७।५ से ६।४८।४ तक।
५. अ० रा० ६।६।७-१२। मा० ६।५२ से ५४।
६. अ० रा० ६।६।३३-७. से ३७। मा० ६।५५। से ६।६१।
७. अ० रा० ६।७।५७-७०। मा० ६।६१।८ से ६२।८।
८. अ० रा० ६।८। मा० ६।६३।१ से ७०।८।
९. अ० रा० ६।८।५७-६१। मा० ६।७४।४ से ५।
१०. अ० रा० ६।९ सर्ग। मा० ६।७५।१६।
११. अ० रा० ६।११।५५। मा० ६।१०२।१।
१२. अ० रा० ६।११।७८, ७९। मा० ६।१०२।९।
१३. अ० रा० ६।११।८०। मा० ६।१०२।१० छंद।
१४. अ० रा० ६।१२।४०। मा० ६।१०४ छंद।
१५. अ० रा० ६।१२।२९। मा० ६।१०४।५,६।
१६. अ० रा० ६।१२।६० ७५। मा० ६।१०७ से १०८ तक।
१७. अ० रा० ६।१२।७७। मा० ६।१०८।२।
१८. अ० रा० ६।१३।२०। मा० ६।१०८।छंद २।
१९. अ० रा० ६।१३ सर्ग। मा० ६।१०९ से ११५ तक।
२०. अ० रा० ६।१३।३८,३९। मा० ६।११३।१ से ५।
२१. अ० रा० ६।१३।४३,४४। मा० ६।११६।क।,।ख।,।ग।।
२२. अ० रा० ६।१३।५६,५७। मा० ६।६।११८।
२३. अ० रा० ६।१४।१४ से ३७। मा० ६।१२०।३,४।
२४. अ० रा० ६।१४।३८-४४। मा० ६।१२०।१।

दोनों में अन्तर यह है कि मानस में हनुमान् को भेज कर राम भरद्वाज मिलन[1] होता है, अध्यात्म रामायण में भरद्वाज से मिलकर।[2]

अध्यात्म रामायण में युद्ध कांड में हनुमान्-भरत-मिलन प्रसंग का वर्णन है[3], मानस में उत्तर कांड, में परन्तु दोनों में भाव साम्य है।[4] यह मार्मिक प्रसंग अध्यात्म रामायण में अधिक मर्मस्पर्शी एवं भक्ति-रस-समन्वित है। तुलसी ने भी इससे प्रेरणा लेकर भरत का ग्लानि-युक्त भक्त-रूप चित्रित किया।

उत्तर कांड में राम-राज्याभिषेक का विस्तृत उल्लेख है[5], मानस में इसकी अपेक्षाकृत संक्षिप्त।[6] राज्याभिषेकोपरान्त देवस्तुतियाँ दोनों ग्रन्थों में की गई हैं। अध्यात्म रामायण में श्री महादेव, इन्द्र, देव, पितृ, यज्ञ, गन्धर्वादि की भिन्न-भिन्न स्तुतियाँ वर्णित हैं।[7] मानस में बंदी वेष में वेदों की स्तुति, तथा शंकर की स्तुतियों में भी अध्यात्म रामायण की भाँति भक्ति की व्यापकता परिलक्षित है।[8]

वानर गण तथा मित्रगणों की विदा का प्रसंग अध्यात्म रामायण में भी है[9] परन्तु मानस में भक्ति रस से पूर्ण आप्लावित एवं मार्मिक है।[10] अंगद का विनम्र आर्त-निवेदन अकथनीय एवं प्रशंसनीय है।

मानस में राम के आदर्श राज्य का वर्णन अध्यात्म रामायण[11] से प्ररणा पाकर विस्तृत रूपेण वर्णित है।[12]

मानस का वशिष्ठ-राम-संवाद भी अध्यात्म रामायण पर ही पूर्णतया आधारित है। अन्तर केवल इतना है कि अध्यात्म रामायण के अयोध्या कांड में यह प्रसंग वर्णित है।[13] मानस के उत्तर कांड में है।[14] तुलसी ने भक्ति के उपसंहार कांड में सभी वर्ग के व्यक्तियों को राम भक्त दर्शाने के उद्देश्य से गुरु वशिष्ठ को भी तथैव दर्शाना विशेष उपयुक्त समझा।

---

१. मा० लं० कां० १२०।१ तथा १२०।३।
२. अ० रा० ६।१४।१४ से ४३ तथा ६।१४।४४।
३. अ० रा० ६।१४।
४. मा० ७।१,२।
५. अ० रा० ६।१५।३४ से ५० तक।
६. मा० ७ ११,१२।
७. अ० रा० ६।१५।५१ से ७३।
८. मा० ७।१२ से १४ तक।
९. अ० रा० ६।१६।६ से २३ तक।
१०. मा० ७।१५ से ७।१६।५ तक।
११. अ० रा० ७।४।२१ से ३०।
१२. मा० ७.१६.६ से ७।२३ तक।
१३. अ० रा० २।२। २७ से ३०
१४. मा० ७। ४७ से ४९ तक।

इस प्रकार अध्यात्म रामायण एवं मानस क्रमशः आधार एवं आधेय हैं, जिसमें भक्ति-प्रवणता दोनों का मूल है। तुलसी के प्रख्यात अनुसंधाता डा० माता प्रसाद गुप्त का भी यहीं मननोपरान्त निष्कर्ष है—

'जो कुछ उन्हें (तुलसी को) अध्यात्म रामायण में सिद्धान्त रूप में मिला, प्रायः उसी का उन्होंने एक तर्क-संगत विकास किया।'.... ...'कवि के आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर प्रभाव अध्यात्म रामायण का ही है।'[१]

आनन्द रामायण एवं रामचरितमानस

अन्य रामायणों की भाँति मानस प्रणयन में आनन्द रामायण का भी प्रभाव कुछ कम नहीं है।

वन्दना-प्रकरण में दोनों ग्रन्थों में साम्य है।

'रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥[२]

'कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥'[३]

राम कथा की अनन्तता, आनन्द रामायण एवं मानस, दोनों में समान रूप में वर्णित है।

'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुसां महापातक-नाशनम्॥[४]

'राम अनन्त-अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।'[५]

आनन्द रामायण में पार्वती जी शंकर से प्रश्न करती हैं कि राम ने किस कारण शरीर धारण किया।

'दधार कस्मात्पुरुषः पुराणः निरस्तमायोऽपि मनुष्यदेहम्।[६]

मानस में भी यही प्रश्न पार्वती जी ने किया है।

'राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्व रहित सब उर पुरबासी॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू।'[७]

अनेक कल्पों में प्रभु अवतार धारण करते हैं, यह तथ्य दोनों में समान रूपेण वर्णित है।

१—तुलसीदास पृष्ठ ३८२, ५३७
२—रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३९
३—मा० १।१७। १
४—आ० यात्रा कांड, सर्ग १। ७, ८।
५—मा० ।१। ३३
६—रा० टी०, रा०, बा० कां०, पृष्ठ १५३।
७—मा० १।११९। ६, ७।

'पुनः पुनः कल्प भेदाज्जाताः श्री राघवस्य च ।
अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित् ।।'[१]

'कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । चारू चरित नाना विधि करहीं ।।'[२]

दोनों ग्रन्थों में राम-जन्म-उत्सव पर आनन्दित होकर सकल अयोध्यावासी राम को आशीर्वाद देते हैं ।

'अयोध्यावासिनस्तुष्टा रामायाशीर्ददौ मुदा ।'[३]
'मन संतोष सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस ।।
सकल तनय चिरजीवहु तुलसिदास के ईस ।।'[४]

मानस में सभी भाइयों के नामकरण के कारणों का आधार भी आनन्द रामायण ही है ।

'रमणाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्ष्मणस्त्विति ।
भरणाद् भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रु-तर्जनात् ।।'[५]

मानस में पूर्ण साम्य होते हुये भी राम के नामकरण में विशिष्टता है, क्योंकि तुलसी अपने इष्टदेव का नाम करण साधारण कैसे वर्णित करते ।

'जो आनन्द सिंधु सुखरासी ।........
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोकदायक विस्रामा ।
विस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।
जाके सुमिरन ते रिपु नासा । नाम सत्रुहन वेद प्रकासा ।
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार ।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ।।'[६]

दशरथ एवं कौशल्या दोनों ही राम की बाल लीला का आनन्दानुभव करते हैं ।

'एवमानन्दसंदोह जगदानन्द कारकः ।
माया बालबपुर्धृत्वा रमयामास दंपती ।।'[७]
'सुख संदोह मोह पर ज्ञान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेम बस करि सिसु चरित पुनीत ।'[८]

राम का गुरू-गृह जाकर अल्प काल में विद्याध्ययन दोनों ग्रन्थों में समान रूप में वर्णित है ।

१—रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ १७७ ।
२—मा० १ । १३९ । २ ।
३—रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ २३३ ।
४—मा० । १ । १९६
५—आ० रा०, सारकाण्ड सर्ग २ । ११ ।
६—मा० १ । १९६ । से ८, १९७ ।
७—रा० टी०, आ० रा० बा० का०, पृष्ठ २३८ ।
८—मा० १ । १९९ ।

'गुरोरास्यात्सुमुहूर्ते वेदान् सांगांश्चतुर्विधान् ।
चकुर्मुखोद्गतान्येव कलाः शास्त्रादिकान्यपि ।।'[१]

'गुरू गृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब आई ।।'[२]

विश्वामित्र को प्रणाम कर जनक पुरी भ्रमण करते समय राम की मनोहर झांकी दोनों ग्रन्थों में तुल्य रूपेण दर्शनीय है।

'अलकैश्च महानीलैः शोभयन्तौ मुखाम्बुजौ ।
घरितेन मणीनां तु किरीटेन विराजितौ ।।
सर्वांगसुन्दरौ वीरौ कामेन सदृश्यवुभौ ।'[३]

'रूचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुन्दर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ।।'[४]

जनकपुर भ्रमण करते समय नगर-नारियां राम के अलौकिक कृत्यों से परिचित हैं इसका परिचय वे दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण देती हैं।

'रामस्यपाद-रजसा पूता गौतम गेहिनी ।
इदानीं च धनुर्यज्ञं समायातो रघूत्तमः ।।'[५]

'बिप्र काज करि बन्धु दोउ मग मुनि बधू उधारि ।
आये देखन चाप मख सुनि हरषीं-सब नारि ।।'[६]

धनुष भंग के अवसर पर बंदी गण दोनों ग्रन्थों में भुजा उठाकर राजा जनक के प्रण का उल्लेख करते हैं।

'मागधास्तु पणं सर्वं जनकस्य च भूपतीन् ।
श्रावयामासुस्ते सर्वे बाहुमुत्क्षिप्य संसदि ।।'[७]

'बोले वंदी बचन बर. सुनहु सकल महिपाल ।
पन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ।।'[८]

दोनों उपर्युक्त कथनों में अन्तर केवल यह है कि आनन्द रामायण में कथात्मकता है तथा इसकी अपेक्षाकृत मानस में चित्रात्मकता का समावेश है।

विश्वामित्र की आज्ञानुसार राम ने गुरू का अभिवादन कर धनुष भंग' के लिये प्रस्थान किया :—

१—आ० रा०, सारकाण्ड सर्ग २ । २६ ।
२—मा० १ । २०३ । ४ ।
३—रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ २६६ ।
४—मा० १ । २१९ ।
५—रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ २६८ ।
६—मा० । १ । २२१ ।
७—आ० रा०, सारकाण्ड सर्ग २, ६२ ।
८—मा० १ । २४६ ।

'विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं चोतिष्ठ राघव ।
तन्मुने वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः ।।
तदोत्थायासनाद् वेगात्प्रणनाम मुनीश्वरम् ।।'[1]

उठहु राम भंजहु भव चापा........
सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा ।
हरष विषाद न कछु उर आवा ।।'[2]

उक्त प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में साम्य होते हुये भी मानव में विशेष शालीनता का चित्रण है ।

मंच पर धनुषभंग के लिये प्रयाण करते देख कर सभी तत्र उपस्थित नर नारी अपने अपने पुण्यफलों को राम के धनुर्भंग के निमित्त अर्पित कर प्रार्थना करने लगे । आनन्द रामायण में नारियों द्वारा इस वन्दना का उल्लेख है, मानस में समष्टि द्वारा ।

'एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभांगण विराजितम् ।
न्यस्त कोदंड तूणीरं शिवचापाभिसंमुखम् ।
सर्वा : प्रार्थयामासुरूर्ध्वस्या ऊर्ध्वसत्करा : ।
भो है रमाकान्त हे विधे स्मत्पुरा कृतै : ।
दानादिपुण्यैश्च चापं सज्जीकरोत्वयम् ।।[3]

'चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भये सुखारी ।।
बंदि पितर सब सुकृत संभारे । जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे ।।
तो सिव धनुष मृनाल कि नांई । तोरहिं राम गनेस गोसाईं ।।[4]

दोनों में साम्य होते हुये मानस के कथन में विशेष सौकुमार्य की झलक है ।

जानकी-जननी सुनयना की उक्ति में भी पूर्ण साम्य है ।

'यत्रैते रावणाद्याश्च नृपा : सर्वेऽति कुंठिताः ।
तस्मिंश्चापे त्वयं बाल : किमागत्य करिष्यति ।।'[5]

'रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करिदापा ।।
सो धनु राजकुअर कर देहीं । बाल मराल कि मंदर लेहीं ।।[6]

केवल 'मराल' शब्द जोड़ देने से ही स्वर्ण-सुगंध-संयोग हो गया है । यह तुलसी की मौलिकता का परिचायक है । दूसरी विशेषता इस कथन में यह है कि आनन्द रामायण में राम के प्रति उपेक्षा भाव सा है, मानस में सुनयना के कथन में विशेष वात्सल्य रस है और जनक पर मधुर खीझ है ।

१—रा० टी०, आ० रा०, बा०का०, पृष्ठ ३०७ ।
२—मा० १ । २५२ । ६, ७ ।
३—आ० रा०, सारकाण्ड ३ । ८ ।
४—मा० १ । २५४ । ६ से ८ ।
५—आ०रा०, सारकाण्ड २ । १५ ।
६—मा० १ । २५५ । ३, ४ ।

मानस में धनुर्भंग के प्रसंग में सीता सभांगण में राम को देख कर अनेकानेक देवों से धनुष को हल्का कर देने की स्तुति करती हैं, यह प्रसंग भी आनन्द रामायण पर ही आधारित है।

'एतस्मिन्नन्तरे सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे।
अब्रवीत् मधुरं वाक्यं रत्नालंकार मंडिता ॥
हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति।
युष्मान् संप्रार्थयाम्यद्य प्रसार्य करपल्लवम् ॥
सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत् ॥'[1]

'तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥
मन ही मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई ॥
गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हेउं तव सेवा ॥
बार बार सुनि बिनती मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥'[2]

उक्त प्रसंग में साम्य होते हुए भी भावोन्मेष में अन्तर है। आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत मानस में कवि की मर्ममदनी दृष्टि का स्पष्ट प्रमाण है। 'समय हृदय', 'मन ही मन मानव अकुलानी', बारम्बार प्रार्थना करना सीता के सूक्ष्म मनोभावों के परिचायक हैं। देव नामावली में अन्तर का कारण दोनों कवियों की तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव है।

सीता की उत्सुकतामय, आतुरतामय, भाव प्रवणता, राम के प्रति अनन्य निष्ठा का संकल्प दोनों ग्रन्थों में पूर्णतः चित्रित है।

'कायेन मनसा वाचा यदि सत्यः पणो मम।
रामचन्द्रस्य पादाब्जे मच्चित्तं च रतिं गतिम् ॥
तर्हि सर्वगतो देवस्तद्दासीं मां करोतु वै।
यस्य यस्मिन् परः स्नेहः स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥'[3]

मानस में भाव-साम्य के साथ साथ शब्द-साम्य भी दर्शनीय है।

'तन मन वचन मोर पन साँचा। रघुपति पद सरोज चितु रांचा ॥
तौ भगवान सकल उर बासी। करिहहिं मोहिं रघुवर के दासी ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलन न कछु सन्देहू ॥'[4]

राम के धनुष के निकट आते ही सकल नर नारी पुनः अपने पुण्यों की स्मृति देवों को कराते हुये राम के हितचिन्तन में रत दिखाई पड़ते हैं।

१—आ०रा०, बा०कां०, पृष्ठ ३१०।
२—मा० १। २५६। ४ से ८।
३. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३१३
४. मा० १। २५८। ४ से ७।

किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ।
अनुगृह्णातु वैदेह्याः पाणिमच्युतः ।।'[१]

मानस में नर नारियों की स्तुति का स्पष्टीकरण न कर उसे रहस्य में ही रक्खा है ।

'चाप समीप राम जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ।।'[२]

धनुर्भंग के पश्चात् मागध गणों एवं जनकरानियों का हर्ष प्रदर्शन भी दोनों में ही व्यक्त किया गया है ।

'तुष्टुवुमागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ।'
तथा '(तच्छ्रुत्वा) राजपत्न्यस्तु परमं हर्षमाययुः'[३]

मानस में इस कथन की व्याख्या है—

'बन्दी मागध सूत गन, बिरद बदहिं मति धीर ।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर ।।'[४]

तथा

'सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी । सूखत धान परा-जनु पानी ।।'[५]

मानस में उत्प्रेक्षा द्वारा विशेष-भाव परिमिति 'अनुमान प्रमाण' अलंकार द्वारा प्रतिभासित होती है ।

राम परशुराम संवाद के अन्तर्गत राम के तर्क में पूर्ण साम्य है ।

'गोविप्रदेव नारीषु राघवा नास्त्रधारिणः ।'[६]

'सुर महिसुर हरि जनु अरु गाई ।
हमरे कुल इन पर न सुराई ।।'[७]

जनकपुर के भवन के ऐश्वर्य पर इन्द्र भी विमुग्ध हो जाते थे । साक्षात् शेष भी उसके अप्रतिम वैभव का वर्णन करने में समर्थ न थे ।

'दष्टवा विदेहालय कान्तिमुत्तमां लुलोभ शक्रोऽपि महामना पुनः
विराजते यत्र स्वयं रमाकुजा शेषोप्यशेषं कथितं न च क्षमः ।।'[८]

'जनक भवन कै शोभा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी ।।'........
जो सम्पदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुर नायक मोहा ।।
बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेष ।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३१४ ।
२. मा० १ । २५९ । ६ ।
३. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३१७ ।
४. मा० १ । २६२ ।
५. मा० १ । २६२ । ३ ।
६. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ट ३२९ ।
७. मा० १ । २७२ । ६ ।
८. रा० टी०, आ० रा०, कां०, पृष्ठ ३४६ ।

तेहि पुर की शोभा कहत सकुचहिं सारद शेष ।।'[1]

आधार ग्रन्थ से मानस में विशेषतर वैभव प्रत्वक्ष दर्शनीय है। पूर्व में जनकालय का ही उल्लेख है, उत्तर में समस्त जनकपुर के गृहों का। इसी विशेषता के कारण एक के स्थान पर उसके ही वर्णन कर्ताओं का उल्लेख भी मानस में किया गया है।

राम सीता विवाह के शुभ अवसर पर सर्वप्रथम दोनों पक्ष के कुल-गुरुओं ने गणेश पूजन कराया।

'कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याऽहोद्ववाचनतन्नथा।
कारयामास विधिना प्रतिष्ठा देवकस्य च ।।'[2]

'आचार करि गुरू गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।।[3]

विवाह के अनन्तर सभी वर-वधुओं को जनवासे में शोभायमान देख अमरगण ने भी जयजयकार द्वारा मंगल-वादन के रूप में प्रसन्नता व्यक्तस की।

'तदानीममरास्सर्वे परे जीवाश्चराचराः।
मुमुदुश्चेतसातीव बभूवाति जय-ध्वनिः ।।
मंगलध्वनिगानञ्च बभूव बहु सर्वतः।
वाद्यध्वनिरभूद्रम्यः सर्वानन्दप्रवर्धनः ।।'[4]

मानस में केवल मुदित ही नहीं देवगण मंगल-वादन के साथ साथ पुष्प वृष्टि सहित मंगल वाचन भी कर रहे हैं। क्यों न हो यह अन्तर ? उनका मन वाञ्छित ही तो हो रहा है, फिर मर्यादा शिरोमणि तुलसी पुण्यावसर पर सभी के द्वारा आर्शीवादात्मक वचनावली ही कहलाना नितान्त उपयुक्त एवं संगत समझते हैं।

'तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनन्द महा।
चिर जिअहु जोरी चारु चार्‌यो मुदित मन सबही कहा ।।
जोगीन्द्र सिद्ध मुनीस देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जयभनी ।।'[5]

सीता के विवाह होते समर्में विदेह राज जनक की भी वात्सल्य-सरिता प्रवाहित हो उठी।

'स्वयं रूरोद मोहेन सुतां कृत्वा स्ववक्षसि।
क्वयासीत्देवमुच्चार्य शून्यं कृत्वा मुहुर्मुहुः ।।
तदा विप्राः समात्य बोधयामासुरादरात्।
आनाय्य शिविकाँ राजा सीतारोहणहेतवे ।।
ज्ञात्वा सुलग्नं यात्रायास्सुतामारोहयत्सुधी ।।'[6]

---

१. मा० १। २८८। ५, १। २८९।
२. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३८३।
३. मा० १। ३२२। छन्द।
४. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ३९५।
५. मा० १। ३२६ छन्द।
६. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४०७।

मानस में ज्ञान शिरोमणि जनक की ज्ञान मर्यादा का बांध टूट गया। भाव क्षेत्र में मंत्रि मंडल को सावधान ही करना पड़ा।

'लीन्ह राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ज्ञान की ।।
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह विचार अनवसर जाने ।।
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुन्दर पालकी मंगाई ।।

प्रेम बिबस परिवार बस जानि सुलगन नरेस।
कुअंरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्ध गनेस ।।'[१]

इतना ही नहीं वियोग वात्सल्य का सर्वव्यापी चित्र भी अत्यधिक मर्मस्पर्शी है। सभी वर्ग के व्यक्ति राजा समेत सशरीर ही सीता के साथ ही जाने का मोह संवरण न कर सके।

'प्रयातीञ्जानकीं वीक्ष्य बभूवुर्व्यग्रचेतसः।
राजा विप्रास्तथामात्या अयुः स्नेहवशंगताः ।।'[२]

'सीय चलत व्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी ।।
श्वसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा ।।'[३]

मंगल अवसर पर राजा दशरथ भी अपनी दानशीलता का परिचय दोनों ग्रन्थों में देते हैं।

'ददौ दानं द्विजातिभ्यो याचकेभ्यः पुनः पुनः। -
तद्दत्ताशिषमादाय प्रस्थितोऽधीत्य विघ्नयम् ।।'

मानस के इस प्रसंग में दशरथ की शालीनता, ब्राह्मण भक्ति एवं श्रद्धार्पण विशेष रूपेण परिलक्षित है।

'दशरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हें ।।
चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा ।।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना।'[५]

दशरथ के अवध प्रयाण करते समय जनकपुर वासी था, दशरथ दान तथा अनुनय वनय के भाव चित्ताकर्षक हैं।

'सत्कृत्य दानमानाभ्यान्नृपेणाशुनिर्वर्गिताः।
सर्वे रामं प्रशंसन्तस्सगोत्रमुगुरुज्जनाः।
शश्वन्निर्वर्तितो राजा कोसलेशेन धीमता।
अनिष्टावर्तनोऽपीशो विदेहः प्राह भूपतिम्।
वचनञ्च सुधाहारि विनयावनतस्सुधीः ।।'[६]

---

१. मा० १। ३३७। ६। से ८, १। ३३८।
२. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४०८।
३. मा० १। ३३८। ३।
४. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४०८।
५. मा० १। ३३८। ६ से ९ तक।
६. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४०८।

मानस में भी दान प्रसंग एवं जनक दशरथ का आग्रह अनुग्रह प्रसंग देखते ही बनता है।

'नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे ।।
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ।।
बार बार विरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी ।।
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमवस फिरै न चहहीं ।।
पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बढ़ि आए ।।
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रवाह विलोचन बाढ़े ।।
तब विदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधा जनु बोरी ।।'[1]

राजा जनक अपने को राम का सम्बन्धी जान अपने को धन्य मानते हैं।

'धन्योऽस्म्यहं कुलं धन्यं धन्यौ तौ पितरौ मम।
यौऽहं रामस्य श्वसुरश्चेति लोके प्रथांगतः ।।[2]

उक्त स्थल पर मानस में लौकिक भाव की प्रधानता न होकर आध्यात्मिक भाव दर्शाकर राम की महत्ता पर कृतज्ञतार्पण भी किया है।

'सबहिं भाँति मोहिं दीन्ह बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ।।'[3]

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि आनन्द रामायण में ईश्वरीय भावना का अभाव है, उसमें भी जनक राम से याचना करते हैं।

'यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन।
त्वद्भक्त संगस्त्वपादे मम भक्तिस्तदास्तु वै ।।'[4]

मानस में भक्ति के अन्य साधनों पर लक्ष्य नहीं अनन्य भावना की ही याचना की है।

बार बार माँगउँ कर जोरे। मन परिहरइ चरन जनि भोरे ।।'[5]

राम की ही भाँति जनक का अन्य भाइयों के साथ भी प्रीति सम्मिलन हुआ।

'एवं सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि।
प्रीत्याभिरेभिरे सर्वे महोत्सव परस्परम् ।।'[6]

'बिनती बहुत भरत सन कीन्हा। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्हा ।।
मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्ह असीस महीस।
भए परसपर प्रेमवस फिरि फिरि नावहिं सीस ।'[7]

---

१. मा० १।३३९। १ से ७ तक।
२. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४१०।
३. मा० १। ३४१। १।
४. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां, पृष्ठ ४११।
५. मा० १। ३४१। ५।
६. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४११।
७. मा० १। ३४२।

इसी विदा प्रसंग में विवाहोत्सव के प्रमुख कर्णधार विश्वामित्र के प्रति भी जनक का कृतज्ञतामय अभिवादन भी परम अनिवार्य था।

'प्रसादात्तव रामस्य लाभो जातोऽद्य मे मुने।
इत्युक्त्वा नृपतिर्नत्वा मिथिलाञ्जनको ययौ॥'[1]

मानस में केवल लाभ ही नहीं, परमानन्द लाभ के भी श्रेय भागी विश्वामित्र हैं।

सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥
सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तब दरसन अनुगामी॥
कीन्हि विनय पुनि-पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥'[2]

भक्ति प्रधान ग्रंथ के उक्त कथन में परम सुख की व्याख्या एवं माहात्म्य भी वर्णित है।

तीव्र यातायात के साधन सुलभ न होने के कारण मार्ग में अनेक स्थानों पर विश्राम करते हुए दशरथ ने जनकपुर से अयोध्या का मार्ग पार किया।

'ततो दशरथश्चापि स्नुषाभिस्तनयैः सह।
पथि विश्रम्य विश्रम्य साकेतासन्नमाययौ॥'[3]

'बीच बीच बर बास करि मगलोगन सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥'[4]

बारात का प्रत्यावर्तन सुनकर समस्त अयोध्यानगरी में स्वागतार्थ देव विमोहक नाना आयोजन दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।

'अयोध्यानगरं रम्यं नानारत्नैश्च मण्डितम्।
वैजयन्ती पताकाभीराजितं बहुधोन्नतम्॥
ब्रह्माद्यास्सकला देवाः प्रसेदुर्वीक्ष्य तत्पुरम्॥
सौधस्य सुषमां दृष्टवा कामोऽपि मोहितः।
द्वारं चापि महा दिव्यं मुक्तदामाहिभिर्वृतम्॥'[5]

'लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥
बिविध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे संवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि॥
भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा॥'[6]

---

१. रा० टी०, आ० रा०, बा० का० पृष्ठ ४१२।
२. मा० १।३४२।३ से ६ तक।
३. रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ ४१२।
४. मा० १।३४३।
५. रा० टी, आ० रा०, बा० का०, पृष्ठ ४१३।
६. मा० १।३४३।८ से ३४४, ३४४।१ तक।

सभी प्रकार पुत्र पुत्रवधुओं से शोभायमान राजा दशरथ गुरू की बारम्बार बन्दना एवं पूजा करना नहीं भूलते। गुरु शिष्य की झांकी दोनों ग्रंथों में दर्शनीय है।

'तत्र राजा महाबुद्धिः पत्नीपुत्रससन्वितः।
मुनि पुंगवमानभ्य ववन्दे शिरसा गुरूम् ॥
पुनः पुनस्तम् संपूज्य स्वीचकार तदा शिषः ॥'[१]

पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥
बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि-पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु ॥'[२]

राजा दशरथ अपनी पुत्रबधुओं के प्रति असीमित दुलार की शिक्षा अपनी रानियों को देते हैं।

'यदि चद्पराधं हि चरेयुर्बालिका इमाः।
हृदये न तु मन्तव्यं रक्षणीयाः प्रयत्नतः ॥'[३]

मानस मैं संगत उपमा द्वारा इस भाव का उत्कर्ष उक्त कथन से भी अधिक है।

'बधू लरिकिनी पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं ॥'[४]

सभी प्रकार से सुख मग्न माताएँ अपने प्राणप्रिय राम के पूर्व अलौकिक वीरता के प्रसंगों का स्मरण करती हुई विश्वामित्र के प्रति कृतज्ञतार्पण करती है।

'पथि पांथजन् ध्वसं कारिणी पुत्र ताटकाम्।
राक्षसीमेक वाणेन जधान त्वं कथम्प्रिय ॥
मारीचञ्च सुबाहुञ्च ससहायं कथं व्यहः ॥
सर्व विद्यास्त्वपात्याथ ह्यमौ रामलक्ष्मणौ।
रक्षाँ कौशिकयज्ञस्य चक्रतू तौ रघुनन्दनौ।
त्वत्पाद पाँसुसंस्पृष्टा ततम् मुनिगेहिनी।
कीर्तिस्ते प्रसृता लोके चतुर्दिक्षु महत्यतः।
कौशिकानुग्रहादेव चरित्रैश्चाप्यमानुषैः ॥'[५]

'मारग जात भयावनि भारी। केहि विधि तात ताड़का मारी ॥
घोर निसाचर विकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाई ॥
मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भूवन भरि पूरी ॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे ॥'[६]

---

१. रा० टी०, आ०, बा० कां०, पृष्ठ ४२२।
२. मा० १। ३५१। ८, २। ३५२।
३. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४२५।
४. मा० १। ३५४। ८।
५. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४२६, ४२७।
६. मा० १। ३५५। ८, ३५६, ३५६। २, ३, ६।

प्रातक्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् राम को सभा में उपस्थित देख दशरथ उमंगित हो उठे।

'आलिलिंग तदा राजा पुत्रान् सर्वान् महामतिः।
सभायां पितरं तत्वा तस्थुः सिंहासनोपरि ॥
शतशो नागरास्तत्र रामं दृष्ट्वा मुदं ययुः।'[1]

इस कथन में साम्य होते हुए भी मानस में राम के दर्शनों के कारण विशेष आनन्दानुभव लक्षित है।

'भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठ हरषि रजायसु पाई ॥
देखि राम सब सभा जुड़ानीं। लोचन लाभ अवधि अनुमानी ॥'[2]

मुनि वशिष्ठ सदैव अपने उपदेशों द्वारा सपरिवार दशरथ का कल्याण किया करते थे।

'गुरोर्मुखाञ्च पौराणीं कथां शुश्राव स स्त्रियः।'[3]
'कहहिं वशिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीप सहित रनिवासा ॥'[4]

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने विस्तार पूर्वक राजर्षि विश्वामित्र की कथा वर्णन करते हुये उनकी प्रशंसा की। वामदेव ने सबका पूर्ण समर्थन कर उनकी प्रख्याति का समर्थन किया।

'गाधेय चरितं दिव्यं वसिष्ठो विस्तराद्धाद्।
वामदेवोऽनुमुमुदे सत्यं सत्यं वदन् मुनिः ॥
सर्वे मुमुदिरे रामलक्ष्मणावधियकन्तदा।'[5]

इसका अक्षरशः साम्य मानस में है।

'मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बशिष्ठ विपुल बिधि बरनी ॥
बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची ॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू ॥'[6]

अवध से विश्वामित्र प्रयाण भी दोनों ग्रंथों मे वर्णित है।

'गाधिपुत्रस्तदा भूपमनुज्ञां याचतेस्म तम्।
उदस्थात् प्रणतो राजा पत्नीपुत्रसमन्वितः।
आशिषं प्रददौ राज्ञे प्रणताय महामुनिः।'[7]

---

१. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ।
२. मा० ९।३५८।१, २।
३. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४२९।
४. मा० १।३५८।५।
५. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४२९।
६. मा० १।३५८।६ से ८।
७. रा० टी०, आ० रा०, बा० कां०, पृष्ठ ४३०।

'मांगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे।।
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती।।'[1]

बालकांड का उपसंहार भी दोनों ग्रंथों में सम है। दोनों में ही रामचरित माहात्म्य से कांड की समाप्ति होती है।

श्रृणुयाद् वा शुचिर्भूत्वा श्री रामचरितं शुभार।
सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि सत्यं सत्यं न संशयः।।'[2]
'सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु।।[3]

आनन्द रामायण[4] एवं मानस[5] का अयोध्या कांड गुरू चरण कमल रज की वन्दना एवं श्री रामायण माहात्म्य से आरम्भ होता है।

आनन्द रामायण[6] में अयोध्यानगरी की सर्व समृद्ध स्थिति के चित्रण द्वारा कथा-वस्तु का प्रारम्भ होता है जिसका बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप मानस में बर्णित हैं।

'भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी।।
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।।
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती।।
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती।।'[7]

---

१. मा० १।३५९।५, ९।
२. रा० टी०, आ० रा०, बा० का०, ४३२।
३. मा० १।३६१ सो०।
४. 'नत्वा गुरोरंघ्रि सरोजरेणुं रामायणं वांछितदं करोमि।
. प्रेम्णा-श्रुतं यन्निखिलामरेशास्पदं प्रयच्छत्यपि पंडितेभ्यः।।'
रा० टी०, आ० रा०, अयो० का०, पृष्ठ ४।
५. 'श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरू सुधारि।
बरनउं रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि।।' मा० २।१।
६. 'पर्वतश्रेणयो राजन् भुवनानि चतुर्दश।
तेषु चोत्तम कर्माणि मेघा भुत्वा स्थले स्थले।
पूर्णानन्दपयोवृष्टिं कुर्वन्ति वसुधातले।।
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तसुखसम्पदः।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्याब्धिं मिलन्त्यवधवासिनः।।
नराः नार्यश्च सम्पूर्णाः सदा सुकृतकारिणः।
बहुमूल्यानि रत्नानि पवित्राणि पराणि च।।
अयोध्यानगरैश्वर्यं वर्णनातीतमस्ति कौ।
दृष्ट्वानुमीयते धीरैश्चैतावत् स्त्रष्टकौशलम्।।'
रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां० पृष्ठ ६।
७. मा० २।१।२ से ४।

बाह्य सम्पन्नता की भाँति सभी अयोध्यावासी रामचन्द्र के दर्शन करते हुए मानसिक सम्पन्न भी रहा करते थे।

'सर्वथा सुखिनश्चासन्नयोध्यावासिनो जनाः।
वीरस्य रामचन्द्रस्य दृष्ट्वानन कलानिधिम्।।'[१]

'सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचन्द्र मुख चन्द्र निहारी।।'[२]

पुरजन की ही भांति परिजनवर्ग में, अपना मन वांछित फलित देखकर, माताओं की भी दशा आनन्द मग्न थी।

'आलोक्य मुदिताः सर्वा मातरः फलितां लताम्।
स्ववांछा रूपिणीं राजन् सर्वाश्चापि सखीगणाः।।'[३]

'मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।।'[४]

राम राज्याभिषेक के महोत्सव के आनन्द में निमग्न नगरवासी भरत को भी भावी उत्सव के आनन्द का भागी मानकर उनके आगमन की आकांक्षा करते हैं।

'भरतागमनं सर्वे वांछन्ति पुरवासिनः।
नेत्राभ्यां भरतं दृष्ट्वा सुखं मन्यामहेऽमलम्।।'[५]

मानस में वे केवल इच्छा ही नहीं करते वरन् हृदय में इस अभिलाषा की प्रार्थना भी करते हैं।

'भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं।।'[६]

इसके पश्चात् राम वनवास के निषाद राज केवट के प्रसंग में आनन्द रामायण एवं मानस में पूर्ण शब्द, भाव एवं अर्थ साम्य है।

'क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ दारूदृषदोः किमन्तरे।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रथीयसी।।
आदावहं क्षालयित्वा पादरेणूंस्तव प्रभो।।
पश्चान्नौकां स्पर्शयामि तव पादौ रघूद्वह।
नौ चेत् त्वत्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति।'[७]

मानस की अवधी की मिठास से युक्त इसका भावानुवाद दृष्टव्य है।

'चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।'[८]

---

१. रा० टी०, आ० रा० अयो० कां०, पृष्ठ ७।
२. मा० २।१।५।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ८।
४. मा० २।१।७।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २२।
६. मा० २।१०।२।
७. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १२६।
८. मा० २।९९।४ से ६।

केवट के तर्कों की ही भाँति राम द्वारा केवट प्रार्थना स्वीकृति में भी साम्य का संकेत है।

'इति तदवाक्यमाकर्ण्यविहस्य रघुनंदनः।
तेन संक्षालितपदो नौकां तामरूरोह सः ॥'[१]

मानस में उपर्युक्त की भाँति कथा रूप में कथन न होकर राम के अनुग्रह प्रदर्शन का रूप परिलक्षित होता है और भावनिमग्न दशा भी।

'कृपा सिन्धु बोले मुसकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनि जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहिं पारू॥'[२]

वन भ्रमण में ही बाल्मीकि-राम-संवाद में बाल्मीकि द्वारा निर्देशित विभिन्न निवास स्थानों को सुनकर राम अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये।

'बाल्मीकिर्मंदनानीत्थं दर्शयामास राघवम्।
श्रुत्वा रामोऽतितुष्टोऽभूद् बचनं प्रेमपूरितम् ॥'[३]

'एहि विधि मुनिवर भवन दिखाए। वचन सप्रेम राम मन भाए॥'[४]

राम से वाल्मीकि तपोभूमि चित्रकूट में निवास का उस स्थान को गौरवान्वित करने का अनुरोध करते हैं:—

अत्र्यादयो मुनिश्रेष्ठाः सन्ति योगं जपं तथा।
कुर्वन्ति तपसा देहं क्षीणं चापि निरंतरम्॥
व्रज राघव सर्वेषां श्रमं च सफलं कुरू।
गौरवं गिरिराजाय वितर त्वं च साम्प्रतम्॥'[५]

'अत्रि आदि मुनिवर तहं बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥'[६]

राम की चित्रकूट निवास की झांकी दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण दृष्टव्य है।

सीता लक्ष्मणसंयुक्तो रामो राजति मंदिरे।
वसंत-रतिसंपन्नो मुनिवेषः स्मरो यथा॥'[७]

मानस में केवल अन्तर इतना है कि आनन्द-रामायण के उदाहरण अलंकार के स्थान पर यहाँ उत्प्रेक्षा सजीव हो उठी है।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० पृष्ठ १२७।
२. मा० २।१००।१, २।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां, पृष्ठ १६६।
४. मा० २।१३१।१।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १६७।
६. मा० २। १३१।७,८।
७. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १६८।

'लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि-वेष जनु रति रितुराज समेत ।।'[1]

उक्त शोभनीय झाँकी के दर्शन हेतु अमर गण भी लालायित हो उठे। अपनी-अपनी दिव्य पुरियों को त्याग कर दर्शन करने चित्रकूट पधार कर नेत्रों को सुफल करने लगे।

'अमरा किन्नरा नागा दिक्पालाश्च तदागता: ।
चित्रकूटं रघुश्रेष्ठ: प्रणनामाखिलान् सुरा: ।
लब्ध्वा स्वनेत्रयो र्लाभं कृतपुण्याश्च हर्षिता: ।।'[2]

'अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला।
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ।।'[3]

त्रिलोकगत देव, किन्नर, गंधर्व की ही भाँति वन के कोल किरातादि भी अपनी अपनी भावनाओं के प्रतीक-स्वरूप नाना उपायन लेकर राम के दर्शनार्थ उपस्थित हुये।

'प्राप्येमं सुसमाचारं किराता याश्च हर्षिता: ।
कंद मूल फलानीमे गृहीत्वा दृष्टुमागता: ।।'[4]

मानस के प्रसंग-साम्य में विशेषोक्ति[5] का समावेश है। उत्प्रेक्षा अलंकार की

इस प्रसंग में अलंकार-योग भाव प्रकटीकरण का प्रमुख साधन बन कर विशेषोक्ति का उदाहरण बन गया है।

'यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई।।
कंद मूल फल भरि-भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना ।।'[6]

वनचर कोल किरातों के भावों को भाव-ग्राही राम ने हृदय से अंगीकृत कर उन्हें आश्वस्त एवं परितुष्ट किया।

'प्रेम प्रिय: सदा रामो विज्ञा जानंतु सेवका: ।
राम: कोमलया वाण्या तान् प्रसन्नांश्चकार ह।'[7]

'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा।।
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु वचन प्रेम परितोषे ।।'[8]

---

१. मा २।१३३।
२. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १६९।
३. मा० २।१३३।१, २।
४. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १७०।
५. सामान्यनिबन्धे विशेषाभिधान विशेषोक्ति:'
काव्य मीमांसा, अध्याय १३, पृष्ठ १७०।
६. मा० २।१३४।१, २।
७. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १७२।
८. मा० २।१३६।१, २।

इसी प्रकार भाव-मग्न हृदय से राम गुणगान करते सभी दर्शक-गण अपने घर सिधारे और इधर राम नित्य प्रति दिन सुखदायिनी लीलाएं करते रहे ।

'ततः प्रणम्य ते जग्मुः गृहं रामगुणान् शुभान् ।
श्रृण्वंतः कथयंतश्च वसंति विपिने प्रियौ ।
सुखदौ मुनिदेवानां ससीतौ भ्रातरावुभौ ।।'[१]

'विदा किये सिर नाइ सिधाये । प्रभु गुण कहत सुनत घर आये ।।
एहि विधि सीय सहित दोउ भाई । बसहिं बिपिन सुरमुनि सुखदाई ।।'[२]

वनवासियों के परितोष से भी अधिक सीता का अनन्य अनुराग, त्याग भावना भी स्तुत्य है ।

'श्रीरामसंगे वैदेही सुखिताऽसीत •पुरस्य च ।
कुटुंबस्य गृहस्यापि स्मृतिं विस्मृत्ये सुंदरी ।
प्रियचन्द्राननं दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता यथा ।
प्रतिक्षणं विधुं वीक्ष्य चकोरस्य कुमारिका ।।'[३]

मानस में पूर्णतः प्रतिबिम्ब-कल्प है ।

'रामसंग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन घर सुरति बिसारी ।।
छिन-छिन पिय विधु बदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ।।'[४]

राम की सार्वभौम लोकप्रियता एवं चराचर नियन्ता का रूप भी स्पष्टतः परिलक्षित है जिससे जंगल में भी मंगल ही विद्यमान है ।

'खगानां च मृगाणां च मुनीनां च दिवौकसाम् ।
हितकारी रघु श्रेष्ठस् त्वेवं वसति कानने ।
रामस्यारण्यगमनं शोभनं वर्णितं मया ।।'[५]

'एहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी ।।
कहेउं राम वन गवन सुहावा ।'[६]

निषाद-सुमंत्र-संवाद में भी पूर्णतः वर्ण साम्य है ।

'धृत्वा धैर्यं गुहः प्राह विषादं त्यज साम्प्रतम् ।
त्वं सुमंत्र सदा विद्वान् धैर्यं धर परार्थवित् ।।'[७]

---

१. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १७२ ।
२. मा० २ । १३६ । ३, ४ ।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १७६ ।
४. मा० २ । १३९ । १, २ ।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १७९ ।
६. मा० २ । १४१ । ३, ४ ।
७. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १८० ।

मानस में हेतु-व्यत्यय' के अनुसार पूर्ण साम्य होते हुए भी दैव-वैपरीत्य कारणोल्लेख की विशेषता है।

'धीरज धरि तब कहहि निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु विषादू ॥
तुम पंडित परमारथ ज्ञाता। धरहु धीर लखि विमुख विधाता ॥'[1]

सचिव सुमंत्र का ग्लानिमय सजीव-चित्रण अत्यधिक मर्मस्पर्शी एवं मनोवैज्ञानिक है।

'हस्तयोर्मदनं कृत्वा शिरः संताड्य चाकरोत्।
पश्चात्तापं महामंत्री नष्टेऽर्थे कृपणो यथा।
पलायितो महावीरः संग्रामाच्च यथा तथा ॥'[2]

मानस में प्रतिबिम्ब-कल्प होते हुये अलंकार-भेद है। आनन्द-रामायण के उदाहरण अलंकार के स्थान पर उत्प्रेक्षा का प्रयोग है।

'मींजि हाथ सिर धुनि पछिताई मनहुँ कृपिन धन रासि गँवाई ॥
बिरद बांधि बर बीर कहाई। चले समर जनु सुभट पराई ॥'[3]

राम-वियोग से वज्राहत दशरथ के दिवंगत होने पर सारा अवध करुणासागर में निमग्न हो उठा। तब ज्ञान-स्वरूप कर्णधार वशिष्ठ ने अपनी ज्ञान-नौका प्रवाहित की उन सब शोक-निमज्जित प्राणियों के उद्धार हेतु—

'कालानुकूलं विविधान् इतिहासान् मनोरमान्।
वसिष्ठः कथयामास सर्वशोकहराय च ॥'[4]

मानस में गुरु के ज्ञान-प्रकाश का भी विशेषोल्लेख है।

'तब वसिष्ठ मुनि समउ सम कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहिं कर, निज विज्ञान प्रकास ॥'[5]

बसिष्ठ भरत से शोचनीय वर्गों की तालिका का वर्णन करते हुये दशरथ को सब प्रकार स्तुत्य ही बताते हैं।

'धन्यस्त्वं यस्य तनयः साक्षान्नारायणोऽभवत्।
रामोऽयं लक्ष्मणः शेषो भरतोऽब्जोऽरि शत्रुहा ॥'[6]

उक्त प्रसंग में मानस का 'सरिस' शब्द पूर्वोक्त अवतार का संकेत करता है। समाहार है अथवा विषय प्रतिपादन में वैभिन्न्य है। आनन्द-रामायण में विष्णु के अंशावतारों की ओर संकेत है जबकि मानस में सबके चरित्र की शालीनता की ओर है।

---

१. मा० २। १४२। १, २।
२. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां० पृष्ठ १८१, १८२।
३. मा० २। १४३। ७, ८।
४. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ १९३।
५. मा० २। १५६।
६. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २०९।

'कहहु तात केहि भाँति कोउ, करिहिं बड़ाई तासु।
राम लषन तुम शत्रुहन, सरिस सुवन सुचि जासु।।'[१]

चित्रकूट प्रयाणोत्सुक राम दर्शनातुर भरत को कर्त्तव्य निष्ठा का सम्यक् ध्यान है। अपनी अनुपस्थिति में राम की थाती अयोध्या की पूर्ण सुरक्षा का पूर्ण कार्य संचालन भार सुयोग्य मंत्री को सौंपते हैं।

'सुमंत्राय ददौ वस्त्रं तदधीनां पुरी व्यधात्।'[२]

मानस में अनेक पुण्यवान् मंत्रियों पर यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं।

'सौंपि नगर सुचि सेवकनि, सादर सबहिं चलाइ।'[३]

चित्रकूट-संवाद की अभिवादन-प्रक्रिया में भी साम्य है।

'प्रणनाम पुनर्भ्रातृद्वयं मुनिगणं मुदा।
प्राप्याशिषं महानन्दम् यथेच्छं प्राप तत्क्षणे।।'[४]

'पुनि मुनि गन दुहु भाइन्ह वन्दे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे।।'[५]

तथा

'आलिलङ्ग वसिष्ठस्तु दृष्ट्वा श्रीरामलक्ष्मणौ।'[६]

मानस में 'धाइ' शब्द अपनी विशेष छटा रखता है। गुरू की-विशेष सस्नेह कृपा का प्रतीक भी है।

'मुनिवर धाइ लिए उर लाइ।'[७]

राम-लक्ष्मण-गुरू के सामूहिक वर्ग एवं पूर्णांग स्वरूप से ही आशीर्वाद के सौभाग्य शाली बने।

'ववन्दे गुरूपत्नीश्च विप्रपत्नीयुता मुदम्।
आशिषं प्राप्य मनुज व्याघ्रोऽगात् सत्कृतास्तथा।।'[८]

मानस में 'व्युत्क्रम' समन्वित साम्य है। विशेषण आभरण-रहित तुलसी मुनि-पत्नियों का सन्मान कैसे कर सकते थे। अतएव

'गुरूतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे संग आईं।।
गंग गौरि सम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं।।'[९]

अभिवादनान्तर राम सभी इष्ट एवं गुरू वर्गों सहित आश्रम में पधारे।

---

१. मा० २।१७३।
२. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २२६।
३. मा० २।१८७।
४. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २८०।
५. मा० २।२४१।२।
६. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २८१।
७. मा० २।२४२।४।
८. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २८२।
९. मा० २।२४४।१,२।

'ततो गुरूवरान् मन्त्रिद्विजानादाय राघवः ।
प्रतस्थे सर्वाश्रमं दिव्यं भरतेन सह लक्ष्मणः ।।'[१]
'महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ ।
पावन आश्रम गवन किय, भरत लषन रघुनाथ ।।'[२]

अरण्य निवासी वन्य जाति भी सुशीलता, शालीनता, विनम्रता एवं आतिथ्य धर्मादि गुणों से समन्वित है । यह रूप सर्वथा स्तुत्य है, सराहनीय है, अनुकरणीय है ।

'कन्दैर्मूलैर्वनोद्भूतैरर्हणाञ्चकुरादरात् ।'
ग्रहीतुकामास्तिष्ठामो वयं किं भणितुं क्षमा ।
अरण्येऽत्र महाराजा यूयं शासितुमर्हथ ।।'[३]

मानस में उक्त वस्तु-चित्रण में विशेष भावुकता, सजीवता एवं चित्रात्मकता एवं अलंकारिकता का समावेश है ।

'कोल किरात भिल्ल बनवासी । मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ।।
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी ।।
सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि-कहि स्वाद भेद गुन नामा ।।'

तथा

'तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे । सेवा जोगु न भाग हमारे ।।
देब काह हम तुम्हहि गोसांई । ईंधन पात किरात मिमाई ।।
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन बसन चोराई ।। '[४]

चित्रकूट में सेवा धर्म की प्रतीक स्वरूपा सीता भी अपना कर्त्तव्य-तन्मयता से निर्वाह कर आशीर्वाद की भागिनी बनती हैं ।

'सर्वं श्वश्रूजनं सीता सिषेवे नैकरूपतः ।
ततस्तुष्टाश्च सीतायै दत्तवत्यः शुभाऽशिषम् ।।[५]

मानस के इस रूप में अलौकिकता एवं समरसता के चित्रण से विशेषोक्ति है । आनन्द-रामायण में केवल मानवी रूप ।

'सीय सासु प्रति वेष बनाई । सादर करैं सरित सेवकाई ।।
सीय साय सेवा बस कीन्हीं । तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं ।।[६]

शील-विनय-युक्त सत्कार, समादर का भाव समस्त नारी-वर्ग में विद्यमान है । इसका ज्वलंत उदाहरण है ।

---

१. रा० टी०, आ०अयो० कां०, पृष्ठ २८३ ।
२. मा० २।२४५ ।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २८७, २८८ ।
४. मा० २।२४९।१ से ३, तथा २।२५०।१ से ३ तक ।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ २८९ ।
६. मा० २।२५०।२,४।

'सीता माता च कौशल्या दर्शनार्थं समागता ।
दत्वा कालानुकूलं चासनं कोसलकन्यका ।
चकार तस्याः सन्मानं शुभैवाक्यैर्मनोहरैः ।।'[१]

'सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनकराज रनिवासू ।।
कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिए समय सम आनी ।।'[२]

चित्रकूट के राम भरत संवाद की स्नेह सरिता के उमंगित एवं तरंगित प्रवाह में महान् धैर्य एवं विराग के शैल भी द्रवित हो रसमय हो उठे ।

'वसिष्ठो जनकश्चैव तथा मुनिगणा अपि ।
विलोक्य रामचन्द्रस्य प्रीतिं श्री भरतस्य च ।।
अपारामुपमाशून्यां मनसा कर्मणा गिरा ।
वैराग्येण विचारेण सार्धं मग्नाश्चतेऽभवन् ।
यत्र वृद्ध वसिष्ठस्य राजर्षिर्जनकस्य च ।
धिषणा चकिता जाता प्रकृतीनां च का कथा ।।
वियोगवर्णनं श्रुत्वा रामस्य भरतस्य च ।
ज्ञास्यति सकला लोकाः कवयः कठिनाइते ।।'[३]

उक्त प्रसंग का मानस में नट-नेपथ्य रूप प्राप्य है केवल प्रथम पंक्ति में व्युत्क्रम' है ।

'मुनिगन गुरू धरि धीर जनक से । ज्ञान अनल मन कसे कनक से ।।

तेउ बिलोकि कि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार ।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार ।।

जहाँ जनक गुरु गति मति मोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ।।
बरनत रघुबर भरत बियोगू । सुनि कठोर कवि जानहिं लोगू ।।'[४]

दोनों ग्रंथों में विदा-प्रसंग में भी पूर्ण अर्थ-साम्य है ।

'रामो भरत शत्रुघ्नावाल्लिङ्गन् प्रहर्षितौ ।
प्रणम्य रामपादाब्जे निदेशं मूर्ध्नि वै हरेः ।
धृत्वा प्रणम्य वैदेहीं लक्ष्मणं वनदेवताः ।
श्रुत्वाशिषं शुभा प्रेम्णा साकेतं प्रति चेलतुः ।।'[५]

'भेंटि भरतु रघुबर समुझाए । पुनि रिपुदवनु हरषि हियं लाए ।।
प्रभुपद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि राम रजाई ।।
मुनि तापस बनदेव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ।।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां० पृष्ठ ३१४ ।
२. मा० २।२८०।३,४ ।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० पृष्ठ ३४२ ।
४. मा० २।३१६।७, ३१७, ३१७।१, २ ।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का०, पृष्ठ ३४३ ।

लखनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि।।'[1]

मानस में उक्त प्रसंग में मर्यादा एवं भावोत्कर्ष का विशेष चित्रण है।

राम ने भी समस्त गुरुजनों को बड़ी विनय, श्रद्धा एवं सन्मान के साथ सानुग्रह विदा किया।[2]

मानस में नट-नेपथ्य के अतिरिक्त शिव-विष्णु-ऐक्य का भी संकेत है।[3]

राम का स्नेह संकोची रूप तथा उदार दृष्टिकोण सराहनीय है।

'श्रीरामः प्रेषयामास नत्वा भरतमातरम्।
अपनीय च संकोचं चिन्तां तस्याश्च सादरम्।।'[4]

'भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि।।'[5]

सबको विदा देकर राम स्वयं अपने अनन्य अनुरागी भैया भरत के प्रेम-प्रवाह की स्मृति-तरंगों में निमग्न हो उठे।

'भरतस्य शुभां प्रीतिं शशंस प्रियोः पुरः।'[6]

'प्रीति प्रतीति वचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी।।'[7]

सुख-दुख से अतीत, राम को आज भ्रातृविरह में आकुल देख चराचर-व्यापिनी व्यथा उद्भूत हो उठी।

'तदा चराचराः सर्वे चित्रकूट निवासिनः।
देवाश्च दुःखिताः जाता रामावस्थाँ विलोक्य वै।।'[8]

मानस में सबको सहानुभूति में शोक निमग्न ही नहीं, वरंच देवों को सशंकित भी तुलसी ने दिखाया है :—

'तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना।।
बिबुध विलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर-घर की।।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो।।'[9]

---

१. मा० २।३१७।४, ७, ८, ३१८।
२. रा० टी०, आ० रा०, अयो० काँ०, पृष्ठ ३४३।
३. मा० २।३१८।१ से ४।
४. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ३४४।
५. मा० २।३१९।
६. रा० टी०, आ० रा०, अयो० काँ०, पृष्ठ ३४५।
७. मा० २।३२०।५।
८. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० पृष्ठ ३४५।
९. मा० २।३२०।६ से ८।

चित्रकूट स्थित राम का झाँकी-दर्शन दोनों ग्रंथों में अक्षरशः समान है।

'सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमंदिरे।
भक्तिज्ञानविरागाश्च राजन्ते देहिनो यथा ।।'[१]
'सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर ।।'[२]

उधर राम से वियुक्त परिजन पुरजनों का प्रत्यावर्त्तन मार्ग पार करना दुष्कर हो गया, अन्न-जल तक त्याग दिया। गुह ने सबको किंचित् आश्वस्त किया।

'मार्गे गच्छन्ति सर्वे-ते श्रीराम विरहाकुला:
तुष्णीमुत्तीर्य कालिन्दीं निराहाराश्च जाह्नवीम्।
उत्तीर्य लोका: संतुष्टा बभूवुर्ग्रहसेवया।'[३]

इस प्रसंग में एक विशेषता है कि प्रभु-चिन्तन का अवलम्ब सबको संभाले है।

'मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम विरह सब साज विहालू।।
प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं।।
यमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ।।
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम सखा सब कीन्ह सुपासू।।'[४]

जनक जी अवध की राज्य-व्यवस्था को सुव्यवस्थित कर मिथिला गए और इधर अयोध्यावासी गुरू की आज्ञानुसार शन्तिपूर्वक रहते हुए राम-दर्शन-लालसा की अवधि को अवलम्ब मानकर नियमबद्ध जीवन यापन करने लगे।[५]

मानस में इस प्रसंग में पूर्ण साम्य है।[६]

राम-भक्ति-रस-सागर में निमग्न भरत कर्त्तव्य पालन की ओर भी कितने तत्पर एवं संलग्न हैं। काय-विभाजन, आज्ञा पालन एवं प्रजा पालन दर्शनीय है।[७]

मानस में भाषान्तर पूर्णत: प्रतिबिम्ब-कल्प है।[८]

समष्टिगत जीवन के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन भी गुरू आज्ञा पर पूर्णतया अवलम्बित है। भरत का अणु-अणु कार्य गुरू-प्रेरणा पर आधारित है।[९]

---

१. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० पृष्ठ ३४५।
२. मा० २।३२१।
३. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० ३४५।
४. मा० २।३२०।५।
५. रा० टी०, आ० रा०, अयो० का० ३४६।
६. मा० २।३२१। ६ से ८, ३२२।
७. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ३४६।
८. मा० २। ३२२। १ से ५।
९. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां, पृष्ठ ३४७

मानस में यह प्रसंग भी अक्षरशः समानरूपेण वर्णित है ।[1]

भरत के पुनीत मधुर मंजु-मंगलमय आचरण की सभी जन भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे । महर्षि वर्ग भी भरत के त्याग एवं तपस्या के सन्मुख लज्जित हो उठे ।

प्रशंसंति जनाः सर्वे भरतं रघुनंदनम् ।
संकुचन्ति व्रतं श्रुत्वा नियमं साधुसक्षमाः ।।[2]

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं ।।[3]

तुलसी के अयोध्या कांड के भरत-चरित का माहात्म्य भी आनन्द रामायण पर पूर्णतः आधारित है ।

पवित्रो भरताचारः सुंदरो मंगलप्रदः ।
महामोहतमोहारी कलिकल्मषनाशकः ।।
सर्वसंतापसंहारी पापकुंजर केसरी ।
भंजनो भवभारस्य जनानां चित्तरंजनः ।
श्रीराम प्रेम पियूषकरसारसमो नृप ।।[4]

परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु मुद मंगल करमू ।।
हरन कठिन कलि कलुस कलेसू । महामोह निसि दलन दिनेसू ।।
पापपुंज कुंजर मृगराजू । समन सकल संताप समाजू ।।
जन रंजन भंजन भवभारू । रामसनेह सुधाकर सारू ।।[5]

अयोध्याकांड के उपसंहार में भी दोनों ग्रन्थों में पूर्ण समानता है ।

भरत-चरित्र में राम-दर्शन तथा दुख-दरिद्र नष्ट होने का उल्लेख दोनों में समान रूपेण है ।[6]

अरण्य कांड

जयन्त-संवाद में अन्य रामायणों की अपेक्षाकृत आनन्द-रामायण एवं मानस में विशेष साम्य है । दोनों में जयन्त ने सीता के चरण पर आघात किया है ।

'ऐन्द्रिः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् ।
सीतांगुष्ठं मृदुं रक्तं विददारामिषाशया ।।'[7]

तुलसी मानस में इष्टदेवी सीता के चरण का वीभत्स रूप कैसे अंकित कर सकते

---

१. मा० २ । ३२२ । ६ से ८, ३२३ ।
२. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ३४८ ।
३. मा० ३२५ । ३, ४ ।
४. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ३४८ ।
५. मा० ३२५ । ५ से ८ ।
६. रा० टी०, आ० रा०, अयो० कां०, पृष्ठ ३४८ तथा मा० ३ । ३२६ । छंद ।
७. आ० रा०, सार काण्ड, सर्ग ६।८६, ८७ ।

थे अतः उसमें 'हेतु-व्यत्यय'[१] का समावेश कर जयन्त के दुष्कर्म का कारण उसकी दुर्बुद्धि वर्णित की है।

सुरपति सुत धरि बायस बेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा।।
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मन्द मति कारन कागा।।'[२]

राम-अत्रि-संवाद के अन्त में अत्रि मुनि की याचना दोनों ग्रन्थों में समकक्ष है।

'यदि मेऽनुग्रहो-राम त्वयास्ति मधुसूदन।
त्वद्भक्तसंगस्त्वपादे मम भक्तिस्सदास्तु मे।।'[३]

मानस में 'द्वन्द्व-विच्छित्ति' का समावेश है। दो वरदान याचना की अपेक्षा चरण कमलानुराग को ही सर्वोपरि मान उसी में अनन्य निष्ठा की ही कामना प्रस्तुत की गई है।

'बिनती करि मुनि नाइ सिरु कहकर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।।'[४]

अनसूया के मंगलमय उपदेश श्रवणगत कर सीता के आनन्दानुभाव एवं अनसूया का स्नेह समन्वित रूप दोनों ग्रंथों में समानतः दर्शनीय है।

'नत्वा तयालिंगिता सा तदंके समुपाविशत्।'[५]

मानस में वात्सल्य-विषयक-रति के स्थान पर गुरूजन-विषयक रति-भाव प्रदर्शित है।

उधर उसी आश्रम में निष्काम भक्तों के प्रिय दीनानाथ के मधुर वचनामृत सुन अत्रि मुनि भाव-विभोर हो उठे। भक्ति रस के सात्विक अनुभाव उद्भूत होने लगे।

'निष्कामो दीनबन्धुश्च उवाच वचनं मृदु।
तदा रामं विलोक्यैव साश्रुनेत्रोऽभवन्मुनिः।।'[६]

उक्त प्रसंग में मानस में 'नट-नेपथ्य'[७] का ही समावेश है।

'ते तुम राम अकाम पियारे। दीन बन्धु मृदु बचन उचारे।।
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा।।'[८]

---

१. कारण परावृत्या हेतु व्यत्ययः।' काव्य मीमांसा, अध्याय ११, पृष्ठ १६२।
आनन्द रामायण में जयन्त के चोंच मारने का कारण मांस इच्छा है, मानस में रघुपति बल परीक्षा।
२. मा० ३। प्रारम्भिक ।५, ७।
३. आ० रा०, सार काण्ड, सर्ग ६।३७६, ३७७।
४. मा० ३।४ दो०।
५. आ० रा०, सार काण्ड, सर्ग ६।२५।
६. रा० टी०, आ० रा० अ० कां०, पृष्ठ १३।
७. 'अन्यतम भाषान्तरेण परिवर्त्यते इति नट-नेपथ्यम्
काव्य मीमांसा, अध्याय १३, पृष्ठ १६३।
८. मा० ३।५।६, १०।

केवल 'धीरा' शब्द के प्रयोग ने आनन्द रामायण से भी अधिक भावोत्कर्ष प्रदर्शित किया है।

तदनन्तर वन-पर्यटक राम ने विराध को असुर-योनि से मुक्ति प्रदान कर दिव्य लोक भेजा।

'ततो विराधकायात्तु पुरुषश्च विनिर्गतः।
इत्युक्त्वा राघवं स्तुत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥'[१]

मानस में भक्त तुलसी के दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण विराध ने देवलोक नहीं, राम के साकेत धाम की ओर प्रस्थान किया है। यह विशेषता है।

'तुरतहि रूचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा ॥'[२]

अन्य रामायणों की अपेक्षा आनन्द रामायण तथा मानस में सीता को अत्यधिक त्रसित देखकर राम ने लक्ष्मण को शूर्पणखा को विरूप करने का संकेत किया।

'वैदेही सभयं दृष्ट्वा अंगुल्या बोधितोऽनुजा।'[३]
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुजसन सैन बुझाई ॥'[४]

शूर्पणखा द्वारा राम की शूर वीरता की घटनाएँ सुन रावण की सशंकित उक्ति एवं राम के अवतार हेतु के उल्लेख में भी पूर्ण साम्य है।

'निर्दलनार्थं दुष्टानां सज्जनानाञ्च पुष्टये।
भूमेर्भारायनुत्यर्थं जातो राम स्वयं हरिः ॥'[५]

'सुर रंजन मंजन महि मारा। जो जगदीस लीन्ह अवतारा ॥'[६]

मारीच भी रावण के आग्रह पर अपनी मृत्यु निश्चित जानकर भी अपने कल्याण-कारी साधन की कल्पना कर आनन्दित हो उठता है।

'स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा।
मनसा तु स्मरिष्यामि।'[७]

मानस में मारीच-उक्ति में साम्य होते हुये भावना का सूक्ष्म दृष्टि से उत्कर्ष-भाव ही परिलक्षित होता है। आनन्द रामायण में स्मरण भाव है, जब कि मानस में तन्मयता या तादात्म्य-भाव-भक्ति के उच्चतर सोपान की ओर लक्ष्य करता है।

'श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥'[८]

---

१. आ० रा०, सार काण्ड, ६।१५ १७।
२. मा० ३।६।७।
३. रा० टी०, आ० रा०, अ० कां०, पृष्ठ ३६।
४. मा० ३।१६।२०।
५. रा० टी०, आ० रा०, अ० कां०, पृष्ठ ५१।
६. मा० ३।२२।३।
७. रा० टी०, आ० रा०, अ० का०, पृष्ठ, ५७ ५८।
८. मा० ३।२६।छंद।

कबन्ध-प्रसंग में दुर्वासा-शाप का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, मानस में 'संक्षिप्ति' के प्रयोग के साथ-साथ भगवद्दर्शन-माहात्म्य का भी संकेत है।

'रक्षो भवेति शप्तोऽहं मुनिना प्राह मां पुनः।
छेत्स्यतस्ते महाबाहू तदा शापात् प्रमोक्ष्यसे ॥[1]

'तेहि सब कही साप की बाता।'
दुर्वासा मोहिं दीन्हीं सापा। प्रभु पद देखि मिटा सो पापा ॥[2]

उक्त प्रसंग काव्यार्थ मीमांसा के असुसार 'हेतु-व्यत्यय' का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ श्राप मुक्ति का कारण केवल राम द्वारा बाहूच्छेद ही न कह कर प्रभु-पद-प्रदर्शन को भी पाप मुक्ति के विशेष हेतु का निर्देश है।

किष्किन्धा कांड

राम-सुग्रीव-संवाद में राम के असाधारण कर्मों को देख सुग्रीव को विश्वास हो गया राम के अप्रतिम सामर्थ्य पर।

'वद् दृष्ट्वा रामसामर्थ्यं तस्मिन् प्रत्ययमाप सः।'[3]
'देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन भइ परतीती ॥[4]

तारा-बालि-संवाद में भी साम्य होते हुये भी विशेषोक्ति है।

'तत्तारावचनं श्रुत्वा बाली तां वाक्यमब्रवीत्।
जानाम्यहं राघवं तं नररूपधरं हरिम् ॥
तस्य हस्तान्मृतिर्मेस्ति गच्छामि परमं पदम् ॥[5]

मानस का 'सनाथ' शब्द मुक्ति से भी उच्चतर भक्ति के आनन्द का अनुभव कराता है।

'कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौ कदाचि मोहि मारिहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥'[6]

सुग्रीव बालि द्वन्द युद्ध में राम ने सुग्रीव के गले में माला पहनाकर पुनः युद्ध निमित्त भेजा। इस प्रसंग में अन्तर केवल यह है कि मानस में आत्मीयता का प्रदर्शन विशेष है। आनन्द रामायण[7] में लक्ष्मण द्वारा माला पहनवाई, मानस[8] में स्वयं पहनाई है।

---

१. आ० रा०, सार काण्ड, सर्ग ७।५४, ५५।
२. मा० ३।३२।६, ७।
३. रा० टी०, आ० रा०, कि० कां०, पृष्ठ, २०।
४. मा० ४।६।१३।
५. आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग ८, ५४, ५५।
६. मा० ४।७। दो०।
७. 'बंधयामास सुग्रीव कंठे मालां तु बंधुना।
पुनस्तं पेषयामास सोऽपि बालिनमाहवयत् ॥'
आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग ८, ५०-५२।
८. 'मेली कंठ सुमन के माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।'
मा० ४।७।७।

प्रवर्षण पर्वत पर देव-निर्मित रुचिर गुफा का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है। अन्तर केवल यह है कि मानस में देवों की सेवा भावना [१] प्रधान है, आनन्द रामायण में स्वार्थ-साधिका भावना।[२]

हनुमान् को कार्य कुशल जान, अभिज्ञानार्थ राम का मुद्रिका अर्पण प्रसंग भी दोनों में समान है।[३]

सम्पाति के चले जाने के पश्चात् सभी वानर-गण अपने अपने पराक्रम का उल्लेख करने लगे, परन्तु किसी ने भी सागरोल्लंघन की शक्ति अपने में न पाई।[४]

सुन्दर कांड

सीतान्वेषणार्थ लंका की ओर प्रयाण करते समय मैनाक की प्रार्थना पर हनुमान् ने अपने कर स्पर्श द्वारा उसे कृतार्थ कर प्रस्थान किया। आनन्द रामायण [५] में मैनाक की प्रार्थना का भी उल्लेख है, मानस में प्रार्थना सांकेतिक है।[६]

हनुमान् विभीषण संवाद के भक्ति प्रसंग में पूर्ण वर्ण साम्य भी है।

जानन्तश्चापि विस्मृत्य राममेतादृशं प्रभुम्।
भ्रमन्ति ये भवेयुस्ते कथं नो दुःखभागिनः॥
इत्थं रामगुणग्रामं कथयन्तावुभावपि।
अनिर्वाच्यञ्च विश्रामं प्रापतुः कपि राक्षसौ॥[७]

'जानतहूं अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य विश्रामा॥[८]

इन दोनों ग्रन्थों में अन्य रामायणों की अपेक्षाकृत हनुमान् को विभीषण द्वारा सीता के निवास स्थान निर्देश का उल्लेख है।[९] दोनों में बिम्ब-प्रति-बिम्ब भाव है।

---

१. मा० ४।१२।
२. रा० टी०, आ० रा०, कि० कां० पृष्ठ ३०।
३. (१) 'ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुति सत्करे।'
आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग ८।२२।
(२) 'कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी।' मा० ४।२२।१०।
४. (१) रा० टी०, आ० रा०, कि० कां०, पृष्ठ ६०।
(२) मा० ४।२८।६।
५. रा० टी०, आ० रा०, सुं० कां०, पृष्ठ ५।
६. 'जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥
हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।' मा० ५।प्रारंभिक।९, ५।१।
७. रा० टी०, आ० रा०, सुं० कां०, पृष्ठ १६, १७।
८. मा० ५।७।१, २।
९. रा० टी०, आ० रा०, सुं० कां०, पृष्ठ १७।
(२) मा० ५।७।३ से ६ तक।

हनुमान ने अशोक वाटिका में पहुँच कर मौन-अभिवादन कर समस्त रात्रि चिन्तन में व्यतीत कर दी।

'दृष्ट्वा स्वान्ते प्रणामं वै कृतवान्पवनात्मजः।
उपविष्टो व्यतीता च याममाना विभावरी॥'[1]

'देखि मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा॥'[2]

लंका-दहन प्रसंग में 'रहा न नगर बसन घृत तेला' का आधार निम्नांकित स्पष्ट एवं विस्तृत है।

ध्वजोष्णीषपताकाभिर्विप्राणां वसनैरपि।
मन्दोदर्यादिवस्त्रैश्च भिक्षूणां वसनादिभिः।
स्वेष्ट्यमाने लांगूले व्यवर्द्धत महाकपिः।
तदा कोलाहलश्चासीद् वस्त्रार्थं प्रति सद्मनि।
नासीन्निशायां दीपार्थं शिशूनापि नो घृतम्॥'[3]

राम विभीषण मिलन में राम ने भक्ति का प्रमुख तत्व अनन्य शरण्यत्व की और संकेत करते हुए यही उपदेश दिया।

'जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥'[4]

उक्त भाव का मूल रूप हमें आनन्द रामायण में सारांशितः स्पष्ट मिलता है।

'रामो माता मत्पिता रामचन्द्रः,।
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्व - मे रामचन्द्रो दयालु
नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥'[5]

लंका काण्ड

श्रीराम के सेतु-बन्धन का आदेश पाकर परमविज्ञ जामवन्त प्रभुनाम महत्व का भाव संतरणकारी रूप में उल्लेख करते हैं।

'जाम्बवानपि तं प्राह प्राञ्जलिः श्रूयतां प्रभो।
त्वन्नामसेतुमारूह्य तरन्ति भवसागरम्॥'[6]

गोस्वामी जी ने इसका यथार्थ भावानुवाद किया है केवल अन्तर सम्बोधन मात्र का है। आनन्द रामायण के 'प्रभो' शब्द की अपेक्षाकृत मानस के 'भानुकुलकेतु' में विशेष अर्थगाम्भीर्य एवं भावगुरुता है।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, सु० कां०, पृष्ठ १७।
२. मा० ५।७।७।
३. आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग ९।९१-९४।
४. मा० ५।४७।४,५।
५. रा० टी०, आ० रा०, सु० कां०, पृष्ठ ७१।
६. रा० टी०, आ० रा० लं० कां०, पृष्ठ ३।

'सुनहु भानुकुलकेतु, जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं ।।'[1]

श्रीरामेश्वर लिङ्ग स्थापना की मनोकामना भी दोनों ग्रंथों में समान रूपेण ही व्यक्त हुई है। सेतुबन्धन होते ही राम कामदायक शंकर स्थापना का संकल्प करते हैं। तदनन्तर सभी वानरों एवं मुनियों से परिवृत होकर राम ने विधि सहित बालुका के शिवलिंग की स्थापना की।

दोनो[2] ग्रंथों में भाव-साम्य होने पर भी गोस्वामी जी की भावदृष्टि एवं सूक्ष्म-विवेचक-बुद्धि सराहनीय है। तुलसीदास जी ने 'बिहँसि' शब्द की योजना कर राम के हृदय का आनन्दोल्लास भी अभिव्यक्त कर उसमें माधुर्य परिवेष्टित कर दिया है। इसके अतिरिक्त आनन्द रामायण के 'मुनिभिः परिवेष्टिताः' के प्रसंग में तुलसी ने स्वाभाविकता ला दी हैं। रामेश्वर स्थापना के समय मुनियों का वानरों द्वारा 'बुलाया जाना' नितान्त संगत कथन है।

'रामेश्वर-माहात्म्य प्रसंग' में भी दोनों ग्रंथों में पूर्ण साम्य है।

'अस्य रामेश्वरस्यैव दर्शनं यः करिष्याति।
तनुंहित्वा हरेलोकं संगच्छेद् ब्रह्मवाञ्छितम् ।।[3]'

'जे रामेश्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।।'[4]

उक्त अवतरणों में रामायण के 'हरिलोक' के स्थान पर मानस में 'मम लोक' प्रयुक्त हुआ है। तुलसी के राम 'हरि' के अवतार हैं अतएव तुलसी के लिए हरि लोक एवं 'ममलोक' दोनों पर्यायवाची ही है।

दोनों ग्रंथों में मंदोदरी रावण को राम भजन का उपदेश देती है।

'सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ।।'[5]
'रामहिं सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिय रघुनाथ ।।'[6]

वर्णाश्रम-धर्म एवं समाज मर्यादा के परिपोषक एवं भक्त तुलसी उसी पूर्वोक्त भाव में भक्ति की मुद्राओं एवं राजकुल-मर्यादा का विशेष योग कैसे न करते?

---

१. मा० ६।२ सो०।
२. आ० रा०, सारकाण्ड, १० सर्ग ।१२४ पृष्ठ ५। तथा मा० ६।१।२, ४ से ६।
३. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ६।
४. मा० ६।२।१।
५. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ १२।
६. मा० ६-६।

दोनों ग्रंथों में लंका शिखर पर स्थित मंदिर में रावण के जाने का उल्लेख है। साथ ही उस मल्लस्थान पर स्थित रावण के किरीटादि नष्ट होने का भी दोनों में समान उल्लेख है।[1]

अंगद-रावण-संवाद में दोनों ग्रंथों में अंगद रावण को राम-भजन करने की सम्मति देता है।

'एवं विविच्य रामस्य भजस्व पाद-पंकजम्' ॥'[2]

मानस में केवल चरण कमल का ही भजन, अपितु 'रूप-पूजा' से गुण-पूजा के उन्नत सोपान की ओर आदेश है।

'अस बिचारि भजु राम उदारा ॥[3]'

उक्त परामर्श पाते ही रावण का क्रोध दोनों में समान रूपेण वर्णित है।

'उवाच क्रोध संयुक्तो वानरं स दशाननः ।
जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरीद्मरिवाग्निमत् ॥'[4]

मानस में भाव-साम्य के साथ साथ उपमा साम्य भी विद्यमान है।

'सुनत वचन रावन पर जरा। जरत महानल जनु घृत परा ॥'[5]

उसी संबाद में अंगद द्वारा रावण के प्रति क्षोभ प्रदर्शन में भी पूर्णतः साम्य है।

'एवं विविच्य रे दुष्ट न हन्मि त्वां च पापकृत् ।
नोत्पादयस्व मे क्रोधं साम्प्रतम् राक्षेश्वर ॥'[6]

मानस में तुलसी राम-विरोधी रावण को राक्षेश्वर कैसे कहते अतः उन्होंने तो अपने व्यक्तित्व के अनुरूप क्षोभ-प्रदर्शक शब्द 'खल' ही प्रयुक्त किया।

'अस बिचारि खल बधेउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥'[7]

इसी संवाद के अंतर्गत शंकर जी रावण को हतश्री का उल्लेख करते हुए राम की भृकुटि-विलास की विवेचना करते हैं।

'उन्मीलयन्सृजत्येतन्नेत्रे रामं. जगत् त्रयम् ।
उपसंम्रियते सर्वं तेन चक्षुर्निमीलनात् ॥'[8]

---

१. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ २२। तथा मा० ६।१३।क।, ६।१३।२।
२. रा० टी०, आ० रा० लं० कां०, पृष्ठ ४१।
३. मा० ६।२६।८।
४. रा० टी०, आरा०, लं० कां०, पृष्ठ ४१।
५. मा० ६।२६।८।
६. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ४७।
७. मा० ६।३०।५।
८. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५३।

'उमा राम की भृकुटि बिलासा।
होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ।।'[१]

अंगद के सुसंबोधन का मरणासन्न रावण पर कोई प्रभाव न पड़ा[२] इसका उल्लेख दोनों में समान है, केवल मानस में गोस्वामी जी रावण के मुमूर्षु रूप का भी निष्कर्ष निकाल लेना संगत ही है।[३]

दोनों ग्रंथों में अंगद के अतुलित बल ने पराक्रम को देखने के पश्चात् मन्दोदरी से रावण को राम का अद्वितीय स्वरूप अवगत कराया और मारीच की शिक्षा न मानने पर भर्त्सना की।[४]

इतना ही नहीं, मन्दोदरी ने रावण के हीन-पराक्रम पर भी दृष्टि डाली और कहा कि यदि ऐसा ही था तो सीता स्वयम्बर में ही क्यों न युद्ध में राम से विजय प्राप्त कर सीता को ग्रहण कर सके।[५] इंद्रसुत जयन्त को राम के बल का परिचय प्राप्त है। इस तथ्य का मन्दोदरी द्वारा उल्लेख दोनों ग्रंथों में प्राप्त है।[६] भावानुवाद के साथ-साथ इस प्रसंग में आनन्द रामायण से अधिक बलाघात है। रावण के 'बल बिपुल बिसाल' होते हुए भी वहाँ विजय न मिली और युद्ध का साहस न किया तो अब क्या कर सकोगे? यह अर्थ भी व्यंजित है।

मंदोदरी के उपदेशमय वचन रावण को बाण सम प्रतीत हुए और वह स्वयं गर्वान्वित होकर सिंहासनासीन होकर सभा-मध्य स्थित हुआ।[७] इस प्रसंग-साम्य में[८] मानस में अपेक्षाकृत अनुकूल समय का उल्लेख अत्यन्त संगत है। मन्दोदरी के लिए रात्रि के एकान्त समय में ही पति को भर्त्सना, शिक्षा, चेतावनी इत्यादि देना उचित था।

इधर अंगद के लंका से प्रत्यावर्तन पर अंगद के कर्म के प्रति राम का आश्चर्य दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण ही व्यक्त किया गया है।[९]

रावण के मुकुटों का राम के पास उत्क्षेपण का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है।[१०]

---

१. मा० ६।३४।७।
२. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५३।
३. मा० ६।३४।९।
४. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५५। तथा मा० ६।३५।८।९।
५. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५६।
   (२) मा० ६।३५।१०।११।
६. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां० पृष्ठ ५६।
   (२) मा० ६।३५।१२।
७. रा० टी०, आ० रा० लं० कां०, पृष्ठ ५८।
८. मा० ६।३७।१,२।
९. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५८।
   (२) मा० ६।३७।५ से ७।
१०. रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ५९। तथा मा० ६।३८।क।

अंगद से रावण के समस्त समाचार ज्ञात करने के पश्चात् राम ने सभी मंत्रियों को बुलाकर लंका द्वारों को नष्ट करने के उपाय पर परामर्श किया।[1] तत्पश्चात् वानरों ने चारों दिशाओं से लंका को घेर लिया।[2] इस प्रसंग में भी साम्य है। केवल मानस में चित्रात्मकता का समावेश अपेक्षाकृत अधिक है।

दोनों में माल्यवान् द्वरा रावण को उपदेश दिया गया है, अन्तर केवल यह है कि मानस में माल्यवान् ने अपनी शिक्षा मानने का आग्रह किया है,[3] जबकि आनन्द रामायण में रावण की इच्छा पर ही छोड़ दिया है,[4] क्योंकि भक्त तुलसी प्रत्येक पात्र को राम भक्ति से समन्वित देखना चाहते हैं।

संजीवनी-औषधि-आनयन के लिये गये हुए हनुमान को मार्ग में भरत से भेंट हुई और उन्होंने राम सम्बन्धी समस्त समाचार संक्षेपतः उनसे वर्णित किये।[5]

दोनों ग्रन्थों में कुम्भकरण-सुग्रीव का द्वन्द युद्ध वर्णित है। कुम्भकरण द्वारा सुग्रीव को लेकर युद्ध भूमि से चल देना तथा सुग्रीव द्वारा कुम्भकरण के नाक कान काटने का उल्लेख दोनों में समान रूप से वर्णित है। अन्तर केवल इतना ही है कि आनन्द रामायण में कुम्भकरण ने सुग्रीव को त्रिशूल से भेदन किया और मानस में केवल बगल में दबाकर ही चला। आनन्द रामायण में वह सुग्रीव को लंकापुरी तक ले आया, तब सुग्रीव ने पुरवासियों के सामने उसके अंगों की क्षति की[6], जबकि मानसकार राम सेना संचालक सुग्रीव को अधिक देर तक कष्ट में न देख सकते थे अतः मार्ग में ही स्वस्थ होते ही उक्त घटना वर्णित कर दी।[7]

विकट-युद्ध में राम के युद्ध करते समय अद्‌भुत चमत्कार के चित्रण का दोनों ग्रन्थों में साम्य है। राम द्वारा संधानित वाण क्षण भर में असंख्य राक्षसों का संहार करके पुनः राम के तूणीर में प्रविष्ट हो जाते थे।[8] मानस की अपेक्षाकृत आनन्द रामायण में उन वाणों ने अपने को इस कार्य से कृतकृत्य माना है।

---

१. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ६०।
   (२) मा० ६।३८।१,२।
२. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ६०।
   (२) मा० ६।३८।७।१०।
३. मा० ६।४७।५,६।
४. आ० रा०, सारकाण्ड, सर्ग १०,६२,६३।
५. (१) रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ ८९।
   २।मा० ६।५९।२।
६. आ० रा०, सारकांड, सर्ग १७।५४,
७. मा० ६।६५, ६।६५।६।
८. १।रा० टी०, आ० रा०, लं० कां०, पृष्ठ १०२।
   २।मा० ६।६८।

राम-कुम्भकरण युद्ध में, कुम्भकरण द्वारा आक्रमणार्थ उखाड़े हुये शैल सहित उसकी भुजा को राम ने काट डाला। भुजा-विहीन वह भूधराकार कुम्भकरण वस्तुत: पक्षहीन मंदराचल की भाँति प्रतीत होने लगा।[1] दोनों में पूर्ण साम्य होते हुए भी गोस्वामी जी की स्वाभाविक खोझ 'खेल' शब्द से स्पष्ट रूपेण अभिव्यक्त है। कुम्भकरण की मृत्यु के पश्चात् विलाप करते हुये रावण को मेघनाद द्वारा सान्त्वना देने तथा स्वगुण-शौर्य-कथन द्वारा ढाढ़स बंधाने का उल्लेख भी दोनों ग्रन्थों में है।[2]

मरणोन्मुख मेघनाद ने मृत्यु को सन्निकट देख निष्कपट भावना से अन्तिम समय में राम लक्ष्मण के नाम का उच्चारण सद्भावना से किया। आनन्द रामायण में तो इस भावना का निर्णीत रूप भी अंकित है।

'साक्षाच्छेषशराघातैर्हतोऽहं मुक्तिमागत:'[3]

उत्तर कांड

अन्य कांडों की भाँति इस कांड में भी आनन्द रामायण से अनेक आधार-स्थल प्राप्त हैं, जिनका उल्लेख निम्नांकित है।

श्री राम को वनवास से आया हुआ जानकर अयोध्या के आबाल वृद्ध नर-नारि उमड़ पड़े। इस तथ्य का दोनों ग्रन्थों में अर्थ साम्य है।[4] परन्तु मानस का 'हरषि' शब्द कवि के विशेष आनन्दातिरेक का परिचायक है।

मिलन एवं अभिवादन प्रसंग में भी पूर्ण साम्य है।[5] अयोध्यावासियों की वियोग जनित पीड़ा राम के दर्शन मात्र से विलीन हो गई। सभी को आश्वासन देकर राम भवनों की ओर अग्रसर हुए। इस साम्य में गोस्वामी जी को आलोचिका दृष्टि का भी निजी महत्व है।

उक्त प्रसंग में तुलसी ने राम के शील का परिचय आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत विशेष दिया है, क्योंकि तुलसी का लक्ष्य 'सील-गुन-धाम' राम का चित्रण करना है। अतएव सभी प्रसंगों में वे राम के इस गुण की अभिव्यक्ति करना नहीं भूलते।

---

१. १। आ० रा०, सारकांड, सर्ग ११।५७।
 २। मा० ६। ६९। १०, ११।
२. १। आ० रा०, सारकांड, सर्ग ११।१६४।
 २। मा० ६। ७१। ६, ७।
३. आ० रा०, सारकांड, सर्ग ११। २०८।
४. १। रा० टी०, आ० रा०, उ० कांड, पृष्ठ ८।
 २। मा० ७। २। ४।
५. १। रा० टी०, आ० रा०, उ० कांड, पृष्ठ १४।
 २। मा०। ७। ५। २, ३, ८।

राम के स्वागत समारोह में कुल ललनाओं द्वारा राम की आरती उतारने एवं उन पर न्यौछावर करने के प्रसंगों में भी पूर्ण साम्य है।[१] केवल मानस के विषय प्रतिपादन में चित्रात्मकता, सरसता एवं हर्षोल्लास, आनन्द रामायण से अधिक व्यंजित है।

राम-राज्याभिषेक के महोत्सव में आगत महादेव की विदा एवं बानरों को निवास-स्थान-दान प्रसंग भी दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण वर्णित है।[२] मानस में कवि ने प्रत्यक्ष शैली द्वारा स्वतः शिव द्वारा भक्ति-याचना कराई है और राम द्वारा 'मौन एवमस्तु' की स्वीकृति का संकेत किया है, जिसकी अभिव्यक्ति 'हरषि' शब्द से होती है तथा भक्ति के साथ-साथ युगानुकूल साधन 'सत्संग' की याचना भी शिव द्वारा कराकर, सत्संग-महिमा पर भी प्रकाश डाला है।

राम द्वारा अपने सखा वर्ग के प्रति कृतज्ञतार्पण का प्रसंग भी दोनों में उल्लिखित है।[३] इतना ही नहीं, अपने सखाओं को विदा देते समय भगवान् रूप में स्वजय-घ्यान का आदेश भी प्रदान किया।

> 'अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ।
> एकाग्रमानसे नैव ध्येयोऽहं मजतां सदा ॥'[४]

मानस में आदेश तो दिया है साथ ही अन्ध-जप नहीं। राम के स्वरूप का भी ज्ञान कराना गोस्वामी जी ने अपेक्षित समझा अतः वे राम से कहलाते हैं।

> 'अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
> सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम ॥'[५]

प्रभु को विदा देते देख सभी सखा वृन्द अवाक् रह गये। उनके अनुभावों का चित्रण दोनों में समान है।[६] मानस के इस प्रसंग में आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत दैन्य एवं भक्ति की झलक विशेष है।

विदा के समय अंगद के शरणागत आर्त भक्त के हृदय-द्रावक चित्रणों में पूर्ण भाव साम्य है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ आनन्द रामायण में तार्किक पक्ष अधिक है[७] वहाँ मानस में भक्तानुरोध का प्राबल्य है।[८]

---

१. १। आ० रा०, सारकांड, सर्ग १२। ९८,
   २। मा० ७। ८। ५, ६।
२. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ २९।
   (२) मा० ७।१४।
३. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३०।
   (२) मा० ७।१५।२ से ४।
४. रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३१।
५. मा० ७।१६।
६. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३१।
   (२) मा० ७।१६।१, २।
७. रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृ० ३३।
८. मा० ७।१७।३, ४, ५, ८।

विदा देते समय राम ने अपने सखा निषादराज से अवध आते जाते रहने का अनुरोध भी किया।

'यातायातं सदा मित्र पञ्चमे सप्तमेऽहनि।
करणीयम्प्रयत्नेन स्वगेहाद् भवने मम ॥'[१]

मानस में भी निषाद को भ्रातृवत् स्नेहाधिकारी मानकर राम ने पूर्वोक्त अनुरोध ही किया।

'तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेउ पुर आवत जाता ॥'[२]

निषादराज इस प्रेमानुरोध को सुनकर भाव-विह्वल हो उठे और प्रभु के चरण-कमलों का चिन्तन करते हुए अपने पुर पहुँचे।[३] मानस में निषाद के इन सात्विक अनुभावों के अतिरिक्त मानसिक अनुभव 'प्रमोद' का भी उल्लेख है। इतना ही नहीं उनकी भावोर्म्मि उनके मुख द्वारा प्रस्रवित हो परिजनों तक प्रवाहित हुये बिना न रह सकी।[४]

राम के राज्य-शासन-काल में समस्त प्रजा-वर्ग के त्रिताप मुक्त होने का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में समान है।[५] कालकर्म-स्वभाव-जनित दुःखों का भी राम राज्य में अभाव था।[६] राजा राम केवल सम्राट् ही नहीं सार्व-भौम सम्राट थे, इसका प्रमाण दोनों ग्रन्थों में समान है।

'जुगोप मेदनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम्।'[७]

'भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥'[८]

उनके शासन-काल में दंड-भेद नीति का परिसंख्या अलंकार द्वारा सुन्दर प्रदर्शन दोनों ग्रन्थों में कराया गया है।[९] उनके शासन-काल में आर्थिक-स्थिति की सुसमृद्ध-दशा का सुसाम्य भी दोनों ग्रन्थों में अवलोकनीय है।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३६।
२. मा० ७।१९।३।
३. रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३६।
४. मा० ७।१९।४, ५।
५. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३७।
(२) मा० ७।२०।१।
६. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० का० पृष्ठ ३८।
(२) मा० ७।२१ दो०।
७. रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ३८।
८. मा० ७।२१।१।
९. (१) 'दण्डवार्ता सदा यत्र कृतसन्यासकर्म्मणाम्।
भरतानां समाजे तु भेदस्तत्रोपलक्ष्यते ॥'
रा० टी०, आ० रा०, उ० का०, पृष्ठ ४०।

'रामे शासति साकेत प्रर्या सर्वा प्रजास्तदा ।
विदधुर्भोगपूगांस्ता दुर्लभांस्त्रिदशैरपि ।।'
'सस्योपपन्ना वसुधा फलवन्तो भवन् नगा:
सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरै:
सुपद्मानीककासारा: प्रसन्नाश्च दिशोदश
कामं ववर्ष पर्जन्य: सर्वकामदुधा मही ।।'[1]

मानस में भी प्रकृति सब प्रकार से अनुकूल शोभा-सम्पन्ना एवं कामदा दर्शाई गई है ।[2] आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत मानस में प्रकृति के व्यापक अंगों एवं तत्वों की अनुकूलता का उल्लेख किया गया है, जिससे कवि की सूक्ष्म आलोचना का रूप परिलक्षित होता है ।

सीता की सेवा परायणता का यथार्थ चित्रण दोनों ग्रन्थों में किया है ।[3] मानस के इस प्रसंग में सीता की निराभिमानता एवं अनन्य अटल प्रेम का उल्लेख विशेष है ।

सभी भ्रातृगण भी दास्य भाव से राम के आदेशों की प्रतीक्षा किया करते थे कि उन्हें भी राम निज प्रभु सेवा के अवसर प्रदान करें । राम भी उनके प्रति कल्याण कामना रखते हुये उन्हें नाना प्रकार की नीतियों के उपदेश देते थे ।[4]

मानस में इसी प्रसंग में प्रभु भक्ति एवं सेवा भावना का उल्लेख आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत विशेष हैं ।[5]

---

(२) 'दंड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज । मा० ७।२२ ।

१. (१) रा० टी०, आ० रा० उ० का०, पृष्ठ ४१ ।
(२) 'हरषित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ।।
मा० ७।२४।४ ।

२. मा० ७।२२।६, ७, ९, १०, ६।२३ ।
, सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् ।

३. १ रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ४२ ।
२ मा० ७।२३।८, ७ ।२४

४. भरतो लक्ष्मण शत्रुघ्नावथामात्यास्सुहृद्गणा: ।
आसासते कृपासिन्धु रातु न: क्वापि मृत्यताम् ।।
प्रेम्णा परेण बन्धूंश्च राम: कमल लोचन: ।
धर्मनीति राजनीति शास्तिस्म विविधागमान् ।'
रा० टी०, आ० रा०, उ० कां पृष्ठ ४२ ।

५. सेवहिं सानकूल सब भाई । रामचरन रति अति अधिकाई ।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं । कबहुं कृपाल हमहिं कछु कहहीं ।।
राम करहिं भ्रातन पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ।। '
मा० ७।२४।१ से ३ ।

अपने भाइयों एवं हनुमान सहित राम के उपवन जाने एवं वहाँ पर सनकादि ऋषीश्वरों के आने का उल्लेख दोनों ग्रंथों में समान है ।[1] अन्तर केवल इतना है कि मानस में बाल ऋषियों के स्वागतार्थ अपना आसन ही नहीं, अपितु अपना पीताम्बर ही उतार कर राम ने बिछा दिया । मानस में श्रद्धा भावना का दिग्दर्शन विशेष है ।[2]

दोनों ग्रंथों में राम के साथ अध्यात्म चर्चा करते समय भरत द्वारा राम से सन्तों के लक्षण पूछे जाने का प्रसंग वर्णित है ।

साधुस्त्वयोत्तमश्लोकमत: कीदृग् विध: प्रभो ।
एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत् प्रभो ।।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् । '[3]

' संत असंत भेद बिलगाई । प्रनतपाल मोहि किहहु बुझाई ।.[4]

अन्तर यह है कि मानस में भरत ने केवल सन्तों के ही नहीं, अपितु तत्विपरीत असन्तवर्ग के लक्षणों को भी जानना उचित समझा, क्योंकि इसी प्रकार राम अपने भ्रातृवर्ग को सतत् सदुपदेश दिया करते थे तथा नित्य नवीन लीलाएँ सम्पादित करते थे ।[5]

राम के राज्य शासनावधि के प्रसंग में मानस की पुरवासी गीता का विशेष महत्व है । इसका आधार आनन्द रामायण में भी उल्लिखित है ।

' एकदा राघव: श्रीमानाजुहाव गुरुन् द्विजान् ।
भरतं लक्ष्मणं शत्रुसूदनं पुरवासिन: ।। '[6]

'एक बार रघुनाथ बोलाए । गुरु द्विज पुरवासी सब आए ।।
बैठे सदसि अनुज मुनि सज्जन । ......'[7]

---

१. रा० टी० , आ० रा०, उ० काँ, पृष्ठ ५२ ।
२. मा० ७।३१।१,२, ७ ।३२ ।
३. रा० टी० । आ० रा०, उ० काँ०, पृष्ट ५६ ।
४. मा० ७।३६।५ ।
५. १ 'एवं बहूपदेशञ्च दत्वा भ्रातृभ्य उत्तमम् ।
चरितं सततं नूतनं करोति स्म महेश्वरि ।।'
रा० टी०, आ० रा०, उ० काँ०, पृष्ठ ६२ ।
२ 'पुनि रघुपति निज मंदिर गए । एहि बिधि चरित करत नित नए ।। '
मा० ७।४१।३ ।
६. रा० टी०, आ० रा०, उ० काँ० पृष्ठ ६३ ।
७. मा० ७।४२।१ ।

दोनों ही ग्रंथों में राजा राम के एक ही प्रसंग में दान का समान उल्लेख है ।[१]

राम दानादि के अनन्तर शीतल आम्र वाटिका में गए और वहीं विश्राम करने लगे । तथा सभी भ्रातृगण उनकी सेवा करने लगे ।[२] उसी समय भगवद्गुणगान में अनवरत निमग्न भक्तशिरोमणि नारद का आगमन हुआ ।[३] भगवद्गुणगान करने के पश्चात् नारद ब्रह्मलोक पधारे ।

'एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम् ।
प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययो विधिधाम सः ।।'[४]

प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।
सोभा—सिन्धु हृदय धरि, गए जहाँ बिधि-धाम ।। '[५]

दोनों ग्रन्थों में शिव ने पार्वती से राम कथा, आद्योपान्त बर्णित कर रामचरित को विशाल एवं अपार बताया है ।

'सम्यक् पृष्टं त्वथा कान्ते रागचन्द्रकथानकम्
उक्तम्मया सविस्तारं यथामति रिरीन्द्रजे ।।
मानं रामचरित्रस्य शत कोटि प्रविस्तरन् ।
विस्तरेण प्रवक्तुं च क्षम : कोऽपि न भूतले ।।'[६]

इसका भावानुवाद मानस में इस प्रकार है ।

'गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ।।
रामचरित सत कोटि अपारा । स्रुति सारदा न बरनह पारा ।।'[७]

---

१. (१) 'बन्धुभिस्सचिवैं रिष्टैर्वृतैः सर्वत्र वेष्टितः ।
राम: पुराद् वहिर्गत्वा सर्वभूतानुकम्पकः ।
वारणेन्द्राश्च तुरगान् शिविकाश्च रथांस्तथा ।
नानालंकार संयुक्तान् वरवस्त्रैः समन्वितान् ।
ददौ यथेप्सितं द्रव्यं येन यद् संवृतन्तदा ।।'
रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ७१, ७२ ।

(२) 'हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ।।
पुनि कृपाल पुर बाहर गये । गज रथ तुरंग मंगावत भये ।।
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह जेइ चाहे ।।'
मा० ७।४९।१ से ३ ।

२. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ७२ ।
(२) मा० ७।४९।५, ६ ।

३. (१) रा०टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ७३ ।
(२) मा० ७।५० दो० ।

४. (१) रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ७४ ।

५. मा० ७।५१ ।

१. रा० टी०, आ० रा०, उ० कां, पृष्ठ ७४ ।

२. मा० ७ । ५१ । १, २ ।

मानस में आनन्द रामायण की अपेक्षाकृत राम गुण वर्णन करने में समर्थ विशिष्ट वर्ग के नाम का ही उल्लेख किया है। प्रत्येक राम कथा कहने का अधिकारी भी तो नहीं हो सकता। अतः गोस्वामी जी ने मर्यादा का यहाँ भी ध्यान रक्खा।

कागभुसुंडि गरुड़ संवाद के अन्तर्गत श्री राम के अनन्त गुणों का गौरव गान करते समय उनकी उपमा असंख्य गुण गौरववान् व्यक्तियों से दी गई। इस उपमा में भी साम्य देखने योग्य है।

'समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव।'[१]
'हिम गिरि कोटि अचल रघुबीरा।
सिन्धु कोटि सत सम गम्भीरा ॥'[२]

परन्तु मानस में 'कोटि' अतिरिक्त शब्द अपनी निराली छटा एवं गुण गौरव प्रदर्शित करता है।

केवल गुणों में हीं नहीं कर्मों में भी राम सर्वोपरि व्यक्तियों के समान हैं।

'विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शन :।
कालाग्निसदृश : क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
धनदेन समस्त्यागे सर्वधर्म इवा पर : ॥'[३]

मानस में पूर्व की ही भाँति 'कोटि' शब्द सराहनीय है।

'बिष्णु कोटि सत पालन करता। रूद्र कोटि सत सम संहरता ॥
घनद कोटि सतसम घनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरूपम प्रभु जगदीसा ॥'[४]

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में मालोपमा के दर्शन होते हैं परन्तु मानस में अपेक्षाकृत विशिष्टता स्पष्टतः अंकित है।

प्रसन्न राघव एवं रामचरितमानस

अध्यात्म एवं आनन्द रामायण की भाँति ही गोस्वामी जी मानस के अनेक स्थलों पर प्रसन्न राघव के भी ऋणी हैं जिनका रूपान्तर मानस में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। उक्त समीक्षण में मानस के उन स्थलों का उल्लेख है जो 'प्रसन्न राघव' नाटक पर आधारित हैं।

गोस्वामी जी ने इस नाटक से सार संचल कर पुष्प-वाटिका एवं स्वयंबर-प्रसंगों को मौलिक शैली से सुसज्जित किया है।

---

१. रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ ११९।
२. मा० ७।९१।३।
३. रा० टी०, आ० रा०, उ० कां०, पृष्ठ १२०।
४. मा० ७।९१।६ से ८।

विश्वामित्र-जनक-संवाद के अन्तर्गत जनक राम लक्ष्मण के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर विश्वामित्र से कहते हैं—

एतयो : प्रकृतिरम्यरूपयो रूल्लसत्सहजसौहृदश्रियो : ।
आन्तर : स्फुरति कोऽपि सन्निधि: प्रत्यगात्मपरमात्मनोखि ।।'[1]

स्वभाव से ही मनोहर सौंदर्यवाले और स्वाभाविक सौहार्द्र की शोभा से प्रकाशमान इन दोनों। राम और लक्ष्मण का जीवात्मा और परमात्मा के सदृश अनिर्वचनीय आभ्यन्तरिक सामीप्य शोभित हो रहा है।

मानसकार ने अत्युक्ति अलंकार का भावात्मक योग कर उसी रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

'सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनन्दहू के आनन्द दाता।।
इन्ह के प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ।।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ।।'[2]

उक्त साम्य के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने जनक जी की 'मुदित' दशा तथा राम लक्ष्मण की अवर्णनीय मनोहरता एवं प्रीति का भी सूक्ष्म निरीक्षण करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

विश्वामित्र की पूजा के निमित पुष्पचयनार्थ आए हुए राम लक्ष्मण ने जनक की पुष्प वाटिका की रमणीयता का अवलोकन किया। दोनों ग्रन्थों में उस समय उपवन में वसन्त श्री सम्पन्नता का उल्लेख किया गया है।[3] उस उपवन के मध्य एक सरसिजसम्पन्न सरोवर भी शोभायमान था।[4] उसी उपवन में दोनों भाई पुष्प चयन करने लगे उसी समय सीता का आगमन हुआ। उस समय पद चालन के समय नूपुरादि की ध्वनियाँ सुन कर राम सीता के प्रति नाना मनोरम कल्पनाएँ कर लक्ष्मण से कहने लगे।

---

१. प्र० रा० पृष्ठ १५८, १६९।

२. मा० १। २१६। २ से ४।

३. (१) लक्ष्मण:—निसर्ग रमणीयोऽयमाराम :।
मधुमासावतारेण नितान्तरमणीय :।।
राम:—। सहर्षम्। कथमवतीर्णेव मधुमास लक्ष्मी :।
प्र० रा०, पृष्ठ ६४।

(२) 'भूप बाग बर देखेउ जाई। जहं बसंत रितु रही लोभाई ।।'
मा० १। २२६। ३।

४. (१) 'अये इयमसौ मदकलकलहंसोत्तंसितसितसरोज।
राजिराजिता सरसी-सरसो करोति मे चेत:।'
प्र० रा०, पृष्ठ ९८।

(२) 'बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजित गुंजत भृंगा ।।
मा० १। २२६। ८।

'अयंक एष मदकल करि कनक शृंखला मणिरणितानुकारी मनोहारि कोऽपि कलकलः समुल्लसति। (विमृश्य) नूनं राजहंस शिञ्जितारि मञ्जीरगुञ्जितमेतत्। तदवश्यमिह सलीलचलच्चरणरणन्मणिनूपुरयापुराङ्गनया कयाचन चण्डिकायतनमागच्छन्त्या भवितव्यम्।'[1]

गोस्वामी जी ने प्रेरणा अवश्य इस कथन से ली, परन्तु नितान्त नवीन ढंग से उसे प्रस्तुत किया—

'कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयं गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहं कीन्ही।।'[2]

मानस में उस ध्वनि की उपमा मदन-दुंदुभी से देकर समयानुकूल शृंगार भाव का भी निर्देशन किया गया है।

सीता-दर्शन के पश्चात् चकोर की भाँति राम के प्रीति में आबद्ध होने का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित है केवल अन्तर यह है कि प्रसन्न राघव[3] में राम स्वयं अपनी दशा का वर्णन करते हैं जब कि मानस में स्वयं तुलसी स्वयं दर्शक से बनकर राम की दशा का ज्ञान कराते हुये और राम के 'स्तम्भ' अनुभाव का दर्शन कराते हैं।

'अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।'[4]

धनुर्भंग के अवसर पर अनेक राजाओं के समान सहस्त्रबाहु भी धनुष उठाने का अधिकतम प्रयास करने लगा, परन्तु सती के मन की भाँति वह धनुष अविचल ही रहा। इस उपमा का दोनों ग्रन्थों में उल्लेख है, अन्तर केवल यह है कि प्रसन्न राघव[5] में वाणासुर के प्रसंग में तथा मानस[6] में अनेक राजाओं के लिए यह उक्ति कही गई है।

---

१. प्र० रा०, पृष्ठ ९९।
२. मा० १।२२९।१,२।
३. 'कलेव चान्द्री नवनीरदानां चकोरवन्मां मुदितं करोति।'
मेघों के मध्य में प्रकाशित चन्द्र कला की भाँति यह मुझे चकोर के समान आनन्दित कर रही है।

प्र० रा०, पृष्ठ १०७।

४. मा० १।२२९।३।
५. 'बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दु मौले :
कामातुरस्य वचसामिव संविधानैरभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।'
प्र० रा०, पृष्ठ २१०।
६. 'भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।।
डिगइ न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।।'
मा० १।२५०।१,६।

परशुराम-आगमन पर धनुर्भंग का कारण राम स्वयं धनुष की जीर्णता ही लक्षित करते हैं, आत्म गुण-गौरव नहीं ।[1]

दोनों ग्रन्थों में लक्ष्मण-परशुराम संवाद के अन्तर्गत लक्ष्मण ने अपनी सहनशीलता का का कारण परशुराम का भृगुवंशी ब्राह्मण होंना बतलाया ।[2]

दोनों में क्रोधाग्नि से प्रज्जवलित परशुराम को राम ने अपने सरस वचनों द्वारा शान्त करने का प्रयास किया है[3] तथा लक्ष्मण को दुधमुंहा कह कर क्रोध शान्त करने की विनय की परन्तु परशुराम लक्ष्मण के व्यंगपूर्ण अनुभावों देखकर राम के कथन का विरोध करते हैं कि यह लक्ष्मण दुधमुंहा नहीं विषमुंहा है ।[4]

परशुराम ने राम को भी धनुषभंग करने के कारण दर्पान्ध एवं ब्राह्मणजाति का अपमान करनेवाला बताया ।[5]

दोनों ग्रन्थों के बालकांड की भांति अन्य कान्डों में दोनों में साम्य अपेक्षाकृत बहुत कम है। अरण्यकान्ड में सीताहरण के प्रसंग में असहाय दशा में जानकी राम को सम्बोधन करती हुई दोनों ग्रन्थों में अति क्रन्दन करती हैं ।

'हा राम हा रमण हा जगदेकवीर हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।'[6]

'हा जग एक बीर रघुराया । केहिं अपराध बिसारेहु दाया ।।'[7]

---

१. (१) 'भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत करोमि किम्'[1]
हे भगवान् यह अपने आप टूट गया । मैं क्या करूँ[1] ।
प्र०रा०, पृष्ठ २१३ ।

(२) 'छुवतहि टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करउं अभिमाना ।।'
मा० १।२८२।८।

२. (१) प्र०रा, पृष्ठ २१२ १।
(२) मा० १।२७२।५।

३. (१) 'सरस वचनैः कोपाग्निं शमयन् परशुरामं रामोऽभि दधौ
अलमिह क्षीर कण्ठ कोपतया ।' ।प्र० रा०, पृष्ठ २११।

(२) 'लखन उतर आहुति सरसि भृगु वर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु ।।
सूध दूध मूख करिय न कोहू ।। ।मा० १।२७६, १।२७६।१।

४. (१) 'आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति विषकण्ठः खल्वसै ।'
प्र०रा०, पृष्ठ २११।

(२) कालकूट मुख पय मुख नाहीं ।' ।मा० १।२७६।८।

५. (१) प्र०रा०, पृष्ठ २१२।
(२) मा० १।२८२।६।

६. प्रा०रा, पृष्ठ २९२ ।

७. मा० ३।२८।१।

दोनों में साम्य का आभास होते हुए भी दोनों कवियों की भावनाओं में अन्तर है। अपने आधारभूत अंश की अपेक्षाकृत तुलसी ने इस प्रसंग में जानकी जी द्वारा राम की उपेक्षा की ओर नहीं, अपितु कारण-रहित कृपालु की अजस्रकृपा की ओर ध्यान दिलाया है। यह कवि की भक्ति का प्रतिबिम्ब है।

प्रसन्न-राघव एवं मानस दोनों में अशोक वाटिका में बंदीकृता सीता निर्भीक स्वर से रावण तिरस्कार करती हुई कहती हैं।

'अपि खद्योत आसापि समुन्मीलति पद्मिनी।'[1]

'सुनु दसमुख खद्योत प्रकाशा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा॥[2]

सीता के अवमाननामय वचनों को सुनकर कामातुर रावण ने सीता को त्रसित करने के लिए तलवार निकाल ली और उनके वध की धमकी देकर अपनी कामना पूर्ति के लिये सीता को विवश करने की दुश्चेष्टा करने लगा।

'अयि जानकि ! अयमसावुदीर्ण कराल करवाल: कालभुजङ्ग: तदिदानीमपि दशकण्ठ-
भुजाश्लेष भेषजमनुजानीहि।'[3]

हे सीते ! मियान से निकाला हुआ यह भीषण खड्ग काल सर्प है इसीलिए अभी भी रावण के बाहुओं का आलिंगन रूप औषधि लेने के लिए अनुमति दी।

इसी का संकेत तुलसी ने रूपक-रहित भाषा में मर्यादित ढंग से कहा।

'सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवन हानी॥'[4]

तुलसी अपनी इष्टदेवी माता सीता के प्रति रावण द्वारा अशोभनीय अमर्यादित वचन कैसे कहला सकते थे ?

सीता का प्रत्याशित उत्तर भी दोनों ग्रन्थों में लगभग समान ही है।

'विरम विरम रक्षः कि मुधाजल्पितेन स्पृशति नहिमदीयं कंठ सीमानमन्यः।
रघुपति भुजदण्डादुत्पलश्यामकान्तेर्दशमुख भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात्॥'[5]

अर्थात् 'अरे राक्षस, ठहर ठहर व्यर्थ बकने से क्या लाभ ? मेरे कंठ की सीमा को नील कमल के समान श्याम कांति वाले रघुपति के हाथों के या हे दशानन, तेरे इस निष्ठुर कृपाण के सिवा और कोइ नहीं छू सकता।'

मानस में इसी उक्ति को तुलसी ने उपमा के माधुर्य का संयोग कर सीता के द्वारा कहलाया है।

---

१. प्र०रा०, पृष्ठ ३३२।
२. मा० ५।८।७।
३. प्र०रा, पृष्ठ ३३४।
४. मा० ५।९।१, २।
५. प्र० रा०, पृष्ठ ३३४।

'श्याम सरोज दाम सम सुन्दर । प्रभु भुज करिकर सम दसकन्धर ।।
सो भुज कंठ कि तब असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान मन मोरा ।।'[1]

इतना ही नहीं सीता द्वारा कृत खड्ग को सम्बोधित कर स्वदुःखनिवृत्यर्थ प्रार्थना में पूर्ण साम्य है ।

'चन्द्रहास हर में परितापं रामचन्द्र विरहानल जातम् । त्वंहि कांतिजित मौक्तिक चूर्ण धारया वहसि शीतलभंगः ।'[2]

चन्द्रहास हरु मम परितापं । रघुपति बिरह अनल संजातं ।।
सीतल निसित वहसि बर धारा । कह सीता हर मम दुख भारा ।।'[3]

हनुमान द्वारा आनीत सीता प्रति राम के सन्देश में राम विरह चित्रण की विषमताओं में भी लगभग पूर्ण साम्य ही है । वियोगी को प्रकृति के तत्वों के गुणों का वैपरीत्य ही अनुभूत हुआ करता है । इसी तथ्य का निरूपण दोनों ग्रन्थों में मिलता है ।[4]

'दुःख कथन से दुखः में न्यूनता आ जाती है ।' इस तथ्य एवं राम की अनन्य प्रीति का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में प्राप्त है ।[5]

दोनों में भावसाम्य होते हुए सम्बोधन में भिन्नता है । तुलसी द्वारा प्रयुक्त सम्बोधन अपेक्षाकृत भावानुकूल अधिक संगत एवं आन्तरिक प्रेम का परिचायक है, जब कि प्रसन्न राघव का वाह्य-सौन्दर्य का द्योतक-मात्र है ।

विभीषण-रावण संबाद में विभीषण ने रावण को चतुर्थी के चन्द्र की भाँति पर स्त्री (सीता) त्यागने का उपदेश दिया । दोनों में अन्तर केवल यह है कि आधारभूत ग्रन्थ में सामान्य सिद्धान्त की भाँति अन्य पुरुष में विभीषण ने पत्र द्वारा यह संदेश भेजकर

---

१. मा० ५।६।३, ४ ।
२. प्र० रा०, पृष्ठ ३३६ ।
३. मा० ५।९।५, ६ ।
(१) प्रा० रा०, पृष्ठ ३४६ ।
(२) मा० ५।१४।१ से ४ ।
४. (१) कस्याख्यायत्यतिकरमिमु मुक्तदुःखो भवेदं को जानीते
निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् १ जानात्येकं शशधर मुखि !
प्रेम तत्व मनो मे, त्वामेवैतच्चिर मनुगतं तत् प्रिये ! किं करोमि ।
प्र० रा० ३४७, ३४८ ।
(२) कहेहू तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ।। '
मा० ५।१४।५ से ८ ।
५. 'उवर्कमूतिमिच्छादिभः सद्भिः खलु न दृश्यते ।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्री भाल पट्टिका ।। ' प्र० रा०, पृष्ठ ३५८ ।

सीता त्याग का संकेत किया है। परन्तु मानस में[1] प्रत्यक्ष वार्तालाप के अन्तर्गत विभीषण ने स्वयं रावण को ही कल्याणकारी आदेश स्पष्टतः दिया है। अतएव पूर्व की अपेक्षा इसमें बलाघात अधिक है।

लंका कांड में राम के बाण द्वारा रावण के समस्त मुकुटों को धराशायी देख सभा भयभीत हो उठी। रावण ने इस भय का अपने तार्किक वचनों द्वारा उपहास किया।

'विद्याधर प्रणयिनीकर पल्लवाग्रैर्लीलाविमुक्तकुसुमप्रकरावकीर्णे।
श्री चन्द्र चूड चरणे च रणें च काम छिन्नोऽपि मस्तक गणोमम मंगलाय॥'[2]

(गन्धर्वविनियों के करपल्लवों के अग्रभाग से छोड़े हुए पुष्प समूहों से बिखरे श्री शंकर जी के चरनों में तथा युद्ध में मेरे मस्तकों के समूह कटे हुए होने पर भी कल्याण के लिये हैं)

मानस में रावण स्वबल एवं तार्किक शक्ति से शकुनापशकुन का विचार करता है।
'सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस अवगुन ताही॥'[3]

राम रावण युद्ध प्रसंग में राम द्वारा रावण के हृदय वध न करने का कारण रावण द्वारा सीता का ध्यान है। इस तथ्य का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है।

प्रसन्न राघव में दर्शक के रूप में स्थित विद्याधर विद्याधरी से कहता है।

'अयं यावद्यावत् पृथु हृदयपीढं रघुपतिः
शिरश्छेदासक्तो न दशवदनस्य व्यथयति।
अयं तावत्तावद्वहति मुदमुच्चैर्दशमुखः
किलैतस्मिन्देवी जनकपुत्री निवसति॥'[4]

'शिरश्छेदन में आसक्त राम रावण के विशाल वक्षस्थल को जब तक पीड़ित नहीं करते हैं यह रावण तब तक यह सोचकर अतिशय हर्ष को धारण कर रहा है कि इस वक्ष स्थल में सीता देवी निवास करती हैं।'

मानस में त्रिजटा सीता से रावण वध न होने का कारण बताती हैं।

'प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदय बसति बैदेही॥'[5]

पूर्वोक्त अनेक स्थलों द्वारा मानस का आधेय रूप परिलक्षित होता है। परन्तु इसके साथ ही प्रसन्न राघव के आधार प्रसंगों में भी तुलसी की मौलिक प्रतिभा अपनी आभा प्रकाशित करती है जो स्वर्ण में सुगंधि का स्वरूप प्रस्तुत करती है।

---

१. जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद की नाईं॥'
मा० ५।३७।५, ६।

२. प्र० रा०, पृष्ठ ३६०।

३. मा० ६।१३।४।

४. प्र०रा०, पृष्ठ ४०५, ४०६।

५. मा० ६।९८।१३।

श्री मद्भागवत् एवं श्रीरामचरितमानस

श्रीमद्भागवत भक्ति का प्रधान ग्रन्थ है तथा इसकी अन्य विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए ही कहा है कि 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'। तुलसी ने अपनी कवित्व प्रतिभा एवं माधुर्य के सहयोग से भागवत से भी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव ग्रहण कर अपनी सार ग्राहिणी बुद्धि का परिचय दिया है।

बाल कांड में 'संगम तीर्थराज सन्त समाज' का उल्लेख करते समय उसकी विशेषताओं का विवरण दोनों ग्रन्थों में लगभग समान है।[1]

राम-नाम-महात्स्य वर्णन करते समय गोस्वामी जी ने चारों युगों के प्रमुख साधनों का उल्लेख[2] श्रीमद्भागवत[3] के आधार पर ही किया है।

दक्ष-यज्ञ के समय शंकर का कहीं भी स्थान न देखकर सती-अपमान पीड़ा से क्षुब्ध हो उठीं।[4] प्रस्तुत-तथ्य का उल्लेख श्रीमद्भागवत् में भी है।

'संभावितस्य स्वजनात् पराभवो यदाससद्यो मरणाय कल्पते ।।'[5]

दक्ष-प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में साम्य है।[6] दक्ष को जब ब्रह्मा ने प्रजापति नायक बना दिया तब उसे गर्व हो गया और उसने बृहत् यज्ञ का समारंभ किया जिसमें समस्त देव मुनि गणों को आमंत्रित किया। विमानासीन गन्धर्वादि को सुसज्जित सुन्दरी वधुओं सहित

---

१. (१) 'नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरूकालेन दर्शनादेव साधवः।।'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ १५।

(२) 'अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।'
मा० १।१।१३।

२. 'ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभू पूजे।।....
राम नाम कलि अभिमत दाता।....'' मा० १।२६।३,६।

३. 'कृते यद्धयायतो बिष्णुं त्रेतयां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।' भा० १२।३।५२।

४. 'जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सबते कठिन जाति अपनाना।।'
मा० १।६२।७।

५. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, वा० का०, पृष्ठ ८४।

६. (१) मा० ४।३।२ से ७ तक
(२) मा० १।५९।६,७।
मा० १।६०,
मा० १।६०।१-३

अपने पिता के महोत्सव में जाते हुये देखकर सती ने उत्कंठापूर्वक शंकर जी से प्रश्न किया। शंकर से पिता के यज्ञ का समाचार सुनकर स्वयं भी सती ने शंकर जी से वहाँ जाने की आज्ञा मांगी परन्तु शंकर जी ने अस्वीकृति देकर उसका कारण बताया कि मेरे कारण दक्ष ने तुम्हें भी विस्मृत कर दिया और इस प्रकार हमें अपमानित किया।[1] परिजनों द्वारा आमंत्रित बिना किए भी उनके घर जाने में कोई बन्धन नहीं होता परन्तु वहाँ पर यदि भावना का विकार है तो वहाँ जाने में अकल्याण ही होता है, यदि मेरी बात का उल्लंघन करके जाओगी तो उचित न होगा।

'त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यिभियान्ति बांधवाः।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्ट्यो बलीयसा नात्म्यमदेन मन्युना॥
यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति।'[2]

मानस में उक्त सिद्धान्त के पूर्वार्द्ध को सती के मुख से न कहलाकर स्वयं शंकर जी से कहलाया है क्योंकि यह गोस्वामी जी को अमान्य होता कि वे पत्नी के मुख से पति को नैतिक सिद्धान्त का परामर्श दिलवाते। अतएव उन्होंने अपनी मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये ही ऐसा परिवर्तन किया।

'जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलहुँ न संदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहं कोई। तहाँ गए कल्यानु न होई॥'[3]

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के प्रकरण में भी पर्याप्त साम्य है। सती ने शिव-निन्दक अपने पिता से उत्पन्न शरीर त्याग का संकल्प कर शरीर त्याग दिया। सती-दाह सुनते ही रुद्र-गणों ने यज्ञ-विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु भृगु मुनि ने उस यज्ञ की रक्षा[4] की। भागवत् की अपेक्षाकृत मानस में भृगु द्वारा यज्ञ-रक्षा के अनावश्यक विस्तृत विवरण का अभाव है।[5]

---

१. (१) 'व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगते: प्रजापते: प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमत।
अथाविमानं न पितु: प्रपत्स्यते मदाश्रयात्क: परितप्यतेयत:॥'
भा० ४।३।२०।

(२) '....हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥
ब्रह्मसभ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
मा० १।६१।२,३।

२. भा० ४।३।१६।

३. मा० १।६१।५,६।

४. भा० ४।४।१८,३१ से ३३।

५. 'तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।....
सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य विध्वंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥'
मा० १।६३।७, १।६४।

कामदेव ने देवताओं की स्तुति स्वीकार कर परोपकारार्थ अपने को बलिदान करने का निश्चय कर लिया और कहा—

'पर हित लागि तजै जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ।।'[1]

यह सामान्य नैतिक सिद्धान्त श्रीमद्भागवत् का प्रतिबिम्ब-कल्प है ।

'प्राणैः स्वप्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभंगुरैः ।
पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।।'[2]

गोस्वामी जी ने उक्त कथन में परोपकारी पर हरि प्रसन्नता के स्थान पर सन्त प्रशंसा का उल्लेख किया है । यह 'भक्ति-भक्त-भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक' सिद्धान्त का ही उदाहरणीकरण है ।

कैलाश-पर्वत पर उमा-महेश्वर-निवास के विवरण में दोनों ग्रन्थों में पूर्ण साम्य है ।

'जन्मौषधि तपोमंत्र योगसिद्धैर्नरेतरैः ।
जुष्टः किन्नर गंधर्वैरप्सरोभिर्वृतः सदा ।।'[3]

'परम रम्य गिरिवरु कैलासू । सदा जहाँ सिव उमा निवासू ।।
सिद्धि तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृन्द ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद ।।'[4]

शंकर-पार्वती द्वारा आध्यात्मिक चर्चा करते समय शंकर द्वारा हरि-विमुख के अंग प्रत्यंगों की निरर्थकता का उल्लेख[5] भागवत्[6] पर अक्षरशः आधारित है । अन्य तत्वों का

---

१. मा० १।८३।२ ।

२. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ १०९ ।

३. मा० ४।६।९ ।

४. मा० १।१०४।८, १।१०५ ।

५. 'जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ।।
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपंख कर लेखा ।।
ते सिर कटु तुंबरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ।।
जिन्ह हरिभगति हृदयं नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।
जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।।
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।।
मा० १।११२।२ से ७ तक ।

६. 'बिले बतोरुक्रम विक्रमान्येन शृण्वतः कर्णपुटेनरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायन्त्युरुगायगाथाः ।।
बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षितोये
भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गन्न नमेत् मुकुन्दम्,
जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुन्न जातुमर्त्योऽभिलभेत यस्तु
तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ।।'
भा० २।३।२० से २४ ।

अविकल प्रयोग करते हुए संत तुलसी इस अवतरण में 'सन्त और गुरू' को भी प्रभु के समान कहना नहीं भूले हैं।

राम-कथा प्रारम्भ करने के पूर्व ही शंकर-पार्वती से राम के जन्म-कर्मों की अनन्तता का उल्लेख[1] भागवत् में[2] स्वयं भगवान् के वचनामृत के आधार पर ही किया गया है।

प्रभु के अवतार कारणों में जय विजय, हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्षादि के वृत्तान्तों में भी दोनों ग्रन्थों में साम्य है।[3] केवल अन्तर यह है कि प्रसंगवश गोस्वामी जी भक्त चरित का उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं।

नारद प्रसंग के निष्कर्ष स्वरूप शंकर जी ने प्रभु-माया की प्रबलता एवं सभी मानवों की तदधीनता का उल्लेख[4] भी भागवत्[5] के समान ही किया है।

दोनों ग्रन्थों में प्रभु चरित्र को 'भ्रम-रूज-हारी'[6] ही बताया गया गया है। मानस में मनु-सतरूपा का वृत्तान्त भी भागवत् के आधार पर[7] तुलसी ने वर्णित है।

'स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा।।........
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासु।।
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही।।........
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला।।
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रकट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना।।.... ...
बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।।[8]

---

१. 'राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए।।
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना।।'
मा० १।११३।३,४।

२. 'जन्मकर्मभि धानानि सन्ति मेऽङ्गं सहस्रशः
न शक्यन्ते नु संख्या तु मनन्तत्वान्मयापि हि।
क्वचिद रजांसि विषमे पार्थिवान्युरुजन्मभि:
गुण कर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित्।'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ १४७।

३. मा० ३।१६।३३, भा० ३।१७।१८, रा० टी० भा०—बा. का; पृष्ठ १५६।
मा० १।१२१। ५ से ८, १।१२२।

४. मा० १।१३९।७,८। मा० १।१४०।

५. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां, पृष्ठ १७७।

६. (१) 'यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम्।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १७८।
(२) 'तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी।।' मा० १।१४०।५।

७. रा० टी०, भागवत्, बा, का, पृ. १७९, १८०

८. मा० १।१४१। १, ३, ४, ६, ७।, मा० १।१४२।१।

मनु को कठिन तप में तत्पर देख विधिहरिहर अनेक बार उन्हें वरदान देने आये परन्तु भागवत् में केवल ब्रह्मा कहते हैं। इस अन्तर कारण यह है कि तुलसी के राम 'विधिहरिहर' के मूल है और वे ही मनु की परीक्षा भी लेते हैं।

'उत्तिष्ठोतिष्ठ भद्रन्ते तप: सिद्धोऽसि काश्यप।
वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वर: ।।'[१]

मानस में 'बहुबारा' शब्द से मनु की निर्लोभ अविचल समाधि का उत्कर्ष विशेष रूपेण घोषित होता है।

'मांगहु बर बहु भाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए ।।'[२]

परन्तु आकाशवाणी द्वारा अपनी अभीष्ट सिद्धि सुनते ही उनका तप जीर्ण शरीर आनन्दोल्लास से स्वस्थ, शोभा सम्पन्न एवं पुलकायमान हो गया तथा हृदय गद्गद् हो उठा।

हृष्टपुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आये ।।
श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात ।।
बोले मनु करि दण्डवत प्रेम न हृदयं समात ।।'[३]

भागवत् में प्रभु वचनों से उनके अंग कान्ति वर्द्धन का एवं आनन्दानुभावों का उल्लेख है।

'स तत्कीचकवल्मीकात् सह ओजो बलान्वित:।
सर्वावयवसम्पन्नो बज्र संहननो युवा ।।
उत्थाय प्राञ्जलि: प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम्।
हर्षाच्चपुलकोद्भेहो गिरा गद्गद्या गृणात् ।।'[४]

दोनों ग्रन्थों में मनु की विनीत स्तुति[५] सुनते ही प्रभु ने अपने अप्रतिम सौन्दर्य के दर्शन कराए[६] तथा करुणासागर ने कर कमलों द्वारा उन्हें उठाकर अभयदान दिया।[७]

---

१. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १८१।
२. मा० १।१४४।३।
३. मा० १।१४४।८, १।१४५।
४. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १८२।
५. (१) रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १८२।
(२) मा० १।१४५।१ से ३।
६. (१) रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १८३।
(२) मा० १।१४६ से १।१४७।१ तक।
७. (१) रा०टी, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १८५।
(२) मा० १।१४७।८।

दोनों ग्रन्थों में प्रभु अवतरण के वरदान में साम्य है।[1] मानस में केवल प्रभु के चरित्र को 'भगत सुखदाता' कहकर उसके महत्व प्रतिपादन में विशिष्टता ला दी है क्योंकि गोस्वामी जी के राम चरित्रांकन का उद्देश्य भी तो यही है अतः उस पर सतत् ध्यान केन्द्रित रहना स्वाभाविक ही है।

राजा प्रताप भानु की कथा के अन्तर्गत कपटी तापस की उक्ति[2] भागवत् में प्रभु मुख द्वारा वर्णित तप महिमा के समकक्ष ही है।[3]

रावण के पूर्व कथा प्रसंग में उसकी दिग्विजय का प्रमाण दोनों ग्रन्थों में मिलता है।

'सिद्धचारणविधरानृषीन् पितृपतीनमनून्।
यक्षरक्षांसि भूतानि प्रेतभूतपतींनथ ।।
सर्वसत्वपतीन् जित्वा वशमामीय विश्वजित्।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ।।'[4]

रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ।।
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ।।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी ।।'[5]

देवगणों के सहित सभीत धरा के प्रार्थना करने पर आकाशवाणी द्वारा उसकी स्वी-

---

१. (१) 'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउं चरित भगत सुखदाता ।।
जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ।।
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ।।'
मा० १।१५१।२ से ४।

(२) 'अंस कलयावतरिष्यामि आतमतुल्य मनुपलभमानः
यच्छ्रवतो पैत्यरतिवितृष्णासत्वञ्च शुद्ध्यत्यचिरेणप्रंसः।
विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितञ्जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां, पृष्ठ १८८।

२. 'तपबल तें जग सृजइ विधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता ।।
तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा ।।' मा० १।१६२।२,३।

३. 'सृजामि तपसेवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं में दुश्चरन्तपः ।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां०, पृष्ठ १९७।

४. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, बा०कां० पृष्ठ २१४।

५. मा० १।१८१।१० से १२।

कृति पाकर सभी अपने-अपने स्थान पर गए। ब्रह्मा की आज्ञा से देवगण वानर रूप में अवतरित होकर प्रभु के अवतार की प्रतीक्षा करने लगे।[1]

राजा दशरथ के परिचयात्मक विवरण में भी दोनों ग्रंथों में पूर्ण साम्य है।[2] केवल गोस्वामी जी की भक्तिमत्ता की प्रेरणा अन्तिम अर्द्धाली में स्पष्ट है।

राम जन्म के पुनीत सुअवसर पर समस्त नगरी की कुल वधुओं के शृंगार तथा सूतादि के विरद गान का विवरण भी दोनों में समान है केवल अन्तर यह है कि जहाँ भागवत् में सूतादि मंगल गान गाते हैं[3] वहाँ गोस्वामी जी उनको भी भक्त रूप में चित्रित कर राम का गुण गान गाते हुए ही वर्णित करते हैं।[4]

श्रीमद्भागवत्[5] की ही भाँति मानस की कौशल्या बाल चरित्र गान करती हुई वात्सल्य विभोर रहा करती हैं।[6]

---

१. (१) 'देवाश्च सर्वे हरि रूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः
महाबलाः पर्वतावृक्षयोधिनः प्रतीक्षामाणा भगवन्तमीश्वरम्।'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २२२।

(२) 'बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रुरी॥'
मा० १। १८७। ३ से ५।

२. (१) अथराजा दशरथः श्रीमान् सत्यपरायणः
अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्व लोकेषु विश्रुतः
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २२२।

(२) 'अवध पुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयं भगति मति सारं गपानी॥'
मा० १। १८७। ७, ८।

३. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २३९, २४०।

४. 'ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥....
बृंद बृंद मिलि चली लोगांई। सहज सिंगार किएं उठि धाईं॥....
मागध सूत बंदिगन गयाक, पावन गुन गावहिं रघुनायक।'
मा० १। १९३। १, ३, ६।

५. 'यानि यानीह गीतानि तद्बाल चरितानि च। स्मरन्ती तान्यगायत'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २३८।

६. 'प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।'........मा० १। २००।

मानस में श्रीराम ने कौशल्या को अपने में विराट् रूप का दर्शनकराया।[१] जिस का पूर्ण आधार श्रीमद्भागवत् में मिलता है।

'स तत्र ददृशे रूपं जगत्स्थास्नु च खं दिशः।
साद्रिद्वीपरब्धि भूगोलं स वायवग्नीन्द्र तारकम्।।
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नमस्वान् वियदैव च।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः।
चेतो मनः कर्मवचोमिरञ्जसासुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मितत्पदम्।
वैष्णवी व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः।।
त्रय्याचोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजय्।।'[२]

आधार से आधेय के, भाव दशा के चित्रण में अन्तर है। भागवत् में कौशल्या ने विनीत हो वन्दना की, मानस में वे भाव विभोर दशा में निमग्न हो उठीं।

चारों भाइयों का सस्नेह सह भोजन एवं पितुराज्ञापालन दोनों ग्रंथों में समान वर्णित है।[३]

जनकपुर में मार्गसिंचन का वर्णन भागवत के नितान्त अनुरूप है। मानस में[४] संकेतात्मक है तो भागवत् में[५] व्याख्यात्मक।

---

१. 'अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।।........
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरननि सिरु नावा।।
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी।।
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता में सुत करि जाना।
मा० १। २०१। १, २, ५, ६, ७।

२. रा० टी०, श्रीमद्भागवत, बा० कां०, पृष्ठ २३९।

३. 'सहोपविष्टा बुभुजुः सर्यं भागवता मुदा।
एवं ते मति मन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः।।'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २४५।

(२) 'अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं।।'
मा० १। २०४। ४।

४. चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई।
मा० १। २१२। ४।

५. 'संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वराम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीं कुंकुमद्रवचर्चितताम्।।
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २५८।

जनकपुर भ्रमण में विलम्ब होते देख राम को गुरू से भय की आशंका हो उठी इस पर उनके स्वरूप का तात्विक विवेचन तुलसी भागवत् के आधार[1] पर करते हैं।

'जासु त्रास डर कहुं डर होई। भजन प्रभाव देखावत सोई ।।'[2]

दोनों उक्तियों में यह अन्तर है कि भागवत् में वस्तु विस्तार है एवं मानस में संक्षिप्ति।

मानस के लक्ष्मण परशुराम संवाद के अन्तर्गत निम्नांकित सूक्ति का भागवत्[3] के समान उल्लेख है कि

'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।'[4]

दोनों ग्रंथो में राजा दशरथ द्वारा अपने पुत्र विवाह के उपलक्ष्य में ब्राह्मणियों का वस्त्राभूषणों से पूजन का प्रसंग वर्णित है।

'अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासः स्रग्माल्यभूषणैः।
विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।।'

बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं ।।
बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं ।।'[6]

दशरथ भवन में विस्तृत शय्याओं के सौन्दर्य चित्रण में भी दोनों ग्रंथों में पूर्ण साम्य है।

'यत्र चित्र वितानानि पद्मरागासनानि च।
पयः फेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ।।'[7]

'.........जरित कनक मनि पलंग डसाए ।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना ।।'[8]

---

१. यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति यद्भयात् ।।
एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता।'
रा० टी० श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ २७३।
२. मा० १। २२४। ७।
३. 'न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्'।
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ ३३१।
४. मा० १। २७४।
५. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां० पृष्ठ ४२३।
६. मा० १। ३५२। ४, ५।
७. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, बा० कां०, पृष्ठ ४२५।
८. मा० १। ३५५। १, २।

अयोध्या काण्ड—

राम वन गमन के प्रसंग में मौन सीता के कायिक अनुभावों में पर्याप्त साम्य है ।[१] अन्तर केवल यह है कि गोस्वामी जी अपनी माता के चरणों तक का ही चित्रण कर सकते थे । इसके अतिरिक्त वर्णन करने में मर्यादा भंग होने की संभावना थी ।

वन पथ के पथिक राम की सुमन्त्र के प्रति कही हुई सैद्धान्तिक उक्ति[२] श्रीमद्‌भागवत्[३] के कथन के अनुरूप ही है ।

भरत निषाद मिलन के प्रसंग में कवि की सूक्ष्मालोचना[४] रामनाम को श्रीमद्‌भागवत्[५] के प्रभु आश्रय के समान ही निश्चित करती है ।

राम दर्शनोत्सुक भरत की मार्मिक भाव दशा से प्रसन्न देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे । भागवत्[६] की ब्रज भूमि की भाँति भरत द्वारा पादाक्रान्त होनेवाली पृथ्वी मृदु एवं मंगलमयी हो गई ।

'देखि दसा सुर बरसहिं फूला । भइ मृदु महि मगु मंगल मूला ।।'[७]

चित्रकूट पर्वत के दर्शन करते ही भरत की दशा का उपमान भागवत् के समान है ।

'यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ।।'[८]

'तापस तपफल पाइ जिमि'[९]

---

१. (१) 'कृत्वया मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद् बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्त्रैरूपात्तमसिभिः कुच कुंकुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखमराःस्म तूष्णीम् ।।'
रा० टी० श्रीमद्‌भागवत्, अयो० का०, पृष्ठ ७५ ।

(२) चारु चरन नख लेखत धरनी ।........
मंजु बिलोचन मोचत बारी ।........मा० २ । ५७ । ५, ७ ।

२. 'सिवि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ।।'
मा० २ । ९४ । ३, ४ ।

३. 'हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिविर्बलिः ।
व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ।।
रा०टी०, श्रीमद्‌भागवत्, अयो० कां०, पृष्ठ ११९ ।

४. 'स्वपच सबर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ।।' मा० २।१९४ ।

५. किरातहूणांध्रपुलिन्द पुल्कसा आमीर कंकायवनाः खसादयः
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवेनमः ।'
रा०टी०, श्रीमद्‌भागवत्, अयो० कां०, पृष्ठ २३५ ।

६. 'मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
महीमंगलभूयिष्ठ पुरग्रामव्रजाकरा ।'
रा०टी०, श्रीमद्‌भागवत् अयो० कां०, पृष्ठ २५४ ।

७. मा० २।२१५।८ ।

८. रा०टी०, श्रीमद्‌भागवत्, अयो० कां०, पृष्ठ २७५ ।

९. मा० २।२३६ ।

अरण्य कांड—

अनसूया-सीता संवाद का कतिपयांश[1] भागवत्[2] के नैतिक सिद्धान्तों के समान है। केवल गोस्वामी जी द्वारा पति में शील के अभाव का वर्णन न करना उनकी शीलप्रियता का द्योतक है। भागवत् में इन दुर्गुणों से युक्त पति के त्याग से अकल्याण वर्णित है तो मानस में उससे भी अधिक कसौटी पातिव्रत धर्म की है। इसके अनुसार पत्नी पति का तिरस्कार मात्र करने से ही वह यमपुर के दुःखों की भागिनी हो जाती है।

राम अत्रि संवाद के पश्चात् कवि कलियुग में राम सुजस का माहात्म्य भागवत् के आधार पर[3] वर्णन करते हैं।

'कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥'[4]

भागवत् से मानस में विशेषता है। उसमें राम अनुकूलता वर्णित कर पाप की असंभावना के संकेत के साथ साथ अन्य शुभ फल का भी अप्रत्यक्ष उल्लेख है।

मानस के राम सुतीक्ष्ण संवाद में सुतीक्ष्ण की भावतन्मय दशा तथा राम द्वारा चतुर्भुज रूप का मानसिक दर्शन कराना दोनों ग्रन्थों में[5] समान रूपेण वर्णित है।

---

१. 'बृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएं अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
मा० ३।४।८,९।

२. 'दुःशीलो दुर्भगो बृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर० कां०, पृष्ठ १०।

३. 'अतो नृलोके ननुनास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम्
अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुविनास्ति चान्यत्
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते॥
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर० कां०, पृष्ठ १४।

४. मा० ३।६।क।

५. (१) 'भगवद्दर्शनाह्लाद्वाष्प पर्याकुलेक्षणः।
पुलकिताङ्ग औत्कण्ठ्यान्नाबुधन्नो दितोऽपिलः॥
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम्।
दर्शयामास रामस्तु सुतीक्ष्णमुनये प्रभुः॥'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर० कां०, पृष्ठ २०।

(२) मुनिहि राम बहु भांति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप देखावा॥'
मा० ३।९।१७, १८।

मानस में मुनिगण ने राम की माया का चित्रण[1] भागवत्[2] के उपमानों सहित किया है।

शूर्पणखा का रावण से नैतिक सिद्धान्तों का निरूपण[3] भागवत्[4] पर आधारित है। मानस में भागवत् की अपेक्षाकृत अनेक विरोधियों से सचेत रहने की ओर संकेत है।

मानस में कबन्ध वध के पश्चात् राम ने ब्राह्मणों को अपनी द्विज भक्ति का प्रमाण दिया। कटुवक्ता ब्राह्मण भी पूज्य[5] है इसका उल्लेख भागवत में भी तथैव है।

'विप्रंकृतागसमपि नैव दुह्यत मामका।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरूत नित्यशः।।'[6]

मानस की अपेक्षाकृत भागवत् में अधिक बलाघात है।

किष्किन्धा कांड

ईश्वर नट की भाँति कठपुतली सदृश जीवों को संचालित करता रहता है। वह सामान्य सिद्धान्त दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित है।[7]

---

१. 'ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।।
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना।।
ते फल भच्छक कठिन कराला। तब भय डरत सदा सोउ काला।।'
मा० ३।१२।६ से ८।

२. 'त्वय्यव्यात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपालाबहु जीव संकुला।
यथा जले संजिहते जलोकसोप्युदुम्बरेवा मशका मनोभये।।
कालेयं परमावादिद्विर्वपरार्धान्त ईश्वरः।
नैवेशितुं प्रभूभून्म ईश्वरो धाम मानिनाम्।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर०कां, पृष्ठ २७।

३. 'रिपु रूज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि।' मा० ३।२१। क।

४. 'यथा मयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिनशक्यते रूढ़पदश्चिकित्सुतम्।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर०कां, पृष्ठ ४८।

५. 'सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता।।'
मा० ३।३३।१।

६. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, अर० कां०, पृष्ठ ५२।

७. (१) 'यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया।
एवमीश्वरतंत्रोयमीहते सुखदुःखयोः।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, कि०कां०, पृष्ठ ३४।

(२) 'उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाँई।।'
मा० ४।१०।७।

श्री परशुराम चतुर्वेदी जी का कथन है ।

'मानस के किष्किन्धाकांड में जो वर्षा एवं शरद् ऋतुओं का वर्णन मिलता है वह भी भागवत् के वैसे वर्णनों द्वारा ही प्रभावित है । अन्तर केवल यही है कि 'भागवत' में जहाँ उसमें दार्शनिकता का भी पुट आ जाता है वहाँ मानस में उसे अधिकतर नैतिक स्तर पर ही रक्खा गया है ।'[१]

उक्त वर्णनों का साम्य निम्नांकित है जिनमें कहीं-कहीं तो अविकल अनुवाद है तो कहीं भावानुवाद ।

'मेघा गमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखंडिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युत जनागम् ।।'[२]

उपर्युक्तांश का अविकल अनुवाद मानस में दृष्टव्य है ।

'लछिमन देखहु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ।।'[३]

इसके अतिरिक्त भाव साम्य भी दर्शनीय है ।[४]

'गिरो वर्षधाराभिर्हन्यमानां न विव्यथुः
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ।।'[५]

'बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ।।'[६]

'मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृता
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः काल हता इव ।।
श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद ब्राह्मणा नियमात्यये ।।
पीत्वापाः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।
प्रक्षामाः तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ।।'[७]

'हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ।।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका । साधक मन जस मिलें बिबेका ।।'[८]

---

१. मानस की राम कथा, पृष्ठ १३७ ।
२. भा० १०।२०।२० ।
३. भा० ४।१३ ।
४. भा० ४।१३।३।
५. भा० १०।२०।१५ ।
६. भा० ४।१३।४।
७. भा० १०।२०।१६, ९, २१ ।
८. भा० ४।१४, ४।१४।१,२।

इसी प्रकार ससि सम्पन्नता का विवरण[1], खद्योतों को घनान्धकार में स्थिति का उल्लेख[2] भी दोनों ग्रन्थों में लगभग समान रूपेण ही किया गया है।

इसी भाँति शरद् वर्णन के अन्तर्गत भी अनेक स्थलों पर साम्य दर्शनीय है।

'गाधवारि चरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम्।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्याविजितेन्द्रियः।
खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम्।
सत्वयुक्तं यथा चित्तं शब्द ब्रह्मार्थदर्शनम्।
गिरयो मुमुचुस्तो यं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम्।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनोददते नवा।
वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते।
जलस्थलोकसः सर्व नववारि निषेवणात्।
अबिभ्रन्रूचिरं रूपं यथा हरि निषेवणात्॥
शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोहरत्।'[3]

"जल संकोच विकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना।
बिनु धन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥"[4]

भागवत् के अन्तर का कारण स्पष्ट यह है कि भागवत् में दार्शनिक प्रवृत्ति अंकित है जब कि मानस में नैतिक आदर्शों को बल प्रदान किया गया है। लोक संग्रही तुलसी के लिए "दर्शन" की गंभीर विवेचना के स्थान पर लोकोपयोगी नैतिक तत्वों का समावेश करना ही संगत था।

---

१. (१) 'क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
घनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्॥' भा० १०।२०।
(२) 'ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी के संपति जैसी॥'
मा० ४।१४।५।

२. (१) 'निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति नो ग्रहाः
यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौयुगे॥ भा० १०।२०।
(२) "निसि तम घन खद्योत धिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
मा० ४।१४।६

३. भा० १०।२०।३८, ४४, ३६, ४९, १३, ४२।

४. मा० ४।१५।८, ९, १०, ४।१६।१, ६।

सुन्दर कांड—

मानस के इस कांड में सत्संग की महिमा[१] का आधार भागवत् की निम्नांकित उक्ति है ।

"तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।"[२]

भगवत्प्रसन्नता से सबकी प्रसन्नता सहज सुलभ है । यह जामवन्त की अकाट्य उक्ति[३] भागवत्[४] पर आधारित है । केवल गोस्वामी जी ने इसमें "विभूषण मोष" करके इसे लिखा है ।

महात्मा पुरुष का तिरस्कार करने से आयु श्री आदि को हानि होती है, भागवत् के इस सामान्य सिद्धान्त[५] का क्रियात्मक चित्रण विभीषण द्वारा लंका परित्याग प्रसंग में मिलता है ।

"अस कहि चला विभीषनु जबहीं । आयूहीन भए सब तबहीं ।।
साधु अवज्ञा तुरत भवानी । कर कल्यान अखिल कै हानी ।।"[६]

राम दर्शन प्राप्ति के पूर्व प्रदर्शित मनोरथ चित्रण[७] भागवत् के अक्रूर मनोरथों पर[८] आधारित है ।

---

१. मा० ५।४ ।

२. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, सु० कां०, पृष्ठ १२ ।

३. "....जापर नाथ करहु तुम दाया ।।
ताहि सदा सुभ कुशल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ।।"
मा० ५।२९।१,२।

४. "यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणमैत्र्यादिभिर्हरिः ।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ।।"
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, सु० कां०, पृष्ठ ५० ।

५. "आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिषएव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महद्तिक्रमः ।।"
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, सु० कां०, पृष्ठ ६५ ।

६. मा० ४।४१।१,२।

७. मा० १०।३८।३ से २३ ।

८. भा० ५।४१।३ से ७, ५।४२।

विभीषण का राम के प्रति कथन[1] भागवत् के समान[2] है।

मानस में शुक द्वारा राम का तेज बल वर्णन[3] भागवत्[4] के परम पुरुष के समकक्ष है।

लंका कांड

श्रीराम के परम पुरुष स्वरूप का ज्ञान मन्दोदरी रावण को कराती है[5], इसका कतिपयांश भागवत्[6] पर आधारित है। इतना ही नहीं, मंदोदरी द्वारा उल्लिखित राम के विराट् स्वरूप का आधार भी भागवत् ही है।

"पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्यजंघे॥"
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च।
महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य।
तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्त्रशीर्ष्णः॥
इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्त्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः।
नासत्यदस्त्रो परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः॥
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत् पतंगः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च।
तद्भूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा॥

---

१. "तब लगि हृदयं बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा॥
ममता तरुन तमी अंधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मनमाहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥"
मा० ५।४६।१ से ४।

२. "तावद्भयं द्रविण गेह सुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवोविपुलश्च लोभः
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं तेंघ्रिममभयं प्रवणीत लोकः।"
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, सु० कां०, पृष्ठ ७०।

३. "राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई।"
मा० ५।५५।१।

४. "नान्तं विदाम्यहममी मुनयोग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतो परे मे।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम्॥"
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, सु० कां०, पृष्ठ ८१।

५. "मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी।
मा० ६।३।६।

६. "मर्त्यस्तयानुसवमेधितयामुकुन्द श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तये।
तद्धामदुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षिति भुजोऽपि ययुर्यदर्थाः॥"
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, लं० कां०, पृष्ठ १२।

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपांगमोक्षाः ।।
व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनो धर्मपथोऽस्य पृष्ठः ।
कस्तस्य मेढ़्ं वृषणो च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ।।
नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ।।
ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान् वासस्तु सन्ध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ।।
विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशाः ।।
वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।'[1]

गोस्वामी जी ने उपर्युक्त विराट् रूप के आधार पर ही राम के विश्वरूप का दर्शन कराया[2] जिनमें प्रथम ६ पंक्तियों को संक्षिप्त कर केवल एक पंक्ति में ही संकेत कर दिया है शेष का समानोल्लेख है समस्त लोकों का पृथक् पृथक् विवरण न देकर 'अपर लोक अंग-अंग बिश्रामा' में ही सभी लोकों को उनके अंगों में समाहित कर दिया है।

मानस में रावण के प्रति अंगद का उत्तम उपदेश[3] भी भागवत् की निम्नांकित उक्ति से पूर्ण साम्य रखता है ।

'त्राहि-त्राहि महाबाहो प्रणतानां' प्रतिपालक ।
तमेवशरणं याहि हरिस्तेशं विधास्यति ।'[4]

---

१. भा० २।१। २६ से ३६।

२. 'पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग-अंग बिश्रामा ।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घन माला ।।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ।।
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।'
मा० ६।१४। १ से ८, ६। १५।क।

३. 'प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ।।'
मा० ६।२०।

४. रा०टी० श्रीमद्भभागवत, लंकां०, पृष्ठ ३१।

शंकरादि भी परम पुरुषरूप राम की सेवा की नित्य कामना करते हैं यह तात्विक विवेचन दोनों ग्रन्थों में समान है।[1]

प्रेम और वैर समान के साथ करना चाहिये, अंगद द्वारा कथित इस नैतिक सिद्धान्त का उल्लेख[2] भागवत्[3] में भी मिलता है। अन्तर यह है कि मानस में प्रेम और वैर दोनों उल्लेख है क्योंकि वैर का भी उल्लेख करना प्रसंगानुकूल ही है।

हरिहर निन्दा सुनने वाला अधोगति गामी होता है।[4] इस सिद्धान्त के उल्लेख में साम्य होते हुये भी मानस में[5] विशेष प्रकार के पाप का निष्कर्ष देने से उस पर बलाघात लक्षित है।

युद्ध भूमि में व्यालपाश बद्ध श्रीराम का वर्णन करते समय गोस्वामी जी उनके अलौकिक स्वरूप का स्मरण दिलाते हैं,[6] जिसका भाव साम्य भागवत् में भी अवलोकनीय है।[7]

रण प्रांगण में युद्ध कर्मा रावण को आकाश में आता हुआ देख देवगण भाग गये।[8]

---

१. (१) 'यस्यांघ्रिपंकजरज : स्नपनम्पहान्तो
वाञ्छन्त्युमापति रिवात्मतमोपहन्त्यै।'
रा०टी०, श्रीमदभागवत्, लं०कां, पृष्ठ ३३।

(२) 'सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई।।'
मा० ।६।२९।१।

२. रा०टी०, श्रीमद्भागवत् लं०,कां पृष्ठ ३६।

३. मा० ६।२३।ग।

४. 'निन्दाम्भगवत: श्रृ वंतस्तत्परस्यजनस्यवा।
ततो नापेति य: सो पियात्यव: सुकृता च्युत: ।।'
रा०टी०, श्रीमदभागवत् लं०कां०, पृष्ठ ४८।

५. 'हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना।।'
मा० ६।३१।२।

६. 'गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास।।' मा० ६।७३।

७. यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुता खिलकर्मबंधा :।
स्वैरं चरन्ति मुनयो ऽपि ननह्यमानास्तस्येच्छयात्त वपुष: कुत एव बन्ध: ।।
रा०टी०, श्रीमद्भागवत, लं०कां०, पृष्ठ १०९।

८. (१) 'मनोवीर्यवरोत्सिक्त मसृण्यमकुतोभयम्।
भीता निलिल्यिरे देवा तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहय: ।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत् लं०कां०, पृष्ठ १४८।

(२) 'हाहाकार करत सुर भागे खलहु जाहु कहं भोरें आगे।।'
मा० ६।९६।७।

देवों को त्रसित होते देख अंगद ने रावण को पृथ्वी पर पटक दिया[१] और राम रावण का शिरच्छेद - भुजाच्छेद करने लगे परन्तु वे उत्तरोत्तर वृद्धि को ही प्राप्त होते रहे।[२] इन सभी प्रसंगों का उल्लेख श्रीमद्भागवत् में है।

विरह पीड़िता जानकी के शुभ सूचक अंगस्फुरण होने का विवरण दोनों ग्रन्थों में समान है।[३]

रावण वध के उपरान्त देवताओं का राम के प्रति कृतज्ञतार्पण की पंक्तियों में भी साम्य दृष्टिगत है।[४]

प्रभु केवल भाववश्य है अन्य वैधी भक्ति के साधनों के आधीन नहीं होते केवल निष्काम भाव ही उनकी प्राप्ति का एक मात्र साधन है। इस सिद्धान्त का उल्लेख भागवत् में उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है जब कि मानस में केवल सिद्धान्त निरूपण है।

'यं न योगेन सांख्येन दान व्रत तपोऽध्वरैः।
केवलेन हि भावेन गोप्या गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धामामीयुरञ्जसा॥'[५]

'उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥'[६]

उत्तर कांड

वंदीजन वेषधारी वेदों द्वारा राम के स्तवन का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है।[७]

१, (१) 'अथांगदो मृत्युसमानवेगं निपातयामासरणक्षितौ तम्।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत् लं०कां०, पृष्ठ १४८।
(२) 'देखि विकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥'
मा०६।९६।८।

२. (१) रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, लं०कां०, पृष्ठ।१५०। तथा मा०।६।९७।

३. (१) रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, लं०कां०, पृष्ठ १५३।
(२) मा०।६।९९।५।

४. (१) 'मत्स्याश्वकच्छप नृसिंह बराह हंस राजन्य विप्र विबुधेषु कृतावतारः त्वं पासि''''
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, लं० कां०, पृष्ठ १७४।
(२) 'मीन कमठ सूकर नरहरी। बान परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइं नसायो'॥
मा० ६।१०९।७,८।

५. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, लं० कां०, पृष्ठ १८४।

६. मा० ६।११७।ख।

७. (१) 'यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः।
प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः॥'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ २३।
(२) बंदि वेष धरि वेद तब आए जहं श्रीराम।....
''लगे करनगुन गान॥' मा० ७।१२ ख,ग।

उस स्तुति का कतिपयांश भी श्रीमद्‌भागवत् का अविकल अनुवाद सा ही प्रतीत होता है।[१] भगवच्चरणों की अवमानना से महान् पुरुष भी अधोगतिगामी होते हैं। भागवत् के इस तात्विक सिद्धान्त का मानस[२] में उल्लेख है। अन्तर यह है कि मानस में केवल मृत्युलोक में जन्म लेना ही नहीं अपितु उन्हें अनेकानेक व्याधिग्रस्त दर्शाकार भगवच्चरण प्रेम को विशेष महत्व प्रदान किया है।

राम सनकादि मिलन प्रसंग में सुसंग कुसंग का विवेचन[३] भागवत्[४] पर आधारित प्रतीत होता है। केवल क्रम परिवर्तन मात्र भेद है। उसी प्रसंग में भक्ति का माहात्म्य भी दोनों में समानरूपेण वर्णित है। मानस में उस 'अतिधावनि भगति' की 'त्रिविध ताप भव दाप नसावनि' कह कर व्याख्या की गई है[५] तो भागवत् में इस 'चरण कृपा रूप' को तापत्रय भव बन्धन से मुक्ति का एकमात्र साधन बताया गया है।[६] राम द्वारा कृत सन्त असन्त लक्षण की विवेचना भागवत् से शब्द साम्य रखती है।

'तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवश्शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ।।'[७]

'सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ।।'[८]

उक्त अंश में मानस में अपेक्षाकृत भक्ति प्रधानता विशेष है।

उक्त सन्तासन्त विवेचना के उपसंहार में भी पूर्ण साम्य है।[९] मानस में उक्त गुण दोष की मूल कारण रूपा माया को भी उल्लिखित किया गया है।[१०]

---

१. भा० १०।२।३२,३७। भा० ७।१२।छन्द ।।३।।।

२. 'बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए ।।'
मा० ७।१३।९।

३. 'संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।' ।मा० ७।३३।

४. 'संयोगः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया।
स एव साधुसु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते ।।
रा० टी०, श्रीमद्‌भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ५४।

५. मा० ७।३४।१।

६. 'तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ।।'
रा० टी०, श्रीमद्‌भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ५५।

७. रा० टी०, श्रीमद्‌भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ५७।

८. मा० ७।३७।२,३।

९. 'किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ।।'
रा० टी०, श्रीमद्‌भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ६२।

१०. 'सुनहु तात माया कृत गुनअरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ।।' मा० ७।४१।

पुरवासी गीता के अन्तर्गत राम आध्यात्मिक चर्चा करते समय विषय मग्नता का सोदाहरण स्पष्टीकरण एवं भव मुक्ति का उपाय बताते हैं[१] जो कि पूर्णतया भागवत् सम है।[२] श्रीराम अपने दास को "बयरु न बिग्रह आस न त्रासा" कहकर "सुखमय ताहि सदा सब आसा" का निष्कर्ष बतलाते हैं।[३] भागवत में भी उसे "निर्वैरं समदर्शिनम्," "शान्तस्य समचेतसः" तथा सेवक के लिए "मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः" बताया गया है।[४] ऐसे सज्जनों के लिए स्वर्गापवर्ग सभी अवांछनीय हो जाते हैं[५] जिस प्रकार

'न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योग सिद्धीरपुनर्भवंच मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥'[६]

सम्पूर्ण रामचरित वर्णन करने के उपरान्त शंकर पार्वती से राम के गुणों की अनन्ता का उल्लेख भागवत्[७] के कथन के समान ही करते हैं।

'राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥
जल सीकर महि रज गन जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥'[८]

आत्महन्ता के अतिरिक्त निष्काम, सकाम, विषयासक्त सभी को प्रभु चरित्र प्रिय है।

---

१. 'नर तनु पाब विषयं मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥....
नर तनु भवबारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥....
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाय।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाय॥

मा० ७।४३।२,७,८,७।४४।

२. 'यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्यमृतं त्यजन्॥'

रा० टी०, श्रीमद्भागवत, उ० कां० पृष्ठ ६४

'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।'

भा० ११।२०।१७।

३. मा० ७।४५।५।
४. रा० टी०, श्रीमद्भागवत, उ० कां०, पृष्ठ ६७।
५. मा० ७।४५।७।
६. रा० टी०, श्रीमद्भाभवत्, उ० कां०, पृष्ठ ६७।
७. 'यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसिभूमेर्गणयेत् कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥'

रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, उ० कां० पृष्ठ ७४।

८. मा० ७।५१।३,४।

यह उक्ति दोनों ग्रन्थों में वर्तमान है ।[1] भागवत् की अपेक्षा मानस में रघुपति कथा से प्रेम न करने वाले को केवल 'पशुघाती' ही नहीं उससे भी अधिक 'आत्मघाती' कहकर उसके प्रति भक्त तुलसी का क्षोभ स्वाभाविक ही व्यक्त हुआ है ।

स्वयं परमात्मा अवतरित होकर रूपधारण कर्त्ता 'प्राकृत नर अनुरूप' लीलायें करता है परन्तु स्वयं नटवत् सबसे निर्लिप्त रहता है ।[2] इसका भाव साम्य भागवत् में दृष्टव्य है ।

'राजन् परस्य तनुमृज्जननाप्ययेहा माया विडम्बनमवेहि यथा नरस्य ।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्याचान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतः सआस्ते ।।'[3]

भागवत् में मार्कण्डेय के विराट् रूप दर्शन की भाँति[4] ही मानस में काग भुशुंडि जी का बालक राम के उदर में ब्रह्मांड दर्शन वर्णित है ।[5] प्रथम में श्वास द्वारा मार्कण्डेय का अन्तः एवं बहिर्गमन है ।[6] जबकि सूक्ष्म दृष्टा तुलसी ने शरीर विज्ञान को अनुकूल बनाए रखते हुये काग भुसुंडि का मुख की विहंसित क्रिया द्वारा मुख द्वार से उदर प्रवेश एवं बहिर्गमन भी दर्शाया है ।[7]

भगवान् राम ने काग भुशुंडि से उच्चातिउच्च श्रेणी के गुणवानों का उल्लेख भागवत्[8] के समकक्ष किया है ।

'तिन्ह महं प्रिय बिरक्त मुनि ज्ञानी । ....
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।........

---

१. (१) 'निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छोत्रमनोभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान् विरज्येत विनापशुघ्नात् ।।'
रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ७६ ।
(२) 'जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ।।
भवसागर चह पार जो पावा ।........
विषइन्ह कहं पुनि हरि गुन ग्रामा । श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ।।....
ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ।।'
मा० ७।५२।२,३,४,६ ।

२. मा० ७।७२।

३. रा० टी० श्रीमद्भागवत्, उ० कां०, पृष्ठ ९७ ।

४. भा० ७।७९।२ से ७।८० तक ।

५. रा० टी०, श्रीमद्भागवत्, उ० कां०,पृष्ठ १०७,१०८।

६. 'तावाच्छिशोर्वैश्वसितेन भार्गवः सोऽन्तः शरीरं मशकोयथाविशत् ।।'
'विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै वाहिर्निरस्तोन्यपतत्लयाब्धौ ।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १०६ तथा १०९।

७. 'बिहंसत तुरत गयउ मुख माहीं ।........
बिहंसत ही मुख बाहेर आयेउं ।.... ।भा० ७।७९।२, ७।८२ (क)

१. 'ज्ञानी प्रियतमो तो मे ज्ञानेनासौ विभर्तिमाम् ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ।।
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।।'
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ ११३।

भगति हीन बिरचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।।'[१]

गोस्वामी जी ने यहाँ पर केवल 'बिरचि' का ही नाम उद्धृत किया है, शंकर का नहीं क्योंकि शैव तथा वैष्णव समन्वयकर्ता तुलसी राम के अनन्य भक्त शिव को प्रसंगवश भी भक्तिरहित नहीं कह सकते ।

भावों में ही नहीं वरन् कथा निरूपण की परम्परा शैली में भी साम्य दृष्टिगोचर होता है । भागवत् में मुनियो द्वारा पूर्व कथित के आधार पर वासुदेव चरित्र का वर्णन किया गया[२] तथैव मानस में काग भुशुंडि जी भी कहते है ।

'संतन्ह सन जस किछु सुनेउं तुम्हहि सुनायउं सोइ ।।'[३]

इस संसार में प्रत्येक वस्तु की सत्यता, पावनता, सुभगतादि भगवद्भक्ति की एक मात्र कसौटी पर आधारित है । इस तथ्य को समन वाक्य रचना द्वारा दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण प्रतिपादित किया गया है ।[४]

कलिकालधर्मनिरूपण प्रसंग में भी अनेक तत्वों का विवरण दोनों में समान रूप से दिया गया है । सभी कलियुगी ब्रह्म ज्ञान वक्ता होते हैं परन्तु किंचित् मात्र लोभ के कारण जघन्यतम अपराध भी कर डालते हैं ।[५] वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करते । निम्न वर्ग के अज्ञानी शूद्र भी उत्तमासनासीन होकर प्रवचन करते हैं ।[६] दुर्भिक्षमय काल में अल्पायु जीव व्याधिग्रस्त जीवन यापन करते हैं ।[७]

कलि के अवगुणों के साथ साथ गुण वर्णन में भी साम्य है । दोनों ग्रन्थों में भगवन्नाम

---

१. मा० ७।८५।६,७,९।

२. 'अहं च संस्मारित आत्मस्तत्वं श्रुतं पुराणे परमर्षिवक्त्रात् ।
एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ।।
माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ।
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १२०।

३. भा० ७।९२।क।

४. (१) 'तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदुव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ।
तदेव रम्यं रुचिरम् नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।।
रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १२४।
(२) 'स्वारथ सांच जीव कहुं एहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ।।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा' मा० ७।९५।१,२

५. (१) 'कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ।।, ।भा०१२।३।४१।
(२) 'ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुरु घात ।। भा० ७।९९।

६. भा० १२।३।३८। ।तथा मा० ७।९९।८।

७. रा०टी०, श्रीमद्भागवत, उ०कां०, पृष्ठ १३१,१३२। ।
मा० ७।१००।१०,७।१०१।३,४।

कीर्तन को ही कलि का गतिदायक साधन निर्धारित किया गया है। शब्दों में भी साम्य है केवल क्रम में पूर्वापर परिवर्तन मिलता है।

'कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।'[1]

'कृतयुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।'[2]

इस साम्य में 'पावहिं' शब्द 'अनुभूति की दृढ़ता का आधार भी विशेषतः परिलक्षित कर रहा है।

मानस में त्रिगुणोदय प्रसंग[3] भागवत[4] पर आधारित प्रतीत होता है। भागवत् में उदाहरण शैली को अपनाया गया है मानस में अपेक्षाकृत सैद्धान्तिक अधिक है।

दोनो ही ग्रंथों में ब्राह्मण द्रोह को अनेक भीषणाति भीषण वस्तुओं से भी भयंकर निर्धारित किया गया है।

'नाहं विशंके सुरराजवज्रान्नत्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात्।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशं ब्रह्मकुलापमानात्।।'[5]

'इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। विप्रदोह पावक सो जरई।।'[6]

'ज्ञान दीप प्रकरण' में ज्ञान योग से अविद्यान्धकाराच्छन्न बुद्धि द्वारा प्रकाश पाकर हृदय की ग्रंथि निरावृत करने का उल्लेख किया गया है[7], जिसका समानान्तर विवरण भागवत् में निम्नांकित है।

'कर्माशयं हृदयग्रंथिबन्धमविद्यमासादितमप्रमत्तः।
अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात्।।'[8]

---

१. भा० १२।३।५२।
२. मा० ७।१०२।ख।
३. 'सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।
बहु रज स्वल्प सत्व बछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस।।
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा।।'
मा० ७।१०३।२ से ५ तक।
४. रा०टी, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १३४, १३५।
५. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १४३।
६. मा० ७।१०८।१३,१४।
७. 'प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरूआरा।।'
मा० ७।११७।३,४।
८. रा०टी०, श्रीमद्भागवत्, उ०कां०, पृष्ठ १५८।

उक्त तुलनात्मक विवेचन यह स्पष्टतः प्रमाणित करता है कि तुलसीदास बहुश्रुत भावग्राहक थे जिन्होंने अपनी प्रतिभा एवं शब्द कौशल के सुवर्ण सुगंधि संयोग द्वारा गीर्वाण वाणी के विश्व विश्रुत ग्रंथ श्रीमद्‌भागवत् के अनेक स्थलों से सार संचय कर मानस को मधुवेष्टित कर दिया है।

हनुमन्नाटक एवं रामचरितमानस

गोस्वामी तुलसीदास प्रसन्न राघवादि आधार ग्रंथों की भाँति ओजपूर्ण प्रसंगों में हनुमन्नाटक से प्रभावित हैं जिसके भाव, अर्थ, शब्द साम्य स्थान-स्थान पर मानस में रत्न जटित से प्रतीत होते हैं। मानस के 'सीता स्वयम्बर प्रसंग' में इस नाटक की छटा प्रतिबिम्बित होती है।

हनुमन्नाटक में राजा जनक की सभा में बन्दीजन राजा के प्रण की घोषणा करते हैं।

'श्रृणुत जनककल्पा : क्षत्रिया : शुल्कमेते दशवदनभुजानां कुंठिता यत्र शक्तिः ।।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा : ।।'[1]

अर्थात् 'जनक समान अन्य क्षत्रियों ! जनक के प्रण को सुनो। दश मुख के भुजाओं की शक्ति जिसमें शिथिल हो गई है उस शिव जी के धनुष को चढ़ाकर जो झुका देगा, त्रिलोकी की विजय लक्ष्मी सीता उसकी पत्नी होगी।'

मानस में भी बन्दीजनों ने घोषणा की है परन्तु उसमें धनुष का माहात्म्य अधिक वर्णिल है क्योंकि गोस्वामी जी ने राम जिस धनुष को तोड़ने वाले थे उसकी महत्ता बनाना तुलसी के लिये अनिवार्य था क्योंकि राम की महत्ता उस धनुष की महत्ता पर ही आश्रित थी। अन्यथा साधारण धनुष तोड़ने में राम को क्या गौरव मिलता। अतएव तुलसी लिखते हैं........

'रावन बानु महा भट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे।।
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा।।
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही।।'[2]

तत्पश्चात् धनु आरोपण के प्रयास में निराश होने से श्रीहत राजाओं को देख राजा जनक की निराशामयी उक्ति में भी दोनों में पूर्ण साम्य परिलक्षित है।

'आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागता :
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः।।
नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ।।'[3]

---

१. हनुमन्नाटक १।१८।
२. मा० १।२४९।२ से ४तक।
३. हनुमन्नाटक १।१०।

अर्थात् 'ये समस्त राजा, इस द्वीप और दूसरे द्वीप से आये हैं और इसमें सुवर्ण की कान्ति वाली कन्या और कीर्ति का परम लाभ है। उस पर भी इस महान धनुष को किसी ने भी न तो खींचा, न टंकोरा, न झुकाया और न स्थान से उठाया, बड़ा आश्चर्य है कि यह पृथ्वी वीरों से शून्य है।'

मानस में यह प्रसंग निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है।

'दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना।।
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा।।

कुंअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय।।

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा।।
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।।
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।'[१]

मानस के उपर्युक्त साम्य में दो विशेषताएँ तुलसी की मौलिक प्रतिभा एवं शील-प्रियता की परिचायिकाएँ हैं। प्रथमतः जनक की सभा में दनुजाति को भी मानव रूप में वर्णित कर उस स्वयम्बर की शोभा को विकृत नहीं होने दिया है। द्वितीय विशेषता यह है कि 'अबजनि कोउ माखै' कह कर जनक के शील स्वभाव एवं संकोच को पुरःस्थापित कर दिया।

दोनों ग्रंथों के उपर्युक्त प्रसंग में एक अन्तर यह भी है कि हनुमन्नाटक में यह उक्ति राम ने लक्ष्मण से कही है जबकि मानस में जनक निराश होकर समस्त सभा को ललकारते हुए कहते हैं। हनुमन्नाटक की अपेक्षाकृत मानस में यह परिवर्तन विशेष संगत एवं मर्यादानुकूल है क्योंकि हनुमन्नाटक में राम अपने और लक्ष्मण के होते हुए 'निर्वीरमुर्वीतलम्' कहते हैं जबकि मानसकार यह कहना उचित नहीं समझते क्योंकि राम स्वयं ऐसा कहें।

इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप लक्ष्मण राम को प्रत्युत्तर देते हुये हनुमन्नाटक में राम से कहते हैं।

'देव श्रीरघुनाथ किं बहुतया, दासोऽस्मि ते लक्ष्मणो, मेर्वादीनपि भूधराग्न गणये, जीर्णः पिनाकः कियान् तन्मामादिश पश्य पश्य च बलं भृत्यस्य यत्कौतुकं प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहन्तुं क्षमः।।'[२]

अर्थात् 'हे देव! राम! बहुत कहने से क्या है? मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ, जो सुमेरुपर्वतादि को भी नहीं गिनता तो यह पुराना धनुष क्या, सो आप आज्ञा दीजिये और मुझ दास का बल और कौतुक देखिये, मैं तो इस धनुष को ऊपर चढ़ाने, झुकाने, चलाने, ले जाने और टुकड़े टुकड़े करने में भी समर्थ हूँ।'

---

१. मा० १।२५०।७,८, १।२५१, १।२५१।१ से ३ तक।
२. हनुमन्नाटक १।११।

मानस में लक्ष्मण की यह गर्वोक्ति केवल राम के प्रति न होकर जनक की ललकार की समाधानकर्त्री है जिसका व्यक्तिगत माहात्म्य नहीं। वह समस्त वीर जाति के अपमान का वहिष्कार कर वीरत्व का प्रतिनिधित्व करती है।

'सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउं सुभाउ न कछु अभिमानू ।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्राह्मांड उठावौं ।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउं मेरु मूलक जिमि तोरी ।।
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना ।।
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ ।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं ।।

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु हाथ ।।'[१]

दोनों उद्धरणों के साम्य में तुलसी ने अलंकारों से सुसज्जित कर उसी उक्ति को प्रस्तुत किया है तथा अपने भक्त व्यक्तित्व एवं लक्ष्मण चरित्र चित्रण को विशेषता 'तव प्रताप' में निहित कर मौलिकता का भी प्रदर्शन किया है।

दोनों ग्रन्थों में ही स्वयम्बर भूमि में उपस्थित रत्न भूषिता, कोमलांगिनी सीता एक ओर राम का अप्रतिम लावण्य निरखती हैं तो दूसरी ओर अपने पिता के कठिन प्रण पर विचार विमर्श करती हैं।

'कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः ।।
कथमधिज्यमनेन विधीयत।महह तात पणस्तव दारुणः ।।'[२]

अर्थात् 'कहाँ तो कछुए की पीठ के समान कठोर यह धनुष, कहाँ मधुर सुकुमार मूर्ति राम, सो ये किस प्रकार धनुष चढ़ावेंगे। अहह! पिता जी तुम्हारा प्रण कठिन है।'

'अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझ नहिं कछु लाभु न हानी ।।....
कहं धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहं स्यामल मृदुगात किसोरा ।।'[३]

दोनों ग्रंथों में राम को धनुषारोपणार्थ उद्यत देख लक्ष्मण की सतर्ककारिणी ओजस्विनी उक्ति में भी पूर्ण साम्य है।

'पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।।
दिक्कुंजराः कुरुत तत्रितये दिधीषां रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ।।'[४]

अर्थात् 'हे पृथ्वी! तुम स्थिर हो जाओ, हे शेष जी! तुम इसको धारण करो। हे कच्छपराज! तुम इन दोनों अर्थात् पृथ्वी और शेष को धारण करो। हे दिग्गजो! तुम

१. मा० १।२५२।३ से १।२५३ तक।
२. हनुमन्नाटक १।९।
३. मा० १।२५७।२,४।
४. हनुमन्नाटक १।२९।

इन तीनों को (पृथ्वी, शेष, कच्छप) धारण करो क्योंकि रामजी शिव के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हैं ।'

'दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥'[१]

मानस में तुलसी बाराह तक को भी सचेत करना नहीं भूले हैं ।

धनुर्भंग के समय विश्वव्यापी आतंक छा जाने का विवरण दोनों ग्रन्थों में समानतः वर्णित है ।

हनुमन्नाटक में यह वर्णन निम्नलिखित शब्दों में हुआ है ।

'त्रुट्यद्भीमधनुः कठोरनिनदस्तत्राकरोद्विस्मयं
त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शंभोः शिरः कम्पनम् ॥
दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनं
वैदेहीमदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसंमोहनम् ॥'[२]

अर्थात् 'टूटते हुए धनुष के कठोर शब्द ने विस्मय किया, उससे घबड़ाये हुए सूर्य के घोड़े अमार्ग को चल पड़े, शिव का सिर कम्पित हो उठा, दिग्गज अपने स्थान से स्खलित हो गये, कुलाचलादि विचलित हो उठे, सातो समुद्रों का मेल हो गया । जानकी जी की कामोत्पत्ति हुई, मदान्ध प्राणियों का नाश हुआ और त्रिलोक विमोहित हो उठा ।'

'भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल बिचारहीं ।
कोदण्ड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥'[३]

अन्तर केवल यह है कि हनुमन्नाटक के शिव कम्पन एवं आराध्या माँ सीता की मदनोत्पत्ति का उल्लेख तुलसी की समन्वयात्मिका प्रतिभा एवं मर्यादाशीलता कैसे कर सकती थी ?

धनुर्भंग जैसे दुष्कर कर्म कर्ता राम को देख गुरु विश्वामित्र के पुलकित होने का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है । हनुमन्नाटक में स्वाभाविक चित्रण मात्र है,[४] मानस में अलंकारिक रीति से मनोहर है ।[५]

धनुर्भंग सुनकर जनक सभा में जामदग्नि के आने पर उनका रूप चित्रण दोनों में लगभग समान रूपेण ही किया गया है ।

---

१. मा० १।२५९।१,२।
२. हनुमन्नाटक १।२६।
३. मा० १।२६०।छन्द।
४. 'उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः' । हनुमन्नाटक १।२३।
५. 'कौसिक रूप पयोनिधि पावन । प्रेम बारि अवगाहु सुहावन ॥
रामरूप राकेस निहारी । बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥'
मा० ।१।२६१।२,३।

'यद्बभञ्ज कनकात्मजाकृते राघवः पशुपतेर्महद्धनुः ।।
तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः ।।
चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् ।।
मौञ्ज्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दंडो परः पैप्पलः ।।'[1]

अर्थात् 'राम ने जानकी के अर्थ जिस शिवजी के धनुष को तोड़ा उस धनुष की प्रत्यंचा के शब्द के क्रोधित होकर जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि आए ।

चारों ओर से चोटी को चुम्बन करने वाले हैं कंक पक्षी के पर जिनमें ऐसे दो तरकसों को कमर में बांधे कोमल और पवित्र हृदय पर भस्म लगाए, रुरु मृग की छाला धारण किये हुये मूंज की बनी मेखला में बंधे मंजीठ से रंगे हुये कोपीन वस्त्र को धारण किये हुये, हाथ में धनुष और रुद्राक्ष का कंकण और दूसरे हाथ में पीपल का डंडा लिये थे ।'

मानस में परशुराम का शब्द चित्र निम्नांकित है ।

'तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आये भृगुकुल कमल पतंगा ।।.......
गौरि शरीर भूति भल भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ।।
सीस जटा ससिबदनु सुहावा । रिस बस कछुक अरुन होइ आवा ।।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुं चितवत मनहुँ रिसाते ।।
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ।।
कटि मुनिबसन तून दुइ बांधे । धनु सर कर कुठारु कल कांधे ।।'[2]

दोनों विवरणों में साम्य होते हुये भी अन्तर यह है कि हनुमन्नाटक में 'रोषितः' मात्र कह दिया गया है । मानस में समथानुकूल उनके कायिक अनुभावों को भी विस्तृत कर उनकी रुद्रता की प्रथम झलक भी दिखाई गई है ।

मानस में राम परशुराम संवाद के कछ अंश भी नाटक के संवाद पर आधारित हैं ।

'अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम् ।।
निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजाः ।।
भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते सङ्ग्रामवार्त्तापिनो ।
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि ।।
यस्मा देकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजामस्माकं
भवतोयतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ।।'[3]

---

१. हनुमन्नाटक ।१।२८,२९।
२. मा० ।१।२६७ २,४ से ८।
३. हनुमन्नाटक १।३९,४०।

'अर्थात् यह मेरा गला है और यह आपका कुठार, सो हे परशुराम ! जो उचित हो सो करो क्योंकि गौ और ब्राह्मणों के मारने को रघुवंशी शूर नहीं हैं। हे भगवन् ! आपके साथ तो हमारी संग्राम की वार्ता भी नहीं घटती क्योंकि हम निर्बल हैं और आप तो बलवानों के शिर पर स्थित हैं क्योंकि हमारे राजा लोगों का धनुष तो एक गुण (धनुष की डोरी) वाला है और आपका तो नवगुणवाला यज्ञोपवीत ही बल है।'

दोनों ग्रन्थों में राम द्वारा परशुराम के धनुषारोपण का प्रसंग वर्णित है।

'राजन्यकप्रघनसाधनमस्मदीयमाकर्ष कार्मुकमिदं गरुडध्वजस्य ।।'....

रामस्तदादाय धनुः सहेलं बाणं गुणे योज्य यदाचकर्ष ।।'[1]

मानस में राम का अलौकिक प्रभाव एवं महत्व वर्णन करने के हेतु तुलसी ने हनुमन्नाटक की अपेक्षाकृत परशुराम के धनुष का स्वतः आरोपित होना वर्णित किया है।

'राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू ।।

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ।........'[2]

अयोध्या कांड—

इस कांड में दो उक्तियों में भाव साम्य है। यद्यपि हनुमन्नाटक में जो उक्ति सीता ने नौका के सम्बन्ध में राम के प्रति कही है[3] वही मानस में तुलसी ने भक्त एवं हठी भक्त केवट के मुख से कहलायी है[4] प्रसंग में परिववर्तन है पर भाव में साम्य है।

वन पर्यटन के समय वन वधूटियों की सीता से परिप्रश्नात्मक एवं सांकेतिक वार्ता में भी साम्य है।

हनुमन्नाटक में ग्राम बधुओं का प्रसंग इस प्रकार है।

'पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छमाना।

कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ।।

---

१. हनुमन्नाटक १।४५,४९।

२ मा० १।२८३।७।८।

३. उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापादियमपि

मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात्।

चरणनलिनसंगानुग्रहं ते भजन्ती भवतु

चिरमियं नः श्रीमती पोतपुत्री ।।'

अर्थात् 'गौतम जी के शाप से अहल्या के सदृश यह भी कोई मुनि की स्त्री कहीं न हो जो आपके चरण कमलों की कृपा का भजन करती हुई यह नौका हमारे लिये चिरकाल तक सुखकारी हो जाय।'

हनुमन्नाटक ३।२०।

४. छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई ।।

तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।।

मा० २।९९।५, ६।

स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं ।
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ।।'[1]

अर्थात् 'हे आर्ये ! नील कमल सदृश वर्ण वाले तुम्हारे कौन हैं[1] इस प्रकार मार्ग में पथिकों की स्त्रियों द्वारा सादर पूछे जाने पर प्रफुल्ल गण्डस्थल वाले एवं लज्जा से चंचल नेत्र युक्त मुख को नीचे करके जानकी ने मानों स्पष्ट ही राम को अपना पति कह दिया।'

'सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहं सकुचाहीं ।।.......
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुं मुसुकानी ।।........
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सियं सयननि ।।'[2]

आधार आधेय विवरणों में साम्य होते हुये भी आधेय ग्रन्थ मानस में राम सौन्दर्य एवं सीता के श्रृंगारिक अनुभावों का सरल एवं सूक्ष्म विवरण अधिक है। इसका कारण स्वयं भक्त तुलसी की आह्लादकारिणी प्रवृत्ति है।

अरण्य कांड —

गोदावरी के निकट पर्णाशाला निर्माण का उल्लेख दोनों ग्रन्थों से समान रूप से है।

'गोदावरीतीरसमाश्रितेषु धनेषु चक्रे निजपर्णशालाम् ।।'[3]

'गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ ।।'[4]

रावण मारीच संवाद के अन्तर्गत राम का महत्व गान सुनकर रावण द्वारा मारीच का तिरस्कार एव इसकी गर्वोक्ति दोनों में एक समान वर्णित है।

'गुरुखि शिक्षसे मूढ मत्समःकोऽस्ति वीर्यवान्'[5]

'गुरु जिमि मूढ करसि मन बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा ।।'[6]

मारीच की किंकर्त्तव्यविमूढ स्थिति तथा विचार निष्कर्ष में भी पूर्ण साम्य है।

'रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावण: ।।'[7]

'उभय भांति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ।।'[8]

इस समानता में 'सरना' शब्द तुलसी की भक्ति का द्योतक है जिसने मारीच को भी शरणागत भक्त दर्शा दिया।

---

१. हनुमन्नाटक ३।१६।
२. मा० २।११५।४, २।११६।१,२,३,७।
३. हनुमन्नाटक ३।२१।
४. मा०३।१३।
५. हनुमन्नाटक ३।१३।
६. मा० ३।२५।३।
७. हनुमन्नाटक ३।२४।
८. मा० ३।२५।५।

दोनों ग्रन्थों में सर्वप्रथम कनकमृग रूपधारी मारीच को जानकी द्वारा देखे जाने का उल्लेख है।

'दशकण्ठोत्कण्ठितप्रेरितं द्रावकनकमयकुरंगं जानकी संददर्श ।।'[१]

अर्थात् 'रावण की उत्कंठा से भेजे हुए सुवर्ण के मृग को एकाएक जानकी ने देखा।'

'सीता परम रूचिर मृग देखा।....'[२]

मारीच का रूप चित्रण हनुमन्नाटक में व्यापक शब्द चित्र सा है।

'देहं हेममयं हरिन्मणिमयं शृंगद्वयं वैद्रुमाश्चत्वारोऽपि
खुरा रदच्छमयुगं माणिक्यकान्तिद्युति ।।
नेत्रे नीलसुतारके सुविततं तद्वच्चलं प्रेक्षितं
तत्तद्रत्नमयं किमत्रबहुना सर्वांगरम्यो मृगः ।।'[३]

अर्थात् 'सुवर्ण का जिनका सारा देह है, हरित मणियों के जिसमें सींग हैं तथा मूंगों के चारों खुरवाले तथा मणिसम कान्ति वाले जिनके दांत हैं, जिनके बड़-बड़े विशाल और सुन्दर नीली कनीनिका वाले नेत्र हैं तद्वत् अत्यन्त चंचल जिसकी दृष्टि है, उन रत्नदेह वाले का बहुत कहने से क्या? ऐसा सर्वांग सुन्दर वह मृग था।'

मानस में भी इसी पर आधारित संक्षिप्त मारीच रूपचित्रण इस प्रकार है।

'अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देहि मनि रचित बनाई ।।
....अंग अंग सुमनोहर वेषा ।।'[४]

राम के आगे आगे 'मृग धावन प्रसंग' में उसकी गतियों का निरीक्षण दोनों में समानतः करणीय है।[५] हनुमन्नाटक में व्याख्यात्मक विवरण है, मानस में संक्षिप्त।

---

१. हनुमन्नाटक ३।२५।

२. मा० ३।२६।३।

३. हनुमन्नाटक ३।२६।

४. मा० ३।२६।२,३।

५. हस्ताभ्यासमुपैति लेढ़ि च तृणं न स्पृश्यता गाहते
गुल्मान्प्राप्य विवर्तते किसलयानाघ्राय चाघ्राय च ।।
भूयस्त्रस्यति पश्यति प्रतिदिशं कण्डूयते स्वां तनुं
दूरं धावति तिष्ठति प्रचलित प्रान्तेषु मायामृगः ।।' हनुमन्नाटक ४।२।

अर्थात 'वह मायामृग कभी कभी तो भागता हाथों से ही ग्रहण करने योग्य होकर तृणों को चाटता है, कभी छूता तक नहीं अर्थात इतन वेग से भागता है कि घास में पैर पड़ता भी नहीं दिखाई पड़ता, कभी लता गुच्छों को पाकर नवीन पत्तों की सुगंधि को सूंघ सूंघ कर लौटने लगता है, अपने शरीर को खुजलाने लगता है, कभी दौड़ता दौड़ता दूर तक चला जाता है, कभी खड़ा हो जाता है और कभी इधर उधर देखने लगता है।'

(२) 'कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुंक प्रगटइ कबहुं छपाई ।।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ।।'
मा० ३।३६।१२, १३।

हनुमन्नाटक में सीताहरण के पश्चात् गीधराज ने सीता को इस प्रकार आश्वासन दिया ।

'मा भैषीः पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो नैष दूरं दुरात्मा
रे रे रक्षः क्व दारानघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि ।।
चंच्वाक्षेपप्रहारत्रुटितधमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणै
राशापालोपहारं दशभिरपि भृशं त्वच्छिरोभिः करोमि ।।'[१]

अर्थात् 'हे पुत्रि सीते ! तू डर मत, यह दुष्टात्मा रावण मेरे आगे से दूर नहीं जा सकता । हे राक्षस ! तू महाराज रामचन्द्र की स्त्री को हर कर कहाँ जाता है । मैं अपनी चोंच की अघात से टूटी हुइ शिराओं को एवं दशो दिशाओं में फेंकी हुई तेरी नाड़ियों से और तेरे दशों सिरों से दिक्पालों को अत्यन्त बड़ी भेंट दूँगा ।'

मानस में वस्तु वही है परन्तु पहले सीता को रावण के नाश करने का आश्वासन देकर तब जटायु क्रियात्मकता की ओर अग्रसर हुआ ।

'सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउं जातुधान कर नासा ।।'[२]

जटायु को देख रावण को संदेहात्मक उक्ति में भी साम्य है ।

'मैनाकः किमयं रुणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि ।।
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानातिमां रावणं
हा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वांछति ।।'[३]

अर्थात् 'मेरे स्वच्छन्द मार्ग को क्या यह मैनाक पर्वत सामने से रोकता है ? उसकी क्या सामर्थ्य है ? वह तो वज्र लगने के भय से इन्द्र से डरता है क्या तो यह गरुड़ है वह भी अपने स्वामी विष्णु सहित मुझ रावण को जानता है । ओ हो ! जान लिया यह जटायु ही है जो बुढ़ापे से विलष्ट होकर मरने की इच्छा रखता है ।'

इस प्रसंग का भी मानस में साम्य है केवल अन्तिम सामाजिक मान्यता की ओर संकेत कर तुलसी की मौलिक योजना का प्रदर्शन करती है ।

'की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ।।
जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ।।'[४]

सीता का विलाप दोनों ग्रन्थों में समान वचनावली में है ।

'हा राम हा रमण हा जगदेकवीर हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ।।'[५]

---

१. हनुमन्नाटक ४।१०।
२. मा० ३।२८।९।
३. हनुमन्नाटक ४।९।
४. मा० ३।२८।१३,१४।
५. हनुमन्नाटक ४।१४।

अर्थात् 'हा राम ! हा रमण ! हा जगत में मुख्य वीर ! हा प्राणनाथ ! हा रघुपति ! आप मेरी उपेक्षा क्यों करते बारबार पुकारती हुई महारानी जानकी को रावण लेकर आकाश मार्ग से होकर चला गया।'

मानस में अन्य साम्य के साथ साथ भक्त तुलसी 'प्रभु कृपा' को यहाँ भी नहीं विस्मरण कर सके हैं, यही उनकी मौलिकता है।

'हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया।।.........
बिबिध बिलाप करति बैदेही।.........'[1]

सीताहरण से शोकाभितप्त राम सीतान्वेषण करते समय अप्रत्यक्ष रूप से सीता के नख शिख सौन्दर्य का चित्रण करते हैं। इस नख शिख वर्णन की शैली का दोनों ग्रंथों में समान निर्वाह किया गया है।

'रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलतावायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः।।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुवितुलजघनां बद्धानागेन्द्रकाञ्ची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान्केन दृष्टा।।'[2]

अर्थात् 'हे पर्वतों के ऊपर रहने वाले और पर्वतों की कंदरा सम्बन्धी वायु से कम्पित वृक्षों! तुमने कहीं बिम्बोष्ठी, सुन्दर नेत्रों वाली, पुष्ट जंघाओं वाली, गजमुक्ताओं से जटित करधनी को धारण करने वाली मम हृदय स्थित सीता को हाय कौन ले गया या तुम में से किसी ने देखा है? मैं शोकरूप अग्नि से दग्ध, दशरथपुत्र राम हूँ।'

मानस में संक्षिप्त शैली में ही उक्त कथन वर्णित है।

'पूछत चले लता अरु पाती.........
'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।'[3]

राम जटायु मिलन प्रसंग में जटायु की 'निजकर्म से गति प्राप्ति' का उल्लेख दोनों ग्रंथों में समान है।

'तात त्वं निजते जसैव गभितः स्वर्ग वज्र स्वस्ति ते'[4]
.........तात कर्म निज ते गति पाई।।[5]

राम जटायु के प्रति अनुरोध करते हैं।

'ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः।।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कन्धरः
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः।।'[6]

---

१. मा० ३।२८।१,४।
२. हनुमन्नाटक ५।१०।
३. मा० ३।२९।८,९।
४. हनुमन्नाटक५।१६।
५. मा० ३।३०।८।
६. हनुम्नाटक ५।१६।

अर्थात् 'आपसे एक बात कहता हूँ कि यह जानकी हरण की कथा मेरे पिता दशरथ से न कहना क्योंकि यदि मैं राम हूँ तो थोड़े ही दिनों में अपने बंधुजन एवं इन्द्र विजयी (मेघनाद) सहित लज्जा से 'स्कंधों को नम्र करके यह रावण स्वयं ही कह देगा।'

मानस में इसका बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव विद्यमान है।

'सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुलसहित कहिहि दसानन आइ॥'[1]

उपर्युक्त प्रसंग में अन्तर केवल यह है कि तुलसी ने हनुमन्नाटक की अपेक्षाकृत रावण की लज्जा के अनुभावों का चित्रण मानस में नहीं किया है। तुलसी के सिद्धान्त के अनुसार रावण को लज्जित करना असंगत था क्योंकि रावण ने तो स्वयं ही संकल्प किया था 'प्रभु सर लगि भव सागर तरिहौं' अतः संकल्प सिद्ध होने में लज्जा कैसी? अतएव तुलसी रावण को लज्जित दिखाने में मौन हैं।

हनुमन्नाटक में विरही राम का एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करने का व्यापक एवं सजीव चित्रण है,[2] मानस में सांकेतिक।[3] मानसकार तो उसे प्रभु की नाट्य लीला ही मान रहे हैं अतएव उसके चित्रण में उनकी रुचि नहीं रमी।

किष्किन्धा कांड

हनुमन्नाटक में सुग्रीव ने विरहाभितप्त राम को सीता के समाचार इस प्रकार अवगत कराए।

"पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवेरेणाम्बरेण व्रजन्ती
किष्किन्धाद्रौमुमोच प्रचुरमणिगणैर्भूषणान्यर्चितानि॥
हा राम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपुं लक्षणेनालपन्ती
यानीमानीति तानि क्षिपति रघुपुरः कापि रामांजनेयः॥'[4]

अर्थात् 'राक्षसों में श्रेष्ठ पापी रावण से ग्रहण करी हुई' 'हा राम! हा प्राणनाथ! इस शत्रु को जीतो' इस प्रकार कहकर, आकाश मार्ग से जाती हुई जानकी जी ने अनेक मणि गण युक्त जिन आभूषणों को किष्किन्धा पर्वत में डाल दिया था वही आभूषण पवन कुमार हनुमान जी ने राम के आगे रख दिये।

---

१. मा० ३।३१।
२. "ततो वामं तिरस्कृत्य च दक्षिणम्॥
राम—सौमित्रे दाववह्निस्तरु शिखरगतो वार्यतां निर्झरौघैः
लक्षमण—का वार्ता दाववह्नेरयमुदयगिरेरुज्जिहीते हिमांशुः॥
राम—धत्ते धूमं हिमांशुः कथय कथमयं
लक्षमण—नैव धूमो, घर याङछायेयं संगता भूत्
राम—अयि धरणिसुते कुत्र कान्तेऽसि सीते॥ 'हनुमन्नाटक' ५।३५, ५।२०।
३. 'चले राम त्यागा बन सोऊ।....
बिरही इव प्रभु करत बिषादा।'....'। मा० ३।३६।१, २।
४. हनुमन्नाटक ५।३७।

मानस में यही प्रसंग कुछ परिवर्तन सहित वर्णित है।

गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता ॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी।
मांगा राम तुरत तेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥'[1]

हनुमन्नाटक के उक्त प्रसंग में हनुमान जी ने सीता के लक्षण रूप आभूषणों को राम के सामने उपस्थित किया, मानस में सुग्रीव ने। जो कि सुग्रीव मैत्री के पश्चात ही वस्तु योजना की दृष्टि से अधिक संगत है। इसके अतिरिक्त मानस में 'रजनिचरवर' न कहकर 'परबस' कहना आगे होने वाले प्रसंग 'सीतान्वेषण' की पूर्व पीठिका है। पहले ही सीता हरणकर्ता का नाम कहकर फिर चहुंदिसि वानरगणों को भेजना असंगत सा होता। मानस में आभूषण के स्थान पर पट डालने का वर्णन आकाश गामिनी सीता की त्वरावस्था एवं आकुलता का परिचायक है।

सुन्दर कांड

सीतान्वेषण सकुशल सम्पन्न कर समागत मारुतिनन्दन से समाचार पूछने पर हनुमान् की निरभिमानता एवं प्रभु प्रताप का आश्रय दोनों ग्रन्थों में समानतः वर्णित है।

हनुमन्नाटक में निम्नांकित शब्दों में वर्णित है।

'त्रिदशैरपि दुर्धर्षा लंका नाम महापुरी ॥
कथं वीर त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने ॥........
शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः ॥
यत्पुनर्लंघितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ॥'[2]

अर्थात् 'हे वीर ! रावण के विद्यमान होने पर भी देवताओं से दुर्धर्ष लंका नामक महान् नगरी को तुमने कैसे भस्म कर दिया ?....शाखा मृग अर्थात् वानर का एक शाखा से दूसरी शाखा पर चला जाना ही पराक्रम है और हे स्वामिन्। जो मैंने समुद्र का उल्लंघन किया सो सब आपका ही प्रभाव है।

मानस में भी इस प्रश्नावली का प्रतिबिम्ब रूप मिलता है।

'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ॥....
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥'[3]

सीता के समाचार प्राप्त कर राम के ससैन्य प्रयाण का वर्णन अत्यन्त आतंकमय है। अभियान करते ही मंगलसूचक शकुन होने लगे, अपार कटक गर्जन तर्जन करता हुआ उमड़ने लगा।

'कपिभिरपरिमाणैर्व्याप्तभूदिक्खचक्रः ॥
उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिमं मम।

---

१. मा० ४।४।४ से ६।
२. हनुमन्नाटक। ६।४२, ६।४५।
३. मा० ५।३२।५, ७ से ९।

अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥
बारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ।
क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम् ॥'[१]

'प्रभु पयान जाना वैदेहीं । फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं ॥....
चला कटकु को बरनै पारा । गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥
नख आयुध गिरि पादपधारी । चले गगन महि इच्छाचारी ॥'[२]

इस अपरिमित ओजमयी सेना का आतंक दिग्दिगन्त व्यापी हो गया ।

'नृपतिमुकुटरत्न त्वत्प्रयाणप्रशस्तिं
प्लवगबलनिमज्जद्‌मभराक्रान्तदेहः ॥
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्‌भिः पतद्‌भिर्जरठ
कमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः ॥'[३]

अर्थात् 'हे राजाओं के मुकुटमणि राम ! बानरों के बल से डूबती हुई भूमि के भार से आक्रान्त देह वाले शेष जी अक्षरावली को ऊपर उठते हुए और नीचे को बैठते हुये दंत रूप टांकों से वृद्ध कच्छपराज की पीठ रूप कपाल पर आपके जाने की प्रशस्ति लिख रहे हैं।

मानस में अक्षरशः अर्थ साम्य प्राप्त होता है ।

'सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई ।
गह दसन पुनि-पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खर्पर सर्प राज सो लिखत अविचल पावनी ॥'[४]

इस आतंकमयी घटना में भी राम के सम्बन्ध से रुचिरता एवं पावनता का दर्शन कराना तुलसी जैसे भक्त हृदय का ही काम है जो प्रभु के प्रत्येक रूप में सौंदर्य निधि का दर्शन करते हैं ।

राम के अप्रतिम तेज एवं ऐश्वर्य से आतंकित मंदोदरी को रावण समझाता है ।

'किं ते भीरु भिया निशाचरपतेर्नासो रिपुर्मे महान् ।
यस्याग्रे समरोद्यतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः ॥'[५]

अर्थात् 'अयि भीरु ! तू भय क्यों करती है ? संग्राम में उद्यत मेरे सामने इन्द्रादि देवता स्थित नहीं होते हैं ऐसे मुझ राक्षसराजका यह बड़ा शत्रु नहीं है ।'

मानस में यही उक्ति चाटुकार मंत्रिगण द्वारा कहलाई गयी हैं ।

'जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं । नर बानर केहि लेखे माहीं ॥'[६]

---

१. हनुमन्नाटक ७।२ से ७।४ तक ।
२. मा० ५।३४।६, ८, ९ ।
३. हनुमन्नाटक ७।३।
४. मा० ५।३४। छन्द ॥२॥
५. हनुमन्नाटक ९।६।
६. मा० ५।३६।९।

सिन्धु तट पर विभीषण को राज्यतिलक का आलोचनात्मक विवेचन दोनों ग्रन्थों में समान है।

'या विभूतिर्दशग्रीवं शिरश्छेदेऽपि शंकरात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥'[1]

अर्थात् 'जो ऐश्वर्य रावण को मस्तक काटकर अर्पण करने से शंकर से मिला वही ऐश्वर्य राम के दर्शन मात्र से विभीषण में आ गया।'

'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएं दस माथ।
सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥'[2]

उक्त प्रसंग के भाव सौन्दर्य, तुलसी में विशेष हैं। मानस का 'सकुचि शब्द राम के शील शिरोमणि रूप का भी दर्शन कराता है।

लंका काँड

दोनों ग्रन्थों में समुद्र पर पाषाण तरण का मूल हेतु रघुबर प्रताप ही माना गया हैं।

'नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणः
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते ॥'[3]

'श्री रघुबीर प्रताप तें सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥'[4]

उक्त प्रसंग में अन्तर यह है कि भक्त गोस्वामी जी उस प्रताप के स्मरण करने की ओर भी प्रेरित करते हैं और अभक्तों की आलोचना भी।

रावण मंदोदरी संवाद के पश्चात् अपने पति की अनवधानता देखकर मंदोदरी ने निष्कर्ष निकाला कि वह मरणासन्न है।

'अहो प्राणनाथ लंकेश्वर किमित स्वकपोल
कल्पितैरमंगलालापैरात्मनो वधं मन्यसे।'[5]

अर्थात् 'हे प्राणनाथ ! लंकेश ! क्या यह अपने ही कथित अमंगल संभाषणों से अपने वध को मानते हो ?'

गोस्वामी जी इसी उक्ति को भार्या के मुख से कहलाना अमर्यादित जानकर हृदय तक ही सीमित रखते हैं।

'मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बिबस उपजा अभिमाना ॥'[6]

विचार विमर्श करने के हेतु आयोजित सभा में रावण के प्रति मंत्रिगणों की उक्तियों में भी पर्याप्त साम्य है।

---

१. हनुमन्नाटक ७।१४।
२. मा० ५।४९।ख।
३. हनुमन्नाटक ७।१९।
४. मा० ६।३।
५. हनुमन्नाटक ९।६।गद्य।
६. मा० ६।७।६।

'राजन्मुखसुखा वाचो मधुरा : कस्य न प्रिया : ॥
तवक्षोदक्षमा: किं तु नैता व्यसनसंगमे ॥....
हेलोल्लंघितवारिधि: कपिकुलैः सार्धं स रामो महान् ॥''''
प्रिया व मधुरा वाक् च हर्म्येष्वेव विराजते ॥'[1]

अर्थात् 'हे राजन् मधुर वचन सबको ही प्यारे लगते हैं परंतु इन वचनों से दुःख प्राप्त होने पर तुम्हारे दुःख का कारण न होंगे।'

'वानरगणों के साथ खेल ही में समुद्र का उल्लंघन करने वाले वे राम क्या नर है ?'

'प्रिय और मधुरवाणी महलों में ही विराजमान होती है।

मानस में विरूपाक्ष के स्थान पर ऐसी उक्तियां प्रहस्त के द्वारा कही गई हैं।

'सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥
जेहिं बारीस बंधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो मनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥'[2]

दोनों ग्रंथों में अंगद ने रावण को राम का दासत्व स्वीकार कर सीता समर्पण का अनुरोध किया।

हनुमन्नाटक में निम्नांकित शब्दों में वर्णित है।

'तल्लंकेश्वर मुञ्च मानमखिलं श्रुत्वा वधं वालिन:
सीतामर्पय रक्ष राक्षसकुलं दासत्वमंगीकुरु ॥[3]

अर्थात् 'हे लंकेश ! तू बालि के वध को सुनकर सम्पूर्ण मान को छोड़ दे, जानकी को राम के समर्पित कर राक्षस कुल की रक्षा कर और दास भाव को स्वीकार कर।'

मानस में भी लाक्षणिक ढंग से उक्त कथन का ही पुनरावर्तन है।

'दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥[4]

दोनों ग्रंथों में रावण अंगद परिचय सम्बन्धी प्रश्नोत्तर में साम्य है। अन्तर यह है कि जहां हनुमन्नाटक में स्पष्टत: रावण की पराभव सूचक सतर्क उक्तियां हैं।[5] वहीं मानस में व्यंगात्मक एवं व्यंजनात्मक ढंग की है।[6]

---

१. हनुमन्नाटक, ९।१४, ९, १५।
२. मा० ६।८।४ से ६।
३. हनुमन्नाटक ८।५०।
४. मा० ६।१९।७,८।
५. 'कस्त्वं कस्यापि पुत्र: क्व पुनरिह गत: किं नु कृत्यं च कस्मात्।'
'कस्त्वं वन्यपते: सुतो वनस्पति: क: सार्थिकस्त्वेकदा
यात: सप्तसमुद्रलंघन विधावेको ह्लिको वेद्मि तम्॥'
'हंहो पौलस्त्यपुत्रस्तव बलमथनस्यांगदोऽहं सुवेलात्।'
हनुमन्नाटक ८।२४।गद्य, ८।१०,८।२५।
६. 'कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिए मिताई॥
अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा॥' मा० ६।२०।२,३।

उक्त परिचय सुनकर रावण ने अंगद का तिरस्कार करते हुए कहा ।

"धिग्धिगंगद मानेन येन ते निहतः पिता ।
निर्मानो वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः ।।"[1]

अर्थात् 'अरे अंगद ! तुझे धिक्कार है, जिसने तेरे पिता को मान करके मारा है उसी का तू वीर वृत्त पाकर दूत हुआ है ।'

'अंगद तहीं बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ।।
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु । निज मुख तापस दूत कहायहु ।।'[2]

हनुमान्नाटक के बालि सम्बन्धी प्रकरण में रावण अंगद प्रश्नोत्तर निम्नांकित हैं ।

'अस्ति स्वस्ति समन्युतो रघुबरे रुष्टेऽत्रकः स्वस्तिमान्
को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतो चिताम्बुप्रदः ।।'[3]

अर्थात् 'क्या वह कुशल पूर्वक है ? अंगद अनरण्यक के मरण के पश्चात् उचित जल देने वाले रघुबीर के रुष्ट होने पर यहाँ कौन कुशल सहित हो सकता है ?'

मानस में उक्त कथन के अतिरिक्त अंगद रावण के लिये भी मार्मिक निष्कर्ष निकाल कर व्यंग वचन कहते हैं ।

'अब कहु कुसल बालि कहं अहई । बिहंसि बचन तब अंगद कहई ।।
दिन दस गए बालि पहिं जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ।।
राम विरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ।।'[4]

उक्त उपदेश सुनते ही रावण ने, दोषों ग्रन्थों में, आत्म प्रशंसा करते हुये अंगद की समान रूप से भर्त्सना की ।

हनुमान्नाटक में अंगद की कटूक्तियों से दग्ध रावण खीझ कर कह उठा :

'रे रे शाखामृग त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि ।'[5]

अर्थात् 'हे बानर ! मैं धर्मशीलता के कारण तुझ कटु भाषी को भी नहीं मारता हूँ ।'

मानस में रावण की उक्त खीझ संयत रूप में व्यक्त हुई है । वह अंगद पर अपने क्रोध प्रदर्शन न करने का कारण अपनी नीति कुशलता बताता है ।

'खल तब कठिन बचन सब सहऊं । नीति धर्म मैं जानत अहउं ।।[6]

हनुमान्नाटक में अंगद ने रावण की इस धर्म शीलता पर कटाक्षपूर्ण प्रत्युत्तर दिया ।

परदारापहरणेन श्रुता या दशानन ।।
दृष्टा दूतपरित्राणे साधोस्ते धर्मशीलता ।।'[7]

---

१. हनुमन्नाटक ८।२६।
२. मा० ६।२०।५, ६।
३. हनुमन्नाटक ८।१०।
४. मा० ६।२०।७ से ९।
५. हनुमन्नाटक ८।२१।
६. मा० ६।२१।४।
७. हनुमन्नाटक ८।२२।

अर्थात् 'हे रावण ! जो साधु की धर्मशीलता पर स्त्री के हरण में सुनी थी वही दूत रक्षा में देखी ।'

मानस में साम्य के अतिरिक्त क्षोभोद्गार अधिक है ।

'कह कपि धर्मशीलता तोरी । हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ।।
देखो नयन दूत रखवारी । बूड़ि न मरहु धर्म ब्रत धारी ।।'[1]

अंगद की भर्त्सना से उद्दीप्त रावण अपनी भुजाओं पर गर्व करता हुआ[2] अपने पूर्व कृत कर्मों का उल्लेख करने लगा ।

'हेलोत्क्षिप्तमहीध्रकम्पजनितत्रासांगनालिंगनप्राप्तानन्दहर
प्रसादमुदितश्चिन्त्य: समेऽन्यो रिपु: ।।'[3]

अर्थात् 'जिस समय मैंने लीला से ही कैलास को उठाया था उस समय उस पर्वत के कांपने से व्याकुल हुई पार्वती शिवजी से आलिंगन बद्ध हो गई, जिसमे शिवजी प्रसन्न हुये, अन्य कोई शत्रु बताओ ।'

मानस में उक्त प्रसंग का उल्लेख अलंकारिक रीति से किया गया है ।

'पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ।।'[4]

अंगद द्वारा रावण को पुरुषार्थहीन सिद्ध करने पर वह आलोचनात्मक ढंग से राम सैन्य की हीनता प्रदर्शित करते हुये दोनों ग्रन्थों में अपना शौर्य स्थापन करने की चेष्टा करता है ।

'राम: स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकुलद्रुम: ।।
गण्य: कस्य विभीषण: स च रिपो कारुण्यदैन्या
तिथिर्लंकातंकविटंकपावकपटुर्वध्यो ममैक: कपि: ।।'[5]

अर्थात् 'राम तो स्त्री वियोग से ही कृशतनु हो गये हैं, लक्ष्मण उनकी चिन्ता से दुर्बल हैं, सुग्रीव वृद्ध होने से मूल रहित नदी तट के वृक्ष के समान पतनशील हैं और अंगद भेद की शंका से विभीषण की क्या गणना है ? वह तो शत्रु की कृपा और दीनता का ही अभ्यागत है, अर्थात् इनमें से कोई भी मुझसे युद्ध करने योग्य नहीं है । लंकावासी राक्षसों को भयदायक अग्निरूप चतुर एक हनुमान ही मेरा बध करने योग्य है ।'

---

१. मा० ६।२१।५, ६।

२. १ ,अकलितमहिमान: सन्ति दुष्प्रापपारा दशवदनभुजास्ते विंशति: सिन्धुनाथ: ।।'
हनुमन्नाटक ८।३१।

२ 'जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोक मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु बसराहु ।।' मा० ६।२२।क

३. हनुमन्नाटक ८।३५

४. मा० ६।२२।ख

५. हनुमन्नाटक ८।९।

'तव प्रभु नारि बिरह बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ।।
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ।।
जामवंत मन्त्री अति बूढा । सो कि होइ अब समरारूढा ।।
सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा बल सीला ।।
आवा प्रथम नगरु जेहि जारा ।..........'[1]

रावण की व्यंगोक्ति पूर्ण निन्दा के अनुकूल अंगद ने गूढोत्तर दिया

'कथं मिथ्यावदन्न: पुरा ।।
किं लंकापुरदीपनं तव सुतस्तेनाहतोऽक्षो युधीति........
योयुष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननं
योऽक्षं वीरममीमरद्गिरिदरीर्योऽब्रीभरद्राक्षसैः ।।
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु संभाव्यते
दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं संप्रेष्यते सांप्रतम् ।।'[2]

अर्थात् 'क्या उसी ने तुम्हारी लंका को भस्म किया और समर में अक्षयकुमार को भी मारा ? फिर उसने पहले हमारे सामने मिथ्या भाषण क्यों किया ;'

जिसने तुम्हारे पुर को भस्म किया था। जिसने तुम्हारे वन का विध्वंस किया था, जिसने अक्ष को मारा था, जिसने राक्षसों से पर्वतों की कन्दराओं को भर दिया था वह हमारे दल में कभी वीरों में नहीं समझा जाता, केवल वह तो दूत कर्म के ही अर्थ प्रतिदिन इधर उधर भेज दिया जाता है ।'

मानस में भी अंगद ने मिथ्याध्वसित अलंकार का आश्रय लेकर उपर्युक्त का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है ।

'जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ।।
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ।।'[3]

अंगद ने रावण को न मारने का कारण दोनों ग्रन्थों में एक ही बताया है ।

'मम जनकदोदण्डविजयस्फुरत्कीर्तिस्तम्भः ।'[4]

अर्थात् 'तुम मेरे पिता के भुजदण्डों के स्तम्भ स्वरूप हो । इसलिये नहीं मारता हूँ ।'

'बालि बिमल जस भाजन जानी । हतउँ न तोहि अधम अभिमानी ।।'[5]

तदनंतर रावण के पराभवों के पूर्व प्रसंगों का उल्लेख भी दोनों ग्रन्थों में एक समान ही किया गया है ।

---

१. मा० ६।२३।२ से ६।
२. हनुमन्नाटक ८।५, ७।
३. मा० ६।२२।९, १०।
४. हनुमन्नाटक ८।३८।
५. मा० ६।२२।११।

'रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुमः
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणै
रन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ।।'[१]

अर्थात् 'हे हे रावण ! रावण कितने हैं ? इन बहुत से रावणों को तो हमने सुना है । एक तो पहले सहस्त्रबाहु के भुजाओं से बांधा गया था और एक को राजा बलि के दासी जनों ने नृत्य कराकर अन्न के ग्रास दिये थे और दूसरे को कहते हुये हम लज्जित होते हैं । अर्थात जो बाली की बगल में दबा था और मैंने उस शय्या में बँधे हुये को लातों से मारा था । सो तू इनमें से कौन है अथवा इनके अतिरिक्त तू और ही है ।

'कहु रावन रावन जग केते । मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते ।।
बलिहि जितन एक गयउ पताला । राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ।।
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ।।
एक बहोरि सहस भुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ।।.........
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बलि की काँख ।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ।।'[२]

रावण का प्रत्युत्तर भी तथैव दोनों ग्रन्थों में समान है ।

'वीरोऽसौ किमु वर्ण्यते दशमुखच्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं
यः पूजार्थसमुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वांगिनः ।।'[३]

अर्थात् 'जो कि काटे हुये अपने शिरों से भगवान् शिव जी की पूजा के लिये उत्कंठित है, उस वीर दशकंठ की घटना को कौन वर्णन करेगा ?'

'जान उमापति जासु सुराई । पूजेउं जेहि सिर सुमन चढ़ाई ।।
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउं अमित बार त्रिपुरारी ।।'[४]

हनुमन्नाटक में रावण ने ज्यों ही राम को नर कहा त्यों ही अंगद क्रोध से उद्दीप्त होकर राम का पराक्रम कथन करने लगे ।

त्वद्दोर्दण्डप्रचण्डप्रतिहननविधिप्रोढबाह्वोः सहस्र
च्छेदक्रीडाप्रवीणस्थिरपरशुमहागर्वनिर्वापकस्य ।।.........
रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः
किं गंगाऽपि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाः किं हयः ।।
किं रम्भाऽप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी न
किं त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान्कपिः ।।'[५]

---

१. हनुमन्नाटक ८।३२।
२. मा० ६।२३।१२ से १५, ६।२४।
३. हनुमन्नाटक ८।४४।
४. मा० ६।२४।२, ३।
५. हनुमन्नाटक ८।४०,२४।

अर्थात् 'तेरे प्रचंड भुजदंडों के प्रति ताड़न की विधि में सगर्व, सहस्रार्जुन के हजारों भुजाओं के काटने की क्रीड़ा में चतुर और स्थिर परशुराम के गर्व का नाश करने वाले राम को मनुष्य कैसे विचारना योग्य है ।'

'अरे हीन दीन कुबुद्धि ! रावण ! क्या रामचन्द्रजी भी मनुष्य हैं ? गंगा जी भी नदी हैं ? क्या ऐरावत सामान्य हस्ती है ? क्या उच्चैःश्रवा कोई साधारण अश्व है ? क्या रम्भा अप्सरा भी स्त्री है ? क्या सत्ययुग साधारण युग है? क्या कामदेव धनुष धारी नहीं है? और त्रिलोकी में प्रकट है प्रताप का प्रभाव जिसका ऐसा हनुमान क्या सामान्य वानर है ? (अर्थात् नहीं)'

हनुमन्नाटक की अपेक्षा मानस में भक्त कवि तुलसी राम के पराक्रम के विषय में जितना अधिक कहें उतना ही अल्प है । अतएव इसमें उनका दिग्दर्शन इस प्रकार है ।

'राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ।।
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा । अन्न दान अरु रस पीयूषा ।।
बैनतेय खग अहि सहसानन । चिंतामनि पुनि उपल दसानन ।।
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा । लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ।।'[1]

अंततः अंगद ने रावण को राम विरोध के दुष्परिणाम की भी घोषणा समान रूपेण दोनों ग्रन्थों में की है ।

'रे रे राक्षस वंशघात समरे नाराचचक्राहतं
रामोत्तुंगपतंगचापयुगले तेजोऽभिराडम्बरे ।।
मन्ये शीर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमण्डले पातितं
गृध्रैरालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति ।।'[2]

अर्थात् 'अरे राक्षसवंश के घातक ! राम के बड़े भारी धनुषबाण के तेज से व्याप्त हुए संग्राम में मैं जानता हूँ बाण समूहों से ताड़ित तेरे संपूर्ण सिर पृथ्वी मंडल में गिरकर लुढ़केंगे जिनको गृध्र लेकर उड़ेंगे और सियारिनियाँ भक्षण करेंगी और काकों द्वारा क्षत विक्षत होंगे ।'

'तब सिर निकर कपिन्ह के आगें । परिहहिं धरनि राम सर लागें ।।
ते तब सिर कंदुक सम नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ।।'[3]

रावण ने भी उक्त ललकार का प्रत्युत्तर दोनों ग्रन्थों में स्वाभिमान के प्रबल स्तम्भों के उल्लेख से दिया ।

'भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुलव्रातसंहारमूर्तिः
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो येन बद्धः सुरेन्द्रः ।।
खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो राक्षसा मे सहायाः
सोऽहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नाम राजा ।।'[4]

---

१. मा० ६।२५।५ से ८।
२. हनुमन्नाटक ८।२०।
३. मा० ६।२६।४,५।
४. हनुमन्नाटक ८।३३।

अर्थात् 'समस्त रिपुकुल समूह के संहार की मूर्ति कुम्भकर्ण तो मेरा भाई है, प्रसन्नमुख मेघनाद, जिसने देवराज को बाँधा था वह मेरा पुत्र है, समर में चपल चन्द्रहास मेरा खड्ग है और समर में चपल राक्षस मेरे सहायक हैं, ऐसा मैं देवताओं का शत्रु त्रिलोक विजयी रावण नाम का राजा हूँ ।'

'कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउं चराचर झारि ।।'[1]

मेघनाथ प्रथम युद्ध के वर्णन में दोनों ग्रन्थों में मेघनाथ का अदृश्य होकर घनघोर युद्ध करना वर्णित है ।

'सुग्रीवमारुतिनलांगदनीलमुख्या ।
वाष्पान्धकारजलदान्तरितं प्रचण्डम् ।।
तं रावणिं जलदमण्डलमास्थितं नो ।
पश्यन्ति तान्प्रहरति स्म स घोरबाणैः ।।'[2]

अर्थात् 'सुग्रीव, हनुमान् नल, अंगद, नील, मुख्य-मुख्य वानर वाष्प के अंधकार से मेघों के मध्य में छिपे हुये उस रावणकुमार मेघनाद को नहीं देखते हैं और वह इनको घोर बाणों से प्रहार करने लगा ।'

'नभ चढि बरुष बिपुल अंगारा । महि ते प्रगट होहिं जलधारा ।।''''
बरषि धूरि कीन्हेसि अंधिआरा । सूझ न आपन हाथ पसारा ।।'[3]

सुषेनानयन प्रसंग में हनुमन्नाटक में हनुमान् द्वारा सपर्यंक वैद्यराज को लाने एवं पहुँचाने का उल्लेख है[4] जबकि मानस में भवन सहित ।'[5] इसमें मानस में विशेष हनुमत् बल उत्कर्ष वर्णित है ।

दोनों ग्रन्थों में संजीवनी आनयन के प्रसंग में भरत द्वारा मारुति नंदन पर शर प्रहार का उल्लेख है केवल अन्तर यह है कि हनुमन्नाटक में केवल आशंकामात्र से ही बाण

---

१. मा० ६।२७।
२. हनुमन्नाटक १२।३।
३. मा० ६।५१।१,४।
४. 'हनूसान्पर्यङ्कसुप्तमचिरेण तमानिनाय ।।''''''''
नीत्वा लंका सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामम् ।'
हनुमन्नाटक १३।१७,२०।
५. 'धरि लघु रूप गयउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ।।''''''''
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा । जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा ।।'
मा० ६।५४।८, ६।६१।४।

संधान कर दिया[१] जबकि मानस में 'बिनु फर सायक' निशिचर के अनुमान पर चलाया।[२] दोनों ग्रन्थों में शर प्रहार से हनुमान की मूर्च्छा का उल्लेख है।[३]

दोनों ग्रन्थों में सशैल हनुमान का भरत के बाण पर आरोहण वर्णित है।[४] इस कारण हनुमन्नाटक में हनुमान द्वारा भरत की बाहु बल प्रशंसा का उल्लेख है[५] जबकि मानस में इसके अतिरिक्त तुजसी के चरित्र चित्रण की विशेषता के कारण भरत का शील एवं भक्ति भी प्रशंसित की गई है।[६]

कुम्भकर्ण युद्ध विवरण में भी दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त साम्य है।

'क्रोधाग्नेर्जाठराग्नेः कपिशिबिरगतो मुद्गरं व्याददानो।
वक्त्रे निक्षिप्य कोटिं कवलयति भटानुत्कटान्कुम्भकर्णः॥
काश्चित्पद्भ्यां' पिनष्टि श्वसनसहचरा वानराः कर्णरन्ध्रा।
न्निगच्र्छन्त्येय एतान्पुनरपि दशनैश्चर्वितानत्ति घोरम्॥'[७]

अर्थात् 'वह कुम्भकर्ण मुद्गर हाथ में लिये हुये, वानरों के डेरों में जाकर, क्रोधाग्नि रूप जठराग्नि से करोड़ों उत्कट भटों को मुख में रखकर चबाता है, किसने ही वानरों को चरणों से पीसता है, श्वासों के सहचर कोई वानर कान के छिद्रों में से निकल जाते हैं, इन निकले हुओं को फिर भी भयानकता से दांतों से चबाकर भक्षण करता है।

'कोटिन्ह गहि सरीर सन भर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥'[८]

---

१. 'स ज्वलदनलनिभं शैलमादाय वीरः प्राप्तस्तत्राञ्जनेयः स किमिति भरतस्तं शरेणाजघान॥' हनुन्नाटक १३।२४।

२. मा० ६।५८। तथा मा० ६।५८।१।

३. (१) 'पुंखावशेषभरतेषुललाटपट्टो हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति ब्रुवाणः॥
संमूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण॥'
अर्थात् 'पुंख मात्र शेष बचे हुये भरत जी के बाण से युक्त ललाट पट्टवाले 'हा राम। हा लक्ष्मण। में कहाँ हूँ' यह कहते हुये, केसर सहित लांगूल के अग्र भाग में द्रोणपर्वत को धारण करते हुये मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।'
हनुमन्नाटक १३।२५।

४. हनुमन्नाटक १३।२९।
(२)'चढु मम सायक सैल समेता'.........'मा० ६।५९।६।

५. उत्तीर्य बाणात्कृशलं गृहीत्वा संपूज्य बाहुँ भरतस्य वाग्भिः॥....
अर्थात् 'बाण से उतर कर कुशल समाचार को लेकर, भरत की भुजाओं को, वचनों से प्रशंसा करके हनुमान जी चले।'
हनुमन्नाटक १३।४०।

६. भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार॥ ।मा० ६।६०।ख।

७. हनुमन्नाटक ११।२९

८. मा० ६।६६।३,४

हनुमन्नाटक में वर्णित रावण की गर्वोक्ति एवं तुलनात्मक स्वगुण कथन[1] के समान ही मानस का यह प्रसंग[2] है। अन्तर केवल यह है कि पूर्व ग्रन्थ में राम के अन्य रिपुओं का स्पष्ट विवरण है, मानस में केवल सांकेतिक है।

हनुमन्नाटक में, स्वयम्बर प्रसंग के समय राम के धनुरारोपण के प्रसंग में जो विश्वव्यापी आतंक वर्णित हुआ है,[3] मानस में राम के युद्धारम्भ का विवरण देते समय तुलसी ने उसी आतंक का पुनः उल्लेख किया है।[4] परन्तु पूर्वोक्त प्रसंग में भी तुलसी उस आतंक का विवरण दे चुके थे, अतएव मानस के इस आतंक चित्रण में तुलसी ने मन्दोदरी एवं निशिचरों पर भी राम की धनु प्रत्यंचा की ध्वनि का प्रभाव अत्यन्त अनुकूल दर्शाया है।

रावण बध में विलम्ब के केवल एक कारण का दोनों ग्रन्थों में समानोल्लेख है।

'यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः
स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः ।।
हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो
रम्यास्ते भुवनावली विलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः ।।'[5]
'प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयं बसति वैदेही ।।
एहि के हृदयं बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ।।'[6]

---

१. "स्त्रीमात्रं ननु ताटका मुनिसुतो रामः स विप्रः शुचि
मारीचो मृग एव मोतिभवनं वाली पुनर्वानरः ।।
भो काकुत्स्थ विकत्थसे वद रणे वीरस्त्वया को जितो
दोर्गर्वस्तु तथापि ते यदि पुनः को दण्डमारोपय ।।"

अर्थात् "स्त्रीमात्र तो ताड़का, मुनिपुत्र ब्राह्मण परशुराम जो स्वभाव से ही पवित्र था, मारीच मृग भय का भंडार, ऐसा ही बन्दर वाली, ये ही तुमने जीते, हे काकुत्स्थ ! तब भी तुम अपनी श्लाघा करते हो, कहो तो तुमने वीर कौन-सा जीता है ? तथापि यदि तुम्हें भुजदंडों का गर्व है, तो धनुष चढाओ।' हनुमन्नाटक १४।२१।

२. जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं ।।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना ।।
खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा ।।'
मा० ६।८९।३से ५।

३. हनुमन्नाटक १।२३।

४. मा० ६।९०।छन्द

५. इस रावण के हृदय में प्रतिदिन जानकी निवास करती हैं उन जानकी के हृदय में (राम) वास करता हूँ और मुझमें सप्तद्वीप सहित भुवनों की श्रेणी विलास करती है ऐसा विचार कर जिन महाराज राघव राम ने युद्ध में बाणों से उस रावण पर प्रहार नहीं किया वे त्रिलोकी की व्यापार चिन्ता में तत्पर राम तुम्हारा कल्याण करें।' हनुमन्नाटक १४।२६।

६. मा० ६।९८.८ तथा छन्द।

श्रीमद्भगवद्गीता एवं राम चरित मानस

बृहत्त्रयी में गीता का सर्वप्रमुख लोक प्रिय स्थान है। इस महान् लोकोपयोगी ग्रन्थ के मणि रत्नों को भी मणि पारखी एवं लोक संग्रही गोस्वामी जी ने मानस में जटित किया है।

स्वयं भगवान कृष्ण द्वारा गीता में कही हुई वाणी[1] को ही मानस के अवतार प्रकरण[2] में मान्यता दी है। अन्तर केवल इतना है कि गोस्वामी जी ने उसी कथन को उत्तम पुरुष में न कह कर अपनी वाणी में कहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि तुलसी ने अपनी वाणी में भगवान कृष्ण की वाणी का समर्थन करना उपयुक्त समझा है।

मानस में राम के चार प्रकार के भक्त गीता की ही भाँति वर्णित हुये हैं। परन्तु अन्तर केवल यह है कि आधार ग्रन्थ गीता में केवल भक्तों का वर्गीकरण ही किया गया है[3] जब कि मानस में वर्गीकरण के अतिरिक्त चारों भक्तों का आधार 'भगवन्नाम' का भी उल्लेख किया गया है। इस अन्तर में गोस्वामी की 'नाम भक्ति' स्पष्टतः प्रतिबिम्बित है:—

'राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।
चहुं चतुरन कहं नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा।।'[4]

मानस के लक्ष्मण-गुह-गीता में जो दार्शनिक विवेचन किया गया है[5] वह भी गीता के दार्शनिक विवेचन से पूर्ण साम्य रखता है। अन्तर केवल यह है कि गीता में वर्णित निशा की विशेषताओं का उल्लेख कर गोस्वामी जी ने व्याख्यात्मक रूप अपनाया है।

'सम्भ्रान्त व्यक्ति के लिये अपयश लाभ मृत्यु से भी बढ़कर है' उक्त तथ्य का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित है।[6] मानस में 'दारुन दाहू' शब्द का विशेष योग कर गोस्वामी जी ने भावानुभूति की व्यंजना की है।

---

१. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'
गीता ४।७,८।

२. जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।'
मा० १।१२०।६ से ८ तक

३. 'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।' गीता ७।१६।

४. मा० १।२१।५,६।

५. मा० ३।१३।५ से ३।१६ तक

६. (१) 'अकीर्ति चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।' गीता २।३४।
(२) 'संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।।
मा० २।९४।७।

भगवान् का समदर्शित्व दोनों ग्रन्थों में समान रूपेण वर्णित है।[१] परन्तु मानस में गोस्वामी जी ने भक्त की महिमा का भी उल्लेख कर भगवदनुग्रह की ओर भी संकेत किया है जो कि भक्त हृदय तुलसी की मौलिकता है।

मानस के अरण्य कांड में राम गीता का तात्विक उपदेश सुनकर जो स्थिति लक्ष्मण की हुई, ठीक वैसा ही विवरण आधेय-ग्रन्थ गीता के उस प्रसंग में मिलता है जब कि कृष्ण का तात्विक उपदेश सुनकर अर्जुन मोहरहित दशा को प्राप्त हुये थे।[२]

'प्रभु अपनी माया के द्वारा समस्त प्राणियों को संचालित करते रहते हैं' उक्त तथ्य का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में समान है। गीता में[३] भगवान् की माया को इस संचालन का प्रधान साधन माना है जब कि मानस में तुलसी ने प्रभु के 'साधन साध्य' रूप को समन्वित कर उसका प्रतीकात्मक चित्रण किया है। राम को सूत्रधार और सभी प्राणियों की उपमा 'दारूयोषित्' से दी है।[४]

रावण को विभीषण द्वारा प्रदत्त उपदेशावली गीता के उपदेश[५] से पर्याप्त साम्य रखती है परन्तु तुलसी की नवीनता यह है कि उन्होंने उक्त साम्य में 'राम भजन' के उपदेश द्वारा अपने भक्त व्यक्तित्व का निदर्शन किया हैं।[६]

---

१. (१) 'नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।' गीता ५।१५।

(२) 'जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।
तदपि करहिं सम विषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।।'
मा० २।२१८।३ से ५ तक

२. 'मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।'
गीता ११।१।

(२) 'भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा।'
मा० ३।१६।१।

३. 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।' गीता १८।६१।

४. 'उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं दचावत रामु गोसाईं।।'
मा० ४।१०।७।

५. 'त्रिबिधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। गीता १६।२१।

६. 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।' मा० ५।३८।

सन्तों के लक्षणों में भी पर्याप्त समानता दोनों ग्रन्थों में वर्णित है ।[1]

'भक्ति के क्षेत्र में जाति कदापि बाधक नहीं होती' उक्त तथ्य का दोनों में पूर्ण साम्य है । भावना में तुलसी विशेष हैं क्योंकि गीता में भगवान कृष्ण अपने आश्रितों को केवल परमगति के अधिकारी ही बताते हैं[2] परन्तु तुलसी भक्त को राम के 'प्राणप्रिय' की उपाधि देते हैं ।[3]

'धार्मिक क्षेत्र में श्रद्धा का विशेष महत्व है ।' उक्त तथ्य का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में समान आधार पर किया गया है । गीता में श्रद्धा विरहित कर्म की विवेचना व्यापक रीति से की गई है,[4] मानत में सूत्रात्मक रूप में संकेत किया गया है कि

'श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई ।'[5]

गीता में 'पुनर्जन्मवाद' का सिद्धान्त वर्णित है[6] जब कि कागभुसुंडि के जीवन काल में इसी सिद्धान्त का व्यावहारिक रूप दर्शाया गया है ।[7]

संसार के सहस्रों प्राणियों में कोई विरला ही ब्रह्म के स्वरूप को जान पाता है । इस तथ्य का निरूपण गीता में संक्षिप्त रूप में किया गया है[8] परन्तु मानस में इसका

---

१. (१) 'समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकाञ्चन: ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति: ।.........
अनपेक्ष: शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथ: ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त: स मे प्रिय: ।।........
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेत: स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नर: ।'
गीता १४।२४, १२।१६, १२।१९।

२. 'सम मानि निरादर आदरही । सब संत सुखी बिचरंति मही ।।........
अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ।।........
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ।।'
मा० ७।१३।१६, ७।४५।६, ७।३८।

३. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय: ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् । गीता ९।३२।

४. 'भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ।।'
मा० ७।८५।१०।

५. अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।' गीता १७।२८।

६. मा० ७।६८।४।

७. 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।' गीता २।२२।

८. जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान ।
जिमि नूतन पट पहिरह नर परिहरइ पुरान ।।' मा० ७।१०९।ग।

व्याख्यात्मक रूप अपना कर धर्मात्माओं का उत्तरोत्तर विकासात्मक क्रम वर्णित किया है। लोक जीवन के उन्नायक तुलसी के लिए उत्तम मानवों के नैतिक आदर्शों एवं वर्गीकरणों का व्याख्यात्मक रूप अपनाना नितान्त स्वाभाविक ही था।

यद्यपि उपर्युक्त प्रमुख आधार ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों[1] के भाव रत्न भी मानस में समाहित हैं परन्तु विस्तार भय से केवल प्रमुख आधार ग्रन्थों की ही सम्यक् तुलनात्मक विवेचना करना ही समीचीन होगा।

प्रस्तुत अध्याय में आधार आधेय के तुलनात्मक विवेचन पर विहंगम दृष्टि डालने से यह स्पष्टत: परिलक्षित हो जाता है कि गोस्वामी जी ने भक्ति के मान्य ग्रन्थों के तात्विक मणि रत्नों को ग्रहण कर उनमें मौलिकता एवं भावुकता का सम्मिश्रण कर 'मानस मणि मंजूषा' सर्व 'जन हिताय' प्रस्तुत की है।

———

१. 'मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वत:॥' गीता ७।३।

२. अद्भुत रामायण, अद्भुतोत्तर खंड, अनर्घ राघव, उत्तर रामचरित, कपिल रामायण, कुमार संभव, कश्यप संहिता, कूर्म संहिता, गालव संहिता, पराशर संहिता, याज्ञवल्क्य संहिता, किरातार्जुनीय, पंच तन्त्र, भतृहरि शतक, मंगल रामायण, योगवाशिष्ठ, वामनपुराण, शिवपुराण, गरुड पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण,

३. ब्रह्म वैवर्त्त पुराण, हरिवंश पुराण, शांडिल्य सूत्र, सुभाषित रत्न भांडागार, सांख्य दर्शन, चाणक्य नीति, देवी भागवत, प्रस्ताव रत्नाकर, भोज प्रबन्ध, मातृकाविलास, सुतीक्ष्ण रामायण, अगस्त्य रामायण, अग्निवेश रामायण, आनन्द रामायण, चम्पू रामायणादि।

तृतीय परिच्छेद

रामायण और मानस में राम का स्वरुप

"श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती,
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यम् नमः।
रामात्त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वम् वशे,
रामे भक्तिरखंडिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रय ॥"[1]

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण माहात्म्यम्)

"यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा,
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्बोधेस्तितीर्षावतां,
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥"[2]

(रामचरित मानस)
बाल कांड

प्रातःस्मरणीय, कविकुलचुड़ामणि, मानस मर्मज्ञ, कलिपावनावतार, राम-चरण-चंचरीक गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनन्त, नित्यानन्द स्वरूप, चिन्मय ब्रह्म को भक्त जनों

---

१. अर्थ "हे राम! आप मेरे आश्रय बनें। क्योंकि आप ही समस्त जगत् के आधार हैं। आपके अतिरिक्त मेरा और क्या आश्रय है। आप कलि के सब कलुष को नष्ट कर देते है अतः हे कलिमलहारी राम! आपको प्रणाम है। कालरूपी भयानक सर्प भी आपसे डरता है यह चराचर विश्व आपके ही वश में है। हे प्रभो! मेरी अखण्डित भक्ति सदा आप में ही बनी रहे।"

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण माहात्म्यम्)

२. अर्थ 'जिनकी माया के वशीभूत सम्पूण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छावालों के लिये एकमात्र नौका है, उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम''''कहाने वाले भगवान हरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥'

। मा० १। प्रारंभिक।

की अभीष्ट कार्य सिद्धि हेतु निराकार से नराकार 'राम' रूप में अवतरित कराया है जिसमें निखिल भक्त तथा योगीजन 'रमण' करते हैं।[1] निर्विकार परब्रह्म परमात्मा को अपने चरित नायक के रूप में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित करके अपने आदर्श की गुरुता में मानो स्वयं अभिभूत हो गये हैं। उनके अवतारवाद का हेतु—

"व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप।"[2] है।

गोस्वामी जी के राम 'अंशी' नहीं स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं जो निर्गुण एवं असीम से सगुण तथा ससीम बन भक्त जन हित अवतरित होते हैं और फिर भक्त लेखक भी इस अमर काव्य के प्रतिष्ठित दृढ़ालम्बन रूप इष्टदेव के प्रति आनन्दातिरेक से नतमस्तक, सजल-नयन, गद्गदगिरा, पुलकशरीर होकर आनन्द सिन्धु राम में निमग्न अथवा उनकी चरण-रज पर न्यौछावर बिना हुये रह ही नहीं सकता। कल्पना के स्वर्ण-शिखरों का सौन्दर्य, अध्यात्मनीति के विशाल स्तम्भों की पुष्टता, अनुभूति की उज्ज्वल स्निग्धता, निर्माण-सौंन्दर्य प्रचुरता ने 'राम' के स्वरूप में अद्वितीय प्रणयन कला का स्पष्ट दिग्दर्शन कराकर यह प्रमाणित कर दिया है कि यह वाङ्मय स्वरूप[3] भी अपने ही नामी की भाँति ही सुखधाम बन गया है—

'जो आनंद सिन्धु सुखराशी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी
सो सुखधाम राम असनामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।।'

भक्ति की मूलाधारस्वरूपा, ज्ञान-तत्व निरूपित कर्त्री, कर्मविवेचिका श्रीमद्-भागवत् के अन्तर्गत अखंडानन्द परम तत्व के तीन रूपों का वर्णन है:

---

१. अर्थ 'राम' पद का अर्थ
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।
।रा० पु० ता० १।६।
'योगी लोग सच्चिदानन्द अनन्त ब्रह्म में रमण करते हैं उसकी 'राम' पद के द्वारा साक्षाद्वाचकता प्रतिपन्न होती है (अर्थात् कहा जाता है)'

२. रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्द मव्ययम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्।।
। अध्या० रा० १।३२। बालकांड।

३. वस्तुतः 'मानस' में मानस चक्षु से देखने पर उसमें सर्वत्र व्यापी 'राम' के स्वरूप का ही दिव्य दिग्दर्शन है। स्वयं गोस्वामी जी के शब्दों में
"एहि महं आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।"
। मा० ७।६०।६।

'वदन्ति तत्वविदस्तत्वंयज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।। "[१]

(तत्व जानने वाले ज्ञानी जन इसी ज्ञान को तत्व कहते हैं, यही 'अद्वैत ज्ञान' है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान आदि नामों से यह पुकारा जाता है। अर्थात् इसका बोध होता है।)

इसी कथन को व्याख्यात्मक रूप में लघुभागवतामृत में कहा गया है—

'भगवान् परमात्मेति प्रोच्यतेऽष्टांगयोगिभिः ।
ब्रह्मेत्युपनिषन्निष्ठैर्ज्ञानं च ज्ञानयोगिभिः ।। '[२]

यद्यपि परमात्मरूप भगवान् वही हैं जिन्हें अष्टांगयोगी परमात्मा,[३] औपनिषदिकगण ब्रह्म और ज्ञानी लोग ज्ञान कहते हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों के अनुसार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान ये उसके ३ रूप हैं। 'जो ज्ञानाश्रयी भक्त भगवान के केवल चिन्मय रूप का साक्षात्कार करते हैं वे उसके एक अंशमात्र को जानते हैं और अपने ज्ञान के द्वारा उस चिन्मय अंश में लीन होने का दावा करते हैं। यही केवल ज्ञान स्वरूप ब्रह्म कहा जाता हैं।[४] इस मत में ज्ञान निराकार होता है और ज्ञाता और ज्ञेय के विभाग से रहित होता है। दूसरा स्वरूप परमात्मा का है। इस रूप के उपासकों में शक्ति और शक्तिमान का भेद ज्ञात रहता है। यह स्वरूप योगियों का आराध्य है। किन्तु भक्तों के भगवान[५] परिपूर्ण सर्वशक्तिविशिष्ट हैं। भक्त ही भगवान की सारी शक्ति के रस का अनुभव कर सकता है, इसलिये भक्त की सबसे बड़ी कामना यह हैं कि वह भगवान का प्रेम प्राप्त करे।'

हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ८६, ८७ ।

---

१. । भा० २।२।११ ।

२. । स्कन्द पु० ।

३. 'क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' ।।२४।।

(पातंजलयोगदर्शन)
समाधिपाद १

(जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय के सम्बन्ध से रहित तथा समस्त पुरुषों से उत्तम है, वह ईश्वर है।)

४. स योऽहं वे तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा ग्रन्थिभ्यो विमुक्तो मृतो भवति ।।९।।

(मंडकोपनिषद् द्वितीय खंड)

५. (१) भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् ।। । महारामायण ।

अथवा

(२) उत्पत्ति प्रलयं चव भूतानामगतिं गतिं । (विष्णु पुराण)
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।। ६।५।७८

औपनिषद ब्रह्म—श्रीराम

मांडूक्योपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप यह है—

"अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम्
सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथंचन ।।"[1]

(वह ब्रह्म जन्मरहित, निद्रारहित, स्वप्नशून्य, नाम रूप से रहित नित्य प्रकाशस्वरूप और सर्वज्ञ है, उसमें किसी प्रकार का कर्तव्य नहीं है।)

ब्रह्मा जी श्रीभगवान कृष्ण के स्वरूप का चित्रण करते हुये स्तुति करते हैं।[2]

मानस में जीवन्मुक्त शिरोमणि, सत्यनिष्ठ जिज्ञासुओं को ब्रह्म तत्व के उपदेशक, विदेहराज जनक अपने निर्मल अंतःकरण की प्रेरणा द्वारा राम को साक्षात् वेषधारी ब्रह्म रूप देखते हैं और तभी उनकी परमातुर जिज्ञासा आत्म विभोर होकर प्रश्न कर बैठती है।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा।[3]

जगज्जननी गिरिराजनन्दिनी ने भगवान् भूतभावन, प्रभु ध्यान रस रसिक, प्रमथेश शंकर से रामस्वरूप विषयक प्रश्न द्वारा रामचरित का प्रारम्भ किया। उपनिषद् की 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की ही भाँति तुलसी ने 'अथातो रामजिज्ञासा'[4] द्वारा मानस का बीज मंत्र इस प्रकार वपन किया।

'ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ।।[5]

प्रभु विषयक उक्त कल्याणकारी प्रश्न सुनकर भगवान शंकर भी उनके प्रश्न के कतिपयांश का समर्थन करते हुए ही कहते हैं—

---

१. मा० अ० प्र० ३६।

२. 'एकस्त्वमात्मा पुरुष पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णो द्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ।।'
श्रीमद्भागवत १०।१४।२३

३. मा० १।२१५।२।

४. मानस के समस्त श्रोतागणों ने मानस श्रवण के पूर्व 'राम तत्व' या रामस्वरूप की जिज्ञासा प्रकट की है और समस्त मानस इस जिज्ञासा का समाधान रूप है। वे जिज्ञासाएं इस प्रकार हैं:

(१) भरद्वाज—रामु कवन प्रभु पूछउं तोही। कहिअ बुझाइ कृपा निधि मोही ।।
मा० १।४५।६।

(२) गरुड़—भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम ।। मा० ७।५८।

(३) पार्वती—राम सो अवधि नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई ।।
जौं अनीह व्यापक विभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोंहि सोऊ ।।
मा० १।१०७।८, १।१०८।१।

५. मा० १।५०।

'अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।[१]

वस्तुत: ब्रह्म तत्व अचिन्त्य है इसी कारण वेदों ने उसका निरूपण 'नेति नेति' रूप से किया है। उपनिषदों में उस निर्गुण अचिन्त्य तत्व का ही विशेषरूपेण निर्देश[२] किया गया है। परन्तु दिव्य चिदानन्दमय, कल्याण स्वरूप, ऐश्वर्य माधुर्य लीला वारिधि सगुण मंगल विग्रह का यथार्थत: वर्णन नितान्त असम्भव तथा दुर्लभ है क्योंकि प्रभु कृपा लाध्य प्रेम साधना द्वारा ही यह साकार विग्रह अनुभव गम्य हो सकता है। स्वयं 'श्रुति' भी इसी उद्देश्य से से 'बंदी' वेश में प्रभु स्वरूप का विवेचन करते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम से उनके राज्याभिषेक के अवसर पर प्रेम का ही वरदान माँगते हैं जिससे सगुण रूप का अनुभव कर सकें।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुं जानहुं नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सद्गुनाकर देव यह वर माँगहीं।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।[३]

श्री गंगाधर भगवान् शंकर ने अवध वीथियों में मनुज रूप से विचरण कर उस 'रूप' का दर्शन लाभ किया और उपनिषद् वर्णित व्यापक ब्रह्म के नव नील नीरद अलौकिक वपुष् को निहार, परमानन्द का अनुभव कर उन्हें भी कहना ही पड़ा।

'व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।।'[४]

यह है शिशु ब्रह्म राम[५] का अनुपम प्रेमाधीन मंगल विग्रह स्वरूप, जिसे उपनिषद में इस प्रकार वर्णित किया गया है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'

वह ज्ञान स्वयं प्रकाश,[६] सर्वानुभव स्वरूप, सृष्टि, पालन, संहारादि प्रतीयमान

---

१. मा० १।११५।२।

२. ब्रह्मस्वरूप

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते
यच्चक्षुषा न पश्यति येनचक्षू विपश्यति। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते
यच्छोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदैव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते
केनोपनिषद् ४।८।

३. मा० ७।१२ छन्द ।५।

४. मा० १।१९८।

५. बन्दौं बालरूप सोइ रामू। मा० १।११२।३।

६. राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहं मोह निसा लवलेसा।।
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना।।
मा० १।११५।५,६।

व्यवहारों का प्रकाशक[1] अखंड, अजन्मा एवं स्वतः प्रमाण है। यही राम का व्यक्तित्व है। 'सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई।

'जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ज्ञान गुनधामू ।।'[2]

मानस के विशेष आधार ग्रन्थ अध्यात्म रामायण में भी अहल्या राम के स्वरूप को 'सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराणः एकः स्वयं ज्योतिरनंत आद्यः' कह कर निरूपण करती हैं तथा स्वयं सीता हनुमान् जी से राम तत्व की व्याख्या करती हैं।

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ।। २ ।।
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरंजनम्।
सर्वव्यापिनमात्मनं स्वप्रकाशमकल्मषम् ।। ३ ।।[3]

राम को अद्वैत परं ब्रह्म सच्चिदानन्द समझो जो कि सब उपाधियों से रहित, सत्य स्वरूप, इन्द्रियातीत, आनन्दरूप, निर्मल, शान्त, विकार रहित, निरंजन, सर्व व्यापी, आत्म-रूप, स्वयं प्रकाश रूप, निष्पाप है।

उपनिषदों में सम्यक् रूपेण जागृत चेतना के प्रतिभासित 'चरम सत्य' को 'ब्रह्म'[4] कहा गया गया है। पाश्चात्य दर्शन के Infinite Eternal Absolute ही नाम 'ब्रह्म' है जो देश, काल, गुण, अवस्था सभी सीमाओं से परे है अतएव वह चरम अनुसन्धेय भी हैं परन्तु केवल इतना ही नहीं, इन्द्रिय गम्य समस्त जड़ चेतन पदार्थों का वास्तविक रूप एक मात्र सत्य भी 'ब्रह्म' ही है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के प्रतिपादक ऋषियों ने मुंडकोपनिषद् में इस जगत् के यथार्थ स्वरूप ब्रह्म की ही प्रतिष्ठा की है। इसी कारण व्याप्य रूप से व्यक्तिगत रूप में भी 'अहं ब्रह्मास्मि' की ही अनुभूति कर चैतन्मयी एकता का अनुभव कर परम गौरव प्रदान किया है तथा अनुभूतिजन्य ज्ञान के आधार पर ही 'तत्वमसि' की ब्रह्म चेतना को जागृत कर भेद दृष्टि के उन्मूलन का प्रयत्न कर 'रसो वै सः' की प्रतीति कराकर समस्त सम्बुद्ध मानव चेतना को उस परमानन्द में निमग्न कराया है। तब आत्म विभोर विज्ञ आत्मरमण कती ज्ञानी जन की आत्मा 'आनन्दं ब्रह्म', 'विज्ञानं ब्रह्म' 'मनो ब्रह्म' प्राणों ब्रह्म सर्वत्र 'यत् किंचित् जगत्यां-जगत् में ब्रह्म रसामृत सिन्धु का ही आस्वादन करती है।

भक्तिरसामृत-सिन्धु में निमग्न गोस्वामी जी ने भी अपने राम का सर्वत्र अवलोकन कर ही अपनी अंतरात्मा की प्रणति अर्पित की है—

---

१. 'विश्वोद्भवस्थितिलयादि हेतुमेकं, मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्
आनन्द सान्द्रममलं निज बोधरूपं सीतापति विदित तत्वमहं नमामि।'
२. मा० १।११६। ६,७। अध्या० रा० १।१ बाल कांड
३. अ० रा० १।१।३२,३३।
४. 'एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।'
कठोपनिषद् १।३।१२।

सीयराममय सब जग जानी । करउं प्रनाम सप्रेम सुबानी ।'

तथा 'बिस्वरूप व्यापक रघुराई' कह कर सर्वव्यापक ब्रह्म का ही बोध कराया है। तथा अध्यात्म रामायण में............

'जगतात्मादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रय:
सर्वभूतेष्व संयुक्त एको भाति भवान्पर:'[1]

बताकर राम को जगत का आदि कारण, जगत्, आश्रय, सब प्राणियों में निरासक्त एक परम रूप बताया है। राम उत्तर तापिनी[2] उपनिषद् में भी यह कहा गया है कि 'जो सुविख्यात भगवान् श्रीराय चन्द्र जी हैं वे अद्वैत, परमानन्द आत्मा, सच्चिदानन्द, अद्वैत, एक, चिदात्मा, भू: भुव: स्व:रूप हैं।'

स्वायंभू मनु ने भी अनाद्यन्त अखंड निजानन्द, निरूपाधि त्रिगुणाधीश पर ब्रह्म की उपासना करके ही तदरूप के दर्शन लाभ कर उन्हीं को 'राम' रूप में प्राप्त किया।[3] परम भक्त कागभुशुंडि जी[4] ने भी अजन्मा, विज्ञानरूप, सुखधाम, अखंड, अनन्त, अमोघ शक्तिवान्, सुख संदोह, सब उरबासी, निरीह, बिरज अविनासी ब्रह्म तत्व को ही सच्चिदानन्दघन 'राम' वर्णित किया है। यह अखंड परम तत्व इन्द्रियातीत है, वर्णनातीत है, ध्यानातीत है इसी कारण उसे 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'[5] कहा गया है। उसी मायातीत अवाङ्-मनोगोचर[6] की ही भाँति राम का स्वरूप भी 'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी' तथा

'मन क्रम वचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।'[7] वर्णित किया है।

---

१. (२) राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार' नेति नेति नित निगम कह ।। मा० २।१२६।
(३) 'त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम्।' अ० रा० ३।९।३०।

२. अ० रा०।

३. 'ॐ यो हवै श्री रामचन्द्र: स भगवानद्वैतपरमानंद आत्मा ।
य: सच्चिदानन्दद्वैतैकचिदात्माभूर्भुव: स्वस्तस्मै वै नमोनम: ।।' रा० उ० त०

४. 'अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथ वादी ।
नेति-नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरूपाधि अनूपा ।।
संभु विरंचि विष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ।।
मा० १।१४३।४।६।

५. सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप सुखधामा ।।
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता ।।
निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी ।।

६. तै० उ० २।४।

७. (१) मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।

धर्मग्रन्थों में यही परब्रह्म 'सच्चिदानन्दघन' नाम से भी अभिहित किया गया है जिसका व्यास करने पर सत्,[१] चित्,[२] आनन्द,[३] घन ये ब्रह्म के धर्म या लक्षण प्रतीत होते हैं परन्तु वस्तुतः ऐसा न होकर ये नाम ब्रह्म के ही पृथक् रूप से भी वाचक शब्द हैं। परमात्मा ही शाश्वत, अचल, ध्रुव तथा नित्य सत्य है। अतः वही 'सत्' है। वही सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक, अज्ञेय, ज्ञानस्वरूप, अत्यन्त पर साक्षी तथा चेतन होने से चित् है। वही असीम. परम सुख रूप, विक्षेपादि से रहित, अचिन्त्य आनन्दरूप पूर्णानन्द भी है। संक्षेपतः वस्तुतः विद्यमान होने से 'सत्' जडत्व के अभाव व स्वयंज्ञाता से 'चित' तथा परमशान्ति व सुखमय होने से 'आनन्द' कहा गया हैं। वही उपनिषद् का परम तत्व 'श्री राम' स्वरूप है जो सत् है 'चित्' तथा 'आनन्द' है।

श्रुति के सत्[४] स्वरूप का दिग्दर्शन श्री शंकर जी इन शब्दों में करते हैं।
'जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव....

'सोइ दसरथ सुत....' सत्तया का आभास कारण भी वही सत्य रूप है। 'चित'[५] रूप से समन्वित रूप की छटा भी उन्हीं राम में दर्शनीय है 'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू' में ही तथा 'चिदानन्द' रूप में श्री जनक जी उनका अवलोकन करते हैं। ब्रह्मानन्द में निमग्न रहने वाले सनकादि श्रीराम को ही 'परमानन्द'[६] नाम से सम्बोधित करते हैं। त्रिविधरूप समन्वित राम सच्चिदानन्दघन[७] ब्रह्म रूप ही है। पूर्वोक्त ब्रह्म तथा प्रतिपाद्य

---

१. मा० १।२०२।५।
२. (१) ध्रुवं तत्।कठो०।
   (२) गीता २।२५।
३. (१) 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वे, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'
   (कठो०)
   (२) 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः' (बृहदा०)
४. 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति।
   तैत्तिरीय० २।७।
५. 'विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ।
   त्वां सर्वजगदाकारमूर्त्ति चाप्याह सा श्रुतिः॥'
   अ० रा० ६।८।४०।
६. (१) 'चिदानन्दमय' देह तुम्हारी।' मा० २।१२६।५।
   (२) 'विज्ञानमूर्त्ति विज्ञानशक्ति' अ० रा० ।५।२३।
७. 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
   मा० १।११५।८।
   अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयम्।
   नित्यनिर्मुक्त निर्मम निर्माम हरि ज्ञानघन सच्चिदानन्द मूलम्॥

राम अभिन्न हैं ।[१] भगवान् शंकर 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' कह कर ही 'राम' का अभिवादन करते हैं । उपनिषद् के इस परम तत्व को ही योगियों ने पुरुषोत्तम राम के रूप में दर्शन किया ।

'योगिन्ह परम तत्वमय भासा ।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ।।'[२]

तथा परम ध्येय भी वही हैं :—

'मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।।
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय मायापति धनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुल मनी ।।'[३]
(मा० बा० का० ५१ सो०)

उपनिषद् वर्णित परम तत्व के मुख्यतया दो स्वरूप हैं

(१) सर्वातीत
(२) सर्वकारणात्मक[४]

उस सर्वातीत स्वरूप का पूर्वोक्त संक्षिप्त रूपेण दिग्दर्शन तथा 'राम' रूप से तादात्म्य व साम्य दृष्टिगत हुआ । अब आलोच्य विषय यह है कि राम का स्वरूप भी सर्वकारणात्मक औपनिषद् ब्रह्म के समकक्ष है अथवा नहीं ।

सर्वकारणात्मक

ब्रह्म के सर्वकारणात्मक स्वरूव के द्वारा ही वह सर्वातीत अनुसन्धेय है तथा सर्वातीत

---

१. (१) जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगतहित कोसलपति भगवान ।।
मा० १।११८ ।
(२) सोइ सच्चिदानन्दघन रामा । मा० ७।७१।३ ।
(३) देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन ।
चिदानन्दादिमध्यान्तर हिताशेषकारण ।।
अ० रा० ३।४।३५ ।
(४) उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानन्दघन रघुनायक जहं भूप ।।
मा० ७।४७ ।

२. मा० १।२४।१।४ ।

३. मा० १।५०। छंद ।

४. 'जगत्स्थितिलयोद्भूतिहेतवे निखिलात्मने ।
सच्चिदानन्दरूपाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ।।
'संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण तथा सबकी आत्मारूप सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है ।'

ही है सर्वकारणात्मक का परमाश्रय। दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध से ही जगत् को कार्य कारण व्यवस्था की प्रतिष्ठा सम्पादित होती है। वही परमतत्व एक अद्वितीय, अनवच्छिन्न सत्ता युक्त सच्चिदानन्द स्वरूप देखा गया तथा उसी को अचिन्त्य शक्ति द्वारा अपने को अनन्त विचित्र रूपों में प्रकट भी देखा।[1] परन्तु साथ ही वह अनिर्लिप्त सर्वातीत परमात्मा[2] अपने सर्वकारणात्मक स्वरूप से सर्वगत, सब में अनुस्यूत तथा सर्वान्तर्यामी भी प्रतिभासित हुआ। वही विश्वातीत परमतत्व चराचर भूतमात्र का कर्ता, अनन्त जगत सत्ता का एकमात्र अभिन्न निमित्तोपादान कारण[3] भी प्रतिलक्षित हुआ। विश्व अजिर में उसी की अनन्त सत्ता, अपार वैभव अपरिमित ज्ञान, अनन्त शक्ति रश्मियों का प्रकाश झलका जिसका उन दिव्य दृटा परम ऋषियों ने अपनी दिव्य चक्षुओं द्वारा दर्शन लाभ कर आत्मा राम हो कर आनन्द सिन्धु में निमग्न हो परम साम्य को प्राप्त किया।[4] वह परम तत्व अपनी अनन्त शक्ति से एकत्व के साथ-साथ अनेकत्व में प्रकट होता है।[5] इस नाम रूपात्मक जगत् रचना से पूर्व केवल वही 'सत्' रूप था[6] जिसकी अनेक प्रकार से उत्पन्न होने की इच्छा[7] का परिणाम यह दृश्यमान जगत है। परन्तु यह उसकी अचिन्त्य शक्ति का दिग्दर्शन है कि वह एक होता हुआ भी अनेक रूप में परिलक्षित होता हैं।

'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।'

तथा 'एकानेकस्वरूपाय'[8]

---

१. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णतेच तथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा क्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥ मुंडक० ७।
'जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार जीवित मनुष्य से केश और रोएं उत्पन्न होते हैं तथैव अविनाशी परब्रह्म से संसार उत्पन्न होता है।'

२. नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं,
तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥
मुंडक० १।१।६।

३. यः कारणानिखिलानि तानि, कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥
श्वेताश्वतर० १।३।

४. यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं, कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तथा विद्वान पुण्यपापे विधूय, निरंजनः परमं साम्यमुपैति॥
मुंडक० ३।१।३।

५. 'बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्' श्रीमद्भागवत १०।४०।७।

६. 'सदैव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' छान्दोग्य० ६।२।१।

७. (१) तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय इति छान्दोग्य० ६।२।३।
(२) ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, किंचनमिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति
ऐतरेयोपनिषद् १।१।१।

८. विष्णु पुराण १।२।३'

उसकी अचिन्त्य शक्ति त्रिविध रूपों[1] में दृष्टिगत होती है।

(१) स्वरूप शक्ति या चिच्छक्ति—अन्तरंगा

(२) जड़शक्ति या मायाशक्ति –बहिरंगा

(३) मध्य शक्ति या जीवशक्ति—तटस्था

सर्वातीत स्वरूप में त्रिविध शक्तियाँ अव्यक्त तथा अन्तर्हित हो उसी में लीन रहती हैं और सर्वकारण स्वरूप में व्यक्त तथा प्रकटीभूत। स्वरूप अन्तरंगा शक्ति के ही अन्तर्गत माया तथा जीवशक्तियाँ हैं अत: वही परम पुरुष जीव तथा माया शक्ति का संचालन कर्त्ता है, समस्त तत्वों का प्रेरक, समस्त कारणवर्ग में अनुस्यूत परम कारण रूप से सर्वत्रअनुवृत्त है। उसी की माया से निर्मित यह जगत् है जो असत् होने पर भी सत् के समान जान पड़ता है। उसी भगवत्सत्ता के ही कारण। यह सब विश्व सृजन करते हुये भी विश्वातीत स्वरूप में स्थित रह कर अनन्त काल तक परस्पर विरोधी धर्मों से युक्त होकर परमात्मा अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा नित्य[2] रूप में विराजित हो नित्य सुखी रहा करते हैं। वे अमोघ लीला विहारी भगवान् सबमें व्याप्त होते हुये भी निर्लेप रहते हैं। यही है उनका अलौकिक[3] ऐश्वर्य। वे इन्द्रियों से कार्य न करते हुये भी कर्त्ता है, भोगते हुये भी अभोक्ता है[4] उस चैतन्यघन पूर्ण परमात्मा में परस्पर विरोधी भावों का समावेश है। यह स्वरूप उपनिषद् में इस प्रकार वर्णित है :

'तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यः॥'[5]

---

१. (१) 'भोक्ता भोग्यं रितारं च मत्वा,
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।' श्वेता० १।१२।

(२) जगत्वं जगदाधारस्त्वमेव परिपालकः। त्वमेव सर्वभूतानां भोक्ता भोज्यं जगत्पते।
अ० रा० ६।१४।२६।

२. रामः परात्मा पुरुषः पुराणो, नित्योदितो नित्य सुखो निरीहः।
तथापि मायागुण संगतोऽसौ, सुखीव दुःखीव विभाव्यते बुधैः।
अ० रा० ६।१।५४।

३. बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
मा० १।११७।५-८।

४. अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः॥
विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः
अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः॥
अ० ४।५।२२,२३।

५. ईशा० ।५।

'चलते हैं और नहीं चलते, वे दूर भी हैं, वे सबके भीतर भी हैं और सबके बाहर भी हैं।'

तथैव अध्यात्म रामायण के 'राम' का स्वरूप भी 'जगत्कारणात्मक'[1] है।

'विश्वोद्भव स्थितिलयादि हेतुमेकं,
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्।
आनन्द सान्द्रममलं निजबोधरूपं,
सीतापतिं विदिततत्वमहं नमामि।[2]

महर्षि बाल्मीकि ने भी सुमित्रा द्वारा केवल एक स्थान पर इस रूप का संकेत करामा है।

'सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभो प्रभुः
श्रियः श्रीश्च भवेदग्रया कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा
देवतं देवतानां च भूतानाँ भूतसत्तमः
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे।[3]

'राम' का जगत्कारणात्मक व्यक्तित्व भी प्रारम्भिक वन्दना में ही गोस्वामी जी ने प्रतिष्ठित कर दिया है।[4] स्वयं 'राम' भी 'अखिल बिस्व यह मोर उपाया।' कह कर निज कारणत्व सिद्ध कर देते हैं पूर्वोक्त की भाँति इन्द्रियों से अकर्ता होते हुए भी कर्ता राम भी हैं। ब्रह्म की व्याख्या के साथ 'सोइ दसरथ सुत' कह कर दोनों का तादात्म्य कर दिया है। उक्त अंतरंग स्वरूपा चिच्छवित के साथ मायाशक्ति का भी उल्लेख किया गया है जो कि जगत का निर्माण कर्त्री हैं। वही रूप यहाँ पर श्रीराम की आदि शक्ति स्वरूपा[5] अभिन्न स्वरूपा जगज्जननी श्री जानकी जी का है :

'श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रूख पाइ कृपा निधान की।।[6]

---

१. निम्नलिखित श्लोक में अहल्या 'राम' को 'जगत्' का निमित तथा उपादान कारण बताती हैं।

२. (१) 'जगतामादिभूतस्त्वं जगत्वं जगदाश्रयः
सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः।' अ० रा० १।५।५२।
(२) 'विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वं' अ० रा० ३।२।३०।

३. अ० रा० १।१।२।

४. वा० रा० २।४४।१५, १६।

५. 'यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः' मा० प्रारम्भिक छठा छन्द।
(१) आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिय मोरि यह माया।।
तथा मा० १।१५१।४।
(२) 'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।' मा० प्रारम्भिक पाँचवाँ छन्द।

६. मा० २।१२५। छन्द।

अधोलिखित उद्धरण में 'राम' का जगत् प्रकाशकत्व, मायापतित्व एवं जड़ शक्ति माया का स्पष्टतः दिग्दर्शन है।

'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥'[1]

भगवान् प्रमथेश उनके इस स्वरूप को इस प्रकार प्रकट करते हैं।

'पुरुष प्रसिद्ध, प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ'

तथा

'सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई ॥'[2]

ब्रह्म की चिच्छक्ति की 'राम' की पराशक्ति 'सीता' हैं जिसका प्रमाण वे स्वयं भविष्यवाणी के रूप में देते हैं।

'परम शक्ति समेत अवतरिहउं'

स्वायम्भुव मनु की तपस्या से द्रवीभूत परात्पर ब्रह्म स्वचिन्मय शक्ति[3] के साथ ही अवतरित होते हैं।

'बाम भाग शोभति अनुकूला। आदि शक्ति सब बिधि जगमूला ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता[4] सोई ॥'[5]

अतएव सर्वकारणात्मक परब्रह्म राम हैं तथा उनकी स्वस्वरूपा शक्ति ही सीता हैं।

महाप्रलय की स्थिति में समस्त विश्व का उसी कारण स्वरूप[6] परमात्मा में निलय हो जाता है तथा केवल परम रूप ब्रह्म तथा उसकी प्रकृति शेष रहती है, समस्त जीव उस प्रकृति के अन्तर्गत विलीन हो जाते हैं यही स्वरूप है, श्रीराम का।[7] समस्त ब्रह्मांड उनके स्वरूप में लय है उन्हीं में समाविष्ट है इस दिव्य स्वरूप का आभास प्राप्त करने वाले दो

---

१. मा० १।११६।७, ८।
२. मा० १।११६।६।
३. आत्मना सृजसीदं त्वमात्मन्येवात्ममायया।
न सज्जसे नमोवत्वं चिच्छक्त्या सर्वसाक्षिकः ॥ अ० रा० ६।१४।२४।
४. 'त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले।'
अ० रा० ६।४।३७।
(१) 'एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी' अ० रा० २।५।२३।
(२) 'सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका' अ० रा० ६।४।४०।
५. मा० १।१४७।२, ४।
६. विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं, विलापयेदात्मनि सर्वकारणे।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते, न वेद वाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥ अ०रा० ७।५।४७।
७. (१) त्वमादिर्जगतां राम त्वमेवस्थितिकारणम्।
त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि ॥ अ० रा० ६।३।२०।
(२) 'स एव जगतां नाथ इदानीं रामतांगतः।' अ० रा० २।५।२०।

परम भागवत् चरित्र हैं। प्रथम है अलौकिक विवेकशीला माता कौशल्या का, द्वितीय है श्री कागराज भुशुंडि का। बाल रूप श्री राम ने निजस्वरूप दर्शन की परमाधिकारिणी निज जननी को इस विश्व निलयी स्वरूप का दर्शन कराया।

'देखरावा मातहि निज अद्‌भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ।।

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन ।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ।।
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही ।।'[1]

इसी अद्‌भुत विश्वरूप के दर्शन द्वारा ही राम के सर्वकारणत्व, जगदाधार स्वरूप का उन्हें सम्यक् ज्ञान हो सका और उनसे यह बिना कहे न रहा गया कि

'जगत पिता मैं सुत करि जाना'

इससे भी विशद् रूपेण दर्शन परम भक्ताग्रगण्य काकभुशंडि जी ने किये तथा रामान्तर्गत सकल विश्व का दर्शन लाभ कर राम में ही उस एक परम सत्ता, केवल स्वरूप का पूर्णत: ज्ञान भी प्राप्त किया।

'अगनित भुवन फिरेउं प्रभु राम न देखेउँ आन ।'[2]

तथा 'राम रूप दूसर नहिं देखा' में श्री संशयशील पार्वती जी ने कौतुक में श्री राम की प्रेरणावश उनके स्वरूप का दर्शनलाभ किया।

उसी सर्वकारणात्मक ब्रह्म[3] के 'स्थूल' तथा 'सूक्ष्म'[4] दो रूपों की विशद विवेचना उपनिषदों में की गई है जिसका समन्वित उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में पूर्णत: स्पष्टत: किया गया है।

'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतु: पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन: ।।'[5]

'इस जीवात्मा के हृदय रूप गुफा में रहने वाला परमात्मा[6] सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म

---

१. (१) 'जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्मांडा : परमाणव: अ० रा० १।३।२५।
(२) मा० १।२०१ से २०१।४ तक।
२. मा० ७।७९।३ से ७।८१ तक।
३. 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेस्ववस्थित: ।। गीता ९।४।
४. 'देहद्वयमदेहस्य तब विश्वं रिरक्षिषो:
विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम् ।।' अ० रा० ६।१५।३०।
५. क० ।२०।
६. 'ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' गीता १८।६१।

महान् से भी महान् हैं, परमात्मा की उस महिमा को कामना रहित, चिन्ता रहित कोई सर्वा धार परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।'

उक्त स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में भी विभेद दर्शनीय हैं और उनका समन्वित रूप है श्री राम के स्वरूप में। 'स्थूल' स्वरूप को ही हम परब्रह्म का 'विराट् स्वरूप' भी अभिहित कर सकते हैं तथा 'सूक्ष्म' के अन्तर्गत है उनका 'सर्वव्यापित्व' तथा 'अन्तर्यामित्व'। इसका वर्गीकरण हम निम्नांकित रीति से कर सकते हैं :

विराट्
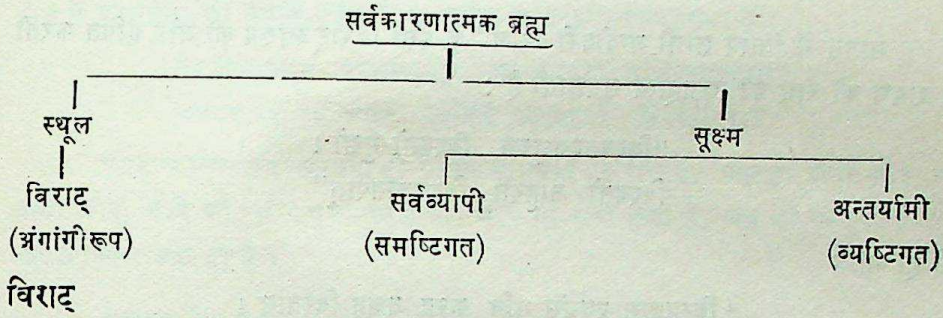
जगत् में भगवान का रूप दर्शन, उनके विभिन्न अंगों को ही देखना उनका विराट् रूप दर्शन करना है। जैसा कि भागवत् में मिलता है।[1] मुंडकोपनिषद् में परमेश्वर से सूक्ष्म तत्वों की उत्पत्ति का प्रकार बतलाकर इस जगत में ही उनका विराट् रूप वर्णन करते हैं।

'अग्निर्मूर्धा चक्षुंषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येषसर्वभूतान्तरात्मा ।।[2]

'इस परमेश्वर का अग्नि मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र है, सब दिशाएं दोनों कान हैं और प्रकट वेद वाणी हैं तथा वायु प्राण हैं, जगत् हृदय है, इसके दोनों पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है, यही समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा हैं।

वा० रामायण में ब्रह्मा 'राम' के 'विराट्' रूप का संक्षिप्त उल्लेख करते हैं।

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामसि पंचमः ।।
अश्विनौ चापि ते कर्णौ चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी।
अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परंतप ।।
सहस्रश्रृंगो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ।
दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च ।।
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु बनेषु च।
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक् ।
त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ।।

---

१. भा० २।१।२३ ३६।
२. मुंडक ।४।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देबी सरस्वती ।
देवा गात्रेषु रोमाणि निर्मिता ब्रह्मणा प्रभो ।।
निमेषस्ते भवेद्रात्रिरुन्मेषस्ते भवेद्दिता ।
संस्कारास्ते भवन् वेदान तदस्ति त्वया बिना ।।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्स लक्षणः ।।[1]

मानस में "तत्व ज्ञात्री मन्दोदरी "राम" के इसी विराट् स्वरूप की और इंगित करती हुई रावण को राम का परब्रह्मत्व समझाती हैं :

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो ।
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्तपात्"

की ही भाँति

'बिस्वबास रघुबंस मनि, करहु वचन विस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।"

कह कर वेदोक्त विराट् स्वरूप से "राम" के विराट् स्वरूप की अभिन्नता स्थापन करती है[2]।

"राम" तत्व के वास्तविक स्वरूप के[3] ज्ञाताओं को भी "राम" में इस रूप के दर्शन स्वयम्बर के अवसर पर हुए

---

१. वा० रा० ६।२०।२१ २४।

२. (१) ।मा० ६।१४ से १५ तक ।

(२) परम भागवत गोस्वामी जी, अध्यातम रामायण का आधार, श्रीमद्भागवत् ज्ञान तथा तद्वर्णित ब्रह्म के विराट् स्वरूप में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव दर्शनीय है :

"अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम ।
बाहुभ्यां लोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यां चन्द्रभास्करौ ।
दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्यां ते समुत्थिताः ।।
घ्राणात्प्राणः समुत्पन्नश्चाश्विनौ देवसत्तमौ ।
जंघाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ।।
कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारः सागरा हरे ।
स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ बालखिल्याश्चरेतसः ।।
मेढ्राद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचनः ।
अस्थिभ्यः पर्वताजाता केशेभ्यो मेघसंहतिः ।।
ओषध्याः रोमेभ्यो नखेभ्यश्च खरादयः ।
त्वं विश्वरूपः पुरुषो मायाशक्तिसमन्वितः ।।
। अ० रा० ७।२।६४—६९ ।

"विदुषन्ह प्रभु विराट् मय दीसा"[१]

सर्व व्यापी रूप

परमात्मा के सूक्ष्म रूपों की अनुभूति हम व्यापकत्व तथा अन्तर्यामित्व रूप में भी कर सकते हैं। समस्त विश्व में व्यापक व व्याप्य रूप में उसकी सत्ता उसके सर्व व्यापित्व का बोध कराती है। उपनिषद् उसके इस स्वरूप के दर्शन योगमाया के अवगुंठन में करते हुये उसे "गूढ़मनुप्रविष्ट"। योग माया के पर्दे में छिपा हुआ सर्वव्यापी कहते हैं। निम्नांकित मन्त्र में परमात्मा की सर्वव्यापकता[२] का पूर्णत: प्रतिपादन किया गया है :

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोतरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।[३]

"यह अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला हुआ है, यह जो सम्पूर्ण जगत् है यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।"

वेदोक्त ब्रह्म ने विश्व सृजन कर पुन: वह उसी में व्याप्त हो गया
"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्"

उस जगत् की रचना के अनन्तर उसी में साथ साथ प्रविष्ट हो गया ओर उसमें प्रविष्ट होने के बाद मूर्त और अमूर्त भी हो गया।[४]

समस्त विश्व की स्थिति जीवन का एकमात्र कारण ही उस परमात्मा का व्यापकत्व है।

"रसो वै स:। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
को ह्येवान्यात्क: प्रायाद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।
एष ह्येवानन्दयाति।"

"वही रस है क्योंकि यह जीवात्मा उस रस को प्राप्त करके आनन्दयुक्त होता है। यदि यह आनन्दस्वरूप आकाश की भाँति व्यापक परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता, कौन प्राणों की क्रिया कर सकता, नि:संदेह यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है।"

---

१. मा० १।२४१।१।
२. व्यापकता का व्याख्यात्मक दिग्दर्शन ऐतरेयोपनिषद् में इस प्रकार है :
(२) "एव ब्रह्मेव इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वेदेवा इमानि च पंच महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चांडजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वागाव: पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणिजंगमं च पतत्रिण: यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म।। ।३।३।
३. मु० उ० द्वितीय खण्ड ११।
४. तै० उ० षष्ठ अनुवाक।

"अध्यात्म रामायण,' में भी आदि कवि श्री वालमीकि जी राम के व्यापकत्व का ही बोध कराते हुये कहते हैं—

"त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम्।
तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ।।[1]

यही भाव गोस्वामी जी के "राम" में भी पूर्णतः निहित है। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं :

'जहँ न होहु तहं देहुं कहि तुम्हहि देखावों ठांउ"[2]

कह कर राम के सर्वव्यापकत्व का बोध करा रहे हैं। परम स्वरूप दर्शन के परमाधिकारी भक्तराज कागभुशुंडि जी भी "सोइ सच्चिदानन्द घन राम" को "व्यापक व्याप्य अखंड" कहते हैं। परम लीला विग्रह अवतार धारण करने के पूर्व जिस परम व्यापक[3] तत्व के सभी देवता आर्त होकर अपनी प्रार्थना सुनाते हैं वही तत्व "गगनगिरा" के माध्यम से स्तुति स्वीकृत कर अवतरित होते हैं राम रूप में। इसका प्रमाण है उसके व्यापकत्व गुण का प्राकट्य :

उसके व्यापकत्व गुण का प्राकट्य:

'जगनिवास[4] प्रभु प्रकटे अखिल लोक विश्राम।[5]

राम तत्व मर्मज्ञ भगवान् शंकर मानस के आदि में ही राम का व्यापकत्व घोषित करते हैं।

'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।।[6]

परिमित वाक् अपरिमित व्यापकत्व विश्लेषण में सर्वथा में सर्वथा असमर्थ होती है

---

१. "यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च।
न दृश्यते स्थावरजंगमादौ, त्वया विनातः परतः परस्त्वम् ।।"
अ० रा० ६।१५।५९।

२. अ० रा० २।६।५२

३. मा० २।१२७।

४. भगवान् शंकर उसी "व्यापक" हरि की प्रार्थना करने के लिये प्रेरित करते हैं विशिष्ट लोक निवासी "विष्णु" की नहीं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।
देस काल दिसि विदिसहु माहीं। कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं।।
(३) अगजगमय सब रहित विरागी। प्रेमते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।
मा० १।१८५।५ से ७ तक।

१. स्वायंभुव मनु की तपस्या से प्रसन्न हो प्रकट भगवान् ही 'राम' हुए और 'मनु' को भी अपना 'जगनिवास' रूप सिद्ध किया।

'भगत बछल प्रभु कृपा निधाना।
बिस्ववास प्रगटे भगवाना।। मा० १।१४५।८।

२. मा० १।१९१।

३. मा० १।११५।८।

अत: 'राम' की व्यापकता के कतिपय उदाहरणों का दिग्दर्शन कर उनके अन्तर्यामित्व के अवलोकनार्थ यह वृत्ति अब अन्तर्मुखी हो यथासाध्य उस अनुभव गम्य स्वरूप का वर्णन करने का प्रयास करती है।

अन्तर्यामी

स्वरूप में स्थित ब्रह्म का स्वरूप 'कठोपनिषद्' में अंगुष्ठमात्र[1] परिमाण वाला वर्णित किया गया है। ज्योतिर्मय रूप से शरीर के हृदयाकाश में उसकी स्थिति है। ऐतरेयोपनिषद्[2] में उसका स्थान 'ब्रह्मरन्ध्र' (मूर्धा) में भी बताया है तथा उसके अन्य निवासस्थानों का भी उल्लेख है। ज्ञानियों अथवा योगियों के लिए 'मूर्धा' में तथा भक्तों को हृदय गुहा[3] में उस परमतत्व के अन्तर्यामित्व की प्रतीत व अनुभूति होती है। 'तैतिरीयोपनिषद्' के 'पंचम अनुवाक्' में अन्तर्यामी प्रभु के स्वरूप का सुमनोनीत काल्पनिक ढंग से पक्षी के रूपक से वर्णन किया गया है:

'तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः।
आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा।'

'उस आनन्दमय का प्रिय ही मानों सिर है, मोद दाहिना पंख है, प्रमोद बायाँ पंख है, आनन्द ही मध्य भाग है, ब्रह्म पूँछ एवं आधार है।'

ऐसे आनन्दस्वरूप वाले प्रभु पुरुष के समान आकार वाले भी कहे गए हैं पुरुषाकारता में अनुगत होने से

'स वा एष पुरुषविध एव।
तस्य पुरुष विधतामन्वयं पुरुषविधः।'

'वह आनन्दमय ररमात्मा उस विज्ञानमय पुरुषकारता में अनुगत होने से ही पुरुषाकार कहा जाता है।

औपनिषद् अन्तर्यामी बिभु स्वरूप 'राम' में स्पष्टतः परिलक्षित है। समष्टिगत

---

१. (१) 'अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वैतत्॥ कठ०। १२।
२। 'सयएषोऽन्तर्हृदय आकाशः।' तैत्तिरीय० षष्ट अनुवाक्।

२. 'स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्राप्यत। सैषा विहृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्। तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति। ऐतरेय० १२।

३. यो वेद निहितं गुहायां परमेव्योमन्' तेत्तिरीय प्रथम अनुवाक्।

४. भगवान शंकर म अन्तर्यामी राम के दर्शन की अलौकिक शक्ति थी। इसकी प्रमाणित कत्री निम्नलिखित पंक्तियां हैं :—

हर हिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए।
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥
मा० १।११०।७, ८

व्यापकत्व के साथ-साथ व्यष्टिगत अन्तर्यामित्व भी आप में विद्यमान हैं। 'भगत उर चंदन' तथा 'मुनि महेस मन मानस हंस' रूप राम के इस रूप का वर्णन इस रूप के ही अनुभूति-कर्ता[४] शंकर ही अपनी अन्तर्मुखी दृष्टि से करते हैं।

'सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी ॥'[१]

स्वायंभुव मनु के प्रार्थनान्तर्गत ब्रज हो 'राम' रूप में अवतीर्ण हुए। उनका भी अन्तर्यामित्व इन शब्दों में स्पष्ट है।

'तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अन्तरजामी ॥'[२]

तथा

'सो तुम जानहु अन्तरजामी।'[३]

इतना ही नहीं दंडक वन के समस्त मुनि गण[४] 'राम' को 'सबदरसी तुम्ह अन्तर-जामी' कह कर सम्बोधित करते हैं।

'अध्याय रामायण' में अगस्त्य ऋषि उनके अन्तर्यामित्व का उल्लेख गीता[५] एवं भागवत्[६] के समान करते हैं:

'राम त्वं सकलान्तरस्थममितो जानासि विज्ञानदृक् साक्षी सर्वहृदिस्थितो हि परमो नित्योदितो निर्मलः।'[७]

तथा अन्यत्र भी राम का 'सर्वभूत हृदयेषु कृतालयः' रूप वर्णित है।

नवीनता

उक्त औपनिषद् "अन्तर्यामी" स्वरूप तथा परम भक्ताग्रगण्य गोस्वामी जी के इस स्वरूप निरूपण में समानता होते हुये भी अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर है और वह सूक्ष्मता आपके

---

१. मा० १।११८।२।
२. मा०१।१४९।६।
३. मा० १।१३८।७।
४. परम भक्त शिरोमणि अनन्य राम पद सेवक सुतीक्ष्ण भी 'हर हृदि मानस बाल मराल' राम को मानते हैं।

'जदपि बिरज व्यापक अबिनासी।
सबके हृदय निरंतर वासी ॥'

कहते हैं। मा० ३।१०।१७।

५. 'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो' गीता १५।१५।
६. 'अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ...' श्रीमद्भागवत् १०।४६।३६
७. अ० रा० ७।१।२।

भक्ति रसाप्लावित चातक हृदय की सी लगन की तथा चकोर की सी निर्निमेष दृष्टि की है। वस्तुत: यह सूक्ष्मता उसी सरस भक्ति माधुरी की दृष्टि से ही अवलोकनीय है। 'मानस' के अरण्य कांड में भक्त लोग 'राम' के अन्तर्यामी स्वरूप को भली प्रकार जानते हैं कि राम' घट घट में रमे हुए हैं, 'हृदयासनासीन' हैं परन्तु फिर वे प्रभु से यह याचना[1] क्यों करते हैं :

'मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम'।

'हृदि आलय' में निवसित राम से पुन: स्थित होने की प्रार्थना कैसी ? स्वयं राम रूप सरित् निमग्न शंकर भी राम के सिंहासनासीन होने के समय अपने 'हृदयासीन' करने का उनसे वर माँगते हैं :—

'अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम नृप मम उर अन्तर'

ऐसे 'प्रवचन तर्क के नेत्रों के एवं बुद्धि के विवादों के विषय नहीं अपितु भाव लहरी के रस में आप्लावित हो अनुभूति के ही योग्य हैं। इस अन्तर्यामी 'राम' के स्वरूप की प्रतिक्षण दिव्यानुभूति होना, उसके 'ध्यान रस' में आप्लावित में आप्लाबित रहना ही उक्त याचनाओं की 'गंगा जमुनी' धाराएँ हैं जो भक्त जन हृदय को रस मग्न तथा अन्तर्स्थित 'राम' को भी द्रवीभूत कर 'राम' को भी द्रवीभूत कर 'राम' से भी उसी भाव दशा में ही 'एवमस्तु' भी कहला लेती हैं। गोस्वामी जी के भाव मग्न हृदय[2] की छटा इन भक्तों के मिस अन्तर्यामित्व में अलौकित्व प्रदान करती हुई निज मौलिकता का प्रतिपादन करती है।

परन्तु राम के 'अन्तर्यामित्व' की अनुभूति होती रहे यह कामना तो भावमग्न हृदयों ने कर दी और भाव ग्राही भगवन् ने उसकी स्वीकृति भी 'एवमस्तु' द्वारा दे दी परन्तु यह कामना और इसकी प्राप्ति सहज नहीं। उसका उपाय भी उसी की उर प्रेरणावश अपितु उसी का कृपा साध्य ही है परन्तु उसकी कृपा प्राप्ति के हेतु अधिकारी बनना परम अनिवार्य है। साधारण जीवों के आसनों को भी स्वच्छ, अलंकृत करना ही पड़ता है फिर वह तो सबका अधीश्वर ठहरा न ? इसी कारण 'हृदयासन' के पावन कारणों तथा

---

१. (१) सरभंग—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियं बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।।
मा० ३।८

(२) मुनिगण—'वह बर मागउं कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनज तमेता'
मा० ३।१२।१०

२. इससे भी विशेष छटा दर्शनीय है दोहावली में, जहां हृदि स्थित प्रभु तो हैं ही परन्तु समस्त अंग उसकी स्थिति के अधिकारी तथा उस भाव जलधि में विभोर दृष्टिगत होते हैं।

'हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना नाम सुनाम।
मनहुँ पुरट सम्पुट लसत, तुलसी 'ललित' ललाम।। (दोहावली)

धन्य है तुलसी का 'विशिष्ट अन्तर्यामित्व' जो उपनिषद् के समान हृदिस्थित ही न होकर अंग अंग में 'नाम' 'रूप' की परमानुभूति देकर रम रहा है।

अलंकरणों की व्याख्या भी स्वयं अन्तर्यामी विभु श्रीराम के श्रीमुख से[1] तथा आदि कवि वाल्मीकि[2] के मुख से गोस्वामी जी ने कराई है। पूर्वोक्त प्रार्थना की स्वीकृति का कारण ही उनके अलंकृत हृदय हैं, जिनको दोनों ने (श्रीराम, वाल्मीकि) 'अन्तर्यामित्व' के अधिकारी बताये हैं।

यह है गोस्वामी जी के 'राम' का 'विशिष्ट अन्तर्यामित्व'। जिसमें भक्त भगवान् दोनों ही ओतप्रोत हो रहे हैं। 'कोऽहं' 'सोऽहं' के फेर में न पड़कर 'अंतःस्थित राम' की दिव्य झांकी के दर्पण में प्रतिबिम्बित दर्शन कर उस भाव विभोर दशा में फिर सर्वव्यापकत्व की भी अनुभूति का सम्मिश्रण कर उस 'परम तत्व' श्रीराम का सर्वत्र दर्शन गोस्वामी जी ने कराया है :

'सीयराम मय सब जग जानी।'.........अस्तु !

'राम' का अनन्य उपासक समस्त संसार को 'राम' मय ही देखता है तथा सर्वत्र उसी स्वरूप को आन्तरिक अनुभूतिवश परम श्रद्धालु व विनम्र रहा करता है तथा 'मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवन्त' के भाव में 'राम' का व्यापक व्याप्य स्वरूप देखता है।

उपर्युक्त विश्लेषणों द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि वेद प्रतिपादित निर्गुण अचिन्त्य ब्रह्म की भाँति ही श्रीराम का स्वरूप भी सर्वमय, सर्वकारण होते हुये भी सर्वपर तथा कार्यकारणातीत 'सच्चिदानन्द' स्वरूप ही हैं। जो राम स्वयं इन्द्रियादि के प्रेरक, प्रकाशक ही नहीं परम प्रकाशक हैं उनके स्वरूप का पूर्णतः वर्णन करना कितना उपहासास्पद है कहीं प्रकाश्य प्रकाशक को प्रकाशित कर सकता है यह तो केवल उस परम दिव्य स्वरूप को इंगित मात्र ही कर सकता है....अस्तु। मानस के राम साक्षात् औपनिषद् ब्रह्म हैं तथा इससे भी परम तत्वविशेष हैं। उसका दिव्याभास होता है साकार स्वरूप के विवेचन में :--

साकार स्वरूप

अप्रकट रूप से प्रकट रूप में प्रादुर्भाव ही अवतार है।

---
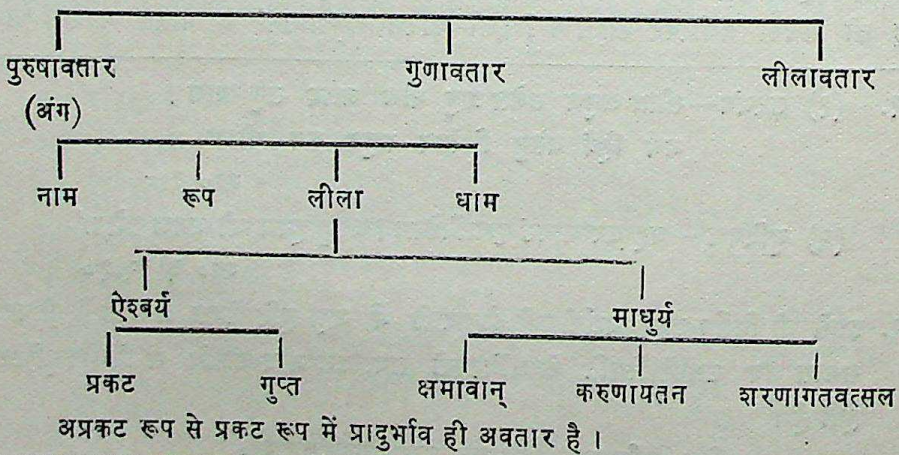
१. बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निः काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम॥ मा० ३।१६।

२. मा० २।१२७।३ से २।१२८,२।१३१ तक

अवतारी स्वरूप

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।[१]

के अनुसार उस निराकार विग्रह सच्चिदानन्दघन परमात्मा समय समय पर आवश्यकतानुसार दिव्य जन्म[२] तथा दिव्यकर्मों के साथ अवतरित होते हैं। क्यों भगवान् अवतार धारण करते हैं ? इसके लिए—

'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाय न सोई।'

अपनी अपनी भावना व विचार तर्कों द्वारा उन परम प्रभु के अवतार के अनेक कारण[३] वर्णित किये गये हैं। उपनिषद् वेत्ताओं, कतिपय वेदान्तियों का कथन है कि ब्रह्म अवतार नहीं लेता[४] क्योंकि 'उपनिषद का कथन है —

'ईश्वरो नावतरति व्यापकत्वाद् आकाशवत्'

परन्तु इसके आशय या दृष्टान्त का मनन करने के पश्चात् इस दृष्टान्त का भाव स्पष्ट हो जाता है क्योंकि आकाश भी वायु रूप में अवतीर्ण होता है एवं पुनः उसका तेज, जल और पृथ्वी रूप में अवतरण हुआ करता है। उपरोक्त वेदान्तियों के आशय के सम्मुख ही 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का कथन इस तर्क का खंडन कर स्पष्टीकरण कर देता है।[५]

'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।।'[६]

---

१. गीता ४।८।

२. स्वयं भगवान् की कमल नाभि में स्थित ब्रह्मा उनके दिव्य विग्रह के स्वरूप को नहीं जान सकने के कारण ही उस अज्ञेयता का वर्णन करते हैं।

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य,
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण,
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ।।

श्रीमद्भागवत् १०।१४।८।

३. राम जन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका मा० १।१२१।२।

४. केनोपनिषद् में भगवान् के यक्ष रूप धारण करने का प्रसंग भी उनके अवतरण का युक्तिगत प्रमाण है।

'तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यौऽहं प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति'
के० नं० तृ० ख० (२)

५. श्रीमद्भागवत् के प्रथम स्कन्ध का तृतीयोऽध्याय भगवान् के अवतारवाद तथा उनके अवतारों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराता है।

६. (१) गी० ४।६।

(२) भगवान् के अवतारी स्वरूप का वर्णन श्री शुकदेव जी करते हैं।

'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ।। भा० १०।१४।५५।

अतः उन्हीं परात्पर ब्रह्म का अवतरण साकार विग्रह में होता है यह श्रुति[1], पुराण और गीता आदि भी प्रमाणित करती हैं। अब आलोच्य विषय यह है कि इस अवतार के कारण क्या हैं? भगवान् कृष्ण के शब्दों में—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'[2]

तथा उन्हीं के ही तद्रूप भगवान् शंकर भी उनकी व्यापक कीर्ति विस्तृति के साथ ही उसी की पुनरावृत्ति कर उस पूर्वोक्त कथन का समर्थन करते हैं :

'असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥'[3]

भगवान् के अवतार कारणों[4] की व्याख्या भी उन्हीं के स्वरूप के अनुसार दुरूह व इन्द्रियातीत है। उनके अवतार कारणों को भी मनुष्य अपनी भाषानुकूल ही मानता है। धर्मनिष्ठ महात्मा भगवान् को अपनी धर्म रक्षा के निमित्त,[5] देवता स्वरक्षा हेतु[6] तथा

---

१. ऋग्वेद का यह मंत्री भी अवतारवाद घोषित कर रहा है :

'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव,
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते,
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥'

२. (१) गीता ४।७,८।

(२) मानस में ठीक इसी का प्रतिबिम्ब कारण बताया गया है।
जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
मा० १।१२०।६।८।

३. मा० १।१२१।

४. 'हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।' मा० १।१२०।

५. गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥
मा० १।२०५।५,६।

६. जानि समय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
मा० १।१८६ से १८६।१

राक्षस गण भी अपने को गति देने का निमित्त[1] अवतरित होता हुआ समझते हैं। कार्य कारणातीत परमात्मा यद्यपि सहज ही अवतीर्ण होते हैं परन्तु उनकी इस सहज करुणा-शीलता से अपरिमित कल्याण तथा लोक संग्रह के क्षेत्र में सन्मार्ग का प्रदर्शन होता है।[2] ब्रह्मानन्द में परिनिष्ठित[3] निराकारोपासक अमलात्मा परमहंसों को निज साकार विग्रह का साक्षात् दिव्य दर्शन देकर भक्ति की प्रवृत्ति कराना भी आपके अवतरित होने का हेतु है और वे ब्रह्मनिष्ठ वेदज्ञ तत्वज्ञ महान् ऋषिवर्य उस अवतरित दिव्य विग्रह की दर्शनानुभूति में अपना परम तत्व भी विस्मृत कर 'कोटि कन्दर्प कमनीय' स्वरूप दर्शन को ही निर्निमेष निहारते रहने[4] में ही अपना परम कर्त्तव्य मान बैठते हैं। उस अवतरित आनन्द विग्रह के सम्मुख निराकार ब्रह्म सुख, जोकि उनका एक मात्र परम धन है, को त्यागने में रंचमात्र भी संकोच न करके उस दिव्य रूप माधुरी पान करने में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। ब्रह्म निष्ठ जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।[5]........अस्तु।

इन्हीं प्रमुख अवतार कारणों का विवेचन अनेक धर्म-ग्रन्थों में किया गया है परन्तु फिर भी इन कारणों का सम्यक् वर्णन करने में वे भी असमर्थ हैं। जगत् सृष्टा ब्रह्मा भी उस अवतरित रूप का उसके हेतु का वर्णन करने में अपने को नितान्त असमर्थ पाते हैं।[6] उनके अवतारवाद के रहस्य का वेत्ता भी कोई बिरला ही साधक हो सकता है जो उनके दिव्य जन्म तथा कर्म को सम्यक् रीत्या जान सकता है तथा उसकी दिव्यता का ज्ञाता भी तद्रूप ही बन मुक्त हो जाता है।[7] उनका अवतार न कर्म प्रेरित होता है और न माया जनित। कर्म की स्थिति

---

१. सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
मा० ३।२२।३,४

२. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।। गी० ३।२१।

३. ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखत बालक बहु कालीना।। मा० ७।३१।४।

४. मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं।।
मा० ७।३२।२४।

५. सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।।
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।।
मा० १।२१५।३, ५।

६. सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु या दस्स्वपि ते जनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।।
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं कति वा कदेति विस्तारयान् क्रीडसि योगमायाम्।।
श्री मद्भा० १०।१४।२०, २१।

७. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।'गीता ४।९।

माया जनित है और वह प्रभु मायातीत है अतः कर्म से भी परे हैं ।[1] साथ ही उनका शरीर पंचभूतनिर्मित न होकर सच्चिदानन्दमय होने के कारण अनामय एवं दिव्य हुआ करता है। इसी कारण उनका प्राकट्य तथा अदृष्य होना हम पंच भूत निर्मित भूतों की भाँति न होकर स्वतन्त्र है। इसका प्रमाण उनका यत्र तत्र प्रकट होना[2] तथा अन्तर्ध्यान होना तथा इच्छानुसार रूप परिवर्तन कर लेना है।[3] उनका जन्म[4] तथा मृत्यु[5] साधारण नहीं अपितु अलौकिक है।

अवतार के विषय में दो शंकाएं प्रमुख हैं कि सर्वशक्तिमान प्रभु बिना अवतरित हुए भी उपर्युक्त कारणों की पूर्ति कर सकता है फिर उस अवतार की क्या आवश्यकता तथा सर्वत्र व्याप्त ईश्वर सर्वदेशीय होने के कारण एकदेशीय किस प्रकार हो सकता है। सत्यतः ईश्वर अपनी परम शक्तिमता से अघटित घटना पटीयसी माया द्वारा सृष्टि का सृजन, पालन, संहार, हित सभी कुछ करने में सर्वथा समर्थ हैं परन्तु

'भगत प्रेम बस सगुन सो होई'

बिना अवतार धारण किए उसकी दिव्य लीला माधुरी का रसास्वादन नहीं हो सकता और बिना उस दिव्य रस पान के जीव कृतार्थ नहीं, उसका कल्याण नहीं। परम तत्व के लिए सम्भव असम्भव कुछ भी नहीं वह एकदेशीय उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त निराकार अग्नि तत्व साधनों द्वारा प्रकट पूर्ण शक्ति के साथ दृश्य भी है। वह एक स्थल पर इसी अग्नि की भाँति प्रकट होता है और अन्यत्र भी उसकी सत्ता स्थित रहती है।[6] अवतार विग्रह वस्तुतः उसका निजी स्वरूप ही है। वस्तुतः यह अवतार रहस्य भी

---

१. नमां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभि जानाति कर्मभिर्न स बध्यते। गीता ४।१५।

२. (१) अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला। मा० ७।५।५।
(२) इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा।
मा० १।२००।७।

३. 'राम' के जन्म के समय 'निज आयुध भुज चारी' रूप का दर्शन कराकर निज जननी की विनीत प्रार्थना ('तजहु तात यह रूपा') पर 'सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।' मा० १।१९१। छंद।

४. इसी कारण उनके जन्म के समय उनका 'प्रकट होना' वर्णित किया गया है 'जग निवास प्रभु प्रकटे' तथा 'भए प्रगट कृपाला' कहा गया है।

५. परमधाम गमन के समय पर मानव देहों की भाँति न कह कर
लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम्।
योगधारणयाग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम्॥ श्रीमद्भा० ११।३१।६।

६. नारद ने भगवान् कृष्ण को विभिन्न स्थानों पर एक ही समय पर भिन्न-भिन्न कार्य करते देखा।
'इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम्।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह॥ भा०।१०।७०।४१।

अति गूढ़ विषय है जिसे अपनी अल्पज्ञता[1] के कारण प्रत्येक प्राणी नहीं जान सकता। परन्तु वह अवतार स्वरूप भी अज्ञेय है। उस पूर्व वर्णित सच्चिदानन्द घन स्वरूप की ही भाँति अवतार का दिव्य, अनुपम स्वरूप भी श्री रामावतार का है।

भगवान् कृष्ण स्वयं अपने को 'धर्म' का स्वरूप[2] बताकर अपने को उस धर्म का परमाश्रय भी बताते हैं जिसके बल पर समस्त पृथ्वी आधारित[3] है, प्रतिष्ठित है। उसी धर्म के ह्रास के संकटमय अवसर पर प्रभु को जग प्रतिष्ठा के हेतु अवतीर्ण होना पड़ता है[4] भगवान् शंकराचार्य ने भी भगवान् श्री कृष्ण को आदि पुरुष का अवतार मानकर उनका अवतार हेतु भी अधर्म की वृद्धि ही बताया है।[5] यही हेतु है भगवान् राम के अवतार का परन्तु उसमें उस करुणावरुणालय प्रभु की अपार करुणा का हेंतु अपनी स्वर्ण सुगंधि उपस्थित करता हुआ दिव्य छटा प्रदर्शित कर रहा है।

'नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू॥'

प्रश्न सुनते ही अन्य कारणों के होते हुये उस 'केवल' कारण की भगवान् शंकर कितनी दृढ़ता के साथ वर्णन करते हैं—

'व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित[6] लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥''

तथा स्वयं लखन लाल भी प्रभु के अवतार हेतुओं में सर्वप्रथम स्थान प्रभु की अहैतुकी कृपा को ही देते हैं :—

'भगत भूमि भूसुरसुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु। सुनत मिटहिं जगजाल॥''[7]

कृपा निधान की कृपा ही अवतार कारणों में सर्वप्रमुख है। कृपा—आकर की अपार निधि ही उसकी अहैतुकी दया है। वही उसकी परम कामना है, 'निज इच्छा'[8] है। भक्तों

---

१. अवजानन्ति मास् मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ गीता ९।११।

२. 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥' गीता १४।२७

३. 'धर्मेण धार्यते पृथ्वी'

४. एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतो न्येषांवधाय च॥
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः सम्भियतेमया।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥ भा० १०।५०।९।१०।

५. 'प्रवर्धमाने च अधर्मे जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदि कर्ता नारायणख्यो विष्णुः भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्व रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल संबभूव।'

६. (१) 'भक्त हित हरन संसार भारं' विनय ४३।
(२) भगत हेतु भगवान् प्रभु राम धरेउ तनु भूप भा० ४।७२

७. भा० २।९३।

८. 'निज इच्छा प्रभु अवतरहिं सुर द्विज गो महि लागि। मा० ४।२६

पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शन ही उन्हें शरीर विग्रह में सीमित कर प्रणत भक्त के सन्मुख दयार्द्रकरुणार्द्र बना देता है। उसी की प्रेरणावश भक्त अपनी भक्ति की ओर प्रवृत्त होकर साकार अवतरण का सम्बल पा जीवन्मुक्त बन जाता है इसीलिए 'अध्यात्म रामायण' में उनके अवतार का हेतु 'भक्तानां' भक्तिसिद्धये'[१] भी कहा है। इसका प्रमाण हम उनके 'भक्त वात्सल्य' रूप में पाकर उनकी इस इच्छा के पूर्णकर्ता का दर्शन पूर्णरूपेण करते हैं। यही है उनकी निष्कामता और आप्तकाम स्वरूप।

भक्तानुग्रह के पश्चात् द्वितीय रामावतार का हेतु है 'भूभारहरण'[२] जिसके अन्तर्गत दो प्रधान कर्मों की विकीर्ण रश्मियाँ उनके अवतार स्वरूप को प्रकाशित कर देती हैं। वह हैं—

(१) साधु रक्षा
(२) असाधु दलन[३]

राम को हम इन्हीं दो कर्त्तव्यों का पालन करते हुये आजीवन पाते हैं। यद्यपि साधन दो हैं, कार्य प्रणाली भिन्न है परन्तु कार्य समन्विति दोनों की परम कल्याण ही है। सज्जन हित,[४] असज्जनों की सद्‌गति[५] दोनों उस परमहेतु के अंगी हैं। अरण्यकांड में मुनियों की रक्षा[६] तथा युद्धकाण्ड में निशाचरों की सद्‌गति[७] इसके परिचायक हैं। यह है उनका समत्व रूप। भगवान का अवतरण सात्विक तामसिक दोनों विरोधी वृत्तियों की परम गति समान ही करता है। इस प्रकार पृथ्वी के भार स्वरूप अधर्म निवारण भी भगवन् के अवतार का प्रमुख हेतु है जिसको कि वे स्वयं घोषित करते हैं और अपना परमाश्रय दे देवों को अभय करते हैं:—

'हरिहउँ सकल भूमि गरूआई।
निर्भय होहु देव समुदाई ॥[८]

---

१. (१) अ०रा० २।२।२४।, अ०रा० ६।१५।५३।
२. अ०रा १।१।१।
३. राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥ अ०रा० ३।१०।१३
४. देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थ भक्तानां भक्तिसिद्धये।
रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥ अ०रा० २।२४।
५. (१) अ०रा० ६।१०।५७। तथा
(२) परम विज्ञ रावण भी इस हेतु से पूर्णतः परिचित हैं।
गोस्वामी जी ने भी रावण में यही भाव दर्शाया है:
'प्रभु सर लगि भव सागर तरिहउ'' (मा० ३।२२।४)
६. 'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ सुख दीन्ह।' मा० ३।९।
७. सुधा वृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनी चर॥
रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बन्धन॥ मा० ४।११४।
८. मा १।१८६।७।

यह उनकी विश्व कल्याण[1] की भावना का मूल है परन्तु केवल संकट निवारण से ही तो कार्य की इति श्री नहीं होती यह तो केवल विश्वमंच को निर्विघ्न करने की पृष्ठभूमि मात्र ही है। अतः इस हेतु से आगे भी कुछ करणीय है वह है उनका शास्त्रोक्त मर्यादा पालन कर उस रंगमंच पर आदर्श अनुकरणीय अभिनय। वाल्मीकि की सूक्ष्म दृष्टि, तुरत-ग्रहिणी दूरदर्शिनी बुद्धि उनका रूप देखते ही कह उठती है—

'श्रुतिसेतु पालक राम 'तुम'

इस हेतु का व्यापक रूप उनके मर्यादा पुरुषोत्तमत्व में दर्शनीय है जिस परमादर्श का अनुसरण कर समस्त प्रजावर्ग भी तद्रूप आदर्शमय बन गई।[2]

इसके पूर्व 'राम' के ब्रह्म स्वरूप की व्याख्या होने के कारण 'वाल्मीकि रामायण' का प्रमुखतः उल्लेख नहीं किया गया क्योंकि उसमें राम के ब्रह्म, स्वरूपों का वर्णन करना लेखक का उद्देश्य नहीं है अपितु, 'आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम' के स्वरूप की विशेष प्रतिष्ठा करना ही उनका लक्ष्य था। उपर्युक्त प्रमुख तीन अवतार कारणों में अन्तिम दो वाल्मीकि रामायण में भी अवलोकनीय हैं जिनमें से प्रथम हेतु का उल्लेख स्पष्टतः है द्वितीय का राम चरित्रान्तर्गत। दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के समय समस्त देवता अपना यज्ञ-भाग लेने के लिये उपस्थित होते हैं[3] वहीं वे सब ब्रह्मा से दिग्विजयी रावण के प्रचंड बल का आतंक का वर्णन करते हुये उससे रक्षा का उपाय पूछते हैं। वहीं पर चतुर्भुजधारी भगवान विष्णु के आगमन पर सब देवता उनकी वन्दना कर उनके अवतरित होने का निमित्त बतलाते हुये उनसे मानव रूप में अवतीर्ण होने की प्रार्थना करते हैं।

'त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया।
तत्रत्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।[4]

'हे प्रभो! लोक कल्याण के निमित्त हम आपको एक काम में लगाना चाहते हैं। सो आप वहाँ मानव रूप से अवतार लेकर बढ़े हुए कंटकस्वरूप और अन्य देवताओं द्वारा अवध्य रावण को रणभूमि में मारिए।'

इस स्तुति की स्वीकृति भी भगवान् विष्णु ने तुरंत देकर देवताओं को संतोष प्रदान किया।[5]

---

१. जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।
मा० ४।१।

२. सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती'।। मा० ७।२०।२।

३. 'ततो देवः सगन्धर्वा सिद्धाश्च परमर्षयः।
भागप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥' वा०रा० १।१५।४।

४. वा०रा० १।१५।१८,२०,२१।

५. वा० रा० १।१५।२७,२८।

देवताओं ने अवतरित स्वरूप का अतिसूक्ष्म संकेत[1] भी किया जिसका भगवान् विष्णु ने समर्थन[2] कर पालन भी किया। वे अपने को चार भागों में विभक्त कर अवतरित हुए।

'अध्यात्म रामायण' में देवताओं के स्थान पर साक्षात् ब्रह्मा ने इन्द्रनील सम श्याम वर्ण, श्रीवत्सकौस्तुभादि से प्रकाशित विष्णु की प्रार्थना कर उनसे मनुष्य रूप में अवतरित होकर त्रिलोकविध्वंसक रावण के वध करने की प्रार्थना की।[3] भगवान् विष्णु ने यहाँ भी स्वयं ही अपने को चार भागों में अवतरित होने का संकल्प कहा।[4] इस चतुर्भाग का निर्देश तो दोनों रामायणों में हुआ परन्तु इसका स्पष्टीकरण केवल गोस्वामी जी ने ही किया। उनके परात्पर ब्रह्म अवतरित होने से पूर्व अपने को 'अंसन्ह सहित' अवतरित होने की ब्रह्म-गिरा करते हैं।[5] तथा उन अंसन्ह की तुरत व्याख्या करते हैं :—

'तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई ॥'

इस प्रकार लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा राम स्वयं ही वे चतुर्भाग हैं जिनका उपरोक्त संकेत किया गया है। अन्य शब्दों में ये तीनों भाई भी 'राम' के स्वरूपान्तर्गत ही हैं।

इसकी विशद व्याख्या उनके चरित्रान्तर्गत करने के उद्देश्य से यहाँ संक्षेपतः दिग्दर्शन ही पर्याप्त होगा कि रामावतार चतुर्विग्रह में प्रकट हुआ।

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और शिव ये ही तीन उस परम प्रभु के अंश कहे जाते हैं।[6] सत्वगुणाधीश पालक विष्णु के अंश श्री भरत जी,[7] रजोगुणाधीश्वर ब्रह्मा[8] के अंश शत्रुघ्न जी तथा तमोगुणाधीश्वर शंकर[9] के अंश श्री लक्ष्मण जी हैं।

---

१. राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
तस्य भार्यासु तिसृषु ह्री श्री कीर्त्युपमासु च ॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्। वा० रा० १।१५।१८।

२. मानुष्ये चिंतयामास जन्मभूमिमथात्मनः।
ततः पद्मपत्राक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥ वा० रा० १।१५।३०।

३. अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो। अ० रा० १।२।२४।

४. तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने।
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥ अ० रा० १।२।२७।

५. अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥ मा० १।१८६।२।

६. संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥ मा० १।१४३।५।

७. बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत असहोई ॥ मा० १।१९६।७।

८. जाके सुमिरन ते रिपुनासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

९. लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥ मा० १।१९७।

परम प्रभु राम ने अंशों के सहित अवतार क्यों धारण किया, इसका उल्लेख क्रमशः उनके चरित्र दिग्दर्शन के समय स्पष्ट हो जायगा। यहाँ वह प्रसंग न होने से इतना ही कह देना पर्याप्त है कि 'राम' रूप में आदर्श मर्यादा पालन, 'लक्ष्मण' रूप में विशेष धर्म, 'भरत' रूप में विशेषतर तथा 'शत्रुघ्न' रूप में विशेषतम धर्म प्रदर्शन के कारण अंशों के स हित पूर्णावतार धारण करना पड़ा। लोकमर्यादा, धर्ममर्यादा आदि समष्टिगत आदर्शों का दिग्दर्शन चतुर्विग्रह रूप में ही संभाव्य था।

अब आलोच्य विषय यह है कि विविध रामायणों व पुराणों में राम के अवतार का वर्णन है। कहीं वे परात्पर ब्रह्म के अवतार हैं, कहीं त्रिदेवगत विष्णु के। अब यह विचारणीय है कि 'रामायण' तथा 'मानस' में 'राम' का अवतार किसका है?

वाल्मीकि रामायण में पूर्व पुत्रेष्टि यज्ञ के उद्धरण से यह स्पष्ट हो गया कि राम परात्पर ब्रह्म के अवतार न होकर ब्रह्मादि देवों से प्रार्थित होने पर लोक कल्याण कर्त्ता विष्णु के ही अवतार हैं। परशुराम मिलन तथा सीता परीक्षा के स्थल भी इसको प्रमाणित करते हैं।

(१) परशुराम—

अक्षयं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥[१]

(२) ब्रह्मा—

'भवान्नारायणो देवः श्रीमाश्चक्रायुधः प्रभुः।'[२]

(३) दशरथ—

एतदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ॥[३]

(४) मन्दोदरी— मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्य पराक्रमः।[४]

इसके अतिरिक्त 'परमधामगमन' का प्रसंग भी इसी निष्कर्ष पर ही पहुँचता है....

'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः।
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्तिस्म देवता ॥[५]

'रामचन्द्र ने विष्णु का स्वरूप धारण करके भाइयों के सहित सदेह बैकुंठ धाम को गमन किया। तब भगवान् राम को विष्णुरूप में देखकर सब देवताओं ने उनका पूजन किया।'

अध्यात्म रामायण में भी राम क्षीराब्धिशायी विष्णु के ही अवतार हैं जिसके प्रमाण वाल्मीकि रामायण की भाँति ही जन्म तथा परम प्रयाण के ही स्थल हैं जिनमें से 'जन्म' का

---

२. वा० रा० १।७६।१०।
३. वा० रा० ६।११७।१३।
४. वा० रा० ६।११९।३०।
१. वा० रा० ६।११४।१६।
२. रा० ७।११०।१३।

उल्लेख तो ऊपर किया जा चुका है। द्वितीय प्रसंग में भी भगवान् के चतुर्भागों में विष्णु के आयुधों (चक्र एवं शंख) का अवतरित रूप क्रमश: भरत व शत्रुघ्न को,[१] उनकी शेषशय्या का अवतरित रूप लक्ष्मण को[२] तथा शेषतल्पशायी विष्णु को राम का स्वरूप बतलाया है।[३] सीता को उन क्षीराब्धि नायक की लक्ष्मी[४] का अवतार बताया है। इस प्रकार इसमें भी अखिल ब्रह्मांडनायक विष्णु का अवतरित रूप ही 'राम' का वर्णित किया है।[५] अ० रामायण की इस विषय में समानता होने पर भी एक विशेषता है कि इसमें राम अपेक्षाकृत विशेष अध्यात्म प्रमुख[६] हैं।

इन प्रमुख अवतार कारणों के अतिरिक्त मानस में कुछ अन्य प्रासंगिक कारणों का उल्लेख भी किया गया है जिनका विवरण आदि रामायण में अप्राप्य है। भगवान् शंकर के मुख से 'भगत प्रेम बस सगुन'[७] होना सुन कर पार्वती जी की जिज्ञासा उन भक्तों को जानने के लिये आतुर हो उठती है और वे उन भक्तों का विशद वर्णन पूँछती हैं जिनके वशीभूत हो 'राम' को अवतरित होना पड़ा। अनेक कल्पों की अनेक कथाओं के अनुसार भगवान् शंकर छः प्रमुख हेतुओं का उल्लेख करते हैं।

---

१. बभूवतुश्चक्रदरौ च दिव्यौ, कैकयिसूनुर्लवणान्तकश्च। आ० रा० ९।५७।
२. शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतः सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी।
३. 'रामो हि विष्णुः पुरुष० पुराणः'
४. 'सीता च लक्ष्मीरभवत्पुरेव' अ० रा० ७।२।
५. सहानुजः पूर्वशरीरकेण बभूव तेजोमयदिव्यमूर्तिः ॥
विष्णुं समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या देवाश्च सिद्धा मुनयश्चयक्षाः ॥
पितामहाद्याः परितः परेशं, स्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः ॥ अ० रा० ७।९।५८,५९।
यह प्रसंग पूर्णतः वाल्मीकि रामायण के समान ही है जो कि 'राम' को विष्णु रूप का ही अवतार प्रमाणित करता है।
६. 'राम गीता' आदि अनेक प्रसंग हैं जिनमें राम ने स्वभक्ति निरूपणादि[१] विशदता से किया है। 'अध्यात्म रामायण' के राम में भक्त प्रणीत भगवान का रूप विशदता से चित्रित किया गया है। स्थान स्थान पर कहीं नारद के द्वारा, कहीं वशिष्ठ के द्वारा, कहीं वामदेव के द्वारा उनकी भगवत्ता का संकेत कर भावुक भक्तों को भक्ति के लिए प्रेरित करने का दृढ़ावलम्बत रूप 'राम' को चित्रित किया गया है। असंख्यों स्तुतियाँ उनके 'अध्यात्म रूप' का ही प्रकाशन कर साधक को भक्ति रसाप्लावित कर भक्ति-साधना में निमज्जित कर देती हैं।[२] यथा यह है कि उनका अध्यात्म रूप।
७. ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु 'लीलातनु' गहई॥
(१) मद्भावनाभावित शुद्धमानसः। सुखी भवानन्द मयोनिरामयः॥
।अ० रा० ७।६।६०।
(२) प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं, प्रपन्नार्तिभिः शेषनाशाभिधानम्।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं कपीशादिमित्रंभजे राममित्रम्॥
।अ० रा० ६।१३।२६।

(१) ऋषि शाप देने से जय और विजय का रावण, कुम्भकर्ण रूप धारण करना।[1]
(२) जलन्धर का रावण बनना।[2]
(३) नारद शाप से रुद्रगणों का रावण कुम्भकर्ण रूप में जन्म लेना।[3]
(४) स्वायम्भुव मनु की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् का वरदान देना।[4]
(५) अभिशप्त भानु प्रताप का रावण बनना।[5]
(६) उसके अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी का व्याकुल होना तथा देवों के साथ प्रार्थना करना।[6]

गोस्वामी जी की अद्‌भुत समन्वयात्मिका प्रतिभा तथा कुशाग्र बुद्धि ने इन विभिन्न हेतुओं का वर्णन कर आकाशवाणी मिस इन सबका समन्वीकरण कर सर्वत्र 'राम' रूप की एकता का प्रतिपादन किया है :—

'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।'
'कस्यप[7] अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा।।
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई।।
नारद वचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।।'

उपर्युक्त प्रथम चौपाई में मनु सतरूपा को प्रदत्त वरदान के हेतु का उल्लेख है क्योंकि उनके अति कष्टसाध्य तप से प्रसन्न होकर भी यही वरदान दिया है :—

'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।'

द्वितीय चौपाई में जय विजय और जलन्धर के हेतु का संकेत है। चतुर्थ में नारद श्राप का स्पष्टीकरण कर, भानु प्रताप के ही शापित रूप दशमाथ रावण के अत्याचारों से

---

१. मा० १।१२१।५, १।१२२, १।१२२।२।
२. मा० १।१२३।२।
३. मा० १।१३५।
४. मा० १।१५१।१।
५. मा० १।१७५।१, २।
६. (१) अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता।।
मा० १।१८३।४, ६।
(२) पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करउ अनुग्रह सोई।।
.... आदि। मा० १।१८५। छंद।
१. 'अध्यात्म रामायण' में केवल 'कश्यप' को वरदान देने का प्रसंग हेतु रूप में वर्णित हुआ है :

कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे।।
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यंगीकृतंमया।। अ० रा० १।२।२५।

पीड़ित पृथ्वी के अधर्म भार को नष्ट करने का संकल्प अन्तिम अर्धाली में किया है। हेतु अनेक होने पर भी यह वैचित्र्य है, ऐक्य स्थापन है कि अनेक कल्पों के अनेक हेतु होने पर भी 'राम' एक हैं। वही मनु सतरूपा के 'भुसुंडि मन-मानस-हंस', 'शंकर मानस-मराल' बिस्वबास भगवान् भी हैं, वही क्षीराब्धिनायक,[1] वैकुंठाधिपति[2] साकार विग्रह श्री विष्णु भी हैं, जिनको नारद जी ने शाप दिया तथा जालन्धर की स्त्री द्वारा शापित हुए तथा वही भव भय भंजन असुर विनाशन लोक कल्याण कर्त्ता श्री मर्यादा पुरुषोत्तम 'राम' भी हैं।

गुणावतार

उपर्युक्त अवतार स्वरूप का विवेचन उन आदि पुरुष के पुरुषावतार तथा उनके हेतुओं का है। उसके विभिन्न अंगों तथा गुण, कर्म, लीला, स्वभाव आदि का विश्लेषण कुछ समय के लिए स्थगित कर उनके गुणावतार की संक्षिप्त आलोचना करना अत्यावश्यकीय है। परम प्रभु का पुरुषावतार उनका 'स्वयं रूप' है जिसे हम 'पुरुषोत्तम'[3] नाम से भी पुकार सकते हैं। परन्तु उनके अंश से उत्पन्न, उनके सत्, रज, तम (त्रिगुण) के अधिनायक ब्रह्मा, विष्णु, महेश उनके गुणावतार हैं। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये अवतार भी उनके अंशी होने के कारण पूर्ण ही कहे जा सकते हैं क्योंकि सूर्य का प्रतिबिम्ब किसी भी स्वच्छ पदार्थ में अपूर्ण प्रतिबिम्बित नहीं होता उसी प्रकार भगवान् का कोई भी स्वरूप अपूर्ण नहीं है। अस्तु इन गुणावतारों को भी जगद्व्यापार में सृजन, पालन, संहार के क्रमशः अधिकार प्राप्त हैं। ये भी भगवद्विभूतिरूप[4] अवतरित अंश हैं अत: इनमें भी सर्वदा स्वरूप-स्थिति, सर्वज्ञत्व, नित्यनूतनत्व, सच्चिदानन्द विग्रहत्व तथा सकल सिद्धियों का वशकारित्व अंश रूप में स्थित है। श्रीमद् रूप गोस्वामिपाद ने इन गुणावतारों के ५५ गुणों के नामों का उल्लेख किया है।[5] वस्तुत: आदि पुरुष ही प्रत्येक कल्प में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय कर्त्ता हैं। इन्हीं की माया शक्ति से उद्भूत् सत्व, रजस्, तमस् गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट होते हैं। अत: परम पुरुष की शक्ति उनसे पृथक् नहीं कही जा सकती। इसलिए गुणावतार भी उन्हीं का ही स्वरूप है।

---

१. 'छीर सिंधु गवने मुनि नाथा। जहँ बस श्री निवास श्रुति माथा।' मा० १।१२७।४।

२. जालन्धर के प्रसंग में 'शाप' ग्रहण कर्ता वैकुंठनाथ हैं :
  'तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥
  मा० १।१२३।१।

३. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम:।
  अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:॥ गीता १५।१८।

४. (१) 'आदित्यानामहं विष्णु:' गीता १०।२१।
  (२) 'रुद्राणां शंकरश्चास्मि' गीता १०।२३।

५. सर्वज्ञत्व, स्वरूपस्थिति, नित्यनूतनत्व, सच्चिदानन्द विग्रहत्व, सिद्धियों का वशीकरण, सुरम्यांगत्व, सर्व सुलक्षण सद्भाव, रूचिरता, तेजस्विता, बलवत्व, वय: सम्बन्ध, नाना अद्भुत भाषा ज्ञान, सत्यवादिता, प्रियवादिता, वावदकता, सुपांडित्य, बुद्धिमत्ता, प्रतिभा सम्बन्ध, विदग्धता, चातुर्य, दक्षता, कृतज्ञता, सुदृढ़व्रतत्व, देशकालपात्रज्ञान, शास्त्रदृष्टि शुचित्व, वशित्व, स्थैर्य, दम, क्षमा, गंभीरत्व, धृति, साम्य, वदान्यता, धार्मिकत्व, शौर्य, करुणा, मान्य मानकारिता, दाक्षिण्य, विनय, ह्री, शरणागतपालकत्व, सुखित्व, भक्तसौहार्द, प्रेमवश्यता, सर्वशुभंकारिता, प्रताप, कीर्ति, लोकप्रियता, साधुसमाश्रयत्व, नारी चित्तरंजनत्व, सर्वाराध्यत्व, समृद्धिशालिता, वरीयस्ता, ऐश्वर्य।
  भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण १।१९—२५।

अध्यात्म रामायण[1] में भी राम का त्रिदेवों के साथ एकीकरण ही दर्शा कर 'राम' के व्यापक आदि रूप का चित्रण किया है।

'एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः'
कह कर उन्हीं को त्रिदेवस्वरूप भी दर्शाया है :
'एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माभूद्विश्वभावन।
सत्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः॥
एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलय कारणम्।'

'यही रजो गुण से युक्त विश्वसृष्ट ब्रह्मा हैं, सत्व गुण से युक्त होकर त्रिभुवन परिपालक विष्णु हैं तथा यही तमोगुणाधीश संसार के प्रलयंकारी शंकर हैं।'

सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् यह स्पष्ट है कि 'राम' गुणावतार के आदिस्वरूप भी हैं। त्रिगुणाधीश्वर त्रिदेवस्वरूप भी 'राम' के स्वरूपान्तर्गत ही हैं। इसका विवेचन अवतारी राम के प्रसंग में किया जा चुका है।

लीलावतार

'मानस' में उनका 'गुणावतार' प्रतिपादित न होकर गुणातीत स्वरूप ही वर्णित हुआ है अतः केवल संक्षिप्त दृष्टि डाल कर यह अवलोकन भी अभीष्ट है कि 'राम' का अन्य अवतारों के साथ क्या सम्बन्ध है अथवा उन अवतारों का रूप भी 'राम' का स्वरूप है या नहीं। पुरुषावतार, गुणावतार के समान ही आपका लीलावतार भी है जिनकी संख्या कुछ लोग २४ तथा कुछ २८ बताते हैं। इनमें से १९ युगावतार हैं और ९ मन्वन्तरावतार हैं। आदिपुरुषावतार[2] इन समस्त अवतारों का निधान[3] है। इन अवतारों में से कुछ तो स्वरूपावतार हैं और कुछ अंशावतार 'राम' 'कृष्ण' की गणना स्वरूपावतार में ही की जाती है। अवतार इस प्रकार हैं :

आदि पुरुषावतार, कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वाराह, देवर्षि नारद, नर नारायण, कपिलदेव, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, मच्छप, धन्वन्तरि मोहिनी नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बलदेव, हंस, हयग्रीव, हरि, पृश्निगर्भ, मनु, बुद्ध तथा कल्कि।

---

१ निम्नलिखित श्लोक गुणावतार का 'राम' (ब्रह्म) में पूर्णाश्रयरूप स्पष्ट करता है :
यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च
स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आदिमूलम्।
भित्वा त्रिपाद् ववृध एक उरुप्ररोह
स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय॥
भा० ३।९।१६।

२. जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥
भा० १।३।१।

३. 'एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्' भा० १।३।५।

इनका वर्गीकरण निम्नांकित रूप से किया जा सकता है :
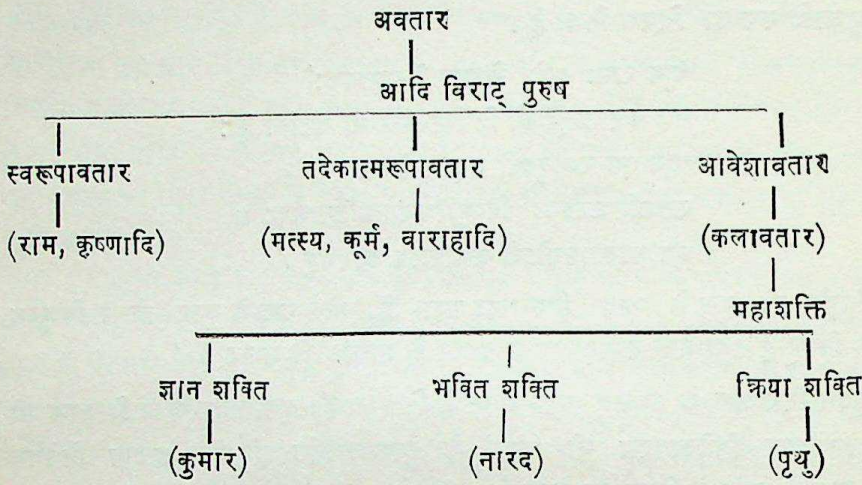
उपर्युक्त अवतारों में से कुछ अंशावतार हैं या कलावतार हैं जिन्हें 'आवेशरूप' भी कहते हैं जैसे कुमार, नारद आदि इनमें ज्ञान शक्ति और भक्तिशक्ति के अंश का आवेश प्राप्य है। इनमें महाशक्ति होने के कारण अवतारों में इनकी गणना की जाती है। राम, कृष्ण, नृसिंह उन्हीं के स्वरूपावतार ही हैं। मूलत: भगवद्रूप होने पर भी रूप और आकार में भिन्न होने के कारण मत्स्य, कूर्मादि तदेकात्मरूपावतार कहे जाते हैं। इनमें भी सर्वज्ञत्व तथा सर्वशक्तिमत्ता है परन्तु कार्यानुसार हो उनमें ज्ञानशक्ति व क्रियाशक्ति आविष्कृत हुई है।

विष्णु पुराण[1] में भगवान् में ६ प्रमुख गुणों का समावेश बतलाया गया है। वे हैं ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य। इनमें से 'ऐश्वर्य' का प्राकट्य नृसिंह, परशुराम और कल्कि में, 'धर्म' का नारद, व्यास, वराह, बुद्ध में, 'यश' का धन्वन्तरि 'यज्ञ' का पृथु में, 'श्री' का बलि, मोहिनी, वामन में, 'ज्ञान' का दत्तात्रेय, मत्स्य, कुमार, कपिल में तथा ,वैराग्य' का नर नारायण, कूर्म, ऋषभ में प्राकट्य पाया जाता है। परन्तु श्रीमद्भागवत् के 'कृष्ण' इन समस्त ६ गुणों के निधान होने के कारण 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' कहे गये हैं। वहीरूप 'राम' का है। इन दिव्य गुणों का प्राकट्य उनमें किस प्रकार पूर्णत: है इसका दिग्दर्शन उनके चरित्रान्तर्गत, लीलान्तर्गत ही करना विशेष संगत होगा परन्तु यहाँ पर तो श्रीमद् भागवत् के ही आधार पर भगवान् 'कृष्ण' के समान 'राम' को दर्शा देने मात्र से ही उनका 'स्वरूपावतार' सिद्ध हो जाता है। कृष्ण को परमपुरुष, सच्चिदानन्दरूप, अनादि, सर्वकारण स्वरूप कहकर उनकी भगवत्ता प्रतिपादित कर उन्हें अंशावतारों की अपेक्षाकृत सर्वोपरि

---

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस: श्रिय: ।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य (ज्ञान वैराग्ययोश्चैव) षण्णां भग इतीरणा ॥'
'सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य, इन छ: का नाम 'भग' है।
'वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्यय: ॥' वि० पु० ६।५।७४,७५

स्थान प्रदान किया है।[1] तथैव भगवान् राम भी सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वकारणात्मक रूप हैं जिसका पूर्णतया उल्लेख औपनिषद ब्रह्म से तुलना के अन्तर्गत किया जा चुका है अतः उसकी पुनरुक्ति न कर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राम' भी पूर्व कथन की भाँति पूर्णावतार तथा समस्त अवतारों का निधान और अविनाशी बीज हैं।

'मानस' में भी 'राम' का विभिन्न अवतारों के साथ ऐक्य यत्र तत्र प्रदर्शित किया गया है। अन्य शब्दों में 'राम' ही अनेक रूपों में अवतरित हुए हैं।

'राम जनम के हेतु अनेका' कह कर गोस्वामी जी ने बाद में वाराह[2] नृसिंहावतार का उल्लेख कर दोनों में ऐक्य स्थापन कर दिया है। माल्यवान् ने 'राम' का अन्य अवतारों (वामन, परशुराम) के साथ भी ऐक्य स्थापित किया है।[3] देवताओं ने 'राम' के स्वरूप निरूपण में स्तुति करते समय उन्हें मत्स्य, कच्छपादि अवतारों का भी रूप वर्णित करते हैं।[4] इस प्रकार स्वरूपावतार तथा तदेकात्मरूपावतार ग्रहण कर्त्ता 'राम' ही हैं अन्य नहीं। इसका विशद उल्लेख अध्यात्म रामायण में किया गया है[5] जिसमें प्रत्येक स्थान पर 'राघव', 'रघूत्तम' आदि नामों के उल्लेख द्वारा वामदेव ने सभी अवतारों के स्वरूप का 'राम' में समावेश किया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के निष्कर्षानुसार 'राम' का स्वरूप समस्त अन्य अवतारों का भी स्वरूप है। उसकी व्यापकता सर्वत्र अक्षुण्ण है। कहीं भी हो, भक्तजन रंजन हेतु या भव भय

---

१. एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारि व्याकुलं लोकं मृड्यन्ति युगे युगे॥ भा० १।३।२८।

२. (१) द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। मा० १।१२१।४।८।

३. (२) 'हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपा सिन्धु भगवान्॥ मा० ६।४८।
इस दोहे में 'माल्यवन्त' ने 'सोइ' शब्द के द्वारा वाराह, नृसिंह, सभी अवतारों के साथ राम का 'ऐक्य' स्थापित कर उन्हें भी 'भगवान' ही कह कर पूर्णावतार का ही बोध कराया है।

४. जेहि बलि बांधि सहसभुज मारा।
(वामन) (परशुराम)
सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥ मा० ६।५।८।

५. मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
मा० ६।१०९।७।
अ०रा० २।५।१४—२०।

भंजन सभी हेतुओं में 'राम' का ही अवतार है। अवतार असंख्य हैं। कहीं 'अनुप्रवेशावतार' रूप धारण कर महत्तम जीवों में अविष्ट होकर अपनी 'कला' प्रदर्शित कर रहें हैं और कहीं 'पूर्णावतार' में अपनी दिव्य छटा आलोकित कर सर्वत्र 'रमण' कर रहें हैं। पर हैं सर्वत्र वही 'राम'!

नाम

अवतार धारण करने के साधन स्वरूप 'राम' को चतुर्विग्रह में अवतरित होना पड़ता है अथवा यह कहना विशेष संगत होगा कि नाम, रूप, लीला और धाम इन चतुर्विग्रह का स्वरूप राम का स्वरूप है :—

'रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥'[1]

'नाम, रूप, लीला और धाम यह चतुर्विग्रह एक ही राम के निश्चित हैं जो नित्य और परात्पर हैं।'

उपर्युक्त चतुर्विग्रह में सर्वप्रथम आलोच्य विग्रह 'नाम' है जो कि साधन तथा साध्य दोनों ही है। प्रस्तुत विवेचन उसके साध्यस्वरूप का है।

जिस प्रकार से 'राम' मानस में 'प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना' है तथैव नाम भी है।

'एहि महं रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुरान श्रुतिसारा॥

है। अतः दोनों ही अभिन्न हैं। नाम और नामी में पार्थक्य प्रतीति नितान्त असंगत, निर्मूल तथा व्यर्थ है।[2] शंकर द्वारा सतत हृदयासनासीन राम ध्यान की भाँति यह नाम भी उनके सतत 'जिह्वासनासीन'[3] है। 'नाम' ही उस परम तत्व के साकार स्वरूप का बोधक है।[4] जगदुद्धारक राम की ही भाँति इसका भी स्वभाव है।[5] नाम स्वयं उस राम का 'वाङ्मय' अथवा वर्णमय रूप है जिसके गुण भी राम ही की भाँति भक्त दुःख भंजन[6] और

---

१. वशिष्ठ संहिता।
२. मा० १।२०।१।
३. (१) 'तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥' मा० १।२०७।७।
   (२) 'महामंत्र जोई जपत महेसू।' मा० १।१८।३।
४. देखिअहि रूप नाम अधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
   रूप बिशेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
   सुमिरिअ नाम……… मा० १।२०।४६।
५. 'भव भय भंजन नाम प्रतापू' मा० १।२३।६।
६. (१) नाम सकल कलि कलुष निकंदन। मा० १।२३।८।
   (२) राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल।
   जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥
   मा० १।२७।

जनं मन रंजन[1] हैं। परन्तु वह नाम है क्या जो भगवद्विग्रह बन बैठा तद्स्वरूप कहलाया ? इसका निर्णय स्वयं नाम निष्ठ शिरोमणि नारद जी स्वयं रघुनाथ जी की स्वीकृति द्वारा उन्हीं से ही करा लेते हैं। वह है 'राम' नाम जो स्वयं राम की ही भाँति अखिल अघ गंजन तथा अखिल सुखधाम, शान्तिधाम बन गया।[2] तुलसी के 'राम' की ही भाँति वह 'नाम' भी उनका सर्वस्व, जननी जनक बन गया।[3] नामी की ही भांति यह भी अकथनीय 'तत्व' है।[4] यह भी अप्राकृत तथा चिदानन्दस्वरूप है, अलौकिक शक्ति सम्पन्न है। भक्त की भाव विकासावस्था में यही नाम नामी रूप में परिणित होकर इष्ट का साक्षात् दर्शन कराता है। यही है उसका अद्वैत स्वरूप।[5] 'नाम' केवल अक्षर समष्टि ही नहीं उसके अन्तर्गत वही चिन्मय आत्मा स्थित है जो इन्द्रियातीत होने के कारण वर्णनातीत भी है। देव प्रतिमा के समान केवल अनुभव में ही आभास हो सकता है।[6] यह भी अपने देव से अभिन्न है। तात्विक दृष्टि से जगत सियाराममय ही दृष्टिगत है तथैव श्रोत्रग्राह्य विषयों में माया का आवरण हटा देने से भी वही परमात्मा विद्यमान है।

आदि कवि वाल्मीकि को नाम साधना का प्रत्यक्ष फल प्राप्त हुआ। नाम ने नामी के स्वरूप की नाम प्रतीति, नामाभ्यास नाम तदाकारिता द्वारा ज्ञान करा दिया और फिर 'राम चरित' का प्रत्यक्ष दर्शन कर संसार के सन्मुख राम का स्वरूप प्रकट कर दिया।[7]

'उपनिषद्'[8] वर्णित नाम और नामी की सर्वकारणात्मक[9] स्वरूपगत अभिन्नता पर

---

१. फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें ॥मा० १।२४।८।

२. 'राम' सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥ मा० ३।४१।८।

३. 'मेरे तो माय बाप दोउ आखर' विनय० ।२२६।

४. नाम रूप गति अकथ कहानी। मा० १।२०।७।

५. 'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि' गीता० ।१०।

६. समुझत सुखद न परति बखानी मा० १।२०।७।

७. (१) जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सिद्ध करि उलटा जापू॥
मा० १।१९।५।

(२) राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्। यत्प्रभावादहंराम ब्र ह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥
अ० रा० ३।६।६४।

८. कठो० में भी 'नामी का स्वरूपैक्य वर्णित है :

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरे परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
१।२।१६।

९. नामी की ही भाँति नाम का मौलिक वाह्य रूप भी सर्वकारणात्मक ही है। 'अ' के के उच्चारण से मुख की स्थिति ज्यों थी त्यों है म कहने में मुख बंद होना ही प्रलय है।

दृष्टिपात करते हुये यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राम' नाम भी परात्पर ब्रह्म ही हैं। पूर्व प्रसंग में जिस प्रकार 'राम' के विराट् स्वरूप में चन्द्रमा को भगवान् का मन, 'सूर्य' को भगवान् के नेत्र तथा अग्नि को भगवान् का मुख बतलाया गया है तथैव नाम के अन्तर्गत भी इन्हीं शक्तियों का समावेश है। भक्त के हृदय प्रांगण में शीतलता उत्पादक होने के कारण चन्द्रमा[1] है, मोह तथा हृदय तम निवारणार्थ सूर्य[2] है, पाप समूह के भस्म करने के हेतु अग्नि[3] है। भाव दृष्टि से भिन्न इसकी शाब्दिक व्याख्या उपर्युक्त शक्तियों से समन्वित रूप की राम रहस्योपनिषद् में की गई है।[4]

परमार्थ पथ पथिक सुविज्ञ भरद्वाज भी 'राम' नाम की महत्ता को राम ही के समान अमित प्रभावशाली स्वीकार करते है[5] और देवाधिदेव महादेव भी समस्त प्राणियों में रमणकर्ता अन्तरात्मा रूप 'राम' की ही भाँति नाम का वर्णन करते हैं।

'नाम' ही 'भगवत्स्वरूप' है इसका निर्णय निम्नलिखित 'परमात्मा तत्व' के यौगिक विवेचन से पूर्णतया हो जाता है। जिस प्रकार भगवान् 'अधियज्ञ' रूप से समस्त कर्मेन्द्रियों के नियन्ता बन कर स्थित रहते हैं।[6] वे सर्वत्र इस रूप में स्थित हैं, शक्ति संचालक जीवन ज्योति रूप हैं तथैव हमारे शरीर में 'वायु' विभिन्न नाम रूपों[7] सहित व्याप्त होकर स्थित हैं जिसको विशिष्ट आलोचना योगियों ने प्राणायाम की अनुभूति द्वारा की है। वह 'वायु' भी जीवनी शक्ति है। 'श्वास' श्वास में नाम 'जप' की अनुभूति 'सन्त' कवियों ने की है और उसे इसी कारण 'अजपा' कहा है। 'रोम रोम' में रमे राम की भाँति ही श्वास प्रति श्वास क्रिया ही राम नाम है। उसी को योगियों ने 'हंस' नाम भी दिया है तथा यह नाम और

---

१. राका रजनी भगति तब राम नाम सोइ सोम।
   अमर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर व्योम॥ मा० ३।४२।
२. 'जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा' मा० १।१५।४
३. 'जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥ मा० २।२४०।२
४. 'रकारो वह्निः वचनः प्रकाशः पर्यवस्यति।
   सच्चिदानन्दरूपोऽस्य परमात्मार्थ उच्यते॥
   व्यंजनं निष्कलं ब्रह्म प्राणो मायेति च स्वरः।
   व्यंजनैः स्वरसंयोगं विद्धितत्प्रणयोजनम्॥
   रेफे ज्योतिर्मये तस्मात् कृतमाकार योजनम्।
   मकारोऽभ्युदयार्थत्वान् समायेति च कीर्त्यते॥' ....आदि
   रामरहस्य उपनिषद्। अ० ३—६
५. राम नाम कर अमित प्रभावा।
   वेद पुराण उपनिषद गावा॥ मा० १।४५।२
६. 'अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर।' गीता ८।४।
७. प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान तथा नाग, वायु, कूर्म, कृकर, देवदत्त धनंजय वायु।

ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादन इस प्रकार से पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है जब उसी 'हंस' शब्द को उपनिषद् में परमात्मा के लिए प्रयोग किया गया है ।[1]

अ० रामायण में जगज्जननी जानकी 'नाम' में ही राम का स्वरूपचिन्तन करती हैं ।[2] जो कि परम साधन होते हुए भी 'साध्य' रूप राम स्वरूप दिग्दर्शक होने के कारण नहीं हैं । बुद्धि दृष्ट्या 'त्ववेवाहं' मानने वाले अनन्य राम भक्त हनुमान् भी राम स्वरूप में तन्मय होने की ही भाँति 'नाम' रूप में स्मरण द्वारा तन्मय होकर उस शाश्वत चिरन्तन परमतत्व की भाँति ही 'नाम' की स्थिति तक जीवित रहने की श्रेष्ठ वर याचना करते हैं ।[3] भगवद्विग्रह उनका परमाराध्यस्वरूप है अत: 'नाम' भी उस स्वरूप के ही अन्तर्गत है ।

'तस्य वाचक: प्रणव:' ऊँकार ही 'राम' नाम है यह रामानन्दाचार्य के वैष्णवमताब्जभास्कर में वर्णित किया जा चुका है अध्यात्म रामायण में श्रीराम के अपने को 'ऊँकार' स्वरूप ही बतलाने से[4] यह भी सिद्ध हो गया कि राम नाम ही 'राम' स्वरूप है । डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने नाम निरूपण करते हुए लिखा है :—

'यह नाम नराकार आराध्य का प्रचलित नाम ही नहीं है वरन् निराकार निर्गुण ऊँ का समकक्ष और सुराकार परमात्मा के सब नामों में श्रेष्ठ है ।[5]

'नाम' के साध्य पक्ष का विवेचन उसके कतिपय महिमा गान के पश्चात् अब यहीं स्थगित किया जाता है ।

वैराग्यहेतुपरमो, रकारो कथ्यते बुध: ।
आकारो ज्ञान हेतुश्च, मकारो भक्तिहेतुक:[6] ।।

अस्तु 'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई
राम न सर्कहि नाम गुण गाई'

के कथनानुसार जब 'नामी' परम पुरुष के द्वारा भी वह 'नाम स्वरूप' वर्णनातीत है तो जीव तो अल्पज्ञ और अंशी ही ठहरा ।

वालमीकि रामायणान्तर्गत 'राम' को विशिष्ट सुराकार या निराकार न मानकर नराकार रूप ही प्रतिष्ठित किया गया है अत: नाम तत्व की अलौकिकता का प्रतिपादन नहीं किया गया है ।

रूप :

भगवान् राम के 'नाम' स्वरूप की ही भाँति उनका साक्षाद्विग्रह रूप भी परम

---

१. (१) नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलयते बहि: श्वेता० ३।१८ ।
 मा (२) एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निं सलिले संनिविष्ट ।
 ६।१५ ।
२. भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् । अ० रा० ५।२।१० ।
३. अ० रा० ६।१६।१३, १४ ।
४. अ० रा० ७।५।४९,५० ।
५. पृ० १७५ तुलसी दर्शन ।
६. महारामायण ।

मंगलमय, सौन्दर्य निधि, प्रकाशनिधि तथा अवर्णनीय तत्व है। इसी कारण जगज्जननी जानकी की अभिन्न हृदया सखियों से भी बिना यह कहे न रहा गया कि

'स्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥'

उनकी रूप माधुरी का वर्णन, 'अपार मार मद मोचन' रूप का दिग्दर्शन केवल मन की अनुभूति का ही आंशिक विषय बन सकता है, बुद्धि तत्व का नहीं। मानस का कोई भी सात्विक, राजसिक या तामसिक पात्र ऐसा नहीं जिसे कि उस अलौकिक दिव्य वपु को निहार कर थकित होकर सात्विक अनुभावों की अनुभूति न हुई हो। इसका स्थान स्थान पर वर्णन किया जायगा। उस दिव्य विग्रह में असंख्य गुणों व तज्जनित प्रभावों का समावेश है जिनमें मुख्यत: हैं :

(१) मंगलमय[1] (कल्याणस्वरूपता) शिवं।
(२) नयनरंजकता[2] (शोभातत्व) सुन्दरं।
(३) तेजस्विता[3] (ऐश्वर्यतत्व) सत्यं।

उपर्युक्त त्रिगुण का समन्वय उनके अपरिमित सौन्दर्य के ही अन्तर्गत है। वय के अनुसार उनके रूप का हम प्रमुखतया दो अवस्थाओं[4] में दर्शन पाते हैं जिसके अन्तर्गत अनेक दिव्य रूपों का विश्वविमोहक गुण प्रत्यक्षत: दृष्टिगत होता है।
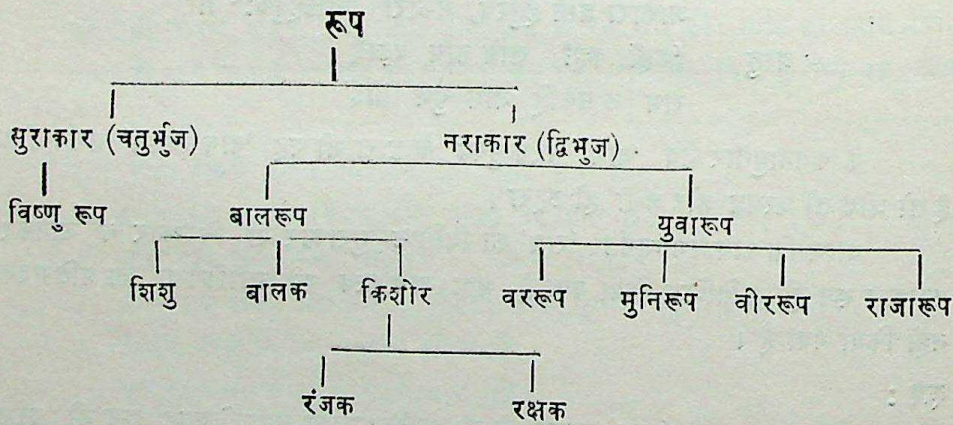
प्रस्तुत आलोच्य विषय आपके साक्षात्विग्रह (नराकार) का ही है परन्तु मानुष-विग्रह धारण करते हुए भी श्रीराम ने मानस तथा अध्यात्म रामायण में अपने 'विष्णु' रूप

१. 'मंगलमूरति नयन निहारी' मा० २।१२४।५।
२. 'सोह मदनु मुनि वेष जनु' मा० २।१३३।
३. 'मनहुं वीर रसु धरे सरीरा' मा० १।२४०।५।
४. (१) 'बन्दौं बाल रूप सोइ रामू' मा० १।१११।३।
(२) बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ॥ मा० १।२२०।

का चतुर्भुज दर्शन भी अधिकारी भक्तों को कराया है। सर्वप्रथम माता कौशल्या ही इस दिव्य सुराकार रूप का साक्षात् दर्शन लाभ कर अपने नेत्र सुफल करती हैं। अध्यात्म रामायण में भी विवेकशीला कौशल्या के अतिरिक्त गौतमाभिशप्ता अहल्या[१] ने भी इसी दिव्य विग्रह का दर्शन लाभ किया है। 'राम' रूप में ही द्विभुज होते हुए भी चतुभुज रूप का दिव्यानन्द प्रदान कर अपनी नीलमणिद्युति को विकीर्ण कर स्वमन्द मुस्कान से उनके हृदय कमल को विकसित किया है। उस रूप से स्वयं आकृष्ट व मुग्ध होकर ही अहल्या ने उस रूप का विश्लेषण 'मायातनुं लोकविमोहनीयां' बताकर समष्टिगत आकर्षण तत्व को जाना।

मानस में अप्रत्यक्ष रूप से सुतीक्ष्ण के मनः पटल पर भी यही चमत्कारिक रूप प्रदान कर अपने सुराकारत्व को प्रदर्शित किया है।[२]

वाल्मीकि रामायण में 'राम' के पुरुषोत्तम स्वरूप का ही चित्रण होंने के कारण इस विष्णुत्व रूप में दर्शन देने का सर्वथा अभाव है।

नराकार

बालरूप—

परम भक्ताग्रगण्य मन्मथनाथ तथा श्री कागराज भुसुंडि जी का परम ध्येय रूप श्री राम का 'बाल रूप' ही है,[३] जो कि कोटि सत काम सदृश लावण्यमय है तथा अजर अमर मुनि लोमश ने कागभुसुंडि जी को परम अधिकारी जानकर ही उस रूप का ध्यान करने का आदेश दिया।[४] उसी 'रूप' का ध्यान जनित आनन्द लाभकर साक्षात् 'राम' के 'प्रानप्रिय'[५] बन गए परन्तु उस बालरूप की शोभा का वर्णन वे स्वयं भी करने में असमर्थ ही रहे[६] जिन्होंने साक्षात् दर्शन लाभ किया फिर अनुमान व कल्पना के सोपान पर आरूढ़ होकर भला उस तक कैसे पहुँचा जा सकता है?

'लावण्य वपुष अगनित अनंग' राम अपने चतुर्विग्रह के सहित ही शोभा निधान रूप में ही प्रकट हुए परन्तु उनका रूप उन चतुर्वपुओं में भी विशेषतम ही था।[७] उन नयना-

---

१. मा० १।१९२।

२. अ० रा० १.५।३७.३९।

३. 'भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥' मा० ३।९।१८।

(१) 'इष्टदेव मम बालक रामा। शोभा वपुष कोटि सत कामा॥' मा० ७।७४।५।

(२) बालत्वेऽपीन्द्र नीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः। बालारूण प्रतीका

अ० रा० ३।३५।७

४. 'रिषि मम महत शीलता देखी। रामचरन विस्वास बिसेषी।

.........'बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना॥' मा ७।११२।४,७।

५. 'सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।' मा० ७।८७।

६. प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥

मा० ७।८७।३।

७. 'चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥' मा० १।१७६॥

भिराम शिशु राम का चित्रोपम नखशिख वर्णन [1]मानस में दिव्य सौन्दर्य जलधि में भावमग्न, रस निमग्न हृदय को निमज्जित कर परम सौख्य पीयूष की उपलब्धि कराता है। मोहासक्ति से परे मुनि गण भी इस दिव्य शिशु लीलामय, बालोचित आभरण तथा वस्त्रयुत स्वरूप को देखकर मोहासक्त हो उस रूप जलज के भ्रमर[2] बनने में ही अपना परम कल्याण मान बैठते हैं।

बालक रूप—

शिशु रूप तथा छात्र के मध्य एक उनके क्रीड़ाशील रूप की भी झांकी 'मानस' तथा अध्यात्म रामायण में अवलोकनीय है जिसे देखकर हमें सूर के क्रीड़ाधिपति कृष्ण की छबि सामने आ जाती है। इसकी मनोहारिता अपना अनोखा रूप लिए हुए है।

किशोर रूप

शिशु राम कुछ बढ़े हुए। अपने क्षत्रियोचित आयुधों को धारण करके राजोचित क्रीडाएं करने लगे। परन्तु इस परिवर्तित वेश भूषा में भी नयन रंजकत्व का अभाव तनिक भी न हो सका। धन्य है वह सौन्दर्य! चेतन को ही नहीं अपितु जड़ भी अपनी जड़ता त्याग उसके वशीकरण से वशीभूत हो उठा[3]। 'ब्रह्मर्षि' पद पाने को लालायित राजर्षि विश्वामित्र भी इस रूप को भर आँखों निहारने के लिए लालायित हो उठे[4] और उस कामना की पूर्ति के समय विदेह होकर चकोर सम निर्निमेष रामचन्द्र मुख चन्द्र हो

---

१. मा० १।१९८।१ से १२ तक।

(अन्तिम पद में पूर्वोक्त की ही भांति यह बाल रूप भी वेदातीत है, वर्णनातीत है, अनुभूति गम्य मात्र ही है। इसी प्रकार 'गीतावली' के प्रारम्भिक ३४ पदों में 'राम' के बाल सौन्दर्य का हृदयहारी वर्णन किया है।

(१) धूसर धूरि भरें तनु आए।'

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरूप।

भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ।

मा० १।२०२।९, १।२०२।

(२) अ० रा० १।३।४६ ५७ तक।

२. करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा।।

मा० १।२०३।७।

३. 'सो प्रभु मैं देखत भरि नयना।'

मा० १।२०५।८।

४. (१) 'राम देखि मुनि देह बिसारी।।' मा० १।२०५।८।

(२) भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा।। मा० १।२०६।५।

(३) 'रामचंद्र मुखचन्द्र सुधा छबि नयन चकोरनि प्याइहौं'

गीतावली ४८।

निहारने में ही इतने तन्मय हो गए[१] कि उनके आगमन के निर्दिष्ट कारण की भी सुधि राजा दशरथ को दिलानी पड़ी। 'अति भीषण राक्षस वृन्दों का वध करना' हेतु सुनकर पुत्र वत्सल राजा दसरथ की दृष्टि भी अपने परम किशोर सुन्दर सुत की ओर निहार कर सहम उठी वात्सल्य वश।[२]

रक्षक रूप

उस रूप में नयनाभिरामत्व[३] के साथ ही उनमें रक्षकत्व वेश[४] का भी हृदय हारित्व निहित है। शृंगार शिरोमणि का रूप वीर शिरोमणि[५] भी हैं जो भव-भय भंजन होने के कारण कल्याण स्वरूपता का भी दिग्दर्शन कराता है। इस रूप का उल्लेख 'वीर रूप' में विशेष होगा।

रंजक रूप

'सौन्दर्य-निधि', 'विश्व-चित-चोर', 'लोचन-सुखद-किशोर' राम लक्ष्मण के सहित विदेहराज नगरी में पहुचे। परम ब्रह्मनिष्ठ विदेहराज इस मधुर मनोहर मूर्ति को देखकर विदेह वस्तुत: हो गए। उनके सौन्दर्यामृत पान[६] कर पुलक गात, लोचन सजल हो गद्गद गिरावान् जनक परिचय पाने के हेतु आतुर हो उठे और राजर्षि को भी उन्हें 'रूप धाम'[७] कहना पड़ा। केवल विदेह राज ही नहीं अपितु उनकी नगरी के समस्त नर नारी[८] भी उनके विश्व विमोहक रूपानन्द की उपलब्धि कर, उमंगित होकर निज नयनों को सुफल[९] करने लगे। कौन ऐसा हृदय हीन होगा जो 'मानस' में वर्णित इस दिव्य झांकी[१०] अथवा

---

१. (१) 'राम देखि मुनि देह बिसारी।।' ।मा० १।२०५।८।
 (२) भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा।। ।मा० १।२०६।५।
 (३) 'रामचंद्र मुखचन्द्र सुधा छबि नयन चकोरनि प्याइहौं' गीतावली ४८।

२. 'कह निसिचर अति घोर कठोरा। कहं सुन्दर सुत परम किसोरा।।
 मा० १।२०७६।

३. मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुन्दरताई।' गीतावली बालकांड ५२।

४. अरून नयन उर बाहु बिसाला। नयन जलज तनु स्याम तमाला।
 कटि पट पीत कसें बर माथा। रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा।। मा० १।२०८।१, २।

५. 'पुरुष सिंह दोउ बीर सरषि चले मुनि भय हरन।' मा० १।२०८।

६. सहज विराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।।' मा० १।२१५।३।

७. 'रामु लखनु दोउ बंधुवर रूप सील बल धाम।' मा० १।२११६।

८. (१) देखन नगरू भूपसुत आए। समाचार पुरवासिन्ह पाए।।
 धाए काम सब त्यागी। मनहुं रंक निधि लूटन लगी।। मा० १।२१९।१, २।
 (२) बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संगलोचन मनु लोभा ।। मा० १।२१८।१।
 (३) जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागी।। मा० १।२१९।४।
 (४) जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नारी।।मा० १।२२८।५।

९. निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।। मा० १।२१९।३।

१०. मा० १।२१८।३ से १।२१९ तक

नखशिख वर्णन को मानस चक्षु से पढ़कर विमुग्ध न हो फिर उन पुर नर नारियों के नेत्र सुफल करने के लिए रूपतत्वानुरागी विश्वामित्र ने[1] उन्हें पुर भ्रमणार्थ भेजा। 'कल कंज विलोचन' स्याम गात रूप निरखते ही कितनी दिव्य आलोचना वे रूप माधुरी पान करने वाली नारियां कर लगीं। सौन्दर्य शिरोमणि देव भी रामरूप पर न्यौछावर[2] होने लगे

वर रूप

पूर्वानुराग जनयिता	विवाह पूर्व	विवाह के समय

पूर्वानुराग जनयिता रूप

विश्व विमोहक रूप से जनकपुरी के यावत् नर नारि मंत्रमुग्धवत् वशीकृत[3] होकर उस हृदयाकर्षिका छवि का गान करने में तन्मय हो गए।[4] उस श्रवणगत रूप से ही विश्व-मोहिनी आकृष्ट होकर उसको नयन गत करने को व्याकुल हो उठीं। उनकी आतुरता, दर्शनाभिलाषा सफल हुई उन नयनाभिराम के दर्शन लता ओट से प्राप्त कर उस रूप चन्द्र माधुरी के दिव्यानन्द अनुभव करने के हेतु चकोरी[5] बनने में ही अपना परम लाभ समझ कर उस दिव्य, मृदुल, शोभा शिरोमणि रूप के नख शिख सौंदर्य[6] का दशन करने लगा। उस 'रूप' जलधि में निमज्जित होकर विदेहराज तनया की अभिन्नहृदया सखियाँ भी विदेह हो उठीं। स्वयं जनकजा भी 'राम' के नख शिख सौंदर्य को देख उसे पाने के लिए आतुर हो उठीं तथा कृपण धन की भाँति उसे हृदय में ही धारण करते बन पड़ा।[7]

विवाह पूर्व स्वयम्वर के समय

'धनुषयज्ञ' की रंगभूमि में उपस्थित 'राम' ने असंभाव्य रूप वैचित्र्य द्वारा सबको उनकी भावनानुकूल दर्शन कराकर भी अपने 'नयनाभिरामत्व' रूप को ही प्रतिष्ठित रक्खा। साक्षात् शृंगार के प्रतीक बन कर विश्व विमोहक हो गए।[8] गोस्वामी जी की रूप रस रसिक लेखनी पुनः राज समाज को उनका नख शिख सौंदर्य पान करते देख न रुक सकी, अपनी अंतर्निहित वर्णना शक्ति को संयमित न कर सकी।[9] रूप गुन खानि सीता के ही

---

१. करहु सुफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ। मा० १।२१९।
२. सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुं सुनिअति नाहीं॥
 बय किसोर सुषमा स्याम गौर सुखधाम।
 अंग अंग पर वारिअहि कोटि सत काम॥ मा० १२२०।
३. जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी। मा० १।२२८।५।
४. बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखि अहिं देखन जोगू॥ मा० १।२२८।६।
५. 'सरद ससिहि जनु चितव चकोरी' मा० १।२३१।६।
६. मा० १।२३२।१ से १।२३३।
७. 'चली राखि उर स्यामल मूरति मा० १।२३४।१।
८. सुन्दर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर' मा० १।२४२।
९. मा० १।२४२।१ से २४३।१।

समक्ष राम के अनुपम लावण्य को देख सभी का यह निश्चय हो गया कि 'बर साँवरो जानकी जोगू।' उस युगुल छवि का सौन्दर्य निर्निमेष होकर जनकपुरवासी पान करने में तन्मय हो गए। इतना ही नहीं विशिष्ट उच्च अध्यात्मनिष्ठ वर्ग भी उनकी आकर्षण शक्ति से अछूता न रह सका। यज्ञों के अधिष्ठाता राजर्षि विश्वामित्र,[1] को भी 'राम रूप' की सराहना करनी पड़ी तथा भृगु-कुल-कमल-पतंग, प्रचंड तेजस्वी जामदग्नि[2] भी उस रूप जलधि में निमज्जित होकर उमगित होते ही बन पड़ा। उनके सौकुमार्य, स्निग्ध शीतल मन भाविनी छवि ज्योत्स्ना के कारण सभी ने उनको नयनरंजक 'शशि' रूप में दर्शन कर नेत्र सुफल किए।[3]

विवाह के समय

देव विमोहक रूप का दर्शन करने ब्रह्मलोक से ब्रह्मा, इन्द्रलोक से 'इन्द्र',-शिव लोक से भगवान् शंकर, विष्णु लोक से त्रिदेवगत विष्णु अति अनुराग वश चल पड़े और अपने अपने नेत्रों की प्रशंसा करने लगे जिनके माध्यम से उस 'मरकत' मणि सम रूप का दर्शन लाभ किया। देवगण भी सौन्दर्य कलानिधि रूप द्वारा विमोहित हो गए।[4]

कर्पूर गौर शम्भु उस नख शिख सुषमा को निहारते ही प्रेमावेश वश रोमांचित व सजल नयन हो उठे। धन्य है उस अप्रतिम सौन्दर्य को जिसने अनंगारि को भी विमोहित कर मंत्रमुग्ध सा कर लिया।[5]

सूर विमोहक रूप विवाहोचित आभरणों द्वारा सन्ध्याकालीन नक्षत्रयुक्त आकाश में 'चन्द्र' की भाँति जगमगा उठा, उस दिव्य वपु की मनोहारिणी आभा दीपयुत नीलमणि सदृश दिव्य प्रकाश किरन विकीर्ण कर उठी और छवि रस लोभी मधुकर तुलसी नख शिख पराग का पान करने में पुनः अनुरक्त हो गए।[6]

---

१. कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥ मा० १।२६१।२।

२. रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥ । मा० १।२६८।८।

३. (१) रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरक जैसे। मा० १।२६२।७।
   (२) सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥ मा० १।२६४।७।
   (३) राम रूप राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥ मा० १।२६१।३।
   (४) रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
   करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥ मा० १।३२१।

४. (१) 'संकरु राम रूप अनुरागे' मा० १।३१६।२।
   (२) 'हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥' मा० १।३१६।३।
   (३) 'निरखि राम छबि बिधि हरषाने।' मा० १।३१६।४।
   (४) 'मुदित देवगन रामहि देखी।' मा० १।३१६।८।

५. राम रूपु नख सिख सुभग बारहि बार निहारि।
   पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥' मा० १।३१५।

६. मा० १।३२६।१, १०।

जनकपुरवासी अपने 'दूल्हाराम' को नयन भर निहारने को ही अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। इतना ही नहीं वह रूप उनका प्राण सा ही बन जाता है।[१] जानकी जननी सुनयना, जिन्होंने सर्वप्रथम 'बाल मराल' सम राम के सौकुमार्य का अनुभव किया था वही रूप-सिंधु को देखकर स्नेह-शैथिल्य अनुभव करती हैं जो दशा वस्तुत: अनुभूतिगम्य तथा वर्णनातीत है।

जनकपुरी में राम का 'रूप' अनुकूल परिस्थिति, वय, साधन पाकर अपनी चरमतम अवस्था को प्राप्त हुआ तथैव उसका वर्णन भी, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्यत्र उसमें न्यूनता के दर्शन होते हैं। अवधपुरी में राजमाताएँ आकुल उत्कंठा से दूल्हाराम को निहारने के लिए आतुर हो रही हैं और वह दिव्य रूप निरखने में ही परमानन्द मगन होकर अपने जीवन को पूर्ण काम आप्तकाम मानती हैं।[२]

जनकपुरवासी की भाँति अवधपुरवासी भी[३] उस रूप सुधा माधुरी के शीतलत्व, कल्याणतत्व, रंजकत्व का अनुभव करते हैं।[४] गोस्वामी जी की रूप रसिकता तथा राम के अप्रतिम सौन्दर्य दोनों ने मानस के प्रत्येक पात्र[५] को उससे पूर्णतया अभिभूत दिखाकर उससे आकर्षित, उसमें निमग्न दिखाकर उसी में पूर्णत: अनुरक्त रखने में ही अपना परम लाभ माना।

रामायण में राम का रूप चित्रण

महर्षि वाल्मीकि जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के तेजस्वी स्वरूप का ही विशेष वर्णन किया है। उन्हें एक आदर्श मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। अत: आपने उनके सद्गुणों का ही व्यापक चित्रण किया है जिनका आभ्यंतरिक महत्व विशेष है। आपने 'राम' के वाह्य सौन्दर्य का विशद चित्रण 'तुलसी' की भाँति नहीं किया क्योंकि दोनों के दृष्टिकोणों में नितान्त भिन्नता तथा परिस्थिति सापेक्षता थी। 'तुलसी' का वाह्य सौन्दर्य निरूपण परमावश्यकीय था। निराश्रित जनता को लोकरंजक आश्रय व आलम्बन प्रदान करने के हेतु भक्त तुलसी का भगवान् राम के अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना अनिवार्य था क्योंकि वह भक्ति का

---

१. 'निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू ।। मा० १।३३४।७।
२. 'मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह सिथिल सब रानी ।।' मा० १।३३६।५।
   (१) 'पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी ।।'
   मा० १।३४८।४।
   (२) 'एकटक रही रूप अनुरागी' मा० १।३४८।२।
   (३) 'आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा ।।'
   मा० १।३५६।७।
३. 'देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी ।।' मा० १।३५८।२।
४. 'निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे' मा० १।३५८।४।
५. 'मगन भए हरि रूप निहारी' मा० ६।३।८।

प्रेरक था । परन्तु हम यह भी नहीं कह सकते कि महाकवि वाल्मीकि जी ने इस वाह्य पक्ष को अछूता ही रक्खा । आपने भी स्थान स्थान पर शारीरिक सौन्दर्य का भी अवलोकन किया है जिसमें विशेषतः वीरता द्योतित होती है । महर्षि नारद से सूत्र रूप में प्राप्त राम चरित्र के अन्तर्गत वाल्मीकि जी का यह भी प्रश्न होता है 'कश्चैकप्रियदर्शनः' । देखने में सबसे सुन्दर कौन है ? सकल तत्वज्ञ नारद उसका उत्तर देते हुए शारीरिक सौन्दर्य का प्रभावोत्पादक वर्णन करते हैं ।[1] 'तुलसी' के 'चन्द्र' वत् राम को वाल्मीकि जी ने भी 'सोमवत्प्रियदर्शनः' वर्णित किया है ।[2] दशरथ जी राम को 'राजीवलोचनः' कह कर विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ देने में संकोच करते हैं । 'जनक' जी भी राम के असाधारण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनका परिचय पाने की जिज्ञासा प्रकट करते हैं तथा राम के देवोपम सौन्दर्य एवं पूर्ण स्वस्थ शरीर के गुणों का वर्णन करते हैं ।[3]

अयोध्याकांड में 'राम' के अपरिमित गुणों का वर्णन करते समय वाल्मीकि जी सर्वप्रथम गुण 'रूपवान्' तथा 'राममिन्दीवरश्यामं' का भी उल्लेख करते हैं ।

आदि कवि ने 'बाल' तथा 'युवा' रूप का विशद वर्णन न कर 'राम' को निखिल गुण सम्पन्न सिद्ध कर आदर्श पुरुषोत्तम रूप प्रदर्शित किया है । अलौकिक स्वरूप नहीं । 'तुलसी' ने उन्हें इसके साथ साथ भक्तवत्सल, जन मन रंजन भगवान् भी । अतः उनके दृष्टिकोणों की विभिन्नता के कारण दोनों के 'रूप' वर्णन में नितान्त विभिन्नता तथा सूक्ष्म-दृष्टि से देखने में समरूपता का ही प्रतिपादन होता है । 'तुलसी' में राम' 'रूप' वर्णन का क्षेत्र वृहद् तथा वाल्मीकि में इसकी अपेक्षाकृत न्यून है ।

'मुनि' रूप

'राम' वन गमनान्तर हमें 'राम' के मुनि वेष का दर्शन होता है । जीवन की कठिन-

---

१. इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । ...'श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः'
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ।
महोरस्को महेस्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्शुभलक्षणः ॥ वा० रा० १।१।९—११।

२. (१) तेन विभ्राजता तत्र सा समायिव्यरोचत ।
विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥ वा० रा० २।३।३७।
(२) 'उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा ।' वा० रा० ३।१६।१०।

३. इमौ कुमारौ....देवतुल्य पराक्रमौ ॥
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ । पद्मपत्रविशालाक्षौ खंगतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ । यदृच्छयेवगांप्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ॥
............भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याबिम्बाबरम् ।
काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥ वा० रा० १।५०।१७ २२।

तम विषम परिस्थिति में भी उनके नयन रंजक 'रूप' में कोई परिवर्तन नहीं। यह 'रूप' ग्रीष्म में म्लान हो जाने वाले सुमनों का सा न होकर 'सदा बहार' कुसुम की नाईं पूर्ववत् ही रहता है। कंटकाकीर्ण पथ पर चल कर भी कोमल पग वाले राम का सौन्दर्य निर्भ्रांत् अविछिन्न गति से प्रवाहित होता है। उसमें कटुता का लेशमात्र भी नहीं, विषमता का कण भी नहीं, दुरूह परिस्थिति की झलक तक नहीं दृष्टिगत होती। पूर्वोल्लिखित की ही भाँति वन वासी भी रामचन्द्र के मुख चन्द्र को चकोर की ही भाँति निरख रहे हैं।[1] साधारण वन्य जन क्यों न उस रूप पर आकर्षित हों जब कि उस मुनि वेष पर कोटि कामदेव भी विमोहित हो जाते हैं।[2] मुख चन्द्र निस्सृत अमृत रूप भी वही है जिसका पान वन ताप बुभुक्ष प्राणी की भाँति करके अमरत्व लाभ करता है।[3] अवधपुरी के नर नारियों की ही भाँति 'जनु मुनि वेष कीन्ह रति कामा' 'राम' सीता सहित वन के बाल वृद्ध नर नारियों के नेत्रों को सुफल कर भाव-विभोर कर रहे हैं।[4] भोले ग्रामीण ही नहीं उस अदृष्टपूर्व या अश्रुतपूर्व छवि निरख कर आत्म विभोर हो जाते हैं अपितु समाज का उच्च मान्य वर्ग मुनि गण, ऋषि वृन्द भी उस स्निग्ध शीतल कान्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते।[5] महामुनि अत्रि राम को निहारते ही चकोरवत् रूप सुधा का पान कर उस आनन्द को स्तुति रूप में प्रकट करते हैं।[6] भक्तराज सुतीक्ष्ण घनश्याम 'राम' को देखते ही दंड प्रणाम कर रूपानुभव आनन्द लहरी को प्रवाहित करने लगते हैं।[7] महर्षि अगस्त्य गद्गद कंठ व

---

१. मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चंद चकोरा॥
जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥
स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥ मा० २।११४।४,५, २।११५, २।११६।

२. तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥
कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुख कहहु को आहिं तुम्हारे॥ मा० २।११४।६, २।११६।१।

३. पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूषा॥ मा० २।११०।६।

४. राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥ मा० २।११३।४,५,८।

५. 'देखि राम छबि नयन जुड़ाने'
प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि॥ मा० ३।२।७, ३।३।

६. 'निकाम स्याम सुन्दरं', प्रफुल्ल कंज लोचनं, प्रलंब बाहु विक्रमं, निषंग चाप सायकं।
धरं त्रिलोक नायकं, अनूप रूप भूपतिं। ...... इत्यादि मा० ३।३।३ से ६, २१।

७. श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं।
अरुण नयन राजीव सुवेशं।
नौमि राम उर बाहु विशालं॥ .... आदि मा० ३।१०।३,४,७,८।

सजल नयन होकर उस रूप को निहारने लगते हैं। कहाँ तक उस विश्व विमोहक का वर्णन किया जाय गोस्वामी जी ने समस्त मुनि गणों को 'चकोर'[1] बनाकर रूप चन्द्रिका से चर्चित व प्रभावित दर्शाकर प्रभु की लावण्य निधिता का वर्णन किया है। मुनि वर्ग की रूपानुभूति का उल्लेख श्री वाल्मीकि जी ने भी किया है।[2] अध्यात्म रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भी उनके शोभातत्व का पूर्ण दर्शन प्राप्त किया है[3] तथा अपने त्रिलोक में राम को 'सर्व सुन्दरत्व' की ही प्रतीति की।

सात्विकगुण समन्वित उच्चवर्ग या सामान्य ग्रामीण वर्ग के अतिरिक्त 'मानस' के अन्य वर्ग के पात्रों पर भी इस रूप का सम्यक प्रभाव हुआ। तमोगुण प्रधान रिपु भगिनी राक्षसी शूर्पणखा भी उसी रूप पर आसक्त हो उठी और उसने त्रिलोक में 'तुम्ह सम पुरुष न' की उपाधि भी 'राम' को दे डाली। अध्यात्म रामायण में तो केवल राम के पद चिन्हों के दिव्य लक्षणों[4] को ही देख वह मोह पथ पर आगे बढ़ी और फिर 'रामो राजीवलोचन:' को 'धनुर्बाणधर: श्रीमान् जटावल्कलमंडित:' देखते ही आत्मसमर्पण करने को प्रस्तुत होकर स्वनिवेदन करती है।

वाल्मीकि रामायण में भी शूर्पणखा का राम निरीक्षण व रूप विमोह वर्णित हुआ है। वह रूप परम तेजस्वी व देवोपम सौन्दर्ययुक्त है।[5] अपने भाई रावण से जाकर, प्रतिहिंसा से प्रेरित होने पर भी वह 'दीर्घ बाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बर:' तथा 'कंदर्पसमरूप:' ही वर्णन करती है। केवल यही नहीं असुर वर्ग में, खर दूषण,[6]

---

१. मुनि समूह महं बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥ मा० ३।१२।

२. रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वन वासिन:
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव॥ वा० रा० ३।१।१३, १०।

३. दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम्॥
जानकी लक्ष्मणोपेतं जटामुकुट मंडितम्।
कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजे क्षणम्॥ अ० रा० २।६।४५, ४६।

४. पद्मवज्रांकुशांकानि पदानि जगतीपते:॥
दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पाद सौन्दर्यमोहिता।
कन्दर्पसदृशं रामं दृष्टवा कामविमोहिता॥ अ० रा० ३।५। २४।

५. राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम्
सिंहोरस्कं महाबाहुं पद्मपत्र निभेक्षणम्। आजानुबाहुं दीप्तास्यमतीव प्रियदर्शनम्।
गजविक्रान्त गमनं जटामंडलधारिणम्। सुकुमारं महासत्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम्।
राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम्। बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता।
वा० रा० ३।१७।६,९।

६. नाग असुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहि अस सुन्दरताई॥
.... बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥ मा० ३।१८।३,४,५।

कालनेमि,[1] मारीच,[2] कुम्भकर्ण[3] आदि ने भी उस 'रूप' की सराहना की है तथा उससे पूर्णतया प्रभावित व अनुरक्त भी हुए हैं। 'खर' 'दूषन' तो उन्हें 'देखी नहि असि सुन्दरताई' कह कर उनमें सौन्दर्य की सीमा ही निश्चित कर देते हैं।

अध्यात्म रामायण में तो कालनेमि इतना अधिक रूपासक्त हो गया है कि उस मंजुल छवि का ध्यान करने का ही उपदेश देने लग जाता है।[4] वाल्मीकि रामायण में मारीच उस हृदयाकर्षक रूप की स्मृति सदा रखता है।[5]

असुर वर्ग ही नहीं अपितु अन्य योनियाँ भी तथैव उस पर आसक्त होती हैं। 'कुन्देदीवरसुन्दर' राम लखन को देखते ही उनके सौकुमार्य को निहार कर हनुमान 'को तुम' की जिज्ञासा व आतुरता व्यक्त करने के साथ ही अपनी प्रवणशीलता का का परिचय देते हैं।

'मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसहु बन आतप बाता।।'

उस रूचिर वेष को निरखते ही वे आत्म विभोर हो उठे, आनन्द मग्न हो गए, दंडवत् चरणों पर लोटते ही बन पड़ा।

वाल्मीकि रामायण में हनुमान श्री जानकी जी से 'वरवर्णिन्' राम के रूप का परिचय देते हुए कहते हैं:—

'राम: कमलपत्राक्ष: पूर्ण चन्द्र निभानन:,
रूपदाक्षिण्य संपन्न:, स्निग्धवर्ण:,

समश्च सुविभक्तांगो वर्ण श्यामं समाश्रित:।'

कपि योनि ही नहीं खग योनि के गृध्र राज जटायु 'राम छवि—धाम' को निहारते ही अपनी मर्मान्तिक पीड़ा तक को विस्मृति कर देने में समर्थ हो जाते हैं। अध्यात्म रामायण में 'जटायु' उस 'त्रिभुवनकमनीयत्व' का भी प्रतिपादन करते हैं।[6] उत्तम, मध्यम, अधम, पशु, पक्षी सभी वर्ग तो उस नयन रंजकत्व से रंजित हैं हीं परन्तु एक विशिष्टतम वर्ग

---

१. नील कंज तनु सुन्दर स्यामा हृदयं राखु लोचनाभिरामा।।
मा० ६।५५।६।

२. 'निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।' मा० ३।२५।छंद।

३. 'स्यामगात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन।।
राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक। मा० ६।६२।८, ६।६३।

४. अ० रा० ६।६।५८-६०।

५. अजातव्यंजन: श्रीमान् पद्मपत्र निभेक्षण:। काकपक्षधरोधन्वी शिखि कनकमालया।।
शोभयन् दंडकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा। अदृश्यत् ततो रामो बालचन्द्र इवोदित:।।
वा० रा० ६।३२।१५,१६।

६. त्रिभुवन कमनीयरूपमीयं रविशतभासुरनीहितप्रदानम्।
'स्मितरूचिरविकसिताननाब्जमतिसुलभ सुंरराजनीलम्
सितजलरुह चारु नेत्र शोभां'
रतिपतिशतकोटि सुन्दर गं अ० रा० ३।८।४६, ५१, ५३।

भी है जिसके लिए तो यह रूप 'प्राण'[१] सम ही हैं वह है उसका भक्त वर्ग। भक्ताग्रगण्य भरत विरहावस्था में उसी रूप दर्शन के निमित्त १४ वर्ष का दुष्कर तप करते हुए पुलक गात होकर 'हिय रघुबीरू' का ही प्रतिक्षण ध्यान करने में निरत रहते हैं। अभिन्नरूपा श्री जानकी जी अपहृतावस्था में उसी 'छवि' का निरन्तर ध्यान करती हैं।[२] तिरस्कृतावस्था में शरणागत भक्त शिरोमणि विभीषण आकुल हो पद कमल का ध्यान करते करते रूप की दीप्तिशिखा में आत्म निवेदन कर ज्योतिर्मय बन जाते हैं। उन्होंने किस रूप का दर्शन कैसे किया यह मनमोहक शब्द चित्र[३] हृदयहीन को भी सहृदय बनाए बिना नहीं रहता।

मानव वर्ग ही स्वयं नहीं उपमान स्वरूप देव वर्ग भी उस राम रूप के सन्मुख नत होकर उसकी सराहना व दर्शन में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं।[४] भगवान् कामारि उन्हें 'गुण मंदिर सुन्दर', देवराज इन्द्र 'सोभा धाम', जगत सृष्टा ब्रह्मा 'तन काम अनेक अनूप छबी,' 'सुन्दर' 'छबि धाम' आदि उत्तरोत्तर विशेषणों द्वारा राम सौन्दर्यानुभूति का प्रकटीकरण कहते हैं। अध्यात्म रामावण में भी देवों ने 'रूप' वर्णन सरस पदावलियों में किया है।[५]

राम रूप के 'सौकुमार्य' एवं प्रभावोत्पादकत्व का वर्णन कहाँ तक किया जाय जो

---

१. तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जौ रघुबीर न ऐहौ।
तो प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ।।
भरत राम का हृदय मे ध्यान तो सदा ही किया करते थे साक्षात् रूप दर्शन की ही आतुरता यहां पर व्यक्त है।
गीतावली। अयो० कांड ७५।

२. 'स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम'
कह कर रावण से राम की भुजा शक्ति व सौन्दर्य का वर्णन सीताजी करती हैं तथा
कबहुं नयन मम सीतल ताता।
होइहैं निरखि स्याम मम मृदु गाता।।
की आतुर कामना करती हैं। मा० ५।९।३, ५।१३।६।

३. नयनानन्द दान के दाता।
बहुरि राम छवि धाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पलरोकी।।
भुज प्रलंब कंजारून लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।
नयन नीर पुलकित अति गाता।' मा० ५।४४।२ से ६।

४. अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथवादी।।
भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी।।
मा० ६।१०४।२, ३।

५. (१) ब्रह्मा—'वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम्।' अ० रा० ६।१३।१५।
(२) इन्द्र—'शरच्चन्द्र वक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं' अ० रा० ६।१३।३०।

कि जड़ तत्वों में जलचर,[१] थलचर,[२] नभचर,[३] सब को समान रूप से वशीकृत कर 'विश्व-विमोहक' बन जाता है। नील सरोरुह, सरसिज-लोचन, नीलमणि, लावण्य-निधि राम सौन्दर्य-शिरोमणि भी हैं साथ ही उस सत्य रूप में 'शिवता' का भी समावेश होने के कारण वे जन मन रंजन,[४] भक्त भय भंजन दोनों ही हैं जिसकी प्रतीति सभी उपर्युक्त दर्शकों ने इसी भाँति की।

'मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥'[५]

वीर रूप

सत्य पराक्रम 'राम' त्याग वीर, दयावीर, विद्यावीर, महावीर, धर्मवीरादि धाराओं को अपने में प्रवाहित करते हुए 'रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः' हैं। श्रीयुत् रामचन्द्र जी शुक्ल का कथन है:—

भगवान् का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के सम्मुख रखा है, भक्ति का जो प्रकृत आलंबन उन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिन पर हृदय क्रमशः टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है।'[६]

उपर्युक्त सोपानों में से सौन्दर्य तत्व का यथा सम्भव निरूपण पूर्व वर्णित रूपों में यथा सम्भव किया जा चुका है। प्रस्तुत विषय में उनकी वीर मुद्रा की परम तेजस्विनी झाँकी का ही अवलोकन वांछित है। वीर कर्म का निरीक्षण 'लीला' तत्व के अन्तर्गत ही आगे किया जायगा। मुनि भय हरण, भूभार हरणकर्त्ता, भव भय भंजन, दुष्ट निकन्दन, अरि दल गंजन, 'गो ब्राह्मण हिताय' राम का रूप वीर शिरोमणि होना ही अपेक्षित भी है। पुरुषसिंह राम के इस 'रूप' की एक झलक उनके किशोर रूप के रक्षक रूप में हम देख चुके हैं। उसी रूप का दर्शन रणधीरों ने स्वयम्बर भूमि में भी प्राप्त कर उन्हें 'वीर रस' का साक्षात् प्रतीक ही माना और उसी वीररूप में प्रचंडतम शक्ति रूप का दर्शन कुटिल नृपों ने तथा दुष्ट विमर्दन रूप का दर्शन असुरों ने किया।[७]

---

१. देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृन्दा ॥
मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला ॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे ॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥ मा० ६।३।४,५,७,८।

२. फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृन्द बिसेखी ॥ मा० २।१३७।२।

३. धन्य बिहँग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥ मा० २।१३५।२।

४. स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥ मा० ३।३३।८।

५. मा० २।२८।४।

६. गोस्वामी तुलसीदास पृ० ४६।

७. देखहिं रूप महारनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥ मा० १।२४०।४७।

'सौन्दर्य सिन्धु' राम 'शक्ति सिन्धु' भी हैं और यही नहीं उनका अंग प्रत्यंग भी तथैव है। इसीलिए गोस्वामी जी ने उस अलौकिक शक्ति का दिग्दर्शन उनकी आजानुभुजाओं में कराया[१] जिसकी सीमा अनुलंघनीय है।

रामायण में जनक भी इस स्थल पर राम के पराक्रमी रूप को अचिंत्य व विलक्षण वर्णित कर उसकी सराहना करते हैं।[२] राज मान मर्दन कर्त्ता जामदग्नि भी राम के अद्भुत पराक्रम की सराहना कर उसके रूप दर्शन की लालसा को पूर्ण किए बिना न रह सके[३] और स्वयं भी उनके अनुभूत तेज से पराजित होकर स्वयं जड़वत् हो गए।[४] इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन करने वाले परशुराम जिस तेज से पराभूत हो गए उसका 'तेज रूप' कितना दिव्य व अप्रतिम होगा।

'मानस' से भी अधिक वीर रूप की प्रतिष्ठा वाल्मीकि रामायण में आद्योपान्त की गई है। उसका प्रथम पृष्ठ खोलते ही हम नारद द्वारा वर्णित दिव्य गुण रश्मियों के मध्य तेजस्वी भानु रूप का दर्शन पा[५] उस दिव्य कान्तिमय रूप से अभिभूत हो चमत्कृत हो उठते हैं। स्वयं वाल्मीकि जी ने भी उनके गुणों की एक झड़ी लगा दी है जिसमें 'वीर' 'तेज' की कान्ति स्थिर तड़ितवत् नेत्रों को चकाचौंध कर देती है।[६] राजा दशरथ की सभा में

---

१. राम बाहु बल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥ मा० २।२५९।८।

२. 'भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अर्तकितमिदं मया॥' वा० रा० १।६७।२१।

३. राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेद्भुतम्। वा० रा० १।७५।१।

४. (१) तेजोभिर्गत वीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः।' वा० रा० १।७६।१२।
(२) मानस में भी परशुराम ने उनके अलौकिक तेजरूप व उसकी शक्ति का वर्णन करते हुए ही स्तुति की है तथा उनके वीर रूप की प्रतिष्ठा की है :—
'जय रघुबंस बनज बन भानू।
गहन दनुज कुल दहन कृसानू।' मा० १।२८४।१।

५. इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान्वशी॥
विष्णुसदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
........तमेव गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥ वा० रा० १।१।८,१८,१९।

६. तेषामपि महातेजा रामो....॥
कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा।
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना॥ स हि वीर्योपपन्नः।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेनविस्मितः॥
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः॥
अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः।
अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी॥ वीर्येणापि शचीपतेः॥
तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तैः सूर्यइवांशुभिः॥
तमेवं वृत्तसंपन्नमप्रधृष्यपराक्रमम्।
लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी॥
वा० रा० २।१।४,८,९,१३,२९,३०,३१,३३,३४।

उपस्थित प्रजावर्ग, ब्राह्मणवर्ग, राजा वर्ग सभी एक स्वर से राम के अलौकिक 'वीर' रूप की सराहना अनेक गुणोल्लेख द्वारा करते हैं। एक मत होकर राजोचित वीर' रूप का दर्शन 'राम' रूप में कर 'राम' को राजा बनाने की स्वीकृति एक मत होकर प्रदान करते हैं तथा वे सब उस अलंकृत वीर वेष को देखने की लालसा भी आतुरतावश प्रकट भी करते हैं :

इच्छामो हि महा बाहुं रघुवीरं महाबलम्
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥[1]

'हम भी चाहते हैं कि महाबाहु, रघुवीर और अमित बलशाली राम को हाथी पर सवार होकर धवल छत्र की छाया में बैठे देखें क्योंकि वे रामो लोकाभि रामोऽयं शौर्य-वीर्यपराक्रमैः ....'आदि' लोकाभिराम राम शौर्य (युद्ध में निर्भय भाव से लड़ने), वीर्य (स्वयं विकार रहित रहते हुए औरों के विकार दूर करने) पराक्रम (युद्ध में शीघ्रता के साथ लड़ने) में निपुण हैं।'

यद्यपि उनके वीर रूप का चित्रण करते समय उनके वीर कर्मों का उल्लेख विषय से परे है परन्तु पृष्ठभूमि के रूप में यह अनिवार्य है क्योंकि बिना इन वीरोचित गुणों के आभास के वीर रूप का दर्शन अपूर्ण रह जायगा।

राम के शौर्य, वीर्य तथा पराक्रम युक्त वीर वेष के दर्शन हम युद्धस्थलों में पूर्ण-रूपेण पाते हैं। इस 'रूप' को 'मानस' से कहीं अधिक विशदव्यापक 'रूप' में वाल्मीकि की कुशल लेखिनी ने चित्रित किया है। इसका कारण श्रीराम रतन भटनागर जी लिखते हैं :

'उनके राम खलमर्दन, द्विजनिर्भयकारी रावणारि अवश्य थे, परन्तु अवतार के नाते, वीर पुरुष मात्र के नाते नहीं। वाल्मीकि में यह बात नहीं है। वहाँ सीताहरण के बाद का युद्ध प्रसंग वीर नायक की हुंकार है, उसकी चेतना का गर्जन है। (तुलसी के) राम केवल वीर नायक नहीं रह जाते।'[2]

वाल्मीकि के राम के इस स्वरूप के दर्शन हमें स्थल स्थल पर होते हैं। शूर्पणखा के साथ आते हुए राक्षसों को देखकर स्वपौरुषज्ञाता राम एकाकी ही अपने सुवर्ण विभूषित धनुष को अलंकृत कर चल दिये।[3] परमनिर्भीकता धारण कर अपना शौर्य प्रदर्शन तथा उन चौदहों शूलधारी राक्षसों के एक साथ आक्रमण कर देने पर दुर्जय राम ने अपने कंचन विभूषित बाणों से उन शूलों को काटकर तथा १४ वाणों को एक साथ धनुष पर चढ़ाकर लक्ष्य कर सबको तत्परता से मार कर अपने अतुल पराक्रमी रूप का प्रदर्शन किया।[4] तथा उनके विकारों को दूर करने का निमित्त बतलाकर स्वयं निर्विकार रहकर अपने 'वीर्य' का प्राकट्य किया।[5]

---

१. वा० रा० २।२।२२।
२. तुलसीदास—एक अध्ययन, पृष्ठ २९,३०।
३. राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम्। चकार सज्यं' वा० रा० ३.२०.६।
४. वा० रा० ३।२०।१८-२१
५. युष्मान् पापात्मकान् हन्तुं विप्रकारान् महाहवे।
ऋषीणां तु नियोगेन प्राप्तोऽहं सशरायुधः॥ वा० रा० ३।२०।९।

परमतेजस्वी, राम के बाण, धनुष, अस्त्र शस्त्र सभी तेजस्वी थे। उपर्युक्त 'रूप' के ही समान देव, गन्धर्व, चारणादि द्वारा अवलोकित 'खर' को मारने के लिए राम का क्रुद्ध रूप भी परम तेजस्वी था।[1] उस तेज को देवता तक न सहन कर सके। उस समय वे साक्षात् प्रलयंकारी 'शिव' सम प्रचंड ज्योतियुक्त हो गए। 'राम' के प्रचंड पराक्रमी, विशिष्ट तत्पर रूप का दर्शन हमें समस्त २५वें सर्ग में होता है जब राम 'खर' की सेना पर, प्रतिक्षण असंख्य बाणों का संधान करते हैं और यह क्रिया इतनी तत्परता से होती है कि मायावी राक्षस तक यह नहीं जान पाते कि राम कब बाण निकालते व चढ़ाते हैं। इससे भी अधिक प्रचंडता का दर्शन हमें तब होता है जब राम खर का संहार करते हैं। उनकी मुद्रा अत्यन्त कुपित हो जाती है सभी अनुभव रौद्र रूप धारण कर लेते हैं। वीरता का चरमतम उत्कर्ष इस मुद्रा में अवलोकनीय है जब कि ....

'रामः प्रतापवान्। रोषमहारयत्तीव्रं निहंतुं समरे खरम्।
जातस्वेदस्ततो रामो रोषाद्रक्तान्तलोचनः।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम्॥'

अर्थ—'प्रतापी राम ने युद्ध में खर का वध करने के लिए प्रबलतम कोप किया। इससे उनके शरीर पर पसीना छहर आया, मारे क्रोध के नेत्रों के प्रान्त भाग लाल हो गए और एक साथ हजारों बाण बरसाकर उन्होंने खर को छेद डाला।'[2]

यह है पराक्रमी राम का रौद्र रूप।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस रूप की रौद्रता का वर्णन किया है[3] जिसे देखकर हम उस प्रचड शक्ति के आवेग का अनुभव उस मात्रा में नहीं कर पाते जैसा वाल्मीकि जी के वीर रूप को देखकर होता है क्योंकि गोस्वामी जी के राम के वीर रूप के साथ ईश्वरत्व तथा अलौकिक चमत्कार कर्ता भगवान् का रूप अपनी झलक विशेष रूपेण दर्शाता है जिससे कि उस 'वीरता' में ईश्वरता का ही आभास होने लगता है तथा उसकी न्यूनता हो जाती है। खर, दूषन वध के प्रसंग में 'कौतुक' का समावेश कर देने से वीरता का अंश कम अपितु

---

१. स तेनाग्निनिकाशेनकवचेन विभूषितः । बभूवरामस्तिमिरेविधूमोऽग्निरिवोत्थितः॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्। वभूवावस्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः।
दुष्प्रेक्षः सो भवत्क्रुद्धोयुगान्ताग्निरिवंज्वलन्॥ तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राद्रुवन् वनदेवताः।
तस्य क्रुद्धस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तया॥
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः। वा० रा० ३।२४।१७,१८,१९।३५।

२. वा० रा० ३।३०।२०।

३. कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥........
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छोड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥........
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥ मा० ३।१९।२,७,८,९ छंद।

ईश्वरीय चमत्कार का अंश प्रधान हो गया है।[1] जहाँ तुलसी का मारीच 'ते नर रूप चराचर ईसा' कहकर उनके 'ईश' रूप की प्रधानता वर्णित करता है वहीं वाल्मीकि रामायण में मारीच[2] उनके 'वीर रूप' का वर्णन महेन्द्र-वरुणोपम अप्रमेय तेजस्वी रूप में करता है।[3]

किष्किन्धा में बालि पत्नी तारा राम के 'तेज बल' युक्त वीर रूप से पूर्णतया भिज्ञ होने के कारण ही 'तेज बल सींव' तथा 'कालहु जीति सकहिं संग्रामा' राम का परिचय देती है। तथैव वाल्मीकि रामायण में भी तारा 'क्षमो हिते कौसल राजसूनुना न विग्रहः सक्रसमानतेजसा' कहकर उनका वीरत्व प्रकट करती है तथा ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तं' का दर्शन करती है। परन्तु बालि वाल्मीकि रामायण में 'सत्वसंपन्नस्तेजस्वी' कहकर राम रूप की अनुभूति करता है। वहीं वीर रूप मानस में 'अरुन नयन सर चाप चढ़ाए' देखकर भी वह भक्ति प्रेरित होकर 'गोसाईं' कहकर उनकी धर्मनिष्ठा पर शंका करता है। इस विभिन्नता का कारण है दोनों महाकवियों के उद्देश्यों की पृथकता। एक का उद्देश्य विशुद्ध वीरता का प्रदर्शन है दूसरे का भगवान् रूप में सभी गुणों के समावेश का वर्णन करना है।

'मानस' में 'राम' के वीर रूप की सतत् झांकी हमें समस्त लंका काण्ड में प्राप्त होती है।[4] इस काण्ड की यवनिका उठते ही हमें उत्तुंग सुवेल पर्वत पर ससैन्य 'वीर राम' की दिव्य झांकी के दर्शन प्राप्त होते हैं जिसकी समस्त साज सज्जा, कुशल सम्मतिदाताओं, सखाओं व मन्त्रियों के सहित आसीन आदर्श वीर की मनोहर झलक दृष्टिगत होती हैं जिसे देखते ही दर्शक गणों के हृदय में विचित्र भाव जाग्रत हो उठते हैं तथा वे कर्मठ व सचेत, क्रियाशील कुशल राजनीतिज्ञ[5] कर्मवीर राम की सराहना कर उठते हैं। यह चित्रकार की कुशल तूलिका की ही सरसता है जिसने युद्ध के लिए सन्नद्ध व उसकी मन्त्रणा करते हुए वीर राम की झांकी में अपनी शान्त शीतल भक्ति रस धारा बहा कर उसे रौद्र व प्रचंड रूप न देकर भक्ति ग्राह्य 'सरस' रूप ही चित्रित किया है। इसी स्थल पर वाल्मीकि जी ने

---

१. सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्यो।
 देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्यो॥ मा० ३।१९। छंद।

२ शरार्चिषमनाघृष्यं चापखंगेन्धनं रणे। रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि॥
 धनुर्व्यादित दीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणम्। चापपाशधरं वीरं शत्रुसैन्य प्रहारिणम्॥
 वा० रा० ३।३७।१५,१६।

३. महाभारत के वन पर्व में भी मारीच उनके वीर रूप को ही प्रतिष्ठित करता हुआ कहता है:—
 'बाणवेगं हि कस्तस्य शक्तः सोढुं महात्मनः॥ महाभारत २७७।७।

४. मा० (६।१०।१-८)।

५. 'सन्धि विग्रह यानमासनद्वैधीभाव समाश्रयाख्यः एते षट् राजगुणानि भवन्ति' उक्त पंचतन्त्र के कथनानुसार सन्धि, युद्ध, यान (आक्रमण), आसन (सतत् प्रस्तुत रहना) द्वैध (फूट डालना) आश्रय (सहायता लेना) ये ६ राष्ट्र विजय सम्बन्धी राजनीति के गुण कहे गए हैं। यहाँ युद्ध के पूर्व राम आसन' पर 'आसीन' हैं।

रावण के शुकसारण गुप्तचरों द्वारा राम के वीर रूप का स्पष्ट रूप में चित्रण कराया है, अतुल पराक्रम का बोध कराया है :

'यादृशं तस्य रूपस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लंकामेकस्तिष्ठति ते त्रय: ।।'[1]

'श्रीराम राम का जैसा रूप है और जैसे उनके शस्त्र हैं, उनको देखकर कहा जा सकता है कि श्रीराम अकेले ही लंका को नष्ट कर सकते हैं । इन तीनों (लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण) की भी अपेक्षा उन्हें नहीं है ।

प्रभु के 'वीर रूप' का चरमतम उत्कर्ष कुम्भकरण तथा रावण वध के समय अवलोकनीय है । जब अपने शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित राम वीर वेष में 'अरि दलन' करने को प्रस्थान करते हैं ।[2] परन्तु धन्य हैं गोस्वामी जी की सौन्दर्य रस प्रवणता को जो वीभत्स दृश्यों में भी मनोहर रूप का दर्शन कराकर अपना भक्त रूप प्रतिष्ठित करते हैं । ऐसे रूपों में रावण बध के बाद ही वर्णित राम रूप है[3] जहाँ रौद्रता के स्थान पर मनोहारिता तथा वीभत्स के स्थान पर आकर्षक श्रृंगार का वर्णन है 'रण-रंग राम' मे मनोहरता व शान्त सौन्दर्य निरीक्षण तुलसी की मौलिकता है, जबकि वाल्मीकि रामायण में इस महान् युद्ध के पश्चात् की राम छवि मे तेजस्विता, आभा की ही ज्योति विकीर्ण हो रही है[4] तथा अध्यात्म निष्ठ राम अध्यात्म रामायण में भी इस अवसर पर अपने 'कालान्तक' सम 'रौद्र', प्रचंड रूप का ही दर्शन दे रहे हैं ।[5]

वाल्मीकि रामायण के राम जहाँ सुसज्जित वीर रूप में स्थान-स्थान पर विष्णु सम[6] सत्य पराक्रमी रूप में अपनी भानु सम प्रचंड रश्मियों से जनता के कर्भ कंजों को विकसित करते हैं वहाँ गोस्वामी जी के नायक विष्णु आदि से भी कोटि गुन[7] अधिक रूप में ऐश्वर्य, प्रताप, उत्साह, पराक्रम आदि किरणों की ज्योत्स्ना से दर्शक भक्त-जन कुमुद को आनन्द निमग्न कर शीतलता प्रदान करते हुए अपने 'पूर्ण चन्द्रमिवाननम्' का सौन्दर्यमय

---

१. वा० रा० ६।३२।२५।
२. (१) मा० ६।६७।१-४।
   (२) 'चले सकोप बहाबल साली ।' मा० ६।६९।६।
३. सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
   जनु नील गिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ।।
   भुजदंड सर को दंड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।
   जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ।। मा० ६।१०२। छंद ।
४. 'स तु निहतरिपु: स्थिरप्रतिज्ञ: स्वजन बलाभिवृतो रणे रराज ।
   रघुकुलनृपनन्दनो महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो यथेन्द्र: ।। वा० रा० ६।१११।३४।
५. अ० रा० ६।११।३८,४२।
६. 'मानुषं वपुरास्थाय विष्णु: सत्यपराक्रम:' वा० रा० ६।११४।१६।
७. मा० ७।९०।१, ७।९१, (क) (ख), ७।९१।६, छंद।

दर्शन कराकर[1] आदर्श पथ की ओर प्रेरित कर रहे हैं। रूप दिग्दर्शन के उद्देश्य व साधन भिन्न होते हुए भी साध्य वही एक 'वीर' नायक राम ही हैं।

राजाराम

प्रतिष्ठित कुलीन वीर को अलंकृत वेष में सिंहासनासीन कर देने पर वह 'राजा' नाम से अभिहित होता है। भगवान राम ने बालि से भरत के सुयोग्य शासन का उल्लेख करते हुये 'नय', 'विनय' तथा 'सत्य', 'बल' राजा के प्रधान लक्षण बताए हैं।[2] स्वयं अपने को कुलपरम्परागत धर्म का पालन कर्ता बताया है।[3] राजा रावण ने प्रतापी को यम, वरुण, अग्नि, इन्द्र और चन्द्र देवों का रूप धारणकर्त्ता बताया है अस्तु उसका वेष देवोपम होने के साथ-साथ दण्डनीति, प्रसन्नमुद्रा, ऐश्वर्य, पराक्रम तथा चन्द्रवत् सौम्यता व शीतलतादि भावों का होना भी अपेक्षित है। देवर्षि नारद, महर्षि वाल्मीकि, हनुमान सभी ने स्थान,स्थान पर राजा के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों का उल्लेख किया है।[4] उपर्युक्त सभी लक्षणों का समावेश नृपशार्दुल 'राम' में है। प्रस्तुतांश में उनकी कर्म नहीं अपितु राज-रूप वर्णन ही अपेक्षित है अतः 'मानस' तथा 'रामायण' दोनों में 'राम' के इस रूप जलधि की झाँकी का दर्शन ही वांछनीय है।

मुनिवेष की जटाओं का क्षौर कर्म कराकर स्नानोपरान्त सुगन्धित लेप, अनर्घ्य वस्त्राभूषणों को धारण कर राम नृप तेज से जगमगाने लगे।[5] पूर्णतः अलंकृत होकर राम की सवारी दर्शनों के लिए लालायित अवधपुर के नर-नारियों के मध्य से निकली। मन्त्रिगण, ब्राह्मणवर्ग तथा प्रजागण के मध्य वह रूप नक्षत्रों में मयंकवत् अपनी शुभ आभा विकर्ण करने लगा।[6] तत्पश्चात् सीता के सहित राम का रत्नजटित सिंहासन पर आसीन कराकर उनका अभिषेक किया गया।[7] स्वयं ब्रह्मा द्वारा निर्मित रत्नजटित मुकुट, जिसे मनु ने सर्वप्रथम धारण किया था; वंशपरम्परागत रूप में राम के सिर पर धारण कराया गया। ऋत्विजों ने रत्नजटित आभूषण पहनाए, शत्रुघ्न ने श्वेत छत्र और सुग्रीव ने चँवर तथा

---

१. 'राजत राम काम सत सुन्दर।
   रिपु रन जीति अनुज संग सोभित फेरत चाप बिसिष बनरुह कर।
   स्याम सरीर रुचिर श्रम सीकर सोनित कन बिच बीच मनोहर।
   जनु खद्योत निकर हरिहित गनू भ्राजत मरकत सैल सिखर पर।' गीता०लं०कां०।
२. नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम्।
   विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित्॥ वा०रा० ४।१८।८
३. 'धर्मे पितृपैतामहे स्थितम्' वा०रा० ४।१८।५।
४. इनका कतिपय अंश उनके 'वीर रूप' तथा 'युवा रूप' के अन्तगत वर्णित हुआ ह।
५. विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
   महार्हवसनो रामस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्॥ वा०रा० ६।१३१।१५।
६. 'श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः' वा०रा० ६।१३१।३६।
७. रामं रत्नमये पीठे सहसीतंन्यवेशयत्॥ वा०रा० ६।१३१।५९।

विभीषण ने द्वितीय चंवर धारण किया। साक्षात् वायु देव ने इन्द्र की आज्ञा से सुरभिपूर्ण शत शतदल की माला धारण कराई तथा मुक्ताहार पहनाया।

रामायण के मनोहारी चित्रण की ही भाँति 'मानस'[१] तथा 'अध्यात्म रामायण' में भी स्नान, अनुलेपन, अलंकरण आदि प्रसाधनों के पश्चात् पूर्वोक्त 'पुरभ्रमण' को छोड़कर राम का दिव्य सिंहासनासीन रूप अंकित किया गया है। 'रामतापनीयोपनिषद्' में इसी रूप के 'त्रिकोण' ध्यान का आदेश दिया गया है।[३] 'स्यामल गात', 'सरोरुह लोचन' राम के इस 'सुन्दरता मंदिर' अतुल रूप को देख ब्रह्मणन्द लीन सनकादि भी मग्न हो गए। सभी उपस्थित भक्तगणों ने कृपण धन की नाईं उसे हृदय भवन में संजोकर धारण कर लिया।[४]

उपर्युक्त सभी विविधि वेषधारी 'राम' सर्वत्र नयनाभिराम, विमुग्धकारी, शोभा-संपन्न, ऐश्वर्य समन्वित तथा हृदयाह्लादक हैं। अतः भुशुंडि जी के शब्दों में यही कहना उपयुक्त है :

'प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिनहिं नहिं बयना।।[५]

लीला

भगवान राम के नाम और रूप की ही भांति उनकी 'लीला' भी उनके अवतारी स्वरूप का महत्वपूर्ण अंग ही कहा जा सकता है। 'लीला पुरुषोत्तम' रसिक बिहारी कृष्ण की अपेक्षाकृत राम की लीलाएँ उनके 'मर्यादा पुरुषोत्तम' रूप में अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ अभिव्यक्त हुई हैं जिनमें एक ओर उनका ऐश्वर्य चरित मार्तंड अपनी दिव्य आभा से देदीप्यमान हो रहा है तो दूसरी ओर माधुर्य चरित का शुभ्र चन्द्र भक्त-जन-रंजन बन कर' आनन्द ज्योत्स्ना से चर्चित कर कृपा सुधा की अनवरत वृष्टि कर रहा है।

ऐश्वर्य

पक्ष के अन्तर्गत भी हम उनके अपार क्रिया कलापों को दो रूपों में[६] अभिव्यक्त देखते हैं।

(१) प्रकट (२) गुप्त

मानस के रामचरित्र में ऐश्वर्य माधुर्य पक्ष की गंगा जमुनी तरंगों के साथ ही गुप्त

---

१. मा० ७।१०।८, ७।११। छंद १,२।

२. अ०रा० ६।४५,४७,७५।

३. प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधर। द्विभुजी कुंडलीरत्नमाली धीरो धनुर्धरः हेमाभयाद्विभुजया सर्वालंकृतया चिता। श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलात्मज। दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुस्पाणिनापुनः। हेमाभेनानुजेनैव तथा कोणत्रयं भवेत्।
रामतापनीयोपनिषद् ७,९।

४. हियं धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ। मा० ७।१७।

५. मा० ३।८७।४।

६. सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहं जो जेहि खानिक।।
मा०१। प्रारम्भिक।८।

चरित की शारदा भी अपनी अनोखी झलक झलकाती हुई त्रिवेणी संगम का दृश्य दर्शाकर पावन पुण्य तीर्थराज की स्मृति कराती है।[1]

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

(प्रकट चरित्र)

'गोस्वामी तुलसीदास का महत्व' वर्णित करते हुए पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय जी लिखते हैं :

'वह उस रामचरितमानस का रचयिता है, जो सत्साहित्य का सर्वस्व, लोकोत्तर चरित का भांडार, महान् आदर्श का आदर्श, मानवीय महत्व का निदर्शन और पुनीत कार्य कलाप पयोधि का धीर प्रवाह है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम[2] भगवान् रामचन्द्र की मर्यादा शीलता से मर्यादित है।'[3]

वस्तुत: राम चरित[4] की मर्यादा ही मानस का मेरू दंड है जो मानस की लोकप्रियता तथा लोक संग्रहत्व का आधार है, ज्वलन्त आदर्श है, राजपथ है जिस पर भौतिकता से आवृत्त संसारी अज्ञ जन निर्विघ्न जीवन यापन कर ख्याति व नि:श्रेयस् दोनों की प्राप्ति सहज रूप में कर सकते हैं।[5]

---

१. महर्षि वाल्मीकि ने भी गुण भंडार राम चरित का पुरुषार्थ चतुष्टय युक्त वर्णन किया है:—
'कामार्थ गुण संयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम्। समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुति मनोहरम्।'
वा० रा० १।३।८।

२. 'रामायण का वीर एक सँवरा हुआ, सम्हालकर रचा हुआ वीर है जिसकी चित्त वृत्ति सहज ही उत्तेजित नहीं होती, किन्तु मर्यादाओं की रश्मि से सदा नियंत्रित होती रहतीहै। उसके विचारों में नैतिक स्वर प्रधान है, उसकी वीरता में एक विशिष्ट नैतिकआदर्श है।'
संक्षिप्त वा० रा० समीक्षा पृष्ठ ११। 'डा० शान्ति कुमार नानूराम व्यास'

३. तुलसी ग्रंथावली पृष्ठ १०,११।

४. 'राम चरित चितामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।।
'जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मकुति धन धरम धामके।।
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरूपधि साधु लोग से।।'
मा० १।३१।१,२,५,१३।

५. श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
अध्यात्म चरितं रामेणोक्तं पुरा मम।।
तदथ कथयिष्यामि श्रृणु तापत्रयापहम्।
यच्छ्रुत्वामुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात्।
प्राप्नोति परमामृद्धि दीर्घायु: पुत्रसन्ततिम्।। अ० रा० १।२।४,५।
'यतोऽभ्युदय नि:श्रेयससिद्धि: सधर्म:'
इस कथन के आधार पर राम चरित अभ्युदय, नि:श्रयस् दोनों की उपलब्धि कराने म पूर्ण होने के कारण पूर्ण 'धर्मनिष्ठ' चरित भी कहा जा सकता है।

स्वामी श्री पुरुषोत्तमानन्द जी 'अवधूत' लिखते हैं :—

'पुरुषोत्तम एक ऐसी दिव्यवस्तु है जिसके जीवन में समन्वित हैं जीवन की परिपूर्ण समस्त दिशाएं, जीवन का सत्य व्याख्यानमय, दार्शनिक विश्लेषण तथा आस्वादन, और विश्व जीवन में उसकी योग्यता और प्रयोगकौशल को वितरण कर देने योग्य सामर्थ्य ।[1]

पुण्य-चरित, जन-पाप-निकंदन, कौशल्या नंदन राम का चरित्र भी जीवन की समस्त दिशाओं से समन्वित जीवन का आदर्श सत्य उपस्थित करता है। महर्षि वाल्मीकि जी मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र लिखने के पूर्व ही देवर्षि नारद से यही प्रश्न किया कि

'कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रत:
चारित्रेण च को युक्त: सर्वभूतेषु को हित:
विद्वान्क: समर्थश्च कश्चेक प्रियदर्शन: ।।
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्को नसूयक:
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।।[2]

'इसके समान संसार में गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रत में दृढ़ पुरुष कौन है ? सदाचार से युक्त सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर विद्वान्, सामर्थ्यशाली और देखने में सबसे सुन्दर, मन को वश में रखने वाला, क्रोध जयी, कान्तिमान्, ईर्ष्यारहित कौन है ? तथा वह पुरुष कौन है जिसके रणभूमि में कुपित हो जाने पर देवता तक कांप जाते हैं ।'

उपर्युक्त प्रश्नावली ही वह कुंजी है जिसने नारद के हृदय में स्थित अनुपम रत्न भांडार सम गुण निधि राम चरित्र को प्रकट कर[3] आदि कवि को उसकी व्याख्या

---

१. कल्याण मानसांक । ३५५ ।

२. वा० रा० १।१।२ ४ ।

३. इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनै: श्रुत: ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ।।
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमान्शत्रुनिबर्हण: ।
विपुलांसो महाबाहु: कम्बुग्रीवो महाहनु: ।।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदम: ।
आजानुबाहु: सुशिरा: सुललाट: सुविक्रम: ।।
सम: समविभक्तांग: स्निग्धवर्ण: प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान्शुभलक्षण: ।।

क्रमश:

व पुरुषोत्तम के नारदोक्त गुणों के प्रदर्शन की ओर प्रेरित किया। नारदोक्त गुण-निदर्शन ही राम के समष्टिगत रूप व गुणों की माला है जिसे हृदय में धारण कर आदि कवि सुदीक्षा सी प्राप्त कर लग गए रघुकुल भूषण मर्यादा रक्षक राम के चरित्र मनन व निरूपण में। रामायण का प्रारम्भ ही चरित्र की दिव्य मणि माला निर्मित वह प्रदेश द्वार है जिससे आकृष्ट हो पाठक उसमें प्रवेश करते हैं। हम उनका प्रकाश पृथक् पृथक् रूप में व्यष्टिगत रूप में भी सर्वत्र पूर्ण देख चमत्कृत हो साधुवाद कर उसके अनुगमन के हेतु लालायित हो उठते हैं। इन दिव्य गुणों को सामूहिक झलक[1] दर्शक प्रवेश द्वारों के अवलोकनार्थ लेखिनी बरबस आतुर हो ही उठती है।

क्रमशः

३. धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदांगतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमावत्प्रियदर्शनः।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
तमेव गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥

वा० रा० १।१।८। से १९।

१. 'लोहिताक्षं महाबाहुं मत्तमात्तंगगामिनम्।
दीर्घ बाहुं महोरस्कं नीलकुंचितमूर्द्धजम्॥
दीप्यमानं श्रिया वीरं शक्रादनवरं रणे।
पारगं सर्वधर्माणां बृहस्पतिसमं मतौ॥
सर्वानुरक्तप्रकृतिं सर्वविद्याविशारदम्।
जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम्॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम्॥'

महा०। वनपर्व। २७६।९—१२।

वाल्मीकि जी ने स्थान[1] स्थान[2] पर इन गुणावलियों का दिग्दर्शन कराकर राम-चरित्र के महत्व को प्रतिष्ठित किया है। राम के बल वीर्य, धर्म परायणता आदि सद्गुणों व विशेषणों का उल्लेख उनके पुरुषोत्तमत्व को मूर्धाभिषिक्त करने में पूर्णत: समर्थ है।

डा० ग्रियर्सन ने भी राम के चरित्र को उच्चतम तथा ऐश्वर्य-पूर्ण वर्णित किया है।[3]

श्री निवास शास्त्री जी ने भी उनके गुणों की समीक्षा करते हुए राम को महान् गुणों का प्रतीक कहा है।[4]

गृहस्थाश्रम के सर्वांगपूर्ण चरित्र तो कविकुल पुंगव वाल्मीकि जी ने अपनी महिमा-मयी लेखिनी द्वारा प्रतिष्ठित कर लोकादर्श स्थापित कर दिया जिसमें सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी केन्द्र बिन्दुओं में पूर्णता की चरम-सीमा है। उन सभी बिन्दुओं का आधार है वह महाबिन्दु मानव चरित्र जिसने अनाचार व पापाचार मय अशान्त वातावरण में जन्म लेकर पाप व अनाचार की समाप्ति की, लोक पक्ष में सर्वत्र शान्ति की स्थापना की प्रकम्पित अचला में पुन: शीतलता का साम्राज्य स्थापित किया, ऋषि गणों की यज्ञशालाएँ निर्विघ्न तप निरत होने लगीं और व्यष्टिगत तथा समष्टिगत सर्वत्र पूर्णता एवं शान्ति स्थापना के साथ-साथ स्थापित किया 'राम राज्य' जो सतत् लोक आदर्श का परिचायक है।

श्रीराम चन्द्र शुक्ल लिखते हैं:

'अनंत शक्ति के साथ धीरता, गंभीरता और कोमलता 'राम' का प्रधान लक्षण है। यही उनका 'रामत्व' है।'[5]

वस्तुत: 'रामत्व' के इन्हीं गुणों की व्यापकता ही उनका चरित्र है। श्री जयदयाल गोयन्दका ने आपके सद्गुण समुद्र के रत्नों के नाम बड़ी सूक्ष्मता से गिनाए हैं।[6] जिनका

---

१. वा० रा० २।१।९ से ३३।
२. वा० रा० २।२।२७ से ४७।
3. 'His characters live and move with all the dignity of a heroic age······ Ram, of lofty and unbending rectitude'.
(Notes on Tulsi Das, Page 12)
4. 'If God took shape amongst us as one of us, he did so for the purpose of giving us instruction for our parts in life, how to go through it······ Ram was an embodiment of the great virtues of human character. He was no doubt a God but he came into the world and so he went through worldly dealings as well'.
(Lectures on V. Ramayan. Ist Lecture).
५. गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ ९८।
६. 'श्रीराम सद्गुणों के समुद्र थे। सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गंभीरता, अस्त्र शस्त्रों का ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा, संरक्षण, एक पत्नीव्रत, प्रजा-रंजकता, ब्राह्मण भक्ति, मातृ पितृ भक्ति, गुरु भक्ति, भ्रातृ प्रेम, मैत्री, शरणागत वत्सलता, सरलता, व्यवहार-कुशलता, प्रतिज्ञा पालन, साधु रक्षण, दुष्ट दलन, निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्म परायणता, पवित्रता आदि आदि सभी गुणों का मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम में पूर्ण विकास हुआ था।'
तत्व चिन्तामणि भाग ७ पृष्ठ १।

प्रकटीकरण हम आगे अनेक स्थलों में, अनेक परिस्थितियों में पायेंगे। उनके जीवन में आद्योपान्त व्यवहार कुशलता की छटा छाई हुई है। प्रत्येक वर्ग का प्राणी उनके यथोचित व्यवहार के ही कारण उन पर पूर्णतया मुग्ध है, अनुरक्त है और स्वयं राम भी 'लोक-रंजक' व 'लोक रक्षक' द्विगुणित रूप में पूर्णत: अलंकृत हैं।

यह नीति वाक्य है :

'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन: ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ।।

इस उक्ति के अक्षरश: पालन कर्ता राम हैं यही कारण है कि उनकी आयु, विद्या, यश तथा बल सदा ही परिवर्द्धित होते रहे। आपकी गुरू भक्ति, पितृ-भक्ति, मातृ-भक्ति वस्तुत: आदर्श एवं अनुकरणीय है।

वाल्मीकि रामायण में राम की गुरू भक्ति

राम की गुरू सेवा व भक्ति के अनेक स्थल 'रामायण' में हैं परन्तु जिस शील, सौजन्य भावनाओं का सुन्दरतम निदर्शन, अनन्यानुराग प्रदर्शन मानस के मनोहर स्थलों में है वह हृदयहारिणी गुरू भक्ति, शिष्टाचार इसमें अप्राप्य है। 'रामायण में प्रधानत: वे ही स्थल प्रधान हैं जहाँ राम के पराक्रम से गुरू विशेषत: प्रभावित हैं, शिष्टाचार, विनयशीलता आदि गुणों के कारण नहीं। निम्नांकित उदाहरणों द्वारा इस कथन का सम्यक् निर्णय हो सकेगा परन्तु इसका आशय यह नहीं कि रामायण में राम में शीलादि गुणों का अभाव है। मानस की अपेक्षाकृत इसमें शील-प्रदर्शक, दैन्य-निवेदक, संकोच-निदर्शक स्थलों का अपेक्षाकृत अभाव है।

'दिव्यलक्षणसंयुत', 'धनुर्वेद में पूर्ण निष्ठित', 'सत्य पराक्रमशील' राम को दुर्जय राक्षसों के दमनार्थ राजर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ से माँगते हैं[1] क्यों कि वे राम के सद्गुणों के ज्ञाता हैं।[2] वशिष्ठ के समझाने पर राजा दशरथ विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण को विदा करते हैं। राम मर्यादा पूर्ण रीति से गुरू का अनुगमन करते हैं।[3] राम के तेज से प्रभावित सर्वज्ञ विश्वामित्र राम को 'बला' 'अतिबला' विद्या का दान करते हैं और राम को धार्मिक तथा समाप्त पृथ्वी में अप्रतिम वीर कह कर गुण प्रकट करते हैं।[4] गुरू द्वारा शिक्षित विद्या समुदित राम 'भीम विक्रमी' सम शौभाग्यमान हुए। गुरू की

१. 'काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि
न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचनं ।।' वा० रा० १।१९।९, ११।
२. 'अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम् ।
अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि ।।' वा० रा० १।१९।१६,१७।
३. विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशा: ।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ।। वा० रा० १।२२।६।
४. 'मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा ।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्यय:
न बाह्वो: सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ।।' वा० रा० १।२२।११,१३।

सम्यक् रीति से सेवा कर रात्रि को सरयू नदी के किनारे निवास किया । जहाँ मानस में 'गुरू ते पहिलेहि जगतपति जागे' कह कर परम सुजानत्व की मर्यादा की प्रतिष्ठा की गई है । वहाँ 'रामायण' में वह सक्रियशीलता, सचेतनता का प्रदर्शन न होकर राम एक साधारण बालक की भांति प्रात: गुरू के जगाने पर जगकर नित्य कर्म में प्रवृत्त होते हैं[1] राम में आज्ञा पालन की भावना मानस सम ही है परन्तु मानस में नि:शंक होकर गुरू के संकेत मात्र से कार्य प्रतिपादित हुआ है परन्तु इसमें मन में द्विविधा होने पर भी गुरू की आज्ञा का इसलिए भी पालन करते हैं क्योंकि पिता की आज्ञा उनका आदेश पालन की थी अत: पिता की आज्ञावश ही वे गुरू की आज्ञा का पालन भी शंकारहित होकर करते हैं ।[2] ताड़का वध से प्रसन्न होकर, समस्त देवताओं की याचना करने के पश्चात् (कि राम इस असाधारण कार्य को करने के कारण आपके तपोबल से प्राप्त कृशाश्व के सत्य पराक्रमी पुत्रों को प्राप्त करने के अधिकारी हो गए हैं अत: उन्हें राम को अर्पित कीजिए) विश्वामित्र ने राम के पराक्रम से प्रणीत हो, उसका संवर्द्धन व परिवर्द्धन करने के हेतु असंख्य अस्त्रों को प्रदान किया । राम ने भी अपने पराक्रम का सदुपयोग करने में कोई न्यूनता नहीं दिखाई । 'सिद्धाश्रम' रक्षा की प्रतिज्ञा कर[3] छ: रात्रियों तक कठिन जागरण कर[4] राक्षसों का संहार कर राम अपनी वीरता से यज्ञ की रक्षा कर गुरू द्वारा प्रशंसा के पात्र बने[5] तथा समस्त मुनियों को भी प्रसन्न किया ।[6] इतने दुष्कर कार्य को करके भी उनके आज्ञा पालन में तनिक भी शैथिल्य न आया और पुन: गुरू से आज्ञा माँगने लगे ।

> इमौ स्वो मुनि शार्दूल किंकरौ समुपस्थितौ ।
> आज्ञापय यथेष्टं वै शासनं करवावकिम् ।।[7]

'हे मुनि श्रेष्ठ ! हम दोनों सेवक आपकी सेवा में उपस्थित हैं । हमें आज्ञा दीजिये अब हम आपकी कौन सेवा करें ।'

इस प्रसंग के पश्चात् हमें कथा विभिन्नता के कारण विश्वामित्र सेवा के वे परम पावन व मनोहर प्रसंग नहीं मिलते जैसे कि मानस के जनकपुरी में वर्णित हैं । केवल 'वत्स राम धनु: पश्य' की गुरू आज्ञा पाते ही धनुर्भंग का प्रसंग उनकी आज्ञा पालन की

---

१. वा० रा० १।२३।२—४ ।

२. वा० रा० १।२६।२—४ ।

३. 'रक्षितव्या क्रिया ब्रह्मन् मयावध्याश्च राक्षसा:' वा० रा० १।२८।२२।

४. 'अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ।' वा० रा० १।३०।६।

५. कृतार्थोस्मि महाबाहो कृतं गुरूवचस्त्वया ।।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं राम महायश: ।
स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां संध्यामुपागमत् ।। वा० रा० १।३०।२६,२७।

६. राघव: परमोदारो मुनीनां मुदमावहन् ।
स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दन: ।। वा० रा० १।३०।२४।

७. वा० रा० १।३१।४।

तत्परता का द्योतक है। मानस की अपेक्षाकृत गुरू से अनेक कथा-श्रवण-प्रसंग इसमें अधिक हैं।

गुरू वशिष्ठ के प्रति सम्मान प्रदर्शन का अवसर मानस की ही भाँति है 'ततो यथावद्रामेण स राज्ञोगुरूरर्चित:' 'तब राम ने भली भाँति गुरू वशिष्ठ की पूजा की' परन्तु फिर भी मानस के समान शील, विनयावली प्रदर्शन का इसमें अभाव है। मानस के चित्रकूट प्रसंग में राम की गुरू भावना का अत्यधिक प्रदर्शन है परन्तु इसमें राम गुरू की आज्ञा का भी उल्लंघन करते हैं।[1] यद्यपि यह क्षम्य पितृ भक्ति के आदर्श व प्रतिज्ञा पालन के सिद्धान्त के समक्ष है। अयोध्या लौटने पर भी राम ने अभिवादन मात्र के अतिरिक्त अन्य कोई गुरू महत्व की प्रतिष्ठा नहीं की।

उपर्युक्त वैभिन्य का कारण गोस्वामी जी के काल में आवश्यकीय तथा प्रचलित गुरू महिमा का प्रभाव तथा राम का शील रूप चित्रण है। रामायण में चरित्र का आवश्यक अंग है।[2]

मानस में राम की गुरू भक्ति

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में शील-विनय-युक्त शिष्टाचार, प्रणति निवेदनादि भाव विशेष रूपेण वर्णित हैं। अत: गुरू की मर्यादा का आद्यन्त निर्वाह मानस में किया गया है क्योंकि तुलसी 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरू चतुर्नाम वपु एक' उक्त आदर्श के मानने वाले थे तथा सामाजिक विशृंखलता से क्षुभित हो उन्होंने गुरू की महत्ता का प्रतिपादन किया तथा आदर्श पद प्रदर्शन करना आपने अनिवार्य समझा परन्तु इसकी अपेक्षाकृत रामायण में तो आचार्य पद की प्रतिष्ठा स्वत: सुरक्षित थी और वह दैनिक जीवन का अंग बनी हुई थी अतएव उसका व्यापक प्रदर्शन करना महर्षि ने आवश्यक नहीं समझा।

मानसकार द्वारा प्रतिष्ठित राम की गुरू भक्ति का क्रमिक विकास भी दर्शनीय एवं सराहनीय तत्व है।

यज्ञोपवीत होते ही प्राचीन आर्य संस्कृति के अनुसार—

'गुरू गृह गए पढ़न रघुराई'

---

१. 'तद्गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जनं नृप।
सोऽहं ते पितुराचार्यस्तव चैव परंतप।
मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम्।
स हि राजा जनयिता पिता दशरथो मम।
आज्ञातं यन्मया तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति।।
वा० रा० २।११०।३६,२।१११।४,११।

२. स कश्चिद्ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युति:
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तातपूज्यते वा० रा० २।१००।९।

इस प्रकार राम ने लोक में ब्रह्मचर्याश्रम का मर्यादाबद्ध पालन किया जिसका संकेत उपर्युक्त अर्धाली में किया गया है। गुरू सेवा व निरन्तर उनके सम्पर्क का लाभ उठाकर उन्हें उसका प्रसाद भी प्राप्त हुआ कि

'अल्प काल विद्या सब आई।'

परन्तु विद्याध्ययन के साथ ही गुरू का महत्व भी समाप्त नहीं हो गया। वह तो दैनिक जीवन का एक विशिष्ट पूज्य अंश बन गया। इसीलिये प्रातः काल अभिवादन[1] के मिस गुरू के प्रति प्रणति व श्रद्धांजलि अर्पित कर राम अपना सौजन्य व मर्यादा प्रदर्शन करने लगे। उन्होंने दीक्षा गुरू से अधिक महत्व शिक्षा गुरू का भी माना। राजर्षि विश्वामित्र के साथ मख रक्षणार्थ प्रयाण करते समय कितनी तत्परता[2] का प्रदर्शन कर गुरू के इंगित का ध्यान करते हुए आज्ञा पालन दर्शाया है। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने राम को शस्त्र विद्या में पारंगत कर दिया। इतना ही नहीं कि वे अतिथि की भाँति आश्रम में निवास करें, अपितु वे एक साधारण शिष्य की नाईं तुरंत सेवा धर्म अपना लेते हैं।[3] असुरों का संहार कर गुरू तथा मुनिजनों को यज्ञ करने का पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं। अपने शील और सदाचार से समस्त मुनियों को संतुष्ट करते हुए उनका सत्संग, कथा श्रवण करते रहे।[4] 'गुरू आज्ञा' का सतत् अक्षरशः पालन मानों उनके जीवन का मुख्य अंग बन गया। गुरू आज्ञा के कारण ही परम संकोची राम को अहिल्या ऋषि पत्नी को भी चरण स्पर्श कराना पड़ा। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से उन्हें इस कार्य का पश्चाताप भी हुआ।[5] गुरू का मौन अनुसरण करते रहे। तनिक भी इच्छा अवधपुर लौटने की प्रगट न कर सके। करते भी कैसे? गुरू सेवा का प्रण देकर पिता ने भेजा था। जनकपुर में पहुँचकर उनकी गुरू सेवा के स्पष्ट दर्शन होते हैं:

१. प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥ मा० १।२०४।७

२. 'चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।'

(गुरु के संकेत पर ही कार्य को तुरत कर दिया। वाणी की आज्ञा को कौन कहे उससे भी उत्तम गुरु के अंतस्तल का अध्ययन कर मानसिक आज्ञा का पालन किया)

मा० १।२०८।५,६।

३. प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥

मा० १।२०९।१,२।

४. भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना॥ मा० १।२०९।८

५. सिला साप संताप विगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुए को पछिताउ॥ विन० १००

गुरू से आज्ञा माँग कर जनकपुर परिभ्रमण के लिए जाना,[1] विलम्ब होने पर त्रसित होना[2] उनके शिष्टाचार के स्पष्ट निदर्शन हैं। गुरू को प्रणाम कर संकोच सहित गुरू के सामने बैठना,[3] मुनि की आज्ञा से सन्ध्या पूजन करना, कथा श्रवण करना, पद कमल दबाना गुरू आज्ञा पाकर ही सोने जाना, गुरू से पूर्व उठना, गुरू आज्ञा पाकर उनकी पूजा के लिए पुष्प चयन करने जाना आदि गुरू के प्रति मर्यादा शिष्ट व्यवहार, सेवक धर्म के ज्वलन्त उदाहरण हैं।[4]

इससे भी अधिक श्रृंगार तथा वीरता के उदाहरण हैं जहाँ गुरू भावना का चरमोत्कर्ष है। गुरू से किसी प्रकार का भी दुराव न रखना यही निश्छल शिष्य धर्म है। हृदय की परम कोमलतम गोपनीय श्रृंगार भावना भी राम गुरू से न छिपा सके[5] धन्य है वह मानस स्वच्छ मुकुर जहाँ गुरू के प्रति असीम श्रद्धा व निश्छल सरल सेवा भाव ही प्रतिबिम्बित रहा करता है। द्वितीय प्रसंग वीर रस का है। स्वयंबर में परम धनुर्धर राम को अपना कौशल प्रदर्शन करना बिना गुरु आज्ञा के असंगत न था परन्तु धन्य है गुरु आयसु की दृढ़ मर्यादा का पालन जो सुई की नोक हिलाने में भी गुरु की अपेक्षा करता है।[6] वीरत्व शिरोमणि राम का पराक्रम भी गुरु प्रणति पर ही आश्रित है।[7] असंख्य वीर राजाओं का दर्प विनाशन पिनाक गुरु श्रद्धा के ही बल पर लघु हो गया।[8] यह है राम का अटल

---

१. जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥ मा० १।२१७।६।

२. कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं। मा० १।२२४।६।

३. सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥ मा० १।२२५।

४. निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्या बंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
बार बार मुनि अग्या दीन्हीं। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं॥
गुर ते पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।
मा० १।२२५।१,२,६, १।२२६, १।२२६।२।

५. हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥
मा० १।२३६।१,२।

६. 'उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा।' मा० १।२५३।६,७।

७. गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मांगा॥
मा० १।२५४।४।

८. गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
मा० १।२६०।५।

श्विवास तथा गुरु पर विशेष श्रद्धा। गुरु भी ऐसे प्रणत सेवक पर कम प्रसन्न नहीं।[१] हृदय से सराहना करते हुये केवल अपने निष्कपट शिष्य की सराहना या उनको आशीर्वाद ही नहीं देते अपितु उसके प्रेम में स्वयं भी 'प्रेमोदधि' बन उमंगित होने लगते हैं।[२] राम की लज्जा, संकोचशीलता तथा नम्रता उस समय दर्शनीय है जबकि कई वर्षों के बिछुड़े पिता के दर्शनों के लिये लालायित हो उठते हैं परन्तु उस इच्छा को प्रगट करने में भी धृष्टता समझ कर मौन ही रहते हैं। परन्तु त्रिकालदर्शी गुरु राम के अंतस्तलदर्शी बन इन दिव्य भावों को देखकर परम संतुष्ट होकर आलिंगन कर पुलकायमान होकर चल दिये उनकी इच्छा पूर्ण करने।[३] इधर शिक्षा गुरु 'पुलकित' हैं तो उधर दीक्षा गुरु (वशिष्ठ) जी 'प्रेम मुदित' हैं। यही कारण है कि हम दोनों गुरुओं को राम के प्रति सदा अनुरक्त पाते हैं।

'निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे'[४] तथा कुलगुरू वशिष्ठ तो 'राम पुनीत प्रेम अनुगामी' की उपाधि तक देकर 'राम' के निश्छल प्रेम मय हृदय का ही प्रमाण देते हैं।

राज्याभिषेक की सूचना व तदोचित शिक्षा देने के लिए गुरू वशिष्ठ राम के भवन में पदार्पण करते हैं। उनकी पूजा-अर्चा, स्वागत-सत्कार, षोड्शोपचार सहित सविनय नम्र वचनावली, आज्ञा पालन की जिज्ञासा आदि प्रत्येक व्यवहार-रश्मि उनकी व्यवहार कुशलता, शिष्टाचार, सेवक धर्म की प्रकाशिका है, आदर्श है, चरम बिन्दु है।[५] स्वयं गुरू भी इस आदर्श व्यवहार, स्नेह-सिंचित वचनावली को सुनकर बिना प्रशंसा किये व 'हंस-बंस-अवतंस' कहे न रह सके। उनकी शील, गुणादि की सराहना करते-करते आनन्दोद्रेक में रोमांचित हो उठे और तत्पश्चात् आगमन के निर्दिष्ट कारण पर ध्यान दे सके।

---

१. (१) धरमसेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥
मा० १।२१७।८।

(२) 'सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे' मा० १।२३६।४।

(३) 'कस न राम राखहु तुम्ह नीती।' इत्यादि वाक्यों द्वारा स्वयं गुरु भी उनकी नीति, मर्यादा की प्रशंसा किये बिना रह पाते। मा० १।२१७।७।

२. कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥ मा० १।२६१।२,३।

३. सकुचन्ह कहि न सकत गुरू पाहीं। पितु दरसन लालच मन माहीं॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥
हरषि बंधु दोउ हृदयं लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥ मा० १।३०६।५ से ७।

४. मा० १।३५९।

५. गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई॥ मा० २।८।२ से ८।

अत्यधिक विषम परिस्थिति 'वन गमन' में भी प्रयाण करते समय राम बड़े धैर्य के साथ शिष्टाचार, सदाचार का विस्मरण नहीं करते । गुरू की वंदना वहाँ भी 'अमंगल दमनू' होने के कारण विहित है । एक बार नहीं कई बार गुरू को प्रणाम कर वन की ओर प्रस्थान करते हैं ।[1]

तत्पश्चात् दीर्घ काल के पश्चात् राम को गुरू के दर्शन होते हैं चित्रकूट में । गुरू मिलन की आतुरता, प्रणिपात गुरू का हृदयालिंगन एक-एक वह क्रियाएँ, तरंगे हैं जो 'सीलसिंधुता', गुरू-भक्ति, शिष्टाचार द्वारा प्रत्येक सहृदय को आनन्दरसनिमग्न कर गुरू भावना का आदर्श दर्शाती हैं ।[2] पितृ शोक समाचार सुनकर शोकाकुल राम कर्त्तव्यहीन नहीं होते अपितु गुरू आज्ञा[3] का वहाँ भी पूर्ववत् ही ध्यान है । गुरू की आज्ञानुसार ही वेदोक्त संस्कार आदि करते हैं । तत्पश्चात् गुरू के प्रति महान् गौरव प्रदर्शन करते हुए, उन्हीं को राजा दशरथ' की अनुपस्थिति में राज्य के योग क्षेम का वहन कर्ता मानते हुए, बड़े विनम्र वचनों में प्रत्यावर्तन की प्रार्थना करते हैं ।[4]

स्वयं गुरू भी इन न्यायोचित अति विनीत वचनों को सुनकर 'धर्मसेतु करुनायतन' का प्रसाद या साधुवाद दिए बिना न रह सके । स्वयं 'भरत' भी राम के गुरू आज्ञा पालन की दृढ़ता को भली प्रकार जानते हैं और तभी यह विचार भी करते हैं कि राम गुरू आज्ञा पाकर अपना सर्वप्रिय कर्त्तव्य, दृढ़ प्रतिज्ञा या वचन पालन भी त्याग सकते हैं । अतः 'अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी ।' परन्तु गुरू भी अपने अनन्य शिष्य को पथ-भ्रष्ट, सिद्धान्त-च्युत नहीं करना चाहते । अतः 'मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ।' सकल तत्वार्थ ज्ञाता गुरू राम के समस्त गुणों का सम्यक् उल्लेख करते हैं[5] तथा स्वयं अपने मुख से निज

---

१. 'बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु'
गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा ।' मा० २।७९, २।८०।१।

२. सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू ।
चले सबेग रामु तेहि काला । धीर धरम धुर दीनदयाला ।।
गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ।।
मुनिबर धाइ लिए उरलाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ।। मा० २।२४२।१-४।

३. भोरु भए रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह ।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह ।। मा० २।२४७।

४. सब समेत पुर धारिय पाऊ । आपु इहाँ अमरावति राऊ ।।
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई । उचित होइ तस करिअ गोसाईं ।। मा० २।२४७।७,८।

६ भरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु........ ...
सत्यसंध पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मगल हेतू ।।
गुर पितु मातु बचन अनुसारी । खल दलु दलन देव हितकारी ।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जाना जथारथु ।।
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसि पाला । माया जीव करम कुलि काला ।।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभु ताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ।।
करि बिचार जियँ देखहु नीके । राम रजाइ सीस सबही के ।। मा० २।२५३।३-८।

आज्ञा पालनकर्ता का प्रमाण देते हैं। स्व कैंकर्य धर्म के धर्मज्ञ राम के गुणों के इतना वशीकृत हो जाते हैं कि स्वयं आज्ञा प्रदान करने के अधिकारी गुरू 'राम' के अलौकिकत्व का भास करने लगते हैं और स्वयं उनकी आज्ञा तथा रुचि अनुकूल कर्त्तव्य पालन अपना कर्म मान लेते हैं।[१] एक दूसरे की रुचि अनुकूल व्यवहार 'राम' भी तथैव जानते हैं। अतः अपने श्वसुर जनक से स्वच्छन्द रूपेण वार्तालाप प्रारम्भ न कर गुरू इच्छा देख लेने पर[२] ही विनम्र निवेदन करने को प्रस्तुत होते हैं। भरत को समझाते समय भी गुरू महिमा का स्मरण कराते हैं।[३] गुरू कृपा पर अटूट विश्वास है[४] कि गुरू शिक्षा, कृपा, आयसु के बल पर वे कभी पथभ्रष्ट नहीं हो सकते, कुण्ठित या व्यथित नहीं हो सकते।[५] प्रभु ने अभिवादन, विनय, श्रद्धा आदि से गुरू का सन्मान कर बिदा किया[६] परन्तु गुरू की वियोग दशा से शिष्य की अनन्य भक्ति, गुण श्रेष्ठता प्रत्यक्षतः प्रगट होती है जिसके वशीभूत होकर परम योगनिष्ठ तपस्वी वशिष्ठ जी भी उन्हीं का चिन्तन कर व्याकुल हो गए।[७]

चित्रकूट मिलन के पश्चात् एक दीर्घ अवधि समाप्त कर शिष्य को गुरू का दर्शन हुआ। चिर संचित अव्यक्तीकृत पूज्य भावना की सरिता उमंगित हो उठी और पुलकावली मिस प्रवाहित हो चले। उधर भावग्राही जलधि सम गुरू ने उसे आलिंगन मिस आत्मसात् कर लिया।[८] गुरू प्रिय शिष्य की कुशल हेतु जिज्ञासु हो उठे। विश्व विख्यात अतुलनीय पराक्रम का समस्त श्रेय गुरू कृपा के पावन चरणों पर ही अर्पित कर[९] राम अपनी

---

२. राखें राम रजाइ रूख हम सब कर हित होइ। मा० २।२५४।

३. गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥ मा० २।२८९।३।

४. तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुलगुरु कृपा सुधारी॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥
मा० २।१०४।५,८।

१. गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु.... मा० २।३०५।, २।३०५।२,३।

२. माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।
मा० २।३१४।२,३।

३. 'जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।' मा० २।३२०।

४. मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥
मा० २।२३१।१,२।

५. बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरूह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। मा० ७।४।२,३,४।

६. 'हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।' मा० ७।४।४।

विनयशीलता, निरभिमानता, कृतज्ञता का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करते हैं। स्वयं ही नहीं अपितु समस्त सखा गण को भी गुरू वन्दना का आदेश देकर उनसे गुरू कृपा का विशाल महत्व वर्णित करते हैं।[1]

'प्रभुता पाइ काहि मद नाही' लोकोक्ति के राम अपवाद स्वरूप हैं। राज्यसिंहासनासीन होने के लिए मंगल संस्कारों को करने के पूर्व भी गुरू आज्ञा का परमाश्रय लेने में वे तनिक भी नहीं चूकते।[2] ऐसे आज्ञा पालक, निष्कपट सेवक 'राम' को फिर गुरू क्यों न सर्वप्रथम राज्यतिलक करें?[3] वे शिष्य वर्ग, जन वर्ग एवं नृप वर्ग में शिरोमणि भी तो हैं। पर राजाराम बन गए तो क्या, हैं तो वे अब भी 'शिष्य' ही, अत: गुरू से अध्ययन, कथा श्रवण अब भी पूर्ववत् ही चलता है।[4] स्वदीक्षित सेवक धर्मानुयायी राम को शिक्षा का व्यवहारिक रूप प्रतिपालित करते देख गुरू का रोम-रोम क्यों न पुलकित हो जाता होगा। स्व वपित बीज का लहलहाता वृक्ष देख कर किसे आत्मिक सुख प्राप्त नहीं होता जिसके फल जगहित मंगलकारी, सुखकारी हुआ करते हैं।

'मानस' की भांति 'अध्यात्म रामायण'[5] में गुरू भक्ति, गुरू सेवा गुरू कृपा के अंश यद्यपि अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। इन संक्षिप्त विवरणों में ही राम की गुरू भक्ति के दर्शन होते हैं। परन्तु केवल झलक मात्र है इनमें गुरु वशिष्ठ स्वयं 'राम' के आध्यात्मिक रूप से प्रभावित हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, सौजन्य, गुरू सेवा के स्थल मानस में अपनी पूर्ण व्याप्ति के साथ स्पष्टत: गुरू भक्ति का चरम उत्कर्ष प्रतिष्ठित करते हैं।

रामायण में राम की मातृ-भक्ति

रामायण में राम की मातृ-भक्ति का प्रदर्शन विशद रूपेण किया गया है। मानस के 'संमत जननी तौर' की ही भाँति यहाँ भी राम तव च प्रिय कामार्थ' कह कर बन जाना स्वीकृत सहर्ष ही कर लेते हैं। यहाँ तक अपनी उदारता व आज्ञा पालन का परिचय देते हैं कि 'मैं बिना पिता के कहे भी तुम्हारी आज्ञा से ही बन चला जाऊँगा।[6] क्योंकि राम प्रतिज्ञा पालन, माता-पिता के वचनों को न टालना यह वीर धर्मावलम्बी पुरुष का धर्म

---

१. पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।।
गुर बसिष्ट कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपां दनुजरन मारे।। मा० ७।७।५,६।

२. 'गुर अनुसासन माँगि नहाए।' मा० ७।१०।७।

३. प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। मा० ७।११।५।

४. बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।। मा० ७।२५।२।

५. ।१। अ० रा० १।४।२४
।२। गुरू आज्ञा से ताटका वध अनन्तर गुरू प्रसन्नता अ० रा० १।५।३३
।३। अ० रा० १।४।१०।
।४। गुरू वशिष्ठ के राम भवन में जाने पर राम का आतिथ्य, विनम्रता —
अ० रा० २।१।१८,२०।

६. 'अनुक्तोऽप्यत्र भवता भवत्या वयमावहम्।
बने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश।।' बा० रा० २।१९।१३

मानते हैं और उसका विपरीत आचरण अधर्म ।[१] उन्होंने स्वप्न में भी माता पिता के विरूद्ध आचरण नहीं किया इसका उन्हें आत्म-विश्वास है[२] परन्तु फिर भी क्रूरकर्मा कैकेयी के हृदय में उनके प्रति कोई भी शंका शेष न रह जाय इसलिये उसकी निवृत्ति के लिये भी वे लक्ष्मण को अभिषेक की निवृत्ति का आदेश देते हैं ।[३] कैकेयी को भी कोई कष्ट न पहुँचे, यह सोच कर वे तुरन्त वनगमन का संकल्प कर लेते हैं ।[४] वे लक्ष्मण[५] तथा सीता[६] को भी मातृ सेवा की शिक्षा देते हैं तथा 'समा हि मममातर:' कह कर सभी माताओं में विमाता आदि की भावना को छोड़कर प्रेम और सेवा सहित अभिवादन की शिक्षा देते हैं । यही नहीं कि वे सीता को सभी माताओं को समान मानने की वाचिक शिक्षा ही देते हैं अपितु इसका करुणाजन्य व्यवहारिक पक्ष भी हमें अपने विदा होते समय दृष्टिगत कराते हैं । सभी माताएँ राम का वन गमन सुनकर आर्तनाद कर उठीं और इस प्रकार राम की निष्पक्षता का प्रमाण देते हुये राम की उदार मातृ-भक्ति का ही परिचय उन माताओं ने दिया ।[७] राम ने भी स्वयं वन जाते समय सभी अन्य माताओं से विनम्र होकर क्षमा याचना की ।[८] राम की अन्य साढ़े तीन सौ माताएं उनकी क्षमा याचना सुनकर उस प्रेम व वात्सल्य से आतुर होकर बिलख पड़ी ।[९] अध्यात्म रामायण में भी अन्य माताओं का राम प्रेम जनित विलाप प्रदर्शित किया गया है ।

'तद् दृष्ट्वा रूरूदु: सर्वे राजदार: समन्तत:'[१०]

'वह राम गमन देखकर समस्त राजा की स्त्रियां (माताएं) रो पड़ीं'

'रामायण' में मातृ विरह का प्रसंग 'राम' की करुणा का निर्देशक है । 'मानस' के राम संयत हैं । अपने धैर्य से मातृ विरह के दु:ख को सहन करते हैं, विलाप नहीं करते परन्तु मानस की अपेक्षाकृत 'रामायण' में राम का यह मानव रूप, पुत्र रूप बड़े स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । राम 'कौशल्या' तथा सुमित्रा की याद में लक्ष्मण से अत्यधिक विलाप कर कहते हैं कि 'लक्ष्मण मेरे कारण माता कौशल्या तथा सुमित्रा कष्ट पायेंगी । अतएव लक्ष्मण ! सबेरा होते ही तुम अयोध्या लौट जाओ । अनाथ माता कौशल्या तुम्हारे पहुँच जाने से सनाथ हो जायेगी । मेरी माता ने बड़े दु:ख से इतने दिन पाला-पोसा और जब सुख का समय आया तब मुझसे बिछुड़ गई । मुझे धिक्कार है ।

---

१. संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्त्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ।। वा० रा० २।२१।४२।
२. वा० रा० २।२०।८।
३. वा० रा० २।२०।६,७।
४. वा० रा० २।२०।११।
५. वा० रा० २।३१।१५,१६।
६. वा० रा० २।२६।३१,३२।
७. वा० रा० २।२०।२,३।
८. वा० रा० २।३९।३७,३८।
९. वा० रा० २।३९।३९,४०।
१०. वा० रा० २।५३।१६ से २७ ।

संसार की कोई स्त्री मुझ जैसे पुत्र को जन्म न दे। मैं अपनी माँ को कितना दुःख दे रहा हूँ। उस अभागिनी और दुःख पड़ी हुई माता का मैं कोई उपकार नहीं कर सका। फिर मेरे जैसे पुत्र से क्या लाभ ?' उस निर्जन वन में ऐसी-ऐसी अनेकों बातें कह कर राम बहुत रोए।[1]

चित्रकूट में भरत को देखते ही राम बड़ी आतुरता से अपनी सभी माताओं की कुशल पूछते हैं।[2] चित्रकूट में मिलन तथा विदा होते समय अपने वत्सों से बिछुड़ती गौओं के सदृश माताओं का तथा राम का क्रमशः आतुर अभिवादन एवं रुदन बड़ा ही स्वाभाविक तथा करुणाजनक है।[3] वन से प्रत्यावर्तन के पश्चात् उनका मिलन भी तथैव है।[4]

'राम' के आदर्श मातृ-प्रेम निरुपण के साथ-साथ रामायण में राम का वह पक्ष भी दर्शाया गया है जिसका कि मानस में पूर्णतया अभाव है, वह है विमाता कैकयी में दोष दर्शन। अध्यात्म रामायण[5] तथा मानस[6] दोनों में कैकेयी के अपराध को विधि की प्रेरणा समझ कर या अन्य कारणवश क्षमा कर दिया गया है परन्तु 'रामायण' में राम उन दोषों की अवहेलना नहीं करते अपितु स्पष्ट शब्दों में सुमन्त से कहते हैं कि 'तुम्हारा लौट जाना परम आवश्यक है। तुम्हारे लौटने से मेरी छोटी माता सन्तुष्ट हो जायेगी क्योंकि उसे यह विश्वास हो जायगा कि राम वन को चले गए।'[7] सुमन्त्र के चले जाने पर राम ने निरावरण होकर अपने हृदयस्थित क्षोभ को प्रगट किया जो कि मानवोचित भी है। वे कैकेयी को दुष्टकर्म करने वाली मानते हैं और लक्ष्मण से नाना प्रकार की कैकेयी के प्रति आशंकाएँ प्रगट करते हैं कि वह कहीं महाराज शदरथ या कौशल्या तथा सुमित्रा को विष न दे दे.... इत्यादि।'[8]

---

१. वा० रा० २।५३।१६ से २७।
२. वा० रा० २।१००।१०।
३. वा० रा० २।११२।३१।
४. वा० रा० ६।१३०।४८,५०।
५. (१) चित्रकूट में राम से क्षमा माँगते समय कैकेयी कहती है :

कृतं मया दुष्टधिया मायामोहित चेतसा।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः। वा० रा० २।९।५६।

(२) यह सुनकर राम उसका अध्यात्म दृष्टि से उत्प्रेरक रूप में उत्तर देते हैं :
'मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता॥' वा० रा० २।९।६१।

६. 'दोषु देहि जननिहि जड़ तेई। जे गुरु साधु सभा नहिं सेई॥ मा० २।२६२।८।
७. वा० रा० २।५२।६१,६२।
८. (१) 'सा हि देवी महाराजं कैकेयी राज्यकारणात्।

अपि न च्यावयेत्प्राणान् दृष्ट्वा भरतमागतम्॥
क्षुद्रकर्मा हि कैकेयी द्वेषादन्या यमाचरेत्।' वा० रा० २।५३।७,१८।

(२) वा० रा० २।३१।१३।

उपर्युक्त दोष दृष्टि के उद्धरण पर दृष्टिपात करते हुये श्री वी० निवास शास्त्री जी राम में मानवत्व का प्रदर्शन करते हैं।[१]

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि राम ने सदा उसमें दोष ही देखा। मानवोचित दुर्बलताएँ उनमें भी हैं परन्तु उनका परिष्कार करने के लिये भी उनके पास क्षमा, उदारता तथा विशालता है। लक्ष्मण के मुख से कैकेयी की निन्दा सुनकर[२] उस निन्दा को न करने की आज्ञा देते हैं।[३] वे उसका दोष दर्शन न करने को भरत से कहते हैं[४] तथा पिता दशरथ से भी माता कैकेयी के प्रति क्षमा भाव रखने की प्रार्थना करते हैं।[५]

मानस के समान कैकेयी के देव प्रेरित अपराधों की ओर ध्यान न देने के लिये लक्ष्मण से कहते हैं कि मेरी राज्य प्राप्ति में विघ्न डालने वाली मेरी छोटी माता तथा पिताजी पर कुछ भी संदेह न करना क्योंकि ये लोग इस समय देव के वशीभूत होकर ऐसा कर रहे हैं। तुम देव की महिमा को भली प्रकार जानते हो।[६]

मानस में राम की मातृ-भक्ति—

गुरू भक्ति की अपेक्षाकृत राम की मातृ-भक्ति दोनों ग्रन्थों में ही समान आदर्श रूप में चित्रित की गई है :

'सुनु जननी सोइ सुत बड भागी। जो पितु मातु वचन अधुरागी।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।'

कहकर राम ने अपने जीवन से 'बड़ भागी' तथा 'दुर्लभ' को 'सुलभ' रूप चरितार्थ कर मातृ प्रेम का ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया। :स्वयं ही नहीं अपितु अपने सतत

---

1. ' So his head was far up in the clouds at the summit of human excellence almost approaching divinity, his feet was firmly planted on the ground......... Restraint fell away after Sumantra's departure. He gave vent to his inner feelings. Common feelings (as of us) repressed feelings find strange vent. He throws his outward disguise and shows his sheer force of will. The good man, the true man, the righteous man has this sort of feeling too. It is a point of Casuistry. Higher and lower nature, or common human element is seen in Rama.'
(Lectures on the V. Ramayan, 6th Lecture)

२. 'कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी।' वा० रा० ३।१६।३५।

३. 'न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।।' वा० रा० ३।१६।३७।

४. कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ।। वा० रा० २।११२।१९।

५. राम : प्राञ्जलिरब्रवीत्।
कुरु प्रादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च।।
सुपुत्रा त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया।
स शापः कैकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो।। वा० रा० ६।११९।२४,२५।

६. वा० रा० २।२२।३०।

अनुगामी भ्राता लक्ष्मण[१] तथा अपनी अभिन्न-हृदया पत्नी सीता जी[२] को भी इसी आदर्श की शिक्षा दी तथा उसको ही परम धर्म माना।[३] स्वपरिवार से ही नहीं पुरवासियों को भी अपनी माताओं की देख रेख की प्रार्थना कर निज उत्कट मातृ-चिन्ता को प्रकट करते हैं।[४] इससे भी विशेष आदर्श है उनका उदार भाव। विधि-प्रेरिता वनवासदात्री विमाता कैकेयी के प्रति राम के निश्छल उदार व संयत भावांजलियां जो उन्होंने अर्पित की हैं वे विशेष पूत भाव सुरभि सुवासित व अति मनोहर हैं। उस कटु वरदान के प्रसंग को सहज आनन्द निधान राम ने कितने निर्विकार रूप से श्रवण कर मातृ आज्ञा पालन की महत्ता पर विशेष ध्यान देते हुए अपनी सहज स्वीकृति सहर्ष प्रदान की।[५] इतना ही नहीं कभी आजीवन माता की इस कृति पर ध्यान भी न दिया और कहीं पश्चात्तापाग्नि दग्धा माता कैकेयी को कोई ग्लानि अनुभूत न हो अतः व्यवहार कुशल राम ने श्रद्धार्पण में, अभिवादन में सदा प्रथम स्थान उनको ही दिया।[६] इस उदार मातृ भक्ति का पूर्ण परिचय कैकेयी को भी सदैव होता रहा मन्थरा की कुमन्त्रणा के पूर्व भी[७] तथा पश्चात् भी। कपट वचनों में भाषण करते हुये भी उन्होंने राम की मातृ भक्ति, आज्ञा पालन का ही समर्थन किया।[८] अहिंसा ने हिंसा पर विजय प्राप्त की कैकेयी की कुटिलता राम की सरल हृदयता व मातृ भक्ति रूपी प्रकाश में तिरोहित हो गई और अवशेष भाव को पश्चात्तापाग्नि[९] में दग्ध कर 'सरल हृदया' 'भगति मति भेई' बन गई। जब कुटिल हृदया को मातृ प्रेम के बल पर सरल स्वभावा बना दिया तो फिर प्रेमानुरक्ता विमाता सुमित्रा के प्रति भाव कैसा होगा? यह इसी से मापा जा सकता है:

'गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अतिरंका॥'[१०]

रामायण में पितृ भक्ति--

'रामायण' तथा 'मानस' दोनों में ही पितृ-भक्ति का महान् आदर्श पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित है।

---

१. मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायं।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायं॥
अस जिनं जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
मा० २।७०, २।७०।१।

२. आयसु मोर सासु सेवकाई। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥ मा० २।६०।४।

३. एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥ मा० २।६०।५।

४. मा० २।८०।

५. मा० २।४१।

६. (१) मा० २।२४३।७,८।
(२) मा० ७।९।१ २।

७. मा० २।१४।५,६,८।

८. मा० २।४२।३,४।

९. 'लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥ मा० २।२५१।५,६।

१०. मा० २।२४८।३।

रामायण में राम की पितृ सेवा परायणता का प्रारम्भ से ही उल्लेख है। 'पितृशुश्रूषणरत' राम की ओर दशरथ विशेष वात्सल्य ही प्रदर्शित करते हैं क्योंकि 'रामो रतिकरः पितुः' हैं। राम अपने पिता को क्षण भर भी कष्टित नहीं देख सकते थे। पिता की इच्छा के लिये वे प्रत्येक प्रयत्न करने के लिये प्रस्तुत रहा करते थे। इसका प्रमाण उनकी वीरोचित गर्वोक्तियाँ हैं जिनमें पितृ आज्ञा पालन का महत्व पूर्णरूपेण प्रदर्शित है :

'कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानायेनमेषिता ।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वं चैनं प्रसादय ॥
अतोषयन् महाराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः ।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ।'[1]

'मुझमे कोई अनजान में अपराध तो नहीं हो गया है जिससे पिताजी रुष्ट हो गये हैं। न हो तो तुम्हीं इन्हें मनाओ। महाराज को बिना प्रसन्न किये, इनकी आज्ञा पालन किये और इनके कुपित रहते हुये क्षण भर भी जीवित रहना नहीं चाहता'

वन गमन के पूर्व बिना पिता की इच्छा जाने ही राम प्रतिज्ञा करके उसमें दृढ़ता की छाप लगा कर कहते हैं कि 'रामो द्विर्नाभिमाषते।' अध्यात्म रामायण में भी उत्तम मध्यम, अधम पुत्रों की कोटियों बतलाकर रामायण के समान ही राम ने गर्वोक्तियाँ की हैं।[2]

दशरथ को भी राम के आज्ञा पालन पर दृढ़ बिश्वास था जैसा कि वे स्वयं कैकेयी से कहते हैं :

'नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रति भाषितुम् ।
स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढ़मित्येव वक्ष्यति ॥
यदि में राघवः कुर्याद्वनं गच्छेति भाषितः ।
प्रतिकूलं प्रियं में स्यान्न तु वत्सः करिष्यति ॥'[3]

'जैसे ही राम से वन जाने को कहूँगा वैसे ही वह 'बहुत अच्छा' कह कर चल देगा, उलट कर दूसरी बात भी न कहेगा। जब मैं उससे कहूँ, 'बेटा! वन चले जाओ' और वह मेरी बात टाल दे तो बहुत अच्छा हो परन्तु मेरा वत्स राम ऐसा नहीं करेगा।

पिता के प्रति राम की उत्सर्ग भावना रामायण में दर्शनीय है। राम के लिये पितु सेवा तथा उनके आज्ञा पालन से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जैसा कि वे स्वयं

न ह्योऽधर्म चरणं किंचिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ।'[4]

राम 'गुरुजनों की आज्ञाकारिता से परलोक प्राप्ति' में विश्वास करते हैं[5] इसीलिये

---

१. वा० रा० २।१८।११,१५।
२. अ० रा० २।३।५९ ६१।
३. वा० रा० २।१५।८५, ८६।
४. वा० रा० २।१९।२२।
२. 'धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरु वर्तिना ।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ॥' वा० रा० २।१०५।४४।

वे कौशल्या की आर्त्त दशा पर द्रवित होते हुये भी पितुराज्ञा के कर्तव्य पर ही अडिग रहे तथा माता से पितुराज्ञोल्लंघन की असमर्थता ही प्रकट की ।[1]

लोक संग्रही राम ने अन्य लोगों की भी पितुराज्ञा पालन के सनातन धर्म पर सतत् कटिबद्ध रहने का आदेश पिया ।[2] राम के लिये निष्कंटक तथा वैभवपूर्ण साम्राज्य भी 'पितुराज्ञापालक' की उपाधि व यश सुमेरू के सन्मुख रज कण की भाँति तुच्छ था । वे पिता को केवल जन्मदाता ही नहीं, गुरु एवं देवता भी मानते थे । उस 'देवता भाव' के उपासक राम को अपनी देवोपासना की प्रबल उत्कंठा व चिन्ता थी :

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् ।
तस्माद्दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ।।'[3]

वे अपने पिता के सत्य रक्षा की पूर्ण चिन्ता करते हुये कहते हैं :

'त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे ।।[4]

स्वयं दशरथ भी उनके इस पितुरंजन रूप को स्वीकार करते हुये उसके दुर्लभत्व का निरूपण करते हैं ।

'दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव त्वया ।
मत्प्रियार्थं प्रियांस्त्यक्त्वा यद्यासि विजनं वनं ।।'[5]

वन गमन के सयय राम के पुत्र रूप का मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक चित्रण अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से किया गया है । 'हा राम, हा राम' के चतुर्दिक् निनाद व आर्तनाद से प्रभावित राम अपने संयम की सीमा न रोक सके और उनके नेत्रों द्वारा करुणा प्रतिध्वनित हो उठी ।

रुदन करते हुये राम, सीता एवं लक्ष्मण के सहित पिता के सम्मुख खड़े हो जाते हैं परन्तु फिर कर्त्तव्य की प्रेरणा राम को संजग करती है । अतएव वे पूर्वजों का उल्लेख कर पिता से वन गमन की आज्ञा माँगते हैं[6] तथा पिता को भी शान्त करने का प्रयास करते हैं ।

वग गमन के प्रसंग में दशरथ तथा कौशल्या वात्सल्य रस की उमड़ती सरिता की भाँति आर्तनाद करती हुई राम के रथ के पीछे भागती हैं । राम इस करुण दृश्य को देख

---

१. 'नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ।। वा० रा० २।२१।३० ।

२. (१) त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया ।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः ।। वा० रा० २।२१।४९ ।

(२) मया चैव भवत्या च कर्त्तव्यं वचनं पित ।
राजा भर्ता गुरूः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरं प्रभुः ।। वा० रा० २।२४।१६ ।

३. वा० रा० २।३४।५२ ।

४. वा० रा० २।३४।४८ ।

५. वा० रा० २।३४।३५ ।

६. वा० रा० २।३४।२४ ।

धर्म संकट में पड़ गये और सोचने लगे कि वे क्या करें ? वे स्वयं आहत होकर आतुर हो गये क्योंकि वे अंकुश के प्रहार से घायल गजराज की भाँति दुःखी राम माता पिता का वह दुःखदायी दृश्य नहीं देखना चाहते थे ।'[१]

ऐसी संकटकालीन परिस्थिति में पितृ प्रेम वशीभूत राम ने अपने सर्वप्रिय धर्म सत्य को भी पितृ प्रेमाम्बुधि में प्रवाहित कर दिया । वे सुमन्त्र से कहने लगे ।

'अधिक देर तक मुझसे यह दुःख (पिता का रुदन) न देखा जायगा । लौटने पर महराज कुछ कहें तो कह देना कि मैंने आपकी आवाज सुनी ही नहीं ।'[२]

इस प्रकार वे अपने पिता के दुःख को न देख सके । यथा सम्भव उनके कष्ट निवारण करने का प्रबन्ध किया ।

राम की अनुपस्थिति में प्रिय पुत्र राम से विमुक्त पिता की देखरेख क्योंकर होगी ? कौन उनकी उचित रूप से सेवा सुश्रूषा करेगा ? इन प्रश्नों को सोचकर राम चिन्तित हो उठते हैं और इसीलिये वे एक से नहीं अपितु सभी को पिता के हितचिन्तन व रक्षा का उत्तरदायी बनाते हैं । वत्स-वियुक्ता 'गौ' सम प्रपीड़िता कौशल्या से भी राम पिता की सम्यक् देखभाल करने का अनुरोध करते हैं ।[३] आर्तनाद करते हुये पुरवासियों को भी राम पिता के कष्ट निवारण का कार्य सौंपते है ।[४] अपने प्रति अटूट अनुराग का पारितोषिक भी राम उनसे पितृ सेवा ही माँगते हैं ।

वन में पहुँचकर भी पितृ वत्सल राम को पिता की अहर्निश चिन्ता व्यथित करती रहती है ।[५] 'पितुराज्ञामनुस्मरन्' राम अपने पिता के कल्याण के हेतु चिन्तित हो उठे अतः वे सचिव सुमन्त्र को शीघ्रातिशीघ्र लौटने का अनुरोध करने लगे ।

सुमन्त्र को विदा करते समय भी राम का पुत्र रूप रामायण में अत्यन्त मार्मिक चित्रित हुआ है । सुमन्त्र ने 'रामोऽश्रुमुखः' तथा 'रामो राजीव ताम्राक्षोऽमृशमश्रूण्य वर्तयत्' कहकर राम का यथार्थ शब्द चित्र खींचा है ।

अपने पिता की विरुदावलियों का स्मरण करते हुए राम सुमन्त्र द्वारा पिता को प्रणाम करते हैं ।[६]

इससे भी अधिक राम का यथार्थ पुत्र रूप उस समय दिखाई पड़ता है जब कि वे भरत को चित्रकूट में देखते ही सर्वप्रथम 'क्व नु तेऽभूत्पिता' की पुकार कर उठते हैं तथा पितृ मरण सुनते ही मर्माहत होने के कारण राम चेतना शून्य हो जाते हैं ।[७]

---

१. वा० रा० २।४०।४२ ।
२. वा० रा० २।४०।४७ ।
३. वा० रा० १।३९।३४ ।
४. 'न संतप्येद्यथा चासो वनवासं गते मयि ।
महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ।।' वा० रा० २।४५।१० ।
५. 'पितरं चानशोचामि मातरं च यशस्विनीम् ।
अपि व्रान्धौ भवेतां तु रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः ।।' वा० रा० २।४६।६ ।
६. वा० रा० २।५८।१५।
७. वा० रा० २।१०२।१।

चित्रकूट में भरत से साक्षात्कार होने पर राम, भरत के अपरिमित स्नेह प्रदर्शन करने पर भी पितुराज्ञा की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि स्थान देकर भरत के अनेक तर्कों का खंडन करते हैं।[1] भरत को भी उस पितृराज्ञा की मर्यादा के सन्मुख नत होना ही पड़ता है। रामायण में यह पितुराज्ञा ही वह दृढ़ स्तम्भ है जो गुरु के हिलाये भी टस से मस न हो सका। जब वशिष्ठ ने राम को अयोध्या प्रत्यावर्त्तन के हेतु समझाने की चेष्टा की तब भी राम की यही दृढ़ोक्ति रही।

'स हि राजा जनयिता पिता दशरथो मम।
आज्ञातं यन्मया तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति।।'[2]

अर्थात् 'महाराज दशरथ मेरे जन्मदाता पिता थे। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दी थी मैं उसके विपरीत आचरण कदापि न करूँगा।'

यद्यपि उक्त कथन में राम पर हठधर्मी एवं गुरु के प्रति अशिष्टता का आरोप लग सकता है परन्तु इसके मूल भाव पितृ भक्ति को जानकर विज्ञ लोग सराहना किये बिना नहीं रह सकते।[3] भरत नगरवासियों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग ही क्यों नहीं आर्य राम को समझाते हैं तब नागरिक भी राम के पक्ष का ही न्यायोचित समर्थन करते हुये कहते हैं।

'एषोऽपि हि महाभाग: पितुर्वचसि तिष्ठति।
अतएव न शक्ता स्मो व्यावर्तयितुमञ्जसा।।'[4]

अर्थात् 'किन्तु जब ये महानुभाव पिता की आज्ञा पालन करने के निश्चय पर दृढ़ हैं तो हम उन्हें बलात् कैसे लौटा सकते हैं।

राम स्वयं ही नहीं अपने सभी भाइयों को भी पितुराज्ञा पालन का आदेश देते हैं।

'चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद'।'[5]

अर्थात् 'हम चारों ही पुत्र मिलकर पिता के सत्य की रक्षा करें। हे भरत! तुम किसी प्रकार का दु:ख न करो।'

पुत्र के ही सत्कर्मों व उसकी पितृ भक्ति का पुण्य पिता को भी अर्पित किया जाता है। उक्त तथ्य का स्पष्टीकरण हम राम के प्रति कही हुई शंकर जी की उक्ति में पाते हैं।

'इन्द्रलोकं गत: श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारित:।'[6]

अर्थात् 'हे राम! तुम्हारे जैसे पुत्र के द्वारा ही इनको (दशरथ को) इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है।'

---

१. वा० रा० २।१०५।४० से ४२।
२. वा० रा० २।१११।११।
३. 'साधु कुर्वन् महात्मानं पितरं सत्यवादिनं।
रामो धर्मे स्थित: श्रेष्ठो न स शोच्य: कदाचन।।' वा० रा० २।४४।४।
४. वा० रा० २।१११।२९।
५. वा० रा० २।१०७।१९।
६. वा० रा० ६।१२२।८।

यही कारण है कि राम जैसे पुत्र की पितृ-भक्ति से विहीन परम दुर्लभ स्वर्ग भी दशरथ को वांछनीय नहीं ।

'न मे स्वर्गो बहुमत: संमानश्च सुरर्षिभि:
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिश्रृणोमि ते ।।'[१]

राम की पितृ-भक्ति के पूर्वोक्त विवेचन द्वारा यही स्पष्ट होता है कि राम की अभिवादन-शीलता, नम्रता, विनय शीलता, आज्ञा पालन एवं सत्य-संधत्व सभी गुणों का उत्तरोत्तर विकास एवं व्यक्तीकरण रामायण में विस्तृत रूपेण किया गया है परन्तु उनकी पितृ भक्ति के यश चन्द्र में एक कलंक का चिह्न भी है जिसके द्वारा वे लोकोत्तर राम से मानव राम कहे जा सकते हैं । उनके चरित्र में यह दोष दर्शन दर्शाकर वाल्मीकि जी ने मनोवैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकता प्रस्तुत कर दी है । राम के नर चरित्र का निरूपण करते हुये राम का यह रूप नितान्त आवश्यक भी था । इसी तथ्य की ओर लक्ष्य करते हुए श्री वी० निवास शास्त्री जी ने राम के चरित्र की विवेचना[२] की है जिसमें उन्होंने यह दर्शाया है कि दु:खमय परिस्थिति की प्रेरणावश राम में संदेहादि प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुईं और इस प्रकार वे मानव के स्तर पर स्थित हुये ।

परन्तु राम में यह दोष दर्शन की प्रवृत्ति मानवीय आवेश गत अर्थात् जो अन्तर्गत ही है, स्थायी रूप में नहीं क्योंकि जब भरत राम की भाँति दशरथ में दोष देखते हैं[३] तब राम न्यायोचित रीति से भरत के तर्कों का खंडन करते हैं और दशरथ का ही समर्थन करते हैं कि राजा दशरथ ने जो कुछ भी किया वह अपनी पूर्व दत्त प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये ही किया ।[४]

रामायण में इस मानवीय क्षोभ प्रदर्शन रूपी कलंक के होते हुए भी राम की अटल पितृ भक्ति चन्द्र सम स्निग्ध, सुखद व ध्रुव सम निश्चित है ।

मानस में राम की पितृ-भक्ति

रामायणकार की अपेक्षाकृत मानसकार ने राम की पितृ भक्ति के आदर्श को विशेष गौरव प्रदान किया है । तुलसी के राम का तो आदर्श ही यह है कि·······

'धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ।।'[५]

मानस में भी पितृ भक्ति के मुख्य केन्द्र पर ही राम का यावज्जीवन आधारित है ।

---

१. वा० रा० २।१२२।१३।
2. 'Under a stroke of adversity he felt more or less like a hucman being. He suspected people, Kaikeyi, Bharat too to some extent. Rama is in exhaustible. We perceive the kinship between Rama and ours-lves. We can rise ourselves by his example'.
   (Lectures on V. Ramayana, 6th Lecture).
३. वा० रा० २।१०६।१३, १४।
४. वा० रा० २।१०८।३।
५. मा० २.४५।१।

मानस में बाल्यावस्था से ही वे शिशुलीला द्वारा अपने पिता को क्रीड़ानन्द प्रदान करते हैं ।[1] नित्य पिता को नमन कर,[2] उनसे आज्ञा लेकर सफलतापूर्वक 'पुरकाज' सम्पादित करके[3] दशरथ को सदैव प्रसन्न करते हैं ।

विश्वामित्र से 'राम देत नहिं बनइ गोसाईं' कहकर दशरथ भी अपने पुत्र राम के प्रति अपना विशेषानुराग प्रदर्शित करते हैं । राम भी अपने पिता को क्षण भर भी कष्टित नहीं देख सकते । पिता की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने के लिए वे प्रयत्नशील राम अत्यन्त व्यग्र होकर कहते हैं ।

'मोहि कहु मातु तात दुख कारन । करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ।।[4]

कैकेई द्वारा पिता की आज्ञा सुनकर राम तनिक भी विचलित नहीं होते हैं अपितु 'सहज आनन्द निधान' रूप में ही शान्ति एवं गौरव से प्रेरित होकर कहते हैं ।

'सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।'[5]

सतत् पितृ सन्तोष का दुर्लभ व्रत धारण करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने मानस में भी पिता की आज्ञा के प्रति अपनी सहर्ष स्वीकृति प्रदान की है ।[6]

इतना ही नहीं वे अत्यन्त विनम्र एवं संकोचशील पुत्र के रूप में कहते हैं ।

'राउ धीर गुन उदधि अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ।।'[7]

परन्तु उक्त विनयशीलता का कैकेयी को सम्यक् परिचय प्राप्त है अतएव वे राम की पितृ भक्ति को प्रमाणित करती हैं ।

'तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता । जननी जनक बन्धु सुखदाता ।
राम सत्य सबु जो कछु कहहु । तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ।।'[8]

माता कौशल्या भी ऐसा ही कहती हैं ।

'तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ।।[9]

राम भी पितु प्रेम द्वारा पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को सुलभ मानते हैं ।

'चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ।।'[10]

---

१. 'धूसर धूरि भरें तनु आए । भूपति बिहंसि गोद बैठाए ।।' मा० १।२०२।९।
२. 'प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।।' मा० १।२०४।७।
३. 'आयसु माँगि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ।।' मा० १।२०४।८।
४. मा० २।३९।५।
५. मा० २।४०।७, ८।
६. मा० २।४१।
७. मा० २।४१।७।
८. मा० २।४२।३,४।
९. मा० २।५३।६।
१०. मा० २।४५।२।

'पितु आयसु सब धरमक टीका' माननेवाले राम रामायण की भाँति मानस में तनिक भी पितु आज्ञा से विचलित नहीं होते और न दुःख ही प्रकट करते हैं अपितु अत्यन्त मर्यादित ढंग से माता कौसल्या व रानी सीता को पितु आदेश सुनाते हैं।

मानस में पित्रानुरागी राम प्रत्येक स्थिति में अपना अत्यन्त संयत एवं गम्भीर रूप दर्शाते हैं। रामायण की अपेक्षाकृत वे निर्विकार उपदेशक का सा रूप धारण कर अपने पिता को परितुष्ट करते हुये कहते हैं।

'पितु असीस आयसु मोहिं दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपवादू ॥'[1]

सुमंत्र के लौटते समय भी राम शान्त एवं धैर्यशील हृदय से अपने पिता को संदेश भेजकर आत्मसंयम, नम्रता एवं परम संतोष का परिचय देते हुये अपने पिता को सान्त्वना देने की चेष्टा करते हैं।

'पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ॥'[2]

उक्त उद्धरणों से यही निर्दशित होता है कि रामायण के भावप्रवण रूप की अपेक्षा मानस में राम अत्यन्त गम्भीर, संयत एवं प्रौढ़ता का परिचय देते हैं।

उक्त अन्तर का कारण तुलसी की राम की भक्ति भावना है। वे अपने इष्टदेव को साधारण पुत्रवत् विलाप करते नहीं दर्शाते क्योंकि उनके राम रामायण के राम की भाँति नर नहीं हैं वे 'सोइ सच्चिदानन्द घन' हैं अतएव सुख दुःख से परे रहकर निःसंगत्व का आचरण करते हैं।

राम मानस में भी पिता के सुख की चिन्ता करते हुए उसी को निज परम कल्याण कर्ता की उपाधि देते हैं जो उनके पिता को आनन्दित कर सकता है।[3]

चित्रकूट प्रसंग में भरत के स्नेह सागर में निमज्जित होकर भी राम अपने पितुरादेश एवं उनका वात्सल्य विस्मृत नहीं कर पाते। इसीलिये वे विवेचनात्मक एवं तार्किक रीति से भरत के स्नेहानुरोध का उत्तर देते हैं।

राखेउ राय सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू।………'[4]

रामायण के राम में भावावेश के कारण पिता में दोष दर्शन की मनोवृत्ति का मानस में नितान्त अभाव है अपितु पिता के कटु आदेश को सुनकर भी हर्षातिरेक से पुलकित होकर राम दशरथ से कहते हैं।

'अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥'
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुन प्रसंग भए सीतल गाता ॥

---

१. मा० २।७६।३।
२. मा० २।६५।
३. 'सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहैं भुआल सुखारी ॥' मा० २।७९।८।
४. मा० २।२६३।६,७।

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय............'[१]

मर्यादा पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्मावतारी राम अपने पिता के दोषों पर क्षोभ प्रकट करें ऐसा अमर्यादित प्रसंग लिखने की धृष्टता मर्यादावादी तुलसी कैसे कर सकते थे ? ऐसा करने से तो उनको इष्टदेव में दोष दर्शन के पाप का भागी बनना पड़ता। अतएव इस दृष्टि से मानस के राम निष्कलंक चन्द्रवत् हैं।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि रामायण के राम की पितृवत्सलता सकलंक थी तथा मानस की अकलंक। मानस की अपेक्षाकृत रामामण में 'भाव सघनता' की मार्मिकता अधिक है क्योंकि मानस में दशरथ पिता ही नहीं अपितु वात्सल्यासक्ति में तन्मय भक्त भी हैं। अतएव पुत्र की अपेक्षा राम का भगवान् का रूप भी प्रधान हो गया है। युद्ध समाप्ति पर दशरथ के आगमन पर राम का यह रूप स्पष्टत: वर्णित है।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरवाद पिता तब दीन्हा॥
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यौ अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥'[२]

उक्त प्रसंग में राम के दो रूपों की ओर तुलसी ने संकेत किया है। युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् पितु दर्शन लाभ करते ही राम ने अभिवादनशीलता का परिचय दिया और आशीर्वचन उपलब्ध किये। इसके अतिरिक्त अपनी दुर्लभ विजय का श्रेय भी पिता को ही समर्पित कर अपनी कृतज्ञतांजलि अर्पित की। पिता गद्गद् हो उठे। उस भाव विभोर दशा में राम ने दशरथ में दो भावों के दर्शन किये। पुत्र के विजय लाभ पर हर्ष पुलक तथा राम ने ईश्वरत्व की अनुभूति कर भगवान् राम के प्रति भावांजलि अर्पण। राम ने इस द्वैधी प्रेम को देख 'पितु स्नेह' का तो अनुभव किया ही, किन्तु साथ ही दशरथ के भक्त रूप के प्रति भी अपना कर्त्तव्य पालन किया अर्थात् पिता के प्रथम प्रेम को अनुमानित कर भगवान् रूप से उन्हें दृढ़ ज्ञान प्रदान किया जैसा कि कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं।

'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।'[३]

उक्त विवेचनों द्वारा यही स्पष्ट होता है कि रामायण में राम की पितृ भक्ति मार्मिक, अत्यन्त सजीव, मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ रूप में चित्रित हुई है जब कि मानस के राम की पितृ भक्ति, भक्ति भावना एवं मर्यादा से परिपुष्ट आदर्श रूप में वर्णित है।

---

३. मा० २।४४।७,८, २।४५।
१. मा० ६।१११।१ से ५ तक।
२. गीता १०।१०।

भ्रातृ प्रेम

अपने भ्राता को 'द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं' मानने वाले राम का भ्रातृ-प्रेम दोनों में ही शीर्षासन पर स्थित है। श्री वी० निवास शास्त्री भी इसकी प्रमुखता देते हैं।[1]

सभी भाइयों के प्रति राम के हृदय में अपार स्नेह, त्याग, करुणा, अनुराग, कर्तव्य भावना आदि उत्तरोत्तर भाव रत्नों का आगार था। एक माता की सन्तान होने पर भी आदर्श सहोदर भाव को चरमसीमा पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय राम को ही है। बाल क्रीड़ा से लेकर राजा रूप में प्रतिष्ठित होने तक यावज्जीवन इस भ्रातृ प्रेम की दिव्य ज्योति कहीं भी विषम परिस्थितियों, संघर्षों के अन्धड़ से न झिलमिला ही सकी और न मन्द ही हो सकी।

दोनों महाकाव्यों में राम के शैशव में ही साथ ही रहन सहन, खान पान उनके परस्पर सहयोग व संगठन व स्नेह का परिचायक है।[2] परन्तु बाल्यकाल में वे चंचल प्रवृत्ति के वशीभूत होकर भाइयों को केवल क्रीड़ानुरक्त ही नहीं बनाते अपितु उनके प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह भी सम्यक् रूपेण करते हैं।[3] राम का भ्रातृ प्रेम भाव पक्ष तथा कर्त्तव्य पक्ष, दोनों ही दृष्टिकोण से पूर्ण है। लक्ष्मण तथा भरत के प्रति विशेष कृपा का प्रदर्शन किया है। प्रथम के प्रति संयोग भाव से। द्वितीय के प्रति वियोग भाव से। लक्ष्मण यदि उनके जीवन संगी हैं तो भरत हृदय संगी हैं।[4] लक्ष्मण के लिए 'प्रियं प्राणं बहिश्चरम्' कहकर अभिन्न रूप माना है तो भरत को भाइयों में अनन्य अप्रतिम।

'न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमा:'[5]

लक्ष्मण के साथ ही विश्वामित्र से शिक्षा ग्रहण कर जनकपुर पहुँचे। भ्रातानुरागी राम हृदयस्थित कामना को जान गये[6] और उसकी पूर्ति भी की जनकपुर भ्रमण कर।[7] इससे भी अधिक प्रशंसनीय है उनका सारल्य व भाई के प्रति निष्कपट व्यवहार जो अति

---

1. 'From the beginning the superiority of Sri Rama is placed beyond all doubt......His two out-standing qualities are reverence towards elders and brotherliness'.

(Lectures on V. Ramayan, II Lecture).

२. 'अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ।।' मा० १।२०४।४
३. 'बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ।।' मा० १।२०४।६
४. 'भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही ।।'
५. वा० रा० ६।१८।१५।
६. राम अनुजमन की गति जानी। भगत बछलता हियं हुलसानी ।।
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु संकोच डर प्रगट न कहहीं ।।
७. राम देखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ।।

मा० बा० कां० २१८।

गोप्य चर्चाओं को भी बिना भाई से व्यक्त किये न रह सके।[1] कथा भेद की दृष्टि से रामायण में प्रसंग ही नहीं है।

पुष्प वाटिका के पश्चात् जनक सभा में राम का कर्तव्य पक्ष स्पष्टतः लक्षित होता है। 'आशु कोप' व 'आशु तोष' भैया लक्ष्मण के स्वभाव से वे पूर्णतया भिन्न हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम यह नहीं चाहते कि उनका भाई कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन करे अतः जहाँ कहीं उन्हें अपने भाई में क्षोभ, आवेग, आवेशादि के लक्षण दृष्टिगत होते हैं वहीं राम संकेत मात्र से ही उस पर नियन्त्रण कर मर्यादोल्लंघन या शील सदाचार की सीमा से बाहर जाने से बचाना अपना कर्तव्य मानते हैं।[2] भाई के शिष्टाचार का अति क्रमण करते समय राम ने उनके प्रति बहुधा कनिष्ठों के प्रति व्यवहृत दमन नीति का उग्र रूप नहीं धारण किया वरंच कल्याण कामना से प्रेरित संकेतादि अनुभावों से ही उस कार्य को सिद्ध किया।

'रामायण' में उक्त प्रसंग का अभाव है परन्तु राम का यह रूप प्राप्य है 'वन गमन' के समय। जब कि लक्ष्मण 'वन गमन' का समाचार सुनते ही क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित हो पिता दशरथ, माता कैकेई तथा भरत के प्रति भी उग्र भाव धारण कर रौद्र रूप जाते हैं। परन्तु राम ने परम विवेक पूर्ण उपदेश से उस उमड़ते हुए क्षुब्ध सागर सम लक्ष्मण को

---

१. (१) पुष्प वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन प्राप्त होने पर........

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।'........
बोले सुचि मन अनुज सन वचन समय अनुहारि
तात जनक तनया यह सोई.......आदि।' मा० १।२२९।१,१।२३०।

(२) बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातु ज्येष्ठस्य नित्यशः॥
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।
लक्ष्मणो लक्ष्मिसपन्नो बहिः प्राण इवापरः॥
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना॥
यदा हि हयमारूढ़ो मृगयां याति राघवः।
तदेनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्॥ वा० रा० १।१८।२७।३०।

२. उनके 'वीर विहीन मही' कहने से, जनक पर क्रुद्ध होने पर........

(१) सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
(२) परशुराम के प्रति व्यंग्योक्तियाँ कहने पर पुनः
रघुपति सयनहि लखनु नेवारे........ मा० १।२७५ ८।
(३) उसी पूर्व प्रसंग में उनके उपहास करने पर........
सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम॥ मा० १।२७८।

नियंत्रित किया ।[1] तथा उससे अपने समान ही निश्चय करने का आदेश देकर प्रभावित भी किया तथा अपने ही समान 'दैव प्राबल्य' पर विश्वास कर क्षोभ निवारण का साधन भी बताया ।[2]

मानस में इस प्रसंग में क्षोभ शान्ति के स्थान पर अपने भाई के अनन्य प्रेम प्राबल्य को देखकर अध्यात्म रामायण[3] के समान नीति शिक्षा द्वारा शान्त करने का प्रयत्न किया है ।[4] परन्तु भाई का स्नेह सागर असीमित होने के कारण करुणार्द्र राम स्वयं उसमें निमज्जित हुये बिना न रह सके । नियंत्रित, मर्यादित नीति शिक्षण की सरिता को भाव जलधि में तिरोहित होना ही पड़ा, अस्तित्व लय करना ही पड़ा ।[5] 'रामायण' के प्रसंग में भी लक्ष्मण के क्रोध प्रदर्शन से रूष्ट न होकर[6] प्रशंसा ही की । राम ने यथा सम्भव उसे शान्त कर उनके विशेष आग्रह को मानकर अपने साथ चलने की आज्ञा दे दी[7] अपने ही समान क्रियाएँ कराकर[8] क्योंकि राम अपने भाइयों को अपने ही समान आदर्श बनाने के सतत् इच्छुक रहा करते थे ।

इसके अतिरिक्त क्षोभ निवारण का महत्वपूर्ण प्रसंग भरत के चित्रकूटागमन पर है । मानस[9] तथा रामायण[10] दोनों में ही भरतगुण प्रशंसा के द्वारा लक्ष्मण के अनुमान जनित रोष को शान्त किया है ।

किष्किन्धा में सुग्रीव की असावधानता पर राम के क्षुब्ध होते ही लक्ष्मण उससे कहीं अधिक मात्रा में कुपित हो गये परन्तु राम ने तुरन्त उसका नियन्त्रण करने के हेतु अपना

---

१. तदेनां विसृजनार्यो क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
   धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ।। वा० रा० २।२१।४४ ।

२. 'इत्या तत्वया बुद्धया संस्तभ्यात्मनमात्मना ।
   व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ।।' वा० रा० २।२२।२५ ।

३. अध्यात्म रामायण २।४।१९ से ४७ तक ।

४. बोले बचनु राम नय नागर । सील सनेह सरल सुख सागर ।
   ....से........'रहहु तात असि नीति बिचारी ।' तक । मा० २।७०,७१ ।

५. करुनासिंधु सु बंधु के सुनि मृदु वचन विनीत ।
   समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत ।।
   माँगहु विदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ।। मा अ० कां० ७२,७३ ।

६. 'स्निग्धो धर्मरतो वीर सततं सत्पथे स्थितः ।
   प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राता चापि सखा च मे ।।' वा० रा० २।३१।१० ।

७. रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् ।
   व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ।। वा० रा० २।३१।२ ।

८. ब्राह्मणों को दान इत्यादि दिलवाया ।

९. मा० २।२३१ से २।२३२ तक ।

१०. वा० रा० २।९७ सर्ग ९ से १८ श्लोक तक ।

भाव परिवर्तन कर आदेश दिया शान्ति नीति व्यवहार करने का[1] जिससे मित्र की मर्यादा का उल्लंघन न कहीं हो जाय ?

उक्त विभिन्न उद्धरण राम के भ्रातृ पक्ष की कल्याण कामना के निर्णायक हैं। राम सतत् लक्ष्मण के आवेश के प्रति जागरूप रहते हैं। भाई के विकारों के प्रति सतत् सचेष्ट क्रियाशील रहना उसके हितचिन्तन का ध्यान राम का प्रवल कर्त्तव्य पक्ष है। परन्तु उनका भाव पक्ष भी कम सराहनीय नहीं। यह वह भाव जलधि है जिसमें असंख्य करुणा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग की सरिताओं का सम्मिश्रण है जिनकी पृथक् सरिताओं में अवगाहन से ही भ्रातृ प्रेम का परम सुख व अनुपम आनन्द उपलब्ध हो सकता है।

जिस राज्य एवं वैभव प्राप्ति के कारण इन्द्र काक की भाँति तपस्वियों से सशंकित रहा करते हैं उसी राज्य का अधिकार पाने का समाचार सुनते ही राम की त्याग भावना व निर्लोभ दर्शनीय है। वे अपनी प्राप्त होनेवाली राज्यलक्ष्मी को भैया लषनलाल की मानते हैं,[2] उनका प्राप्य राज्य व स्वयं उनका जीवन भी उनके भाइयों का है। अध्यात्म रामायण में भी इसी कथन को दृढ़तर रूप से राम ने लक्ष्मण से कहा है।[3] मानस में भी इसी कथन का संकेत लक्ष्मण के प्रति 'सनमाने प्रिय बचन कहि' द्वारा दिया है। परन्तु दैवयोग से राज्यलक्ष्मी के भाजन स्वयं न बन सके अतः पूर्व कृत प्रतिज्ञानुसार लक्ष्मण वनलक्ष्मी के सहभोगी बने। वहाँ भीं राम को अपने भाई के सुख दुःख की अहर्निश चिन्ता रहती है।[4] उन्हें सान्त्वना देते हैं[5]। परन्तु इतना ही नहीं उन्हें अपना परम आश्रय व सहायक मानकर कृतज्ञ भी होते हैं।[6]

---

१. मानस—तब अनुजहिं समझावा रघुपति करुनासींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ॥ मा० कि० कां० १८।
रामायण—'न हि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत्।
कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥' वा० रा० ४।३१।६।

२. 'लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरूपस्थिता ॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं च हि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥' वा० रा० २।४।४३,४४।

३. 'सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति।
निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥
मम त्वं हि बहिः प्राणो नात्र कार्या विचारणा।' अ० रा० २।२।३७,३८।

४. सीय लखन जेहि विधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुख मानी ॥ मा० २।२७७।

५. 'इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्।
वनवासस्य भद्रं ते स नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥' वा० रा० २।४६।२।

६. 'त्वया कार्यं नरव्याघ्र मामनुव्रजता कृतम्।
अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थे सहायता ॥' वा० रा० २।४६।९।

स्वयं माता जानकी भी इस व्यवहार से पूर्णतया परिचित होने के कारण हनुमान से कहती हैं ।

मत्त: प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मण ।'

प्राणप्रिया सीता से भी अधिक लक्ष्मण के प्रति प्रेम का प्रबलतम करुण प्रवाह अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा हृदय द्रावक है । 'रामायण' तथा 'मानस' में युद्ध प्रसंग में करुण रस तथा भ्रातृ स्नेह की गंगा जमुनी प्रबल धाराओं का संगम है, जबकि लक्सण इन्द्रजीत के नागबाण से मूर्छित हो जाते हैं ।[1] रामायण के युद्ध कांड का समस्त ४९वां सर्ग राम के उत्कट भ्रातृ प्रेम का निर्झर है जो लक्ष्मण की शक्ति का प्रबल वज्राघात पाकर अचलवत् गम्भीर राम के गम्भीर मानस से फूट निकलता है ।[2] इसी प्रकार रावण की शक्ति प्रहार से आहत लक्ष्मण को देखकर जहाँ राम ने अपने अलौकिक आह्वान व अंतस्थित स्वरूप उद्बोधन द्वारा लक्ष्मण को स्वस्थ कर लिया[3] वहीं रामायण में पूर्ववत् प्रलाप कर उठे, व्याकुल हो उठे, आतुर हो उठे, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये ।[4]

ऐसा ही भावना कर्त्तव्य का संघर्षमय प्रसंग, राम की भ्रातृ भक्ति का प्रमाण रामायण में और है जिसका मानस में सर्वथा अभाव है क्योंकि तुलसीदास जी का उद्देश्य अपने इष्टदेव का महाप्रयाण चित्रण करना न था। उत्तर कांड में स्वयं काल जब ऋषि रूप में राम के पास पितामह ब्रह्मा का संदेश देने आता है उस समय राम द्वार पर लक्ष्मण को ही नियुक्त करते हैं जिससे कोई भी उनकी वार्ता को न सुन सके अन्यथा उसी को प्राण दंड दिया जायगा । परन्तु दैवयोग से दुर्वासा के कोप से भयभीत होकर लक्ष्मण को स्वपरिवार का हितचिन्तन कर राम के पास जाना ही पड़ा और राम उस पूर्व नियम (प्राण दंड) का चिन्तन कर महान् दु:खी हुये । राहु से ग्रसित चन्द्रमा की भाँति वे शोकाप्लुत हो उठे । एक ओर थी कालमुनि से की हुई प्रतिज्ञा और दूसरी ओर प्रबल भ्रातृ भावना थी। भ्रातृ-वत्सल राम दोनों ही कसौटी पर खरे उतरे । धर्म की रक्षा के लिये लक्ष्मण त्याग किया परन्तु उनके स्वर्गारोहण पर स्वयं भी न रुक सके । उन्होंने भी जीवन संगी भ्राता के साथ जीवन समर्पण करने का निश्चय कर डाला ।[5]

---

१. वा० रा० ६।४९।५ ७,१७ ।

२. मा० लं० कां० ६०।२-१७।

३. 'कह रघुबीर समुझु जियं भ्राता । तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता ।।
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ।।'
मा० लं० कां० ८३। ६-६

४. वा० रा० ६।१०२।९ से १३ तक ।

५. विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःख शोकसमन्वित: ।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमां श्चेदमब्रवीत् ।।
अथ राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् ।
अयोध्याया: पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ।।
प्रवेशयत् संभारान् मा भूत् कालस्य पर्यय: ।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् । वा० रा० ७।१०६।१-२—३ ।

अपने भाई लक्ष्मण के ऐहिक सुख की ही नहीं अपितु पारलौकिक कल्याण की भी राम को पूर्ण चिन्ता थी। अतः सांसारिक मर्यादा पालन तथा आध्यत्मिक ज्ञान दोनों का सम्यक् ज्ञान उन्होंने लक्ष्मण को कराया। 'मानस'[1] तथा अध्यात्म रामायण[2] में द्विविध उपदेश दिये परन्तु 'रामायण' में वनगमन प्रसंग तथा आवेश प्रसंगों पर नीति व मर्यादा पालन के ही उपदेश दिये।

इस प्रकार अपने कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण के प्रति केवल लघुता का ही सम्बन्ध नहीं अपितु उनके साथ समयानुसार विभिन्न सम्बन्ध स्थापित किये। उपर्युक्त उपदेश देते समय गुरु शिष्य का, परामर्श लेते समय मित्रवत्[3] व्याकुल होने पर गुरुवत्[4] तथा पालन करते समय पुत्रवत्[5] व्यवहार का पूर्ण रूपेण निर्वाह किया। इसी दिव्य अलौकिक भ्रातृ स्नेह के ही कारण तो लक्ष्मण ने आजीवन कैंकर्य[6] स्वीकार कर आत्म समर्पण ही करने में अपना परम कल्याण माना।

'बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥'

तथा वन गमन प्रसंग पर—

'मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी।'.........इत्यादि।

स्वामी भी हो तो ऐसा ही जिसने सतत् अपना प्रभुत्व कल्याणार्थ ही प्रदर्शित किया। आज्ञापालक शिष्य की तनिक भी असावधानता पर बिना कहे न रुक सके। सीताहरण के प्रसंग में लक्ष्मण को नियुक्त किया था। सीता की रक्षा के हेतु परन्तु सीता के हृदय विदारक मार्मिक व्यंगों को सुनकर लक्ष्मण धर्म संकट में पड़ गये और अन्त में उन्हें जाना ही पड़ा,

---

१. (१) मानस २।७०। वनगमन प्रसंग पर नीति का उपदेश
   (२) मानस ३।१४। दंडकारण्य में ईश्वर जीव, माया आदि पर आध्यात्मिक उपदेश
   (३) मानस ४।१८। सुग्रीव पर क्रुद्ध होने पर नीति का उपदेश

२. (१) अध्या० रा० २।४।१९ से ४७ श्लोक तक। वनगमन प्रसंग पर आध्यात्मिक उपदेश
   (२) अ० रा० ३।४।१७ से। ज्ञान माया नवधा भक्ति आदि आध्यात्मिक प्रवचन
   (२) अ० रा० ४।४।११ से ४० तक। पूजा साधन क्रियायोग का विवरण
   (४) अ० रा० ४।५।१३। क्रोध शमन
   (५) अ० रा० ७।५।६ से। वर्णाश्रम धर्म आदि

३. समुद्र तट पर। (मा० ५।५०।३—४)

४. सीता विरह के कारण उन्मादग्रस्त अवस्था में कई बार लक्ष्मण ने राम का समाधान किया और राम ने उनके द्वारा शान्ति लाभ किया।

५. 'लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं'—पुत्रवत्
   'जिमि बासव बस अमर पुर सची जयंत समेत।' मा० २।१४१।

६. 'अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्वतः।'
   सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥' बा० रा० २।२१।१६।

सीता को एकाकी छोड़कर । परन्तु राम इस पर प्रसन्न नहीं हुये । आज्ञोल्लंघन का अपराधी निर्धारित ही कर दिया, स्पष्ट शब्दों में—

रामायण में—'नाकरोः शासनं मम'[१]

तथा मानस में—'आयहु तात बचन मम पेली'[२]

छोटों की तनिक सी भी असावधानता या त्रुटि का संकेत अवश्य कर देना चाहिए, जिससे उनके निर्मल जीवन यशचन्द्र में तनिक भी धब्बा न लग सके परन्तु इस दोष के लिये कोई मनः ग्रन्थि उदार राम ने नहीं बाँधी अपितु भाई के साथ यावज्जीवन प्रेम निर्वाह किया ।

राम ने लक्ष्मण की ही भाँति अपितु उससे भी कहीं अधिक भाव वियोग पक्ष में भरत के प्रति दर्शाया । दैव योग से ये दोनों सदा से वियुक्त ही रहे अतः उस दशा में राम का भ्रातृ-प्रेम और भी निखर व चमक उठा है । शिक्षा समाप्त होते ही राम विश्वामित्र के साथ चल दिये और फिर उसके पश्चात् उनका मिलन हुआ जनकपुर में विवाह के समय । राम लालायित हो उठे अपने चिर वियुक्त भ्राता से मिलने के लिये और फिर देखते ही बनती है मिलन मुद्रा मानस में जबकि

'भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा ।।'[३]

विवाह से लौटकर कुछ ही दिन साथ रहे कि भरत अपने ननिहाल चले गए और राम को सतत् कमठ अंड की नाईं चिन्ता व लगन रहने लगी ।[४] परन्तु जब राज्याभिषेक का समाचार सुना तब तो शील निधान, न्याय प्रिय राम का निर्लोभ तथा भ्रातृ भाव अंतस्तल से वाक् पटल पर आ ही गया । उनके समान ही अन्य बंधुओं को भी क्यों न उत्तराधिकारी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो । शील व संकोच से युक्त स्नेह रसाप्लुत पश्चाताप उन्हें होने ही लगा ।[५] 'रामायण' में यद्यपि इस प्रकार की शील सौजन्यमय ग्लानि का प्रदर्शन तो नहीं है परन्तु 'वनवास' व 'भरत राज्याभिषेक' इन वरदानों का प्रसंग आते ही

---

१. वा० रा० ३।५९।२१ ।

२. मा० ३।३० ।

३. मा० १।३०८ ।

४. 'राम सीय तन सगुन बनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए ।।
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं । भरत आगमनु सूचक अहहीं ।।
भए बहुत दिन अति अवसेरी । सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ।।
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फल दूसर नाहीं ।।
रामहि बन्धु सोच दिनराती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ।।'
मा० २।६।४–८ ।

५. 'जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ।।
करन बेध उपवीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ।।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई ।' मा० २।९।५–८

राम की गर्वोक्ति व भाई भरत के लिये निस्वार्थ त्याग देखते ही बनता है।[1] स्वयं कैकेयी भी राम के भ्रातृ भाव से पूर्णतया परिचित है। मन्थरा की कुमन्त्रणा से प्रभावित होने के पूर्व वे मन्थरा से इसी भावना को दृढ़ता के साथ व्यक्त करती हैं।[2] भरत के लिये राज्य समर्पण तो उनके लिये मनवांछित सिद्धि की उपलब्धि ही है[3] अतः निस्संकोच हृदय से उमंगित हो प्राणप्रियता को व्यक्त कर ही उठते हैं।

'भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब विधि मोहि सनमुख आज॥'[4]

'रामायण' में इस प्राणप्रियता के पालन का आदेश वे अभिन्नरूपा सीता जी को भी देते हैं।[5] उन्हीं से नहीं, निज पर अनुरक्त समस्त प्रजागणों को भी भरत की प्रशंसा कर उन पर निजवत् प्रेम प्रदर्शन व सम्मान अर्पण कर अनुरोध करते हैं: जिसके कारण उन्हें भिक्षुकवत् सन्यासी का सा वेष धारण कर वनों में भटकना पड़ा उन्हीं भरत के प्रति वे प्रजावर्ग को अपने प्रति अर्पित स्नेह व आदर को अर्पित करने का आदेश देते हैं।[6] धन्य है इस निर्विकार धैर्य, सहनशीलता, उदारता व उसके अन्तस्तल में निहित भ्रातृ प्रेम को। कौन अपने प्रतिद्वन्दी भाई की सराहना करेगा परन्तु राम ने अपना गुणग्राहक आदर्श भ्रातृ रूप जनता के हृदय में प्रतिष्ठित कर स्थान पा लिया।

भरत के गुणगान करने में तो वे कभी थकते ही नहीं। उन पर संदेह दृष्टि करना तो राम के आदर्श के सर्वथा प्रतिकूल है।[7] भरत के चित्रकूटागमन से आशंकित लक्ष्मण के

---

१. 'अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरतायाप्रचोदितः॥' वा० रा० २।१९।७।

२. 'भ्रातृन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामभिषेचनम्॥
राज्यं च यदि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातृंश्च राघवः वा० रा० २।८।१५,१९।

३. 'इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रतीयताम्॥
मा विमर्शा वसुमती भरताय प्रदीयताम्॥' वा० रा० २।३४।४१,४४।

४. मा० २।४१।१।

५. 'भ्रातृपुत्र समौ चापि दृष्टव्यो च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नो प्राणैः प्रियतरौ मम॥
विप्रियं न च कर्तव्यं भरतस्य कदाचन॥' वा० रा० २।२६।३३,३४।

६. वा० रा० २।४५।६ से १० तक।

७. मानस में तो इस संदेह दृष्टि का कोई स्थान नहीं है। 'रामायण' म एक दो प्रसंग हैं परन्तु वह भरत के गुण या स्वभाव का व्यक्तीकरण नहीं करते अपितु परिस्थितियों व संगदोष के ही निर्देशक हैं। यथा ......
न स्मरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिता:।
भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थित:॥ वा० रा० २।३१।१४।

अत्यधिक क्षुभित हो जाने पर राम मानस में भरत के दिव्य गुणों द्वारा तथा रामायण में भरत के प्रति सद्भावना व निज भ्रातृ अनुरक्ति व त्याग प्रदर्शन द्वारा[1] लक्ष्मण को लज्जित कर शान्त कर देते हैं। भरत मिलाप तो वह मार्मिक रंगभूमि है जहाँ राम का भ्रात्रानुराग अपनी समस्त सध्वज के साथ भ्रातृ वत्सलता का प्रदर्शन कर दर्शक व पाठक गणों को भावाभिभूत कर उनके भी 'अपान' विस्मृत करा देता है। किस भावहीन हृदय को निम्नांकित भावोन्माद के दर्शन कर भाव विभोर दशा नहीं प्राप्त हो जाती जबकि आत्म संयमी राम।

'उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।'[2]

अध्यातम रामायण तथा रामायण में भी पूर्वोक्त प्रेम बिह्वल दशा के चित्रण के अतिरिक्त भ्रातृ वियोग का मार्मिक मिलन चित्रित है।

'उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्यांकेऽतिभक्तितः।
उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः।'[3]

'भरत को तुरत उठाकर अति प्रेम से अंक में लेकर स्नेह सजल नयनों से धीरे-धीरे भरत से बोले।'

'तावुभौ स समालिंग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्।'[4]
'उन दोनों (भरत, शत्रुघ्न) का आलिंगन कर राम भी रोने लगे।'

इनमें से मानस का भ्रातृ मिलन सर्वोपरि भाव प्रमुख है जिसकी स्वयं गोस्वामी जी भी थाह न पा सके और उन्हें भी कहना पड़ा—

'मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।'

तथा 'अगम सनेह भरत रघुबर को।'[5]

फिर उन्हीं के शब्दों में यथार्थतः 'सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती।'

राम के भ्रातृ मिलन के अवसर अटूट अनुराग, अपरिमित स्नेह वारिधि सम हैं। अवधि समाप्त होते ही एक दिवस क्या एक क्षण भी बिना भैया से मिलन किये रहना उसके लिये दुर्वह हो जाता है। अपने प्रिय सखा, अनन्यानुरागी सखा विभीषण के आतिथ्यानुरोध को भी वे स्वीकार न कर सके और उनका अंतस्तल भावोद्रेक में पुकार उठा—

---

१. सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
... लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
....कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥
मा० २।२३०।८ से २।२३१।८।

२. वा० रा० २।९७।४,५,६। मा० २।२४०।

३. अ० रा० २।९।३७।

४. वा० रा० २।१००।४०।

५. मा० २।२४०।१,५।

'तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प समजात ।।
तापस वेष गात कृस जपत निरंतर मोहि ।
देखौंबेगि सो जतनु करु सखा निहोरउं तोहि ।।
बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि-पुनि पुलक सरीर ।।[1]'

'रामायण' में भी उपर्युक्त आकुल अन्तर के स्पष्ट दर्शन होते है[2] तथा अयोध्या लौटने पर चित्रकूट का चित्र पुनः सन्मुख चित्रित हो उमंगित कर देता है ।

'तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चरस्याक्षिपथ गतम् ।
अके भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ।'[3]

'अधिक दिनों के बाद भाई को देख राम ने बड़े प्रेम से भरत को पकड़कर हृदय से लगा लिया ।'

मानस का मिलन इससे भी अधिक मार्मिक रूप से चित्रित हुआ है जहाँ भाई अपनी समस्त वियोग दशा की व्यथाओं को समेटकर, स्मृतियों को संजोकर आत्मनिवेदन कर चरणों पर लोटने लगा अपनी परमनिधि पाकर और परमानुरागी ज्येष्ठ भ्राता राम उस चरण चरण लुंठित भाव राशि को समेटने में स्वयं असमर्थ हो उठे । अत:

'परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपा सिन्धु उर लाए ।।'

स्नेह शैथिल्य व भाव विभोर दशा के कारण सर्वशक्तिशाली राम को बल का संचय करना पड़ा और फिर आलिंगन के अनुभाव[4] (सजल नयन ललित पुलकावलि) दर्शक या पाठक को भी तथैव कर रस मग्न कर देते हैं ।

अपने छोटे भैया का धूलि धूसरित जटाधारी मुनि वेष कैसे सह्य होता, लग गये

---

१. मा० ६।११६।क,ख,ग ।
२. (१) अ० रा० ६।१३।४३।
(२) वा० रा० ६।१२४।१८,१९।
३. (१) वा० रा० ६।१३०।३९,४०।
(२) अध्यात्म रामायण में इसका पूर्ण शाब्दिक साम्य है ।
'समुत्थाप्य चिराद् दृष्टं भरतं रघुनन्दनः ।
भ्रातरं स्वांकमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे ।" अ० रा० ६।१४।८४।
४. 'राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदयं लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ।।
मा० उ० कां० ५। छंद

अपने ही कमल पाणि से उनकी सेवा करने[1] वहाँ सेवकों की क्या आवश्यकता। प्रेम साम्राज्य में अन्य का प्रयोजन भी क्या ? तभी तो गोस्वामी जी से भी बिना भरत का भाग्य व भाई की दयालुता की सराहना किये न रहा गया।[2]

भरत के प्रति भी केवल भाव प्रदर्शन ही नहीं अपितु लक्ष्मण की ही भाँति कर्त्तव्य पक्ष का भी पूर्णतया निर्वाह राम ने किया है। अपने समान ही मर्यादा पालन कराने के लिए वे अपने भाइयों के लिए भी सदा उत्सुक रहते हैं। सुमन्त्र द्वारा भरत के प्रति संदेश भेजते हैं जिसमें पितृ भक्ति व मातृ भक्ति का ही आदेश दिया है।[3] चित्रकूट में 'कच्चित्सर्ग:'[4] में भरत को पारिवारिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, व्यावहारिक, सामाजिकादि स्थितियों पर प्रश्नावली के जिस आदर्श राजा के समस्त गुण व लक्षणों का संकेत किया है व आदेश सा दिया है। भरत के दुःखी होने व विलाप करने पर राम ने जगत् की परिवर्तनशीलता का उल्लेख करते हुये भाग्य पर विश्वास तथा पूर्वजों द्वारा चलित मार्ग का अनुसरण की आज्ञा दी[5] तथा इसी क्रमानुसार गुरुजन आज्ञा पालन के महत्व पर भी विशेष प्रकाश डालकर पितुर्आज्ञा पालन में स्थित रहने का स्वयं संकल्प कर भरत को भी बरबस स्थित कराया है।[6] भरत के बाल हठ के प्रतीक प्रायोपवेशन का नीति द्वारा खंडन कर उन्हें समझाने का पूर्ण प्रयास किया है।[7]

मानस के भरत रामायण के भरत की अपेक्षाकृत विशेषत: स्वत: गुणसम्पन्न,[8] प्रतिभावान्, प्रेम शिरोमणि, भक्ताग्रगण्य तथा गम्भीर हैं अत: उन्हें उपर्युक्त पूर्व उपदेशों

---

१. (१) पुनि करुनानिधि भरत हंकारे । निज कर राम जटा निरुआरे ।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई .... मा० उ० का० १०४-५
(२) रामायण में स्वयं नहीं परन्तु फिर भी सेवकों द्वारा पहले भाइयों का क्षौर-कर्मादि कराकर सुसज्जित किया और फिर स्वयं ने कराया।
'पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले' वा०रा० ६।१३१।१४।

२. 'भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।।
मा० उ० का० १०४-५।

३. 'भरत: कुशलं वाक्यो-वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्वेवयथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ।।
वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकु कुलनन्दन: ।
पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थामनुपालय ।।' वा० रा० २।५८।२९।२२।

४. वा० रा० अयो० कां० १००वां सर्ग । वा० रा० ६।१२७।३।

५. वा० रा० २।१०५।१५ से ३० तक।

६. 'न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्यायमरिंदम ।
स त्वयापि सदा मान्य: स वै बन्धु: स न: पिता ।। वा० रा० २।१०६।४१।

७. 'न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधि: प्रत्युपवेशने ।' वा० रा० १।१११।१६।

८. 'गुर अनुराग भरत पर देखी । रामहृदयं आनंदु बिसेषी ।।
भरतहि धरम धुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।। मा० २।२५८।१-२।

के भेजने की आवश्यकता नहीं। शील-संकोच-निधान राम स्वयं उनके गुणों से अभिभूत हो उनकी प्रशंसा करने में ही निमग्न रहते हैं[1] और भ्रातृ गौरव से गौरवान्वित होकर कह उठते हैं।

'भयउ न भुअन भरत सम भाई।'

यहाँ तक कि रामामण की अपेक्षाकृत मानस में तो राम भरत के प्रेमवश होकर यहाँ तक कह देते हैं

'भरत कहहिं सोइ किए भलाई'

तथा 'अवसि जो कहहु चहउं सोइ कीन्हा।'

परन्तु भरत अपने अभिन्न हृदय राम के मानसिक संकल्प के विरुद्ध किस प्रकार कह सकते हैं। अन्ततोगत्वा अपने प्रिय भ्राता की पादुका रूप को ही प्रतीक मान अवधि यापन करने का संकल्प कर लेते हैं।

इस निश्चय से प्रणीत होकर भ्रातृ वत्सल राम उन्हें सकुशल निर्विघ्न राज्य कार्य सम्पादन हेतु प्रजापालन का संक्षिप्त उपदेश स्वयं भरत के अनुरोध पर देते हैं।[2] इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम राम भरत को भी समस्त मर्यादा पालन का ही आदेश देकर अपने समान ही भरत को बनाने की कामना करते हैं और मानते भी हैं :

'तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अन्तर काऊ॥'[3]

स्वयं भरत भी बड़े गौरव से कहते हैं।

'मो पर कृपा सनेहु बिशेषी'

---

१. (१) जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी॥
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
मा० २।२५८।५-६।

(२) भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेहं सभा रघुराऊ॥
मा० २।३००।८।

(३) तात भरत तुम्ह धरम धुरीना . से....धरमू। मा० २।३०४, ३०५।

(४) भरत से हनुमान् भी यही कहते हैं।
'रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।' मा० ७।२। छंद।

(५) भरद्वाज भी यही प्रमाणित करते हैं।
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥
जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नरके॥
मा० २।२०७।३-६।

२. मा० २।३१४।३—२।३१५।

३. मा० ६।३६।

'सिसुपन तैं परिहरेउँ न संगू। कब हुँन कीन्ह मोर मन भंगू॥' इत्यादि....

आश्चर्य तथा आशंका का विषय है कि जहाँ लक्ष्मण और भरत के प्रति भावना वा कर्त्तव्य की प्रबल विशद धाराएँ प्रवाहित होकर भ्रातृ प्रेम पयोधि में सन्निहित हो गई हैं वहीं शत्रुघ्न के प्रति इतनी उपेक्षा क्यों ? क्या वे उनके भाई न थे ? उनके प्रति क्या उनका कोई कर्त्तव्य या भावना शेष न रह गई थी ? वस्तुत: बात ऐसी नहीं है। महाकवियों ने शत्रुघ्न का चरित्र-चित्रण इस प्रकार किया है कि उनका निजी व्यक्तित्व सेवा धर्म में भरत में अन्तर्निहित हो गया है तथा उस चित्रण का उद्देश्य भागवत सेवक[१] का स्वरूप चित्रण करना था। सेवक धर्म के अनुसार उनका रूप व कर्त्तव्य भरत जी के रूप व कर्त्तव्य में विलीन हो गया था। जहाँ कहीं भी भरत का चित्रण है वहाँ प्रतिबिम्ब की भाँति वे सदा विद्यमान रहते हैं। राम ने भी शत्रुघ्न के प्रति तथोक्त रूप में ही व्यवहार किया है।[२] सभी कार्यों में शत्रुघ्न को भी समान रूप से सम्मिलित किया है।[३] सभी के साथ शत्रुघ्न को भी नीति व आध्यात्मिक उपदेश दिये हैं।[४] पृथक राम व शत्रुघ्न के व्यवहार का चित्रण न होने पर भी दोनों ग्रन्थों में पारस्परिक संगठन,[५] प्रेम-मिलन[६] के सुअवसरादि ही उस प्रेम के दर्शन के गवाह हैं जिसमें हमें उनकी आन्तरिक गुप्त स्थिति रूपी भवन का ज्ञान व अनुमान

---

१. 'सुर सुसील भरत अनुगामी।'
भरत सत्रुह्न दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई॥'
मा० १।१९७।४।

२. (१) भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
मा० १।३०७।७।
(२) मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम। मा० २।२४१।
(३) पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयं लगाइ।' मा० ७।५।

३. बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
कीन्हि सोच सब सहज सुचि सरित पुनी नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥ मा० १।३५८।

४. (१) राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
मा० ७।२४।३।
(२) संत असंतों के लक्षण समझाना। मा० ७।३७, ३८।

५. वा० रा० १।१२।२४, ३५।

६. (१) शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥
वा० रा० २।१००।४०।
(२) सीता परित्याग का परामर्श लेने के लिये बुलाये भाइयों के प्रति
'तस्थुः समाहिताः सर्वे रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत्।
तान् परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महा बलः॥
आसनेष्वास्तेत्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह।
भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम॥ वा० रा० ७।४४।१८, १९।

भली प्रकार हो जाता है। वैसे भी 'राम ते अधिक राम कर दासा' भरत के अनन्य अनुयायी शत्रुघ्न के प्रति राम का क्या भाव होगा इस रहस्य को तो वे ही भावुक जन समझ सकते हैं जो कि राम के इस गुण से भली भाँति परिचित हैं।

'मानत सुख सेवक सेवकाई।'

परन्तु यदि राम का व्यवहार शत्रुघ्न के प्रति प्रत्यक्षतः ही देखना है तो वह रामायण का 'लवणासुर वध प्रसंग' है। लवणासुर को मारने का संकल्प कर लेने पर शत्रुघ्न को राम ने आज्ञा दी उसे मारने को[1] और साथ ही अपनी उदारता का परिचय भी दिया कार्य करने के पूर्व ही आत्म-विश्वास का आश्रय लेकर वहाँ के राज्याभिषेक का पुरस्कार देकर।[2] राम ने उनका राज्याभिषेक कर अपने अंक में उन्हें बिठाया[3] और फिर शत्रुनाशक-बाण को देकर लवण-वेध के हेतु आवश्यक सावधानता का आदेश दिया तथा शत्रुघ्न को असंख्य सेना, व्यापारी, स्वर्ण मुद्राओं को ले जाने की आज्ञा देकर व्यवहार-कुशलता की शिक्षा दी।[4] इस प्रकार शत्रुघ्न के प्रति भी परम हितैषी, उदार भ्राता रूप का परिचय दिया।

इस प्रकार अपने समस्त भ्राताओं को प्रेम-रस-सिक्त मर्यादा, अनुशासन व आज्ञा-पालन के अनुरोध[5] द्वारा उन्हें जग-प्रतिष्ठित व समादृत किया तथा निरभिमान रूप से सदा उनके प्रति कृतज्ञता अर्पण भी करते रहे।

'भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः।
भवन्तः कृत शास्त्रार्था बुद्धया च परिनिष्ठिताः।।'[6]

'हे नरोत्तम! तुम्हीं लोगों के द्वारा सम्पादित राज्य का मैं पालन करता हूँ। तुम लोग शास्त्रों के अर्थ को उत्तम रीति से जानते हो और असाधारण बुद्धिमान हो।'

इतना ही नहीं वे अपने भाइयों को 'आत्मभूताभ्यां' कहकर आत्मा सदृश ही मानते हैं।

---

१. एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम्।
   स त्वं हत्या मधुसुतं लवणं पापनिश्चयम्।' वा० रा० ७।६२।१६, १९।
२. (१) अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व मयोधतम्। वा० रा० ७।६२।२१।
   (२) संभारानभिषेकस्य आयध्वं समाहिताः।
   अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि राघवम्।। वा० रा० ७।६३।१०।
३. (१) 'संप्रहर्षकरः श्रीमान् राघवस्य पुरस्य च।' वा० रा० ७।६३।१४।
   (२) 'ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः उवाच। वा० रा० ७।६३।१८।
४. (१) 'राज्यं प्रशाधि धर्मण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे।' वा० रा० ७।६२।१९।
   (२) वा० रा० ७।६४।४, ५, ६।
५. सीता परित्याग के समय आज्ञापालन का अनुरोध :—
   'शापिता हि मया यूयं भुजाभ्यां जीवितेन च।
   ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन।।' वा० रा० ७।४५।२१।
६. वा० रा० ७।४४।२०।

अतः राम के भ्रातृ प्रेम रूपी भवन की चतुर्दिक सीमाएँ दृढ़ कर्त्तव्य के दुर्ग से आबद्ध हैं तथा अन्तर स्नेह, अनुराग, सौख्य से निनादित व प्रतिध्वनित हैं अथवा गोस्वामी जी का मानस मान सरोवर सत्य ही इस 'भायप मलि' के मधुर जल से आप्लावित है।

'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप मलि चहु बंधु की जल माधुरी सुवास॥'[१]

सख्य प्रेम

राम के भ्रातृ प्रेम के अति सन्निकट तथा तथैव उनका सख्य प्रेम है। बाल्यावस्था से सिंहासनासीन होने तक आद्यन्त आपका सखा प्रेम अवलोकनीय है। उनके सखाओं को भी वही स्थान प्राप्त था जो भाइयों को। बाल्यावस्था में उनके साथ क्रीड़ा करना, भोजनादि करना[२] उनके अनन्य प्रेम का द्योतक था।

युवराज होने की महत्वपूर्ण सूचना पाकर भी राम गर्वोन्मत्त न हुए अपितु उनके हृदय में अपने सखाओं के प्रति पूर्ववत् प्रेम, शील, सौजन्य बना रहा।[३]

बाल सखाओं के प्रति यह व्यवहार तो फिर भी संगत व लौकिक परिधि की सीमा तक है परन्तु शृंगवेरपुराधीश गुह मैत्री की प्रगाढ़ता तो पाठकों को चमत्कृत ही कर देती है।[४] राम ने उसे अपनाकर, अनुगृहीत कर जग-सखा रूप में प्रतिष्ठित कर दिया[५] और

---

१. मा० १।४२।

२. 'अनुज सखा संग भोजन करहीं।' मा० १।२०४।४।

३. बाल सखा सुनि हियं हरषाहीं। मिलि दस पांच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूंछहि कुसल खेम मृदु बानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाह निहारा॥
मा० २।२३।४।

४. (१) सहज सनेह बिबस रघुराई। पूंछी कुसल निकट बैठाई॥ मा० २।८७।४।
(२) 'सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
मा० २।१०३।७।

५. (१) यद्यपि गुह ने सेवक सेव्य भाव ही अपनाया परन्तु राम ने उसके प्रति क्या भाव रक्खा इसके सूक्ष्म पारखी गोस्वामी जी कहते हैं।
'सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ।' मा० २।१०३।७।
(२) राम के अन्य रूप भरत भी इसी प्रकार कहते हैं
'राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा। तथा मा० २।१९२।७
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता'। मा० २।१९२।४।
(३) यह समझकर कि
'यह तौ राम लाइ उर लीन्हा।
कुल समेत जग पावन कीन्हा॥ मा० २।१९३।६।
(४) वशिष्ठ ने 'राम सखा ऋषि बरबस भेंटा' मा० २।२४२।६।

सभी ने उसे लक्ष्मण से किसी भाँति भी कम सम्मान अर्पित न किया।[1] राम स्वयं उसे परम सुख देकर भी उसके प्रेम व स्मृति को न भुला सके और लंका से लौटते समय बिना उस प्रिय सखा से मिलन किये उनसे न रहा गया। कैसे न सुधि लेते मित्रवत्सल राम और कैसे न उसकी सविनय कुशल पूछते।[2]

मानस की ही भाँति अध्यात्म रामायण में भी राम ने गुह को अपना अति प्रिय सखा मानकर उसके प्रति प्रेम प्रदर्शन किया है[3] तथा पुनर्मिलन का आश्वासन देकर आकुल सखा को धैर्य बँधाया है।[4]

वाल्मीकि रामायण में 'गुह' को राम का प्राण सदृश मित्र कहा गया है जिसे देखते ही राम अनुज सहित आगे बढ़कर उससे मिले। निषाद के आतिथ्य-स्वीकृति के अनुरोध को देख राम अति प्रसन्न हो उठे और आनन्दातिरेक से हृदयालिंगन कर अपने मित्र को सकुशल व सानन्द देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की।[5] उसके द्वारा अर्पित उपहारों को तापस व्रत के कारण तो स्वीकार न कर सके परन्तु मधुर वाचिक स्वीकृति द्वारा अपनी व्यवहार कुशलता व शालीनता का परिचय दिया।[6] राम के दृढ़ानुराग से प्रभावित होकर ही गुह लक्ष्मण से राम को अपना सर्वाधिक प्रिय बताकर शपथ ग्रहण करता है[7] सदा राम के लिये सन्नद्ध रहता है, उनके दुःख से आर्त होता है,[8] सम्पूर्ण सहानुभूति अर्पण करता है, भरत के आगमन पर आशंकित होकर मैत्री निर्वाह के हेतु कटिबद्ध होकर सावधान हो जाता है....इत्यादि। उपर्युक्त सभी अनुभावों का मूल राम का 'सुचि सनेह' है, जिसने निषाद को अपना कर 'भुवन-भूषन' बना दिया।

---

१. समस्त माताएँ 'जानि लखन सम देहिं असीसा'
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखीजनु लखनु निहारी।। मा० २।१९५।६।

२. प्रीति परम विलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई।।
लियो हृदयं लाइ कृपानिधान सुजान रायं रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती।। मा० ६।१२०।१२ से। छंद १।

३. (१) गुहमुत्थाय तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे।' अ० रा० २।५।६३।
(२) 'दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन।
राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः।।' अ० रा० २।५।६९।

४. 'चतुर्दशसमाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम्।।
आयास्याम्युदितं सत्यं।' अ० रा० २।६।२५,२६।

५. वा० रा० २।५०।४२।

६. वा० रा० २।५०।४६,४४।

७. 'न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येतदहं सत्यं सत्येनैव च तेशपे।।
वा० रा० २।५१।४। तथा वा० रा० २।८६।५।

८. 'गुरुसौहृदादगुहः मुमोच वाष्पं व्यसनाभिपीड़ितो ज्वरातुरो नाग इव व्यथातुरः।
वा० रा० २।५१।२७।

परन्तु इससे भी वहाँ अधिक उल्लेखनीय है हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सख्यानुराग जहाँ मानव या निम्न श्रेणी के मानव ही नहीं अपितु कपीश्वर व राक्षसेश्वर तक उनकी मैत्री के उच्चाधिकारी बन बैठते हैं।

अपनी परम भक्ता शबरी के आदेशानुसार राम 'पंपा सरोवर' जाते हैं और फिर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर हनुमान से मिलकर अपने वहाँ आने का कारण निवेदन करते हैं। परम चतुर तथा अनन्य भक्त हनुमान सुग्रीव के साथ मैत्री का अनुरोध करते हैं।[1] 'रामायण' में भगवान् रूप की प्रतिष्ठा अधिक न होने के कारण राम ने व्यवहार कुशलता के प्रदर्शनार्थ स्वयं न कह कर लक्ष्मण द्वारा ही अपने को सुग्रीव का शरणागत कहलाकर[2] एक प्रकार से अप्रत्यक्ष मैत्री का प्रस्ताव स्वयं ही रक्खा है। इस प्रस्ताव का स्पष्टीकरण हुआ हनुमान की उक्ति में—

"भवता सख्यकामौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ"[3]

"वे दोनों भाई राम लक्ष्मण तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहते हैं।"

स्वयं सुग्रीव भी राम से उनकी इच्छा स्वीकृति देते हैं:—

'रोचते यदि वा सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादाबध्यता ध्रुवा॥'[4]

'यदि आप मुझसे मैत्री करना चाहते हैं तो मेरा हाथ फैला हुआ है, अपने हाथों से मेरा हाथ थामिये और ऐसी मित्रता कीजिये जो अटल हो।'

हार्दिक मैत्री होने के कारण राम ने सुग्रीव को देखते ही अलिंगन-बद्ध कर लिया।[5]

'भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा।'

तत्पश्चात् अग्नि को साक्षी देकर[6] दृढ़ प्रीति को धारण किया।

'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।'

मैत्री स्थापन होते ही पारस्परिक दुःख गाथा सुनाई तथा एक दूसरे की व्यथा को निवारण करने का प्रण लेकर[7] कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर हुये।

---

१. तेहि सन नाथ मैत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥ मा० ४।३।३।
२. वा० रा० ४।४।१७,१८,२०,२१।
३. वा० रा० ४।५।७।
१. वा० रा० ४।५।१२।
२. 'हृद्यं सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।' वा० रा० ४।५।१४।
३. 'ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम्। वा० रा० ४।५।१६।
'तब प्रज्वलित अग्नि की दोनों ने प्रदक्षिणा की।'
४. (१) सुग्रीव सब प्रकार करिहउं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥
मा० ४।४।८।
(२) राम सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे॥
मा० ४।७।१०।

मानस में 'निज दुःख गिरि सम रज करि' जानने वाले तथा 'मित्र के दुख रज मेरु समान' मानने वाले राम सुग्रीव की व्यथा सुनते ही उत्तेजित हो उठे और तुरंत कर्त्तव्य निश्चित करने का दृढ़ संकल्प कर डाला।

'सुनु सुग्रीव मारिहउं बालिहि एकहिं बान।'[१]

'रामायण' में भी राम ने मित्र के दुखों को अपने ही दुःख मानकर[२] परम उत्तेजित गर्जना के साथ प्रण कर डाला।

'अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम्।'[३]

'आज ही मैं तुम्हारी स्त्री के हरण करने वाले बालि को मार डालूंगा।'

सुग्रीव को भी इनके व्यक्तित्व, अनुराग व व्यवहार को देखकर अपनी मैत्री पर पूर्ण विश्वास हो गया।[४] राम की मित्रवत्सलता का तो कहना ही क्या? मानस में मित्र-व्यथा सुन उनका आन्तरिक वीरत्व जाग उठा[५] तथा रामायण में व्यथा सुनने के साथ ही कर्त्तव्य की त्वरा ने जागरूक होकर उन्हें धनुष-बाण सन्नद्ध करने के लिये प्रेरित कर दिया।[६]

'दुंदुभि अस्थि', 'ताल' को भेद कर[७] सुग्रीव के हृदय में प्रमाणित प्रतीत उत्पन्न कर अपने मित्र के दुःख निवारण कर्त्तव्य की ओर अग्रसर हुये तथा वाह्य दृष्टाओं की दृष्टि में अनुचित कार्य 'बालि वध'[८] को भी मित्र-वत्सल राम ने अतिशीघ्र सम्पन्न कर डाला।

'मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि।'[९]

अपने ही समान मित्र को भी मर्यादा-पालक, लोकाचार-निपुण तथा यथावत् व्यवहार कुशल बनाने की हितैषणा सदा राम के हृदय में जागरूक रही। केवल स्वार्थ सिद्धि ही एक मात्र उनकी मैत्री का कदापि लक्ष्य न था। बालि के निधन से व्यथित सुग्रीव को

---

१. मा० ४।६।

२. 'त्वं वयस्योऽसि मे हृद्यो ह्येकं दुःखं सुखं च नौ।।' वा० रा० ४।५।१८।

३. 'वा० रा० ४।८।२१।

४. 'महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम्।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर।।' वा० रा० ४।८।६।

५. 'सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला।।' मा० ४।६।१४।

६. 'हृष्ट. कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः।
सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव।।' वा० रा० ४।८।४४।

७. मित्र के विश्वास को दृढ़तर बनाने के लिये रामायण में राम ने 'दुंदुभि' की अस्थियों को पैर के अंगूठे से ही उठाकर दस योजन फेंका तथा मानस में क्षण भर में सात ताल वृक्षों को एक सुनहले बाण द्वारा काट डाला।
वा० रा० ४।११।८४,४।१२।३ तथा मा० ४।६।१२। वा० रा० ४।१६।४०।

८. 'विचेतनो वासवसुनुराहवे विभ्रंशितेन्द्रध्वजवत् क्षितिंगत'

९. मा० ४।८।

धैर्य का आदेश देकर[1] बालि के मृतक संस्कारों को यथाविधि सम्पादित करने की आज्ञा दी ।

'तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ।।'[2]

परन्तु रामायण में राम के स्थान पर लक्ष्मण ने सुग्रीव को मृतक संस्कार की आज्ञा दी ।[3]

तदनन्तर अपने प्रिय मित्र का राज्याभिषेक करवाकर उन्हें····

'बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ।'

इस प्रकार अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लक्ष्मण के साथ प्रवर्षण गिरि पर रहने लगे । परन्तु धन्य है उनका शील व संकोच कि इतना गुरुतम कार्य करके भी तुरंत उपकार के विनिमय की आतुरता न प्रगट कर 'रामायण' में अपनी शान्ति प्रिय नीति तथा उदार हृदयता का परिचय इस प्रकार दिया ।

'उपकारं व सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशय: ।
तस्मात्कालप्रतिज्ञोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण ।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ।'[4]

'कुछ दिन पश्चात् मेरे उपकारों को समझेगा इसमें सन्देह नहीं । हे शुभ लक्षण ! इसी कारण मैं समय की प्रतिज्ञा करता हुआ चुप बैठा हूँ । मैं इन नदियों की और सुग्रीव की प्रसन्नता चाहता हूँ ।'

परन्तु चिर-विरह-विदग्ध मानव धैर्य व प्रतीक्षा की सीमाओं का अतिक्रमण कहाँ तक न करे ? अस्तु राम भी मनोभावों से आकुल प्रेरणावश क्षुब्ध होकर कह ही उठे :

'जेहि सायक मै मारा बाली । तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।'[5]

परन्तु सतत् सचेष्ट व सावधान राम ने पुन: उस कथन की भीषण प्रतिक्रिया स्वरूप अनुभाव लक्ष्मण में देखकर तथा मित्रोचित-उदारता का ध्यान कर तुरन्त अपनी उद्वेगाग्नि को प्रशमित कर केवल यही आदेश दिया ।

'भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।'[6]

सुग्रीव के आने पर उदार-शिरोमणि राम के सभी मनोविकार, सखा को देखते ही लुप्त होकर उनका स्नेह ही उमड़ कर कहने लगा उमंगित होकर—

'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ।'[7]

---

१. 'न शोक परितापेन श्रेयसा युज्यते मृत: ।
लोक वृत्तमनुष्ठेयं वो वाष्पमीक्षणम् ।
न कालादुत्तरं किंचित्कर्म शक्यमुपासितुम् ।।' वा० रा० ४।२५।२,३।

२. मा० ४।११।८।

३. वा० रा० ४।२५।१३।

४. वा० रा० ४।२८।६२,६३।

५. मा० ४।१८।५।

६. मा० ४।१८।

७. मा० ४।२०।७।

अध्यात्म रामायण[1] तथा वाल्मीकि रामायण[2] में भी पूर्वोक्त व्यवहार निदर्शन किया गया है। रामायण में सुग्रीवागमन पर विशाल हृदय राम ने प्रसन्न होकर हृदय से लगाकर अपनी क्षमाशीलता व परमस्नेही रूप का प्रदर्शन किया।[3]

'प्रियं मनोहारि वचं च दुर्लभः' के अनुसार राम ने सुग्रीव के प्रति अपनी मिष्ट वाणी द्वारा कपीश्वर सुग्रीव को उनके पदोचित मानसक्षम राजनीति का उपदेश[4] देकर उन्हें एक योग्य राजा बनाने की सुहृद् कामना का वर दिया।

सुहृद् के प्रति सद्भावना, स्नेह के साथ-साथ कृतज्ञ भाव भी परमावश्यक होता है। इसका भी राम ने क्षण भर भी विस्मरण न किया। मित्र की यथोचित प्रशंसा की व आश्रय ज्ञान-शक्ति पर विश्वास राम ने पूर्णरूपेण दर्शाया।

'त्वद्विधो वापि मित्राणां प्रतिकुर्यात्परंतप: ।।
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् ।
जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सतत प्रियवादिनम् ।।
त्वत्सनाथ: सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन् ।
त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ।।'[5]

'तुम जैसा पुरुष यदि मित्रों को प्रसन्न करे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हे सुग्रीव ! तुम जो उत्तम कार्य कर रहे हो उसमें भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ। तुम सर्वदा मधुर वाणी बोलते हो। हे मित्र ! युद्ध में तुम्हारी सहायता से मैं अपने सभी शत्रुओं को जीत लूंगा। इस समय तुम्हीं एक मात्र मित्र हो, अतः तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिए।'

कृतज्ञता का उपायन वह बहुमूल्य व वशीकरण मंत्र है जिससे आकृष्ट सुहृद् आजीवन मैत्री का अटूट सम्बन्ध स्थापन कर सतत संयोग की वाञ्छा रखता है। राम ने अपने परम सुहृद व वनवास काल में मंत्री पदाभिषिक्त सुग्रीव के प्रति सतत् समय-समय पर कृतज्ञता

---

१. (१) राम का क्षोभ अ०रा० ४।५।८,१०,।
(२) सुग्रीवागमन पर अ०रा० ४।६।४।

२. (१) वा०रा० ४।३०।८१,८२।
(२) लक्ष्मण के क्रुद्ध होने पर वा०रा० ४।३१।७,८।

३. वा०रा० ४।३८।१८,।

४. वा०रा० ४।३८।२० से २३ तक।

५. वा०रा० ४।३९।३ से ५ तक।

अंजलियाँ अर्पित कीं।[1] अध्यात्म[2] तथा वाल्मीकि रामायण[3] में भी यह उदात्त भावार्पण उल्लेखनीय है।

केवल कृतज्ञता व क्षमाशीलता ही नहीं, अपितु अपने स्वभाव व इच्छा के प्रतिकूल नीति-सम्मत-मंत्रणा (विभीषणागमन पर) देने पर राम ने क्षोभ नहीं वरंच मित्र के सत्-परामर्श की सराहना ही की।[4] यह कह कर —

'सखा नीति तुम नीकि विचारी।'

मैत्री व अनुराग के दृढ़ सूत्र में आबद्ध राम अपने मित्रों को भी अपनी जन्म-भूमि बिना लाये न रुक सके। वहाँ लाकर सुग्रीव का क्षौरकर्म, स्नानादि,[5] अलंकरणादि[6] करवाकर परमोत्तम आतिथ्य-सत्कार किया व अमूल्य उपहार भी प्रेम प्रतीक रूप में अर्पित किये।

'रामायण' में भी यथोचित स्वागत-सत्कार करके राम ने अपने मणिजटित भवन को सुग्रीव के निवास हेतु दिया[7] तथा राज्याभिषेक के महोत्सव पर बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा मणिजटित हार उपहार-स्वरूप अपने सखा को भेंट किया।[8]

---

१. (१) रावण वध के पश्चात्
तुम्हरे बल मैं रावनु मारयो। तिलक विभीषन कहँ पुनि सारयो॥
मा० ६।११०।४।

(२) अयोध्या आगमन पर वशिष्ट से
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे॥
मा० ७।७। ७-८।

(३) अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना।' मा० ७।१५।६-७।

२. (१) अ०रा० ६।१२।४९,५०।
(२) आ०रा० ६।१८।५०,५१। तथा वा०रा० ६।११५।५।

३. (१) युद्ध समाप्ति पर वा०रा० ६।११५।१४,१५।
(२) 'सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावः चानिलात्मजे।' वा०रा० ६।१३१।३९।

४. रामायण में भी वा०रा० ६।१७।३३।

५. 'राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥' मा०७।१०।२।

६. 'तब प्रभु भूषन बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए।' मा०७।१६।५-६।

७. 'यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्यं सुग्रीवाय निवेदय॥ वा०रा० ६।१३१।४५।

८. 'नानाभरण वस्त्राणि महार्हाणि च राघवः।
अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनी मणि विग्रहाम्॥
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजर्षभः।' वा०रा० ६।१३१।७५,७६।

अध्यात्म रामायण में इसी का बिम्ब प्रति-बिम्ब प्रदर्शन है ।[१]

राज्याभिषेक के पश्चात्

'सुग्रीवो वानर श्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किंधां प्राविशत् पुरीम् ।।'[२]

'सुग्रीव राज्याभिषेक देखकर राम द्वारा सम्मानित होकर किष्किन्धा को चले गये ।'

मानस का मार्मिक विदा प्रसंग राम की भक्त वत्सलता के अन्तर्गत उल्लिखित होगा । राम का यह मैत्रीभाव उनकी कार्यसिद्धि के साथ ही समाप्त न होकर स्वार्थ-युक्त मैत्री का उद्धरण न बनकर उनके जीवन का अभिन्नांग बन जाता है । मानस में इसका उल्लेख नहीं है[३] परन्तु रामायण में इसका स्पष्ट चित्रण है । राम के स्वर्गारोहण के समय आए हुए सुग्रीव के सहगमन के दृढ़ संकल्प को देखकर राम ने अपना अटल सख्यानुराग इस प्रकार व्यक्त किया ।

'सखे श्रृणुष्व सुग्रीव न त्वयाहं विनाकृतः ।
गच्छेयं देवलोकं व परमं वा पदं महत् ।।'[४]

'हे मित्र सुग्रीव ! सुनो मैं तुम्हें छोड़कर देवलोक या परमपद भी पाना न चाहूँगा ।'

अध्यात्म रामायण में भी सुग्रीव का राम के साथ स्वर्गारोहण का प्रसंग वर्णित हुआ है ।[५]

इस प्रकार 'अपने बल पर' अपने चिर व्यथित सखा के समस्त 'शोक' का निवारण कर उसे परम सुख-समृद्धि प्रदान की । लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ पारलौकिक हित अपने साथ स्वर्ग-प्रयास कराया । मंत्रीवत्, मित्रवत्, भ्रातृवत्, सेवकवत् नाना प्रकार के उत्तरोत्तर सम्बन्धों की स्थापना कर अपने सखा को उसी की उक्ति में 'मैं पांवर पसु कपि अति कामी'

---

१. (१) सर्व सम्पत्समायुक्तं मम मंदिरमुत्तमम् ।।
मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम् । आ०रा ६।१५।३१।

(२) सूर्यकान्तिसमप्रख्या सर्वरत्नमयीं स्रजम् ।
सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या अ०रा० ६।१६।४।

२. वा०रा० ६।१३१।८९।

३. अपने इष्टदेव का परमप्रयाण दर्शाना गोस्वामी जी को अभीष्ट न था । परब्रह्म का जन्म मरण नहीं अपितु प्राकट्य व अन्तर्धान ही हुआ करता है ।

४. वा०रा० ७।१०८।२६।

५. सुग्रीव के इस कथन को सुनकर राम ने मौन स्वीकृत दे दी—
'तवानुगमने राम् विद्धि मां कृत निश्चयम् ।
श्रुत्वा'—तत्पश्चात्
सर्वे गताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टा वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ।
सुग्रीवमुख्या हरिपुंगवाश्च स्नाता विशुद्धाः शुभ शब्दयुक्ताः । अ०रा० ७।९।४४।

से उनकी त्रुटियों का ध्यान न कर,[१] 'आपु समान' बनाकर अपने शील निधान, प्रणत-वत्सल रूप की मनोहारिणी छटा का प्रदर्शन कर दिया।

कपियोनि से भी निकृष्ट राक्षसयोनि के अपवाद-स्वरूप शरणागत विभीषण से मैत्री कर मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने यह सत्य ही प्रमाणित कर दिया।[२]

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।
आनयैनं हरि श्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्।'[३]

'एक बार भी जो मेरी शरण में आकर' मैं तुम्हारा हूँ' इतना कह देता है उसे मैं सर्वथा निर्भय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है। हे कपि श्रेष्ठ, तुम विभीषण को मेरे पास ले आओ। मैंने उसे अभय कर दिया है। हे सुग्रीव! वह फिर चाहे विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो।'

मानस में भी 'मम पन सरनागत भय हारी' कहकर अपने सखा सुग्रीव के राजनीति-सम्मत परामर्श को भी स्वीकृत न कर सके। शरणागत के महत्व का मानस[४] तथा रामायण[५] दोनों में विशद रूप से वर्णन कर शरणापन्न विभीषण को 'भुज विसाल गहि हृदय लगावा। तथा रामायण में अनुरागिणी दृष्टि से निहार कर विभीषण को निहाल कर दिया है।

'वचसा सान्त्वयित्वेनं लोचनाभ्याँ पिबन्निव।'[६]

'राम ने वाणी से सान्त्वना देते हुए इस प्रकार की प्रेममयी दृष्टि से निहारा मानों वे उन्हें अपनी आँखों से पी जायेंगे।'

तत्पश्चात् जहाँ 'सखा धरम निबहइ केहि भाँती' की प्रश्नावली पूँछ कर अपने भक्त-वत्सल रूप की छटा का अवलोकन कराया वहीं रामायण में कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति रावण तथा राक्षसों के बलाबल का वृत्तान्त पूछकर व सुनकर प्रतिज्ञा की.......

'अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहानुजम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।'[७]

'मैं तुमसे सत्य कहता हुँ कि प्रहस्त तथा कुम्भकरण सहित रावण को मारकर मैं तुमको लंका का राजा बनाऊँगा।'

---

१. 'जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
(पर) सपनेहुं सो न राम हियं हेरी।' मा० १।२८।६-०।
२. अध्यात्म रामायण में ६।३।१२। शब्द प्रति शब्द यही श्लोक।
३. वा०रा० ६।१८।३३ से ३५ तक।
४. 'सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पांवर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि।।
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएं सरन तजउं नहिं ताहू।।' मा० ५।४३,४४।
५. वा०रा० ६।१८।२८ से ३२ तक।
६. वा०रा० ६।१९।७।
७. वा०रा० ६।१९।१९।

इस दृढ़ प्रतिज्ञा के पश्चात् ही राम ने विभीषण का हृदयालिंगन कर[१] सख्य स्थापन कर समुद्र से जल मँगा कर राज्याभिषेक तुरंत कर दिया[२]

'माँगा तुरत सिन्धु कर नीरा'
असकहि राम तिलक तेहि सारा'

सांकल्पिक अभिषेक समाप्त कर राम ने सुग्रीव की ही भाँति विभीषण को भी सचिव पद प्रदान कर दिया[३] और यथा समय परामर्श माँगने लगे। सर्वज्ञ राम ने उनको श्रेय दिया नाना उपायों व प्रश्नों को पूछ कर—

'सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।।'[४]

रावण की सभा को देखकर जिज्ञासामय प्रश्न—

'देखु विभीषण दच्छिन आसा। धन घमंड दामिनी बिलासा।।
मधुर मधुर गरजइ घनघोरा। होइ वृष्टि जनि उपल कठोरा।।[५]

अनेक प्रयत्न करने पर भी रावण के न मरने पर—

'मरइ न रिप श्रम भवउ बिसेषा। राम विभीषन तन सब देखा।।[६]

राम ने मानस के समान रामायण में भी परामर्शदाताओं में विभीपण का स्थान प्रमुख रक्खा।[७] विपक्षी दल का होने के नाते कभी भी अविश्वास न प्रगट कर पूर्णाश्रय मानकर अपनी उदारता का परिचय दिया, साथ ही अपने सेनानायकों में प्रतिष्ठित पद प्रदान कर अपने लोकोत्तर निष्पक्ष हृदय तथा प्रपन्नानुराग को भी दर्शाया रावण द्वारा विभीषण को प्रेषित शक्ति को स्वयं सहन कर।[८]

---

१. 'इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय।।' वा०रा० ६।१९।२४।

२. 'एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्बिभीषणम्।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं रामशासनात्।।' वा०रा० ६।१९।२६।

३. सुबेल पर्वतासीन राम की झाँकी भी इसका प्रमाण देती है।
'कह लंकेस मंत्र लगि काना।' मा०६।१०।६।

४. मा०५।४९।५।

५. मा० ६।१२।१-२।

६. मा० ६।१०।१२।

७. विभीषण से परामर्श लेने अनेकों स्थल हैं।
(१) पारस्परिक परामर्श 'गुल्म विभाजन पर' वा०रा० ६।३७।१ से ३।
(२) प्रहस्त के विषय में विभीषण से प्रश्न वा०रा० ६।५८।२
(३) वीर भटों का बलाबल जानने के हेतु प्रश्न वा०रा० ६।५९।११
(४) लक्ष्मण के साथ बिभीषण को निकुम्भिला भेजना वा०रा० ६।८६।२४।

८. आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पनमोरा।।
तुरत विभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला।। मा० ६।९३।१२।

युद्ध समाप्त होते ही विभीषण अपने भाई की मृत्यु पर करुण रुदन करने लगे तब अपने सखा को धैर्य धारण कराया तथा उचित कर्तव्य करने के हेतु प्रेषित किया।[१] लौकिक मर्यादा के कर्तव्यों को पूर्ण कराकर राम ने अपने सखा को राज्याभिषिक्त रूप में प्रतिष्ठित देखने की हार्दिक इच्छा प्रगट कर लक्ष्मण द्वारा तुरंत राज्याभिषेक सम्पन्न कराकर[२] मित्र के प्रति की हुई पूर्व प्रतिज्ञा को पूर्ण किया।

'सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा'
'कीन्हीं जाइ तिलक की रचना।'

तदन्तर अपने युद्ध का समस्त श्रेय भी अपने सखाओं को ही अर्पित कर सुग्रीव की भाँति विभीषण के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट की।

'पूजितोऽहं त्वया सौम्य साचिव्येन परन्तप।'[३]

'हे वीर ! तुमने मन्त्री बनकर यत्न करते हुए मेरा बड़ा सत्कार किया है।'

रामायण में उस स्थल पर राम की मर्यादा अति संयत व उन्नत रूप से पाठक को चमत्कृत कर देती है, जब राम हनुमान से विभीषण की आज्ञा लेकर[४] सीता के पास जाने को कहते हैं। धन्य है मर्यादा पालन। जिन राम के आश्रय से तिरस्कृत व निर्वासित विभीषण राज्याधिकारी बनें वही परमाश्रय अपने आश्रित से अनुमति की याचना करे ? इस लघुता प्रदर्शन में ही तो उसकी प्रभुता है।

राम ने गुह, सुग्रीव की ही भाँति विभीषण से भी किसी प्रकार की उत्कोचपूर्ण या स्वार्थपूर्ण मैत्री न की। सिंहासनासीन कराने का तात्पर्य यह नहीं कि उसके समभागी भी बनें। वे तो 'तापस वेष', 'विशेष उदासी' का बाना धारण किये हुए थे न फिर उन्हें राज्य या सम्पत्ति से प्रयोजन भी क्या था ? परन्तु सुहृद का स्नेह-प्लावित प्रेमोपहार का कटु तिरस्कार या उपेक्षा भी कैसे कर सकते थे शीलनिधान, संकोच-प्रिय, मर्यादा पुरुषोत्तम राम तुरंत 'तोर कोस गृह मोर सब' का अभिन्न अपनत्व दर्शाकर कौतुक करने में लग गये या यों कहा जाय कि स्वयं उस सम्पत्ति का स्पर्श भी न कर कृतज्ञ राम ने अपने सहायक सैनिकों को वस्त्राभूषण दिलवाकर प्रनत अनुरागी प्रसन्न हो उठे।

---

१. वा०रा० ६।११२।१६,२०,२६।
२. विभीषणमिमं सौम्य लंकायामभि षे चय।
अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम्॥
एष मे परमः कामो यदीमं रावणानुजम्।
लंकायां सौम्य कामो पश्येयमभिषीक्तं विभीषणम्॥
अभ्यषिञ्चत् स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणम्। वा०रा० ६।११५।९,१०।
३. वा०रा० ६।११५।२२,२३।
४. 'अनुमान्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्॥
गच्छ सौम्य पुरीं लंकामनुज्ञाप्य यथाविधि॥' वा०रा० ६।११५।२२,२३।

रामायण में इसी प्रसंग को इसी प्रकार वर्णित कर, मर्यादावश, शील व संकोचवश नम्रता प्रदर्शित कर[१] वानर भालुओं को सन्तुष्ट करने की विभीषण को आज्ञा दी तथा अपने मित्र को कृतज्ञता की शिक्षा दी[२] एवं राजोचित कर्तव्य व नीति का उपदेश दिया।[३] अपने मित्र को दिव्य गुण सम्पन्न बनाने की राम की हार्दिक शुभेच्छा यहाँ बलवती प्रदर्शित है।

अपने मित्र की कामना पूर्ण कर, उसको राज्य में भली प्रकार प्रतिष्ठित कर मित्र के प्रति समस्त कर्तव्यों को पूर्ण कर, राम अवधि समाप्त होते ही आकुल हो उठे भ्रातृ विरह की कशा से आहत होकर पर इधर सुहृदों के अनुराग के लोभ का भी संवरण न कर सके। उनके सजल नयन, अपलक आकुल नेत्रों को देख[४] कोमल हृदय राम द्रवीभूत हो उठे और सभी को—

'अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हें सकल विमान चढ़ाई॥'[५]

रामायण में भी विभीषण के अयोध्या चलने तथा उनके राज्याभिषेक देखने के प्रस्ताव को शिष्टाचारवश नहीं अपितु हार्दिक प्रसन्नता हेतु स्वीकार किया।[६]

अयोध्यापुरी पहुँचकर विभीषण का भी क्षौर कर्म, वस्त्रालंकरण करवाकर उचित आतिथ्य किया तथा सभी पुरुजनों व गुरू आदि से अपने मित्र के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए प्रशंसा की।[७] रामायण में तो अपने ही भाइयों के समकक्ष विभीषण को भी सिंहासन के अति निकट स्थान देकर अपना अटूट अनुराग प्रदर्शित किया।[८] राज्याभिषेक के पश्चात् अपने मित्रों की प्रतिष्ठानुकूल ही चक्रवर्ती राजा राम ने उपहार अर्पित कर,[९] अपने मित्र को परितोष कर, उन्हें प्रसन्न मन से विदा किया।[१०]

मानस में रामायण की अपेक्षाकृत अपने इष्टदेव राम का स्वर्गारोहण न दिखलाने के कारण लंका से प्रयाण करने के पूर्व ही विभीषण को आदेश दे दिया —

---

१. वा०रा० ६।१२४।२२,२३।
२. वा०रा० ६।१२५।४ से ७ तक।
३. वा०रा० ६।१२५।८,९।
४. मा० ६।११८।
५. मा० ६।११८।५।१।
६. वा० रा० ६।१२५।२१,२३।
७. (१) 'ए सब सखा·······भए समर सागर कहँ बेरे। मा० ७।७।७।
(२) मित्र प्रेम का आधिक्य राम बिना कहे न रह सके। वा० रा० ६।१३१।४०।
८. 'अपरं चन्द्र संकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।' वा० रा० ६।१३१।६९।
९. तब प्रभु भूषन बसन मँगाए।
'प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥' मा० ७।१६।५,७।
१०. (१) वा० रा० ६।१३१।९०।
(२) वा० रा० ६।१३१।८६,८७।

'करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहिं सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ सन्त सब जाहिं।।'[1]

अपने सुहृद के प्रति अटल राज्य, दीर्घ आयु, भक्ति दान सालोक्य-मुक्ति आदि दिव्य शुभकामनाओं की मणियों से सुसज्जित राम का सख्य प्रेम जाज्वल्यमान हो रहा है।

'रामायण' में यही प्रसंग व यही शुभकामनाएँ व आदेश राम के स्वर्ग-गमन के समय प्रदर्शित हुये हैं। अध्यात्म रामायण[2] के समान ही इसमें भी सुग्रीव की अपेक्षाकृत विभीषण को लंका का शासन धर्म पूर्वक व सदाचार पूर्वक पालन करने का आदेश दे देते हैं।

'विभीषणमथोवाच राक्षसेन्द्रं महायशा:
यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत्वं वै विभीषण।।
राक्षसेन्द्र महावीर्य लंकास्थः स्वं धरिष्यति।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी।।
यावच्च मत्कथा लोके तावद्राज्यं तवास्त्विह।
शासितस्त्वं सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम्।।
प्रजा संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि।
किंचान्यद्वक्तुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महामते।।
आराधय जगन्नाथमिक्षवाकुलदैवतम्।
आराधनीयमनिशं सर्वैदेवैः सवासवैः।।'[3]

अथ सभी सुहृद्‌गणों के साथ भागवत् में कृष्ण की मित्रता[4] के समान ही राम ने भी 'संबल निसंबल को सखा असहाय को' प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया।

पत्नी प्रेम या पत्नी व्रत

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने पूर्वजों को अपेक्षाकृत लोक में एक पत्नी व्रत धर्म की आदर्श मर्यादा तथा उसका आजीवन सफल निर्वाह दर्शाकर लोक प्रतिष्ठित कर दिया। आदि शक्ति को अपने साथ ही सीता रूप में अवतीर्ण कराकर[5] अपना लौकिक चरित्र किया। अपने अवतार रूप में अपनी अभिन्न शक्ति से वे अभिन्न क्यों न होते?

रामायण की अपेक्षाकृत मानस के पुष्प वाटिका प्रसंग में राम के पूर्वानुराग का सुस्निग्ध, परम पावन तथा दृढ़तम रूप चित्रित किया गया है। विदेह नन्दिनी के क्वणित आभूषणों की मधुर ध्वनि से राम स्वयं विदेह हो उठे। वाद्य ध्वनि से वशीकृत व आकृष्ट मृग की भाँति वे उनके सौन्दर्य शर से आबिद्ध हो गये और निर्निमेष निहारने लगे तथा

---

१. मा० ६।११६। (घ)।
२. अ० रा० ७।९।३२ से ३४ तक।
३. वा० रा० ७।१०८।२७ से ३१ तक।
४. 'अहो भाग्यमहो भाग्यं नंद गोप व्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्मसनातनम्।।' भागवत्
५. 'आदि शक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरहि मोरि यह माया।। मा० १।१५१।४।

सराहना करने लगे उस अप्रतिम सौन्दर्य की[1]। परन्तु एक नारी के रूप में आसक्त होना एक उच्चकुल जात के लिए क्या शोभनीय था ? इसका स्पष्टीकरण तुरत राम ने अपने दृढ़ चारित्र्य बल का प्रमाण देते हुये किया।

'जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।
सो सबु कारन जान विधाता।
मोहिं अतिसय प्रतीत मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी।।[2]

'मातृवत् परदारेषु' का आदर्श पालन करनेवाले राम का 'मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ' ही था। वे पूर्व सम्बन्ध की दृढ़ रज्जु के ही कारण इस रूप में भी वशीकृत होकर उनका मन आनन्द निमग्न हो गया।

'मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान।'[3]

उनके इस दृढ़ पूर्वानुराग की पावनता इसी से प्रमाणित है कि वह सर्वसाधारण की भाँति गोपनीय तत्व न होकर खुली पुस्तक की भाँति हैं कि गुरु को भी व्यक्त कर देने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होता। वह हृदय-विद्ध अनुराग व प्रेमाकर्षण स्मृति[4] का रूप धारण कर हृदय में दृढ़तर स्थान पाने लगा। स्वयंबर की क्षितिज पर उनकी पूर्वानुराग अवनि-कर्त्तव्य व बाहुबल-प्रदर्शन गगन से मिलन की ओर उत्सुक हो उठी।[5] कर्तव्य

---

१. 'देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयं सराहत बचनु न आवा।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगट देखाई।।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि गृहं दीप सिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी।।' मा० १।२२९।५,८।

२. मा० १।२३०।४-६।

३. मा० १।२३१।

४. 'प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।
जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक।।
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।।
कोक सोक प्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।
बैदेही मुख पटतर कीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे।।
सिय मुख छबि बिधु व्याज बखानी।' मा० १।२३६।७,८ से १।२३७।३ तक।

५. (१) सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरूरू लघुव्यालहि जैसें।।
मा० १।२५८।

(२) 'चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि।' मा० १।२६०।

(३) देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिषि बिहात कलप सम तेही।।
अस जियं जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी।।
मा० १।२६०।७-४।

साफल्य से पुरस्कृत होकर राम सीता के आन्तरिक प्रेम के ज्ञाता बन आनन्द निमग्न हो उठे।[1]

विवाह-मंडप में 'रूप राशि' सीता जी के पदार्पण करते ही सभी दर्शकगणों ने परमश्रद्धाभिभूत हो उनका मानसिक अभिवादन किया। अपनी हृदयाधिष्ठिता के सौन्दर्य व तदर्पित श्रद्धा को देख राम आप्तकाम हो उठे।[2] प्रेम निमग्न हो गये।[3]

रामायण में उपर्युक्त प्रसंगों का नितान्त अभाव है, केवल वैवाहिक कृत्यों का संक्षिप्त विवरण देकर राज्याभिषेक प्रसंग में राम का पत्नी व्रत रूप दर्शाया है। समस्त धार्मिक व्रत, पूजा व नियमों को सीता के साथ ही सम्पन्न कर[4] राम उनके साथ परम शोभान्वित रहा करते थे। कैकेयी की कुमन्त्रणा से अभिशप्त पिता दशरथ के बुलाने पर राम ने अपनी पत्नी से अनुमति माँगकर प्रस्थान कर मर्यादा पालन दर्शाया।[5]

मानस में उपर्युक्त प्रसंग का अभाव है क्योंकि वहाँ तो राज्याभिषेक का समाचार सुनते ही राम भ्रातृ-प्रेम वश ग्लानि से अभिभूत हो उठे, अतः स्वेच्छा पूर्वक पूर्व कृत्यों का कोई उल्लेख नहीं है। मानस में राम ने पूर्ण मर्यादा धैर्य व संयम का पालन कर सीता को भी तथैव लोकाचारबद्ध गुरुजन सेवा का उपदेश ही दिया।[6] परन्तु उनका मानव रूप स्वाभाविक रीति से रामायण में अभिव्यक्त हुआ है। अपनी माता कौसल्या व भ्राता लक्ष्मण से तो धैर्य का प्रदर्शन कर शान्ति का ही उपदेश कर सान्त्वना दी परन्तु अपनी

---

१. (१) 'गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ मा० १।२६५।
(२) बारात स्वागत पर समस्त सिद्धियों के आह्वान पर—
'सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥' मा० १।३०६।३।

२. 'सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। देखि राम भए पूरन कामा॥' मा० १।३२२।३।

३. 'सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परै।' मा० १।३२२ छन्द २।

४. 'रामः स्नातो नियतमानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत॥
प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत्ततः।
महते देवतायाज्यं जुहाव ज्वलिते नले॥
वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियतमानसः
श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नर वरात्मजः॥ वा० रा० २।६।१,२,४।

५. 'स्थितया पार्श्वतश्चापि बालव्यजन हस्तया।
उपेतं सीतमा भूयश्चित्रया शशिनं यथा॥' वा० रा० २।१६।१०।

६. 'अथ सीतामनुज्ञाप्य कृत कौतुकमंगलः।
निष्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामोनिवेशनात॥' वा० रा० २।१६।२५।

७. 'राजकुमारि सिखावनु सुनहू।
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥' मा० २।६०।२-५।

अभिन्न हृदया जानकी से अपनी आन्तरिक व्यथा व कैकेयी को प्राप्त वरदान की प्रतिक्रिया को न छिपा सके।[1] शोक की स्पष्ट छाया ने उनके अलौकिक तेज को आवृत कर उन्हें विवर्ण वदन, स्वेदपूर्ण, अमर्षयुक्त कर दिया तथा अपनी अन्तरात्मा सदृशा सीता से ही उन्होंने दशरथ के कार्य की आलोचना कर उसको धर्म विरुद्ध घोषित कर अपने अनावृत आन्तरिक रूप का परिचय दिया। इसके साथ ही मानस समलौकिक आचार (मातृ-भक्ति, भ्रातृ-भक्ति) का भी उपदेश दिया। (जिसका विवरण भ्रातृ-भक्ति के अन्तर्गत किया जा चुका है)। मानस के विपरीत भ्रातृ-प्रेम मर्यादा के स्थान पर राजनीति का उपदेश दिया[2] तथा अपने कल्याण के निमित्त आध्यात्मिक दिनचर्या पालन का भी निर्देश दिया।[3] तत्पश्चात् मानस की भाँति[4] वन के भीषण कष्टों का दिग्दर्शन कराकर[5] सीता जी को उनके सौकुमार्य व कष्ट सहन न कर सकने की क्षमता की आशंका कर उनके साथ चलने का प्रतिरोध किया। परन्तु सीता के अनन्य प्रेम के प्रबल प्रवाह में राम के दृढ़ कर्त्तव्योपदेश अचल भी ढह गये अतः उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी।

'परिहरि सोचु चलहु बन साथा ।।'[6]

तथा गोस्वामी जी को भी यह मानना पड़ा कि इससे पूर्व कथित वचन प्रिय न थे अतः वन गमन स्वीकृति देने के पश्चात् ही आप लिखते हैं।

'कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई ।।'

इन प्रिय वचनों की व्याख्या वाल्मीकि जी ने स्पष्टतः की है। राम सीता को वियोगाशंका से दुखित न देख सकें और शोकाभिप्ता सीता का परितोष कर कहने लगे।

'न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
न हि मेऽस्ति भयं किंचित्स्वयंभोरिव सर्वतः।।
तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ।।

---

१. 'तं पतिम्। अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ।।
तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा नशशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ।।' वा० रा० २।२६।६,७।

२. 'ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्याभरतस्याग्रतो मम।
स प्रसाद्यस्त्वया सीते नृपतिश्च विशेषतः ।।
आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः।
राजानः संप्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ।।
सा त्वं वसेह कल्याणि राज्ञः समनुवर्तिनी।
भरतस्य रता धर्मे सत्यव्रतपरायणाः ।।' वा० रा० २।२६।२४,२७,३५,३७।

३. 'व्रतोपवासपरमा भवितव्यं त्वयानघे ।।' वा० रा० २।२९।

४. मा० २।६२ से ६३ तक।

५. वा० रा० २।२८वां सर्ग।

६. मा० २।६७।५।

यत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि ।
न विहातुं मया शक्त्या कीर्तिरात्मवता यथा ।।
धर्मस्तु गजनासोरू सद्भिराचरितः पुरा ।
तं चाहमनुवर्ते च यथा सूर्यं सुवर्चला ।।'[1]

इस प्रकार सीता की इच्छानुकूल आदेश देकर उनकी सब भाँति सराहना करते हुये उन्हें सर्वथा सन्तुष्ट किया ।[2]

तदनन्तर कैकेयी द्वारा दत्त वल्कल वसन सीता को धारण कराकर राम ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया । शृंगवेरपुर पहुँच कर गंगा पार करते समय अपनी पूर्ण सावधानता का परिचय देते हुये राम ने लक्ष्मण को सीता का हाथ पकड़ कर धीरे से बढ़ाने की आज्ञा दी । सदा दुर्गम वन प्रदेश में सीता की सुरक्षा के लिये सतत् सचेत व सचेष्ट रहे ।[3] उनके यथा सम्भव सुख दुःख की भी पूर्ण रूपेण सुव्यवस्था करते रहे । मानस की अपेक्षाकृत रामायण में राम लक्ष्मण ने यमुना पार जाने की व्यवस्था स्वयं की । सूखे बाँस, खस, बेंत, जामुन की शाखाओं के द्वारा बनाई हुई नाव पर अचिन्त्य प्रभावशालिनी सीता को राम ने सहारा देकर नाव पर चढ़ाया और स्वयं लक्ष्मण के साथ नौका खेते रहे । उस पार पहुँच कर लक्ष्मण को यही आदेश दिया कि सीता की वांछित वस्तु उन्हें प्रदान करो ।[4] अथ सीता के रंजन[5] व रक्षण दोनों के प्रति राम उत्सुक व जागरूक रहे ।

रामायण के उपर्युक्त विवरणों का संकेत मानस में भी गोस्वामी जी ने किया है ।

---

१. वा० रा० २।३०।२७ से ३० तक

२. 'अनुगच्छस्व मां भीरू सहधर्मचरी भव
सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च ।
व्यवसायननुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम् ।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते ।' वा० रा० २।३०।४० ४२।

३. (१) 'भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ।। वा० रा० २।९४।
(२) अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने बने ।
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् वा० रा० २।५२।९५, ९६।
(३) जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्य प्रभृति रात्रिषु ।
योगक्षेमं हि सीताया वर्तते लक्ष्मणावयो : वा० रा० २।५३।३।
(४) खर दूषण वध प्रसंग में, मानस में 'राम बोलाइ अनुज कहा ।
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ।।
रहेहु सजग............मा० ३।१७।११।

४. 'यद्यत्फलं प्रार्थयते पुष्पं वा जनकात्मजा ।
तत्तत्प्रदद्या वैदेह्या यत्रास्या रमते मनः ।' वा० रा० २।५५।२८,२९।

५. 'वैदेहि रमते कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।
पश्यन्ती विविधान् भावाम् मनोवाक्कायसंयतान् ।' वा० रा० २।९४।१८।

'सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ।।
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ।।
प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु।
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ।।
रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत।'[1]

रामायण में चित्रकूट प्रसंग में उपर्युक्त उपमा का सादृश्य अवलोकनीय है।

'वैदेह्या: प्रियमाकाङ्क्षन् स्वं च चित्तं विलोभयन्।
अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत्।
भार्यामसरसङ्काशः शचीमिव पुरन्दरः'[2]

रामायण में सीता के सुखानुभव की जिज्ञासा प्रकट करते हुये राम सीता के साथ मंदाकिनी स्नान करते समय उनके प्रति पूर्णानुराग प्रगट करते हैं और अपने को राज्यादि विभवों के बिना भी सीता के सहवास के कारण परम सुखी मानते हैं।[3]

मानस में मर्यादा रक्षण व उद्देश्य से विषय विस्तार अधिक न होने के कारण केवल संकेत मात्र से ही राम का सीता के प्रति सानुराग रक्षण का दिग्दर्शन कराया गया है।

'जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ।।[4]

राम ने चित्रकूट में सीता का शृंगार निज चयनकृत पुष्पों द्वारा किया[5] तथा रामायण के अतिरिक्त जयन्त प्रसंग में सीता को अवमानना या उन्हें कष्ट पहुँचाने का समुचित दंड भी जयन्त को देकर अपनी रक्षण-तत्परता का परिचय दिया।

रामायण में निज प्रेम-प्रदर्शन के साथ-साथ सीता के प्रति कल्याण-कामना राम में स्थान-स्थान पर प्रदर्शित की गई है। राम की हार्दिक इच्छा है कि वह भी मुनि वृन्दों के साथ तथैव व्यवहार करें जैसा कि राम स्वयं करते हैं।[6] राम सीता को आदर्श शिक्षण के हेतु स्वयं सीता को आदेश देते हैं कि वे अपने कल्याणार्थ अनसूया जैसी तपस्विनी के पास जायँ।[7]

---

१. मा० २।१४०।१,६,८। २।१४१।
२. वा० रा० २।९४।१,२।
३. वा० रा० २।९५।१२,१४,१६,१७।
४. मा० २।१४१।१।
५. 'एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ।। मा० ३।०।३,४।
६. 'कच्चिच्छुश्रूषमणावः सुश्रूषणपरामयि।
प्रमदाम्युचितां वृत्तिं सीता युक्तां न वर्तते ।।' वा० रा० २।११६।७।
७. 'श्रेयोऽर्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम्।' वा० रा० २।११७।१६।

इन प्रसंगों के अनन्तर राम के जीवन में सीता के प्रति कर्त्तव्य व भावना के निर्णायक वे भीषण विघ्न स्थल आते हैं जिनकी कसौटी पर कसे जाने पर यह प्रेम और भी उज्ज्वल व तेजस्वी रूप धारण कर निखर उठता है जिससे समस्त मानस व रामायण का मध्यांश अभिभूत हो उठता है। अन्य शब्दों में राम का पत्नी प्रेम ही वह केन्द्र बिन्दु है जिससे समस्त घटना चक्रिकाएँ निस्सृत होकर युद्ध प्रसंग का पूर्ण वृत्त चित्रित कर राम की यश पताका फहरा देती हैं।[1]

मानस में गोस्वामी जी ने मर्यादा रक्षण की भावना से प्रेरित होकर राम द्वारा सीता को पावक में निवास की आज्ञा प्रदान करवाई है और शेष नरलीला सीता के पूर्व रूप सम शील व सुविनीत प्रतिबिम्ब के साथ की है। परन्तु रामायण में इसका उल्लेख नहीं जो कि स्वाभाकिता के स्तर पर विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है।[2]

सीता की ही हार्दिक कामना की पूर्ति हेतु राम कपट मृग वेधन करने जाते हैं और विधि विधान के वशीभूत राम को लौटने पर मिलता है अपनी क्रिया से दारुण वियोग का अभिशाप।

वाल्मीकि रामायण में सीता हरण के पूर्व 'विराध वध' प्रसंग के वर्णन का मानस के कथा में अभाव है। उसमें भी सीता को विराध द्वारा अपहृत देखकर राम का मुख विवर्ण हो गया अपनी सच्चरित्रवती भार्या के सौकुमार्य का चिन्तन करते हुये[3]। राम नारी प्रेम प्राबल्य के कारण माता पर भी आशंका करने लगे। वे अति शोकाभिभूत तथा कर्तव्य भावना से व्यथित हो उठे। उन्होंने अपनी स्त्री को पर पुरुष उत्संग में देखकर[4] उसे

---

1. 'The love that drew Rama and Sita together was most remarkable in fact the whole poem deals with that topic.' (Lec. III, T. L. on R.)
2. 'To think of Maya sita deprives the interest of the Epic because when Lakshaman and Ram bemcan her separate when they threaten Sugrive etc.' (Lec. III, T. L. on R.)
   It loses the interest of a reader seeing them bemoaning for a 'maya' sita.

३. राम के वियोग शृंगार में भी पूर्ण मर्यादा का संरक्षण व विशेषता का दिग्दर्शन करने के हेतु श्री शंभु प्रसाद बहुगुणा जी लिखते हैं।—

'तुलसी के विरह में भी शान्ति की शीतलता है जिसके फल स्वरूप मानस में जहां कहीं विरह विलाप के प्रसंग आये हैं वे भौतिक काव्य की विरह भावनाओं की दृष्टि से अस्वाभाविक से लगते हैं हृदय में विरह की वेदना नहीं है परिस्थिति में उसकी लीला भर दिखाई जा रही है। किन्तु भौतिक काव्य की दृष्टि से जो अस्वाभाविकता है वह तुलसी की काव्य चेतना की दृष्टि से वैष्णव भावना के कवियों की महान् विशेषता भी है।'

मानस मंदाकिनी पृष्ठ १८१।

४. 'पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसंभवाम्।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम्॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम्।
यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत्॥' वा० रा० ३।२।१७,१८।

खनित गर्भ में दबाकर अपना कर्त्तव्य सफलता पूर्व सम्पन्न किया। तत्पश्चात् मुनियों के राक्षस वध की प्रतिज्ञा पर सीता ने कुछ परामर्श दिये जो कि राम के प्रण व प्रकृति से असम्बन्धित थे परन्तु फिर भी उन परामर्शों के मूल में निहित कल्याण कामना को समझकर सीता की सराहना करके[1] प्रेम प्रदर्शन ही किया।

रावण की छल प्रवंचना के प्रतिनिधि मारीच मृग को देखते ही सीता की आकुलता व लेने की इच्छा को देख राम उसके पीछे चल दिए। उस मायामृग रूपधारी राक्षस को मानकर राम तुरत लौट पड़े वह उपहार सीता को अर्पित परन्तु करने, अपशकुनों को देख उनका मन अज्ञात आशंका से आशंकित हो उठा।

'मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम्।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा॥'[2]

'मानस' में जहाँ 'मम मन सीता आश्रम नाहीं।' कहकर तथा 'बाहिज चिंता कीन्ह बिसेषी।' का ही उल्लेख हुआ है वहीं रामायण में लक्ष्मण को सीता को अकेली छोड़ आया देख 'क्व सा' 'क्व सा'[3] की आतुर प्रश्नावलियों की झड़ी लगाकर अपने आन्तरिक 'स्नेहः पाप शंकी' रूप का प्रदर्शन कर उनके वियोग में प्राण त्याग तक का मनोद्वेग दर्शाया है।

'यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः।
संवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण॥'[4]

आश्रम को सीता से शून्य निरख राम विक्षिप्त हो उठे, विलाप कर उठे, प्रलाप करने लगे, उन्मत्त से हो गये।

---

१. 'परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्वियोगात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा॥' वा० रा० ३।२।२१।

२. 'मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वयानघे।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशिष्यते॥
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव चात्मनः।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥' वा० रा० ३।१०।२०,२१।

३. वा० रा० ३।५८।२४।
'क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वामिहागतः।
राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः॥
क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा।
यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम्॥
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा।
पतित्वममराणां हि पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण॥
विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम्।' वा० रा० ३।५९।२ से ५ तक।

४. वा० रा० ३।५९।९।

'वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीनदम् ।
बभ्राम विलपन्नामः शोकपंकार्णवप्लुतः ।।'[1]

मानस में

आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ।।'

कहकर उनके मानवोचित किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति का संकेत मात्र ही किया है। परन्तु रामायण के समस्त ६०व ६१वें सर्ग में उनका आकुल प्रलाप[2] हृदय में मर्मस्पर्शी वेदना का प्रादुर्भाव कर बिना करुणार्द्र किये नहीं रह सकता । मानस में राम'

'हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम देखी सीता मृग नैनी ।।'

की आकुल प्रश्नावली से वन प्रदेश को प्रतिध्वनित कर विक्षुब्ध कर देते हैं । तथैव रामायण में भी अर्जुन वृक्ष, कुकुभवृक्ष, अशोक, ताल, जामुन, कर्णिकार आदि वृक्षों से उनका पता पूछते हैं । मानस की उपर्युक्त अर्धाली का शाब्दिक साम्य तो रामायण में पूर्णतः है ।

'अथवा मृगशावांक्षी मृग जानासि मैथिलीम् ।'

'मानस' में राम पशु-पक्षी, प्रकृति के सुमनोहर तत्वों के मिस सीता के नखशिख वर्णन की स्मृति को व्यक्त करते हैं[3] अथवा उसके सौन्दर्य की स्मृति कर उद्विग्न हो उठते हैं वहीं रामायण में स्मृति से भी अधिक अश्रु, उन्माद, मूर्च्छा, आदि सात्विक अनुभावों का प्रदर्शन कर अपने आकुल अन्तर का दिग्दर्शन कराते हैं । बुद्धि तत्व तो उनका किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो चुका अतः उसने अपना कार्य करना ही स्थगित कर दिया, फिर स्मृति कैसी ?[4] उनके इस शोक विह्वल वियोग दशा का मार्मिक चित्रण रामायण में अत्यन्त विशद तथा कारुणिक है । समस्त ६२, ६३ वें सर्ग नाना प्रकार की आशंकाएँ करते हुए राम अति क्षुब्ध हो उठे । उनका क्षत्रियत्व हुंकार उठा अपनी अभिन्नता के अन्वेषणार्थ । अतः वे मार्ग निर्देश

---

१. वा० रा० ३।६१।११।

२. 'किं धावसि प्रिये दूरं दृष्टासि कमलेक्षणे ।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां व प्रतिभाषसे ।
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणाभयि ।
नात्यर्थं हास्य शीलासि किमर्थं ममामुपेक्षसे ।' वा० रा० २।६०।१६।२७।

३. 'खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहि यामिनी ।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं ।' मा० ३।२९।१०,१३।

४. 'दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलो भवत् ।
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः ।
विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ।।
बहुश स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ।।' वा०। रा० ३।६२।२८ से ३० तक ।

न करने वाले पर्वत, सरिता आदि जड़ तत्वों पर भी अपना आवेश प्रगट करने लगे। इतना ही नहीं दिग्दिगन्त व्यापी रोष की हुंकार से, ललकार से समस्त जल, थल को प्रकम्पित व नष्ट-भ्रष्ट कर डालने का भीषण संकल्प-सा करने लगे।[1] परन्तु यह क्षोभाग्नि जटायु की मरणासन्न दशा व उसका हेतु जान द्रवीभूत हो निश्चेष्ट पड़ गई। कारुण्य वत्सल राम ने जहाँ मानस में अपने 'कर सरोज' से उसे 'विगत पीर' कर धैर्य शीलता व करुणाशीलता का दिग्दर्शन कराया वहीं रामायण में राम आतुर व आकुल होकर अपने स्वाभाविक मनःस्थिति में उसके ऊपर हाथ फेरते हुए भी उस रुधिर से युक्त जटायु से लिपट 'सीता सीता' की पुकार करते हुए मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े।

सीता के अन्वेषणार्थ निर्दिष्ट पथ पर भटकते हुये राम ने लक्ष्मण को सीतान्वेषणार्थ अति विह्वलता से सुग्रीव के पास जाने का आदेश दिया। 'तस्यामासक्तचेतसा' कह कर अपने अन्योन्याश्रित रूप का प्रदर्शन कराया।

मानस में नर लीला का आदर्श स्थापन उस वियोग दशा में भी अध्यात्म प्रमुख[2] संयत धैर्य द्वारा किया है। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मानस में वियोग वर्णन संयत धैर्य युक्त आदर्श का शिखर है जहाँ प्रयास व आत्मिक बल के सोपान द्वारा आरूढ़ होने को मानव लालायित रहा करता है तथा रामायण का यह वर्णन वह आन्तरिक यथार्थ व आन्तरिक मर्मस्थल का गवाक्ष है जहाँ प्रत्येक मानव उस परिस्थिति का रूप स्वतः ही अपने ही मनस्पटल में झांक सकता है।

जहाँ राम 'विप्र फिरहिं हम खोजत तेही' कहकर अपना वहाँ आने का अभिप्राय मात्र ही प्रगट करते हैं वहीं रामायण में प्रकृति के दृश्यों में सीता के सादृश्य से उद्दीप्त[3] राम लक्ष्मण द्वारा अपना वहाँ आने का अभिप्राय हनुमान् से व्यक्त करते हैं तथा अपनी ओर से ही सुग्रीव से मैत्री का प्रस्ताव रखवाते हैं। किष्किन्धा कांड का समस्त प्रथम सर्ग राम की उत्कट व आतुर स्मृति का स्पष्ट निदर्शन है। तत्पश्चात् सुग्रीव द्वारा दर्शित सीता

---

१. 'नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
किंनरा व मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण ॥
असंपातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम्।
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा ॥
न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः।
क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम्।' वा० रा० ३।६५।५८,५९,६१,७५।

२. शबरी प्रति रामगीता, नारद प्रति संत लक्षण आदि का विवेचन सीता हरण के पश्चात् ही किया है।

३. 'पद्मकोशपलाशानि दृष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥' वा० रा० ४।१।७१,७२।

के पट को देखकर जहाँ मानस में गोस्वामी जी ने 'पट उर लाइ सोच अति कीन्हा' ही कहकर राम के आकुल अन्तर का संक्षिप्त व्यक्तीकरण किया है वहीं रामायण में सीता के वस्त्राभूषणों को देख राम के सभी सात्विक[1] तथा कायिक अनुभावों का प्रदर्शन किया गया है। मानव राम का इससे अधिक स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण अन्यत्र अप्राप्य है। स्तम्भ, स्वर-भंग, वैवर्ण्यादि सात्विक अनुभावों के साथ-साथ यत्नज अथवा कायिक अनुभाव भी उनके क्रियाशील पति रूप को प्रतिष्ठित करते हैं।[2] उनकी गर्वोत्तेजना से समन्वित क्षोभ अपने यथार्थ रूप में प्रगट होकर उनके जागरूक व कर्त्तव्य निष्ठा का प्रमाण दे रहा है। इसी प्रकार का गर्जन मानस में भी लक्ष्मण के सन्मुख उनकी कर्त्तव्य गुरुता का निदर्शन कर रहा है।

> 'एक बार कैसेहु सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महं आनौं॥
> कतहुँ रहै जो जीवत होई। तात यतन करि आनौं सोई॥'[3]

इतना ही नहीं श्री हनुमन्तलाल से यही आज्ञा भी देते हैं।

> 'बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥'[4]

रामायण में निज बल प्रतिष्ठा नहीं अपितु हनुमान के प्रति ही अपना दैन्य प्रदर्शन कर अपने को उनका आश्रित बताकर प्रार्थना सी करते हैं।[5] परम ओजस्वी व तेजस्वी राम सीता विरह से प्रपीड़ित होकर इस दशा को प्राप्त होते हैं।

मानस में जहाँ राम ने वर्षा तथा शरद् ऋतु का वर्णन नैतिक तथा उपदेशात्मक

---

१. 'ततो गृहीत्वा तद्वासः शुभान्याभरणानि च॥
अभवद्बाष्पसंरूद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः।
सीतास्नेह प्रवृत्तेन स तु वाष्पेण दूषितः॥
हा प्रियेति रूदन् धैर्यमुत्सृज्याऽन्यपतत्क्षितौ।
हृदि कृत्वा तु बहुशस्तमलंकारमुत्तमम्॥
निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः।
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रि वीक्ष्य पार्श्वतः॥' वा० रा० ४।६।१५ से १८।

२. 'ततः स राघवो दीनः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम॥
यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान्।
हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता भृशम्॥
आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम्।
अथ वै प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि॥ वा० रा० ४।६।२३ से २६ तक।

३. मा० ४।१७।२३।

४. मा० ४।२३।११।

५. 'अति बल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।
पवन सुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व॥ वा० रा० ४।४४।१७।

रूप में किया है तथा यदा कदा ही सीता की स्मृति से चंचल हुए हैं[1] वहीं रामायण में राम विशुद्ध प्रकृति वर्णन करते हुए उद्दीप्त होकर प्रतिपल सीता की दृढ़ स्मृति रज्जु के आधार से वेदना की अनुभूति द्वारा व्यथित होते हैं।[2] उन्हें प्रकृति में नैतिकता का आभास न होकर रोम-रोम में रमी सीता का रूप ही परिलक्षित होता है।[3]

सुन्दरकाण्ड में राम का वियोग चित्रण मानस में रामायण पर ही आधारित है यहाँ तक कि कहीं तो शाब्दिक साम्य तक है।

'तव दुख दुखी सु कृपा निकेता'[4]

'त्वद्वियोगेन दुःखार्तः'[5]

वियोगाग्नि दग्ध राम की व्यथा का निरूपण उनके संदेश रूप में जानकी जी से करते हैं।

'नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा समनिसि ससि भानू॥
........उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥' आदि[6]

रामायण में भी इस वियोग ज्वाला का इससे भी उग्रतम वर्णन है।[7] मानस में राम ने अतिमर्यादा बद्ध प्रेम-प्लावित अनन्यता का संदेश भेज कर अपनी अभिन्नता का परिचय दिया।

'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥'[8]

---

१. 'घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन उन डरपत मन मोरा॥ मा० ४।१३।१।

२. 'हृतां हि भार्यां स्मरतः प्राणेभ्योपि गरीयसीम्।
उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशांक च विशेषतः॥
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम्।
तत्समुत्थेन शोकेन वाष्पोपहतचेतसम्॥' वा० रा० ४।२७।३१,३२।

३. 'नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी॥' वा० रा० ४।२८।१२।

४. मा० ५।१३।६।

५. वा० रा० ५।३४।३४।

६. मा० ५।१४।२४।

७. 'स तवादर्शनादार्यं राघवः परितप्यते।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्नि पर्वतः॥
त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम्।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः॥
तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते॥' वा० रा० ५।३५।४४ से ४६ तक।
महता भूमि कम्पेन महनिव शिलोच्चयः।.'

८, मा० ५।१४।६-७।

हनुमान् को भी राम के प्रेम के विषय में अपना दृढ़ मत प्रदर्शित करना ही पड़ा।

'तुमते प्रेम राम के दूना ।।[1]

रामायण में भी उपर्युक्त कथन का व्यापक निदर्शन हनुमान् ने किया है स्वाभाविक तथा अहर्निश अनन्यानुराग व स्मृति का दिग्दर्शन करते हुए।[2] केवल भाव पक्ष की आतुरता ही नहीं कर्त्तव्य पक्ष के जागरूक रूप का वर्णन करके भी हनुमान् ने सीता को आश्वासन दिया है।

'जो रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई ।।'

तथा 'निसिचर मारि तोहि लै जइहैं।'[3]

राम के सन्देश द्वारा सीता को श्रवणामृत पान कराकर हनुमान् ने स्वाति नक्षत्र सम चातक राम के समीप लौटकर सीता प्राप्ति की चिर प्रतीक्षित मधुर जलबिन्दु द्वारा राम को कृतकृत्य कर दिया। राम को पुनर्जीवन सा मिला। सीता की कुशल जिज्ञासा राम के अन्तस्तल को उत्सुक कर व्यक्त हो गई ....

'कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्व प्रान की।'

'रामायण' में तो केवल कुशल ही नहीं वरंच अपने प्रति भावों के जानने के लिये भी राम आतुर हो उठे[4] कि कहीं सीता मेरा कर्त्तव्य में विलम्ब देख मुझसे उदासीन तो नहीं हो गईं। अत: सशंकित हो उठा राम का विह्वल हृदय। मानस में तो

'मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहिं जिअत नहिं पावा ।।'

का संदेस सुन राम संयत रहकर कर्त्तव्य निर्धारण ही करते हैं परन्तु रामायण में यह स्थिति सुनते ही राम प्रकम्पित, आशंकित, आकुलित हो व्यथित व आतुर हो उठते हैं,[5] किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो जाते हैं। सीता द्वारा प्रेषित अभिज्ञान-चूड़ामणि पाकर उनकी आन्तरिक भस्मावृत अग्नि सम वेदना पुन: भभक उठती है। मानस के समान[6] ही उसे हृदय से लगाकर राम रामायण में सानुज रुदन करने लगते हैं।[7] अपनी प्रिया के सकुशल

---

१. मा० ५।१५।१०।

२. नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायण: ।।
नान्यच्चिन्तयते किंचित्।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभि भाषते ।।' वा० रा० ५।३५।४३,४५।

३. मा० ५।१५।११।

४. 'क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते।' वा० रा० ५।६५।५।

५. 'चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति।
न जीवेयं क्षणमपि विना तामसि तेक्षणाम् ।।
नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।।' वा० रा० ५।६६।१०,११।

६. 'चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयं लाइ सोइ लीन्हीं ।।' मा० ५।३०।१।

७. 'तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मण:।' वा० रा० ५।६६।१।

अन्वेषण कर्त्ता हनुमान् की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे राम तथा हृदय को शान्ति व शीतलता प्रदान करने वाले हनुमान् को ही हृदय से लगाकर अपनी कृतज्ञता अर्पित की।[1] तत्पश्चात् मानस में राम सीता के कष्ट निवारणार्थ प्रयत्न में पूर्णत: लग गये। कर्त्तव्य की गुरुता के अचल को भावोन्माद का प्रवाह न डिगा सका और वे दृढ़ता के साथ रावण बध जैसे दुर्लभ व दुष्कर कार्य में लग गये और उसे सम्पन्न भी किया परन्तु रामायण में कर्त्तव्य पक्ष के अचल के मध्य कुछ भाव निर्झर भी प्रवाहित हो उठते हैं जिनमें अवगाहन कर पाठक वृन्द बिना द्रवित व करुणार्द्र हुए नहीं रह सकता। युद्ध कांड का समस्त पंचम सर्ग इसका स्पष्ट निदर्शन व प्रमाण है।[2] उसमें हमें कालिदास के मेघदूत तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय की पवन दूती की पूर्व पृष्ठ भूमि का स्पष्टत: दर्शन होता है।[3] यही नहीं पग-पग पर जहाँ कहीं भी सीता से सम्बन्धित किसी भी स्थान या वस्तु का दर्शन किया वहीं उनका दाम्पत्य प्रेम व्यथित होकर चीत्कार करने लगा। लंका के निकट पहुँचते ही उसमें बंदीकृता प्रिया की स्मृति जागृत होते ही राम विह्वल हो गये[4] और अपनी सेना को तुरन्त आदेश दिया राक्षस वध का केवल रावण वध का ही नहीं।

इतना ही नहीं इन्द्रजीत द्वारा सीता वध का समाचार सुन राम संज्ञाशून्य हो गये।[5] आत्मा विहीन, शक्ति रहित तन का अस्तित्व स्पष्ट हो गया।

रामायण की इन भाव विह्वल स्थितियों का अवलोकन कर हम युद्ध समाप्ति के पश्चात् उस सामान्य स्तर पर पहुँचते हैं जहाँ राम के सीता प्रति विचित्र भाव का प्रदर्शन

---

१. (१) 'कपि उठाइ प्रभु हृदयं लगावा। करि गहि परम निकट बैठावा॥'
मा० ५।३२।४।

(२) 'इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे।
हनूमन्तं महात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥ वा० रा० ६।१।१५।

२. 'सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति॥
स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च।
भूयस्तनुका सीता देशकालविपर्ययात्॥ वा० र० ६।५।१५,१८।

३. 'वाहि वात यत: कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्र संस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टि समागम:॥' वा० रा० ६।४।६।

४. 'जगाम सहसा सीतां दूयमानेन चेतसा॥
अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा।
पीड्यते शोकसन्तप्ता कृशा स्थंडिल शायिनी॥
पीड्यमानां स धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन्।
क्षिप्रमाज्ञापतायास वानरान्द्विषतां वधे॥' वा० रा० ६।४२।७ से ९।

५. 'जघान रूदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मज:।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघव: शोकमूर्छित:।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुम:॥' वा० रा० ६।८३।९,१०।

है। दोनों काव्य ग्रन्थों में राम सीता के पास हनुमान् को भेजते हैं अपना युद्ध साफल्य तथा सीता-कष्टोद्धार की सूचना देने ।[1] परन्तु जब सीता राम के सन्मुख उपस्थित होती हैं तब उस दृश्य व राम के कर्त्तव्य निष्ठ भाव को निरख मातृ प्रेमी भावुक हृदय बिलख पड़ता है, जननी जानकी के प्रति कथित राम की निर्मम कटूक्तियाँ श्रवणगत कर। अपनी चिर प्रतीक्षिता आर्या के सम्मुख आते ही पाठक उनके हर्ष, दैन्य तथा क्रोधादि विरोधी भावों को देखते ही चकित रह जाता है।

'तामगतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ।
हर्षो दैन्यं च रोषश्च त्रयं राघवमाविशत् ।।'[2]

मानस में केवल 'करूनानिधि कहे कछुक दुर्वाद' तथा 'अन्तर साखी' को प्रगट करना मात्र का दिग्दर्शन मर्यादित तथा शिष्ट है। परतु रामायण में इस 'कछुक' शब्द का स्पष्टीकरण परम पावना सती साध्वी सीता के चरित्र को लांछित करते हुए व बड़े कटु वाक्यों[3] द्वारा हुआ है जिसे सुन उपस्थित जन वृन्द दु:ख व सीता के प्रति सहानुभूति के कारण कातर हो उठे। स्वयं सीता उन उपेक्षापूर्ण लांछन युक्त व्यंग वाणों को न सहन कर सकने के कारण अग्नि प्रवेश के लिये उद्यत हो उठीं। राम द्वारा अपना त्याग उन्हें सह्य न हो सका और मानस की ही भाँति लक्ष्मण को चिता निर्माण की आज्ञा दी।[4] परन्तु मानस में

---

१. (१) 'गच्छ सौम्य·······
वैदेह्यै मां कुशलिनंससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व जयतां श्रेष्ठ रावणं च मयाहतम् ।।' वा० रा० ६।११५।२४।
(२) 'लंका जाहु·······
समाचार जानकिहि सुनावहु । तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु ।।' मा० ६।१०६।२।

२. वा० रा० ६।११७।१६।

३. 'रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वंशः
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्ग च परिमार्जिता ।।
प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रति मुखेस्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढ़म् ।।
तद्गच्छ ह्यभ्युज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रं कार्यमस्ति नमे त्वया ।।
रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत् ।।
तदर्थं निर्जिता मे त्वं यश: प्रत्याहृतं मया ।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः ।।'
वा० रा० ६।११८।१६,१७,१८,२०,२१।

४. (१) 'चितां मे कुरू सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ।।' वा० रा० ६।११९।१८।
(२) 'लक्ष्मण होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम बेगी ।।' मा० ६।१०८।२।

चिता प्रवेश रहस्योद्घाटन (माया सीता का अन्तर्हित् होना तथा साक्षात् 'अनल महं राखी' सीता का पुनर्ग्रहण) के कारण हुआ, राम के कटु निर्मम असह्य व्यवहार की प्रेरणा से नहीं। रामायण मे राम का सीता त्याग उनकी यश लिप्सा, लोक मर्यादा तथा निर्मम निश्चय का प्रतीक है। स्वयं लक्ष्मण भी अनन्य सेवक होने पर भी राम के इस कृत्य पर क्रुद्ध हो उठे।[1] परन्तु राम के इस उग्रतम रूप का आशय अग्नि प्रवेश के पश्चात् व्यक्त होता है। सीता के अग्नि प्रवेश करते ही सबके साथ राम भी रुदन करते हुए चिन्तातुर हो गये।[2] अग्निदेव के राम को सीता के समर्पित करने के पश्चात् राम ने अपने पूर्व कथित मर्माहत वचनों का आशय स्पष्ट करते हुए अपने लोकाचार नैपुण्य को प्रगट कर अपने मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को प्रतिष्ठित करते हुए कहा—

'अवश्यं त्रिषु लोकेषु न सीता पापमर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥
बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि ॥
प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ॥'[3]

अग्नि, पिता दशरथ आदि के आदेशानुसार सीता को ग्रहण कर राम अवध आए तथा उनके सहित सिंहासनारूढ़[4] होकर राज्य के शासन का सम्यक् रूपेण संचालन करने लगे। परम पुरुष व परम शक्ति दोनों के एकीकृत रूप द्वारा राज्य संचालन से सुख समृद्धि, ऐश्वर्य सर्वत्र सम्पन्न हो गया। राम सीता के सहित ही मानस में यावज्जीवन रहे[5] तथा उन्हीं के सन्निकट ही पुत्र लाभ हुआ।[6]

इसकी अपेक्षाकृत रामायण में भवभूति का आधार भूत यह प्रसंग अपने अनोखे रूप के साथ वर्णित हुआ हुआ है। राम अयोध्या में सीता के साथ सुखपूर्वक आनन्द विभोर तथा आमोद-प्रमोद में निमग्न थे।[7] सीता के तपोवन दर्शन की दोहद इच्छा पूर्ण करने की राम ने सहर्ष स्वीकृति भी दे दी।[8] परन्तु उस इच्छा की पूर्ति का कारण कुछ और ही बना, वह था लोकापवाद के कारण सीता परित्याग। राम का मस्तिष्क भाव व

---

१. 'अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत ॥' वा० रा० ६।११९।२०।

२. 'ततो हि दुर्मना रामः वदतां गिरः।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा वाष्पव्याकुल लोचनः ॥' वा० र० ६।१२०।१।

३. वा० रा० ६।१२१।१३,१४,१६।

४. (१) 'ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे सहसीतं न्यवेशयत् ॥' वा० रा० ६।१३१।५८।
(२) 'जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ॥' मा० ७।११।३।

५. 'राम पदारबिन्द रति करति सुभावहि खोइ ॥' मा० ७।२४।६।

६. 'दुइ सुत सुन्दर सीता जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥ मा० ७।२४।६।

७. वा० रा० ७।४३।२३,२४।

८. 'विस्रब्धा भव वैदेहिश्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥' वा० रा० ७।४२।३५।

कर्त्तव्य के संघर्षमय हिंडोले में झूलने लगा और विक्षिप्त हो उठा। लोक चर्चा सुनते ही राम की स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई।[1] वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये। परन्तु कर्त्तव्य पक्ष विजित हुआ। संभावित पुरुष की यशप्रियता का रूप प्रदर्शित कर दिया।[2] लक्ष्मण को आदेश दे दिया कि वे सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आवें। परन्तु कर्त्तव्य निर्वाह के साथ-साथ वे सीता के प्रति उदासीन न हो सके। वियोग ज्वाला में चिर दग्ध होते रहे, अश्रु निर्झर प्रवाहित करते रहे। बरबस जन रंजन राम ने कर्त्तव्यवश सीता परित्याग करके भी सीता के प्रति हार्दिक उपेक्षा या कुभावना कभी न प्रकट की। वाल्मीकि द्वारा सीता के राज सभा में उपस्थित करने पर राम अपनी दुर्बलता को स्वीकृत करते हुए क्षमा याचना तक करते हैं।

तुलसी के भगवान् राम

राम के विविध रूपों में यह उल्लेख किया जा चुका है कि वाल्मीकि के राम मानवोत्तम परिलक्षित किये गये हैं जब कि मानस के राम केवल मानव ही नहीं वे इससे भी परे हैं। ब्रह्म हैं। सत् चित् आनन्द धन हैं, परम पुरुषावतार हैं.....इत्यादि परन्तु इन सबसे उत्तम रुप है उनका 'भगवान् रूप जो कि मानस में सर्वोपरि है।

उक्त अन्तर का कारण श्री प्रेम नारायण टंडन जी लिखते हैं :—

'एक ही व्यक्ति के चरित्र को इस प्रकार भिन्न दृष्टि से देखने का कारण कवियों के आदर्श का अन्तर तो एक ओर समझना चाहिए और उनके समय की लोक रुचि और धार्मिक दृष्टिकोण दूसरी ओर। प्रथम कारण प्रधान है और दूसरा गौण।'[3]

उक्त उद्धरण के अनुसार यह नितान्त सत्य है कि गोस्वामी जी स्वयं भक्त थे अतएव भक्तवत्सल राम का रूप उन्हें स्पृहणीय था। इसके अतिरिक्त कृष्ण भक्ति शाखा के श्रृंगार शिरोमणि एवं वात्सल्य रस धनी 'कृष्ण' की सरस लहरी तरंगित हो रही थी। आर्त्त जनता को अवलम्ब तो मिल ही गया था परन्तु तुलसी ने अपने इष्टदेव की प्रतिमूर्ति शक्ति, शील, सौन्दर्य समन्वित' प्रस्तुत की जिसमें लोक रंजक एवं लोक रक्षक दोनों ही रूप विद्यमान हुये। तुलसी के आराध्य राम की भक्त वत्सलता, दीनबन्धुत्व, शरण्यता भक्तों का सर्वस्व बन गई।

---

१. 'ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ॥
सन्ध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम्।
वाष्पपूर्णं च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ॥
.........रामस्त्वश्रूण्यवर्तयत् ॥ वा रा० ७।४४।१५,१६,१८।

२. 'कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम्।
अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरूषर्षभाः ॥
अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।'
वा० रा० ७।४५।१४,१५।

३. तुलसी के राम, पृष्ठ ६।

मानस में राम का यह रूप अत्यन्त उज्ज्वल चित्रित हुआ है। राम के इस रूप की अनेकों दिव्य गुण रश्मियां भक्त को रससिक्त कर देती हैं जो प्रमुखत: इस प्रकार हैं :—

भाव-शिरोमणि राम का स्वरूप वस्तुत: आह्लादक एवं शान्ति दायक है। उनकी इन दिव्य कृपा किरणों का झाँकी दर्शन कर लेना भी परम अनिवार्य है।
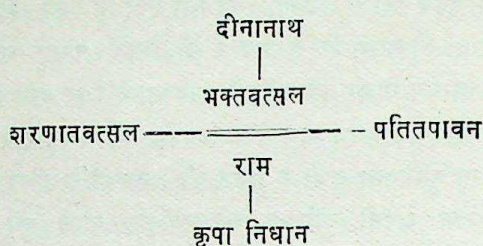
राम का दीनानाथ रूप

'तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी' के व्यावहारिक रूप के पालनकर्त्ता तुलसी मानस में अपने राम की दीनबन्धुता का वर्णन करने का लोभ किस प्रकार संवरण कर सकते थे। मानस में राम अयोध्या के ही नाथ नहीं 'मीन पीन पाठीन पुराने' का व्यवसाय करने वाला भी उनको देख गद्‌गदवाणी से कह उठता है :—

'नाथ आज मैं काह न पावा। मिटे दोष दु:ख दारिद दावा।।
अमित काल मैं कीन्ह मंजूरी। आजु दीन्ह बिधि मोहि भलि भूरी।।'[1]

वह तो फिर भी निषादराज था। वन के अन्य कोल किरातादि वर्ग भी उस रूप के प्रति भाव तन्मय होकर राम की ओर उन्मुख हो उठे। वे स्तम्भित होकर सजल नयन पुलकित तन होकर स्नेह मग्न हो उठे। भाव वत्सल राम की दीन बन्धुता उमड़ चली और उन वन्य व्यक्तियों के प्रति अभिन्न कृपा का प्रदर्शन करने लगे :—

बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन'[2]

तुलसी भी इस रूप की समीक्षा किये बिना न रह सके और कह उठे :—

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा।....

राम सकल बन चर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।।'[3]

जब वनचरों के प्रति राम की भाव प्रवणता का यह स्वरूप था तो फिर उत्तम वर्ग के प्रति तो उनका दीन बन्धुत्व सहज ही आंका जा सकता है। इसी लक्षण के कारण ही तो तुलसी ने अपने राम को सकल जीव जन्तु का प्राण प्रिय बना दिया।

'अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं।।'[4]

तथा अपना निष्कर्ष भी गोस्वामी जी ने कह सुनाया :—

---

१. मा० २।१०।५,६।
२. मा० २।१३६।
३. मा० २।१३६।१,२।
४. मा० २।१६१।६।

'अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह'[1]

तपोनिष्ठ भक्त शिरोमणि सुतीक्ष्ण भी इसी कारण से राम के दीन बन्धु रूप को ही पुकार कर कृपा के अभिलाषी बनते हैं :—

'हे विधि दीनबन्धु रघुराया । मोसे सठ पर करिहहिं दाया ।।'[2]

और तो और अभिन्न स्वरूप जगज्जननी जानकी भी उनके दीनबन्धुता से परिचित होने के कारण अपनी विरहावस्था में उसी रूप की पुकार करती हैं :—

'दीन दयालु विरद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ।।'[3]

शरणागत वत्सल राम

'कोटि बिप्र बध लागहिं जाहु । आएं सरन तजउं नहिं ताहू ।।'[4] का शंखनाद करने वाले राम का शरण्यत्व मानस में सर्वत्र वर्णित है यही कारण है कि उनके परिजन और पुरजन ही नहीं, जहाँ कहीं भी राम पदार्पण करते हैं वहां के समस्त जीव एवं व्यक्ति प्रभु के शरणापन्न होने को लालायित होकर कर्म तत्पर हो उठते हैं । प्रभु के शरणागत सभी वर्गों के व्यक्ति हैं । यह उनके शरण्यत्व की विशालता का प्रतीक है ।

'रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सौ बार हिए की ।'

सात्विक गुण के प्रतीक भरत प्रभु के शरणापन्न होते हैं क्योंकि वे उनकी शरणागति का स्वरूप जानते हैं ।

'मैं जानउं निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ।।'[5]

राजसी गुण के प्रतिनिधि सुग्रीव निज स्वार्थ की प्रेरणावश प्रभु को शरणापन्न हुआ और प्रभु की शरणागत वत्सलता मुखरित हो उठी :—

'तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।।'[6]

इतना ही नहीं शरण में लेने के उत्तरदायित्व का संकल्प भी कर डाला :—

'सखा सोच त्यागहु बल मोरे ।'[7]

सुन्दर कांड में विभीषण की शरणागति तो प्रपन्न भक्तों का साधन सर्वस्व ही बन गई है जबकि पाठक गण मानस में यह चित्र देखते हैं कि निज भ्राता से तिरस्कृत विभीषण दीनानाथ प्रभु का चरण चिन्तन करता हुआ आता है और दूर से विरुदावली वर्णन करता हुआ कहता है :—

---

१. मा० ३।१ ।
२. मा० ३।९।१ ।
३. मा० ५।२६।४ ।
४. मा० ५।४३।१ ।
५. मा० २.२५९।५ ।
६. मा० ४।२।६ ।
७. मा० ४।६।१० ।

'श्रवन सुजसु सुनि आयउं प्रभु भंजन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन स्रवन सुखद रघुबीर ।।'[१]

यह सुनते ही शरणागत-वत्सल राम तुरन्त शरण्य भाव से प्रेरित होकर, आह्लाद सहित उठे और हृदयालिंगन द्वारा उसे शीतल कर अपनी मधुर वाणी द्वारा शरणागत के हृदय का रस सिंचन करने लगे ।[२]

यही नहीं मानस का राक्षस मारीच भी राम का सानुराग शरण्यत्व स्वीकार करने को तत्पर हो उठता है :—

'तब ताकिसि रघुनायक सरना ।।'................
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ।।
अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ।।'[३]

तत्व दृष्टा मन्दोदरी राम के इस रूप से परिचित होने के कारण ही रावण को शरणापन्न होने का आदेश देती है :

'सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी । भजहु नाथ ममता मद त्यागी ।।'[४]

राम की शरणागत वत्सलता की विस्तृत परिधि दर्शनीय है :

'कूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील निरीस निसंकी ।।
तेउ सुनि सरन सामुहें आए । सकृत प्रनामु किहें अपनाए ।।'[५]

उनके शरण्यत्व में 'भुवन भूषण' बनाने की दिव्य शक्ति है :

'कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक बेद बाहेर सब भाँती ।।
राम कीन्ह आपन जबही तें । भयउँ भुवन भूषन तबही तें ।।'[६]

पतितपावन राम

'सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहीं ।।' का संकल्प करने वाले राम का पतितपावनत्व तो स्पष्ट ही है । परन्तु उनका पतितपावनत्व अत्यन्त कल्याण भावना एवं औदार्य से युक्त होता है ।

भक्त में अभिमान उसके पतन का मूल होता है । भगवान् राम कितने भक्त वत्सल हैं कि 'सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ।।' के अनुसार अहंकार विगलन से ही भक्त का कल्याण सोच सर्वप्रथम राम इस विनाश के मूल की ही समाप्ति करते हैं । नारद, जयन्त, समुद्र, गरुड़, काकभुशुंडि सबका गर्व विष शोषण कर उन्हें भी पतित से पावन नहीं अपितु 'पतित पावन' की सी ही श्रेणी पर स्थित कर दिया ।

---

१. मा० ५।४५ ।
२. मा० ५।४५।१ से ७ तक ।
३. मा० ३।२५।५।, मा० ३।२६।१६,१७।
४. मा० ६।६।५।
५. मा० २।२९८।२,३।
६. मा० २।१९५।१,२।

इसी रूप में राम की एक विशेषता और उल्लेखनीय है, वह है उनका क्षमाशील एवं उदार स्वरूप। वे पतितपावन हैं परन्तु इस महान् उपकार का उन्हें न तो अभिमान है और न कोई भक्त के पूर्वकृत कर्मों के प्रति उपेक्षा भाव। यही है उनके औदार्य युक्त क्षमाशीलता का प्रमाण।

'जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।।
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राज सभा रघुबीर बखाने।।'[1]

कृपानिधान राम

उपर्युक्त सभी रूपों में भी प्रभु कृपा की अजस्र निर्झरिणी तो प्रवाहित है ही, इसके अतिरिक्त अधिकांश प्रसंगों में करुणानिधान राम की कृपालुता वर्णित है।

'भगत बछल कृपालु रघुराई' सदैव कारन रहित कृपाल रहते हैं। अयोध्या आकर राम सब पर समान कृपा दृष्टि रखते हैं।

'कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी।।'[2]

तुलसी राम की कृपा का क्षेत्र भक्तों के लिए विशेष बतलाते हैं :—

'सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी।।'[3]

कृपासिंधु की करुणा में केवल निश्चेष्ट द्रवणशीलता ही नहीं है :—
वे 'कृपासिंधु मतिधीर अखिल विश्व कारन करन' भी हैं।[4]
उनकी कृपा में पीड़ा हरण शक्ति भी विद्यमान है :—

'कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।।'[5]

राम की कृपा 'देश काल' से बाध्य नहीं है। उनके बाल सखा एवं भ्राता भरत उनकी बाल्यावस्था के इस रूप का भी परिचय देते हैं।

'मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही।।'[6]

यह विशेषता है कि उनके विपक्षी वर्ग भी उनकी करुणामयी कृपा के हेतु लालायित रहते हैं और कहते हैं :—

'अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।'[7]

प्रभु राम की कृपा केवल मानवों पर ही नहीं होती अपितु वह भक्तों के कर्म क्षेत्र की प्रेरिका शक्ति भी है जैसा कि हनुमान् कहते हैं :—

---

१. मा० १।२८।६ से ८ तक।
२. मा० ७।५।६।
३. मा० १।१२।५।
४. मा० १।२०८।
५. मा० ३।३०।
६. मा० २।२५९।८।
७. मा० ४।९। छंद।

'प्रभु की कृपा भयउ सब काजू । जन्म हमार सुफल भा आजू ।।'[1]

प्रभु की कृपा भगवान् के भक्ति-दान की भी प्रेरिका है इसीलिए प्रभु कृपा को ही संकेत करके कहते हैं :—

'नाथ भगति अति सुखदायिनी । देहु कृपा करि अनपायिनी ।।'[2]

तथा 'परमानन्द कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ।।'[3]

प्रभु की भक्तवत्सलता ही भक्ति-उत्पादिनी चुम्बक शक्ति है[4] जो भक्तों के लिए चिन्तामणि है जिसका पर्याप्त चित्रण गोस्वामी जी ने 'भक्त-वत्सल राम' रूप में दर्शाया है ।

रामायण के तेजस्वी राम स्वरूप की अपेक्षाकृत मानस के भक्त-वत्सल राम का व्यक्तित्व अत्यन्त हृदयाकर्षक एवं भक्त सर्वस्व है ।

———

१. मा० ५।२९।४।
२. मा० ५।३३।१।
३. मा० ७।३४।
४, 'भगत बछलता प्रभु कै देखी । उपजी मम उर प्रीति बिसेषी ।।' मा० ७।८२।७।

वाल्मीकि रामायण तथा मानस की कथा

बालकांड-समीक्षा

वालमीकीय रामायण आदि काव्य है। अतएव इसकी कथा का स्रोत अन्यत्र खोजना असंगत होगा। राम चरित मानस की कथा का मूलाधार वालमीकीय रामायण है।[1] राम चरित मानस की कथावस्तु, वर्ण्य प्रतिपादन तथा चरित्र-चित्रण पर संस्कृत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। गोस्वामी जी ने अध्यात्म-रामायण, गीता, श्रीमद्भागवत्, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अग्निवेश रामायण, आनन्द-रामायण, उत्तर-राम चरित, गर्भ-संहिता, गालवसंहिता, जैमिनी रामायण, ब्रह्म-रामायण, नारद-रामायण, पुलस्त्य-रामायण, वशिष्ठ-रामायण तथा मंगल-रामायण से प्रेरणा और सामग्री ग्रहण करके राम-चरित-मानस की रचना की।[2] राम चरित मानस के प्रारम्भ में गोस्वामी जी ने स्वत: इस बात को निम्नलिखित पंक्तियों में स्वीकार किया है।

'नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्त: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंध मति मञ्जुलमातनोति।[3]

उक्त कथन से तुलसी की सहज निष्ठा के साथ यह भी ज्ञात होता है कि उनके मानस की मूलाधार कथावस्तु केवल वालमीकि रामायम पर ही नहीं अपितु नाना पुराण के साथ-साथ अन्य राम कथाओं पर भी आधारित है। अन्य ग्रन्थों की अपेक्षाकृत वालमीकि

---

१. 'मानस' के प्रारम्भ में प्रथम तीन श्लोकों में गोस्वामी जी ने सरस्वती, गणेश, शंकर, पार्वती, गुरू की वन्दना की है। तदनन्तर चतुर्थ श्लोक में वालमीकि की वन्दना हुई हैं। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास जी कवीश्वर वालमीकि से कितना अधिक प्रभावित थे······'सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ॥
२. पं० राम नरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'राम चरित मानस' की भूमिका।
३. मा० १। प्रारम्भिक ७ वां श्लोक।

रामायण के प्रति श्रद्धार्पण करते हुये गोस्वामी जी ने अपनी कथा की मूलधारा को बहुत कुछ अध्यात्म रामायण के आधार पर प्रवाहित किया है। रामायण तथा मानस में कथा भेद के अनेक कारणों में से एक की ओर स्वयं तुलसी ने इंगित किया है।

'राम अनन्त-अनन्त गुन अमित कथा विस्तार'

तथा

'नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।।'

एवं

'कलपभेद हरिचरित सुहाए'

राम कथा पर अनेक काव्य लिखे गये जिनका गोस्वामी जी पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। अतएव उन ग्रन्थों के कथा प्रवाह, भाव, भाषा को अपनी कला निपुणता एवं प्रतिभा द्वारा ग्रहण करके मानस के रूप में अभिन्नस्वरूप प्रदान किया। प्रमुख विचारणीय विषय यह है कि तुलसी ने राम कथा का रूप किस प्रकार परिवर्तित किया? रामायय तथा मानस दोनों की कथा वस्तु में क्या-क्या समानताएँ एवं विभिन्नताएँ हैं?

यह ऊपर कहा जा चुका है कि मानस की कथावस्तु का मूल उद्गम वाल्मीकि रामायण है। यद्यपि इसमें कथाँश वही है परन्तु मानस के कथा विस्तार में अन्य ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है।

दोनों ग्रन्थों की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन करने के पूर्व उनका कथानक क्रम जान लेना परम अनिवार्य है।

रामायण में बालकांड की कथावस्तु

आदि कवि ने ब्रह्मदेव द्वारा निर्दिष्ट कथा के आधार पर रामायण का निर्माण किया और लव कुश द्वारा उसका प्रचार करवाया जिसका सारांश इस प्रकार है।

महर्षि ने अयोध्या नगरी की सम्पन्नता के विवरण से इस कथा का आरम्भ किया जिसमें महान् पराक्रमी राजा दशरथ अपने कर्मठ मन्त्रियों सहित राज्य किया करते थे। परन्तु पुत्र के अभाव में वे दुःखी रहा करते थे। अतएव पुत्र प्राप्ति के लिये उन्होंने अनेक व्रत एवं अनुष्ठान किये परन्तु उनकी अभिलाषा पूर्ण न हुई। अतएव उन्होंने अश्वमेघ एवं पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने का संकल्प किया। अपने मन्त्रियों से ऋष्य-श्रृंग का वृत्तान्त सुनकर राजा दशरथ ने उन्हें सुपुत्र प्राप्त्यर्थ बुला भेजा और फिर ऋष्य-श्रृंग के आदेशानुसार अश्वमेघ यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हुआ और ऋषि ने राजा दशरथ को उनके चार पुत्रोत्पन्न होने का आशीर्वाद दिया। तदनन्तर पुत्रकामेष्टि यज्ञ प्रारम्भ हुआ। इस महोत्सव पर देव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध-गण भी एकत्रित हुये। सभी ने परिषद् का आयोजन कर उक्त अवसर पर रावण के नाश करने का निर्णय किया। इस प्रकार यज्ञ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ यज्ञ पुरुष ने प्रसन्न होकर पायस दशरथ को दिया जिसको राजा ने अपनी पत्नियों में विभाजित किया। इसके परिणामस्वरूप सभी रानियाँ सफलकाम हुई। उधर पूर्व परिषद् के निश्चयानुसार वानर जातियों में भी वीर उत्पन्न हुये। निश्चित समय पर राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का जन्म हुआ। कुछ समय के पश्चात् विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आये और उनसे यज्ञ के रक्षार्थ राम लक्ष्मण की याचना की। इसे सुनते ही राजा अचेत हो गये परन्तु फिर विश्वा-

मित्र को रुष्ट होते देखकर, वशिष्ठ ने राजा को आश्वस्त किया और राम लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देने में ही उनका हित समझाया। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को सरयू तट पर बला और अतिबला ये दो विद्याएँ दीं। इस प्रकार मार्ग में आगे बढ़ते हुये विश्वामित्र के साथ दोनों भाइयों ने 'ताटका' को आक्रमण करने की मुद्रा में देखा। राम ने देश हित एवं महात्मा की संतुष्टि के लिये उसका वध किया। विश्वामित्र ने प्रणीत होकर अनेक शस्त्रास्त्र राम को दिये तथा उन सभी अस्त्रों के उपसंहार का उपदेश भी दिया। सिद्धाश्रम पहुँचकर दोनों भाई यज्ञ की रक्षा करने लने। मारीच को बाण द्वारा समुद्र तट पर पहुँचा दिया और सुबाहु आदि राक्षसों का संहार किया।

उधर दूसरी और राजा जनक की मिथिला नगरी में यज्ञ हो रहा था। विश्वामित्र वहाँ जाने के लिये प्रस्तुत हुये और मार्ग में अपने पूर्वजों का वृत्तान्त सुनाकर गंगा नदी के आगमन का वर्णन किया। तदनन्तर अहल्या का पूर्व वृत्तान्त कह कर विश्वामित्र ने अपने और वशिष्ठ के पूर्व संघर्ष का उल्लेख किया।

मिथिला पहुँचने पर धनुर्भंग एवं चारों भाइयों का विवाह उत्सव सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात् विश्वामित्र उत्तर पर्वत की ओर चले गये और राजा दशरथ अयोध्या की ओर लौटे। मार्ग में ही रोषित परशुराम से भेंट हुई जोकि अन्त में राम से प्रभावित हुये और अपना वैष्णव धनुष देकर महेन्द्र पर्वत को चले गये। इस प्रकार कुशलता पूर्वक राजा दशरथ ने अयोध्या पुरी में प्रवेश किया।

मानस के बालकांड की कथावस्तु

मानस में ग्रन्थारम्भ से ही राम कथा प्रवाहित नहीं हुई। इसमें कबि मंगलाचरण से काव्य का आरम्भ करता है, सन्त असन्तों की वन्दना करता हुआ अपने पूर्वज कबियों एवं देवताओं को प्रणति प्रदान करता है। वन्दना प्रकरण में देव विप्र, सन्त, खल, कवि, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्म, शिव, रामभाम, सीताराम रूप तथा श्री राम नाम सभी की विस्तृत वन्दना की गई है। वन्दना के पश्चात् कवि अपनी दीनता का परिचय देता हुआ राम गुण-वर्णन, नाम-कथा, एवं चरित माहात्म्य का उल्लेख करता है।

इतनी सुदृढ़ भूमिका के पश्चात् गोस्वामी जी अलंकारिक रीति से मानस का प्रसंग प्रारम्भ करते हैं। इस राम कथा के चार वाचक और श्रोता हैं जोकि राम विषयक जिज्ञासा एवं उसके समाधान से कथा का उद्घाटन करते हैं। तत्पश्चात् राम जन्म के अनेक कारणों का उल्लेख किया जाता है और भूमि-भार-हारी राम का दशरथ के घर में अवतरण दर्शाया जाता है। राम की बाल लीलाओं के मनोरम चित्रण के उपरान्त विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा का प्रसंग वर्णित है। जिसमें ताटका, सुबाहु आदि का वध तथा मारीच का क्षेपण हुआ। अहिल्योद्धार के पश्चात् विश्वामित्र राम लक्ष्मण के साथ राजा जनक का धनुष यज्ञ देखने जाते हैं जहाँ पुष्प वाटिका निरीक्षण करते समय राम का सीता से प्रथम मिलन दर्शाया गया है। धनुर्भंग के पश्चात् 'सीता स्वयम्बर' का चित्ताकर्षक अंकन करने के पश्चात लक्ष्मण परशुराम का ओजपूर्ण संवाद उल्लिखित है। तत्पश्चात् विवाह-संस्कार के पश्चात् अयोध्या में सबके पुनरागमन के सुखद उत्सवों एवं समारोहों का आनन्द लेती हुई कथा प्रथम सोपान का विश्राम लेती है।

तुलनात्मक समीक्षा

दोनों ग्रन्थों की विषय तालिका से बालकांड की कथावस्तु की रूप रेखा का आभास अवश्य हो जाता है। अब विचारणीय प्रश्न है कि दोनों में समता एवं विभिन्नता के प्रसंग कौन कौन से हैं तथा विभिन्नता के कारण क्या हैं ?

रामायण में जहां कथा वस्तु का प्रारम्भ आदि से ही हो जाता है वहां मानस में बृहद पृष्ठ भूमि के पश्चात् कथा का आरम्भ होता है। रामायण की भाँति अनुष्टुप् से मानसकार ने काव्य का आरम्भ तो किया परन्तु कथा के पूर्व मंगलाचरण का योग करना भी आपने आवश्यक समझा। इसके द्वारा आपने उत्कृष्ट भावों का निदर्शन, भक्ति भाव का प्रदर्शन तथा काव्य निर्माण की मर्यादा प्रतिष्ठित की है।

इसी प्रकार मंगलाचरण की भाँति 'वन्दना प्रकरण' में भी कवि ने लोकोपकारक परम्परा की स्थापना की है तथा विभिन्न देवों के स्वरूप का विवेचन भी किया है। इसके अतिरिक्त काव्य में वर्ण एवं अर्थ सिद्धि की प्रेरणा से आपने कवि परम्परानुसार वाग्देवता एवं अक्षर शक्ति की वन्दना की। राम यश ज्ञान के हेतु वाणी विनायक का कृपापात्र बनना आवश्यक है। राम कथा के श्रवण गायन में श्रद्धा एवं विश्वास रूपधारी उमा शंकर का स्मरण करना भी उन्होंने परम अनिवार्य समझा। तत्पश्चात् गुरु वन्दना की मर्यादा का निर्वाह कर चरित्र में सिद्धि प्राप्त्यर्थ परम ऋषि वाल्मीकि एवं भक्ताग्रगण्य हनुमान् जी का स्मरण किया। इस क्रमिक वातावरण को प्रस्तुत करने के पश्चात् आपने इष्ट देवता द्वय 'राम सीता' की वन्दना की।

कवि ने विप्र, सन्त, खल, कवि, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, शिव, देव, साकेतधाम, सीताराम रूप एवं राम नामादि की विस्तृत वन्दना द्वारा अपनी शिष्टता एवं उदारता का परिचय दिया है। स्वदैन्य प्रदर्शन के साथ ही कवि राम गुण, राम कथा एवं चरित के माहात्म्य का विस्तृत उल्लेख करता है।

रामायण के प्रारम्भ में संवाद-परम्परा का दर्शन होता है। प्रथम सर्ग में ही नारद वाल्मीकि से अयोध्याकांड से युद्ध कांड तक की कथा कहते हैं।[1] द्वितीय सर्ग में इसी कथा को श्लोक रूप में बद्ध करने का आदेश ब्रह्मा जी देते हैं[2] तथा वाल्मीकि स्वरचित राम कथा लव कुश को कंठस्थ करा देते हैं जिसे वे राम सभा में गान करते हैं। परन्तु मानस में इस संवाद-परम्परा का आद्यन्त निर्वाह हुआ है।

उपनिषद् की प्राचीन परिपाटी 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की ही भाँति तुलसी ने 'अथातो रामजिज्ञासा' से कथा का आरम्भ करना समुचित समझा। इस जिज्ञासा में भी विशेषता यह है कि इस राम कथा के वाचक एवं श्रोता तीन हैं जो कि जीवन के प्रमुख तीन मार्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शंकर पार्वती ज्ञान मार्ग, याज्ञवल्क्य भरद्वाज कर्मकांड तथा कागभुशुंडि गरुड़ उपासना के प्रतीक हैं।

---

१. वा० रा० १।१।८ से ९७ तक।
२. वा० रा० १।२।३१।

सर्वप्रथम युगल मुनिवर्य (याज्ञवल्क्य भरद्वाज) द्वारा ही कथा का उद्घाटन कराया गया है क्योंकि मानस का मूलाधार सत्संग है। श्रुति परम्परा के अनुसार वक्ता याज्ञवल्क्य ने उमा शंभु संवाद द्वारा कथा का आरम्भ किया क्योंकि स्वयं भरद्वाज ने भी 'जाहि जपत त्रिपुरारि' कहकर शिव को राम का अनन्य भक्त मानकर अपनी आस्था व्यक्त की थी। यही नहीं स्वयं शंकर भी उस श्रुति परम्परा का निर्वाह करते हुये कहते हैं।

'सुनु सुभ कथा भवानि, राम चरितमानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना विहग नायक गरुड़॥'[1]

उक्त तीनों संवादों के अतिरिक्त मानस सरोवर का चतुर्थ घाट प्रपत्ति-मार्ग का सूचक है जिसके वक्ता गोस्वामी जी और श्रोता कलियुगी प्राणी हैं।

उक्त तीनों ही संबादों में मानस कथा का प्रकट्य हुआ है परन्तु उसमें मूल अभि-प्राय राम तत्व का यथार्थ बोध कराना ही है। राम कथा को सुनकर तीनों श्रोता (भरद्वाज, गरुड़, पार्वती) ही मोह, भ्रम, संशय रहित हो जाते हैं।

साहित्यिक आधार के अतिरिक्त तुलसी की सामयिक धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी तुलसी ने इन संवादों का योग किया।

तुलसी के समय में श्री नानक जी, श्री कबीर जी का तथा अद्वैतवादियों का निर्गुण सगुणवाद अधिक वेग से प्रवाहित रहा था। इस भ्रम के निराकरण के लिये तुलसी ने इन संवादों का योग करके यह प्रमाणित हो किया कि जो निर्गुण हैं वही सगुण हैं। इसका निर्णय महर्षि याज्ञवल्क्य, शंकर एवं भुशुंडि द्वारा करवाया। जिस बात को तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रमाणित कर दें वह अकाट्य सत्य हो ही जाती है।

इन संवादों की परम्परा भी गोस्वामी जी को अपने पूर्ववर्ती साहित्य से प्राप्त हो चुकी थी। याज्ञवल्क्य संहिता, शिव पुराण, भुशुंडि रामायण में आपकी कर्मकांड ज्ञान एवं उपासना के बीज मिल चुके थे। इसका अंकुर मानस में विकसित हुआ।

वाल्मीकि रामायण की कथा का धरातल लौकिक है, और मानस का आध्यात्मिक अतएव रामायण की अपेक्षाकृत मानस में राम कथा की भूमिकाओं का विस्तार विशेष है।

रामायणकार नारद एवं ब्रह्मा से प्रेरणा व आदेश पाते ही राम कथा का निर्माण कर लव कुश द्वारा कथा गान कराते हैं। इस रूप रेखा में वाल्मीकि ने किसी प्रकार की पृष्ठभूमि तैयार नहीं की तथा 'राम कथा से ग्रन्थारम्भ कर दिया परन्तु मानसकार ऐसा नहीं करते। वे सामयिक परम्पराओं से प्रभावित होते हैं, धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं और फिर तत्कालीन विषम अवस्थाओं में समन्वय कर नवीन पथ का निर्माण करते हैं जो कि सर्व मान्य एवं सर्व ग्राह्य हो सके। उक्त अन्तर का कारण दोनों कवियों की तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं उनका व्यक्तित्व है।

---

१. मा० १।१२०।

रामायणकार ने ऐतिहासिक आधार पर यथातथ्य राम कथा का अंकन किया है क्योंकि वे ऋषि थे, तत्वदृष्टा थे। 'ऋषयो मन्त्रदृष्टार:' के अनुसार वालमीकि ने स्वयं अपनी ध्यान शक्ति में ही प्रभु चरित्र का दर्शन किया।

'श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थं सहितं हितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमत:।....
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्संप्रपश्यति।....
तत: पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थित:।
पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा।[1]

अर्थात् 'धर्मात्मा वालमीकि ने धर्म से युक्त सम्पूर्ण वृत्त सुनकर फिर भी बुद्धिमान् श्री राम का वृत्तान्त प्रकटित होने के लिये यत्न से देखा।....हँसना, बोलना, गमन और युद्धादि चेष्टाएँ जो कुछ भी थी, वह सब मुनि ने अपने धर्मबल से यथावत् देख लिया।....
तदनन्तर योग में बैठे धर्मात्मा मुनि ने और जो कुछ पूर्व वृत्तान्त था, वह भी हाथ में रक्खे आँवले के सदृश देख लिया।'

स्वानुभूति के आधार पर ही वालमीकि ने राम का यथा तथ्य वृत्त वर्णित किया अतएव उनकी रामायण में स्वाभाविकता होनी अनिवार्य है। वालमीकि का लक्ष्य और कुछ न था। परन्तु इसकी अपेक्षाकृत तुलसी का लक्ष्य सामयिक परिस्थिति का सुधार भी था। वे अपने पूर्व साहित्य से भी प्रभावित थे धार्मिक परिस्थितियों एवं मतों के संघर्षो से खिन्न होकर सब में ऐक्य स्थापन करना भी तुलसी का लक्ष्य था। अतएव उन्होंने निजकालीन परिस्थितियों की आवश्यकतावश समस्त मानस में समन्वय रक्खा और तथैव राम चरित प्रारम्भ करने के पूर्व राम के अवतार कारणों में भी वैभिन्य प्रस्तुत किया जिसका विवेचन निम्नांकित है। गोस्वामी जी उक्त सभी कारणों की ओर संकेत करते हुये कहते हैं।

'प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कविन्ह घनेरी॥'[2]

इन घनेरी कथाओं में से निम्नांकित अवतार हेतुओं का उन्होंने अपने मानस में उल्लेख किया है।

(१) जय विजय का ऋषि शाप निवारण
(२) जलन्धर की सद्गति
(३) नारद शाप
(४) मनु शतरूपा को वरदान
(५) भानु प्रताप का ब्रह्म शाप निवारण
(६) कश्यप अदिति को वरदान

---

१. वा० रा० १।३।१,४,६।
२. मा० १।१२३।४।

रामायण में इन अनेक हेतुओं का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि रामायण-काल तक इन पौराणिक कथाओं का विकास नहीं हुआ था परन्तु मानसकार के समय तक अनेक कल्पों के अवतारों का उल्लेख हो चुका था।

विचारणीय एवं अन्वेषणीय तथ्य यह है कि मानस में उक्त विभिन्न अवतार कारणों के उल्लेख का क्या कारण है? प्रत्येक अवतरण कारण की प्रेरणा तुलसी को कहाँ मिली? एवं मानस में उनके उल्लेख करने का क्या कारण है?

मानस में 'जय विजय' का वृत्तान्त श्रीमद्भागवत् से प्रेरित है[1] तथा जलन्धर प्रसंग 'पद्म पुराण' से उद्धृत है।[2] 'नारद शाप' के प्रसंग में तुलसी को रुद्र संहिता[3] एवं शिव पुराण[4] एवं भागवत् के अनेक प्रसंगों से प्रेरणा मिली है। इस प्रसंग के विषय में मानस पीयूषकार का कथन है।

'अद्भुत रामायण वाले कल्प के रामावतार की कथा में अवतार का कारण नारद-शाप ही बताया गया हैं। वहाँ शील निधि और विश्व मोहिनी के स्थान पर श्री अंबरीष जी महाराज और उनकी कन्या श्रीमती बताई गई है। कथा यह है कि एक समय श्री नारद जी और श्री पर्वत ऋषि दोनों मित्र साथ साथ महाराज अंबरीष जी के यहाँ गए और दोनों ही ने उनसे सब वृत्तान्त कहकर अपना-अपना मनोरथ प्रकट किया। नारद ने पर्वतऋषि का मुँह बंदर का सा और पर्वत ने नारद मुनि का मुँह लंगूर का सा कर देने के लिये पृथक्-पृथक् प्रार्थना की और साथ ही यह भी प्रार्थना की कि राजकुमारी को ही वह रूप देख पड़े दूसरे को नहीं। भगवान् ने दोनों से 'एवमस्तु' कहा। तत्पश्चात् दोनों ही राजा के यहाँ गए। राजा ने कन्या को बुलाकर कहा कि दोनों ऋषियों में से जिसे चाहो उसे जयमाल पहना दो। कन्या जयमाल लेकर खड़ी होती है। उसे वहाँ एक बंदर, एक लंगूर और एक सुन्दर धनुषबाणधारी मनुष्य देख पड़े। ऋषि कोई भी न दीख पड़ा और वह ठिठक कर रह गई। संकोच का कारण पूछे जाने पर उसे जो देख पड़ा, वह उसने कह दिया। थोड़ी देर बाद कन्या भी गायब हो गई। इस रहस्य को न समझकर दोनों ऋषि हरि के पास गये। उन्होंने कहा कि हम भक्त पराधीन हैं, तुम दोनों हमारे भक्त हो। हमने दोनों का कहा किया। पीछे रहस्य समझने पर कि ये ही द्विभुजरूप से कन्या को ले गये थे, दोनों ने उनको शाप दिया कि अंबरीष दशरथ होंगे और तुम उनके पुत्र होगे। शेष शाप मानस के अनुसार है।'[5]

मानसकार ने इस 'नारद-शाप' के प्रसंग में जो लक्ष्य इंगित किया है वह यह है कि जीव जब ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तब उसे ज्ञानाभिमान हो जाता है। परन्तु भक्त वत्सल भगवान् तुरन्त ही उस अभिमान को नष्ट कर भक्त का कल्याण करते

१. भा० ३।१६। अध्याय
२. पद्म पुराण।
३. रुद्र संहिता।
४. शिव पुराण।
५. मानस पीयूष, बालकांड, पृष्ठ ६८५।

हैं। ज्ञानी नारद को क्षण भर में माया के आवरण से आवृत्त कर देना तथा पुनः ज्ञानी बना देना उक्त तथ्य का स्पष्टीकरण है।

'मनु शतरूपा प्रसंग' विष्णु पुराण[१] तथा भागवत् से[२] उद्धृत है। स्वायंभू मनु एवं सतरूपा की उत्पत्ति, 'देवहूति कपिल संवाद' का आधार भी श्रीमद्भागवत ही है।[३]

मानस के मनु सतरूपा प्रसंग में 'वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग'[४] का विवरण लाकर गोस्वामी जी ने द्वादशाक्षर मंत्र का माहात्म्य भी उल्लिखित किया है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस प्रसंग में वासुदेव शब्द भी द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत और उपासकों सभी के लिये अनुकूल है, विभिन्न मतों का परिपोषक है। समन्वयकर्ता तुलसी ने उक्त कथा द्वारा अपने इस लक्ष्य की पूर्ति की है।

मानस की राजा भानु प्रताप्र की कथा भागवत् के राजा सौदास के वृत्तान्त पर आधारित है।[५] उक्त कथा द्वारा ब्रह्म शाप निवारण का उल्लेख कर, रावणादि की उत्पत्ति की कथा का उसमें संयोग किया है। उसके पश्चात् ही राम चरित प्रारम्भ कर दिया है।

ब्रह्म शाप के कारण भानु प्रतापादि, रावणादि के रूप में उत्पन्न हुये। उन निशाचरों के भीषण अत्याचारों से प्रपीड़िता गो तनुधारी पृथ्वी, आतंकित देवगण भगवान से स्तुति करते हैं[६] जिससे प्रणीत होकर भगवान् स्वयं उनको गगनवाणी द्वारा आश्वस्त करते हैं।

रामायण में मानस की भाँति विशद पृष्ठभूमि से रहित राम-कथा का कारण केवल यथार्थ वस्तु स्थिति ही वर्णित किया है, विषय से परे अन्य कारणों का उल्लेख करना आपको वांछित न था। अतएव राजा दशरथ के यज्ञ मंडप में समागत देवगण की स्तुति[७] मात्र ही रामायण में राम जन्म का कारण कही जा सकती है।

उक्त स्तुति की स्वीकृति देते हुये विष्णु उन्हें आश्वासन भी देते हैं।

'भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्।
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम

---

१. विष्णु पुराण।
२. भागवत् ८।१।
३. भागवत् ३।१२।
४. मा० १।१४३।
५. भागवत् नवम् स्कंध, नवम् अध्याय।
६. मा० १।१८५। छंद।
७. 'विष्णो ! पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम
तत्रत्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोक कण्टकम्।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।।'
वा० रा० १।१५।२०,२१।

दश वर्ष सहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम् ।'[1]

अर्थात् 'हे देवताओं ! तुम भय दूर कर दो, तुम्हारा शुभ हो । मैं तुम लोगों के हित के लिये युद्ध में पुत्र, पौत्र, मन्त्री, मित्र, ज्ञाति और बान्धवों के सहित रावण को जो क्रूर, दुष्टात्मा और देवर्षियों को भय देने वाला है, मार कर ग्यारह सहस्र वर्ष तक इस पृथ्वी का पालन करता हुआ मनुष्य लोक में वास करूँगा ।'

रामायण तथा मानस दोनों में राम जन्म के निमित्त ऋष्यश्रृंग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख है । अन्तर यह है कि रामायण में इस यज्ञ का विवरणात्मक चित्रण किया गया है,[2] मानस में सांकेतिक है ।[3] वाल्मीकि का युग-धर्म यज्ञ-प्रधान था, अतएव उक्त प्रसंग की विशद व्याख्या स्वाभाविक ही है । परन्तु तुलसी ने केवल कथा-सूत्र के निर्वाह को ध्यान में रखते हुये उक्त प्रसंग का उल्लेख मात्र किया है ।

रामायण में यज्ञ-मंडप में ही एकत्रित देव, ऋषि आदि की परिषद् का भी प्रसंग वर्णित है जिसमें सबने मिलकर रावण नाश का निर्णय किया । परन्तु मानस में इस प्रसंग की चर्चा नहीं है क्योंकि मानसकार यदि इस प्रसंग में अन्य सभी वर्गों के संगठन द्वारा रावण नाश की योजना का उल्लेख करते तो इसमें उनके इष्टदेव का प्रभुत्व कम हो जाता और घटनाओं का रहस्य भी लुप्त हो जाता ।

यज्ञ के परिणाम स्वरूप देवनिर्मित पायस की यज्ञदेव एवं अग्नि द्वारा प्राप्ति[4] तथा उस पायस के विभाजन का विवरण[5] दोनों में लगभग समान है ।

रामायण में राम जन्म का उल्लेख साधारण है जबकि मानस में तुलसी ने राम का चतुर्भुज रूप दर्शाया है । कौशल्या उन्हें ईश्वर मानकर उन की स्तुति करती हैं ।[6] इस प्रसंग में भागवत् की प्रतिच्छाया है क्योंकि भागवत् में भी कृष्ण के जन्म होते ही उन्हें शंख, गदादि आयुधों से युक्त चतुर्भुज रूप में देखकर वसुदेव तथा देवकी दोनों ही कृष्ण की स्तुति उसी रूप में करते हैं[7] जैसे मानस में कौशल्या करती हैं ।

---

१. वा० रा० १।१५।२७ से २९।
२. वा० रा० १।१३, १।१४।
३. मा० १।१८८।५।
४. (१) वा० रा० १।१६।१५ से २०।
 (२) मा० १।१८८।६।
५. (१) वा० रा० १।१६।२६ से ३०।
 (२) मा० १।१८९। १ से ४।
६. मा १।१९१।छन्द ।
७. (१) वसुदेव स्तुति । भा० १०।३।१३ से २२ ।
 (२) देव की स्तुति । भा० १०।३।२४ से ३१ ।

रामायण में राम लक्ष्मणादि के जन्म के पश्चात् उनकी बाल लीलाओं का वर्णन नहीं किया गया है। परन्तु मानसकार ने केवल राम की बाल लीलाओं का[1] ही नहीं अपितु बाल सौन्दर्य का व्यापक उल्लेख भी किया है[2] तथा तुलसी के राम अलौकिक हैं अतएव बाल्यावस्था में ही उनकी अद्‌भुत लीलाओं का प्रसंग भी वर्णित किया है।[3] दोनों ग्रन्थों में उक्त अन्तर का कारण स्पष्ट है कि तुलसी ने सौन्दर्य, शक्ति, शील का अवलम्ब लेकर राम का चित्रांकन किया है अतएव बाल्यावस्था से ही माधुर्य लीलाओं द्वारा भगवान् के मनोहर रूप का चित्रण करना अपेक्षित था। तुलसी के पूर्व सूर कृष्ण का बाल रूप अत्यन्त विशद रीति से वर्णित कर वात्सल्य पर अधिकार प्राप्त कर चुके थे। उक्त साहित्यिक परम्परा तो तुलसी को प्राप्त थी ही अतएव मानस में उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। परन्तु राम के बाल रूप वर्णन में भी उनके अलौकिक रूप की स्मृति भी तुलसी को अनवरत रही है इसीलिए वे उक्त बाल चित्रण में भी स्थान स्थान पर कहते चलते हैं।

"बाल चरित हरि बहु विधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहं दीन्हा॥"[4]
"बाल चरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए॥"[5]
"निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥"[6]
....इत्यादि।

रामायण में रामादि के अध्ययन के विषय में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि उन्होंने गुरु के घर पर रह कर शिक्षा प्राप्त की जब कि मानस में 'गुरु गृह गए पढ़न रघुराई' कहकर उक्त तथ्य पर प्रकाश डाला है। इस अन्तर का प्रमुख कारण दोनों कवियों की तत्कालीन परिस्थिति है। वाल्मीकि के युग में गुरुकुलों में अध्ययन करना एक सामान्य प्रथा थी अत: इस साधरण-सी बात का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ कि काव्य में इसकी चर्चा की जाय। दूसरी ओर तुलसी के युग में उक्त प्रथा का व्यवहार नहीं था अतएव तुलसी ने शिक्षण पद्धति के इस आदर्श की ओर संकेत करना आवश्यक समझा क्योंकि वाल्मीकि की अपेक्षा तुलसी का लक्ष्य आदर्श स्थापन की ओर विशेष था।

रामायण में विश्वामित्र निज मख रक्षणार्थ राम की याचना करने के लिये, दशरथ के पास आते हैं। इस प्रसंग में तुलसी वाल्मीकि की अपेक्षा विशेष संयत हैं क्योंकि वाल्मीकि ने रामायण में जो विश्वामित्र के स्वभाव का चित्रण किया है, उसमें उग्रता प्रधान है। इसका कारण यह है कि वाल्मीकि के समय में सन्यासियों या आचार्यों का नरग

---

१. मा० १।२०२।६ से १।२०३।
२. मा० २।१९८।१ से १२।
५. (१) पाकशाला तथा पालने में दोनों स्थान पर राम का एक साथ दर्शन
मा० १।२००।१ से ७।
(२) विराट् रूप दर्शन। मा० १।२०१ से १।२०१।६ तक।
६. मा० १।२०२।१।
१. मा० १।२०३।१।
२. मा० १।२०२।८।

में आना एक असाधारण घटना हुआ करती थी क्योंकि उनके पास इतना समय और अवकाश न था कि वे अपने आश्रम से बाहर जाकर अन्य कार्यों में अपना समय लगा सकें। जब कोई असाधारण घटना घटित होती थी तभी इन आचार्यों का आगमन हुआ करता था। उस समय विश्वामित्र एक मात्र शस्त्र शास्त्र की शिक्षा देने वाले आचार्य थे और उनके शिक्षाश्रम पर एक घोर विपत्ति आई हुई थी जिसका निवारण कर सुरक्षा का प्रबन्ध करना अत्यन्तावश्यक था अन्यथा एक मात्र शस्त्र-शिक्षा-केन्द्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता। अत: वे दशरथ के पास राम को अधिकार पूर्वक माँगने गये थे क्योंकि राम तत्कालीन राजकुलों में विश्व विश्रुत 'धनुर्वेद च पण्डित:' माने जाते थे। विश्वामित्र के आश्रम से दशरथ का राज्य विशेष समीप था अत: उनसे सहायता लेना भी समुचित था। इस संकटमय स्थिति में दशरथ द्वारा आनाकानी करने पर विश्वामित्र का क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही था। वाल्मीकि स्वयं आचार्य थे अत: उनकी कथा में आचार्य का माहात्म्य भी अनिवार्य था।

तुलसी ने इस प्रसंग में विश्वामित्र की महत्ता को विशेष रूप से लक्ष्य न बनाकर दशरथ के सौजन्य पर ही विशेष प्रकाश डाला है।[1] अतएव सौजन्य-प्रदर्शन कर्त्ता पर तुलसी क्रोध कैसे वर्णित करते? इसके अतिरिक्त विश्वामित्र के विषय में भी वह तत्परता एवं गम्भीरता चित्रित नहीं की है जो रामायण में वर्णित हुई है क्योंकि तुलसी के विश्वामित्र के आने का प्रमुख कारण राम का दर्शन है, मख रक्षण की चिन्ता नहीं, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं।

'एहूं मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई।।
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना।।'[2]

दशरथ-विश्वामित्र के पूर्वोक्त प्रसंग में वशिष्ठ ने दोनों ही काव्य ग्रन्थों में दशरथ को समझाने का सफल प्रयास किया है। रामायण में निजादेश भंग से जब विश्वामित्र क्रुद्ध हो उठे, समस्त वसुधा प्रकम्पित हो उठी तथा देव भयभीत हो गये तब वशिष्ठ ने दशरथ को अनेक तर्कों द्वारा समझाने की चेष्टा की।[3]

परन्तु मानस में इतना भीषण वातावरण वर्णित नहीं हुआ है अतएव तुलसी ने केवल कथा का संकेत मात्र किया है।

'तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहं पावा।।'[4]

---

१ 'मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा।।
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी।।
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा।।
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदय हरष अति पावा।।'
मा० १।२०६।१ से ४।

२. मा० १।२०५।७,८।

३. वा० रा० १।२१।५ से २१ तक।

४. मा० १।२०७।८।

रामायण में वाल्मीकि ने राम को विश्वामित्र द्वारा 'बला अति बला' नामक विद्या दान का विशद उल्लेख किया है[१] जबकि तुलसी ने इस प्रसंग का सांकेतिक उल्लेख मात्र किया है ।

'विद्या निधि कहं विद्या दीन्ही ।।'[२]

इस अन्तर का कारण यह है कि वाल्मीकि के राम केवल पुरुषोत्तम हैं अतएव उन्हें सभी विद्याएँ जन्म से ही प्राप्त नहीं हैं, अपितु उनका शिक्षण प्राप्त करने की भी आवश्यकता है । इसी कारण इस शिक्षा का विशद उल्लेख मिलता है परन्तु तुलसी के राम 'ज्ञान घन स्वरूप' ब्रह्म के अवतार हैं, पूर्ण पुरुष हैं, उनकी शिक्षा के विशद वर्णन करने में पूर्ण पुरुष की अप्रतिष्ठा की सम्भावना थी क्योंकि तुलसी राम के अध्ययन के विषय में पूर्व ही आश्चर्यमय जिज्ञासा व्यक्त कर चुके हैं ।

'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।।'[३]

राम द्वारा ताड़का, सुबाहु वध एवं मारीच उत्क्षेपण प्रसंग भी रामायण[४] में मानस की अपेक्षाकृत अत्यन्त विशदता से वर्णित हुये हैं क्योंकि रामायणकार ने राम के पराक्रम सम्बन्धी प्रसंगों का सर्वत्र व्यापक उल्लेख किया है । जब कि मानसकार की प्रवृत्ति राम के ओज गुण की अपेक्षाकृत माधुर्य गुण की ओर विशेष रही है क्योंकि वाल्मीकि घटना के वस्तु चित्रण कर्ता हैं और तुलसी भक्त हैं । अतएव तुलसी घटनाओं का तारतम्य निर्वाह करने के लिये इन प्रसंगों का संक्षिप्त उल्लेख करते हैं । अतएव वाल्मीकि ने राम से सम्बन्धित कथा के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों का भी उल्लेख रामायण में किया है[५] जिनका मानस में नितान्त अभाव है क्योंकि तुलसी राम से परे नहीं जाते जैसा कि वे स्वयं कहते हैं ।

'एहि महं आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।।'[६]

रामायण के उपर्युक्त विविध प्रसंगों में राम के पराक्रम का विशद उल्लेख लगभग ९

---

१. वा० रा० १।२७, १।२८।

२. मा० १।२०८।७।

३. मा० १।२०३।५।

४. वा० रा० १।२६, १।३०।

(१) ताटका वध — मा० १।२०८।६।

(२) सुबाहु वध — मा० १।२०९।५।

(३) मारीच उत्क्षेपण — मा० १।२०९।३,४।

५. (१) गंगा एवं सरयू के समीप स्थित आश्रम की पूर्व कथा, का दहन प्रसंग वा० रा० १।२३ सर्ग ।

(२) मलदा और करूशा नामक देशों में वृत्रासुर के वध कर्ता इन्द्र का वृत्तान्त वा० रा० १।२४।१७ से २४।

६. मा० ७।६०।६।

सर्गों में किया गया है[१] जबकि मानस में केवल ७ पंक्तियों में ही आवश्यक सम्बन्धित उल्लेख मात्र हुआ है।[२]

धनुष-मख-रक्षण के प्रसंग के पश्चात् रामायण में विश्वामित्र जनक के यज्ञ की सूचना देकर मिथिला की ओर प्रस्थान करते हैं। कुछ दूर चलने के पश्चात् गंगा नदी के तट पर स्थित समृद्ध वन के विषय में राम विश्वामित्र से जिज्ञासा प्रकट करते हैं।

'भगवन् कोन्वयं देश: समृद्धवनशोभित:
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्वत: ।।'[३]

राम की प्रार्थना से प्रेरित होकर विश्वामित्र अन्य ऋषियों के मध्य उस देश का वृत्तान्त कहते समय १६ सर्गों में[४] अनेक कथाओं का उल्लेख करते हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं।

विश्वामित्र के पूर्वजों की कथा[५] शंकर विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म की कथा,[६] राजा सगर की कथा[७] इत्यादि।

मानस में उक्त कथाओं को अनावश्यक समझकर तुलसी ने उनका उल्लेख नहीं किया है क्योंकि पूर्वोक्त सभी कथाओं को एक स्थान पर उल्लिखित करने से प्रबन्धात्मकता में गति-रोध हो जाता। रामायण महाकाव्य है और रामचरित मानस प्रबन्ध काव्य है, अतएव प्रबन्ध निर्वाह की दृष्टि से तुलसी ने उक्त प्रसंगों का उल्लेख मानस में नहीं किया।

रामायण में इन वृहद् प्रसंगों के उल्लेख के अनन्तर अहिल्योद्धार का प्रसंग वर्णित हुआ है[८] जबकि मानस में विश्वामित्र मख रक्षण के वृत्तान्त के बाद ही इसका उल्लेख है।[९] जहाँ कहीं राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों के विस्तृत वृत्तान्तों का उल्लेख रामायण में हुआ है वहाँ तुलसी ने सर्वत्र संक्षिप्त शैली ही अपनायी है जैसे अहिल्या के शापित होने के वृत्तान्त को न कह कर वे लिखते हैं।

'पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी ।।'[१०]

दोनों ग्रन्थों के 'अहिल्या वृत्तान्त' में अन्तर यह है कि रामायण में अहिल्या शाप के

---

१. वा० रा० १।२२ से १।३० सर्ग तक।
२. मा० १।२०८।६, १।२०९।२ से ६ तक।
३. वा० रा० १।३१।२३।
४. वा० रा० १।३२ से १।४७ सर्ग तक।
५. वा० रा० १।३२ से १।३४ सर्ग तक।
६. वा० रा० १।३६, १।३७ सर्ग।
७. वा० रा० १।३८ से १।४४ सर्ग तक।
८. वा० रा० १।४८, १।४९ सर्ग।
९. मा० १।२१० से १।२११ तक।
१०. मा० १।२०९।१२।

कारण शिला का रूप धारण नहीं करती, अपितु अदृश्य हो जाती है ।[१] अध्यात्म रामायण में भी अहिल्या का अदृश्य हो जाना ही उल्लिखित है ।[२] परन्तु मानस में अहिल्या का 'शिला' रूप वर्णित है ।[३]

'गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।[४]

रामायण में विश्वामित्रादि द्वारा गंगा पार कर मिथिला पहुँचने पर अहिल्या का प्रसंग वर्णित हुआ है जबकि मानस में अध्यात्म रामायण के प्रसंग की ही भाँति गंगा तट पर ही उक्त कथा का सम्बन्ध बताया गया है ।

रामायण में राम पादस्पर्श से अहिल्या का उद्धार करते हैं[५] जबकि मानस में पद-रज द्वारा अहिल्या अपने चेतन तेजस्वी रूप को प्राप्त करती है ।

'परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही ।'[६]

इस अन्तर का कारण स्पष्ट यह है कि तुलसी मर्यादा का पालन करने वाले थे । उनके मर्यादा पुरुषोत्तम राम पर स्त्री का स्पर्श करते । इसी प्रसंग में इसी के समान एक उल्लेखनीय अन्तर यह भी है कि रामायण में अहिल्या सचेत होकर राम का अभिवादन करती हैं जबकि मानस में मर्यादा वश तुलसी ने अहिल्या द्वारा चरणाभिवादन तो नहीं कराया है परन्तु अहिल्या में भी निज भक्ति भावना का ही समावेश किया है । अहिल्या की स्तुतियाँ,[७] उसके अनुभावादि उसका भक्ता रूप ही प्रमाणित करते हैं ।

रामायण में अहिल्योद्धार के पश्चात् विश्वामित्र राजा जनक के यज्ञ मंडप के मार्ग से जाते हैं । महान् तेजस्वी, गौतम पुत्र, जनक के पुरोहित शतानन्द मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र वशिष्ठ के पूर्व वृत्तान्त[८] एवं विश्वामित्र की पूर्व तपस्यादि का विस्तृत उल्लेख करते हैं ।[९]

मानस में उक्त प्रसंगों का नितान्त अभाव है । उक्त अन्तर में प्रबन्धात्मकता का निर्वाह एवं अनावश्यक प्रसंगों का परिहार ही तुलसी का लक्ष्य रहा है ।

रामायण में शतानन्द द्वारा विश्वामित्रादि के पूर्व वृत्तान्तों के कथन के दूसरे ही दिन विश्वामित्र राजा जनक के शिव धनुष दिखाने का अनुरोध करते हैं ।[१०] राजा जनक धनुष

---

१. वा० रा० १।४८।३०।
२. अ० रा० १।५।३३।
३. मा० ९।२०९।१२।
४. मा० १।२१० प्रथम पंक्ति ।
५. वा० रा० १।४९। १८ ।
६. मा० १।२१०। छन्द, प्रथम पंक्ति ।
७. मा० १।२१०। छंद सम्पूर्ण ।
८. वा० रा० १।५५ से १।२८ सर्ग तक ।
९. वा० रा० १।५५ से १।६५ सर्ग तक ।
१०. वा० रा० १।६६।५,६ ।

का पूर्व माहात्म्य वर्णित कर, उसे राम लक्ष्मण को दर्शाते हैं ।[१] राम द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते ही वह धनुष टूट जाता है ।[२]

मानस में धनुर्भंग प्रसंग के पूर्व अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया गया है जिनका रामायण में किंचित् मात्र भी वर्णन नहीं है । इन प्रसंगों में प्रमुख हैं राम का जनकपुर भ्रमण तथा पुष्प वाटिका प्रसंग ।

'जनकपुर भ्रमण प्रसंग' में तुलसी का लक्ष्य यह रहा है कि जनकपुर-नर-नारी भी सीता विवाह के पूर्व राम के नख-सिख-सौन्दर्य[३] से प्रेमाभिभूत हो उठें, आनन्दित हो जायँ । यही कारण है कि वे लिखते हैं ।

'हियं हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ।।'[४]

उक्त प्रसंग में भी तुलसी ने मर्यादा को विशेष ध्यान में रक्खा है । जनकपुर की ललनाएँ कुलवधुएँ राम-लक्ष्मण के दर्शनार्थ भागकर गलियों में नहीं आती हैं अपितु वे उत्सुक नेत्रों से झरोखों से झाँकती हैं । लोचनों का लाभ पाकर कह उठती हैं ।

'सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ।।'[५]

यह प्रसंग बहुत कुछ भागवत् के उस विवरण के समान है जब कि कृष्ण को मथुरा भ्रमण करते देख समस्त मथुरा निवासी उनके सुन्दर दर्शन पाकर प्रेम विभोर हो उठते हैं ।

दोनों ग्रन्थों के पुष्प वाटिका प्रसंग के विषय में अन्तर का कारण यह है कि वाल्मीकि के समय में पूर्वराग की प्रथा का प्रचलन न था । इसका प्रचलन समाज एवं साहित्य में ८वीं शताब्दी के बाद से हुआ । चन्द बरदाई, जगनिक तथा मलिक मुहम्मद जायसी ने क्रमशः पृथ्वीराज रासो, आल्हा तथा पद्मावत में पूर्वराग का व्यापक चित्रण मिलता है । हीरामन तोता द्वारा पद्मावती की गुण गौरव गाथा को सुनकर रत्नसिंह की पूर्व राग दशा तुलसी के समय तक साहित्य क्षेत्र एवं लोक क्षेत्र दोनों में विख्यात हो चुकी थी इसी प्रकार कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' इत्यादि में शकुन्तला दुष्यन्त के प्रथम मिलन के प्रसंग भी इसी पूर्वराग की परिपाटी के चिरस्मरणीय उदाहरण संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त थे । तुलसी ने इस परम्परा प्राप्त पूर्वराग दशा को भी अपने मानस में स्थान देने के लिये ही पुष्प वाटिका प्रसंग की सुष्ठु योजना की ।

मानस के पूर्व लिखित राम कथाओं, महावीर चरित, जानकी हरण, तामिल रामायण, मैथिली कल्याण, प्रसन्न राघवादि, में भी यह पुष्प-वाटिका प्रसंग उल्लिखित है ।

---

१. वा० रा० १।६७।८ से १२ ।
२. वा० रा० १।६७।१५ से १७ ।
३. मा० १।२१८।३ से १।२१९ तक ।
४. मा० १।२२३ ।
५. मा० १।२१९।६ ।

तुलसी इन ग्रन्थों में से प्रसन्न राघव के विशेष ऋणी हैं। इस साम्य का व्यापक उल्लेख 'आधार-ग्रन्थ' वाले अध्याय में किया गया है।

यद्यपि प्रसन्नराघव तथा मानस दोनों में ही यह प्रसंग वर्णित है परन्तु दोनों की भाव व्यंजना में पर्य्याप्त अन्तर है। प्रसन्न राघव के इस प्रसंग में शृंगारिक पुट अधिक है, मानस में आदर्श मर्यादा का समुचित समावेश किया गया है। यद्यपि इस वाटिका में तुलसी ने अपने इष्टदेव राम तथा इष्टदेवी सीता का प्रथम मिलन दर्शाया है। दोनों प्रेमाविद्ध भी होते हैं परन्तु तुलसी का मर्यादानुराग सराहनीय है कि वे शृंगारी दृश्य में भी आध्यात्मिक आभास को विस्मृत नहीं होने देते। सीता में प्रेमोदय दर्शाते समय तुलसी 'प्रीति पुरातन लखइ न कोई'[1] का सम्बन्ध स्थापित कर सीता के प्रेम में औचित्य स्थापन करते हैं तथा राम के प्रेमाकर्षण में भी उसी संयत प्रेम का संकेत स्पष्ट है।

'जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।
सो सबु कारन जान विधाता।'.........[2]

'पुरातन' और 'विधाता' शब्द स्वयं विशुद्ध एवं पूर्व प्रेम के संस्कारों के व्यंजक हैं।

उक्त प्रसंग भी तुलसी की नाटकीय-शैली, रसमयता, आध्यात्मिकता के समन्वय को ही प्रस्तुत करता है।

इस प्रसंग के अतिरिक्त मानस में सीता का 'गौरी पूजन प्रसंग' भी तुलसी की धार्मिक उदारता का प्रतीक है। यह लौकिक विश्वास है कि पार्वती सौभाग्यदायिनी कही जाती हैं। जिस कन्या के विवाह में कठिनाई हो उसे तो विशेष रूप से गौरी पूजन विहित होता है। इसके अतिरिक्त शिव धनुर्भंग के लिये प्रार्थना उनकी अर्धांगिनी पार्वती से करना न्यायोचित भी था अतएव सीता द्वारा 'गिरिजा पूजन' के मिस तुलसी ने शक्ति आराधना, लौकिक विश्वास तथा सीता द्वारा समयानुकूल पूजन कराकर अपनी कला निपुणता के साथ साथ धार्मिक उदारता का भी परिचय दिया है।

'पुष्प-वाटिका-प्रसंग' के पश्चात् मानस में विवाह रीतियों का भी उल्लेख रामायण के समान नहीं है।

रामायण में राजा जनक के मन्त्रियों द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर दशरथ मिथिला नगरी को प्रस्थान करते हैं।[3] यज्ञ मंडप में दोनों सम्धियों का परिचय होता है।[4]

तदनन्तर वैदिक रीति से सब संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं।[5]

मानस के इतिवृत्त में अनेक दृश्यों की योजना कर तुलसी ने नाटकीयता एवं

---

१. मा० १।२२८।८।
२. मा० १।२३०।३,४।
३. वा० रा० १।६८।
४. वा० रा० १।७०, १।७१।
५. वा० रा० १।७२।

भावात्मकता का सुन्दर समावेश किया है। उनमें से कतिपय उल्लेखनीय दृश्य निम्नांकित हैं।

स्वयम्बर की रंगभूमि का दृश्य,[१] जनक की सभा में प्रवेश करने के उपरान्त राम के विषय में अनेक प्रकार के लोगों की अनेक धारणाओं का उल्लेख,[२] विभिन्न राजाओं के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म विवेचन,[३] सीता का रंगभूमि में आगमन,[४] सीता के अद्वितीय सौन्दर्य का चित्रण,[५] देवों की प्रसन्नता का दिग्दर्शन,[६] बंदी जनों द्वारा विरुदावली कथन,[७] अनेक नृपों द्वारा धनुष उठाने के विभिन्न प्रयासों का उल्लेख,[८] जनक की निराशात्मक उक्ति,[९] तथा लक्ष्मण की गर्वोक्ति आदि।[१०] ये नाटकीय चित्रात्मक प्रसंग अन्य राम कथाओं में अपना सानी नहीं रखते तथा ये दृश्य तुलसी की घटना योजना में दृश्य योजनाओं के साफल्य के प्रतीक हैं। ये सूक्ष्म विवेचनात्मक चित्रण तुलसी की मौलिक देन हैं।

इन्हीं विधि दृश्यों में 'जयमाल' प्रसंग के पश्चात् ही अत्यन्त नाटकीय ढंग से 'परशुराम का आगमन' भी तुलसी ने वर्णित किया है।[११] जब कि रामायण में उक्त प्रसंग राम विवाह के पश्चात मिथिला से प्रत्यावर्तन के समय वर्णित है। रामायण में परशुराम तथा राम का संक्षिप्त प्रसंग उल्लिखित है[१२], जिसमें परशुराम राम को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारते हैं परन्तु राम परशुराम के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर अपने पराक्रम का परिचय देते हैं और धनुष वरुण को समर्पित करते है।

पूर्वोक्त प्रसंग की योजना में अन्तर का एक कारण यह है कि मानम में राम ब्रह्म के अवतार हैं और परशुराम भी अंशावतार कहे जाते हैं अतएव अंशावतार को सकल सभा के मध्य पूर्णावतार के सम्मुख परास्त कराना तुलसी का लक्ष्य था। जैसा कि स्वयं परशुराम भी स्वीकार करते हैं।

'राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू।।'[१३]

---

१. मा० १।२३९।५ से १।२४० तक।
२. मा० १।२४०।१ से १।२४२ तक।
३. मा० १।२४४।१ से १।२४५।७ तक।
४. मा० १।२४६।
५. मा० १।२४६।१ से १।२४७ तक।
६. मा० १।२४५।८, १।४५७।५।
७. मा० १।२४९ से १।२४९।४ तक।
८. मा० १।२४९।५ से १।२५०।५ तक।
९. मा० १।२५०।६ से १।२५१।६ तक।
१०. मा० १।२५१।८ से १।२५३ तक।
११. मा० १।२६७।१ से १।२८४।७ तक।
१२. वा० रा० १।७५ से ७७ सर्ग तक।
१३. मा० १।२८३।७।

इस अन्तर का दूसरा कारण हनुमन्नाटक की प्रेरणा भी है जिससे प्रभावित होकर तुलसी ने लक्ष्मण परशुराम संवाद द्वारा आकर्षक हास्य व्यंग मिश्रित ओजमय 'रौद्र रस' स्थल की सफल योजना भी कर दी है।

रामायण में परशुराम मिलन के पश्चात् बालकांड की कथा समाप्त हो जाती है परन्तु मानस में ऐसा नहीं है। परशुराम संवाद के पश्चात् तुलसी ने अनेक प्रसंग वर्णित किये हैं। दशरथ को दूत द्वारा विवाह की सूचना भेजकर[२] जनक द्वारा जनकपुर सजाने का व्यापक विवरण[३] तुलसी ने मानस में दिया है। तदनन्तर बारात का सम्यक् चित्रण करके[४] लौकिक एवं वैदिक रीति के पाणिग्रहण की आवश्यक विधियों का उल्लेख[५] मानस में मिलता है। उक्त त्रिविध रूप वाल्मीकि रामायण में अप्राप्त हैं क्योंकि रामायण काल तक इन वैवाहिक रीतियों एवं सामाजिक परम्पराओं का विकास नहीं हुआ था।

विवाह के अनन्तर विदा प्रसंग भी तुलसी ने अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रित किया है जिससे वैवाहिक सम्बन्ध की सामाजिक शिष्टता की ओर भी ध्यान आकृष्ट हो उठता है। सम्धियों का पारस्परिक व्यवहार,[६] जामाता श्वसुर का व्यवहारादि[७] अनुकरणीय रूप में चित्रित हुये हैं। इतना ही नहीं समाज के प्रत्येक अंग की ओर तुलसी की दृष्टि व्यापक थी। अतएव विवाह के पश्चात् अयोध्या में 'सास बहू' का आदर्श रूप[८] चित्रण करना भी तुलसी नहीं भूले हैं। प्रत्येक क्षेत्र की शिष्टता के उपक्रम एवं उपसंहार का आद्योपान्त निर्वाह करना तुलसी की मौलिकता है।

रामायण में विवाह सम्पन्न होते ही विश्वामित्र यज्ञ मंडप से ही उत्तर पर्वत को चले जाते हैं परन्तु मानस में ऐसा नहीं है। तुलसी ने बारात के साथ ही विश्वामित्र का भी अयोध्या में आगमन दर्शाया है। तुलसी की शिष्टता एवं मर्यादा के सिद्धान्त के यह विपरीत था कि वे एक राजर्षि को मार्ग से ही लौटा देते। अतएव तुलसी ने यह आवश्यक समझा कि विश्वामित्र को अयोध्या पहुँचाकर उनके प्रति कृतज्ञता समर्पण करावें और विधि विधान सहित विदा करें। तुलसी ने दशरथ द्वारा इसी शिष्टाचार का पालन करवाया है।

मानस के बाल कांड के अन्त में तुलसी ने उपक्रम की भाँति उपसंहार का भी सम्यक् निर्वाह किया है। इस उपसंहार में भी तुलसी ने राम यश के माहात्म्य का ही उल्लेख किया है क्योंकि यह भक्त-तुलसी के लिए स्वाभाविक था कि कांड के प्रारम्भ में मंगलाचरण की ही भाँति उपसंहार में अपने प्रभु का माहात्म्य वर्णित कर प्रबन्धात्मकता का पालन करते।

---

१. मा० १।२८६।१,२।
२. मा० १।२८६।४ से १।२८९ तक।
३. मा० १।२९७।१ से १।३०२।१ तक।
४. मा० १।३२२।७ से १।३२४। छन्द तक।
५. मा० १।३४०।
६. मा० १।३४०।२ से १।३४१।७ तक।
७. मा० १।३५७।४।

अयोध्या कांड

रामायण में कथा क्रम

रामायण में कथा से ही कांड का आरम्भ होता है। शत्रुघ्न सहित भरत अपने मामा अश्वपति नरेश के पास चले जाते हैं। इसी बीच दशरथ राम का राज्याभिषेक करने की अभिलाषा से मांडलिक, सचिवादि की सभा का आह्वान करते हैं। सभा में उपस्थित सभी सभ्यगण राम के राज्याभिषेक का अनुमोदन करते हैं तथा राम के गुणों का उल्लेख करते हैं। राम का राज्याभिषेक निश्चित हो जाता है, गुरु वशिष्ठ से आदिष्ट सभी आयोजन सम्पन्न होते हैं। राम के राज परिषद् में आने पर दशरथ उनको राजनीति का उपदेश देते हैं। माता कौसल्या तथा समस्त जनता इस समाचार को सुनकर हर्षोल्लसित होती है। दशरथ की आज्ञा से वशिष्ठ राम के प्रासाद में जाकर राम को आवश्यक व्रत पालन का उपदेश देते हैं। राम सीता सहित उस व्रत का सम्यक् पालन करते हैं।

इधर कैकेई-दासी मंथरा प्रासाद की छत से नगरी की सजावट एवं हर्षोलास को देखकर धाय से उसके कारण की जिज्ञासा व्यक्त करती है। धाय से राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर मन्थरा क्रोध से प्रज्वलित होकर, कैकेयी के पास जाकर, उसके चित्त में भी वही ज्वाला प्रदीप्त करने का प्रयास करती है। कैकेयी प्रथम तो इस शुभ समाचार को सुनकर हर्षातिरेक से उसे अपना आभूषण देकर वरदान देने को भी उद्यत हो जाती है परन्तु मन्थरा क्रोध एवं शोक से आविष्ट होकर कटु व्यंग बाणों की वर्षा कर कैकेयी को अपने कपट-जाल में आविष्ट कर लेती है और कैकेयी तदनुसार क्रोधागार में चली जाती है।

कैकेयी को अपने प्रासाद में न पाकर दशरथ दु:खी होते हैं और कोप भवन में लुंठिता कैकेयी को सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं। दशरथ को वचनवद्ध करके उनसे कैकेयी दोनों वरदान (भरत को राज्य और राम का निर्वासन) माँग लेती है। इन भीषण वरदानों को सुनते ही दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं और कैकेयी की कटु आलोचना करते हुये राम के प्रति प्रेम व्यक्त करते हैं परन्तु कैकेयी शोकाकुल दशरथ को भी प्रतिज्ञा पालन का महत्व दर्शाती हुई, सत्यवादिता का ध्यान दिलाती रहती है और प्राण त्यागने का भय भी दर्शाती है।

प्रात: काल होने पर दशरथ की आज्ञा से सुमन्त्र राम को लाने जाते हैं। राम अलंकृत राजपथ से राजा के समीप जाते हैं और कैकेयी के मुख से उक्त वरदानों का समाचार सुनकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर कौशल्या के पास जाते हैं। कौशल्या उक्त समाचार को सुनते ही मूर्च्छित हो जाती है और अत्यधिक शोक करती हैं। इसी समय पर लक्ष्मण दशरथ, भरत, कैकेयी की घोर निन्दा करते हुए अपना उग्र रूप प्रदर्शित करते हैं और कौशल्या को परितुष्ट करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु राम 'दैव' को प्रबल कहकर लक्ष्मण को शान्त करते हैं तथा पितुराज्ञा का सर्वोपरि मान्य बताते हैं। विलाप करती हुई कौशल्या भी राम के साथ वन जाना चाहती हैं परन्तु राम उन्हें पातिव्रत धर्म का महत्व बताकर अयोध्या में ही रहने का आग्रह करते हैं। कौशल्या से विदा लेकर, सीता द्वारा वन चलने का अनुरोध करने पर राम वन कष्टों का विवरण देकर उनके वन जाने का प्रतिरोध करते

हैं। परन्तु सीता के दृढ़ संकल्पादि को देख राम उनको वन ले जाने की स्वीकृति दे देते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण भी राम से वन चलने की अनुमति ले लेते हैं। अयोध्या वासी भी वन जाने की चर्चा करने लगते हैं। राम निर्विकार रूप से दशरथ के समीप जाते हैं। उस समय अत्यन्त भीषण दृश्य प्रस्तुत होता है। चारों ओर करुण क्रन्दन होता है, सभी उपस्थित जन कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। दशरथ राम-वन-गमन की सजधज से तैयारी का आदेश देते हैं, यह सुन कैकेयी भयभीत हो उठती है। पर राम साधारण रूप से वन-गमन के लिये प्रस्तुत होते हैं। कैकेयी द्वारा दिये हुए वल्कल वस्त्रों को तीनों ही धारण करते हैं। सीता को आभूषणों से अलंकृत कर कौशल्या पतिव्रता होने का उपदेश देती हैं, सीता भी निज पति-भक्ति का परिचय देती हैं। सबसे अनुज्ञा लेकर राम, सीता, लक्ष्मण प्रदक्षिणा कर रथ पर आरूढ़ होते हैं। उस समय अयोध्या में शोक-सागर उद्वेलित हो उठता है। दशरथ कैकेयी का स्पर्श तक करना नहीं चाहते, शोकाकुल दशा में विलाप करती हुई कौशल्या से ही वार्तालाप करते हैं। सुमित्रा कौशल्या को सान्त्वना देती हैं।

अयोध्यावासी तमसा नदी तक राम के पीछे-पीछे पहुँच जाते हैं। राम शीघ्र ही उठकर अयोध्या वासियों को सोता छोड़कर ही सुमन्त्र को रथ आगे बढ़ाने का आदेश देते हैं। अयोध्यावासी राम को न पाकर, दुःखी होकर अयोध्या को लौट आते हैं। इधर राम वेद श्रुति, स्यन्दिका, गोमती नदियाँ तैरकर आगे बढ़ जाते हैं। कोशल देश के बाहर गंगा तट पर राम गुह से भेंट करते हैं। लक्ष्मण गुह से वार्तालाप करते हुए सारी रात व्यतीत करते हैं। प्रातः काल होते ही गंगा पार कर राम वट के दूध से जटाधारी बनते हैं और सुमन्त्र को संदेश देकर विदा करते हैं। दोनों वीर (राम, लक्ष्मण) वन में निर्भयतापूर्वक विहार करते हुये भरद्वाज के आश्रम तक पहुँचते हैं। भरद्वाज उनका समुचित आतिथ्य सत्कार करते हैं। तदनन्तर राम भरद्वाज द्वारा निर्दिष्ट चित्रकूट पर्वत पर सुखपूर्वक निवास करते हैं, वाल्मीकि मुनि के दर्शन करते हैं।

इधर सुमन्त्र को राज-मन्दिर में अकेले प्रवेश करते देखकर दशरथ एवं कौशल्यादि करुण विलाप करती हैं। पुत्र शोक से रोषित कौशल्या दशरथ को कटूक्तियाँ कहती हैं। इन दारुण वचनों से व्यथित दशरथ कौशल्या के हाथ जोड़कर विलाप करने लगते हैं। यह देख कौशल्या भी अत्यन्त पीड़ित हो रुदन करने लगती हैं। दशरथ श्रवण कुमार वध का पूर्व वृत्तान्त सुनाकर शोकाभिभूत हो उठते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है। सारा रनि-वास शोक मग्न हो उठता है। भरत को मातुल गृह से बुलाने के लिये दूत कैकय देश जाते हैं। अपशकुनों से आशंकित भरत कैकेयी के सब पूर्व वृत्त सुनकर क्षुभित होकर कैकेयी की कटु भर्त्सना करते हैं। कौशल्या से वार्तालाप कर अपने निरपराध होने का प्रमाण देते हैं। तत्पश्चात् वे दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् सम्पन्न करते हैं। मंत्रिगण भरत से राजा बनने का प्रस्ताव करते हैं। पर भरत उसका विरोध कर, राम को वन से लौटाने का निश्चय कर वन की ओर सबके साथ प्रस्थान करते हैं। मार्ग में भरत गुह की भेंट होती है। गुह भरत से रामादि का पूर्व वृत्त वर्णित करता है। तदनन्तर प्रयाग पहुँचने पर भरत भरद्वाज से भेंट करते हैं। भरद्वाज सबका अपूर्व आतिथ्य करते हैं। तत्पश्चात् भरतससैन्य चित्रकूट की ओर रामकुटी का अनुसन्धान करते हुए आगे बढ़ते हैं।

दूसरी ओर भरत कोससैन्य आता देखकर लक्ष्मण आवेशयुक्त होकर उनका वध तक कर डालने का निश्चय कर बैठते हैं। पर राम उन्हें शान्त करते हैं। भरत राम-कुटी तक पैदल ही जाते हैं। फिर राम भरत को प्रेमालिंगनबद्ध कर विविध कुशल प्रश्नावली करते हैं। पितृ निधन सुनकर राम लक्ष्मणादि शोक विह्वल हो उठते हैं तथा राम पिता की उदक क्रिया सम्पन्न करते हैं।

चित्रकूट में सभा आयोजित होती है। राम को अयोध्या लौटाने के लिये राम भरत में विविध तर्कों के आधार पर वार्तालाप होता है परन्तु राम अकाट्य तर्कों द्वारा भरत को पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौट जाने के लिए विवश कर देते हैं। भरत उन पादुकाओं को सिर पर धारण कर नन्दिग्राम आते हैं।

राम आश्रमवासी मुनियों को कष्टित देख चित्रकूट से प्रस्थान करते हैं और कुछ दिन अत्रि के आश्रम में निवास करते हैं। वहाँ पर अनुसूया सीता का परस्पर संभाषण होता है जिसमें सीता अनुसूया से आत्म वृत्तान्त कहती है और अनुसूया सीता को नारी धर्म का उपदेश देती हैं।

तदनन्तर राम राक्षसमय वन में लक्ष्मण तथा सीता के साथ प्रवेश करते हैं।

मानस में कथा क्रम

तुलसी क्रमशः शिव, राम तथा गुरू की वन्दना से इस कांड का प्रारम्भ करते हैं। अयोध्या का उत्तरोत्तर आनन्द एवं ऐश्वर्य वर्धन का उल्लेख कर तुलसी दशरथ की राम राज्याभिषेक की लालसा को व्यक्त करते हैं। मंत्रिवर्ग उनके प्रस्ताव का समर्थन कर आनन्दित होते हैं। राज्याभिषेक की अयोजनाएँ सम्पन्न होती हैं, अवध में आनंदोत्सव होते हैं। वशिष्ठ राम को अवसरानुकूल संयम नियमादि का उपदेश देते हैं। परन्तु इसी मध्य देवों से प्रेरित शारदा मन्थरा की बुद्धि परिवर्तन कर देती हैं। अवध के आनन्द प्रमोद का कारण जानते ही मन्थरा का हृदय ज्वाला से अभितप्त हो उठता है और वह कैकेयी को उकसाने का प्रयास करती है। पहले तो कैकेयी भी प्रसन्न हो उठती है परन्तु बाद में मन्थरा के कुचक्रों से प्रभावित होकर कैकेयी कोप भवन चली जाती है। कुवेषधारिणी कैकेयी को देख दशरथ आशंकित हो उठते हैं और यथासम्भव उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। दशरथ को वचनवद्ध कर कैकेयी दो वरदान माँगती है। दशरथ यह सुनते ही चेतनाशून्य हो जाते हैं। सुमन्त्र द्वारा आहूत राम पिता को शान्त कर, अपनी सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर कैकेयी को सन्तुष्ट करते हैं। नगर निवासी शोक परिप्लुत होकर कैकेयी की कटु निन्दा करते हैं। विप्र-पत्नियाँ कैकेयी को प्रबोधित करने की चेष्टा करती हैं। परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं होता।

कौशल्या राम से यह दुःखद संवाद सुनते ही व्याकुल हो उठती हैं परन्तु फिर तुरन्त संयत हो राम को वन-गमन का आदेश दे देती हैं। वहीं पर राम सीता को वन न जाने के हेतु वन के कष्टों का विवरण देते हैं परन्तु फिर उनकी अनन्य निष्ठा देख सीता को भी अपने साथ चलने की अनुमति दे देते हैं। लक्ष्मण भी राम को अपना सर्वस्व मानकर उनके साथ चलने का आग्रह करते हैं और अन्ततः स्वीकृति भी प्राप्त कर लेते हैं तथा माता सुमित्रा से विदा लेते हैं।

वन गमन प्रसंग में सकल पुरवासी तथा राजा दशरथ प्रलाप करने लगते हैं। राम शृंगवेर पुर पहुँचते हैं। निषाद राम का स्वागत करता है। वहाँ रात्रि भर निषाद तथा लक्ष्मण को आध्यात्मिक चर्चा होती है। तदनन्तर राम सुमंत्र द्वारा दशरथ को संदेश देकर विदा करते हैं तथा केवट से गंगा पार जाने का अनुरोध करते हैं। इस अवसर पर केवट का रामचरण प्रक्षालन का हठ देखते ही बनता है। गंगा पार होकर वे प्रयागराज पहुँचकर त्रिवेणी दर्शन करते हैं तथा भरद्वाजाश्रम पहुँचते हैं। वहीं पर एक अद्भुत तापस प्रभु के दर्शनार्थ आकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

वन पर्यटन करते समय राम को देखकर अनेक ग्राम के नर-नारी तथा बाल-वृन्द भावविभोर हो उठते हैं। वाल्मीकि के आश्रम को गमन करते हैं। महर्षि राम के तात्विक स्वरूप का विवेचन कर तथा चित्रकूट का मार्ग का निर्देश करते हैं। इस प्रकार राम चित्र-कूट में सुख शान्ति-पूर्वक निवास करते हैं।

इधर अवध को लौटते समय अश्वों को दु:खित देख निषादराज तथा सुमंत्र दोनों ही शोकाभितप्त हो उठते हैं। सुमंत्र को एकाकी देख विरह के कारण दशरथ व्याकुल होकर मरणदशा को प्राप्त हो जाते हैं। वशिष्ठ द्वारा प्रेषित दूतों के साथ भरत अपने ननिहाल से अवध की ओर प्रस्थान करते हैं। कैकेयी द्वारा पूर्व समाचारों को ज्ञात कर भरत पश्चाताप कर कैकेयी की निन्दा करते हैं। अन्त्येष्टि क्रियादि से निवृत्त होने के पश्चात् वशिष्ठ जी भरत से राज्य सिंहासनारूढ़ होने का आग्रह करते हैं। परन्तु भरत उसका प्रतिरोध कर चित्रकूट जाने का निश्चय करते हैं। सकल पुरवासियों के साथ चित्रकूट प्रयाण करते समय भरत ने मार्ग में गोमती, सई तीर पर निवास किया। गुह ने राम का विरोधी जान मन में वैर ठान लिया परन्तु फिर वास्तविकता से परिचय प्राप्त कर गुह भरत-मिलाप एवं प्रेमालाप हुए। शृंगवेर पुर में भरत ने निवास किया और राम के निवास स्थानों को देखकर आँसू बहाए। भरत सुरसरि पार कर प्रयागराज पहुँचे। वहाँ भरद्वाज ने सबका विशेष स्वागत किया। इसी मध्य इन्द्र को आशंका हुई कि भरत कहीं राम को लौटा कर हमारे देवकार्य में विघ्न न डाल दें, अतएव उन्होने अपने गुरु बृहस्पति से परामर्श लिया परन्तु गुरु ने इन्द्र की भर्त्सना और भक्त भरत की प्रशंसा की। भरतागमन देख राम के हृदय में हर्ष-विषाद दोनों हुये। लक्ष्मण जी यह देखकर रुष्ट हो उठे, परन्तु आकाशवाणी ने उनके क्रोधावेग को शान्त किया। राम ने भी लक्ष्मण को शिक्षा दी और भरत का ही गुण-गान गाया। चित्रकूट में राम-भरत का आत्मविभोर करने वाला मिलन हुआ। कैकेयी ग्लानि एवं पश्चात्ताप से अभिभूत हो उठी। वशिष्ठ एवं भरत संवाद होने के पश्चात् समस्त जनों की सभा में भरत विनीत वाणी से अपनी दीन पुकार कर उठे। राम भरत का शील-भक्ति समन्वित वार्तालाप हुआ। इसी मध्य राजा जनक का आगमन हुआ। जनक वशिष्ठ की शान्तिमयी वार्ता हुई। सुनयना तथा कौशल्यादि का समागम हुआ। सीता से जनकादि का मिलन हुआ। वहाँ पर उपस्थित सभी ने भरत की प्रशंसा की। भरत ने बारम्बार राम के प्रत्यावर्तन की प्रार्थना की। राम ने स्नेहानुरोध द्वारा भरत को अपनी चरण-पादुका देकर विदा किया। भरत द्वारा राज्याभिषेकार्थ लाया हुआ जल एक कूप में डाल दिया गया, जो भरत-कूप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। देवमाया से अवधवासियों के मन

में भी चित्रकूट से उच्चाटन हो उठा और सबने अयोध्या की ओर प्रयाण कर दिया । राजा जनक ने अवध राज्य की सुव्यवस्था कर जनकपुरी को प्रयाण किया । भरतपुर वासियों सहित नियमपूर्वक भावना एवं कर्त्तव्य का संयुक्त निर्वाह करते हुए अयोध्यावासियों में निवास करते रहे । भरत की प्रशंसा एवं माहात्म्य द्वारा तुलसी ने अयोध्याकाण्ड का उपसंहार किया ।

तुलनात्मक समीक्षा

रामायण के दशरथ का चरित्र मानस के दशरथ से नितान्त भिन्न है, अतएव रामायण में वे भरत की अनुपस्थिति में ही राम के राज्याभिषेक को कर डालना चाहते हैं[1] जबकि मानस में इस स्वार्थ बुद्धि एवं कूट चातुरी का लेश मात्र भी उल्लेख नहीं है क्योंकि तुलसी के दशरथ राम भक्त भी हैं । भक्त में कूट बुद्धि तुलसी क्योंकर चित्रित करते ।

दोनों ग्रन्थों में राम के राज्याभिषेक के प्रस्ताव में अन्तर है । रामायण में दशरथ इस प्रस्ताव के निमित्त सभा का आह्वान करते हैं । तब सभासद इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते तथा राम का गुण-गान गाते हैं[2] परन्तु मानस में दशरथ गुरु को ही प्रधानता देते हैं । गुरु को सब प्रकार से प्रसन्न देखकर उनसे प्रार्थना करते हैं ।

'नाथ रामु करिअहिं जुवराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ।'[3]

गुरू वशिष्ठ का पूर्ण समर्थन पाकर फिर दशरथ मंत्रिगणों से परामर्श करते हैं ।

'जो पाँचहि मत लागे नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका ।।'[4]

उपर्युक्त अन्तर का कारण यह है कि वाल्मीकि के समय में गणराज्य थे । उनकी परम्परा का ध्यान अनेक संस्कृत कवियों को रहा है । उस समय यह आवश्यक न था कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाय । राजा की नियुक्ति के अनेक सिद्धान्त थे । जिनका विवेचन राजनीतिक स्थितियों के अन्तर्गत किया जायगा । अतएव योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध करने के लिए यह परम आवश्यक था कि राम में वे सद् गुण दिखाये जाते जो कि चारित्रिक योग्यता प्रमाणित करते । सभ्यगणों एवं पुरवासियों ने राम की विरुदावली में सभी अनिवार्य गुणों का उल्लेख किया है ।

उक्त अन्तर का एक अन्य कारण यह भी है कि दशरथ कैकेयी से विवाह करते समय ही यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि कैकेयी का ही पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा, अतएव यह स्थिति अनिवार्य हो गई थी कि राम के लोकोत्तर गुण व असाधारण प्रतिभा से अभिभूत होकर सभासद एवं मंत्रिगण स्वयं ही कह उठे कि हाँ राम को ही युवराज नियुक्त किया जाय । दशरथ राम की लोकप्रियता से परिचित थे ही अतएव उन्होंने सभा बुलाकर सबका मत जानना चाहा और इस प्रकार समवेत स्वर से सबने राम को युवराज बनाने का अनुमोदन किया और दशरथ की अभिलाषा भी पूर्ण हुई तथा दशरथ की अश्वकेतु से की हुई

---

१. वा० रा० २।१।४८।
२. वा० रा० २।२।३० से ५४।
३. मा० २।३।२।
४. ।मा० २।४।३।

पूर्वकृत प्रतिज्ञा राम के दिव्य गुणों के तीव्र प्रकाश पुंज में विलीन हो लोगों को विस्मृत हो गयी।

परन्तु मानस में दशरथ की पूर्व प्रतिज्ञा का कोई उल्लेख नहीं है। यदि तुलसी इसका उल्लेख करते तो फिर तुलसी के दशरथ की सत्य सन्धता में अन्तर आ जाता क्योंकि पूर्वकृत प्रतिज्ञा का पालन न करना भी असत्य पालन ही होता। तुलसी के दशरथ अपनी सत्य निष्ठा एवं दृढ़ प्रतिज्ञा के ही कारण अमर हैं।

रामायण में वशिष्ठ ने राम को राज्याभिषेक के पूर्व होने वाले अनेक नियमों के पालन की शिक्षा दी है जबकि मानस में इन संयमों का केवल संकेत मात्र किया गया है तथा वशिष्ठ स्वयं भावी आशंकाओं से प्रेरित होकर केवल इनना ही कहते हैं।

'राम करहु सब संजम आजू। जौ बिधि कुसल निबाहै काजू।।'[1]

उक्त प्रसंग में अन्तर का कारण यह है कि रामायण-काल की अपेक्षाकृत तुलसी के समय में उक्त अभिषेक परम्परा का निर्वाह नहीं होता था तथा वशिष्ठ मानस में राम को भावी घटनाओं का पूर्वाभास भी दे देते हैं क्योंकि अन्तर्यामी राम से वैसे भी कुछ छिपा नहीं है, अतएव उसका अनुमानत: निष्कर्ष कह देने में कोई अकल्याण नहीं होता।

दोनों ग्रन्थों के कैकेयी-मन्थरा संवाद में साम्य केवल इतना है कि मन्थरा दोनों ही काव्यों में कैकेयी की प्रेरिका है और कैकेयी को दशरथ से दो वर माँगने के लिए विवश करती है परन्तु अन्तर यह है कि मानस की मन्थरा भी दैवाधीन चित्रित की गई है। 'गई गिरा मति फेरि' कह कर तुलसी ने उसकी कुटिल बुद्धि का दोष सरस्वती को दिया है, मन्थरा को मूलत: नहीं परन्तु रामायण की मन्थरा प्रकृति से ही कुटिल चित्रित की गई है। इसीलिये ही मानों वह कैकय देश से भेजी गई है कि वह कैकेयी की सतत् स्वार्थसाधिका बनी रहे।

दोनों में ही कैकेयी दशरथ को वचन बद्ध कर दोनों वरदान माँग लेती है।[2]

रामायण में कौशल्या[3] तथा लक्ष्मण[4] दोनों ही राम के वन-निर्वासन का कटु विरोध करते हैं जबकि मानस में ऐसा विरोध प्रदर्शन करना तुलसी ने मर्यादा के विरुद्ध समझा कि सतरूपा की अवतार स्वरूपा गम्भीर कौशल्या अपने पति द्वारा प्रदत्त वरदानों का विरोध करें और अपना असंयत रूप प्रदर्शित करें। वही स्थिति लक्ष्मण के विषय में भी है। मानस के लक्ष्मण तो राम-चरण रत ठहरे, उनको भौतिक प्रपंचों से कोई तात्पर्य नहीं है उनका तो केवल लक्ष्य है अपने प्रभु राम की सेवा करना। चाहे वे जहाँ रहे। इसी कारण लक्ष्मण रामायण की भाँति क्षुभित न होकर राम से यही प्रेमानुरोध करते हुये तर्क करते हैं।

---

१. मा० २।९।३।
२. (१) वा० रा० २।११। २२ से २९।
(२) मा० २।२८।१,२।
३. वा० रा० २।२१।२० से २८, ५१ से ५४ तक।
४. वा० रा० २।२१।१ से १९, २।२३।५ से ४१।

'मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥'[1]

दोनों ग्रन्थों में ही राम ने वन की भयंकरता का दिग्दर्शन कराकर[2] सीता को वन चलने का आग्रह त्यागने का अनुरोध किया है, परन्तु सीता की दृढ़ता के सम्मुख राम को उन्हें 'साथ ले चलने की अनुमति देनी ही पड़ी।[3] तथैव लक्ष्मण को भी राम ने दोनों ही ग्रन्थों में साथ चलने की अनुमति प्रदान की है।

राम के वन-प्रस्थान के पूर्व दोनों ही ग्रन्थों में कैकेयी द्वारा वल्कल वस्त्र देने का प्रसंग वर्णित है।[4] रामायण में इसके कारण उसकी घोर भर्त्सना भी वर्णित, है मानस में नहीं।

दोनों ग्रन्थों के वन गमन प्रसंगों में आयोध्या नगरी का करुण क्रन्दन वर्णित है। रामायण में चित्रात्मक एवं व्यापक शोक चित्रण किया गया है[5] तो मानस में सांकेतिक एवं संक्षिप्त है।[6]

उक्त प्रसंग में अन्तर केवल यह है कि रामायण की कौशल्या को सुमित्रा प्रबोधित कर शान्त करती हैं[7] पर रामायण की कौशल्या की अपेक्षाकृत मानस की कौशल्या विशेष संयत हैं।

दोनों ही ग्रन्थों में अयोध्यावासियों का राम के साथ तमसा नदी के तट तक जाना[8] तथा राम का वहाँ उन्हें सुप्तावस्था में छोड़ जाना[9] वर्णित है।

दोनों ही ग्रन्थों में गोमती पार करने पर गुह-राम-मिलन वर्णित है। लक्ष्मण-गुह-संवाद का भी उल्लेख दोनों में है, परन्तु अन्तर यह है कि रामायण में यह संवाद[10] भौतिक[11] है,

---

१. मा० २।७१।८।
२. (१) वा० रा० २।२८।१ से २३।
   (२) मा० २।६१।४ से २।६२।४ तक।
३. (१) वा० रा० २।३०।४१ से ४५ तक। (२) मा० २।६७।४।
४. (१) वा० रा० २।३७।१ से ६, २० से ३३ तक।
   (२) मा० २।७८।२।
५. वा० रा० २।४०।१८ से ५१, २।४१, २।४३ सग।
६. मा० २।७९, २।७९।१, २।८२।३ से २।८३।२ तक।
७. वा० रा० २।४४।१ से २९ तक।
८. (१) वा० रा० २।४५।१।
   (२) मा० २।८३।४ से २।८४ तक।
९. (१) वा० रा० २।४६।२३ से २८ तक।
   (२) मा० मा० २।८४।८, २।८५।
१०. (१) वा० रा० २।५१।८ से २६ तक।
   (२) मा० २।८९।६ से २।९३।१ तक।
११. 'परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः।
   तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत' वा० रा० २।५१।२६।

मानस में आध्यात्मिक[१] क्योंकि रामायण के निषाद केवल राम के सखा हैं जबकि मानस के निषाद राम के भक्त हैं ।

रामायण में राम अपनी माँ कौशल्या की स्मृति कर विलाप करते हैं और लक्ष्मण उनको परितुष्ट करते हैं ।[२] परन्तु मानस में ऐसे प्रसंगों का अभाव है क्योंकि तुलसी के राम 'मैं अरु मोर तोर तैं माया' जानने वाले हैं । अतएव वे केवल कौशल्या की ही याद क्यों करते हैं । इसके अतिरिक्त तुलसी के राम निर्विकार भी हैं, अतएव वे सहज स्थिति में ही रहते हैं ।

रामायण में भरद्वाज राम को चित्रकूट-निवास की मंत्रणा देते हैं ।[३] तत्पश्चात् राम चित्रकूट-निवास के पश्चात् वाल्मीकि के दर्शन प्राप्त करते हैं ।[४] परन्तु मानस में तुलसी ने राम के भरद्वाज आश्रम से प्रयाण करने के पश्चात् अनेक दृश्यों की मौलिक योजना की है जिनमें महत्वपूर्ण एवं भावात्मक स्थल निम्नांकित हैं ।

अद्भुत तेजपुंज तपस्वी का राम को भावार्पण,[५] श्री राम पर अनेक वन्य जीवों का अनुराग तथा राम पर अनेक पथिकों एवं ग्राम वासियों की आसक्ति,[६] सीता राम की की अलौकिक शोभा से आकर्षित ग्राम-वधूटियों का रसमय वार्तालाप,[७] स्नेह परिप्लुत ग्राम-वासियों का राम विरह के कारण व्याकुल होना[८] इत्यादि ।

तुलसी ने अनेक रामायणों से मधु संचय कर उपर्युक्त भावात्मक स्थलों की योजना

---

१. 'अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू । काहुहि बादि न देइअ दोसू ।।
मोह निसां सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय बिलास बिरागा ।।
होइ बिवेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।
सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।
सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ।।
भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ।।'
मा० २।९२।१ से २।९३ तक

२. वा० रा० २।५३।१ से ३२ तक ।
३. वा० रा० २।५५।१ से १० तक ।
४. वा० रा० २।५६।१६ से २० तक ।
५. मा० २।१०९।७ से २।११०।६ तक ।
६. मा० २।११३।२ से २।११४।१ तक ।
७. मा० २।११६।१ से २।११७।४ तक ।
८. मा० २।११७।६ से २।१२१ तक ।

की है । भरत रामायण के ग्रामवासियों एवं पथिकों के भावमय रूप का चित्रण मानस में बिम्ब प्रति बिम्ब भाव में विद्यमान है ।[1]

मानस में ग्रामवधुओं का प्रसन्न होकर सीता को आशीर्वाद देने का प्रसंग ब्रह्म रामा-रण[2] तथा मंगल रामायण[3] में भी वर्णित है ।

मानस में ग्रामनारियाँ रामादि की कोमलता देखकर उन्हें कठिन भूमि पर विचरण करते देख व्याकुल हो उठती हैं ।[4] यही भाव महेश्वर संहिता में विद्य-मान है ।

'भवन्ति व्याकुला: सर्वा: प्रमदा: प्रीतिकारणात् ।।
सायंकाले यथा कोक्यो दु:खितास्तु भवंति वै ।
पन्थानं कठिनं ज्ञात्वा पदमद्मौ च कोमलौ ।।
कथयन्ति वरां वाणीं प्रेमपूर्णा वराङ्गना: ।
सर्वेंसहा स्पृशन्ती च चरणौ कोमलारुणौ ।।
सङ्कुचत्येव चास्माकं सख्य: सुहृदयं यथा ।'[5]

उपर्युक्त प्रसंगों में तेजस्वी तापस के आने का प्रसंग तुलसी की नितान्त मौलिक

---

१. (१) 'श्रीराघवं बिलोक्यैके मग्ना: प्रेमार्णवे नरा: ।
दर्शनं तस्य कुर्वन्त: साकं तेन व्रजन्ति वै ।।
एके नयनमार्गेण निधाय हृदये छविम् ।
मनसा कर्मणा वाचा शान्तचित्ता भवन्ति हि ।'
रा० टी०, भरत रामायण, अयो० कां०, पृष्ठ १४४ ।

(२) मा० २।११०।७,८ ।

२. अभवन् मुदिता ग्रामवधूट्यो निखिलास्तथा ।।
द्रव्यराशिं यथा प्राप्य निर्धनास्तुष्टमानसा: ।
जानकीं परमप्रेम्णा निपत्यांघ्रयो: सुशोभनाम् ।।
आशिषं ता: प्रयच्छन्ति सौभाग्यं ते प्रवर्द्धताम् ।'
रा० टी०, ब्रह्म रामायण, अयो० कां०, पृष्ठ १४८ ।

३. 'भव भर्तु: प्रिया देवि पार्वती सदृशी कृपाम् ।।
कदाप्यस्मासु मा मुंचे कुर्वंति विनयं भृशम् ।
बद्धहस्ता: यथानेन निवृत्ता चेद् भवे: प्रिये ।।
पुनर्नो निजदासीस्त्वं ज्ञात्वा दया: स्वदर्शनम् ।
दृष्ट्वा प्रेमातुरा: सीता कौमुदीव कुमुद्वती: ।।
सर्वा: संबोधयामास व्याहारैर्मधुरै: प्रिया ।'
रा० टी०, मंगल रामायण, अयो० कां०, पृष्ठ १४९ ।

४. मा० २।१२०।३,४ ।

५. रा० टी०, महेश्वर संहिता, अयो० कां०, पृष्ठ १५१ ।

कल्पना से उद्भूत है। राम को अपने जन्म स्थान के समीप से राम का वन-भ्रमण उल्लेख करते समय राम आत्म-विभोर हो उठे और तुरन्त प्रभु-कथा योजना में तापस के रूप में स्वयं ही भाव रूप धारण कर अभिनय करने लगे। यही कारण है कि गोस्वामी जी उसके रूप के विषय में लिखते हैं।

'कवि अलखित गति वेष विरागी.........'[१].........इत्यादि।

उक्त चित्ताकर्षक प्रसंगों के उल्लेख के पश्चात् तुलसी राम वाल्मीकि मिलन वर्णित करते हैं जिसमें महर्षि ने राम के तात्विक स्वरूप का विवेचन किया है। रामायण की अपेक्षाकृत मानस में चित्रकूट पहुँचने के पूर्व ही राम का वाल्मीकि से मिलन का कारण यह है कि राम जब अपने निवास के लिये उनसे प्रश्न पूछते हैं कि

'अस जियं जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ।'[२]

तब इस प्रश्न के मिस ही वाल्मीकि को राम के विश्वव्यापी स्वरूप के विवेचन करने का उपयुक्त अवसर मिलता है और वे स्पष्ट कहते हैं।

पूंछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूंछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावौं ठाउँ।।'[३]

यदि यह लौकिक कथा का आधार न होता तो यह तात्विक निरूपण किस प्रकार होता। राम के चित्रकूट निवास के पश्चात् यह मिलन असंगत हो जाता।

राम के चित्रकूट निवास के पश्चात्, रामायण में, अयोध्या की विषण्ण दशा का चित्रण किया गया है। सुमन्त्र के अयोध्या में प्रवेश करने के पश्चात् कौशल्यादि का शोक तथा दशरथ का मर्मभेदी आर्तनाद वर्णित है।[४] कौशल्या स्वयं सूत से दंडकारण्य ले चलने का आग्रह करती हैं, परन्तु सूत के निराकरण करने पर वे शोकाकुल हो उठती हैं।[५] पुत्र शोक से क्षुभित कौशल्या पटु व्यंग बाणों से दशरथ को मर्माहत कर देती हैं और वे कौशल्या के सन्मुख करबद्ध होकर विवशता से रो पड़ते हैं। यह देख कौशल्या भी शोक विह्वल हो हो रोदन करने लगती हैं।[६] तदनन्तर दशरथ 'श्रवण कुमार' की कथा एवं निज प्राप्त शाप का वृत्तान्त सुनाकर, राम विरह में तपड़ते हुये प्राण त्याग कर देते हैं।[७]

मानस में कौशल्या का उक्त क्षभित रूप तुलसी ने वर्णित किया है। इसका कारण पहले भी कहा जा चुका है कि मानस की कौशल्या परम विवेक शीला हैं। वे अपने पूर्वजन्म में 'शतरूपा' के रूप में ही भगवान् से वरदान मांग चुकी हैं।

---

१. मा० २।१०९।८।
२. मा० २।१२५।५।
३. मा० २।१२७।
४. वा० रा० २।५७।१४ से ३४, २।५९।१ से ३३।
५. वा० रा० २।६०। सर्ग।
६. वा० रा० २।६१, २।६२ सर्ग।
७. वा० रा० २।६३, २।६४ सर्ग।

'सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु ।'[1]

अतएव पति को अपशब्दादि कहने का अविवेक युक्त एवं अमर्यादित रूप वे कैसे दर्शा सकती थीं । अपितु ऐसी संकटमय स्थिति में वे अपने सहनशील, संयत स्वभाव का परिचय देती हुई विनीत वाणी से दशरथ को परितुष्ट ही करने की चेष्टा करती हैं ।

'नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम बियोग पयोधि अपारू ।।
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ।।
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू[2] ।।'

मानस में श्रवणकुमार के प्रसंग का भी अनावश्यक विस्तार न कर तुलसी ने सांकेतिक उल्लेख मात्र किया है क्योंकि तुलसी के दशरथ की वियोग दशा तो 'मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू' की-सी थी । वे तो एक क्षण भी व्यतीत होने पर ही असह्य वियोग पीड़ा वश पुकारते हैं ।

'हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम्ह बिन जिअत बहुत दिन बीते ।।'[3]

अतएव तुलसी ने भी इस प्रसंग में विषय विस्तार करना असंगत समझ कर कथा निर्वाह मात्र करने के हेतु संक्षिप्त उल्लेख ही किया है ।

दोनों ही ग्रन्थों में वशिष्ठ द्वारा प्रेषित दूतों के साथ भरत का मातुल-गृह से अवधागमन का प्रसंग वर्णित है ।[4] दोनों ग्रंथों में भरत द्वारा दुष्ट स्वप्न एवं अपशकुन दर्शन का उल्लेख है ।[3] दोनों में ही कैकेयी द्वारा सकल दुःख वृत्त सुनकर भरत का ग्लानिमय क्षोभ एवं कैकेयी की भर्त्सना का वर्णन है ।[5] कैकेयी से मिलने के पश्चात् दोनों ग्रथों में कौशल्या भरत-संवाद वर्णित है परन्तु अन्तर यह है कि रामायण में पहले कौशल्या भी भरत पर शंकाकुल दृष्टि रखती हैं[6] परन्तु मानस में कौशल्या किसी भी स्थिति में मानवोचित दुर्बलता का प्रदर्शन नहीं करती हैं, अपितु भरत के प्रति प्रारम्भ से ही स्नेह–परिप्लुत होकर वात्सल्य रसधार ही प्रवाहित करती हैं ।

'मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी संभारि ।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ।।'[7]

---

१. मा० २।१५०।
२. मा० २।१५३।५ से ७।
३. मा०२।१५४।७।
४. (१) वा० रा० २।७०, २।७१ सर्ग ।
   (२) मा० २।१५६।४, २।१५७।
५. (१) वा० रा० २।६९ सर्ग ।
   (२) मा० २।१५६।५ से ८, २।१५७।४ से ७।
   (१) वा० रा० २।७३, २।७४ सर्ग ।
   (२) मा० २।१५९।३ से २।१६२ तक ।
६. वा० रा० २।७५।११।
७. मा० २।१६४।

ऐसे स्थलों पर तुलसी वाल्मीकि के चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता के कारण आदर्श शिखर पर आरूढ़ हो जाते हैं।

दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न होते ही मंत्रियों एवं वशिष्ठ द्वारा भरत के सम्मुख राज्य ग्रहण का प्रस्ताव रखने का प्रसंग तथा साथ ही भरत का प्रतिरोध दोनों ही ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।[1] भरत दोनों में ही राम के प्रत्यावर्तनार्थ वन जाने का निश्चय करते हैं।[2] अन्तर केवल यह है कि उक्त प्रस्ताव की चर्चा रामायण में अन्य कर्मचारीगण तथा वशिष्ठ समवेत स्वर से करते हैं जब कि मानस में गुरु वशिष्ठ ही भरत को धैर्य बंधाते हुए यह प्रस्ताव भरत से कहते हैं। भरत मानस में अत्यन्त संयत स्वर से ग्लानि प्रकट करते हुये विनीत वाणी में वन जाने का निश्चय व्यक्त करते हैं।

उक्त अन्तर का कारण यह है कि तुलसी एक प्रस्ताव को ही मंत्रिगण एवं गुरु से दो बार न कहलाकर पुनरावृत्ति दोष से बचकर गुरु वशिष्ठ को ही राज कार्य भार का विशेष उत्तर-दायी बनाते हैं तथा भरत के उत्तर की शैली में भिन्नता का कारण तुलसी द्वारा वर्णित भरत चरित्र की शालीनता है।

चित्रकूट प्रयाण के मार्ग में श्रृंगवेर पुर पहुँचते ही भरत पर निषादराज का संदेश दोनों ग्रन्थों में वर्णित है परन्तु अन्तर यह है कि रामायण में गुह भरत से ही अपनी आशंका व्यक्त करता है।

'इयं ते महती सेना शंका जनयतीव मे।'[3]

परन्तु मानस में गुह की शंका भरत के सम्मुख व्यक्त नहीं होती है अपितु वह सामाजिक मान्यताओं द्वारा इस प्रकार स्वत: शान्त हो जाती है।

'एतना कहत छींक भइ बांए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥
बूढ़ु एक कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं।...........'[4]

गुह भरत मिलन के पश्चात् दोनों ग्रन्थों में ही ससैन्य भरत के भरद्वाज द्वारा अपूर्व आतिथ्य का प्रसंग वर्णित है।[5] उक्त प्रसंग में अन्तर यह है कि रामायण में भरद्वाज भी भरत के प्रति शंकाकुल होते हैं[6] जब कि मानस में तुलसी ने भक्त-शिरोमणि भरत पर

---

१. (१) राज्याभिषेक १ ला प्रस्ताव। वा० रा० २।७९। मा० २।१७३।५, ६।
(२) भरत का प्रतिरोध वा० रा० २।८२।९ से १६। मा० २।१७४।१।
२. (१) वा० रा० २।८२।१६, १८।
(२) मा० २।१७५।
३. वा० रा० २।८५।७।
४. मा० २।१९१।४ से ३।
५. (१) वा० रा० २।९१ सर्ग।
(२) मा० २।२१२।७ से २।२१५ तक।
६. 'किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः' वा० रा० २।९०।१०।

व्यर्थ शंकाएँ करना अनुचित समझकर भरद्वाज द्वारा उनकी भक्ति का गौरव गान[१] ही कराया ।

'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।।'[२]

रामायण में भरद्वाज मिलन के पश्चात् चित्रकूट मार्गान्वेषण करते हुए भरत चित्रकूट की ओर प्रयाण करते हैं ।[३] जब कि मानस में तुलसी इसी प्रसंग में पथवासियों द्वारा भी भरत की सराहना कर[४] तृप्ति-लाभ करते हैं ।

दोनों ग्रन्थों में ही भरत को ससैन्य आता हुआ देखकर लक्ष्मण का उग्र क्रोध वर्णित है ।[५] अन्तर यह है कि रामायण में केवल राम ही लक्ष्मण को शान्त करते हैं[६] जब कि मानस में इस प्रसंग की दृश्य योजना का महत्त्व अधिक बढ़ गया है क्योंकि आकाशवाणी भी लक्ष्मण को सचेत करती है ।[७] उनके उग्र क्रोध को शान्त करने की प्रेरणा देती है जिसे सुनकर लक्ष्मण संकुचित से होते हैं, तब राम लक्ष्मण को भरत गुण शील गान द्वारा शंका रहित करते हैं ।[८] उक्त प्रसंग में देवलोक तक को भरत के महत्त्व से प्रभावित होकर उनकी सुरक्षार्थ तत्पर वर्णित किया गया है, भरत की महत्ता ही व्यंजित करने के लिए तुलसी ने उक्त प्रसंग की योजना की है ।

इसके पश्चात् राम भरत मिलन का मार्मिक एवं भावात्मक प्रसंग दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित है । रामायण में यह मनोवैज्ञानिक, सजीव एवं भौतिक स्तर पर मार्मिक है[९] परन्तु मानस में इस मिलन की आत्मविभोर दशा वस्तुतः पाठकों को भी तन्मय कर आत्म विभोर कर देती है[१०] और वस्तुतः यह कथन नितान्त संगत जान पड़ता है कि

'मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी ।'[११]

मानस में राम भरत का मिलन वह प्रगाढ़ अगम आध्यात्मिक स्नेह मिलन है जहाँ तुलसी के अनुसार 'विधि हरि हर' का मन भी नहीं जा सकता ।[१२]

---

१. मा० २।२०५।८ से २।२०८।५ तक।
२. मा० २।२०७।८।
३. वा० रा० २।९८ सर्ग।
४. मा० २।२२१।१ से २।२२३ तक ।
५. (१) वा०रा० २।९७।१७ से ३० तक ।
   (२) मा० २।२२६।७ से २।२३० तक ।
६. वा०रा० २।९७।२ से १७ तक ।
७. मा० २।२३०।१ से ४ तक ।
८. मा० २।२३०।६ से २।२३१।७ तक ।
९. वा०रा० २।१००।३७ से ३९ तक ।
१०. मा० २।२४०।
११. मा० २।२४०।१।
१२. मा० २।२४०।५।

चित्रकूट सभा का प्रसंग रामायण तथा मानस दोनों में विस्तारपूर्वक वर्णित है परन्तु रामायण में यह इतिवृत्तात्मक रूप में है, पर मानस में भावात्मक है। रामायण में राम भरत का वार्तालाप तार्किक शैली पर आधारित है, जबकि मानस में रसमय भावपूर्ण शैली पर। रामायण में भरत भाई के रूप में राम से अयोध्या लौट चलने का स्नेहानुरोध करते हैं परन्तु मानस में भक्त भरत प्रभु चरणों में अनवरत भावांजलि अर्पित करते हैं[1] जैसे 'दैन्य' भाव ही साक्षात् रूपेण प्रभु के चरणों पर लोट रहा हो। उन्हीं उत्कृष्ट भावों के लिये ही तो राम भी भरत की सराहना करते हुये निष्कर्षात्मक वाक्य कहते हैं।

'तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥ ......
मिटहिंहि पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल मार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥[2]

रामायण तथा मानस की चित्रकूट सभा में भी पर्याप्त अन्तर है। रामायण में राम भरत परस्पर राज्य स्वीकार करने के तार्किक आग्रह करते हैं,[3] पिता की मृत्यु पर शोक पीड़ित होकर राम उदक क्रियादि सम्पन्न करते हैं।[4] जाबालि ऋषि भी राम को राज्य स्वीकार करने का ही परामर्श देते हैं[5] परन्तु राम भ्रष्ट-प्रतिज्ञ होकर अयोध्या में न रहने के तर्क द्वारा जाबालि के कथन का विरोध करते हैं।[6] इस प्रकार वाल्मीकि जाबालि द्वारा मानव राम के सम्मुख इन प्रलोभनादि की कसौटियों को रख कर राम को उनमें सफल दर्शाकर उनके मानवोत्तम रूप को प्रतिष्ठित करते हैं, इसी प्रकार गुरू वशिष्ठ भी राम से ज्येष्ठ होने के कारण राज्य स्वीकार कर लेने का अनुरोध करते हैं परन्तु राम प्रतिज्ञा भंग न करने के अटल संकल्प द्वारा उक्त कथन का प्रतिरोध करते हैं।[8] अन्ततः राम की पादुकाओं को लेकर भरत को अयोध्या लौटने के लिये विवश होना पड़ता है।

उपर्युक्त प्रसंगों में से मानस में जाबालि प्रसंग का नितान्त अभाव है। रामायणकार के समय में 'चार्वाक-दर्शन' का भी रूप विद्यमान था अतएव जाबालि 'चार्वाक' मत के प्रतीक रूप में वर्णित हुये हैं परन्तु मानसकार ऐसे पात्र की कल्पना करना भी पाप समझते हैं जो कि भगवान राम को उनके कर्त्तव्य पथ से विचलित करने की किंचित भी चेष्टा करे।

मानस में चित्रकूट सभा की कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं जिसका व्यापक आलोचनात्मक विवेचन आलोचक सम्राट आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है[9] जिसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत है।

---

१. मा० २।२५९।३ से २।२६२। तक।
२. मा० २।२६२।६, २।२६३।
३. वा०रा० २।१०२, २।१०५ से २।१०७ सर्ग तक।
४. वा०रा० २।१०२, २।१०३ सर्ग।
५. वा०रा० २।१०८।१ से १९ तक।
६. वा०रा० २।१०९।१ से १८ तक।
७. वा०रा० २।१११।१ से ३५, २।११२।४ से ७।
८. वा०रा० २।११२।६ से ११।
९. त्रिवेणी, गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ १४० से १४५।

'रामचरित मानस में यह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना, तुलसी के ही विशाल 'मानस में संभव थी। राजा और प्रजा, गुरू और शिष्य, भाई और भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, श्वसुर और जामातृ, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राह्मण, ब्राह्मण और शूद्र, सभ्य और असभ्य के परस्पर व्यवहारों का उपस्थित प्रसंग के धर्म गाम्भीर्य और भावोत्कर्ष के कारण, अत्यन्त मनोहर रूप प्रस्फुटित हुआ।'[1]

मानस में यह सभा अत्यन्त विराट रूप धारण करती है। जनक-समागम, वशिष्ठ संचालन, राम भरत संवाद आदि सभी प्रमुख प्रसंग विशेष गाम्भीर्य एवं शालीनता लिये हुए हैं जिनमें व्यक्तिगत सौन्दर्य तो है ही इसके साथ-साथ समाजगत गाम्भीर्य एवं शिष्टाचार की सुमनोहर छटा सर्वत्र अवलोकनीय है।

उक्त भेद के अतिरिक्त एक उल्लेखनीय भेद यह भी है कि रामायण में भरत द्वारा 'प्रायोपवेशन' करना[2] तथा ऋषियों की वाणी सुनकर भरत का पादुकाएँ लेकर लौटना[3] वर्णित है परन्तु मानस में इन प्रसंगों का उल्लेख नहीं है जिसका कारण स्पष्ट है कि तुलसी अनन्य विनीत शिरोमणि भरत में हठधर्मी का रूप कैसे दर्शा सकते थे और भक्त भरत के सम्मुख भगवान राम से अधिक आकाशवाणी का महत्व कदापि नहीं हो सकता।

इस प्रकार मानस में यह प्रसंग विशेष आकर्षक एवं आह्लादक है। रामायण की भाँति केवल इतिवृत्त कथन ही तुलसी का लक्ष्य नहीं रहा है अपितु 'भरत' का उज्ज्वल चरित्र निर्माण करना अयोध्याकांड के उत्तरार्ध का लक्ष्य है। भरत का चरित्रांकन कर तुलसी ने निष्काम भक्तों के लिये आलोक स्तम्भ जाज्वल्यमान कर दिया है।

रामायण में भरत इधर नन्दि ग्राम में नियमित रूप से निवास करते हैं, उधर राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं तथा वहाँ से राक्षसमय वन में प्रवेश करते हैं। परन्तु मानस में भरत माहात्म्य पर ही कांड की समाप्ति हो जाती है।

उक्त अन्तर का कारण भी यही है कि तुलसी का लक्ष्य है—

'भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥'[4]

तुलसी ने भरत का आचरण वर्णित किया, भरत कथन श्रवण के महत्व का भी उल्लेख किया क्योंकि तुलसी का लक्ष्य राम प्रेम है; भरताचरण उसका सार है अतएव सार तत्व का विस्तार पूर्वक वर्णन करना अवश्यम्भावी ही था। इसके अतिरिक्त इस कांड में राज धर्म, पति धर्म, भ्रातृ धर्म, प्रजा धर्म, गुरू धर्मादि विविध रूपों की विस्तृत व्याख्या की गई है उन सबकी इति भरत चरित्र में करना वैसा ही है जैसा कि विभिन्न सरिताओं का सागर में निमग्न होना। भरत चरित्र वस्तुतः राम यश सागर ही है जिसमें उपर्युक्त विविध

---

१. त्रिवेणी, गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ १४२, १४३।
२. वा० रा० २।११२।१५।
३. वा० रा० २।११३।४ से ७।
४. मा० २।३२६।

रूप रस निमग्न हो उठते हैं। अतएव भरत चरित की समाप्ति पर ही अयोध्या कांड का उपसंहार तुलसी के सिद्धान्त एवं भावानुकूल ही है।

अरण्य कांड

रामायण में कथा क्रम

राम दंडक वन में प्रवेश करते हैं। वहाँ के निवासी ऋषिगण उनका स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् विराध द्वारा सीता का अपहरण होता है तथा राम लक्ष्मण उसे पराजित करते है।

इसके बाद राम शरभंग, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य आदि महर्षियों के आश्रम में जाते हैं। राक्षस-संहार की प्रतिज्ञा करते हैं तथा पंचाप्सर तड़ाग पर १० वर्ष तक निवास करते हैं। अगस्त्य ऋषि श्रीराम का स्वागत करके विष्णु धनुष प्रदान करते हैं तथा उन्हें पंचवटी का पथ प्रदर्शित करते हैं।

पंचवटी में जटायु से मिलन होता है। यहीं पर लक्ष्मण पर्णकुटी बनाते हैं। कैकेयी पर दोषारोपण करते हुये लक्ष्मण कैकेयी की कटु आलोचना करते हैं परन्तु राम लक्ष्मण को ऐसा करने से रोकते हैं और उनसे भरत-गुणगान करने का आग्रह करते हैं।

पंचवटी निवास काल में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण घटना का समावेश 'शूर्पणखा-विरूपीकरण' है। यह समाचार सुनकर खर १४ राक्षस भेजता है जिनका राम तुरन्त वध कर डालते हैं। यह सुनकर फिर खर स्वयं १४,००० राक्षसों की सेना लेकर आता है। सीता तथा लक्ष्मण गुफा में चले जाते हैं तथा राम दूषण, त्रिशिरा तथा खर का वध करते हैं। यह दुःखद समाचार तुरन्त अकम्पन रावण से जाकर कहता है और रावण को सीता हरण के लिये प्रेरित करता है। रावण इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये मारीच से परामर्श करता है। शूर्पणखा द्वारा सीता सौन्दर्य तथा अपनी निन्दा सुनकर रावण सीताहरण के लिये दृढ़ निश्चय करता है।

रावण मारीच संवाद भी कई सर्गों में वर्णित है। अंततः मारीच अपनी कोई सुरक्षा का उपाय न देख रावण की स्वार्थ सिद्धि के लिये कनक मृग बनकर चल देता है। सीता की प्रार्थना सुनकर राम उसका वध करने के लिये चल देते हैं। मरते समय मारीच 'हा लक्ष्मण' पुकारता है। यह सुनकर सीता लक्ष्मण को राम की सुरक्षा के लिये तुरन्त जाने की आज्ञा देती हैं, परन्तु लक्ष्मण के मना करने पर, सीता अत्यधिक तीक्ष्ण कटु व्यंग्य वाणों से उन्हें आविद्ध कर चल देने के लिये विवश कर देती हैं।

इधर रावण सीता के पास परिव्राजक वेश में आता है। वह सीता से उनका समस्त जीवन वृत्तान्त सुनता है तत्पश्चात् अपने यथार्थ रूप में प्रकट होकर सीता हरण करता है। मार्ग में सीता का क्रन्दन सुनकर जटायु रावण से युद्ध करता है और अन्त में मारा जाता है। सीता बन्दरों की ओर अपने आभूषण फेंकती हैं। अन्ततः रावण उन्हें अशोक वन में नियंत्रित कर देता है।

इधर राम जब मारीच वध से निवृत्त होकर लौटते हैं तब पर्णकुटी को शून्य देख करुण हृदयद्रावक विलाप करते हैं तथा लक्ष्मण उन्हें धैर्य बँधाते हैं। तत्पश्चात् सीता की

खोज में गोदावरी तट पर वे भ्रमण करते हैं। मार्ग में पुष्प, सीता के आभूषण तथा रावण-जटायु युद्ध के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। लक्ष्मण पुनः राम को धैर्य बँधाते हैं।

जटायु राम से रावण द्वारा सीता हरण तथा दक्षिण की ओर गमन का वृत्तान्त भी बताता है।

इसी प्रकार सीतान्वेषण करते समय मार्ग में लक्ष्मण ने अयोमुखी को विरूप किया। कबन्ध का बाहु-विच्छेद किया। कबन्ध ने दिव्य रूप धारण कर सुग्रीव के पास जाने की मंत्रणा दी।

पम्पासर आश्रम में पहुँचने पर शवरी ने राम का स्वागत किया और अन्त में उसका स्वर्ग-गमन हुआ, तदनन्तर पम्पा सरोवर का वर्णन तथा राम का हृदयग्राही विलाप भी वर्णित है।

मानस में कथा क्रम

मानस में वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण के पश्चात्, राम की संयोग-शृंगार-लीला वर्णित है। जयन्त का उसी समय काक् रूप धर कर आगमन तथा 'सीता चरन चोंच' मारने की कथा है। सभी लोकों में घूमने के पश्चात् अन्ततः जयन्त को अनन्यशरण दया निधान राम की ही गोद में शरण लेनी पड़ती है।

तत्पश्चात् राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं। वहाँ वे श्री राम की स्तुति करते हैं तथा उनकी पत्नी अनसूया जी सीता जी को पातिव्रत धर्म, नारी धर्म, स्वैरिणी गति आदि का उपदेश देती हैं।

अत्रि से विदा माँगकर राम विराध वध करते हैं। मार्ग में ही शरभंग ऋषि से मिलन होता है। शरभंग को तुरंत गति प्राप्त होती है। राम अस्थि समूह देखकर जिज्ञासा करते हैं। राक्षसों द्वारा वध किये गये ऋषियों की अस्थियों का समूह देखते ही वे तुरत राक्षसों को मारने का संकल्प करते हैं।

इसके आगे चलने पर राम ने अपने अनन्य सेवक सुतीक्ष्ण की अटूट भक्ति का रसा-स्वादन कर उन्हें वरदानादि द्वारा संतुष्ट किया।

सुतीक्ष्ण की प्रार्थना करने पर राम अगस्त्य जी के आश्रम में पधारते हैं तथा उनसे मधुर समागम करते हैं। वहाँ से चलकर राम जटायु से मिलकर पंचवटी में निवास करने लगते हैं।

इस कथा के मध्य में तुलसी अपने परब्रह्म रूप राम को नहीं भूल सके हैं। पंचवटी निास के पश्चात् 'लक्ष्मण प्रति राम गीता' इसका ज्वलन्त उदाहरण है जिसमें राम ने लक्ष्मण से माया, जीव, ब्रह्म की व्याख्या करते हुये भक्ति योग का अति व्यापक रसप्लावित वर्णन कर भक्ति के साधनों का उल्लेख किया है।

पंचवटी में सर्वप्रमुख घटना राम शूर्पणखा संवाद है जिसका परिणाम यह होता है कि स्वैरिणी शूर्पणखा को कान नाक विहीन होना पड़ता है।

यह समाचार सुनकर खर ससैन्य राम के पास आता है तथा इस युद्ध में एकाकी राम की असंख्य निशाचरों में विजय होती है।

शूर्पणखा इन वृत्तान्तों की सूचना रावण को विलाप करती हुई देती है तथा राम-रूप-बल तथा सीता-सौन्दर्य का वर्णन करती है। एक बार तो राम का बल सुनकर रावण भी भयभीत हो उठता है परन्तु फिर वह आध्यात्मिक दृष्टि से अपने मोक्ष का अनुमान लगा कर अपनी कार्य सिद्धि हेतु मारीच के पास जाता है।

इधर राम के अनुरोध पर सीता 'अग्नि' में निवास कर जाती हैं। मारीच रावण को शिक्षा देता है, सचेत करता है, अन्तत: कोई सुरक्षा का उपाय न देखकर वह रघुनायक की ही शरण चला जाता है और कनक मृग का रूप धारण कर सीता को आकर्षित करता है। सीता उस विचित्र मृग को देखकर राम से उसे ले आने की प्रार्थना करती हैं उधर राम मृग वध करने जाते हैं परन्तु इधर लक्ष्मण भी सीता की कटूक्ति सुन राम के पास ही चल देते हैं। शून्य उटज देख रावण सीता हरण कर लेता है। मार्ग में रुदन करती हुई सीता को देख उनकी सुरक्षा हेतु जटायु रावण से युद्ध करता है। अन्तत: वह आहत होकर धराशायी हो जाता है और सीता अशोक वाटिका में राक्षसों से आक्रान्त हो प्रतिक्षण राम का स्मरण करती हैं।

इधर राम शून्य कुटी देख विलाप करने लगते हैं साथ ही सीतान्वेषण भी। इतने ही में आगे ही पृथ्वी पर रुधिरासिक्त जटायु आहत दशा में राम चरण की रेखाओं का ही ध्यान करता हुआ दिखाई पड़ता है। जटायु द्वारा दशानन का कुकृत्य राम को ज्ञात होता है। राम जटायु को परम गति देकर आगे बढ़ते हैं। कबन्ध राक्षस का संहार कर शबरी के आश्रम में पधारते हैं। शबरी का आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर, उनसे नवधा भक्ति के अमूल्य साधनों का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार शबरी 'सकल प्रकार भगति दृढ़' होने के कारण परम गति की अधिकारिणी बनकर योगाग्नि में अपने प्राणों की आहुति दे राम पद लीन हो जाती है।

तत्पश्चात् राम पुनः वियोगी की भाँति विलाप करने लगते हैं। समस्त प्रकृति में उन्हें पीड़ित कर्त्री काम सेना का दर्शन होने लगता है। तत्पश्चात् पम्प सरोवर का वर्णन है। वहीं राम के निकट नारद मुनि का आगमन होता है। साधु समागम के अन्तर्गत दास-रक्षा, माया रूपिणी नारी के दुःख, सज्जन-लक्षण आदि की चर्चा कर नारद जी ब्रह्मलोक को जाते हैं।

इस प्रकार रामायण की भाँति मानस में अरण्य-काण्ड की समाप्ति राम विलाप से न होकर नारद-संवाद की नैतिक एवं आध्यात्मिक वार्ता द्वारा हुई है।

तुलनात्मक समीक्षा

उपर्युक्त तालिका द्वारा दोनों काव्य ग्रन्थों की कथावस्तु की रूप-रेखा के ज्ञान के पश्चात् उनमें साम्य एवं भेद की ओर भी दृष्टि डालना अपेक्षित है।

वाल्मीकि रामायण में जयन्त की कथा का वर्णन अयोध्या कांड में किया गया है[1] जब कि मानस में अरण्य कांड के अन्तर्गत।[2] रामायण में किसी अन्य काक द्वारा सीता

१. वा० रा० २।९६।३८ से ५७।
२. मा० ३।१, ३।२।

को कष्ट पहुँचाने की कथा भी आती है[1] किन्तु गोस्वामी तुलसीदास उसे इन्द्र पुत्र जयंत की कथा का रूप देकर उसका 'सीता चरन चोंचहति' भागने का वृत्तान्त अरण्यकांड के आरम्भ में देते हैं। रामायण में जयंत की नीचता उसके सीता की छाती में चोंच मारने और उन्हें अपने चंगुलों द्वारा भी कष्ट पहुंचाने की घटना द्वारा दर्शाई गई है जो मानस में भिन्न प्रकार की है।[2]

'सीता चरण' में चोंच मारने का प्रसंग अन्य रामायणों में वर्णित है और मानस से साम्य रखता है जिनमें आनन्द रामायण[3] और अध्यात्म रामायण[4] उल्लेखनीय हैं।

जयन्त के इस कुकृत्य पर कुपित होकर राम ने उस पर 'सींक' का बाण ब्रह्म मंत्र से अभिमन्त्रित कर चलाया जिसे आता हुआ देख वह भयभीत होकर भागा।[5] नृसिह पुराण,[6] वाल्मीकि रामायण,[7] अध्यात्म रामायण[8] सभी में तृण का बाण जयन्त को दग्ध करता है। उस अभिमन्त्रित बाण से आतंकित जयंत इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक सर्वत्र गया परन्तु कोई भी उसे उस बाण की ज्वाला से मुक्त न कर सका। रामायण तथा मानस दोनों में इस कथा में पूर्ण साम्य है। अन्तर केवल उस बाण की परिणिति में है। रामायण[9] एवं अध्यात्म रामायण[10] में राम ने स्वयं जयन्त से कहा कि यह मेरा अमोघ अस्त्र है अतः तुम स्वयं उपाय बताओ। तब उसने अपना दाहिना नेत्र देकर अपने प्राणों की रक्षा की। मानस में इसकी अपेक्षाकृत स्वयं राम ने 'एक नयन करि' उसको छोड़कर अपनी कृपालुता का परिचय दिया है।[11]

---

१. वा० रा० २।९६।३४-४१।

२. मानस की राम कथा, द्वारा श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १२१।

३. 'ऐन्द्रिः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत्।
सीतांगुष्ठं मृदुं रक्तं विददारामिषाशया।' आ० रा० सारकाण्ड ६ सर्ग। ८६,८७

४. 'ऐन्द्रिः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत्।
मत्पादांगुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया॥' अ० रा० ५।३।५४।

५. मा० ३।१।१।

६. 'इषीकास्त्रं सचादाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमंत्रितम्।
काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोभ्यधावद्भयान्वितः।' मानस पीयूष, अर० कां०, पृष्ठ ३।

७. संदर्भ संस्तरादं गृहयं ब्रह्मणो स्त्रेण योजयेत्।
संदीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्।' वा० रा० ५।३८।

८. 'तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत्।
चिक्षेप लीलया रामो वायसो परिजज्वलत्।' अ० रा० ५।३।५७।

९. 'मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम्
ततस्तस्याक्षि काकस्य हि नस्तिस्म स दक्षिणम्
दत्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः।' वा० रा० ५।३८।३५।

१०. 'अमोघमेतदस्त्रं मे दत्वेकाक्षमितो व्रज।
सव्यं दत्वा गतः काकः।' अ० रा० ५।३।६०।

११. 'कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाँड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥' मा० ३।२। सो०।

रामायण में 'राम' ने दंडकारण्य में प्रवेश कर अनेक तपस्वी ऋषियों के आश्रमों को देखा। ऋषि वर्ग ने अप्रतिम सौन्दर्य तेज समन्वित राम, लक्ष्मण एवं यशस्विनी सीता का यथोचित आतिथ्य सत्कार किया।[1] मुनिवर्ग से आज्ञा लेकर राम वन में विचरण करने लगे। अत्यन्त भयानक जंगल में विराध नामक भीषणकाय राक्षस को देखा। राम तथा विराध में अत्यधिक संघर्ष हुआ और अंततः राम लक्ष्मण द्वारा उसका वध हुआ। इस प्रसंग का व्यापक चित्रण[2] रामायण में तीन सर्गों में किया गया है[3] जबकि मानस में केवल दो पंक्तियों में ही उक्त कथा का संकेत हैं।[4]

विराध वध प्रसंग के पूर्व मानस के इसी कांड में अत्रि-अनसूया संवाद भी है जिसका उल्लेख रामायण के अयोध्या काण्ड में किया जा चुका है।

विराध वध के पश्चात् राम शरभंग ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। रामायण में राम इन्द्र को शरभंग आश्रम में परस्पर संभाषण करते हुए पाते हैं। मानस में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं है क्योंकि मानस में इन्द्रादि देव सक्रिय नहीं चित्रित हुये हैं।

दोनों ग्रन्थों में[5] शरभंग ऋषि ने राम से नश्वर तनु त्याग करने की इच्छा प्रगट की है।

शरभंग ऋषि के दिवंगत हो जाने के अनन्तर विभिन्न प्रकार के तपस्वी राम के समीप आकर राम की स्तुति, प्रशंसा करते हैं। रामायण में स्वयं मुनिवर्ग राम को मुनियों के मृत शरीरों को दिखाते हैं और राम शरणागत होकर अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं।[4] जब कि मानस में अस्थि समूह देख राम स्वतः जिज्ञासा प्रकट करते हैं।[6] इस भेद का कारण राम का सर्वज्ञत्व प्रदर्शन ही है। उन्हें किसी के निर्देश की आवश्यकता नहीं। दोनों रामायणों में इन दानवी अत्याचारों से उत्तेजित राम निशाचर नाश की प्रतिज्ञा करते हैं।[7]

तत्पश्चात् सुतीक्ष्ण के आश्रम में राम का पदार्पण होता है। रामायण में राम को

---

१. वा० रा० ३।१।२६।२४।
२. वा० रा० ३।२ से ३।४ सर्ग तक।
३. 'मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता।।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा।।' मा० ३।६।६।७।
४. (१) 'एष पन्था नर व्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम्
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः।' वा० रा० ३।५।३७।
(२) 'तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।।'
मा० ३।७।६।
५. वा० रा० ३।६।१९,२०।
६. मा० ३।८।६।
७. (१) वा० रा० ३।६।२५।, वा० रा० ३।९।
(२) मा० ३।९।

प्रिय अतिथि[1] तथा मानस में करुणानिधान भगवान् मानकर सुतीक्ष्ण उनका स्वागत सत्कार करते हैं। रात्रि भर सुतीक्ष्ण के आश्रम में निवास कर प्रात: होते ही वन भ्रमणार्थ चल देते हैं।[2] मार्ग में सीता राम से अहिंसा का आग्रह करती है, निर्वैर राक्षसों के वध का समर्थन नहीं करतीं।[3] परन्तु राम, ऋषि परिपालनार्थ निशिचर वध की प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पुन: समर्थन करते हुए अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का ही परिचय देते हैं।[4] परन्तु मानस में सीता इस प्रकार का आग्रह नहीं करती हैं। वे पति की प्रतिज्ञा को ही सर्वस्व मानकर मौन स्वीकृति देती हैं।

रामायण में राम मांडकीर्ण मुनि द्वारा निर्मित पंचाप्सर नामक तालाब के निकट पहुँचते हैं। उनके आश्रम में कुछ समय तक रहकर विभिन्न ऋषियों के आश्रमों में दस वर्ष तक विहार करते हैं।[5] परन्तु मानस में अनेक मुनियों के आश्रमों में जाने का विवरण सुतीक्ष्ण मिलन से से पूर्व है।[6]

सुतीक्ष्ण से राम अगस्त्य के आश्रम का मार्ग पूछते हैं।[7] रामायण में वे पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम में आते हैं जब कि मानस में गुरु-भक्ति और प्रभु नैकट्य की लालसा से सुतीक्ष्ण स्वत: प्रथम बार साथ ही चल देते हैं।[8]

मार्ग में राम अगस्त्य का जीवन वृत्तान्त, इल्वल वातापि वध का उल्लेख करते हुये महर्षि के आश्रम में पहुँचते हैं। रामायण में अगस्त्य राम मिलन का रूप मानस से सर्वथा भिन्न है। रामायण के अगस्त्य में तपोनिष्ठ आचार्य रूप की मर्यादा का पालन किया गया है।[9] मानस अगस्त्य में भावावेश समन्वित भक्त रूप का निर्देशन है।[10]

रामायण में अगस्त्य ऋषि ने यथेष्ट स्वागत कर राम को वैष्णव धनुष, बाण, अक्षय-बाण वाले तरकस, सुवर्णभूषित तलवार आदि श्रेष्ठ आयुध समर्पित किये।[11]

मानस में निशिचर वध के प्रण पूर्ति के पथ को प्रशस्त करने वाले अगस्त्य ऋषि से राम 'मुनि द्रोही मारण मंत्र' पूछते हैं[12] और यह मौन रूप में मान लिया जाता है कि मुनि ने राम की इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार किया होगा परन्तु तुलसी ने राम के चरित्र में त्रुटि की संभावना कर उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।

---

१. वा० रा० ३।७।२४।
२. मा० ३।१०।
३. वा० रा० ३।९।२५।
४. वा० रा० ३।१०।१७,१८।
५. वा० रा० ३।११।२७।
६. मा० ३।९।
७. वा० रा० ३।११।३२।
८. मा० ३।११।३।
९. वा० रा० ३।१२।२१।
१०. मा० ३।११।९,१०।
११. वा० रा० ३।१२।३२ से ३७।
१२. मा० ३।१२।३।

'उत्तर के महापुरुष थे विश्वामित्र और दक्षिण के महापुरुष थे अगस्त्य जी । इन्होंने पंचवटी का निवास बताकर दूसरे घटना चक्र को तीव्रता से संचालित कर दिया । वह राक्षसों की बिहार भूमि थी ही । सूर्पणखा आई, खर दूषण वध हुआ, सीता हरण हुआ'''' इत्यादि ।'[१]

उपर्युक्त कथन से अगस्त्य द्वारा पंचवटी निवास का निर्देश ही 'मुनि द्रोही मारण मंत्र' है ।

इस प्रकार तुलसी के सन्त अहिंसावादी चित्रित किये गये हैं । वे रामायण के अगस्त्य की भाँति राम को अस्त्र शस्त्रादि की सहायता नहीं करते । उक्त प्रकार से मुनि की साधुता भी बनी रही मंत्र देना भी हो गया । सन्त किसी को वध करने को अपने मुख से नहीं कहते और पंचवटी का निवास स्वयं निशाचर वध का उपाय हो जायगा,[२] यह सोच कर सन्त अगस्त्य राम से कह उठे ।

'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ।।........
बास करहु तहं रघुकुल राया । कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ।।'[३]

पंचवटी की ओर प्रस्थान करते समय मार्ग में ही गृध्रराज जटायु से मिलन हुआ । मानस की अपेक्षाकृत रामायण में जटायु से राम ने अपना पूर्व वृत्तान्त विस्तार सहित सुनाकर[४] राजा दशरथ से अपनी घनिष्ठता का परिचय दिया ।[५] मानसकार ने केवल संकेत मात्र किया है ।[६]

रामायण में लक्ष्मण ने बड़ी सुरम्य पर्णशाला का अकेले ही निर्माण कर पुष्पबलि देकर राम की सेवा का परिचय दिया ।[७]

पंचवटी में स्वस्थ चित्त से निवास करने के बाद राम और लक्ष्मण रामायण में भौतिक चर्चा करते हैं, मानस में आध्यात्मिक, क्योंकि रामायण में लक्ष्मण कैकेयी को दोष दृष्टि से देखते हैं[८] परन्तु भ्रातृवत्सल राम उस दोष दर्शन का परिहार कर भरत गुण कथन के लिये आग्रह करते हैं ।[९] इसकी अपेक्षाकृत भक्ति प्रमुख ग्रन्थकार तुलसी ने ऐसे शान्त और रमणीक गोदावरी तट पर ईश्वर, जीव मायादि का दार्शनिक विवेचन कराना ही विशेष

---

१. मानस में राम कथा, द्वारा श्री बलदेव प्रसाद मित्र, पृष्ठ २६।
२. मानस पीयूष, अर०कां०, पृष्ठ १११।
३. मा० ३।१२।१५,१७।
४. वा० रा० ३।१४।६ से ३३ तक ।
५. वा० रा० ३।१४।३५।
६. 'गीधराज से भेंट भइ बहु विधि प्रीति बढ़ाइ । मा० ३।१३।
७. वा० रा० ३।१५।२० से २५ तक ।
८. वा० रा० ३।१६।३५।
९. वा० रा० ३।१६।३७।

उपयुक्त समझा ।[1] उक्त आध्यात्मिक गोष्ठी का सुदृढ़ आधार अध्यात्म रामायण में दर्शनीय है ।[2]

इसके अनन्तर राम कथा के महत्वपूर्ण घटनाक्रम का सूत्रपात हुआ । यह क्षेत्र राक्षसों के प्रभाव क्षेत्र में था । रावण ने अपने साम्राज्य के संरक्षण के लिये १४,००० राक्षसों की सैना इस प्रदेश में नियत कर रक्खी थी जो खर दूषण के नायकत्व में थी । उनकी स्वैरिणी बहन सूर्पणखा ने पंचवटी में अधिष्ठित राम के आश्रम में आकर अपनी कामुकता का परिचय दिया जिसके परिणाम स्वरूप स्त्री की लज्जा हीनता के दंड स्वरूप उसे 'नाक कान से हीन होना पड़ा' । दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि रामायण की सूर्पणखा अपने स्वाभाविक दुर्मुखी, महोदरी, विरूपावेश में आती है[3] जब कि मानस में रुचिर रूप धारण कर[4] आती है और बाद में वास्तविक भयंकर रूप प्रगट करती है । इस प्रकार मानस के इस प्रसंग में नाटकीयता विशेष है ।

शूर्पणखा विरूप होकर खर नाम सेनापति के पास पहुँचकर समस्त घटना का उल्लेख करती 'हुई आक्रोश करती है । परिणामत: खर दूषण ससैन्य स्वाहा हो जाते हैं । इस घटना में अन्तर केवल यही है कि रामायण में प्रथमतः खर के भेजे हुये १४ राक्षसों का वध राम करते हैं[5] तत्पश्चात् खर, दूषण तथा त्रिशिरा आदि के सहित आए हुए चतुर्दश सहस्त्र निशाचरों का वध करते हैं, जिसका विस्तृत रोमाँचकारी युद्ध का आतंकमय चित्रण आदि कवि ने कई सर्गो में किया है ।[6] मानस में इसकी अपेक्षाकृत राम की माधुर्य लीला का चित्रण विशेष होने के कारण एक साथ ही सबके साथ राम का युद्ध वर्णन किया गया है ।[7] रामायण में १४ राक्षसों के मारने के पश्चात् खर ने सीता को गुफा में ले जाने का आदेश लक्ष्मण को दिया ।[8] मानस में प्रथम बार ही शत्रु सैन्य आता हुआ देखकर ही पूर्वोक्त आज्ञा लक्ष्मण को दे दी ।[9]

इस युद्ध वर्णन के अन्तर्गत एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि मानस के खरदूषण

---

१. मा० ३।१३।५ से ८।, मा० ३।१४, ३।१५, ३।१६। दोहे ।

२. 'ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ।।
ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात् । अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ।।

सैव माया तयैवासौ संसार: परिकल्प्यते ।
रूपे द्वे निश्चिते पूर्वं मायाया: कुलनन्दन ।। अ०रा० ३।४।२० से २२ तथा २२ से ४४।

३. वा० रा० ३।१७।६ से ११।

४. मा ३।१६।७।

५. वा० रा० ३।२०।२२।

६. वा० रा० ३।२५ से ३।३० सर्ग तक ।

७. मा० ३।१८ से ३।२० तक ।

८. वा० रा० ३।२४।१२,१३ ।

९. मा० ३।१७।१० ।

राम के अप्रतिम सौन्दर्य से आकर्षित होकर अपने दूतों को संदेश लेकर राम के पास भेजते हैं तथा वे राम वध में संकोच करते हैं।[१] धन्य है तुलसी की राममयता। राक्षस वर्ग तक उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रहते। इस दूत प्रेषण संवाद का वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में नितान्त अभाव है।

दोनों ग्रन्थों में युद्ध विजयी राम का सुर नर मुनि सबने अभिनन्दन किया है।[२]

रामायण में जनस्थान में एकमात्र अवशिष्ट अकम्पन नामक राक्षस ने रावण को जाकर इस युद्ध के कुसमाचार की सूचना दी।[३] यह सुनकर रावण मारीच के पास मंत्रणा के लिए गया परन्तु उसके द्वारा उपदिष्ट होकर घर लौट आया।[४] पर फिर शूर्पणखा ने सम्पूर्ण समाचार सुनाकर रावण की भर्त्सना की।[५] रावण पुन: मारीच के पास गया और उसने यद्यपि रावण को राज्योचित मंत्रणा दी तथापि रावण ने उस पर ध्यान न दिया। रामायण में रावण मारीच संवाद अत्यधिक विस्तार से वर्णित है।[६] इसकी अपेक्षाकृत मानस में 'अकम्पन' का कोई वृत्तान्त नहीं है। केवल एक बार ही रावण मारीच के समीप गया और वह 'कपट मृग' बनने के लिये विवस हो रघुनायक की शरण चला गया।[७] ऐसा ही भाव हनुमन्नाटक में भी है।[८]

इसी प्रसंग के पूर्व मानस में एक विशेष अन्तर यह है कि गोस्वामी जी की मर्यादा रक्षा की भावना का प्रतीक सीता जी का एकान्त में अग्नि प्रवेश प्रसंग है।[९] जिसका संकेत वाल्मीकि रामायण में कहीं नहीं है। अध्यात्म रामायण में मायामयी सीता के वृत्तान्त में इसका आधार मिलता है जिसमें राम स्वयं रावण तथा मारीच का षड्यन्त्र सीता से बता कर, सीता को अग्नि प्रवेश की आज्ञा देते हैं और सीता अपनी प्रतिमूर्ति छोड़कर अग्नि में अन्तर्निहित हो जाती हैं।[१०] परन्तु मानस में तुलसी ने उक्त प्रसंग गुप्त रखकर काव्य में

---

१. 'हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहि असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरतु निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। '..........'। मा० ३।१८।४ से ८।

२. (१) वा० रा० ३।३०।२९ से ३७। (२) मा० ३।२०।

३. वा० रा० ३।३१।१०, ११।

४. वा० रा० ३।३१।४१ से ५०।

५. वा० रा० ३।३२।२ से २३ तक।

६. वा० रा० ३।३६ से ३।४२ सर्ग तक।

७. मा० ३।२५।५।

८. हनुमन्नाटक ३।२४।

९. मा० ३।२३।२ से ४।

१०. अ० रा० ३।७।१ से ४।

रहस्यमयता और नाटकीयता का समावेश किया है। सीता के अग्नि प्रवेश का वृत्तान्त श्रीमद्देवी भागवतम्,[१] द्विपाद् रामायण,[२] कूर्म्म पुराण[३] आदि में भी मिलता है।

रावण का मोक्ष की इच्छा से राम से हठात् वैर करना[४] भी वाल्मीकि रामायण में नहीं है। उक्त अन्तर का कारण यह है कि वाल्मीकि ने रावण का यथार्थ चित्रण किया है उसे राम भक्त चित्रित नहीं किया है, परन्तु तुलसी ने लगभग सभी पात्रों को राम भक्ति से आवेष्टित किया है। तुलसी के पूर्व राम भक्ति का सम्यक् विकास हो चुका था। राम तापनीय उपनिषद् में सर्वप्रथम रावण की इस प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है।[५] रावण द्वारा निज मोक्ष प्राप्त्यर्थ सीताहरण करने का उल्लेख अन्य अर्वाचीन राम कथाओं में भी किया गया है।[६]

कपट मृग मारीच को सर्वप्रथम रामायण में सीता ने देखा और लक्ष्मण ने स्पष्टतः उसे मारीच नामक राक्षस ही समझा[७] परन्तु मानस में उसे गुप्त ही रक्खा। रामायण[८] तथा मानस[९] दोनों में ही एक समान राम और मारीच की मृगया लीला हुई। परन्तु अन्त समय रामायण में उसने 'हा सीते, हा लक्ष्मण' पुकारा जब कि मानस में सीता का नाम न लेकर लक्ष्मण का नाम प्रगट में पुकार कर अन्त में उसने सस्नेह राम का स्मरण कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त की।[१०] जिसे देख देवगण पुष्प वर्षा कर राम की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।[११] परन्तु वाल्मीकि रामायण में तो राम का मानव स्वरूप वर्णित है, देव रूप नहीं अतएव पुष्प वर्षा का प्रसंग ही नहीं उठता। राम मारीच की कपट ध्वनि सुनते ही आतुर हो उठे, अनिष्ट भावी की आशंका से सशंकित राम भयभीत होकर चले, परन्तु यहाँ सीता ने लक्ष्मण को मर्म वचनों से आहत कर कुटी शून्य छोड़ जाने को विवश कर

---

१. श्रीमद्देवी, स्कंध ३, अध्याय २९।

२. द्वि० रा० ३।१३।

३. कू० पु० ३।७।

४. 'सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊं। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ एहा॥' मा० ३।२२।३ से ५।

५. 'स्व निवृत्यर्थम्' रामतापनीयोपनिषद् ४।१७।

६. (१) अध्यात्म रामायण ३।६।६०, ७।४।१०।
(२) आनन्द रामायण १।११।१४४।
(३) पद्म पुराण, उत्तर खंड, २५५, २६९ अध्याय।

७. वा० रा० ३।४३।५।

८. वा० रा० ३।४४।३ से ७।

९. मा० ३।२६।११, १२।

१०. 'लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुं रामा॥''''
अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना॥'
मा० ३।२६।१४, १६।

११. मा० ३।२७।

ही दिया। इन तीक्ष्ण व्यंग वाणों का रामायण में विस्तृत वर्णन है[1] मानस में संकेतमात्र है।[2] इस भेद का भी प्रमुख कारण कवि का उच्चादर्श और मर्यादा एवं लज्जा की स्थापना है।

'कवि उन शब्दों को लेखिनी द्वारा अंकित न करके दिखलाता है कि सती का आदर्श उसकी दृष्टि में कितना ऊँचा है। उस आदर्श के साथ ये शब्द शोभा नहीं पाते।'[3]

यह शून्य स्थान देख कर दोनों ग्रन्थों में रावण का यती के वेष में सीता के समीप आना वर्णित हुआ है। रामायण में सीता रावण संवाद विस्तार पूर्वक वर्णित हैं जिसमें रावण ने सीता के रूप की प्रशंसा की,[4] सीता ने प्रसन्न होकर रावण से भोजन करने का आग्रह किया तथा उसे ब्राह्मण समझ अपना जीवन वृत्तान्त भी सुनाया।[5] सीता द्वारा उसका परिचय पूँछने पर जब रावण ने आत्म श्लाघा सहित अपना वास्तविक परिचय दिया[6] तब सीता राम की रावण से तुलना करती हुई उसे नितान्त तुच्छ एवं घृणित बताने लगीं। सीता रावण में वाद-विवाद बहुत देर तक होता रहा जिनमें सीता की उत्तेजनापूर्ण ललकार दर्शनीय एवं निर्भीकता की प्रतीक है।[7] रामायण के इन सब विशद प्रसंगों का मानस में नितान्त अभाव है। केवल

'नाना विधि करि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥'[8]

कहकर तुलसी ने इन प्रसंगों की ओर अंगुलि निर्देश मात्र किया हैं।

रावण ने सीताहरण किस प्रकार किया इस विषय में वाल्मीकि ने तो स्पष्टतः चित्रण किया है[9] परन्तु गोस्वामी जी जगज्जननी की मर्यादा भंग होने के भय से 'लीन्हिसि रथ बैठाइ' कहकर ही मौन हो गये हैं। इतना ही नहीं रामायण की अपेक्षाकृत मानस के रावण में सीता के प्रति पूज्य बुद्धि का संचार कर दिया है।

'मन महुं चरन बंदि सुख माना।'[10]

सीता आर्तनाद करने लगीं। उस आर्तध्वनि को सुनकर जटायु ने रावण से द्वन्द्व

---

१. (१) 'सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे॥' वा० रा० ३।४५।६ से ८।
(२) वा० रा० ३।४५।२१ से २७ तक।

२. 'मरम वचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥'
मा० ३।२७।५।

३. मानस पीयूष, अर० कां०, पृष्ठ २५७।

४. वा० रा० ३।४६।१६ से २३ तक।

५. वा० रा० ३।४७।३ से २३ तक।

६. वा० रा० ३।४७।२६ से ३१ तक।

७. वा० रा० ३।४७।३३ से ४८ तक।

८. मा० ३।२७।११।

९. वा० रा० ३।४९।१६,१७।

१०. मा० ३।२७।१६।

युद्ध किया जिसका मानस की अपेक्षा रामायण में विस्तृत वर्णन है।[१] सीताहरण के समय उस समय की दिग्दिगन्त व्यापिनी करुणा रामायण में दर्शनीय है,[२] समस्त वातावरण उससे अभिभूत हो उठा। मानस में इस प्रकार का वातावरण चित्रित नहीं हुआ है अपितु इसका केवल संकेत मात्र किया गया है।[३] समस्त प्रकृति सीता के साथ आर्तनाद कर उठी मानों निर्जीव से सजीव हो उठी। रामायण में रावण द्वारा हरण किये जाने के पश्चात् सीता के केश प्रसाधन स्वरूप पुष्प बिखरने लगे, सीता के अग्नि सदृश आभूषण शब्दायमान होकर गिरने लगे।[४] सीता रावण की नाना प्रकार से भर्त्सना करती हुई विलाप करने लगीं।[५]

सीता ने 'तिनके का सहारा' रूप पर्वत शिखर पर बैठे हुए बानरों को देख अपने वस्त्राभूषण फेंक दिये।[६]

मानस में उपर्युक्त वर्णनों का अभाव है। यहाँ पर संक्षिप्त शैली का आश्रय लेकर गोस्वामी जी ने केवल दो पंक्तियों में सबका समाहार कर दिया है।

'करति विलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता।।
गिरि पर बैठै कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी।।[७]

यह गोस्वामी जी की मौलिकता है कि वे सीता जी से 'हरि नाम' कहलाना यहाँ भी नहीं भूले हैं। प्रत्येक स्थिति में भगवन्नाम स्मरण कराना भक्त कवि की विशेषता है।

रामायण में रावण पहले सीता जी को अन्तःपुर में ले गया और वहीं पर उनकी समुचित व्यवस्था की।[८] तदनन्तर महाबली आठ राक्षसों को जनस्थान में गुप्तचर के रूप में भेज राम के कार्यों के निरीक्षणार्थ तथा राम के वधार्थ नियुक्त कर दिया।[९] इस प्रसंग का मानस में सर्वथा अभाव है।

तदनन्तर रामायण में रावण सीता को देवगृहोपम गृह में ले गया तथा अनेक सुवर्ण मंडित रत्नखचित भवनों, अट्टालिकाओं, बावलियों, सरों को दिखाता हुआ[१०] आत्मश्लाघा कर वह कामान्ध, सीता को नाना प्रलोभन देकर वशीभूत करने की चेष्टा करने लगा।[११] परन्तु विदेहतनया इन सब ऐश्वर्य प्रकाश स्तम्भों से पराङ्मुख ही रहकर रावण की भर्त्सना करती रहीं, पातिव्रत धर्म के उच्च सोपान पर स्थित सीता राम की गुण गौरव गाथा गाती

---

१. वा० रा० ३।५०।४ से २९। वा० रा० ३।५१।१ से ४३।
२. वा० रा० ३।५२।९ से २२। वा० रा० ३।५०।३४ से ४०।
३. 'सीता के विलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी।।' मा० ३।२८।६।
४. वा० रा० ३।५२।३२।
५. व० रा० ३।५३।३ से ३७।
६. वा० रा०० ३।५४।२,३।
७. मा० ३।२८।२४,२५।
८. वा० रा० ३।५४।११ से १६।
९. वा० रा० ३।५४।२० से २९।
१०. वा० रा० ३।५४।६ से १२।
११. वा० रा० ३।५५।१४ से २६।

रहीं।[१] हार कर रावण, सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के मध्य रखने के लिये विवश हो उठा।[२] इन सब विस्तृत वर्णनों के स्थान पर मानस में केवल एक दोहे में ही इन सबका संक्षिप्त संकेत है।

'हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब अशोक पादप तर राखिसि जतन कराइ।।'[३]

रामायण के एक प्रक्षिप्त काण्ड में इन्द्र का सीता के लिये हवि लाना भी वर्णित है जिसको खाने से दस हजार वर्ष तक भूख प्यास न लग सकती थी।[४]

तदनन्तर राम कथा का प्रसंग आरम्भ होता है। वे मार्ग में ही लक्ष्मण से मिलकर अपनी शंकाकुलता प्रगट करते हैं तथा लक्ष्मण को दोष का भागी मानते हैं।[५] रामायण में मानस की अपेक्षाकृत राम बिना कुटी तक पहुँचे ही विलाप करने लगते हैं।[६]

आश्रम को सीता शून्य देख उनकी करुणा एवं वेदना चरम सीमा का अतिक्रमण कर बैठी और राम आर्तनाद करने लगे, उन्मादपूर्ण प्रलाप करने लगे।[७] प्रकृति के मिस सीता के अंगों के दर्शन करने लगे।[८] प्रकृति के कण-कण से सीता का पता पूंछने लगे।[९] इस प्रकार सभी प्रकार से हतप्रभ एवं निश्चेष्ट से राम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे। लक्ष्मण उन्हें भरसक ढाढ़स देने लगे। गोदावरी तट पर अन्वेषण करते समय राम ने सीता की वेणी से गिरे हुए पुष्पों को देखा।[१०]

रामायण में वर्णित राम के उन्मादपूर्ण प्रलाप की अपेक्षाकृत गोस्वामी जी ने मानस में अत्यन्त संक्षिप्तोल्लेख किया है। इस प्रकार अपने इष्टदेव अलौकिक ब्रह्म रूप राम का लौकिक लीलाओं का सांकेतिक दिग्दर्शन मात्र किया है क्योंकि तुलसी ने राम का स्वरूप 'पूरन काम राम सुख रासी'[११] वर्णित किया है। अतएव वे विरही राम की लीलाओं का भी स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण न करके यही कहते हैं।

'एहि विधि खोजत विलपत स्वामी। मनहु महा विरही अति कामी।।'[१२]

अतएव तुलसी की वृत्ति अपने अज अविनाशी ब्रह्म राम के विरह चित्रण में नहीं रमी। यही कारण है कि रामायण में राम का विलाप अत्यन्त सजीव, मार्मिक एवं

---

१. वा० रा० ३।५६।२ से २२।
२. वा० रा० ३।५६।३२।
३. मा० ३।२९।क।
४. वा० रा० ३।५७।
५. वा० रा० ३।५८।१८। वा० रा० ३।६०।२३,२४।
६. वा० रा० ४।५९।२ से १७।
७. वा० रा० ३।६१।१२।
८. वा० रा० ३।६१।१३ से २०।
९. वा० रा० ३।६१।२१ से २७।
१०. वा० रा० ३।६५।२५।
११. मा० ३।२९।१७।
१२. मा० ३।२९।१६।

स्वाभाविक रूप में वर्णित हुआ है जबकि मानस में लीला मात्र वर्णित करना ही तुलसी का लक्ष्य था।

इतना ही नहीं वाल्मीकि ने तेजस्वी राम की विक्षिप्त दशा का चित्रण राम क्रोध के प्रदर्शन द्वारा अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया है। सीता विरह से प्रताड़ित जड़ प्रकृति को भस्मावशेष करने के हेतु राम हुंकार उठे। जब पर्वत, नदी, जड़, चेतन किसी ने सीता का पता न बतलाया तो राम सक्रुद्ध हो विश्व का संहार करने को उद्यत हो उठे।[1] लक्ष्मण ने यथोचित शान्त करने का प्रयत्न किया।[2]

'भावार्थ' रामायण में राम-क्षोभ-प्रदर्शन का विशेष विस्तार है। मानस में नितान्त अभाव है।

वाल्मीकि रामायण में सीतान्वेषण करते समय राम जटायु को सीता को भक्षण कर जाने वाला राक्षस समझ कर उसके वध के लिये सन्नद्ध हो उठे[3] जब कि मानस में भगवान् राम ने जटायु पर अपना दयापूर्ण कर स्पर्श द्वारा उसे समस्त पीड़ा से रहित कर दिया।[4]

राम जटायु संवाद रामायण में भौतिक स्तर पर है, मानस में आध्यात्मिक स्तर पर है। परन्तु दोनों में ही जटायु परमगति का अधिकारी हुआ।[5] दोनों में ही राम ने उसका और्ध्वदैहिक संस्कार पितृवत् किया।[6]

रामायण में क्रौञ्चारण्य से बाहर निकल कर राम, लक्ष्मण मतंगाश्रम की ओर बढ़े। वहाँ एक घोरान्धकारमयी गुफा के समीप अयोमुखी नामक वीभत्स एवं भयानक रूप वाली राक्षसी को देखा और उसने लक्ष्मण से कामेच्छा प्रगट की परन्तु लक्ष्मण ने सूर्पणखा की भाँति उसे भी अंग भंग कर दिया।[7]

इस कथा का भी मानस में अभाव है। भीषण वन पर्यटन में ही कबन्ध जैसे वीभत्स रूप धारी ने अपने भुजा पाश में दोनों को जकड़ लिया परन्तु दोनों ने क्रमशः उसकी दक्षिण एवं वाम भुजाओं को काट, मुक्ति प्राप्त की। कबन्ध ने भी शाप से मुक्ति पाई। दोनों ग्रन्थों के शाप में मतभेद है।

---

१. **वा० रा०** ३।६५।५६ **से** ७६ **तक**।
२. **वा० रा०** ३।६७।
३. **वा० रा०** ३।६८।१२।
४. **मा०** ३।३०।
५. (१) **वा० रा०** ३।६९।३७।
   (२) **मा०** ३।३२।२।
६. (१) **वा० रा०** ३।६९।३१ **से** ३६।
   (२) **मा०** ३।३२।
७. **वा० रा०** ३।७०।११ **से** १७।

अध्यात्म रामायण में कबन्ध को अष्टावक्र द्वारा शाप देने का वृतान्त वर्णित है,[१] रामायण में स्थूल शिरा ऋषि का[२] तथा मानस में दुर्वासा का[३] शाप वर्णित है।

शाप से मुक्त होकर महातेजस्वी कबन्ध ने राम को सुग्रीव से मैत्री करने की सम्मति दी परन्तु मानस में शबरी ने पम्पासर जाने का परामर्श दिया जहाँ सुग्रीव से मैत्री होने की सम्भावना पूर्व ही प्रगट की।[४]

कबन्ध द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर राम आगे बढ़े और पुष्करिणी पम्पा के पश्चिम तट पर शबरी के रमणीय आश्रम में पहुँच गये। मानस में रामायण की ही भाँति मतंग ऋषि के पूर्व कथन का स्मरण किया[५] जिनका रामायण में स्पष्ट उल्लेख है।[६]

रामायण में शबरी प्रसंग भी विस्तार के साथ दिया गया है[७] और उसमें शबरी द्वारा कहा गया अपना वृत्तान्त भी सम्मिलित है। किन्तु मानस की शबरी राम एवं लक्ष्मण से भली भाँति परिचित प्रतीत होती है और वह अपने दैन्य भाव का प्रदर्शन कर राम से नवधा भक्ति का वर्णन सुनती है। रामायण के अनुसार वह अन्त में जलती हुई आग के मध्य कूद पड़ती है और फिर अपने सुन्दर ज्वलंत शरीर में बाहर निकल कर स्वर्ग की ओर प्रयाण करती है किन्तु मानस में उसके विषय में केवल इतना ही कहा गया है।

'तजि जोग पावक देह हरि पद लीन मह जहं नहिं फिरे।।'[८]

रामायण का शबरी का प्रसंग मानस से भिन्न इस प्रकार है कि रामायण में शबरी कर्म-कुशल तपस्विनी के रूप में चित्रित हुई है।[९] वह योगियों की भाँति आचरण करती है जब कि मानस में कवि ने शबरी का चित्रण अपनी भक्ति भावना से ही समन्वित किया है। उसके अनुभाव उसके भाव विभोर रूप का चित्रण इस प्रकार करते हैं।

'स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।'[१०]

---

१. अ० रा० ३।७१।५।
२. वा० रा० ३।७२।४, ५।
३. मा० ३।३२।७।
४. मा० ३।३५।११।
५. 'मुनि के वचन समुझि जियं भाए।' मा० ३।३३।६।
६. वा० रा० ३।७५।१५,१६।
७. वा० रा० ३।७५।५ से ३५।
८. मा० ३।३५। छंद, द्वितीय पंक्ति।
९. 'तामुवाच ततो रामः श्रमणीं शंसितव्रताम्
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता।' वा० रा० ३।७५।७ से १० तक।
१०. मा० ३।३३।८,९।

मतंगाश्रम का निरीक्षण कर राम पम्पा-तट पर आए जो कि प्रकृति की पूर्ण श्री से सम्पन्न था ।[१]

मानस में राम उस वन में शोभा को देख पुन: क्षुभित हो उठे । उन्हें समस्त वन में काम सेना परिलक्षित होने लगी[२] जिसका आधार हम हनुमन्नाटक में पाते हैं,[३] वाल्मीकि रामायण में नहीं ।

मानस में पम्पा सरोवर का वर्णन बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही है ।[४] तत्पश्चात् राम-नारद संवाद का आधार हमें 'देवी भागवत्' में मिलता है ।

'आजगाम तदाकाशान्नारदो भगवानृषि:
रणयन्महतीं वीणां स्वर ग्राम विभूषिताम् ।'[५]

इससे भी अधिक पूर्ण संवाद का प्रतिरूप हमें 'महारामायण' में मिलता है ।[६]

मानस में वर्णित सभी संवाद 'राम नाम' के अधिक होने के लिये नारद को वरदान,[७] दास की रक्षा करने का वर्णन[८], मायारूपिणी स्त्री का दु:ख देना,[९] सज्जन लक्षण, राम कथित साधु गुण,[१०] नारद मुनि का ब्रह्मलोक गमन,[११] तुलसी द्वारा राम का भजन एवं सत्संग करने का आदेशादि[१२] का आधार महारामायण ही है । भक्त तुलसी के इस कांड का उपसंहार भी भक्तिमय[१३] ही है ।

रामायण में अरण्यकांड केवल तथा निर्वाह को ही अग्रसारित करता है जबकि मानस के अरण्य कांड में तुलसी के उपदेशात्मक स्थल भी स्थान स्थान पर हैं । केवल इसी कांड में तुलसी ने माया, ज्ञान, वैराग्य, जीव, ईश्वर और भक्ति का विवेचन एक साथ किया है । विशेषत: माया और उसके विनाश में सहायक सद्‌गुरु की चर्चा इस कांड में विशेष रूपेण की है । यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो केवल ४६ दोहों में ही गोस्वामी जी १६ स्थानों पर अपनी उपदेशात्मिका प्रवृत्ति का परिचय देते हैं । इन स्थलों में भी विशेषता यह है कि सभी स्थानों में सीता या अन्य नारी से सम्बन्धित उपदेश दिये गये हैं, जिनसे विशेष उल्लेखनीय प्रसंग निम्नांकित हैं ।

---

१. वा० रा० ३।७६।१५ से २२।
२. मा० ३।३६। से ३।३८ तक ।
३. हनुमन्नाटक ।
४. मा० ३।३८ से ३।४० ।
५. रा० टी०, देवी भागवत्, अर० कां०, पृष्ठ ८९ ।
६. रा० टी०, महा रामायण, अर० कां०, पृष्ठ ९०,९१ ।
७. मा० ३।४२ ।
८. मा० ३।४२।५ से ८।
९. मा० ३।४३, ३।४४।
१०. मा० ३।४४।६ से ३।४५।८।
११. मा० ३।४५। छन्द, तृतीय पंक्ति ।
१२. मा० ३।४६। द्वितीय दोहा ।
१३. मा० ३।४६। प्रथम दोहा ।

नारद जयन्त को सीता के चरणों में चोंच मारने पर उपदेश देते हैं, अनसूया सीता को नारी धर्म का उपदेश देती है, राम लक्ष्मण से मायादि का उल्लेख करते हैं, मारीच रावण को सीता के सम्बन्ध में उपदेश देता है, राम शबरी से नवधा-भक्ति का विवरण देते हैं, राम देवर्षि नारद को 'नारि' के सम्बन्ध में उपदेश देते हैं तथा अन्ततः मानसकार व्यक्तित्व-निरूपण शैली का निर्वाह करते हुये अपने को भी नारि के सम्बन्ध में सचेत करते हैं तथा उचित साधन का भी आदेश देते हैं।

'दीप शिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।।'[1]

किष्किन्धा कांड

सीता हरण के पश्चात् घटना-क्रम की दृष्टि से यह कांड अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इस कांड में श्रीरामचन्द्र ने एक दक्ष राजनीतिज्ञ की भाँति समस्त विचारों को सीतोद्धार पर केन्द्रित करके सुग्रीव मैत्री एवं बालि वध इन दो प्रमुख घटनाओं का विभिन्न दृष्टिकोण से प्रतिष्ठापन इन दोनों ग्रन्थों में किया गया है। रामायण में राजनीतिक पक्ष प्रधान है परन्तु मानस में आध्यात्मिक एवं नैतिक मिश्रित पक्ष की प्रधानता है।

वाल्मीकि रामायण में प्रमुख घटनाओं का विवरण इस प्रकार है :—

पंपासर में राम की विरह व्यथा उद्दीप्त होती है। सुग्रीव राम लक्ष्मण को देखकर बालि-भय से चिन्ताक्रान्त होते हैं। हनुमान भिक्षुक वेश में मिलने आते हैं और अपनी वाणी द्वारा योग्यता प्रदर्शित करते हैं। परिचय प्राप्त होने पर दोनों को हनुमान सुग्रीव के पास लाकर अग्नि को साक्षी बना कर राम तथा सुग्रीव की मित्रता करा देते हैं। सुग्रीव सीता द्वारा फेंके हुए आभूषण एवं वस्त्र राम को दिखाते हैं। राम की मित्रता से सुग्रीव को प्रसन्नता होती है और राम सुग्रीव को बालि-वध का आश्वासन देते हैं। राम स्वयं भी सुग्रीव से सीतान्वेषण की इच्छा प्रगट करते हैं। सुग्रीव बालि की शक्ति का वर्णन कर राम की शक्ति के प्रति आशंका प्रकट करता है। राम दुंदुभि अस्थि कंकाल फेंक कर तथा सात ताल तरु बेध कर आश्वासन देते हैं। सुग्रीव राम से बालि के पूर्व वैर का वृत्तान्त सुना कर राम का आश्वासन पाकर युद्ध के लिये जाता है परन्तु प्रथम बार बालि सुग्रीव का पराभव करता है। सुग्रीव को हताश देख राम उसके गले में माला डालकर पुनः युद्धार्थ भेजते हैं तथा स्वयं वृक्ष की ओट में खड़े रहते हैं। सुग्रीव का द्वितीय बार युद्ध का आह्वान सुन बालि-पत्नी तारा सशंकित हो बालि को युद्ध में जाने से मना करती है परन्तु बालि तारा के परामर्श पर ध्यान न देकर युद्धस्थल में आता है और बाण से धराशायी हो जाता है। बालि राम को छिपकर बाण मारने की कटु आलोचना करता है परन्तु राम उसका नीतिपूर्ण यथोचित उत्तर भी सन्तोषजनक ही देते हैं जिसे सुन बालि राम के प्रति क्षमा-याचक भी बन जाता है।

बालि वध सुनकर तारा अत्यधिक विलाप करती है। सुग्रीव भी बन्धु वध देख शोकाकुल हो उठता है और राम उसे सान्त्वना देते हैं। तदनन्तर बालि के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् सुग्रीव को राज्याभिषेक तथा अंगद का यौवराज्याभिषेक सम्पन्न होता है।

---

१. मा० ३।४६।ख।

राम माल्यवान पर्वत पर निवास करते हैं तथा विरह वेदना से उत्तप्त होने के कारण वर्षा-वर्णन करते हुए विलाप करते हैं। हनुमान की प्रेरणा से विषय-मग्न सुग्रीव भी वानर वीरों को एकत्रित कर सीतान्वेषण की आज्ञा प्रदान करता है। परन्तु राम शरद् ऋतु वर्णन करते हुए सुग्रीव को निज कार्य से उदासीन देख प्रचंड रोष प्रगट करते हैं। लक्ष्मण भी उत्तेजित हो सुग्रीव को सचेत करने चल देते हैं। आवेशयुक्त लक्ष्मण को आता हुआ जान कर हनुमान सुग्रीव के पास यह सूचना बड़ी आशंका के साथ भेजते हैं। व्यवहार-कुशल सुग्रीव तारा को लक्ष्मण के पास भेजते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव के प्रतिज्ञा पालन का आदेश देते हैं और तारा लक्ष्मण का क्रोध शान्त करती है। सुग्रीव लक्ष्मण से मिलते हैं और वानर वीरों को एकत्रित कर सुग्रीव राम के पास जाते हैं।

वानर सेना का निरीक्षण कर सुग्रीव सीता के शोध की योजना बनाकर वानरों को अपने कुशल भौगोलिक ज्ञान-बल से विभिन्न दिशाओं की ओर भेजते हैं वानर सीता का सर्वत्र अन्वेषण करते हुए विभिन्न अद्भुत स्थानों का अवलोकन करते हैं जिनमें मेरुसावर्णि की तपस्विनी कन्या स्वयं प्रभा का आश्रम उल्लेखनीय है।

सीता-शोध न लगने के कारण सभी वानर हताश होकर मरणान्त तक वहाँ रहने की ठान लेते हैं। अंगद सुग्रीव के प्रति अपने संशयात्मक भावों को प्रगट करता है।

वहीं पर वानरों की संपाती से भेंट होती है और परस्पर संभाषण भी होता है। संपाती अपने भाई जटायु का वृत्तान्त सुन शोक प्रगट कर, श्रद्धांजलि अर्पित कर वानरों को अपनी दूरगामिनी दृष्टि द्वारा सीता का पता बतलाता है तथा संपाती स्वयं वृत्तान्त भी वानरों से निवेदन करता है।

लंका में जाने के लिए सभी वानरों के पराक्रम में हनुमान ही सबसे उपयुक्त हुए और सर्वसम्मति से मनस्वी हरि श्रेष्ठ हनुमान ने मन को सावधान कर लंका की ओर प्रस्थान कर देते हैं।

रामचरित मानस के किष्किन्धा कांड की कथा वस्तु

गोस्वामी तुलसीदास इस कांड की कथा धारा के पूर्व मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं। वे श्री गौरीशंकर जी के मंत्र-राज रघुकुल श्रेष्ठ राम लक्ष्मण का अभिनन्दन कर श्रीराम-नामामृत का माहात्म्य वर्णन करते हुए मुक्तिदायिनी काशीपुरी एवं विश्वनाथ की महिमा का वर्णन करते हैं।

उक्त मंगलाचरण के पश्चात् ऋष्यमूक गिरि के समीप राम लक्ष्मण पहुँचे। बालि से आतंकित सुग्रीव उनको बालि के दूत समझ सशंकित हो उठे और जिज्ञासा से प्रेरित हो हनुमान् को उनके पास भेजा। अध्यात्म-रामायण की ही भाँति बटु रूप धारण कर हनुमान् की उनके समीप आकर उनका भौतिक एवं आध्यात्मिक परिचय पूछा। परन्तु राम ने अपना भौतिक परिचय मात्र देकर हनुमान् जी से उनका वृत्तान्त पूछा परन्तु वे भक्ति-रसाप्लुत होने के कारण गद्गद् हो उठे, भाव-विभोर हो उठे, दैन्य-भाव प्रगट कर शरणापन्न हो उठे।

प्रपन्न शरणागत भक्तराज को उनके वास्तविक वानर रूप में चरणों पर विलुंठित देख आर्त-वत्सल प्रभु की करुणा प्रवाहित हो उठी। उनके अश्रुजल से अभिसिंचन होने लगा। दोनों भाव धारा में बह चले। कथा कुछ काल के लिए भक्ति-सीता की उमंग में स्थगित हो गई।

कुछ भावक्षणों के आनन्द के पश्चात् हनुमान् की कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत हो उठी और अपने स्वामी सुग्रीव को भी पूर्वानुभूत आनन्दानुभव कराने के हेतु तुरन्त बिना राम की अनुमति मिले ही दोनों को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास ले चले। हनुमान् ने तुरन्त ही अग्नि को साक्षी कर रघुराज एवं वानरराज की मैत्री स्थापित कर दी। लक्ष्मण ने पूर्ण राम-चरित अवगत कराया। अभिन्नता होते ही सुग्रीव अपने सुहृद् के हित चिन्तन में तत्पर हो उठे। पूर्व सीता विलाप का परिचय देते हुए राम को सीता का उत्तरीय लाकर दिया और आकुल मित्र राम को आश्वासन दिया।

सीतान्वेषण में तत्पर सुग्रीव को देख राम ने स्वस्थ चित्त हो सुग्रीव से ऋष्यमूक निवास की जिज्ञासा प्रगट की। सुग्रीव ने बालि से वैर का समस्त वृत्तान्त राम से निवेदित किया। दुंदुभि, मायावी, मतंग ऋषि का शाप इत्यादि का वर्णन करते हुए अपनी वर्तमान दयनीय दशा का दिग्दर्शन कराया। मित्र दु.ख से संतप्त राम उद्वेलित हो उठे धर्मस्थापन एवं अधर्म निर्मूलन के हेतु और तत्क्षण ही आजानु भुजाएँ स्फुरित हो उठीं, उत्साह पुकार कर विनीत अति मित्र को आश्वासन दे उठा, दृढ़ प्रतिज्ञा पुकार उठी :

सुनु सुग्रीव मारिहउं, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्रान ॥[1]

इतना ही नहीं सुमित्र एवं कुमित्र के लक्षणों का परिचय कराते हुए अप्रत्यक्ष रूपेण अपने को सुमित्र सिद्ध करने को कार्यान्वित हो उठे।

बिना राम बल जाने साधारण वानर जाति का सुग्रीव कैसे विश्वास कर लेता कि राम दुर्धर्ष बालि पर विजय प्राप्त कर लेंगे। राम ने तुरन्त दुंदुभि अस्थि एवं ताल बिना किसी प्रयास के गिरा कर सुग्रीव में तुरन्त प्रतीति उत्पन्न की प्रतीति होते ही प्रीति हो गई और प्रीति से ही दृढ़ भक्ति युक्त सुग्रीव भक्ति की ओर उन्मुख हो विरक्त हो उठा। आधि-भौतिक कष्ट विस्मृत हो उठे ओर एक मात्र यही लालसा रह गई :

अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँती।
सब तजि भजन करउँ दिन राती ॥[2]

परन्तु लीला पुरुषोत्तम तो बालि वध की प्रतिज्ञा कर चुके थे। वे इस मर्कट वैराग्य को देख विहँस पड़े और तत्पर हो उठे कर्त्तव्य मार्ग की ओर। सुग्रीव को साथ ले, धनुषबाण से

---

१. मा० ४।६।
२. मा० ४।६।२१।

सन्नद्ध हो बालि की ओर प्रस्थान कर दिया। राम से प्रेरित सुग्रीव की ललकार सुन कुशल-मति तारा ने आवेशमय बालि को 'तेज बल सींव' राम का परिचय कराकर युद्ध में जाने से रोका, परन्तु वह राम को समदर्शी मान एवं अपनी परमगति विचार कर तारा की मंत्रणा की अवहेलना कर उन्मत्त होकर चल दिया। दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। सुग्रीव वज्रसम मुष्टि प्रहार खाते ही भाग चला। राम ने दोनों को एक रूप देख पुष्प की माला सुग्रीव के गले में डालकर पुनः भेजा। सुग्रीव को अंततः हताश एवं भयभीत देख राम ने 'विटप ओट' से ही खींच कर मर्मस्थल पर बाण मार दिया। शर लगते ही वह क्षण भर के लिये अचेत हो उठा। उठते ही उसे जटा-मुकुट धारी, अरुण-नयन, सर-चाप धारी राम की अनुपम झाँकी के दर्शन हुए। वह कृतकृत्य हो उठा, उसने चरणों में चित्त को अर्पित कर दिया परन्तु राम का छिप कर मारने का व्याध रूप वह न सह सका। प्रश्न कर ही उठा और राम ने उसका न्याय-संगत समाधान भी किया, बालि विनम्र हो उठा। यह परिवर्तित विनीत रूप देख दीन-वत्सल राम से भी तो न रहा गया अपना शीतल सुखद छाँह युक्त अभयदायी हस्त कमल रख ही तो दिया बालि के सिर पर और अपने ही शर लक्ष्य को अमर बना देने की इच्छा भी प्रगट कर दी परन्तु चतुर भक्त बालि को ऐसा सुमरणावसर कब मिलता। जन्म जन्मान्तर के लिये प्रभु के चरणों से ग्रन्थि-बन्धन कर लिया और भौतिक क्षेत्र के अपने एक मात्र उत्तराधिकारी पुत्र अंगद को प्रभु की सुखद गोद में अर्पित कर निर्वाण पद को प्राप्त हुआ। राम ने तारा को विलाप करती देख तत्व ज्ञान उद्भासित कर मोह माया रहित कर दिया एवं उसे भी भक्ति की अधिकारिणी बना दिया।

बालि की अंत्येष्टि के पश्चात् ही लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव का राज्याभिषेक एवं अंगद को यौवराज्याभिषेक न्यायोचित रीति से संपादित करा दिया।

राम वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के कारण प्रवर्षण पर्वत पर देवनिर्मित गिरिगुहा में रहने लगे परन्तु सीता के वियोग के कारण सुरम्य शीतल आश्रम में भी उत्तप्त रहने लगे। स्फटिक शिला पर बैठ कर राम वर्षा शरद् ऋतु का वर्णन करने लगे।

राम सुग्रीव को सीतान्वेषण में तत्पर न देख उद्विग्न एवं उत्तेजित हो उठे। आवेश-मय मुख मंडल रौद्र हो उठा और अपने प्राणोपम मित्र के लिए भी कह उठे:

'जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतउं मूढ़ कहँ काली।'

परन्तु धन्य है प्रभु के शान्त स्वरूप को। अपने आवेश से लक्ष्मण को रौद्र रूप में जाते हुए देख शान्त मूर्ति राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि भय दिखाकर सुग्रीव को केवल ले आवें। परन्तु इसके पूर्व ही हनुमान की मन्त्रणा से सुग्रीव ने उन्हीं को आदेश दे दिया कि वे दूतों को विभिन्न देशों में भेज दें। एक पक्ष मात्र में लौटने की अवधि दी।

लक्ष्मण को धनुषसन्धान किए रौद्र रूप में आता देख अंगद ने तुरन्त अभयदान प्राप्त कर लिया। सुग्रीव ने हनुमान के साथ तारा को भेजा। शान्त कर उन्हें सुग्रीव के पास ले आए। सुग्रीव को ग्लानियुक्त लक्ष्मण ने उन्हें उपदेश दिया तथा राम के समीप चल दिए। सुग्रीव ने अपनी विषयासक्ति पर ग्लानि प्रगट कर प्रभु भ्रातृत्व प्राप्त किया। उसी

समय असंख्य वानर सेना को सीतान्वेषण की आज्ञा दी तथा एक मास की अवधि प्रदान की। प्रमुख नेतागण अंगद, नल, हनुमान तथा जाम्बवान् को दक्षिण दिशा की ओर जाने का आदेश दिया। विशेषकर हनुमान को योग्य जानकर राम ने अपनी मुद्रिका अभिज्ञानार्थ दी।

सीतान्वेषण करते-करते ये प्रमुख वीर एक विचित्र विवर में आ पहुँचे। वहाँ की सुरम्य प्रकृति-स्थली एवं तपस्विनी को देखा। उस तपस्विनी ने उन्हें सीता प्राप्ति की आशा बँधाई एवं स्वयं राम के दर्शनार्थ गई।

इधर ये सभी वानरगण चिन्तातुर हो उठे सीता की खोज न कर सकने के कारण। तत्पश्चात् उनकी संपाती से भेंट हुई। उसने जटायु का वृत्तान्त सुन शोक प्रगट किया तथा अपना पूर्व वृतान्त सुनाकर सीता खोज में उचित परामर्श दिया। जाम्बवान् ने सभी वीरों में श्रेष्ठ हनुमान को लंका जाने की आज्ञा दी।

तुलनात्मक विवेचन

रामायण में हनुमान राम लक्ष्मण के समीप भिक्षुक रूप में गए[१] मानस में विप्र रूप।[२] अध्यात्म रामायण में भी वटु रूप है।[३] तुलसी ने वचन चातुरी, बुद्धि चातुरी के अनुरूप गोद्विजहिताय अवतारी के समीप जाने के लिये विप्र रूप ही उचित समझा। वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव ने हनुमान को यही मंत्रणा दी कि तुम राम के पास जाकर पता लगाओ और उनसे वार्तालाप करते समय मेरी ओर मुख करके खड़े होना।[४] अध्यात्म रामायण में हाथ के अग्रभाग से संकेत करने को कहा है।[५] दोनों मतों का समाहार गोस्वामी जी ने 'कहेसु जानि जिय सयन बुझाई' में कर दिया है परन्तु हनुमान ने संकेत नहीं किया। उसकी आवश्यकता भी न थी। श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मण के तेज प्रताप से प्रभावित हो हनुमान ने सर्वप्रथम अभिवादन कर कुशल प्रश्नावली आरम्भ की। दोनों रामायणों में। वाल्मीकि रामायण[६] तथा अध्यात्म रामायण[७] भी सर्वप्रथम अभिवादन का ही उल्लेख है। उन्हें देख हनुमान जी के हृदय में अनेक विकल्प हुए। वाल्मीकि रामायण में भी उन्हें अत्यन्त प्रभान्वित देख उनके प्रति देव की भी कल्पना करने लगे।[८] मानस में अनेक विकल्प अध्यात्म रामायण[९] के समकक्ष हैं। रामायण में हनुमान ने यहीं पर अपना तथा सुग्रीव का परिचय भी दिया।

---

१. कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारूतात्मजः।
   भिक्षुरूपं ततो भेजे शठ बुद्धितया कपिः॥ वा० रा० ४।३।२।
२. बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। मा० ४।०।६।
३. तथेति बटुरूपेण हनुमान् समुपागतः। अ० रा० ४।१।११।
४. ममेवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव। वा० रा० ४।२।२६।
५. यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रता। अ० रा० ४।१।१०।
६. विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च। वा० रा० ४।३।३।
७. विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत्। अ० रा० ४।१।११।
८. अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकाविहागतौ। वा० रा० ४।३।१२।
९. अ० रा० ४।१।१२-१६।

इस प्रश्नावली का उत्तर रामायण में राम ने लक्ष्मण से दिलवाया है। मानस में अध्यात्म रामायण की भाँति[१] स्वयं उत्तर दिया है। लक्ष्मण ने रामायण में भौतिक स्तर पर ही हनुमान ने राम का परिचय देते हुये स्वयं यह आकांक्षा प्रगट की कि राम सुग्रीव से सहायता लेने के लिए उनकी शरण में आये हैं।[२] अवसर देख हनुमान ने भी संक्षिप्त परिचय देकर सुग्रीव की राज्य भ्रष्ट स्थिति से अवगत कराया और सुग्रीव की ओर से ही सहायता का आश्वासन भी दिया।[३] मानस में लक्ष्मण-मारुति-संवाद का अभाव है। तुलसी अपने शरणागत वत्सल राम को एक साधारण वानर की शरण-याचना कैसे करने देते। अतः राम ने स्वयं निज परिचय देते हुए हनुमान से उनका वृत्तान्त पूछा। यहीं हनुमद्रामायण[४] एवं मंगल रामायण[५] की भाँति मानस में भक्त मारुति एवं भक्तवत्सल भगवान् का अनुग्रह प्रसंग है।

रामायण[६] की ही भांति मानस में भी हनुमान राम लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास ले जाते हैं।[७] अध्यात्म रामायण में कंधों पर ले जाते हैं।[८] रामायण में सुग्रीव हनुमान द्वारा राम का परिचय प्राप्त कर भय रहित होते हैं।[९] मानस में भक्ति-भावना से दर्शन करते ही कृतकृत्य हो जाते हैं।[१०] दोनों में अग्नि साक्षिक मैत्री हनुमानद्वारा ही स्थापित की जाती है।[११] तथा[१२] दोनों ने परस्पर एक दूसरे के संकट में सहायता देने का वचन दिया। वाल्मीकि रामायण तथा मानस में मैत्री के पश्चात् ही सुग्रीव ने राम को सीता द्वारा प्राप्त वस्त्राभरण लाकर दिया। अध्यात्म रामायण में आभरण देने के पश्चात् मैत्री होने का उल्लेख है। मानस में केवल अन्तर इतना है कि—

'श्री गोस्वामी जी बार-बार पट कहते हैं, भूषण का नाम नहीं लेते। भाव यह है कि सुग्रीव जी 'धन पराव विष ते विष भारी' समझते हैं। उन्होंने पट को खोलकर देखा भी नहीं कि इसमें क्या बँधा है।[१३]

---

१. अ० रा० ४।१।१९।२०।२६।
२. व० रा० ४।४।५।२४।
३. वा० रा० ४।४।२६।२८।
४. जातः शरीरे रोमांचो मुखाद्वाणी न निःसृता।
   सुन्दरीं वेषरचनां दृष्ट्वा रामस्य मारूतेः। हनुमद्रामायण रा० टी० पृष्ठ ७।
५. कपे मामन्यथा न्यूनं लक्ष्मणाद्द्विगुणः प्रियः मंगल रामायण रा० टी० पृष्ठ ९।
६. पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुंजरः। वा० रा० ४।४।३४।
७. लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई। मा० ४।३।४।
८. तथेति तस्यारूरोह स्कंधं रामोऽथ लक्ष्मणः। अ० रा० ४।१।२८।
९. वा० रा० ४।५।८।
१०. जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिशय जन्म धन्य करि लेखा॥ मा० ४।३।५।
११. वा० रा० ४।५।१६।
१२. मा० ४।४।
१३. मानस पीयूष अ० कां० पृ० ४९।

इस अभिज्ञान को पाकर राम अत्यन्त व्याकुल हो उठे जिसका विस्तृत चित्रण वाल्मीकि रामायण में किया गया है।[1] मानस में संकेत मात्र 'पट उर लाय सोच अति कीन्हा' तथा सुग्रीव ने पूर्ण आश्वासन दिया। तत्पश्चात् रामायण में राम ने सुग्रीव से बालि के बैर का कारण पूछा[2] जब कि मानस में वन निवास था। सुग्रीव ने मायावी एवं दुंदुभि की कथा राम से कह सुनाई। रामायण में इस कथा के अन्तर्गत मानस से कुछ अन्तर है—

बालि ने सुग्रीव से गुहाद्वार पर तब तक प्रतीक्षा करने को कहा जब तक कि वह मायावी को मार कर लौटे[3] परन्तु मानस में केवल एक पक्ष तक प्रतीक्षा करने को कहा है।[4] रामायण में १ वर्ष प्रतीक्षा[5] की अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में १ मास।

रामायण में सुग्रीव ने पुरवासियों से गुफा में बालि के मरने की बात छिपानी चाही परन्तु अध्यात्म रामायण में उसने सबसे कहा कि बालि मारा गया परन्तु मानस में कुछ न कहकर दोनों रामायणों के मतों की रक्षा कर केवल इतना ही कहा कि ·······

'मंत्रियों ने राजाहीन राज्य देकर बलात् मुझे राज्य दे दिया'

रामायण में सुग्रीव ने दुंदुभि दैत्य की कथा भी विस्तार से कही है[6] मानस में ऐसी कथाओं का संकेत मात्र ही किया है :

'इहाँ साप बस आवत नाहीं।'

बालि वध की प्रतिज्ञा कर लेने पर भी सुग्रीव के हृदय की राम बल के प्रति शंका को निवृत्त करने के हेतु राम ने दुंदुभि दैत्य के अस्थि पिंजर को पैर के अंगूठे से दश योजन दूर फेंक दिया।[7] परन्तु इससे भी सुग्रीव को संतोष न हुआ क्योंकि यही अस्थि पिंजर जब बालि ने फेंका था तब वह रुधिर मांस युक्त होने के कारण इससे अधिक भारी था। अतः उसके शेष संदेह की निवृत्ति के लिए राम अपने सुवर्णभूषित शर से सातों शाल वृक्षों को विद्ध कर दिया।[8] वाल्मीकि रामायण[9] एवं अध्यात्म रामायण[10] में सुग्रीव ने स्वतः शंकाओं का निवेदन राम से किया है मानस में नहीं।

---

१. वा० रा० ४।६।१६।१९ एवं २४।२७।

२. किन्निमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः। वा० रा० ४।८।४१।

३. इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः।
यावदत्त प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम्। वा० रा० ४।९।१३।

४. परिखेसु मोहि एक पखवारा। मा० ५।५।६।

५. आर्तस्तस्य बिलद्वारि स्थितः संवत्सरं नृप। वा० रा० ४।१०।४।

६. वा० रा० ४।११।७ ६३।

७. राघवो दुन्दुभेः कार्यं पादाङ्-गुष्ठेन लीलया। वा० रा० ४।११।८४।
तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दश योजनम्॥ वा० रा० ४।११।८५।

८. स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्ण परिष्कृतः
भित्वा तालन्गिरि पृस्थं सप्तभूमिं विवेश ह॥ वा० रा० ४।१२।३।

९. कथं तु वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप। वा० रा० ४।११।६८।

१०. कथं हनिष्यति भवान्देवैरपि दुरासदम्॥ अ० रा० ४।१।६०।

राम का पराक्रम देख कर रामायण में सुग्रीव प्रसन्न होकर उसी दिन बालि वध की प्रार्थना करता है[1] परन्तु अध्यातम रामायण[2] की भाँति मानस में वह भक्ति भावाभिमुख होकर विरक्त-सा बन जाता है । इस प्रसंग में दोनों पूर्ण साम्य हैं जो आधार ग्रन्थों के अध्याय में उल्लिखित है ।

अध्यातम रामायण[3] की ही भाँति राम मानस में सुग्रीव को कर्म की ओर प्रेरित करते हैं ।[4] सुग्रीव की ललकार सुनकर युद्ध के लिये सन्नद्ध बालि को तारा मानस की भाँति प्रथम बार ही नहीं समझाती है । जब बालि सुग्रीव को पराजित कर पुन: द्वितीय बार युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तब तारा बालि से राम के तेज बल का वर्णन कर युद्ध में जाने से रोकती है । वाल्मीकि रामामण[5] एवं अध्यातम रामायण[6] में यह बालि तारा संवाद समान ही हैं । मानस में अति संक्षिप्त है ।

बालि तारा के परामर्श पर ध्यान नहीं देता । वह राम को धर्मज्ञ एवं कृतज्ञ मानता है और इस कारण उसे विश्वास है कि राम उसके वध के पाप भागी न होंगे ।[6] अध्यातम रामायण में बालि मानस के समान ही राम को 'सम दरसी' ही मानता है ।[7] वहाँ वध की कल्पना न कर स्वयं घर ले आने की कामना करता है । मानस में दोनों मतों का समर्थन है ।[8] रायायण में बालि राम के द्वारा वध की इच्छा से ही जाता है । यह स्वयं उसका कथन है ।[9]

रामायण में दूसरी बार युद्ध में जाते समय राम ने सुग्रीव को लक्ष्मण द्वारा माला पहनवाई ।[10] परन्तु मानस में स्वयं राम ने ही सुमन माला पहनाई है ।[11] यहाँ भक्तिपक्ष विशेष

---

१. तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् वालि नं जहि.................
वा० रा० ४।१२।११।

२. आ० रा० ४।१।७६ ९३।

३. रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत ।
मायां मोह करीं तस्मिन् वितन्वन् कार्य सिद्धये ।
सखे त्वदुक्तं यतन्मां सत्यमेव न संशय : ।। अ० रा० ४।२।१,२।

४. सुनि विराग संजुत कपि बानी । बोले बिहँसि राम धनु पानी ।।
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा वचन मम मृषा न होई ।। मा० ४।६।२२।२३।

५. वा० रा० ४।१५।१३,३०।

६. अ० रा० ४।२।२५,४०।

७. 'धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्य कथं पापं करिष्यति' वा० रा० ४।१६।५।

८. अ० रा० ४।२।३५,३६,३७।

९. मा० ४।७।

१०. शक्यं दिवं चार्जयितुं वसुधां चापि शासितुम्
त्वक्षोऽहं वधमाकाङ्क्षन्वायमाणोऽपि तारया । वा० रा० ४।१८।५७।

११. कृता भिज्ञानचिन्हस्त्वमनया गजसाह्वया ।।
लक्ष्मणेन समुत्पाद्य एषा कंठे कृता तव ।
शोभसेऽप्यधिकं वीर लतया कंठसिक्तया ।। वा० रा० ४।१५।८,९।

प्रधान है। सुग्रीव बालि का द्वन्द्व युद्ध रामायण में विस्तृत रूपेण वर्णित है[1] मानस में सूचना मात्र है;—

'पुनि नाना बिधि भई लराई।'

दोनों काव्य ग्रन्थों में सुग्रीव को हताश देख राम द्वारा बालि को शर विद्ध करने का प्रसंग वर्णित है।

रामायण के बालि-प्रसंग में अनेक बातें मानस में किये गये वर्णन से भिन्न हैं :

'रामायण में बालि क्षुब्ध हृदय से राम के इस कर्म की निन्दा करता है और वह अपने हृदय से अनेकों उद्‌गार द्वारा राम को अन्यायी' क्षत्रियों के लिये अकीर्तिकर कार्य करने वाला सिद्ध करता है। अध्यात्म रामायण की भाँति वाल्मीकि रामायण में बालि के न्यायसंगत तर्क हैं।[2] यहाँ तक कि वह राम से अपना पराक्रम प्रदर्शन करता हुआ सीता सहित रावण को एक दिन में लाने का साहस भी रखता है।'[3]

मानस में उसका रूप भिन्न है। वह शर विद्ध हो व्याकुल हो जाता है परन्तु उठते ही अध्यात्म रामायण की भाँति[4] राम के 'श्याम गात जटा मंडित, अरुण नयन सर चाप धारी राम की दिव्य झाँकी देख भक्त रूप में वह अपने को कृतकृत्य मान 'गोसाईं' कह कर ही सम्बोधन करता है। केवल डेढ़ पंक्ति में ही निज वध का कारण पूछता है :

मारेहु मोहि व्याध की नाईं।

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।[5]

रामायण[5] तथा मानस दोनों में राम ने नीतिमय उत्तर ही दिया है। 'धर्म मर्यादा के विरुद्ध आचरण कर्ता बालि को न्याय दृष्टि से दंड देना ही उचित था। कुलीन क्षत्रिय इस प्रकार के पाप को नहीं सहन कर सकता'। मानस में राम का उत्तर शिव पुराण से भी मिलता है।[6]

हरीश्वर बालि से अधिक्षिप्त राम ने बालि को सब प्रकार से कामी, अन्यायी,

---

१. मेली सुमन कंठ की माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला। मा० ७।७।७।
२. वा० रा० ४।१६।२०,३०।
३. अ० रा० ४।२।५१,५८।
४. वा० रा० ४।१७।१७,५२।
५. वा० रा० ४।१७।४९,५०।
६. ततो बाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम्।
धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम्॥
बिभ्राणं चीरवसनं जटा मुकुटधारिणम्।
पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छबिम्॥ अ० रा० ४।२।४८ ५०।
मा० ४।८।६।
वा० रा० ४।१८।३,४४।
यथा माता च भगिनी भ्रातृपत्नी तथा सुता।
एताः कुदृष्ट्या दृष्टव्याः न कदापि विपश्चिता॥ शि० पु० २।३।४०।

पापाचारी ही सिद्ध कर उसे निरुत्तर कर दिया। बालि ने वह उत्तर सुनकर, धर्मसंगत रूप देखकर फिर राघव को दोष नहीं दिया वरन् राम से पूर्व अप्रिय कथन के प्रति वह क्षमा-प्रार्थी भी हो जाता है [१] एवं धर्मयुक्त उपदेश का इच्छुक भी हो जाता है।

'यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम्।
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघवा।।

'हे राघव जो मैंने प्रमाद से अप्रिय पहले कह दिया था उसके लिए मुझे अब दोष न दीजियेगा।'[२]

मानस में बालि भक्ति-भावमयी वाणी द्वारा विनम्र वचनों में अपने को परमगति का अधिकारी ही मानता है और अपने को निष्पाप ही मानता।

'प्रभु अजहूँ मैं पातकी अन्तकाल गति तोरि।'

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भी वह निष्पाप हो चुका क्योंकि राम कहते हैं कि पापी मनुष्य पाप का दंड भोगकर निर्मल हो जाता है एवं स्वर्ग को प्राप्त होता है।

'राजभिर्धृत: दंडाश्च कृत्वा पापानि मानवा:।
निर्मला: स्वर्गमायान्ति सन्त: सुकृतिनो यथा।।
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेन: पापात्पमुच्यते।'[३]

'पाप करने के पश्चात् राजा से दंड पाकर पुरुष पाप रहित होते हुए धर्मात्मा सत्पुरुषों के समान स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। दंड देने या दया कर छोड़ने से चोर अथवा अन्य पापी पाप से छूट जाता है।

मानस में राम ने अध्यात्म रामायण[४] की भाँति अपने वरद हस्त को बालि के सिर पर रक्खा और बालि से उसका शरीर अचल कर देने का अनुग्रह किया[५] परन्तु बालि तो अपने सम्मुख योगिनामपि अगम्य मृत्यु का शुभ अवसर प्राप्त कर चुका था उसे परात्पर प्रभु को लोचन गोचर करते ही प्राणान्त का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ था, ऐसी शुभ घड़ी को कैसे खो सकता था? उसने जन्म जन्मान्तर के लिए 'राम पद अनुरागउ' का वरदान माँगकर आत्मिक सुख उपलब्ध किया तथा अपने तुल्य विनय बल युक्त अंगद को भी दास बना लेने का विनम्र प्रार्थना की।

वाल्मीकि रामायण में केवल यही कहा कि—

'सुग्रीवे चांगदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम्'

'सुग्रीव और अंगद के विषय में आप समान भाव रक्खें। मानस में इसको स्पष्ट ही कर दिया कि 'सो सुग्रीव दास तव अहई' के अनुसार जब सुग्रीव को अपना दास बनाया है

---

१. वा० रा० ४।१८।४८।
२. वा०रा० ४।१८।६८।
३. वा०रा० ४।१८।३३,३४।
४. 'राम: पस्पर्श पाणिना' आ० रा० ४।२।७०।
५. 'अचल करौं तनु राखहु प्राना' मा० ४।९।२।

इस प्रकार बालि परमगति का अधिकारी हुआ। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण[१], अध्यात्म रामायण[२] तथा मानस[३] तीनों में स्पष्ट हैं।

बालि वध का समाचार सुनकर किष्किन्धावासी भयभीत हो गये और यत्र-तत्र भागने लगे जिसका यिस्तृ वर्णन वाल्मीकि रामायण में है, मानस में संकेत मात्र दिया गया है। विषय विस्तार के भय से तारा विलाप। जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। मानस में एक पंक्ति में ही समाहित कर दिया है।

'नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।।'[४]

तारा का दारुण विलाप सुन वाल्मीकि रामायण में पहले हनुमान् ने,[५] तत्पश्चात् बालि प्राण भंग होने पर श्री राम ने समझाया है।[६] मानस कथित राम का तत्वोपदेश अध्यात्म के समान है।[७] परंतप राम के उपदेश से तारा ने शोक त्याग दिया। देहाभिमान शोक को त्यागकर राम का अभिवादन किया।

रामायण में राम के आदेशानुसार बालि की अन्येष्टि क्रिया अंगद द्वारा कराई गई[८] परन्तु मानस में स्वयं सुग्रीव ने की। विधिवत् मृतक कर्म का भी इसमें विशद उल्लेख है। समस्त वातावरण करुणा से ओत प्रोत हो उठा है।[९] मानस में केवल कथा संकेत मात्र।

रामायण में राम ने स्वतः सुग्रीव को राज्य एवं अंगद को यौवराज्य पद की घोषणा की है,[१०] परन्तु मानस के संकोची राम ने लक्ष्मण द्वारा कराया है। रामायण में सुग्रीव के राज्याभिषेक संस्कार का भी विस्तृत उल्लेख है।[११] मानस में नहीं।

मानस में इसकी अपेक्षाकृत राज्याभिषेक के पश्चात् राम द्वारा सुग्रीव को 'नृपनीति' शिक्षा देने का उल्लेख है।[१२]

वर्षागमन होते ही राम लक्ष्मण सहित प्रस्रवन पर्वत की विशाल, वातानुकूलित, रम्य पर्वत की गुहा में निवास करने लगे। मानस में इस गुफा को प्रथम ही देवों ने आगामी भविष्य की भावना से रुचिर बना दीथी।[१३] वाल्मीकि रामायण में इसका प्राकृतिक रूप ही वर्णित है।

---

१. वा०रा० ४।२५।१०।
२. अ०रा० ४।२।७१।
३. मा० ४।१०।
४. मा० ४।१०।१
५. वा०रा० ४।२१।२ से ११।
६. वा०रा० ४।२४।४२ से ४४।
७. मा० ४।१०।३६।
८. वा०रा० ४।२५।
९. वा०रा० ४।१९।२३,२४।
१०. वा०रा० ४।२६।१२, १३।
११. वा०रा० ४।२६।२२, ३६।
१२. मा० ४।११।६।
१३. मा० ४।१२।

तथैव अंगद को भी बाँह पकड़ कर दुःख जलधि से सहारा देकर आर्तभक्त को अपना सेवक बनाइये।

राम लक्ष्मण के साथ स्फटिक शिला पर सुखासीन हो अनेकों चर्चा करने लगे। रामायण में राम विरह विलाप करने लगे।[1] अध्यात्म रामायण में राम ने लक्ष्मण से पूजन का प्रकरण वर्णन किया है, तत्पश्चात् विरह वर्णन है।

अन्य रामायणों में और तरह मुनियों ने वर्णन किया है। इसी से गोस्वामी जी सब का मत ग्रहण करते हुए राम द्वारा अनेक कथाओं के कहने का उल्लेख करते हैं--

'कहत अनुजसन कथा अनेका। भगति विरति नृपनीति विवेका।।'

इसी समय वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था। समस्त राज काज कुछ काल के लिये स्थगित हो चुके थे। अतः सुग्रीव विषय निमग्न एवं राम विरह निमग्न हो उठे। वर्षा एवं शरद् ऋतु का वर्णन दोनों ग्रन्थों में किया गया परन्तु दोनों का ऋतु वर्णन भिन्न शैली पर है। जिसका उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा। संक्षेपतः वाल्मीकि रामायण का ऋतु वर्णन शुद्ध, प्राकृतिक, सूक्ष्म, चित्रात्मक एवं व्यापक है, मानस का श्रीमद्भागवत के आधार पर उपदेशात्मक शैली पर है।

शरद् ऋतु का आगमन होते ही राम कर्तव्य विमुख सुग्रीव पर रुष्ट हो उठे। उसे भी धर्म मर्यादा से च्युत होते देख बालि की सी गति देने के लिए उत्तेजित हो उठे।

'न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः;
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः।।'[2]

'जिस मार्ग से बाली गया था वह मार्ग नष्ट नहीं हो गया है। हे सुग्रीव! मर्यादा में स्थित रहो, बालि के मार्ग पर मत चलो।'

अध्यात्म रामायण में इससे भी अधिक रौद्र ललकार है।[3] मानस में अपेक्षाकृत सम रूप है।

'जेहि सायक मैं मारा बाली।
तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली।।'[4]

सभी रामायणों में इस प्रकार उत्तेजित राम को देख लक्ष्मण द्विगुणित क्रोध सम्पन्न हो गए। यह भीषण रूप देख भक्त वत्सल की करुणा उमड़ ही पड़ी इस आशंका से कि कहीं लक्ष्मण द्वारा वस्तुतः अनिष्ट न हो जाय। तुरन्त कह उठे:

'नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण।
तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम्।।'[5]

---

१. वा०रा० ४।२७।३०।
२. वा०रा० ४।३०।८१।
३. अ०रा० ४।५।१९।
४. मा० ४।१७।५।
५. वा० रा० ४।३१।७।

'हे लक्ष्मण ! श्रेष्ठ चरित्र वाले । तुम्हें इस पाप कर्म को ग्रहण नहीं करना चाहिये। पूर्वकृत उस प्रीति और सख्य रूप का पालन करो।'

मानस में अध्यात्म रामायण[1] के समान ही लक्ष्मण को समझाया है। किन्तु इसमें अपेक्षाकृत विशेष सरलता एवं स्निग्धता है :

'भय देखाइ ले आवहु तात सखा सुग्रीव।'[2]

इसी मध्य हनुमान् पहले ही सुग्रीव को सचेत कर सेना संगठन एवं निरीक्षण की आज्ञा ले चुके थे।[3] सुग्रीव ने हनुमान् को आज्ञा दे दी थी कि १५ दिन के अन्दर ही जो वानर नहीं लौटेगा उसे प्राणान्तक दंड दिया जायगा।[4]

तदनन्तर कोपाविष्ट[5] लक्ष्मण को किष्किन्धा पुरी में आया देख अंगद भय से दुःखित हो उठा और लक्ष्मण के पास आया। लक्ष्मण ने अपने आने की सूचना सुग्रीव तक पहुँचाने की आज्ञा दी। अंगद तथा अन्य मंत्रियो ने सुग्रीव को सचेत किया। सुग्रीव अंगद द्वारा लक्ष्मण का आवेशमय रूप सुन भयभीत हो उठा। सज्जन स्त्रियों पर कोप नहीं करते यह सोचकर सुग्रीव ने व्यवहार कुशल तारा को भेजा। दोनों ने परस्पर सुग्रीव की कामुकता की आलोचना की। लक्ष्मण को अपनी कार्यतत्वज्ञता से शान्त कर सुग्रीव के पास ले गई। लक्ष्मण ने राजनीति के तत्वों की शिक्षा देते हुये सुग्रीव को कार्य से उदासीनता की कटु आलोचना की और उत्तप्त हो उठे परन्तु वहाँ भी तर्क संगत वार्तालाप द्वारा तारा ने लक्ष्मण को शान्त किया। सुग्रीव ने भी अपनी कृतज्ञता अर्पण करते हुये पूर्ण सहायता देने का आश्वासन दिया। उन्हीं के सम्मुख अनेक पर्वतों पर स्थित वानरों को बुलाने का आदेश दिया और यह राजाज्ञा दी कि जो दस दिन में यहाँ नहीं आ जायेंगे वे दुरात्मा मारे जाने चाहिये। हनुमान द्वारा यह राजाज्ञा पाकर अनेक वानर चले और सभी ओर से वानर किष्किन्धा में आ गए। असंख्य वानर सेना को आया देख सुग्रीव प्रसन्न मन से पालकी पर चढ़ लक्ष्मण सहित राम के समीप पहुँच गये।

मानस में उपर्युक्त लम्बे वृत्तान्त का अभाव है। सांकेतिक शैली द्वारा केवल कुछ लक्ष्मण का किष्किन्धा में आगमन देख अंगद का समीप आकर अभय दान प्राप्ति, सुग्रीव द्वारा हनुमान के साथ तारा का लक्ष्मण के समीप भेजना, राम यश वर्णन द्वारा लक्ष्मण को शान्त कर सुग्रीव के पास लाना तथा सुग्रीव का अपनी कामान्धता पर ग्लानि प्रदर्शनादि वर्णित हैं। इस प्रकरण का साम्य अध्यात्म रामायण से है।

---

१. न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा। किन्तु भीषय सुग्रीवं बालिवत्वं हनिष्यसे। अ० रा० ४।५।१३,१४।

२. मा० ४।१८।

३. वा० रा० ४।२९।२८।३२।

४. त्रिपंचरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः।
तस्य प्राणान्तिको दंडो नात्र कार्या वा० रा० ४।२९।३३।

५. वा० रा० ४।३१।२९ ३१।

इस प्रकार राम के समीप ही शीघ्र ही असंख्य वानरों का चतुर्दिक से आगमन हुआ जिनका विस्तृत उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है[१] किन्तु मानस में केवल संकेत मात्र ही है :

'वानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह लेखा ।'[२]

राम से आज्ञा पाकर सुग्रीव ने वानर समूह को विभिन्न स्थानों में जाने का आदेश देकर[३] अपने विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का परिचय दिया ।[४] इसी का मानस में केवल' वानर जूथ जाहु चहुँ ओरा' का संकेत है ।

हनुमान् को विशेष अधिकारी जानकर सुग्रीव ने भी विशेष प्रशंसा की[५] तथा राम ने भी अपनी नामांकित मुद्रिका अभिज्ञानार्थं हनुमाम् को दी ।[६] 'कर मुद्रिका दीन्ह जन आनी' कह कर मानस में इसका समर्थन किया गया है ।

सभी वानर उच्च स्वर से नाद करते, ललकारते हुये अपनी-अपनी दिशा की ओर चल दिये । इधर राम ने सुग्रीव के इस विशाल भौगोलिक ज्ञान पर उत्सुकता प्रगट की और उसका कारण पूछा । सुग्रीव ने बालि द्वारा तिरस्कृत हो त्रिभुवन में भटकने का वृत्तान्त कहा जिसका मानस में उल्लेख नहीं है । केवल संकेतमात्र है ।[७]

प्रमुख वानरों ने सीतान्वेषण के मार्ग में रामायण में एक असुर को रावण मानकर उसका संहार किया ।[८] अध्यात्म रामायण में भी इस घटना का उल्लेख है[९] परन्तु मानस में उसका सामान्य वर्णन है ।[१०]

विन्ध्याटवी, सप्तपर्णवन इत्यादि में पर्यटन करते-करते सभी वानर गुफाओं में खोज करने लगे । मार्ग में एक बिल दिखाई दिया । उसका वर्णन रामायण में विस्तृत[११], मानस में अपेक्षाकृत अल्प परन्तु समकक्ष ही है । विवर में प्रवेश कर तपस्विनी धर्मचारिणी स्वयंप्रभा का वृत्तान्त है । देवी ने सभी वानरों की कुशल पूछ स्वागत किया । परस्पर वृत्तान्त पूछा

---

१. वा० रा० ४।३९।९,४४।
२. मा० ४।२९।१।
३. वा० रा० ४।४०।१५-७२।
४. वा० रा० ४।४९।४१-४३।
५. वा० रा० ४।४४।१-१०।
६. वा० रा० ४।४४।१२।
७. ताके भय रघुबीर कृपाला । सकल भुवन मैं फिरउँ बिहाला ।। मा० ४।५।११।
८. तं दृष्ट्वा वानरा घोरं स्थितं शैलीमवासुरम्................
रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तले नाभिजघान ह वा० रा० ४।४८।१८-२०।
९. रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानर पुंगवा:
जघ्नुः किलकिला शब्दं मुञ्चन्तो मुष्टिभिः क्षणात् । अ० रा० ४।६।३३।
१०. कतहुँ होइ निसिचर सैं भेंटा । प्रान लेहिं एक-एक चपेटा ।। मा० ४।२३।१।
११. वा० रा० ४।५०।२०—४१, ४।५१।२—८।

जिसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकि[१] और अध्यात्म रामायण[२] में है। मानस में सांकेतिक।[३] इस वृत्तान्त में केवल अन्तर है। रामायण में स्वयंप्रभा वानरों के नेत्र बन्द करते ही उन्हें महोदधि के निकट पहुँचा कर अपने शोभापूर्ण विवर में चली जाती है परन्तु मानस में इस प्रसंग के वर्णन का अध्यात्म रामायण से पूर्ण साम्य है।[४] मानस में वह अपना वृत्तान्त सुनाकर रघुनाथ के समीप जाकर अभिवन्दन, अभिनन्दन से प्रभु को तुष्ट कर अनपायिनी भक्ति प्राप्त कर, प्रभु आज्ञा से 'बदरीवन' को प्रस्थान करती है।[५] अध्यात्म रामायण में तत्कृत स्तुति, बद्रिकाश्रम-गमन तथा वहाँ पर मन से प्रभु चिन्तन करती हुई शरीर त्याग कर परम पद की प्राप्ति का भी पूर्ण उल्लेख है।[६]

इस अन्तर का स्पष्ट कारण गोस्वामी जी के चरित्र चित्रण की विशेषता है। रामायण काल में तपस्वियों का काल था अतः उसका तपोमयी रूप है। गोस्वामी जी के सभी पात्र राम चरण उपासक हैं तथैव यह भी है। इसकी कथा में अन्तर का एक कारण और है।

अध्यात्म रामायण में स्वयंप्रभा हेमा की सखी थी। ब्रह्म लोक जाते समय सम्पूर्ण भावी वृत्तान्त कह गई थी कि त्रेता में यह वृत्तान्त होगा और तुम्हें राम दर्शन से मोक्ष प्राप्ति होगी। वाल्मीकि रामायण में महातेजस्वी मय नामक मायावी असुर ने सुवर्णमय वन को माया से निर्मित किया। विश्वकर्मा नामक दानव श्रेष्ठ ने दिव्य सुवर्ण भवन निर्माण किया। उन्होंने तपस्या के परिणामस्वरूप ब्रह्मा से वरदान में समस्त शिल्प विद्या प्राप्त की परन्तु फिर मय के हेमा नामक अप्सरा पर आसक्त होने के कारण इन्द्र ने उसका वध कर दिया एवं हेमा को इस भवन की अधिकारिणी बना दिया। स्वयंप्रभा (मेरुसावर्णि) की कन्या एवं हेमा की सखी थी। उसने उसे इस घर की रक्षा का प्रबन्ध सौंपा था।

सीता का कोई भी प्राप्ति चिन्ह न पाकर सभी वानर सुग्रीव द्वारा निर्धारित दण्ड के लिये उद्विग्न हो उठे। अंगद के हृदय में सुग्रीव के प्रति नाना संशय उत्पन्न होने लगे[७] जिनका मानस में अभाव है। परन्तु प्रसंग में साम्य है। सभी वानर अंगद के वचन सुन करुणार्द्र हो उठे। सभी मरण के लिये निश्चय कर प्रायोपवेशन के लिये तत्पर हो गये। बाल्मीकि रामायण,[८] अध्यात्म-रायायण,[९] तथा मानस[१०] तीनों में साम्य है। आकुल एवं

---

१. वा० रा० ४।५१।४।
२. आ० रा ४।६।४३ ५७।
३. (१) पूछें निज वृत्तान्त सुनावा। मा० ४।२४।१।
(२) तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मा० ४।२४।४।
४. अ० रा० ४।७।५१-६०।
५. मा० ४।२४।७, ८। तथा मा० ४।२५।
६. अ० रा० ४।७।६१ ८४।
७. वा० रा० ४।५३।८-२५। तथा वा० रा० ४।५५।२-१२।
८. वा० रा० ४।५५।२०।
९. अ० रा० ४।७।२८।
१०. मा० ४।२५।१०।

आर्त अंगद[1] को अध्यात्म रामायण[2] में हनुमान ने तथा मानस[3] में जामवन्त ने समझाया है। परन्तु वाल्मीकि रामायण के इस आश्वासन में नीति पक्ष तथा शेष दोनों में भक्ति पक्ष प्रधान है। रामायण में पहले ही समझाया है परन्तु मानस में प्रायोपवेशन के बाद समझाया गया है।

स्वयंप्रभा वृत्तान्त के पश्चात् सम्पाति कथा में भी दोनों में साम्य है। विषय प्रतिपादन में रामायण में विस्तार है[5] मानस में समाहार।[6]

राम कथा, जटायु प्रसंग, सम्पाति का पूर्व वृत्तान्त वाचिक सहायता का आश्वासन, सम्पाति के दग्ध पंखों का पुनः उगना आदि सभी प्रसंगों में साम्य है। केवल अन्तर यह है कि मानस में सम्पाति का वानरों से समागम होने पर पंखों का निकल आना प्रथम कहा है[7] और सीता का वृत्तान्त कथन बाद में परन्तु वाल्मीकि[8] एवं अध्यात्म रामायण[9] में प्रथम सीता का पता बताने के पश्चात् पंखों के जमने का वृत्तान्त है। अध्यात्म रामायण में मुनि चन्द्रमा द्वारा सम्पाति को दिये गये दार्शनिक उपदेश अधिक हैं।[10]

सीता दर्शन लालसा से आशान्वित वानरगण परस्पर समुद्रोल्लंघन की शक्ति का उल्लेख करने लगे :

'निज-निज बल सब काहूँ भाष।' का स्पष्ट एवं विस्तृत उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।[11] जामवन्त ने वामनावतार में प्रदक्षिणा का पूर्व वृत्तान्त कहा परन्तु वृद्धावस्था की असमर्थता प्रगट की।[12] अंगद को प्रति निवर्तन में संदेह रहा।[13] परन्तु हनुमान को जाम्बवान्

---

१. वा० रा० ४।५४।६-१२।
२. अ० रा० ४।७।११-२२।
३. मा० ४।२६।२।
४. वा० रा० ४।५७—६३ सर्ग तक।
५. मा० ४।२६ २८ दोहा।
६. जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता।
तिन्हहि देखाइ देहेसु तें सीता॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू।
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोचरत अहई॥
मा० ४।२७।९।१२।
७. 'उत्पेपतुस्तदा पक्षौ समक्षं पनचारिणाम्। वा० रा० ४।६३।८।
८. अ० रा० ४।८।५२, ५३।
९. अ० रा० ४।९।१२-४६।
१०. वा० रा० ४।६५। १-२१।
११. वा० रा० ४।६५।९-१५।, अ० रा० ४।९।१०, ११। मा० ४।२८।७, ८ तथा ४।२९।
१२. वा० रा० ४।६५।१६।, अ० रा० ४।९।१२।, मा० ४।२९।१।
१३. वा० रा० ४।६६।३-३७। अ० रा० ४।९।१७-२०।

ने सर्वोपरि समझ बल वीर्य की प्रशंसा कर, हनुमान् का पूर्व वृत्तान्त वर्णन कर,[1] समुद्रोल्लंघन की आज्ञा दी तथा उनके मौन[2] पराक्रम को तीव्रतम रूप में सजग कर दिया।[3]

'राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥'[4]

पर्वतोपम हनुमान् की गर्वोक्तियां रामायण[5] एवं अध्यात्म[6] में विशेष हैं। मानस में भी दो पंक्तियों में उनका उल्लेख है परन्तु हनुमान् का विनीत भक्तरूप होने के कारण जाम्बवान् से परामर्श लेने का विशेष उल्लेख है[7] जब कि अध्यात्म रामायण में केवल आर्शीवाद प्राप्ति का।[8]

वाल्मीकि[9] एवं अध्यात्म रामायण[10] दोनों में शत्रु निकन्दन, पवननन्दन का महेन्द्र पर्वत पर चढ़ जाने का उल्लेख है, मानस में नहीं। मानसकार ने त्रैलोक्य पावन सुयश प्राप्ति कर्ता श्रीराम की विरुदावली एवं भावी चरित का निर्देश जामवन्त द्वारा कराया है।[11]

वाल्मीकि[12] ने मनस्वी महानुभाव हरिश्रेष्ठ हनुमान के लंका की ओर प्रस्थान का का भी उल्लेख कर दिया है। अध्यात्मकार इस विषय पर मौन हैं। मानसकार[1] ने जामवन्त को राम गुण ग्राम में निमग्न कर भक्ति भाव निमज्जित कर स्वयं को भी भाव मग्न कर दिया है फिर कथा कौन कहे और कौन सुने? अतः जामवन्त के वचनों की प्रतिक्रिया के दर्शन हमें फिर सुन्दर कांड में ही होते हैं। उपसंहार में यहां तो तुलसी अपने उद्देश्य की ओर उन्मुख हैं। राम कथा माहात्म्य रूप भवभेषज रघुनाथ यश की ओर संकेत कर रहे हैं।

सुन्दर काण्ड

श्री राम कथा का सर्वोत्तम काण्ड एवं सुन्दरतम सोपान कार्य दृष्टि, भाव दृष्टि दोनों दृष्टिकोण से ही अप्रितम हैं। इस काण्ड का नामकरण ही इस काण्ड की विशेषताओं का प्रतीक है। सभी काण्डों की अपेक्षाकृत इस काण्ड का नाम किसी स्थान विशेष पर न होकर

---

२. वा० रा० ४।६६।२।, अ० रा० ४।९-१६।, मा० ४।२९।३।
३. वा० रा० ४।६६।३८। अ० रा० ४।९।२२।
४. भा० ४।२९।६।
५. वा० रा० ४।६७।११-३९।
६. अ० रा० ४।९।२२।२४।
७. मा० ४।२९।१०-१२, छंद।
८. अ० रा० ४।९।२६, २७।
९. वा० रा ४।६७।४०।
१०. अ० रा० ४।९।२८।
११. मा० ४।३० (क)
१२. वा० रा० ४।६७।५०।
१३. मा० ४।३० ।ख।

उसके गुण एवं लक्षण का परिचायक है। इसकी विशेषता का प्रमाण कथा की सुन्दरता एवं कवित्व शक्ति की पराकाष्ठा है। इसकी अलौकिक सुन्दरता अनेक कारणों से है जिनका उल्लेख 'कला' प्रदर्शन करते समय किया जायगा। यहाँ तो संक्षेपतः उसके प्रमुख तत्व ही विचारणीय हैं।

श्रीराम के अनन्य सेवक भक्ताग्रगण्य हनुमान् की कर्त्तव्यनिष्ठ गौरव गाथा का आद्योपान्त वर्णन, जगज्जननी जानकी की करुण रस परिप्लुता दयनीय दशा का चित्रण, उनका पातिव्रतधर्म, रावण के प्रलोभनों का बहिष्कार एवं तिरस्कार करने वाली सीता का परम तेजस्वी रूप इत्यादि नितान्त शिक्षाप्रद वर्णन अवलोकनीय हैं।

मानस की अपेक्षा वाल्मीकि ने चन्द्रोदय, पुष्पक विमान, भवन-निर्माण-कला, संगीत, चित्रकला, उद्यान-निर्माण, चैत्य प्रासादादि का वर्णन विशेष कवित्व शक्ति का प्रमाण है। परन्तु वाल्मीकि की अपेक्षा मानस में 'हनुमत् चरित्र के कारण विशिष्ट साधना का काण्ड बन गया है। जबकि—

'वाल्मीकि रामायण का सुन्दर काण्ड भी परम चमत्कारपूर्ण और अनुष्ठानिकों का परम आधार है। गोस्वामी जी के मानस के सुन्दर काण्ड ने भी इस दिशा में वैसी ही सफलता पाई।'[1]

वाल्मीकि रामायण में सुन्दर कांड की कथा वस्तु

अद्वितीय दुष्कर कर्म के चिकीर्षु, सिंहसम पराक्रमशाली हनुमान ने सीतान्वेषणार्थ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। गगनगामी महावीर को उड़ते हुए देख पर्वत निवासी जीव जन्तु, गंधर्वादि भयभीत हो उठे। विद्याधर अपनी रमणियों सहित अस्त व्यस्त दशा में भाग खड़े हुए। समुद्र का उल्लंघन करते समय हनुमान से मैनाक ने आग्रह किया। हनुमान उसे अपनी पथ बाधा समझ आगे बढ़े। मैनाक द्वारा हनुमान का स्वागत सत्कार देख कर इन्द्र ने मैनाक को अभय दान दिया।

देवतागण से प्रेरित सुरसा हनुमद् बल की परीक्षा लेने के निए भयानक रूप धारण कर आगे बढ़ी। उनसे भी हनुमान ने सफलता प्राप्त कर वायु पथ पर आगे बढ़े। तत्पश्चात् सागर निवासिनी सिंहिका का वध कर सबके प्रशंसास्पद हुए। समुद्रोल्लंघन करते ही लंका नगरी के तट प्रदेश के दर्शन किये। उस नगरी की चातुर्यपूर्ण व्यवस्था देखकर हनुमान् चिंतित होकर विचार करने लगे। सायंकाल गुप्त रूपेण चन्द्रोदय होते ही वैभव सम्पन्न नगरी में सतर्कता से प्रवेश किया जहाँ लंका की अधिष्ठात्री देवी ने हनुमान् को रोका। अंततः उस पर भी विजय प्राप्त कर लंका प्रवेश कर लंका के विशाल वैभव पर दृष्टिपात किया। स्वच्छ ज्योत्सना में लंका निवासियों के विलासितामय जीवन के दर्शन किये। इस प्रकार सभी महलों में परिभ्रमण करते हुए हनुमान् ने रावण के विशाल वैभव एवं सजधज सम्पन्न प्रासाद के दर्शन किये। सुप्त नारियों में मन्दोदरी को सीता मानकर चिन्तित हुये। परन्तु यह भ्रान्ति शीघ्र ही दूर हो गई। सीता दर्शन न पाकर हनुमान् विक्षुब्ध-हृदय हो उठे, आशंकित हो उठे परन्तु सीतान्वेषण का संकल्प दृढ़तम होता गया। वृक्ष-

---

१. मानस में राम कथा—पृष्ठ ११६।

राजियों से परिपूर्ण अशोक वाटिका में सर्वत्र खोजने पर एक महान् प्रासाद में शोकाकुल सीता के दर्शन पा आनन्दित हुये ।

प्रातः वेला होते ही रावण अनेक रमणियों को साथ लेकर सीता के समीप आता है । हनुमान् ने छिपकर सीता रावण के उत्तर प्रत्युत्तर सुने । क्रोधाविष्ट रावण सीता के साथ दमन नीति का प्रयोग करता है । गंधर्व कन्यायें सीता को सान्त्वना देती हैं । रावण कुरुपा राक्षसियों को सीता के पास नियुक्त करता है । वे सभी रावण के प्रस्थान करते ही सीता को रावण पत्नी बनने का उपदेश देती हैं । सीता राम के प्रति अटल प्रेम दर्शाती है । राक्षसियों से प्रताड़ित होकर वृक्ष के नीचे चली जाती हैं । यहाँ भी राक्षसियों द्वारा मार कर खाए जाने की धमकी सुन सीता बिलखने लग जाती हैं । त्रिजटा राम का अभ्युदय तथा रावण का अधःपतन सूचक स्वप्न सुनाती है । सीता को शुभ सगुन होते हैं । शोकावेग से पीड़ित सीता प्राण-त्याग करने को उद्यत हो जाती हैं । राम के विषय में भी आशंकित हो उठती हैं । परन्तु शकुन देख सीता को कुछ धैर्य होता है । बहुत विचार विमर्श करने पर हनुमान् ने संक्षेपतः समस्त पूर्व घटनाओं का वर्णन किया, सीता ने सहसा उस पर विश्वास न कर हनुमान् को रावण समझा । फिर विश्वस्त होकर हनुमान् से राम तथा लक्ष्मण के वृत्तान्त सुनने लगीं । अभिज्ञानार्थ मुद्रिका अर्पित कर परस्पर संभाषण किया । सीता ने भी अपनी चूड़ामणि दी । हनुमान् ने सीता को आश्वासन दे प्रस्थान किया तथा उपवन ध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया ।

यह देख राक्षसियाँ हनुमान् के विषय में सीता से प्रश्न करती हैं, परन्तु सीता उन्हें वेशधारी राक्षस ही बताती हैं । राक्षसियाँ इसकी सूचना तुरन्त रावण को देती हैं । क्रोधित होकर रावण ने क्रमशः किंकर, प्रहस्त-पुत्र, जम्बूमाली, अमात्य-पुत्र, दुर्धर, विरूपाक्ष, यूपाक्ष, प्रघस, भासकर्ण तथा अक्षय कुमार को भेजा और सभी का हनुमान् ने वध किया । अंततः इन्द्रजीत मेघनाद का हनुमान् से युद्ध हुआ । ब्रह्मास्त्र से बँधकर रावण के वैभव को आश्चर्यान्वित होकर देखा । हनुमान् ने रावण को समझाने की आज्ञा दी परन्तु उन्हें रावण ने मृत्यु दंड की आज्ञा दी । विभीषण ने दूतवध का अनौचित्य दर्शाकर रावण को समझाने की चेष्टा की । रावण की पूंछ जलाने की आज्ञा सुन, हनुमान ने कोई विरोध प्रकट न किया क्योंकि वे दिन के प्रकाश में समग्र लंकावलोकन करना चाहते थे ।

यह समाचार सुनकर सीता अपनी सामर्थ्य से अग्नि में शीतलता उत्पन्न करने की प्रार्थना करती हैं । समग्र लंका को जलता हुआ देख हनुमान के मन में सीता के भी दग्ध हो जाने की आशंका हुई परन्तु शीघ्र ही सीता को सकुशल जान उन्हें शान्ति मिली । सीता के पुनः दर्शन कर हनुमान ने प्रत्यावर्त्तन किया ।

आकाश मार्ग से प्रत्यागमन कर हनुमान अपने प्रिय मित्र वानर गण से मिले और समस्त वृत्तान्त सुनाया । इस पर विचार विनिमय करते समय अंगद ने सीता-मुक्ति का गर्वोक्ति पूर्ण प्रस्ताव रक्खा परन्तु जाम्बवान् ने इसका विरोध किया ।

मधुवन पहुँचकर हर्षातिरेक से युक्त वानर गणों ने उत्पात मचाया जिसकी सूचना दधिमुखादि प्रमुख रक्षकों ने सुग्रीव को दी ।

सभी सफलित प्रयत्न होकर वानर प्रसन्नचित्त हो राम एवं सुग्रीव के पास पहुँचे। पूर्वेतिहास सुनाकर चूड़ामणि रत्न दिया जिसे पाकर राम शोकातिरेक से आकुल हो उठे और सीता के समाचार अधिकाधिक सुनने की इच्छा प्रकट की। हनुमान ने सीता के साथ किये हुए काक-वृत्तान्तादि, वार्तालापादि राम को श्रवणगत कराया।

मानस में सुन्दरकांड की कथावस्तु

प्रारम्भ में राम एवं हनुमान वंदना के पश्चात् तुलसी ने हनुमान समुद्रोल्लंघन से कथा का आरम्भ किया। समुद्र ने मैनाक द्वारा राजदूत का सत्कार किया। सुरसा ने हनुमान की बल बुद्धि की परीक्षा ली और हनुमान् ने सफल हो आशीर्वाद प्राप्त किया। आगे चल कर सिंहिका राक्षसी का वध कर लंकापुरी के दर्शन किये। लंकिनी के साथ संघर्ष कर लंका में प्रवेश किया। सीतान्वेषण करते समय विभीषण से भेंट हुई। उनसे पता पूछ कर अशोक वन गमन कर सीता के दर्शन किये। सीता रावण का वार्तालाप तरुपल्लव में छिप कर सुनते रहे। रावण को वधोद्यत देख मन्दोदरी ने बहुत समझाया। रावण एक मास की अवधि, राक्षसियों की नियुक्ति कर, घर चला गया।

सीता को सभी राक्षसियाँ भयभीत करने लगीं परन्तु रामचरण-रता, निपुण, विवेक-शीला त्रिजटा ने रामाभ्युदयकारी एवं राक्षस-संहारक स्वप्न सुनाकर अन्य राक्षसियों को त्रसित किया जिससे भयभीत होकर सभी सीता जी की शरण हो गईं।

त्रिजटा ने सीता को आश्वासन दिया। विरहाकुल सीता को एकाकी देख हनुमान् ने मुद्रिका सर्वप्रथम सीता के पास भेजी। उसे पा सीता हर्ष एवं विस्मय से युक्त हो उठीं। परन्तु राम-गुणगान द्वारा विश्वस्त होकर सीता ने हनुमान से पूर्ण पूर्व वृत्तान्त सुना और हनुमान् को आशीर्वाद दिया। हनुमान् ने अपने को क्षुधा-पीड़ित दर्शाकर सीता से आज्ञा ले अशोक वन के फलों को खाने और वृक्षों को उखाड़ने लगे। अशोक वाटिका को ध्वंस होता देख रक्षक गणों ने रावण को सूचना दी। रावण द्वारा प्रेषित अनेक राक्षस-गण तथा अक्षयकुमार का हनुमान् ने वध किया तत्पश्चात् मेघनाद से युद्ध हुआ परन्तु मर्यादा पालन के दृष्टिकोण से अपने को ब्रह्मपाश में बँधवा लिया। हनुमान् ने बन्धन स्थिति में भी रावण को दिव्य उपदेश देकर प्रबोधन किया। राम के ईश्वरत्व का वर्णन किया। परन्तु रावण ने उस पर ध्यान न दे अंग-भंग की आज्ञा दी।

लंकादहन कर हनुमान् ने सीता के दर्शन किये। सीता का संदेश ले, उन्हें आश्वासन देकर समुद्रोल्लंघन किया। सभी प्रिय वानर गण के सहित मधुवन फल भक्षण कर उसे हर्षातिरेक से उजाड़ने लगे। हनुमान् ने राम के निकट आकर सीता की कुशल एवं संदेश निवेदित किया। कृतज्ञता रूप में राम भक्ति का वरदान प्राप्त किया।

सीता के कुशल समाचार पाकर राम की सेना ने समुद्र तट की ओर प्रस्थान कर दिया। उधर रावण को उसके मंत्रियों, विभीषण एवं माल्यवान् ने सीता लौटा देने की शिक्षा दी परन्तु उसमें रंच मात्र भी परिवर्तन न हुआ अपितु उपेक्षित होकर विभीषण को लंका का परित्याग कर देना पड़ा।

भक्त विभीषण ने इष्ट देव राम के चरणों के दर्शन के साथ साथ लंका राज्य भी प्रतीक रूपेण प्राप्त किया। विभीषण से मंत्रणा लेकर राम समुद्र तट पर बैठकर समुद्र से विनय करने के हेतु दर्भ बिछा कर बैठ गए।

उधर रावण ने शुक को गुप्त दूत रूप में राम सेना का पता लगाने भेजा परन्तु उसे वानरों ने प्रताड़ित करके ही छोड़ दिया और लक्ष्मण ने अपना संदेश रावण के पास भेजा। शुक ने भी रावण को समझाया परन्तु चरण प्रहार पाकर वह भी राम के पास आकर श्राप मुक्त हो गया।

राम ने तीन दिन पश्चात् समुद्र का पूर्ववत् मौन देख धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। यह देख समुद्र विप्ररूप रख नाना उपायन ले राम की सेवा में उपस्थित हुआ। राम ने उसी बाण से उत्तर तट वासी खलों को मार उसकी पीड़ा दूर की।

वाल्मीकि एवं मानस के सुन्दरकांड की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन।

पंचम सोपान में प्रवेश करते ही यद्यपि कथा का मुख्य विषय सीतान्वेषण ही है परन्तु उसके प्रतिपादन में साम्य होते हुए भी रामायण तथा मानस में पर्याप्त भेद है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार।

'वाल्मीकीय रामायण का सुन्दर कांड भी परम चमत्कार पूर्ण और अनुष्ठानिकों का परम आधार है। गोस्वामी जी के राम चरित मानस के सुन्दर कांड ने भी इस दिशा में वैसी ही सफलता पाई। संक्षिप्त होते हुए भी यह बहुत महत्वपूर्ण है।'[1]

वाल्मीकि रामायण में हनुमान् के समुद्रोल्लंघन के विस्तृत वर्णन द्वारा कथा आरम्भ होती है। जबकि गोस्वामी जी ने वाल्मीकि रामायण की भाँति महेन्द्राचल पर्वत का वर्णन न कर एक पंक्ति में ही पर्वतारोहण की सूचना दे दी है।[2]

वाल्मीकि रामायण में मैनाक के पूर्व वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन है।[3] मानस में इस प्रसंग का नितान्त अभाव है। मैनाक का आतिथ्य-संस्कार, मारुति-मैनाक संवाद, मैनाक का मानुष रूप धारण कर हनुमान से मिलन, इन्द्र द्वारा मैनाक को अभय-दान इत्यादि प्रसंगों का मानस में अभाव है। मानस में केवल हनुमान ने मैनाक का स्पर्श मात्र किया जिसका उल्लेख आनन्द रामायण में है।[4] परन्तु दोनों रामायणों में अन्तर यह है कि आनन्द रामायण में मैनाक के कई बार प्रार्थना करने पर हनुमान ने मैनाक का स्पर्श किया मानस में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। वरंच विश्राम न करने का कारण हनुमान् ने बड़े लालित्य ढंग से भक्ति रसाप्लावित रूप में कहा।

'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम।'[5]

---

१. मानस में राम कथा पृष्ठ ११६।
२. सिंधु तीर एक सुन्दर भूधर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर···· मा० ५।१।५।
३. वा०रा० ५।१।११५ ११९।
४. आ०रा० सा र० ९।११।१२।
५. मा० ५।१।

हनुमान् सुरसा संवाद वाल्मीकि रामायण में विस्तृत, मानस में अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। मानस में इस स्थल पर कथा प्रसंग वाल्मीकि रामायण के समान है। उनमें सुरसा संवाद के पश्चात् मैनाक प्रसंग वर्णित है। मानस पीयूष के अनुसार यह कथा क्रम विशेष उपयुक्त है।

'साहित्यिक दृष्टि से इस भेद में भी चरित्र-चित्रण चारुता की झलक है। मैनाक समुद्र में रहता है, अतएव उसका पृथक् ही आना उचित ही है।[१]

सुरसा प्रसंग का दोनों में लगभग साम्य है। हनुमान् ने वाल्मीकि रामायण में पुन: लौट कर आने की शपथ ली।[२] मानस में 'सत्य कहौं' तथा 'राम काज करि फिरि मैं आवौं' कह कर आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया। अध्यात्म रामायण में शपथ का उल्लेख नहीं है। सुरसा पर क्रोध का प्रसंग भी समान ही है।[३]

छायाग्राहिणी सिंहिका के प्रसंग का उल्लेख रामायण में विस्तार पूर्वक है[४], मानस में संक्षेप के साथ।[५] दोनों में अन्तर यह है कि अध्यात्म रामायण में सिंहिका को हनुमान् ने पैरों से मारा है, वाल्मीकि रामायण में मर्मस्थान विदीर्ण किया है। गोस्वामी जी ने सबका समन्वय 'ताहि मारि' में ही कर दिया है।

वाल्मीकि रामायण में इस छायाग्राहिणी का परिचय सुग्रीव ने हनुमान् को पूर्ण ही दिया था।[६] इसका भी संकेत 'चीन्हा' शब्द में किया गया है।

हनुमान् त्रिकूट पर्वत पर स्थित होकर लंका पुरी को देखा उसका वर्णन वाल्मीकि रामायण में विस्तृत है।[७] मानस में भी एक छंद में उसका सूक्ष्म चित्रण[८] है।

वाल्मीकि रामायण में हनुमान् के विचार विमर्शों की व्याख्या की गई है कि वे किस प्रकार लंका पुरी में प्रवेश करें।[९] मानस में संकेत मात्र।[१०] मानस में लंकिनी प्रसंग अध्यात्म रामायण के समान है।[११] केवल संवाद में कुछ अन्तर है। अध्यात्म रामायण में लंकिनी सीता का निवास स्थानादि का भी निर्देश करती है।[१२] मानस में केवल ब्रह्मा जी के वाक्यों का उल्लेख मात्र।[१३]

---

१. मानस-पीयूष, सुन्दर कांड पृष्ठ २६।
२. वा०रा० ५।१।१४९।
३. वा०रा० ५।१।१५४।
४. वा०रा० ५।१।१८० १९०।
५. मा० ५।२।३।
६. वा०रा० ४।६७।
७. वा०रा० ५।२।१२४।
८. मा० ५।३ छंद।
९. वा०रा० ५।२।३१ ३५।
१०. मा० ५।३।
११. अ०रा० ५।१।४४।५८।
१२. अ०रा० ५।१।५४ ५६।
१३. मा० ५।३।६८।

वाल्मीकि रामायण में लंकिनी ने हनुमान् पर वेग से लात मारी परन्तु मर्यादा वादी तुलसी भक्त हनुमान् पर नारी द्वारा आघात कैसे वर्णन करते। मुष्टि प्रहार का दोनों में उल्लेख है।[1] अध्यात्म रामायण की भाँति वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा के लंकिनी से कहे हुए समस्त चरित का उल्लेख नहीं है। केवल इतना ही व्यक्त है कि किसी वानर के पराक्रम से लंकिनी के पराजित होने पर राक्षसों पर विपत्ति का आगमन निश्चित है।[2] यही कथन मानस का भी है।[3] परन्तु मानस में 'देखेउँ नयन राम कर दूता' में हनुमान् को रामदूत जान लेने में अध्यात्म रामायण के चरित का भी संकेत मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में लंकापुरी एवं विविध कलासम्पन्न रावण राज्य तथा उसकी रंग रेलियों का अत्यंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं व्यापक चित्रण किया गया है[4] जिसका मानस में नितान्त अभाव है। राम विरोधी रावण की नगरी के विलास एवं ऐश्वर्य का चित्रण करना तुलसी के सिद्धान्त के विरुद्ध था।

सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान् ने वाल्मीकि रामायण में राजपथ, जनपथ सर्वत्र खोजकर अशोक वनिका में स्वतः ही पदार्पण किया परन्तु आनन्द रामायण, पुलस्त्य रामायण के आधार पर तुलसी ने विभीषण का परामर्श पाकर सीता के दर्शन प्राप्त किये।

मारुति-विभीषण संवाद का भक्ति परिप्लुत रूप तुलसी की मौलिक देन है। भक्ति के दृष्टिकोण के अतिरिक्त प्रवन्ध दृष्टि से भी यह प्रसंग अत्यन्त आवश्यक है। मानस-पीयूषकार का कथन इस प्रसंग के विषय में नितान्त संगत आलोचना है—

'वह राजनीतिनिपुण भी था। प्रमाण यथा 'नीति विरोध न मारिय दूता' 'कही विभीषण नीति बखानी' 'अति नय निपुन न भाव अनीती'। अब सोचिये कि ऐसा राज्याकांक्षी और राजनीतिज्ञ अर्थात् स्वार्थी, बुद्धिमान और चतुर विभीषण भाई के प्रत्यक्ष शत्रु के शरण में अल्प भी पूर्व परिचय बिना एकाएक ही कैसे जा सकता है? कुछ न कुछ पूर्व अनुसन्धान के बिना ऐसी बात होना एकदम ही अस्वाभाविक दिखती है।'

उपर्युक्त अस्वाभाविकता का दोष निकाल देना ही मेरी समझ से हनुमाद् विभीषण संवाद का मुख्य प्रयोजन है। संवाद से विभीषण शरणागति की शृंखला जुड़ जाती है और कथानक की त्रुटि साफ निकल आती है। हमारी दृष्टि से तो यह संवाद विभीषण शरणागति की प्रस्तावना ही है जिसके कारण उसे (विभीषण शरणागति को) इतनी रमणीयता आ सकी है।

श्री हनुमत् विभीषण मिलाप का समावेश करके कवि ने वाल्मीकि आदि की त्रुटियों की पूर्ति कर दी है। कवि की दृष्टि इतनी तीव्र एवं व्यापक है कि कोई बात उसके देखने और मनन करने से छूटती नहीं थी।' इसका एक उदाहरण यह मिलाप भी कहा जा सकता है।[5]

---

१. वा० रा० ५।३।३८। मा० ५।३।४।
२. वा० रा० ५।३।४७।
३. मा० ५।३।७।
४. वा० रा० ५।४ सर्ग से १२ तक।
५. मानस पीयष सु० का० पृष्ठ ७४।

उक्त संवाद का आधार पुलस्त्य रामायण, हनुमद्रामायण तथा आनन्द रामायण है।

वाल्मीकि रामायण में स्वतः अशोक वाटिका में पहुँचकर हनुमान् ने उसकी सुरम्य नैसर्गिक छटा के दर्शन किये।[१] उस नंदन वन के एवं चैत्ररथ वन के सदृश वाटिका के समीप ही एक प्रासाद देखा। वहीं पर मलिनवसना, एक क्षीणवदना, वेणी धारिणी सीता[२] के दर्शन किये। अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकि रामायण में प्रासाद में सीता के दर्शन हनुमान् ने किये, मानस में अशोक वृक्ष के नीचे।

वाल्मीकि रामायण में सीता के दर्शन पा स्वतः ही हनुमान् ने सीता के सौन्दर्य, तेज एवं लक्षणादि द्वारा अपना मत निश्चय किया कि सीता यही है।[३] इन विचारों एवं परीक्षणों का मानस में अभाव है। सीता को देख हनुमान् सीता के गुण, रूप, वैभव, चरित्रादि का सम्यक् निरीक्षण करते हुये सीता के प्रति करुण हो उठे।[४] मानस में 'परम दुःखी भा' कह कर सबका संक्षिप्त समाहार किया है। वाल्मीकि रामायण में रावणागमन के पूर्व भी सीता को चतुर्दिक क्रूरवदना राक्षसियों से घिरा हुआ दिखाया है,[५] मानस में नहीं।

वाल्मीकि रामायण[६] एवं अध्यात्म रामायण[७] में हनुमान ने रात्रि के अवसान होते ही रावण को आता हुआ देख अपने को तरुपल्लवों से आवृत्त कर लिया।[८] मानस में पहले ही सुव्यवस्थित ढंग से गुप्त रीति से जब हनुमान तरुपल्लवों के मध्य विराजमान हो गये तब रावण का आगमन दिखाया गया है।[९]

वाल्मीकि रामायण में रावण सोकर उठते ही सीता के पास अपनी विशिष्ट रानियों के साथ आया। अध्यात्म रामायण में यह प्रसंग है कि रावण को स्वप्न हुआ कि एक वानर श्री जानकी जी के पास आकर बातें कर रहा है अतः वह स्वप्न देखते ही उठकर स्त्रियों सहित सीता के पास आया[१०]। आनन्द रामायण में भी इस प्रकार रावण के स्वप्न का उल्लेख है।[११]

सीता के समीप आकर वाल्मीकि रामायण में रावण सीता के प्रति अपनी क्रूर कामान्धता का परिचय कर[१२] सीता को प्रलोभन दिये। मानस में 'बहु विधि खल सीतहि

---

१. वा० रा० सु० १४ वाँ सर्ग।
२. वा० रा० ५।१५।५३,२६।
३. अ० रा० २।२।९।
४. वा० रा० ५।१५।२०,२७, ५।१५।२८,४४।
५. वा० रा० ५।१६।३८,५४।
६. वा० रा० ५।१७।४,१७।
७. वा० रा० ५।२।
८. अ० रा० ५।२।१४।
९. मा० ५।८।१,२।
१०. मा० ५।८।१,२।
११. वा० रा० ५।१७।२०।
१२. अ० रा० सार० ९।६९,७१।

समुझावा' में ही उसकी दुष्ट उक्तियों एवं प्रस्तावों की ओर संकेत किया है ! मर्यादावादी तुलसी जगज्जननी के प्रति ऐसे वाक्य शत्रुभावना के उपासक रावण से कैसे कहलाते ।

रावण की कटूक्तियों के प्रत्युत्तर में सीता ने तिनके की ओट, वाल्मीकि रामायण में रावण का तिरस्कार कर उसके प्रति नैतिक उपदेश कर अपने पतिव्रत धर्म का ज्वलन्त उदाहरण दिया । रावण से अपने को लौटा देने का प्रस्ताव कर रावण की अत्यधिक भर्त्सना की । मानस का सीता रावण संवाद प्रसन्नराघव के समान है ।[१] दोनों में प्रसंग समान होने पर भी उक्तियों में मर्यादा का पिष्ट-पेषण तुलसी में अधिक है ।

वाल्मीकि रामायण तथा मानस में रावण द्वारा निश्चित की गई अवधि में भी अन्तर है । प्रथम में दो मास की[२] द्वितीय में एक मास ।[३] इसके अतिरिक्त रावण मानस की अपेक्षा-अध्यात्म रामायण[४] एवं मानस के समान ही 'कृश तनु सीस जटा इक वेणीं के दर्शन कृतसीता के प्रति अधिक कटु है[५] मर्यादावादी तुलसी अपनी इष्ट देवी सीता के प्रति किसी भी प्रकार के निन्दनीय शब्दों का प्रयोग कैसे करते ?

वाल्मीकि रामायण में रावण द्वारा नियुक्त राक्षसियों ने सीता को रावण के प्रति उन्मुख करने का प्रयत्न भी किया ।[६] सीता को अनेक रूप से भयभीत किया ।[७] मानस में इस प्रसंग का अभाव भी पूर्वोक्त कारण से ही है । मानस में केवल 'सीतहिं त्रास देखावहिं' कह कर तुलसी ने भक्त त्रिजटा का स्वप्न कहना प्रारम्भ कर दिया है ।

वाल्मीकि रामायण में राक्षसियों से प्रताड़ित सीता ने विलाप करते हुये अपने पति-व्रत धर्म का परिचय दिया । राम के गुणों का स्मरण करती हुई सीता रावण के विनाश को निश्चिय मानती हैं तथा साथ ही राम वियोग में अपने प्राणान्त का भी संकल्प करती हैं ।[८] कुछ राक्षसियाँ गुप्त रूपेण समस्त समाचार रावण के पास ले जाती हैं शेष अनर्थकारी कटु वचनों का प्रहार करती हैं । इन सब प्रसंगों का अनावश्यक विस्तार समझने के कारण मानस में नितान्त अभाव है ।

त्रिजटा का स्वप्न मानस की अपेक्षाकृत रामायण में विस्तृत है ।[९] परन्तु दोनों में स्वप्न का फल, राम का अभ्युदय एवं रावण का नाश सूचक ही है । दोनों में ही सीता के चरणों में राक्षसियों द्वारा प्रणिपात वर्णित है । रामायण में एक विशेषता और है । सीता ने अपनी[१०] शरणागत वत्सलता का परिचय भी दिया है राक्षसियों की सुरक्षा का वचन देकर ।

---

१. वा० रा० ५।२०।
२. वा० रा० ५।२१।६।
३. वा० रा० ५।२१।३।
४. अ० रा० ५।२।३१।
५. प्र० रा० ६।३०।
६. वा० रा० ५।२२।८। अ० रा० ५।२।४१।
७. वा० ५।१९।९। भट्टिकाव्य-न मासे प्रतियतासि मां चेन्मतासि मैथिलि ।
८. वा० रा० ५।२२।९ वा० रा० ५।२३।३१।
९. वा० रा० ५।२३। सर्ग ।
१०. वा० रा० ५।२४।४७।

स्वप्न से राक्षसियों के चले जाने के उपरान्त सीता अवधि त्रास एवं नीच रावण द्वारा वध की चिन्ता से दु:खित हो उठीं ।[१] अपने परम प्रिय इष्ट जनों का स्मरण कर मरणोपाय सोचने लगीं अन्तत: शोकसंतप्ता सीता ने शोकावेग से प्रताड़ित होकर वेणी के दृढ़धागों से आत्महत्या करने का विचार किया ।[२] अध्यात्महत्या रामायण में भी यही संकल्प है परन्तु स्वकुलचिन्ता एवं शुभ शकुनों ने इस विकल्प को स्थगित कर दिया ।

. मानस में भी यद्यपि सीता को वियोगाग्नि एवं रावण की भर्त्सना से पीड़ित हो अपना मरण ही वांछित हो जाता है परन्तु स्वत: नहीं त्रिजटा से 'आनि काठ रचु चिता बनाई' में जलकर । इस त्रिजटा के प्रसंग का वाल्मीकि रामायण में अभाव है । यह भक्त कवि की प्रेरणा है जो भक्ता त्रिजटा को जगज्जननी इष्ट देवी जानकी के प्रति सहानुभूति दर्शाकर उनको आत्म हत्या करने से रोकना दर्शाया है । यद्यपि यह प्रसंग प्रसन्नराघव नाटक में भी प्राप्य है[३] परन्तु दोनों वर्णनों का सूक्ष्माध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि यह अन्तर गोस्वामी जी में वस्तु-विन्यास-कौशल की निपुणता एवं मार्मिकता को प्रमाणित करता है ।

निशाचरियों के चले जाने के उपरान्त रामायण में हनुमान् संकल्प विकल्प[४] के पश्चात् सीता को वृक्ष शाखाओं पर स्थित होकर ही मधुर वाणी से राम चरित वर्णन करना प्रारंभ कर दिया । सीता ने उन वचनों को सुन हनुमान् की ओर दृष्टि की परन्तु फिर भी भय एवं आशंका से अभिभूत हो उठी ।[५] हनुमान् ने सीता के समीप आकर सीता का परिचयादि पूछा । सीता ने वनवास का वृत्तान्त कह कर दुरात्मा रावण की अवधि की सूचना दी । परस्पर वार्तालाप से सीता आश्वस्त अवश्य हुईं परन्तु हनुमान् को निकट आता देख उनकी यह आशंका उत्तरोत्तर बढ़ती गई कि यह कहीं वानर रूपधारी रावण न हो ।[६] परन्तु हनुमान् ने उनकी शंका का निवारण राम लक्ष्मण के शारीरिक सुन्दरता एवं गुणों के परिचय,[५] राम सुग्रीव मैत्री का वृत्तान्त कह कर अपना जीवन परिचय भी दिया । तत्पश्चात् रामनामांकित मुद्रिका देकर सीता का विश्वास दृढ़त्तर किया ।[७]

मानस में इस प्रसंग का क्रम विपरीत है । उसमें प्रसन्नराघव[८] की भाँति नाटकीय तत्व एवं अनुकूल स्थिति का सामंजस्य किया गया है । सीता द्वारा अग्निकण की याचना तथा मुद्रिका का उससे साम्य जान उपयुक्त समय पर अशोक वृक्ष से याचित अग्नि कण की भाँति हनुमान् द्वारा मुद्रिका क्षेपण नितान्त उपयुक्त है ।[९] तदनुकूल मुद्रिका के प्रति सीता

---

१. वा० रा० ५।२५,२६ सर्ग ।
२. वा० रा० ५।२७।९-३०।
३. वा० रा० ५।२७।४८।
४. वा० रा० ५।२८।१।
५. वा० रा० ५।२८।१७। अ० रा० ५।३।१२।
६. प्र० रा० ६ अंक पृष्ठ ३३८,३३९।
७. वा० रा० ५।३०।
८. वा० रा० ५।३२।
९. मा० ५।१२ सो० ।

का उत्सुक भाव संघर्ष भी अवलोकनीय तत्व बन गया है जिस पर सीता मुद्रिका संवाद गीतावली,[१] हनुमन्नाटक[२] तथा प्रसन्नराघव[३] रामचन्द्रिका आदि में उक्ति चमत्कार के स्थल रचे गये हैं। तुलसी ने कथा वस्तु में अपनी संकेत कला का सुन्दर निदर्शन इस प्रसंग द्वारा किया है।[४] तत्पश्चात् उत्सुकता की निवृत्ति हनुमान् द्वारा 'रामचन्द्र गुन वर्णन करने' द्वारा करा कर नाटकीय तत्व का दिग्दर्शन करा दिया है। 'आदिहु ते सब कथा सुनाई' में संकेत कला का निदर्शन है और पुनरावृत्ति की नीरसता का अभाव है। इस वृत्तान्त को सुन सीता हनुमान् से प्रकट होने की इच्छा प्रगट करती हैं जबकि रामायण में स्वत: बिना किसी आज्ञा के हनुमान् सीता के सन्मुख गये हैं। इस भेद का कारण भी तुलसी की मर्यादा है। भक्त हनुमान् बिना माता की आज्ञा पाये कैसे अपरिचित होने के कारण समीप आने का दुस्साहस करते ?

हनुमान् के सम्मुख आने पर सीता ने उन्हें रावण न कहकर केवल अपना विस्मय ही प्रगट किया है। जिसकी निवृत्ति उन्होंने करुनानिधान राम की शपथ द्वारा की है। नर वानर संग कैसे हुआ ? इस संशय की निवृत्ति में रामायण से साम्य है। दोनों ग्रन्थों में पूर्णरूपेण आश्वस्त हो सीता आनन्द निमग्न हो उठीं।[५]

'हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी।।'

रामायण में 'अब कहु कुशल' को प्रश्नावली का विस्तार अधिक है।[६] हनुमान् ने राम विरह का चित्रण कर सीता को आश्वस्त किया। मानस में राम संदेश कथन की शैली प्रसन्नराघव[७] एवं हनुमन्नाटक[८] के आधार पर है परन्तु सरसता एवं गंभीरता गहनतत्व वेत्ता तुलसी के कथन में विशेष है।

रामायण में हनुमान् स्वयं सीता को अपनी पीठ पर ले जाने का प्रस्ताव रखते हैं[९] परन्तु पतिव्रता सीता कैसे पर-पुरुष का स्पर्श कर सकती थीं साथ ही साथ रावण पर विजय लाभ कर्ता राम को ही देखना चाहती थीं[१०] अत: वह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। मर्यादा-वादी तुलसी अपने इष्ट देव हनुमान् द्वारा यह अमर्यादित प्रस्ताव करना भी अवांछित मानते थे अत: स्वतः ही अध्यात्म रामायण[११] के समान आत्मश्लाघा रहित हनुमान् ने यह कह कर अपने को रामाज्ञानुवर्ती प्रमाणित किया।

---

१. गीता० ५।३,४।
२. हनु० ६।१६।
३. प्र० रा० ६।३८ पृ० ३४३।
४. 'सीता मन विचार कर नाना मा० ५।१२।४।
५. वा० रा० ५।३५।३८।
६. वा० रा० ५।३६।
७. प्र० रा० ५।४३,४४, पृष्ठ ३४७,४८।
८. हनु० ५।२५।
९. वा० रा० ५।३७।२२,२६।
१०. वा० रा० ५।३७।१८।
११. अ० रा० ५।५।७-८।

'अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥'

रामायण की सीता की भाँति स्वतः भक्त हनुमान् राम को विजयी देखने की भविष्य-वाणी करते हैं।[१]

हनुमान् ने दोनों ग्रन्थों में विशाल रूप का प्रदर्शन किया परन्तु दोनों के प्रसंग में भेद है। रामायण में स्वं-बल-प्रदर्शन हेतु,[२] मानस में सीता की जिज्ञासा 'हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना।' के समाधानस्वरूप।[३]

वाल्मीकि रामायण[४] तथा अध्यात्म रामायण[५] दोनों में इसी समय हनुमान् ने सीता से चूड़ामणि लेकर विदा ले ली हैं। तथा सीता ने जयन्त प्रसंग को स्मरण कराया है।[६] मानस की प्रबन्धात्मक शैली में इस प्रसंग का अभाव है।

तत्पश्चात् वाटिका विध्वंस का उद्देश्य वाल्मीकि रामायण में शत्रु बल ज्ञान की परीक्षा एवं रावण क्रोध उत्पादन है[७] मानस में अत्यन्त स्वाभाविक वानरस्वभावोचित फल की बुभुक्षा।[८]

मृगपक्षियों के कोलाहल से जागृत प्रमदावन का समूल विध्वंस देख विकृतांग निशाचरियों ने सीता से उस विशालकाय पर्वतोपम हनुमान् के विषय में प्रश्न किया। सीताने उत्तर रूप में यही लक्षित किया कि वे उसे नहीं जानती वह भी कोई यथेच्छ रूप धारी राक्षस हो सकता है।[९] यह सुन, व्याकुल राक्षसियां तुरन्त रावण के पास सूचना देने दौड़ गईं।

अध्यात्म रामायण में भी इस प्रसंग का उल्लेख है। परन्तु मानस में सीता राक्षसी संवाद का अभाव है।

यह सूचना पा क्रोध से संवलित रावण ने हुताग्नि के समान प्रज्वलित होकर अस्सी ससस्त्र किंकरों को हनुमान् को पकड़ लाने का आदेश दिया। उन समस्त राक्षसों का वध कर हनुमान् भीषण ललकार एवं गर्जन करते हुये चैत्य प्रासाद भंग करते हैं।[१०] तत्पश्चात् जम्बूमाली, अमात्य पुत्र, पंचवीरादि का वध कर रावण के पुत्र अक्ष को भी उसी यमपथ का अनुसरण कराते हैं।[११]

---

१. मा० ५।१५।५।
२. वा० रा० ५।३७।३५।
३. मा० ५।१५।६।
४. वा० रा० ५।३८।६८।
५. अ० रा० ५।३।४९,५२।
६. वा० रा० ५।३८।११,३७।
७. वा० रा० ५।४१।७,१३,२१।
८. मा० ५।१६।७।
९. वा० रा० ५।४२।१०। अ० रा० ५।३।७४।
१०. वा० रा० ५।४३।१–१२।
११. वा० रा० ५।४४,४५,४६,४७।

मानस में केवल 'नाना भट', सब रजनीचर एवं अक्ष संहार का ही उल्लेख है। इन युद्ध वर्णन प्रसंग में विशेष अन्तर यह है कि जहाँ वाल्मीकि रामायण में व्यास शैली का प्रयोग है वहाँ मानस में समास का। परन्तु कथावस्तु के क्रम में दोनों में साम्य है।

अक्षय कुमार का वध सुनकर रावण ने क्रोध से संतप्त होकर मेघनाद को भेजा हनुमान् के बन्धन के हेतु। रामायण में हनुमान् ने ब्रह्मास्त्र बन्धन से मुक्त होने में अपने को असमर्थ जानकर[1] तथा रावण के साथ वार्तालाप करने के अभिप्राय से[2] अपने को ब्रह्मास्त्र में बँधवा लेना ही श्रेयस्कर माना जबकि मानस में उसकी महिमा पालन इसका कारण है।[3]

रामायण में हनुमान् ने मंत्रियों से अपना परिचय देते समय सुग्रीव का दूत बताया,[4] बाद में श्री राम का। मानस में भक्त रूप प्रधान होने से श्री राम का।[5]

रामायण में रावण के प्रताप एवं ऐश्वर्य का विस्तृत एवं व्यापक चित्रण है। मानस में 'कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई' कह कर संकेत मात्र किया है। रावण प्रताप देख रामायण में हनुमान् सशंकित हो उठे,[6] मानस में नहीं।[7]

रामायण में हनुमान।
देकर[8] रावण को सशंकित करने का प्रयास किया। मानस में एकनिष्ठ। अनन्य सेवक होने के कारण केवल अपने इष्टदेव के अद्वितीय पराक्रम एवं शरणागवत्सलता का ही उल्लेख किया।[9] मानस में हनुमान का भाषण भक्ति, विवेक, विरति एवं नय से युक्त है।

हनुमान् के भाषण से दोनों ग्रन्थों में विभीषण के परामर्शानुसार कुपित रावण ने हनुमान् के अंग-भंग की आज्ञा दी।

रामायण में लंका दहन का सूक्ष्म एवं व्यापक चित्रण है।[10] इसमें मानस से कथावस्तु में अन्तर यह है कि सीता ने राक्षसियों द्वारा यह समाचार सुनकर स्वयं अग्नि की उपासना कर अपने पतिव्रत के वल पर अग्नि शान्त करने की प्रार्थना की। तभी हनुमान् को अग्नि की उपासना कर अपने पतिव्रत के बल पर अग्नि शान्त करने की प्रार्थना की। स्वीकृति

---

१. वा० रा० ५।४८।४२।
२. वा० रा० ५।४८।५५।
३. मा० ५।१९।
४. (१) वा० रा० ५।४८।६२।
   (२) वा० रा० ५।५०।११९।
५. मा० ५।२१।
६. वा० रा० ५।४९।२०।
७. मा० ५।१९।८।
८. वा० रा० ५।५१।३१,३६,४१।
९. मा० ५।२१-२३ दोहे तक तक।
१०. वा० रा० ५।५३।५३,५४,५५।

अग्नि शिखा को कल्याणकारिणी रूप में देखा ।[१] अपने पुत्र के प्रति कृत सीता के इस उपकार से कृतज्ञ हो पवनदेव अपना हिममारुतवत् रूप धारण कर सीता के लिये स्वास्थ्यकर होकर प्रवाहित होने लगे ।[२]

दूसरा अन्तर यह है कि रामायण में हनुमान् को भी सीता के भस्म हो जाने की अपार आशंका एवं विषाद हो गया ।[३] इस अपराध की आशंका से हनुमान् ग्लानि में निमज्जित हो गये । इस चिन्तित दशा की निवृत्ति चारणों के वचनों द्वारा हुई । सीता को अक्षत सुनकर हनुमान् स्वयं उनको प्रत्यक्ष देखने की इच्छा से, पुन: सीता के पास गये ।[४]

रामायण से लंका दहन के प्रसंग में मानस में एक अन्तर यह है कि पहले हनुमान् को नगर में घुमाकर फिर पूँछ में आग लगाई गई । अध्यात्म रामायण में भी सारे नगर में हनुमान् को चोर कहकर घुमाया[५] गया पर मानसकार की विशेषता यह है कि इसमें कौतुकमय लीला वर्णित है ।[६] अतः हनुमान् जी पर कोई कटु आक्षेप नहीं लगने पाया है । वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा मानस[७] में अध्यात्म रामायण[८] की भाँति विभीषण के गृह न जलाने का उल्लेख किया है । इस प्रसंग में अन्तर होने का कारण वाल्मीकि रामायण में भक्त हनुमान् विभीषण संवाद का अभाव है ।

मानस में हनुमान् जी सीता के समीप लौटकर अभिज्ञान मांगते हैं जब कि वाल्मीकि रामायण में पूर्व ही विदा हो चुके थे । वाल्मीकि रामायण में पुन: सीता के पास आने का कारण विदा लेना नहीं अपितु उनको सकुशल देखने की इच्छा है । सभी कार्यों की समाप्ति के पश्चात् अपनी माँ से विदा याचना में प्रबन्धात्मकता अपेक्षाकृत अधिक है ।

हनुमान् सीता संवाद में सीता की आकुलता,[९] हनुमान् का आश्वासन,[१०] वाल्मीकि रामायण में मानस की अपेक्षाकृत विस्तृत है परन्तु भाव में साम्य है । रामायण[११] में हनुमान् से एक दिन और ठहरने की इच्छा प्रगट करती हैं, मानस में 'केहि विधि राखौं प्राना' कह कर अपनी आतुरता व्यक्त करती हैं । सीता से विदा लेकर हनुमान् रामायण में अरिष्ट नामक

---

१. वा० रा० ५।५३।२६,२७।
२. वा० रा० ५।५३।२९।
३. वा० रा० ५।५५।६,१५।
४. वा० रा० ५।५६।१।
५. अ० रा० ५।४।३८।
६, मा० ५।२४।७।
७. मा० ५।२५।६।
८. अ० रा० ५।४।४।
९. वा० रा० ५।५६।३-८।
१०. वा० रा० ५।५६।१५,२१।
११. वा० रा० ५।५६।३।

पर्वत श्रेष्ठ पर चढ़ गये। हर्षातिरेक के कारण आवेगमय गति से पर्वत पर स्थित विद्याधर की नारियों को प्रकम्पित करते हुये उस पर्वत को ही पातालगामी कर दिया।[१]

गगनगामी हनुमान् महेन्द्रपर्वत को देखते ही निनाद करने लगे। मेघ गर्जन सुन जाम्बवान् प्रमुख ऋक्ष वानरादि हनुमान् को कृतकार्य समझ प्रेम से मिले। इस प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में साम्य है।

वालमीकि रामायण में वानर गण ने लंका का समस्त वृत्तान्त समुद्र तट पर ही हनुमान् से जान लिया।[२] परन्तु मानस में रघुनाथ के समीप जाते समय मार्ग में यह चर्चा है:

'चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥'

रामायण की भाँति पुनरावृत्ति के कारण तुलसी ने पूर्व घटित वृत्तान्तों का पुनः उल्लेख नहीं किया।

हनुमान् की वार्ता सुन रामायण में अंगद ने स्वयं प्रस्तावित किया[४] कि हम लोग स्वयं जाकर, राक्षसों को मार कर, सीता को लाकर, हनुमान् का शेष कार्य समाप्त कर, राम के समीप पूर्ण कार्य सम्पन्न करके चलें परन्तु इस कार्य के लिये राम की आज्ञा न होने के कारण जाम्बवान् ने इस प्रस्ताव को स्थगित कर दिया।[५] मानस में इसका अभाव है।

हर्षातिरेक के कारण सभी वानरगण मधुबन में स्वच्छन्द रूपेण फल भक्षण करते हैं। संरक्षक गण व्यथित होकर सुग्रीव के निकट जाते हैं। इस प्रसंग में भी साम्य है परन्तु अन्तर केवल यह है कि रामायण में दधिमुखादि प्रमुख संरक्षक सुग्रीव के पास से लौटकर उन वानरों से क्षमा याचना करते हैं (मानस में नहीं) रामायण[६] में इस प्रसंग में मानस[७] की अपेक्षाकृत विस्तार है।

हनुमान् ने रामायण में सीता की कुशल, सीता की दयनीय दशा का चित्रण कह कर तब चूड़ामणि अर्पित की। मानस में रामायण के, मणि का पूर्व प्रसंग[८] तथा काक की कथा[९] की पुनरावृत्ति का अभाव है। 'वचन कहे कछु' कह कर रामायण के दो सर्गों में कहे हुए वार्तालाप की ओर तुलसी ने संकेत किया है। अध्यात्म रामायण में[१०] भी वालमीकि रामायण की भाँति काक वृत्तान्त का उल्लेख है। सीता जी की वियोग दशा चित्रण[११] करते ही सुन्दर कांड में वालमीकि कथा की समाप्ति कर देते हैं।

---

१. वा० रा० ५।५६।४९।
२. वा० रा० ५।५८।७ से ५।५९ सर्ग तक।
३. मा० ५।२७।६।
४. वा० रा० ५।६०।१,१३।
५. वा० रा० ५।६०।१४,२०।
६. वा०रा० ५।६२, ६४ सर्ग तक।
७. मा० ५।२७।७,८,२८।
८. वा०रा० ५।६६।३-५।
९. वा०रा० ५।६७।२-१८।
१०. अ०रा० ५।५।५३।
११. वा०रा० ५।६७, ६८।

मानस में बाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण की अपेक्षाकृत सुन्दर कांड में लंका के लिए प्रस्थान, विभीषण शरणागति तथा सागर निग्रह प्रसंगों का भी समावेश है। अध्यात्म रामायण में भी राम हनुमान संवाद तथा राम के कृतज्ञतार्पण पर ही कथा समाप्त हो जाती है।

मानस पीयूष[1] के अनुसार इस कथा भेद का कारण इस प्रकार है :—

"मानस में सागर निग्रह तक की कथा सुन्दर कांड में ही देकर कवि जनाते हैं कि इसके सप्त सोपान सप्तपुरियाँ हैं। सुन्दर कांड कांची पुरी है। काँची में दो विभाग हैं, शिव काँची और विष्णु काँची। श्री हनुमान् जी का चरित कह कर यदि कांड को समाप्त कर देते तो कांचीपुरी नाम अयथार्थ हो जाता। 'पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहिं सुनाए।' पर शिवकांची (श्री हनुमच्चरित्र) पूर्ण हो गई। आगे के ३० दोहे विष्णु कांची के हैं कारण कि इसमें मुख्यत: श्री राम जी का ही चरित्र है। इस तरह सागर निग्रह कथा पर इस कांड की समाप्ति करके इस कांड को यथार्थत: कांचीपुरी सिद्ध किया।"

वाल्मीकि रामायण के सुन्दर कांड की प्रमुख विशेषताओं में कतिपय उल्लेखनीय हैं। श्री राम के अनन्य सेवक, कर्मनिष्ठ, हनुमान् की बुद्धिमत्ता, वाक्चातुर्य एवं पराक्रम का तेजोमय, आद्योपान्त, वीर रस के सागर सम कार्य सिद्धि करने का चित्रण, भगवान् राम की वियोग विह्वला प्रिया सीता की शोचनीय दशा का करुणा सागर उरेहा गया है। सीता के अप्रतिम पातिव्रत एवं सौन्दर्यादि गुणों का चित्रण, रावण की कटु भर्त्सना कर उसके प्रलोभन प्रपंच का निर्भयता से खंडन कर उत्साह एवं शक्ति से सामना करना। वाल्मीकि की कवित्व शक्ति का प्रमाण हमें लंका, चन्द्रोदय, पुष्पक विमान, अशोक वाटिका, उसका विध्वंस एवं लंका दहनादि के वर्णनात्मक चित्रण में मिलता है।

वाल्मीकि रामायण की ही भाँति मानस का सुन्दर कांड भी कुछ कारणों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में ये विशेषतायें इस प्रकार समाहित हैं।[2]

हनुमत् चरित्र विभीषणोपाख्यान और समुद्रनिग्रह की तीन स्वतन्त्र कथायें इस वृहत् प्रबन्ध काव्य में लघु कथाओं का आनन्द देती हैं। इन तीनों की श्रृंखला कुछ इस ढंग की है कि अनेक दृष्टियों से गोस्वामी जी का सुन्दर कांड अपूर्व बन गया है। सामान्य कलेवर का यह कांड घटना वैचित्र्य और रचना वैचित्र्य, चमत्कार विधान और रस विधान, चरित्र चित्रण चातुर्य और संवाद विरचन चातुर्य, शैली और संदेश, आदि सभी दृष्टियों से सुन्दर बन पड़ा है।'

दोनों ग्रंथों की समानताओं, विभिन्नताओं एवं विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करते हुए यह कथन नितान्त संगत प्रतीत होता है :

'सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥'

---

१. मा०पी०सु०कां० पृष्ठ २७३।

२. मानस में राम कथा पृष्ठ ११७-११८।

लंका कांड

श्रीराम कथा के क्रियात्मक विकास में लंका कांड का विशिष्ट महत्व है। घटनाओं का प्राबल्य, वीरता एवं तेजस्विता के प्रदर्शन, पात्रों के अद्‌भुत पराक्रम का निदर्शन, रण चातुरी के विभिन्न रूप, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स एवं अद्‌भुत आदि रसों का सम्यक् निरूपण इस कांड में दर्शनीय है।

दोनों ग्रन्थों में अन्य कांडों की अपेक्षाकृत इस कांड की महत्ता इसकी वस्तु-स्थिति प्रदर्शन में है। धीरोदात्त नायक का नायकत्व, प्रतिनायक का भी दुर्दमनीय अदम्य पराक्रम, पक्ष विपक्ष की समकक्षता, प्रमुख घटना सीता हरण के माध्यम से राक्षस विनाश आदि प्रमुख घटनायें इसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित करती हैं।

रामायण में लंका कांड की कथा का सार

श्रीराम का प्रत्याशित कार्य कर हनुमान् के आने पर राम ने भूरि-भूरि प्रशंसा कर कृतज्ञतार्पण किया। तदनन्तर सीता प्राप्ति के लिए व्यग्र हो उठे। इस लक्ष्य की पूर्ति में महान् बाधक समुद्रोल्लंघन का विचार करते ही निरुपाय से होकर हतोत्साह हो उठे। सुग्रीव द्वारा ढाढ़स बँधाये जाने पर राम को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और वे हनुमान् से लंका का गुप्त भेद पूछने लगे। अपने विपक्षी की सेना, दुर्ग, नगर सम्बन्धी तथा अन्य आवश्यकीय विवरणों का ज्ञान होते ही राम ने विजय मुहूर्त में अपनी समस्त सेना के साथ प्रस्थान कर दिया। महेन्द्राचल पर्वत पर पहुँचकर समुद्र दर्शन किया। उत्ताल तरंगों के भीषण वेग एवं समुद्र की विशालता देख विरही राम का हृदय कातरता से चीत्कार कर उठा और वे पुनः लक्ष्मण से अपना विरह निवेदन करने लगे। सीता स्मृति से उनका हृदय आविद्ध हो उठा।

उधर प्रतिपक्षी रावण हनुमान् द्वारा सीतान्वेषण प्राप्ति तथा लंका विध्वंस की घटनाओं का स्मरण कर सशंकित होकर मंत्रियों के साथ मंत्रणा करने लगा। सेनापति प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्रादि प्रमुख योद्धाओं ने रावण की चाटुकारिता करते हुए उसे युद्ध में निश्चित विजय का आश्वासन देकर, युद्ध की ओर प्रेरित किया। परन्तु उसी समय विभीषण ने अन्य मंत्रणाओं का खंडन कर राम के साथ निरर्थक वैर न करके सीता को लौटा देने का परामर्श दिया। रावण ने प्रथमतः मौन रूप से उसका परामर्श सुन कर सभा विसर्जित कर दी परन्तु पुनः वही मंत्रणा विभीषण के मुख से सुनकर मेघनाद, प्रहस्त आदि ने विभीषण का विरोध कर अपने शौर्य कथन द्वारा रावण को प्रोत्साहित किया। रावण ने भी अन्ततः विभीषण को कटूक्तियों द्वारा तिरस्कृत कर उसकी मंत्रणा की नितान्त अवहेलना की। रावण को सचेत कर दिव्य भूषण भूषित विभीषण चार राक्षसों सहित गगन मार्ग से राम के समीप आ गये। सम्यक् परीक्षा के अनन्तर राम ने उनसे मैत्री कर दृढ़तम सम्बन्ध स्थापित कर लिया। विभीषण से रावण सैन्य दल बल का व्यापक विवरण ज्ञात कर राजनीतिज्ञ राम ने विभीषण का तुरन्त राज्याभिषेक कर दिया। विभीषण की मंत्रणानुसार राम समुद्र की शरण में गये और सागर तट पर कुशासीन हो गये। उधर राक्षसराज रावण के शार्दूल नामक राक्षस ने निरीक्षण के पश्चात् सुग्रीव पालित वाहिनी के बलाबल का ज्ञान कराया। रावण ने पुनः शुक नामक दूत द्वारा सैन्य संचालक सुग्रीव के पास अपना

संदेश भेजा परन्तु सुग्रीव ने उसका कटु प्रतिरोध किया साथ ही राम सेना ने उसे अनेक प्रकार से दंडित किया परन्तु आर्त्तरक्षक राम ने उसे मुक्त कर दिया।

पूर्वाभिमुख स्थित राम तीन दिन तक समुद्रतट पर स्थित रहे परन्तु कोई आशाजनक परिणाम न देख रूद्र रूप हो गये। इस रौद्र रूप से आतंकित एवं क्षुब्ध सागर ने स्वयं सूर्य सम प्रकट होकर राम को अपने उल्लंघन का मार्ग निर्दिष्ट किया। नल के निर्माण कौशल एवं सैन्य सहयोग से सेतु बन्धन का कार्य सम्पन्न हो गया तथा समस्त सेना समुद्र के दक्षिणी तट पर पहुंच गई इस दुष्कर एवं अद्भुत कार्य को देख सिद्ध, चारण सहित देवगण ने भी राम का पवित्र जलों से अभिषेक कर आशीर्वचन दिये। अनुकूल समय देख राम ने गर्जते हुए वानरों के सहित लंका की ओर प्रयाण किया। सुग्रीव ने युद्ध समिति की सुस्थापना कर सैन्य संगठन सम्पन्न किया।

सेतु बन्धन का समाचार रावण के लिए अत्यन्त चिन्ताजनक हुआ। आशंकित रावण ने तुरन्त शुकसारण को राम सैन्य बल ज्ञान प्राप्त्यर्थ भेजा। परन्तु वानर रूपधारी उन राक्षसदूतों को विभीषण ने पहचान कर उन्हें पकड़ लिया परन्तु उदार हृदय राम ने उन्हें अपने सैन्य बल के निरीक्षण की आज्ञा देकर रावण को निज बल प्रदर्शन के लिये ललकारा। इन दूतों ने रावण से जाकर राम की सेना एवं राम बल का व्यापक परिचय कराकर सीता प्रदान कर युद्ध शमन की ही मन्त्रणा दी। परन्तु रावण ने पुनः विपक्ष सैन्य निरीक्षणार्थ चरों को नियुक्त किया। उन चरों से राम को लंका के समीपस्थ सुबेल पर्वत पर आया हुआ सुनकर उद्विग्न रावण ने मायावी मन्त्रणाओं को क्रियाशील रूप देने का निश्चय किया। विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से राम का मायामय शिर बना कर विरह पीड़िता सीता को राम के निधन का दुःसंवाद सुनाकर अपने वश में करना चाहा। करुण क्रन्दन करती हुई सीता को सरमा नामक राक्षसी ने आश्वासन दिया और सत्य वस्तुस्थिति अवगत कराई। इसी मध्य राम युद्ध के लिये उद्यत हुये रणभेरियों का नाद सुनकर रावण की माता एवं पितामह माल्यवन्त ने रावण को युद्ध से पराङ्‌मुख होकर राम से सन्धि करने की मंत्रणा दी परन्तु रावण ने उसकी भी पूर्णतः अवहेलना ही की।

दूसरी ओर राम ने विभीषण द्वारा लंका तथा विभिन्न सैन्य दलों का परिचय प्राप्त किया तथा सुबेल पर्वत पर से लंका के वैभव का निरीक्षण किया। सुग्रीव ने आकस्मिक एकाकी आक्रमण कर दिया तथा रावण से एकाकी ही द्वन्द युद्ध करके सकुशल लौट आये। तदनन्तर वानरों के द्वारा लंका चतुर्दिक् से परिवृत हो गई, युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेघनाद ने अपने मायावी युद्ध में राम को मूर्छित एवं समस्त सेना को क्षत विक्षत कर डाला। दोनों भाइयों को नाग पाश में आवद्ध कर लिया। रावण ने विमानासीन करा सीता को राम लक्ष्मण की मृतप्राय दशा दिखाई। विलाप करती हुई सीता त्रिजटा के वचनों द्वारा आश्वस्त हुई। उधर गरुड़ ने आकर नागपाशाबद्ध राम लक्ष्मण को मुक्त कर क्षुब्ध वानरों को शान्त किया। अक्षत भ्रातृ युगुल को देख वानरगण पुनः हर्षातिरेक से किलकारी मारने लगे।

तदनन्तर दोनों पक्षों की ओर से घनघोर युद्ध में असंख्य बली राक्षसों का संहार हुआ। महावीर हनुमान् ने धूम्राक्ष एवं अकंपन का वध किया तथा पराक्रमी अंगद ने सेनाध्यक्ष वज्रदंष्ट्रा का, नील ने प्रधान सेनापति प्रहस्त का वध किया। वीर सेनापतियों की मृत्यु से प्रताड़ित रावण युद्ध प्रांगण में बल वेग से उपस्थित हुआ और लक्ष्मण पर ब्रह्मशक्ति

से प्रहार किया । लक्ष्मण को आहत देख राम रावण से युद्ध करने लगे । रावण बाणाहत होकर पराजित होने से लज्जित होकर लंका की ओर चला गया । राम के अमोघ बाणों के स्मरण मात्र से प्रकम्पित रावण ब्रह्मा के वाक्य एवं वेदवती श्राप का स्मरण करने लगा । तदुपरान्त दुर्धर्ष राम द्वारा कुम्भकर्ण वध होने पर रावण शोक सन्तप्त होने के कारण मूर्च्छित हो गया । अपने पिता को आश्वासन देकर परम मायावी रण निपुण एवं दुर्मद रावण के सभी पुत्र युद्ध क्षेत्र को चल दिये । देवविजयी नरान्तक का अंगद ने, देवान्तक एवं त्रिशिरा का परमवीर हनुमान् ने तथा त्रिशिरा के पितृव्य महोदर का नील ने, रावण के कनिष्ठ भ्राता महापार्श्व का वानर श्रेष्ठ ऋषभ ने वध किया । कुम्भकरणसम भयंकर कर्मा रावण पुत्र अतिकाय को लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र के संयोग से वध कर डाला । अपने परम बलवान भाइयों एवं पुत्रों के निधन से महाबलाढ्य रावण भी विचलित हो उठा । तब इन्द्रविजयी मेघनाद ने युद्ध की ओर प्रयाण किया और भयंकर युद्ध में राम लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित कर दिया । तीव्रातितीव्रगामी हनुमान जामवन्त की आज्ञानुसार औषधि युक्त हिमवान् गिरि को लाकर सभी को संज्ञायुक्त कर दिया । सुग्रीव से आज्ञा पाकर सभी वानरों ने लंका में अग्निदाह कर दिया । लंकादहन के पश्चात् पुनः वानरों एवं राक्षसों का भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । सुग्रीव द्वारा कुम्भ तथा हनुमान द्वारा निकुम्भ की मृत्यु हुई । मकराक्ष से राम का घोर युद्ध हुआ और उसकी परमगति हुई । इन्द्रजीत द्वारा कल्पित सीता का अवसान दिखाया गया । परन्तु विभीषण द्वारा शोक सन्तप्त राम आश्वस्त हुये । निकुम्भ नामक देवालय में मेघनाद यज्ञ करने लगा । विभीषण द्वारा उस यज्ञ में विघ्न डाला गया । प्रथमतः हनुमान इन्द्रजीत का शस्त्र युद्ध हुआ तथा विभीषण से वाग्युद्ध । लक्ष्मण ने उसका वध किया । उसकी मृत्यु पर रावण ने अत्यधिक करुण क्रन्दन किया । अंततः नायक प्रतिनायक का समरांगण में घनघोर युद्ध होने लगा । रावण के शस्त्र से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये । सुषेण ने उन्हें पुनः स्वास्थ्य लाभ कराया । युद्ध भूमि में राक्षसराज रावण भी मूर्च्छित हो गया । इधर अगस्त्य ऋषि द्वारा 'आदित्य हृदय' का उपदेश सुनकर एवं इन्द्र रथ की प्राप्ति कर राम ने घोर युद्ध के पश्चात् उसकी इह लीला समाप्त कर दी । विभीषण ने अपने भ्रातृ निधन पर अत्यधिक शोक प्रकट किया । रावण अन्त्येष्टि के अनन्तर विभीषण का राज्य तिलक कराया गया । तदनन्तर हनुमान् ने सीता से राम की विजय का वृत्तान्त सुनाया । राम ने सीता के आनयन की आज्ञा दी परन्तु पार्श्व में स्थित सीता को देखकर राम ने अपने अन्तःकरण का संशय प्रकट किया और सीता के प्रति अनेक कटूक्तियाँ व्यक्त कीं । रोमहर्षणकारी परुष वचनों को सुनकर आर्तक्रन्दनकारिणी सीता ने लक्ष्मण द्वारा चिता रचवाकर उसमें प्रवेश कर अपनी अनन्य निष्ठा व शुद्धाचरण का प्रत्यक्ष प्रमाण अग्नि को साक्षी देकर दिया । देवों ने भी उसी समय सीता की शुद्धि और राम की अलौकिकता को प्रमाणित किया । तदुपरान्त राम ने विभीषण से आज्ञा लेकर सुसज्जित पुष्पक विमान पर अपने इष्ट मित्रों सहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया, मार्ग में सीता को रणस्थलों का निरीक्षण कराते हुए राम भरद्वाजाश्रम में पधारे । हनुमान द्वारा राम का प्रत्यावर्तन का समाचार सुनते ही हर्षातिरेक से प्रेमातुर हो गये । राम के अयोध्यागमन पर पुरवासी आनन्द जलधि में निमग्न हो गये । राम राज्याभिषेक का समारोह सम्पन्न हुआ । राम ने दस हजार वर्ष तक अनेक यज्ञादि सम्पन्न करते हुए शासन सम्पन्न किया ।

मानस में लंका कांड की कथावस्तु का सार

श्री राम एवं शंकर की वंदना के अनन्तर वीर रस प्रधान कांड में गोस्वामी जी ने श्री राम के धनुष-बाण की महिमा का स्मरण कराकर घटना स्थिति को अग्रसर किया। सागर वचन सुनने के उपरान्त राम ने सेतु बंध की आज्ञा दी। उसी रम्य सेतु पर अपने इष्टदेव श्री शंकर के लिंग की स्थापना कर उसका महत्व वर्णन किया। अपने सैन्य सहित सागरोल्लंघन कर राम सुबेल पर्वत पर आसीन हुये। उधर परम तत्व विज्ञाता मन्दोदरी ने रावण को उपदेश देकर रावण को युद्ध से पराङ्मुख रहने की प्रार्थना की। सभी मंत्रियों के साथ रावण ने मंत्रणा की। सभी ने चाटुकारिता करते हुये रावण को युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया परन्तु उसके पुत्र प्रहस्त ने उन मंत्रियों की मंत्रणा का घोर विरोध किया। लंका के शिखर पर स्थित दशमाथ का मल्लस्थान था। राम ने अपना शर संधान कर रावण को छत्र मुकुटादि से रहित कर दिया। इस अद्‌भुत घटना पर भी मन्दोदरी ने राम की अलौकिकता का उल्लेख करते हुए रावण को सचेत किया परन्तु वह भी निष्प्रयोजन सिद्ध हुआ। राम ने युद्ध के पूर्व अंगद को दूत रूप में रावण के पास भेजकर सामनीति का प्रदर्शन किया परन्तु अंगद रावण संवाद में उग्रता ही रही रावण की हठधर्मी टस से मस न हुई। मन्दोदरी ने पुनः रावण को सचेत किया। अंगद के लौटते ही फिर रामाज्ञा एवं सचिव मंत्रणा के निष्कर्ष रूप वानर वृन्द सिंहनाद कर युद्धाह्वान करने लगे। दोनों पक्ष युद्ध के लिये पूर्णतः प्रयत्नशील, क्रियाशील हो उठे। लंका में घोर आर्त्तनाद हो उठा। हनुमान् के पाद प्रहार से मेघनाद भी विकल हो उठा। अंगद ने हनुमान् को सबल सहयोग देकर द्विगुणित शौर्य प्रदर्शन कर विपक्षियों की अर्ध सेना का समूल मर्दन कर डाला। यह विकट परिस्थिति देख रावण के मातामह माल्यवन्त ने रावण के प्रति राम के भगवत्स्वरूप का परिचय कराया, रावण ने उसका भी घोर अपमानजनक तिरस्कार किया। तदनन्तर मेघनाद ने अपना मायावी युद्ध प्रारम्भ किया। लक्ष्मण मेघनाद का द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। अपने को संकटापन्न देख कर लक्ष्मण पर मेघनाद ने वीर घातिनी ब्रह्म शक्ति का प्रहार कर दिया। सुषेण वैद्य की आज्ञा से हनुमान् संजीवनी औषधि आनयनार्थ गये। मार्ग में अवरोधरूप कालनेमि का वध एवं मकरी का उद्धार कर भरत से भेंटकर त्वरागति से आये और लक्ष्मण के स्वस्थ होते ही सुषेण वैद्य को लंका पहुँचाया। रावण ने अत्यधिक भूधराकार विशालकाय भाई कुम्भकर्ण को जगाकर युद्ध में सहायता की कामना की। उसने भी रावण की भर्त्सना करके युद्ध क्षेत्र में प्रयाण किया और वहाँ आतंक आच्छादित कर दिया। सुग्रीव ने अवसर पाते ही उसे नाक कान विहीन कर दिया। वानरों के साथ घमासान युद्ध के पश्चात् राम ने उसका वध किया। अपने पितृव्य की मृत्यु के अनन्तर मेघनाद ने मायावी युद्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया। राम को भी नागपाश में आबद्ध कर डाला, जामवन्त ने समय पाते ही अपने त्रिशूल से मेघनाद को धराशायी कर दिया और इधर गरुड़ ने आकर मायावी सर्पों के बन्धन से भव बन्धन विनाशन राम को बन्धन मुक्ति प्रदान की लीला समाप्त की। युद्ध में विजयिगीषु मेघनाद ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया परन्तु लक्ष्मणादि ने उसका विध्वंस कर डाला। अंततः लक्ष्मण ने क्रोधान्वित होकर उसकी इह लीला समाप्त कर दी। पुत्र शोक ने रावण का क्रोध उद्दीप्त कर उसे युद्धक्षेत्र की ओर प्रेरित किया। रावण पर लक्ष्मण ने आक्रमण कर दिया। दोनों के द्वन्द्व युद्ध में रावण ने ब्रह्म शक्ति का प्रयोग किया। लक्ष्मण मूर्च्छित हो

गये और रावण ने विजयेच्छा का पूरक यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। परन्तु अंगदादि वानरगण ने उसका तुरन्त विध्वंस कर डाला। रावण ने पुनः रणभूमि की ओर प्रयाण किया। इन्द्र द्वारा प्रेषित रथ पर आरूढ़ होकर राम ने रावण से द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ किया और अंततः उसे परम गति प्रदान की। रावण के अन्तिम संस्कार के अनन्तर विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। हनुमान् ने जानकी जी को राम विजय का सुसंवाद सुनाया तथा श्री जानकी जी शिविकारूढ़ कराकर राम के पास लाई गई परन्तु राम को आशंकित देख सीता ने अग्नि परीक्षा द्वारा अपनी शुद्धि का प्रमाण दिया। राम को विजय विभूषित देख अभीष्ट प्राप्त देवगणों ने आकर राम की स्तुति की। स्वयं दशरथ भी स्वर्ग से पधारे। विभीषण ने सभी वानरगणों को वस्त्राभूषणों की वृष्टि से परितुष्ट किया। पुष्पक विमान द्वारा राम ने अपने इष्ट मित्रों के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में सीता को अनेक युद्ध स्थलों, विशिष्ट स्थानों का परिचय कराते हुये राम ने अयोध्या के दूर से दर्शन किये। भरद्वाज जी के आश्रम पर पहुँचकर हनुमान् को भरत का समाचार लाने के लिये भेजा।

लंका कांड की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन

षष्ठ सोपान की कथावस्तु के तीन प्रधान विषय हैं :—

लंकाभियान, युद्ध-प्रकरण एवं अयोध्या का प्रत्यावर्तन।

वाल्मीकि रामायण में लंका कांड प्रमुख कथावस्तु से प्रारम्भ होता है जब कि मानस में वन्दना के अनन्तर राम के अलौकिक धनुष बाण की महिमा का वर्णन करने के पश्चात् अधिकारिक कथा का क्रम अग्रसारित किया गया है। इस प्रकार के प्रारम्भ करने का अत्यंत भावपूर्ण कारण मानस मयंककार लिखते हैं :--

'गोस्वामी जी को लंका कांड रचने के समय यह संदेह हुआ कि रावण शुद्ध ब्राह्मण है और माधुर्य में श्रीराम चन्द्र जी परम ब्रह्मया क्षत्रीय हैं तो इनके कर से उसका वध क्यों कर लिखें। इस कल्पना में पाँच दिन व्यतीत हो गये तब हनुमान् जी ने स्वयं आकर यह दोहा लिख दिया जिसका भाव यह है कि ये रघुनाथ जी वह हैं जो रात दिन चराचर का काल द्वारा नाश कर रहे हैं, उनके दुष्ट रावण के वध में क्यों संदेह कर रहे हैं, ऐश्वर्य विचार कर संकोच न करो। लिख चलो, तब गोस्वामी जी ने वह दोहा ज्यों का त्यों रक्खा और युद्ध कांड लिखने लगे।'[1]

वाल्मीकि रामायण से मानस में कथा क्रम में भेद है। वाल्मीकि रामायण में सर्वप्रथम राम ने हनुमान् के प्रति कृतज्ञतार्पण करते हुये, उनका सम्मान कर पुनः समुद्रोल्लंघन की चिन्तावश आकुल हो उठे परन्तु सुग्रीव के द्वारा आश्वस्त किये जाने पर स्वगुण गौरव एवं शौर्य का स्मरण किया। तत्पश्चात् हनुमान् से लंका की वास्तविक स्थिति, सैन्य बलादि के विषय में प्रश्न किये। लंका वर्णन सुनने के पश्चात् राम ने शुभ मुहूर्त्त विचार कर लंकाभियान की आज्ञा दी :—

'अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।'[2]

---

१. मानस मयंक लं०कां० पृष्ट ५।

२. वा०रा० ६।४।३।

समुद्र तट तक सेनाभियान का वर्णन वाल्मीकि ने विस्तृत रूपेण किया है।[1] परन्तु समुद्र तट पर पहुँचते ही भीषण समुद्र के दर्शन किये।[2] समस्त सेना के सुव्यवस्थित रूप से स्थित हो जाने पर राम पुनः वियोग पीड़ा से व्यथित हो उठे। विदेह कन्या के वियोग की वेदना से वे अभितप्त हो उठे।[3]

उधर लंकापुरी में रावण हनुमदागमन और लंका दाहादि घटनाओं से आशंकित होकर मंत्रियों के साथ मन्त्रणा करने लगा परन्तु परामर्शदाताओं ने उसकी चाटुकारिता कर उसे मिथ्या प्रोत्साहन ही दिया।[4]

मानस में उक्त कथांश का संक्षिप्त उल्लेख सुन्दर कांड के अन्तर्गत किया गया है। इसमें राम की चिन्ता, सुग्रीव द्वारा प्रदत्त आश्वासनादि तथा हनुमान द्वारा लंका स्थिति ज्ञानादि प्रसंगों एवं वियोग चित्रण का अभाव है। उसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि तुलसी के राम वाल्मीकि के राम की भाँति मानव नहीं अपितु सर्वज्ञ सर्वनियन्ता भगवान् राम हैं। उनमें अधिक विकार दर्शाना भक्त तुलसी को क्योंकर प्रिय हो सकता था। रावण द्वारा मंत्रियों से मंत्रणा लेने के पूर्व मन्दोदरी ने भी व्याकुल होकर रावण को उसका वास्तविक हित समझाने की चेष्टा की[5] परन्तु रावण ने नारी का 'समय सुभाउ' मानकर उसका उपहास कर उक्त उपदेश की अवहेलना की। बाल्मीकि रामायण की अपेक्षाकृत मानस में रावण सभा का प्रसंग अत्यधिक संक्षिप्त है।[6] विभीषण द्वारा रावण को शिक्षा देने के प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों में भेद है। वाल्मीकि रामायण में प्रथम बार विभीषण द्वारा प्रदत्त मंत्रणा को रावण ने मौन होकर सुन लिया और सभा विसर्जित कर दी।[7] पुनः दूसरे दिन विभीषण के दिये हुये परामर्श को रावण ने मौन होकर सुना और आत्म-बल कथन से विभीषण के भय को दूर करने की चेष्टा की और पुनः विभीषण को विदा कर दिया।[8] परन्तु पुनः सभा के आयोजित होने पर परिजन, पुरजन एवं सचिवगण उपस्थित हुये। उस सभा में रावण का कामुक प्रलाप तथा अन्य सभासदों के मिथ्या बल कथन को सुनकर[9] विभीषण ने तृतीय बार रावण को सीता लौटाने का परामर्श दिया परन्तु फिर भी रावण उद्विग्न न हुआ।[10] मेघनाद ने स्वगुण कथन द्वारा रावण को ढाढ़स

---

१. वा०रा० ६।४।२३। से ६।४।१०७ तक।
२. वा०रा० ६।४।१०८ से ६।४।१२४।
३. वा०रा० ६।५।४ से ६।५।२३।
४. वा०रा० ६।६। से ६।९।६ तक
५. मा० ५।३५।५ से ५।३६ तक।
६. मा० ५।३३।७ से ५।३७।१ तक।
७. वा० रा० ६।९।७ से २३ तक।
८. वा० रा० ६।१०।१३ से २९ तक।
९. वा० रा० ६।१२।१२ से ६।१३।२१ तक।
१०. वा० रा० ६।१४।२ से २२ तक।

बँधाकर युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया।[1] विभीषण ने मेघनाद की कटु भर्त्सना की और पुनः रावण से अन्तिम बार प्रार्थना की।

'सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वरिशोको।'[2]

हे राजन् ! जानकी को राम को देकर शोकरहित हो हम अपनी इस लंका में निवास करें।

इसके पश्चात् रावण ने कटूक्तियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी[3] और इस प्रकार भर्त्सना किये जाने पर ही विभीषण सशस्त्र ससचिवगण रावण को सचेत करते हुये तथा क्षमा याचना करते हुये आकाश मार्ग से चलकर एक मुहूर्त में राम व लक्ष्मण के निकटस्थ आ गये।[4]

मानस में विभीषण प्रसंग को आध्यात्मिक रूप देना था इसलिये उसका रूप परिवर्तन कर देना स्वाभाविक एवं संगत ही था। मानस में वाल्मीकि रामायण के पूर्वोक्त प्रसंगों का अभाव है। यहाँ तो केवल भक्त विभीषण द्वारा राम की आध्यात्मिक रूप चर्चा कराकर माल्यवान् द्वारा समर्थन कराया गया है।[5] बुध पुरान श्रुति-संमत युक्त नीतिमय वचनों को सुनते ही रावण क्षुब्ध हो उठा।[6] आत्मबल कथन कर स्वयं विभीषण को तपस्वियों, (राम लक्ष्मण) के पास जाकर नीति उपदेश करने का आदेश देकर चरण प्रहार भी किया[7] जिसका रामायण में सर्वथा अभाव है। हनुमन्नाटक में रावण द्वारा विभीषण को वाम पाद से प्रहार करने का उल्लेख है।[8]

अध्यात्म रामायण में भी विभीषण प्रसंग बहुत कुछ अंश में वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही है केवल विभीषण का चित्रण भक्त रूप में किया गया है। 'भागवत प्रधान' विभीषण ने राम सीता के आध्यात्मिक रूप का परिचय कराया[9] परन्तु रावण अपने विचारों पर ही अविचल रहा और रावण द्वारा उपेक्षित होते ही[10] वाल्मीकि रामायण की भाँति विभीषण राम के पास चल दिया परन्तु भक्ति की प्रेरणा से।

'विभीषणो रावण वाक्यतः क्षणाद्विसृज्यसर्वं सपरिच्छद गृहम्।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकांक्षी परिपूर्ण मानसः॥'[11]

---

१. वा० रा० ६।१५।२ से ७ तक।
२. वा० रा० ६।१५।१४।
३. वा० रा० ६।१६।२ से १६ तक।
४. वा० रा० ६।१६।१७ से ६।१७।१ तक।
५. मा० ५।३८ से ५।२९ तक। मा० ५।३९।४ से ५।४० तक।
६. मा० ५।४०।२४।
७. मा० ५।४०।५६।
८. 'इति वाम चरणेन विभीषणं ताडयामास'। हनुमन्नाटक ७।११।
९. अ० रा० ६।२।३४।४३ तक।
१०. अ० रा० ६।२।२८ से ३१ तक।
११. अ० रा० ६।२।४६।

मानस में विभीषण का चरित्र नितान्त भिन्न है जिसका उल्लेख अगले अध्याय में किया गया है यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि गोस्वामी जी ने इस प्रसंग में भी अपनी भक्तिमत्ता और मौलिकता के प्रभाव से इस प्रसंग को नितान्त नवीन रूप प्रदान कर दिया है। ऐकान्तिक प्रपन्न विभीषण ने पूर्ण रूप से शरणागत रूप धारण किया और भागवत्[1] के अक्रूर की भाँति मनोहर कल्पनाएँ करते हुये राम की ओर प्रयाण किया।[2]

इधर राम सेना नायकों ने उस पर संदेह किया और सम्यक् परीक्षण करना चाहा। राम के समस्त मंत्रि मंडल ने विभीषण में दोष देखे[3] केवल हनुमान् ने तर्क संगत प्रमाण से विभीषण को मित्र बनाने का परामर्श दिया।[4] राम ने भी अंततः हनुमान् के पक्ष का ही समर्थन किया और अपने शरणागत धर्म को प्रमाणित कर विभीषण को अपनी शरण में लिया।[5] राजनीतिज्ञ राम ने विभीषण को अपना सुहृद बनाकर रावण के बलाबल का ज्ञान सम्यक् रूपेण प्राप्त किया।[6] तत्पश्चात् रावण वध का संकल्प कर सागरोदक से लक्ष्मण द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक करवाया।[7]

मानस के इस प्रसंग में भेद है। इसमें विभीषण को आता हुआ देखकर केवल सुग्रीव ने संदेह अवश्य किया[8] परन्तु स्वयं राम ने अपनी शरणागत भयहारी नीति के द्वारा उस संदेह का खंडन कर[9] अपने शरणागत वत्सल रूप का प्रमाण देकर अंगद हनुमानादि वानरों को आज्ञा दी।

'उभय भाँति तेहि आनहु'[10]

विभीषण का सादर स्वागत मानस में ही वर्णित है। विभीषण दूर से राम रूप सौन्दर्य से तृप्त हो गये। भक्त के आलम्बन प्रभु का सजीव सरस माधुर्य मिश्रित रूप गोस्वामी जी की कथावस्तु में चित्रात्मकता के आनन्द का अनुभव कराता।[11] भक्त विभीषण आनन्दातिरेक से गदगद हो उठे, नेत्र सजल हो गये, शरीर पुलकायमान हो गया। भक्ति रसाप्लुत वाणी द्वारा अर्थार्थी विभीषण आर्त्त रूप में शरणापन्न हो गये[12] और 'सरन सुखद रघुबीर' ने तुरन्त आलिंगन बद्ध कर लिया, भक्त भयहारी वचनों से आश्वस्त कर कुशलादि

---

१. मा० ११।५।३३,३४।
२. मा० ५।४१।४ से ५।४२ तक।
३. वा० रा० ६।१७।१८ से ४९ तक।
४. वा० रा० ६।१७।५० से ६८ तक।
५. वा० रा० ६।१८।३,२२ से ३४ तक।
६. वा० रा० ६।१९।७।
७. वा० रा० ६।१९।२६।
८. मा० ५।४२।४ से ७ तक।
९. मा० ५।४२।८।
१०. मा० ५।४४।
११. मा० ५।४४।१। से ५ तक।
१२. मा० ५।४४।६ से ५।४५ तक।

पूछकर अपने शरणागत धर्म द्वारा विभीषण को पूर्णरूपेण अपना बनाकर[१] स्वयं उनका राज्याभिषेक किया[२] और सहज संकोचशीलता से अप्रत्यक्ष रूपेण विभीषण को 'लंकेश' बना दिया।[३] सभी दर्शकगण राम की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।[४]

दोनों ग्रन्थों में राम ने अपने विश्वस्त मित्र से समुद्र संतरण का उपाय पूछा[५] और विभीषण ने दोनों में ही लगभग एक समान ही परामर्श दिया, सागर से विनय करने का।[६] राम ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। परन्तु मानस में कर्मवीर लक्ष्मण ने इस मंत्रणा का विरोध किया।

'कादर मन कहुँ एक आधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।'[७]

परन्तु राम उन्हें आश्वस्त कर समुद्र तट पर कुशाच्छादित कर स्थित हो गये।[८]

इसी मध्य रावण द्वारा भेजे गये राम सैन्य बल के जिज्ञासु दूत आने लगे। वाल्मीकि रामायण में कई बार दूत प्रेषण का प्रसंग वर्णित है[९] परन्तु मानस में उन प्रसंगों का समाहार करके केवल एक बार ही शुक संवाद का उल्लेख किया है। परन्तु संकेत उसमें अनेक दूतों का भी कर दिया है :

'सकल चरित तिन्ह देखे' में 'तिन्ह' शब्द बहुवचन का ही सूचक है।[१०]

वाल्मीकि रामायण में सर्वप्रथम शार्दूल ने सेना का निरीक्षण कर रावण से निवेदन किया।[११] तत्पश्चात् शुक द्वारा रावण ने सुग्रीव के पास भेदनीति से पूर्ण संदेश भेजा।[१२] परन्तु ज्यों ही उसने उत्तर तट पर जाकर गगनस्थित होकर संदेश सुनाना प्रारम्भ किया बलात् वानरगण उसे पंखहीन कर पृथ्वी पर ले आये[१३] और राम की आज्ञा से अवध्य दूत

---

१. मा० ५।४५।१७, ५।४८ से ५।४८ १ तक।
२. मा० ५।४८।१०।
३. मा० ५।४९।
४. १। वा० रा० ६।१९।२७।
   २। मा० ५।४४।
५. १। वा० रा० ६।१९।२८,२९।
   २। मा०। ५।४९।५,६।
६. १। वा० रा० ६।१९।३०, ३१।
   २। मा० ५।४९।८, ५।५०।
७. मा० ५।५०।४।
८. वा० रा० ६।१९।४२। मा० ५।५०।७।
९. वा० रा० ६।२०, ६।२५।
१०. मा० ५।५१।
११. वा० रा० ६।२०।१ से ७ तक।
१२. वा० रा० ६।२०।१० से १२ तक।
१३. वा० रा० ६।२०।१५, १६।

को मुक्ति मिल गई ।[१] पुनः शुक के प्रश्न करने पर सुग्रीव ने रावण को भयकारी विरोधात्मक संदेश भेजा ।[२] अंगद की मंत्रणा एवं सुग्रीव की आज्ञा से पुनः शुक को बाँध कर उसे वानरों ने पीड़ा पहुँचानी प्रारम्भ की[३] परन्तु राम से उनके आर्त निवेदन करते ही राम ने पुनः मुक्ति दिला दी ।[४]

रावण ने राम सैन्य बल, राम विचार वीर्यादि जानने के लिये पुनः शुक सारण को भेजा ।[५] वे वानर वेष धारण कर अपना निरीक्षण कार्य कर ही रहे थे कि विभीषण ने उन्हें आबद्ध कर लिया और राम को समर्पित कर दिया[६] परन्तु राम ने आशंका रहित होकर उन्हें मुक्ति देकर स्वतः ही अपने सैन्य निरीक्षण की आज्ञा दी तथा रावण को ललकार पूर्ण संदेश भी भेजा ।[७] शुक सारण ने विस्तार पूर्वक राम सैन्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण तथा राम बल का वर्णन रावण से निवेदित किया ।[८] रावण ने शत्रु पक्ष की प्रशंसा सुनकर शुक सारण की भर्त्सना की तथा अपने गुप्तचर विभाग को राम सेना के गुप्त रहस्यों को जानने के लिये नियुक्त कर दिया ।[९] दूतों से राम व उनकी सेना का समाचार सुनकर स्वयं रावण भी उद्विग्न हो उठा[१०] और फिर उसने छल बल प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया ।[११]

मानस में केवल एक बार ही दूत प्रेषण का समाचार मिलता है। सभी उपर्युक्त प्रसंगों का समाहार इसमें गोस्वामी जी ने करने की चेष्टा की है। उन दूतों को बाँधकर पीड़ा पहुँचाने में साम्य है[१२] परन्तु सुग्रीव द्वारा 'अंग भंग करि पठवहु निसिचर' की आज्ञा तुलसी का मौलिक योग है जिसमें 'अंग भंग करि पठवहु बन्दर' के अनुरूप ही उत्तर दिलवाया है। परन्तु इसके साथ ही उन रिपु दूतों द्वारा 'कौशलाधीस की आन' रखवाते ही लक्ष्मण ने उन्हें मुक्ति देकर वाल्मीकि रामायण के राम की भाँति ओज पूर्ण संदेश युक्त पत्रिका भेजी ।[१३] सूक्ष्मदर्शी भक्त कवि उन गुप्तचरों से भी रामगुणगान करवाना नहीं भूले ।[१४] यह कवि की वस्तु योजना एवं राम यश महानता प्रतिष्ठापन नीति का प्रमाण है।

मानस में शुक द्वारा वर्णित राम सैन्य बल का विवरण अपेक्षाकृत संक्षेप में दिया

---

१. वा० रा० ६।२०।२० ।
२. वा० रा० ६।२०।२३ से ३० तक ।
३. वा० रा० ६।२०।३२ से ३५ तक ।
४. वा० रा० ६।२०।३७ ।
५. वा० रा० ६।२५।४ से ८ तक ।
६. वा० रा० ६।२५।१३, १४ ।
७. वा० रा० ६।२५।१८ से २५ तक ।
८. वा० रा० ६।२५।२८ ३३, ६।२९।७, १४ ।
९. वा० रा० ६।२९।१९, २२ ।
१०. वा० रा० ६।३१।२ ।
११. वा० रा० ६।३१।६, ७ ।
१२. मा० ५।५१।२, ४, ५ ।
१३. मा० ५।५२, ५।५६ ।
१४. मा० ५।५१, ५।५२।२ ।

गया है ।[१] क्योंकि तुलसी ने अनावश्यक विस्तार न करके 'गागर में सागर' की भाँति सबको समाहित कर दिया है :

'रावन काल कोटि कहुं जीति सकहिं संग्राम ।'[२]

शुक ने 'रावण' द्वारा राम का उपहास करने पर, लक्ष्मण की पत्रिका उसे दी । रावण पढ़ते ही हृदय में आतंकित हो उठा[३] परन्तु बाह्य रूपेण लक्ष्मण का अट्टहास सा करने लगा ।[४] शुक की नीति गर्भित मन्त्रणा सुनते ही उसको भी चरण प्रहार ही किया ।[५] यह घटना अध्यात्म या वाल्मीकि रामायण में नहीं है । तुलसी की वस्तु योजना की यह विशेषता है कि रावण की ठोकर जिस जिस ने खाई वही निराश्रित हो राम का शरणापन्न हुआ और उसका कल्याण हो गया । शुक की भी वही दशा हुई । राम की शरण आते ही उसे भी गति प्राप्त हुई ।[६] इस कथा के साथ ऋषि के अगस्त्य के श्राप से शुक के राक्षस होने की कथा अध्यात्म रामायण के आधार पर योजित की गई है ।[७]

दोनों ग्रन्थों में तीन दिन तक राम द्वारा समुद्र की प्रार्थना करने का उल्लेख है ।[८] चतुर्थ दिवस राम क्रोधाविष्ट हो उठे । वाल्मीकि रामायण में राम के रौद्र रूप में समुद्र के ध्वंस करने की आतंककारिणी ललकार का व्यापक उल्लेख है ।[९] युगान्ताग्नि के समान दुर्द्धर्ष उग्र तेजस्वी राम ने समुद्र ध्वंसनार्थ धनुषसंधाना ही था कि लक्ष्मण ने उसे पकड़ लिया ।[१०] आकाशवाणी ने भी राम का प्रतिरोध ही किया[११] परन्तु राम उग्रातिउग्र रूप से समुद्र शोषण का संकल्प करते ही रहे[१२] और ब्रह्मास्त्र चलाने वाले मंत्र से संयुक्त कर बाणों को धनुष पर चढ़ा लिया । प्रत्यंचा खींचते ही दिग्दिगंतव्यापी आतंक छा गया, समुद्र का वेग चरमसीमा का उल्लंघन कर गया, अन्तरिक्ष में वज्रपात होने लगा सभी तत्व प्रचंड हो उठे[१३] परन्तु राम अडिग रहे । इसी मध्य स्वयं समुद्र सुवर्ण भूषणधारी वैडूर्य मणि के समान प्रकाशमान सूर्य के सदृश प्रकट हो गया[१४] और विनम्र होकर उसने राम को 'नल

---

१. मा० ५।५३।५ से ५।५५।२ तक ।
२. मा० ५।५५ ।
३. मा० ५।५६।१ ।
४. मा० ५।५६।२ ।
५. मा० ५।५६।८ ।
६. मा० ५।५६।९, १० ।
७. अ० रा० ६।५।५, २४ ।
८. १। वा० रा० ६।२१।११ । २। मा० ५।५७ ।
९. वा० रा० ६।२१।१४ से २४ तक ।
१०. वा० रा० ६।२१।३३ ।
११. वा० रा० ६।२१।३५ ।
१२. वा० रा० ६।२२।१, ४ ।
१३. वा० रा० ६।२२।६, १५ ।
१४. वा० रा० ६।२२, १७, २१ ।

द्वारा सेतुबंध निर्माण' यह समुद्र संतरण का उपाय बताया[1] तथा राम द्वारा संधानित बाण को उत्तर की ओर फेंकने का अनुरोध किया।[2] राम के बाण के प्रभाव से वह प्रदेश मरुकान्तार प्रदेश कहलाया जिसे राम ने अपने वरदान से फलफूल धन धान्य सम्पन्न बना दिया।[3]

मानस में भी गोस्वामी जी ने अपनी नीति निपुणता का योग करते हुये राम द्वारा केवल एक बार चाप संधानित करवाया।[4] उसमें भी अन्तर यह है कि रामायण में लक्ष्मण ने इस कार्य को रोका है, मानस में समर्थन किया है।[5] जिसका कारण ऊपर दिया जा चुका है कि लक्ष्मण ने इस सत्याग्रह का पूर्व ही विरोध किया था और राम ने 'ऐसेहि करब' का आश्वासन भी दिया था। अतएव 'यह मत लछिमन के मन भावा' यह उक्ति पूर्व उक्ति मंत्र 'लछिमन मन भावा' की पूरक एवं साम्यमूलक है।

मानस में प्रचंड सूर्य की भाँति नहीं अपितु शान्त विप्ररूप में सागर ने अपनी दैन्य सिंचित वाणी से राम को शान्त कर दिया।[6] यह भेद पुन: तुलसी की दैन्य भक्ति की प्रेरणा का प्रतिरूप है जिसका परिणाम भी उपसंहार में दर्शनीय है। अपात्र समुद्र को भी शरणापन्न मान कर:

'सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥'[7]

समुद्रोल्लंघन के उपाय में भी भेद है। मानस में नल नील द्वारा सेतु बंध करवाने का परामर्श दिया, वाल्मीकि रामायण व अध्यात्म रामायण में केवल नल द्वारा।[8] वहाँ विश्वकर्मा का आशीर्वाद नल की निर्माण कला का कारण है[9] मानस में ऋषि आशीर्वाद कृपा उस अद्भुत कौशल का मूल है।[10] इस प्रकार समुद्र प्रसंग में भी तुलसी का भक्त व्यक्तित्व प्रधान है।

सेतु बन्ध का रामायण[11] में मानस[12] की अपेक्षाकृत विस्तृत एवं चित्रात्मक वर्णन है। तत्पश्चात् रामायण में क्रियाशीलता का क्रम अबाध रहता है परन्तु इतना महान् कार्य

---

१. वा० रा० ६।२२।४३।
२. वा० रा० ६।२२।३०, ३२।
३. वा० रा० ६।२२।३४,४०।
४. मा० ५।७५।५ पूर्वार्द्ध।
५. मा० ५।५७।५ उत्तरार्द्ध।
६. मा० ५।५८।१,५।५९ तक।
७. मा० ५।५९।६।
८. मा० ५।५९।१।
९. वा० रा० ६।२२।४२।
१०. मा० ५।५९।१।११।
११. वा० रा० ६।२२।५१,६९।
१२. मा० ६।१।६।१।

करने के पश्चात् गोस्वामी जी राम द्वारा 'रामेश्वर स्थापना' कराना भी परमावश्यक समझते हैं। इसके कई कारण कहे जा सकते हैं।

श्री बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार :

'लंका के सांस्कृतिक आराध्य शिव के लिए भारत के हृदय में भी पूर्ण सम्मान है। यदि विरोध है तो केवल रावण के दुष्कृत्य से ही'[1]

श्री रामदास जी गौड़ का कथन है :—

'विष्णु और शिव का अभेद दिखाना तो मानस का चरम उद्देश्य है जो इसी स्थल पर परिपक्व होकर अपने पूर्ण परिणाम को पहुँचता है।'[2]

उपर्युक्त कथन का स्पष्ट निदर्शन रामेश्वर माहात्म्य[3] एवं निम्नांकित दोहे में है :

'संकर प्रिय मम द्रोही सिवद्रोही ममदास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥'[4]

उक्त प्रसंग का आधार आनन्द एवं अध्यात्म रामायण में दृष्टव्य है।

समुद्र-संतरण के प्रसंग में भी भेद है। 'जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय' जानने वाले गोस्वामी जी ने भेद भगति अपनाकर अग जग की विश्व व्यापिनी प्रभुभक्ति का भी निदर्शन इस प्रसंग में भी कराया है। समुद्रोल्लंघन के समय मकर नक्रादि भीषणाति भीषण जल चरवृन्द भी सौन्दर्य शिरोमणि राम के दर्शनार्थ प्रकट हो गये।[5] इतना ही नहीं उनकी भी दशा की संज्ञा 'तन्मयतावस्था' की ही कही जायगी।[6] इन जल चरों[7] और जनकपुरवासियों के अनुभावों में पूर्ण साम्य है।[8]

राम सैन्य की विशालता के कारण समुद्र पार जाने के कई भागों द्वारा संतरण किया गया। रामायण में दो भागों का उल्लेख है,[9] मानस में तीन।[10] यद्यपि रामायण में कुछ वानरों द्वारा समुद्र में तैर कर भी पार करने का उल्लेख मिलता है। मानसके तीसरे मार्ग

---

१. मानस में राम कथा-पृष्ठ ११८
२. मानस-पीयूष पृष्ठ २३।
३. मा० ६।२।१,४।
४. मा० ६।२।
५. मा० ६।३।४,८।
६. 'मगन भये हरि रूप निहारी' मा० ६।३।८।
७. 'प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे।'
८. 'देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥' मा० १।२४४।३।
९. (१) गमन मार्ग रा० ६।२२।८१।
   (२) सेतु मार्ग रा० ६।२२।८३,८४।
१०. (१) गमन मार्ग मा० ६।४ प्रथम पंक्ति।
   (२) जलचर मार्ग मा० ६।४। द्वितीय पंक्ति।
   (३) सेतु मार्ग मा० ६।३।१,६।४।२।

का भी कारण तुलसी की भक्ति प्रवणता ही है जिसने जल चर वृन्दों को भी राम के सहायकों के रूप में प्रस्तुत किया है।

इस प्रसंग में तुलसी की वस्तु योजना की सूक्ष्म दृष्टि स्तुत्य है। प्रभु दर्शन में निमग्न जलचर समाधि दशा में अविचल रूप से स्थित हो गये। उनकी अविचल भाव दशा ने द्वितीय सेतु निर्माण का कार्य संपादन स्वतः कर प्रभु कार्य में अटूट सहयोग दिया। 'भक्ति' और 'कर्म' का यह ग्रन्थि बन्धन अपनी निराली छटा रखता है।

मानस पीयूष में इस प्रसंग के कारण भी नितान्त अनुकूल एवं सार गर्भित किये गये हैं।[1]

'श्री गोस्वामी जी ने यहाँ समुद्र उतरने वालों के लिये तीन रास्ते कहे, इसका हेतु यह है कि संसार समुद्र उतरने के भी तीन मार्ग हैं, कर्म, उपासना एवं ज्ञान'''। जो सेतु पर चढ़ कर जाते हैं वे कर्म कांडी हैं, जो जल जन्तुओं पर चढ़ कर जाते हैं, वे उपासक हैं और जो आकाश में उड़कर जाते हैं, वे ज्ञानी हैं।

अन्य लोगों ने जलचर को कर्म मार्ग, और सेतु को उपासना मार्ग माना है। उनका मत है कि जलचर और कर्म मार्ग में समता यह है कि दोनों में डूबने का भय रहता है, पार कर दे तो कर दे, पर निश्चय नहीं है। सेतु और उपासना मार्ग में समानता यह है कि दोनों में श्रम नहीं और न गिरने या डूबने का डर है, दूसरे यह सबके लिये सुगम है। नभ मार्ग और ज्ञान में समता यह है कि दोनों निरवलंब हैं, सब इसके अधिकारी नहीं हैं।

रामायण में समुद्र संतरण के अद्‌भुत कार्य से प्रभावित सिद्ध चारण एवं महर्षि आदि के द्वारा राम के पुण्याभिषेक, प्रशंसा एवं आशीर्वचनादि का प्रसंग भी मिलता है।[2]

रामायण में राम ने उचित समय देख कर लक्ष्मण से सैन्य संचालन एवं सैन्य संगठन का आदेश दिया। राम चतुर्दिक् सैन्य स्थापन कर युद्ध निमित्त सन्नद्ध हो गये।[3] मानस में व्यूहाकार सैन्य नियुक्त करने का उल्लेख न होकर केवल संकेत मात्र है।[4]

सेतु बन्ध का समाचार रामायण में शुक दूत द्वारा रावण को प्राप्त हुआ[5] परन्तु मानस में कपि भालुओं द्वारा पीड़ित एवं अंग-भंग किये गये निशिचरों द्वारा।[6] उक्त समाचार सुनकर रावण के आश्चर्य का दोनों ग्रन्थों में साम्य है।[7]

रामायण में आकुल होकर रावण क्रियाशील हो उठता है, मानस में भयभीत हो जाता है। अतएव रामायण में उसने निज रिपु बल की जिज्ञासा से[8] गुप्तचरों की नियुक्ति

---

१. मा० पी लं० कां० पृष्ठ ३९।
२. रामायण ६।२३।८५,८६।
३. रा० ६।२३।२,३,६।२४।१४,२०।
४. मा० ६।४।३।
५. रा० ६।२४।३२।
६. मा० ६।४।१०।
७. रा० ६।२५।२,३, मा० ६।५।
८. रा० ६।२६।८ से ६।२८।४२ तक।

की जब कि मानस में पतिव्रता तत्वज्ञात्री पत्नी मन्दोदरी भयभीत रावण को अनेक रीति से उपदेश द्वारा उसे उचित पथावलम्बन के लिये प्रेरित करती है परन्तु कालवश्य रावण उसकी ओर ध्यान न देकर स्वगर्व पर ही आरूढ़ रहता है ।[1] मानस की अपेक्षाकृत रामायण में रावण की क्रियात्मकता एवं सतर्कता का विशेषोल्लेख है ।[2] मानस में उसे अवश्यम्भावी युद्ध से पराङ्-मुख करते की चेष्टा अनेक तत्वज्ञों ने की परन्तु उसने अपनी हठधर्मिता का ही प्रदर्शन किया। मन्दोदरी के पश्चात् 'प्रहस्त रावण संवाद' भी इसी का उदाहरण है ।[3]

रामायण में रावण द्वारा माया बल प्रदर्शन के निम्नांकित प्रसंग[4] का मानस में अभाव है ।

'सीता को अपने वशीभूत करने की कामना से रावण ने विद्युज्जिह्व नामक राक्षस द्वारा निर्मित राम के कृत्रिम कटे हुये सिर को दिखाया, सीता करुणा से अभिभूत हो आर्त्त-नाद करने लगीं परन्तु आवश्यक कार्यवश रावण के जाते ही सरमा नामक सीता की सखी ने दुःखाप्लावित सीता से रावण की माया का रहस्य उद्घाटित किया और उन्हें आश्वस्त किया। इतना ही नहीं सीता को युद्ध के समस्त समाचार भी अवगत कराये। सीता ने सरमा को गुप्तचरी के रूप में नियुक्त कर युद्ध के समाचार ज्ञात किये ।'

मानस में इस प्रसंग के अभाव का कारण स्पष्ट है। राम-भक्त तुलसी अपने इष्ट देव के सिर कटने का प्रसंग किस प्रकार अंकित कर सकते थे, यह उन्हें कैसे सह्य होता। भले ही वह माया की प्रेरणा से ही क्यों न हो ? इस प्रसंग से उनकी भक्ति एक मर्यादा में पूर्ण बाधा पड़ जाती ।

रामायण में राम ने सुवेल पर्वत पर स्थित होने के पूर्व ही युद्ध । ह्वान की भूमिका बंधवा दी[5] तथा सुवेल पर्वत पर स्थित होकर लंका नगरी का सम्यक् निरीक्षण किया। उसी शिखर पर से सुग्रीव ने अपने द्वारा लंका की ओर प्रयाण का साहसिक कार्य किया। जब कि मानस में युद्ध से पूर्व दो दृश्य विधानों की योजना कर गोस्वामी जी ने नाटकीय सौन्दर्य उपस्थित कर दिया है। 'सुवेल पर्वत पर स्थित राम की झांकी'[6] राजनीति एवं उपासना दोनों दृष्टिकोण से दर्शनीय है। रामायणकार ने सुग्रीव द्वारा रावण के मुकुटादि निक्षेप का वर्णन किया है जब कि मानसकार ने राम द्वारा। रामायणकार ने युद्धारम्भ का सूत्रपात भी सेनाध्यक्ष सुग्रीव से कराना उचित समझा किन्तु गोस्वामी जी ने इतने महान् गुरुतम युद्ध कार्य का श्री गणेश राम द्वारा ही सम्पादित कराया। द्वितीय पक्ष के राजा रावण के नील शिखर पर स्थित 'अखाड़े, का दृश्य[7] भी इसी के समकक्ष है। इस

१, मा० ६।५।४ से ६।७।५। तक।

२. रा० ६।३१।२,५।

३. ला० ६।८ से ६।९।५।

४. रा० ६।३१।७ से ६।३३।३६ तक।

५. रा० ६।३४।२७,२८। ६।३७।२६।

६. मा० ६।१०।१ से ६।११ (क) तक।

७. मा० ६।१।७ से ६।१०, ६।१२।४ से ७ तक।

प्रकार युद्ध का श्री गणेश राम ने सुवेल पर्वत पर स्थित होकर किया। अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी तुलसी ने सभा में स्थित रावण के छत्र मुकुटादि को एक बाण से ही नष्ट कर महारस भंग कर दिया।[1] अथवा अन्य शब्दों में अपने सूक्ष्म बाण कौशल का प्रदर्शन कर अपने प्रतिपक्षी को सचेत कर दिया। जिससे आंतकित होकर मन्दोदरी ने तृतीय बार राम का विराट रूप दर्शाकर रावण को उपदेश दिया। परन्तु उसका भी रावण पर कोई प्रभाव न पड़ा।[2]

इसी प्रकार रामायण में भी माल्यवान् ने युद्ध से पूर्व रावण को राजनीति के दृष्टि-कोण से समझाने की चेष्टा की और लंका में होने वाले अपशकुनों की ओर रावण का ध्यान आकृष्ट किया[3] परन्तु यह प्रयास भी उसके लिये व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। माल्यवान् ही नहीं उसकी माता एवं मंत्रिगणों द्वारा प्रदत्त परामर्श की भी अवहेलना करने का उल्लेख रामायण में है।[4]

अंगद रावण संवाद में भिन्नता है। रामायण में यह दूत प्रेषण कार्य युद्ध की प्रार-म्भिक ललकार-सा प्रतीत होता है।[5] जब कि मानस में शान्ति प्रिय राम की परहितकारिणी नीति का उदाहरण स्वरूप है।[6] मानस में यह प्रसंग हनुमन्नाटक पर आधारित है जिसका उल्लेख पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। रामायण में अपेक्षाकृत यह प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त है।[7] अंगद द्वारा राम का संदेश सुनते ही रावण कुपित हो उठा और उसने अंगद को बाँधने की आज्ञा दे दी। यातुधानों की भुजाओं में आबद्ध अंगद ने उछल कर राजमंदिर ध्वस्त कर डाला तथा घोर निनाद करते हुये राम के पास पुनः लौट आये।

मानस में प्रभु प्रताप का स्मरण करते हुये अंगद ने सर्वप्रथम रावण-पुत्र का वध किया, रावण की सभा में निर्भीक प्रवेश कर अपना परिचयात्मक सम्बन्ध निर्देश करते हुये उसे उचित परामर्श दिया:—

'अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनक सुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे'।
प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि-त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करेंगे तोहि॥[8]

तत्पश्चात् दोनों में वाग्युद्ध हुआ,[9] अंगद की मर्मभेदिनी वक्रोक्तियों तथा रावण की

---

१. मा० ६।१३।
२. मा० ६।१३।७ से ६।१५ तक।
३. रा० ६।३५।८ से ३७ तक।
४. रा० ६।३४।२०,२३।
५. वा० रा० ६।४१।६२,७३। राम संदेश।
६. 'काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई' मा० ६।१६।८।
७. वा० रा० ६।४१।७४ से ९२ तक।
८. मा० ६।१९।६,८, ६।१०।
९. मा० ६।२०। से ६।३१ तक।

गर्वोक्तियों में संघर्षण हुआ जिसमें अंगद की निर्भीकता, तेजस्विता, आत्मविश्वास, स्वामिभक्ति आदि अप्रतिम गुण दर्शनीय हैं। दौत्यकर्म वाचिक निर्वाह सम्यक् रूपेण करने के पश्चात् स्वामिभक्त अंगद ने राम की निन्दा सुनते ही अपने कायिक अनुभावों से रावण सभा में आतंक उपस्थित कर दिया। दूत होने के कारण रावण पर आघात तो वे न कर सकते थे अतः विवश होने के कारण प्रभुनिन्दा सुनते ही उत्तेजित हो ही उठे। उनके भुजदंडों के आघात से पृथ्वी प्रकम्पित हो उठी, सभासद तथा रावणादि भी लड़खड़ा पड़े, उसके मुकुट धराशायी हो गये। अंगद ने उनमें से चार को राम के समीप फेंक दिया।[1] इसके पश्चात् भी दोनों में वाग्युद्ध होता ही रहा।[2] इतना ही नहीं क्रोधाविष्ट हो अंगद ने राम प्रताप के ही आश्रय पर 'पदारोपण' कर प्रण भी कर डाला—

'जो मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥'[3]

सुमटातिसुभट अंगद का पद डिगाने में असमर्थ ही रहे। रावण के सिंहासन से उठकर अंगद चरण के समीप आते ही अंगद ने उसे अपनी युक्ति से 'श्रीहत' कर दिया और वह बिना पद उठाये ही सिंहासन पर लौट गया।[4] इस प्रकार अनेक प्रकार के नीति उपदेशों का कोई प्रभाव न देख,[5] रावण को युद्ध के लिये ललकारते हुये अंगद राम के समीप भक्ति भाव से शरणापन्न हो गये।[6] उधर मन्दोदरी ने इस आतंकमयी घटना से त्रसित रावण को युद्ध से पराङ्मुख होकर राम भक्ति की विमल कीर्ति प्राप्त करने के लिये चतुर्थ बार उपदेश दिया।[7] इधर अंगद ने मुकुट—क्षेपण का रहस्य एवं लंका के समाचार राम को अवगत कराये।[8]

इस प्रकार रामायण की अपेक्षाकृत भाव गांभीर्य, नाट्य कौशल, प्रभावात्मकता आदि अनेक दृष्टियों से मानस का यह प्रसंग महत्वपूर्ण है।

रावण को हठधर्मिता पर स्थिर देख युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया :

'तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्'[9]

मानस में भी सचिवों के साथ मंत्रणा करने के पश्चात् राम ने सेनापतियों को विभिन्न दिशाओं में नियुक्त कर युद्ध के लिये प्रेरित किया समस्त कपि कटक ने 'प्रभु प्रताप' का

---

१. मा० ६।३१।३,३२।
२. मा० ६।३२। से ६।३३।७ तक।
३. मा० ६।३३।९।
४. मा० ६।३३।१० स ६।३४।५।
५. मा० ६।३४।९।
६. मा० ६।३५।
७. मा० ६।३५ से ६।३७।
८. मा० ६।३७।३ ६।३८।
९. वा० रा० ६।४३।१६। वा० रा० ६।५२,५३।

बृहद् मानसिक शस्त्र लेकर राम की जय जयकार करते हुये युद्ध हेतु प्रयाण कर दिया ।[1] दोनों वर्गों में भीषण युद्ध होता रहा ।[2] विपक्षियों के घोरतम अस्त्र शस्त्रों के प्रहार से कपि-वृन्द क्षुभित हो उठे ।[3] यह देख हनुमान् ने मेघनाद पर आक्रमण कर दिया । उसे रथ रहित कर पदाघात से विक्षुब्ध कर डाला ।[4] यह समाचार सुनते ही अंगद हनुमान् की सहायतार्थ तुरन्त उपस्थित हो गये और दोनों ने रावण के कलशयुक्त भवन को धराशायी कर दिया ।[5]

रामायण में कलश भंग का प्रसंग अंगद दौत्य कर्म के समय ही उल्लिखित हो चुका है । मेघनाद के 'रथ भंग' भी रामायण में अंगद द्वारा ही किया गया है, हनुमान् द्वारा जम्बुमाली का रथ विध्वंस कराया गया है, मेघनाद का नहीं ।[6]

मानसकार ने दोनों प्रसंगों का ऐक्य कर राम भक्त हनुमान् के शौर्य को भी विशेष महत्व प्रदान किया है ।

उक्त युद्धारम्भ के विवरण देते समय रामायणकार की दृष्टि उसके सजीव चित्रात्मक वर्णन की ओर विशेष रही है जबकि भक्ति प्रवण मानसकार को उस भीषण वातावरण में भी राम सुयश चर्चा का मूलाधार कभी विस्मृत नहीं हो सका है ।[7] प्रत्येक युद्ध के दृश्यों की भित्तियां 'राम प्रताप' के ही मूल पर आधारित हैं ।[8] इसके अतिरिक्त एक भेद और है । जहां रामायण में राम भी अपने समस्त सैन्य के साथ स्वयं भी युद्ध स्थल पर जाते हैं[9] वहीं मानस में केवल उनकी सेना ही प्रथमतः युद्ध करती है । इसका कारण पूर्वोक्त है । सेना के रूप में राम अपने 'प्रताप' के माध्यम से युद्ध कर ही रहे हैं और उसका अलौकिक परिणाम भी पूर्णतः राम के ही आधीन है :

'महा महा मुखिया जे पावहिं । ते पद गहि प्रभु पास चलावहि ।।
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा । देहिं राम तिन्हहूँ निज धामा ।।'[10]

---

१. मा० ६।३८।४ ६।३९।
२. मा० ६।४० से ६।४२।
३. मा० ६।४२ से ६।४२।२ तक ।
४. मा० ६।४२।५ से ६ ।
५. मा० ६।४३।३।
६. वा० रा० ६।४३।१९ से २२ तक ।
७. 'कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं । रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं ।।' मा० ६।४३।५।
८. 'प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए । सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ।।
जानत परम दुर्ग अति लंका । प्रभु प्रताप कपि चले असंका ।।
राम प्रताप प्रबल कपि जूथा । मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा ।।
चढ़े दुर्ग पुनि जहं तहं बानर । जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ।।'
मा० ६।३४।६,९, ६।४१।१,२।
९. वा० रा० ६।४३।२७, ६।४४।९।
१०, मा० ६।४४।१,२।

दोनों ही ग्रन्थों के 'निशायुद्ध' में साम्य है।[1] घनघोर अन्धकारमय विकराल स्थिति में श्रीराम ने अपने अग्निबाण से प्रकाश विकीर्ण कर दिया।[2] प्रकाश पाते ही युद्ध में उग्रता आ गई। दोनों में अन्तर यह है कि रामायण के इस 'निशायुद्ध में मेघनाद ने अपना मायावी युद्ध कौशल भी दर्शाया, स्वयं अदृश्य होकर, राम लक्ष्मण को भी बाणों से मोहित कर नाग पाश से आबद्ध कर डाला।[3] जबकि मानस में अग्नि बाण का प्रकाश पाकर हनुमान् अंगद के सेनापतित्व में वानरों की वीरता के उत्कर्ष का ही उल्लेख किया गया है।[4] जिससे बलाधीश्वर रावण भी आतुर होकर पुकार उठा :

'आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥'[5]

जिसको सुनकर माल्यवान् ने समयानुकूल उपदेश देकर रावण को युद्ध से विरत करने चेष्टा की। माल्यवान् का यह प्रयास रामायण में युद्ध से पूर्व दिखाया गया है। मानस में प्रथम युद्ध की समाप्ति पर। इस उपदेश में अशकुनों की सूचना, राम की ईश्वरता का प्रतिपादन तथा राम विमुखता का परिणाम भी निर्दिष्ट किया है।[6]

रामायण में नागपाशाबद्ध राम लक्ष्मण की करुण स्थिति का चित्रण आदि कवि ने प्रथम मेघनाद युद्ध में ही किया है। इसी स्थिति में ही राम ने जब मूर्च्छारहित हो लक्ष्मण को भी मरणासन्न शराबद्ध दशा में देखा तो विलाप करने लगे। मानस में राम ने यह विलाप लक्ष्मण के वीरघातिनी शक्ति लगने पर किया है। मानसकार ने द्वितीय मेघनाद युद्ध में केवल राम को ही व्याल पाशाबद्ध दिखाया है।[7] रामायण में रावण ने सीता को विमानासीन कर राम लक्ष्मण को इस बाणाहत, नागपाश विमोहित करुणतम स्थिति का दर्शन कराया जिससे कि सीता राम को युद्ध में मृत जान उसके आश्रित हो जायँ परन्तु अति क्रन्दन करती हुई सीता को, त्रिजटा ने वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराकर आश्वस्त किया।[8]

मानस में इस प्रसंग का अभाव है। 'उद्भवस्थितिसंहारकारिणी' सीता को वस्तुस्थित से अनभिज्ञ दिखाना तथा अपनी इष्ट देवी अम्बा को ऐसी विषम परिस्थितियों के दर्शन कराकर दुःखी चित्रण करना तुलसी की भावना के विपरीत था।

---

१. (१) 'संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम्।' वा० रा० ६।४४।२।
(२) 'जातु धान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥
निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहं तहं कटकटाई भट भिरे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥
मा० ६।४५।४,५,८।

२. वा० रा० ६।४४।२२, मा० ६।४६।३,४।
३. वा० रा० ६।४५।३६ से ३९ तक।
४. मा० ६।४६।५ ६।४७।
५. मा० ६।४७।४।
६. मा० ६।४७।६ से ६।४८।१ तक।
७. मा० ६।७२।१०,११।
८. वा० रा० ६।४७।७ से ६।४८।३७ तक।

दोनों ग्रन्थों में गरुड़ द्वारा व्यालपाश से राम की मुक्ति का वर्णन किया गया है। केवल अन्तर यह है कि रामायण में स्वत: आये हुये गरुड़ को देखते ही नागों का भाग जाना वर्णित है[1] जबकि मानस में नारद द्वारा प्रेषित गरुड़ जी द्वारा नागों को भक्षण करना कहा गया है।[2]

रामायण में युद्ध वर्णन करते समय कवि ने व्यास शैली का आश्रय ग्रहण किया है। मानस में समास शैली का। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रामायण में युद्ध का विस्तृत वर्णन है। प्रत्येक प्रमुख वानर वीर का उसके प्रतिद्वन्दी प्रतिभट राक्षस से युद्ध वर्णन करते समय उसका शौर्य चित्रण कराया है[3] जबकि मानस में विस्तार भय से केवल गण्यमान प्रमुखातिप्रमुख वीरों के ही युद्ध कौशल का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।[4]

रामायण में उपर्युक्त वीरों के वध के अनन्तर रावण का युद्ध निमित्त प्रयाण तथा रणांगण में अनेक वीर प्रमुखों के साथ भीषण युद्ध वर्णित है। मानस में नहीं। सर्व प्रथम सुग्रीव के साथ उसने द्वन्द्व युद्ध किया[5], तदनन्तर वानर वृन्दों के साथ।[6] राम द्वारा प्रेषित लक्ष्मण एवं रावण का यह प्रथम युद्ध[7] मानस के प्रथम लक्ष्मण मेघनाद युद्ध[8] से पूर्ण साम्य रखता है। साम्य के विशिष्ट स्थलों में रामायण में लक्ष्मण पर रावण द्वारा ब्रह्म शक्ति प्रहार तथा रावण द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित दशा में उठाना, हनुमान द्वारा संज्ञा-रहित लक्ष्मण का राम के समीप आनयन[9] मानस के मेघनाद द्वारा लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति—प्रक्षेप, मेघनाद सम कोटि योद्धाओं द्वारा शेषावतार लक्ष्मण को उठाना तथा फिर हनुमान द्वारा उनको राम के समीप ले जाना आदि प्रसंगों में पूर्ण साम्य है।[10] इस में भेद का स्थल यह कि रामायण में रावण द्वारा शक्ति लगने से लक्ष्मण अचेत हो गये परन्तु आत्मचिन्तन करने से वे व्यथा मुक्त हो गये जबकि मानस में हनुमान् द्वारा संजीवनी आनयन से लक्ष्मण का स्वस्थ होना वर्णित है। इस प्रसंग में नहीं। यह संजीवनी आनयन का प्रसंग रामायण में आगे चलकर वर्णित है।

---

१. वा० रा० ६।५०।३७।
२. मा० ६।७४।
३. (१) 'हनुमान् धूम्राक्ष युद्ध एवं उसका वध' वा० रा० ६।५२।१,३८।
(२) 'अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र की पराजय एवं उसकी मृत्यु' वा० रा० ६।५३,५४।
(३) 'अकम्पन राक्षस के साथ हनुमान् का युद्ध और उसकी मृत्यु' वा० रा० ६।५५,५६।
(४) 'सेनापति प्रहस्त का नील द्वारा वध'
४. वा० रा० ६।५७,५८।
५. वा० रा० ६।५९।३६,४१।
६. वा० रा० ६।५९।९१।
७. वा० रा० ६।५९।९२,१२३।
८. मानस ६।५२ से ६।५४ तक।
९. वा० रा० ६।५९।१०८,११०,११३,११९।
१०. मा० ६।५३।७, ६।५४, ६।५४।६।

इस प्रथम रावण युद्ध के प्रसंग में राम द्वारा रावण के पराभव का भी रामायण में उल्लेख है ।[१] जिससे लज्जित होकर रावण धनुष एवं मुकुटों से रहित होने से दर्पहत्त होकर लंका नगरी को लौट गया तथा अत्यन्त मर्मभेदिनी व्यथा से पीड़ित होकर चिंता निमग्न होकर कुम्भकरण को जगाने की आज्ञा दी ।[२] मानस में भी कुम्करण जागरण प्रसंग भी लक्ष्मण शक्ति विमोच के पश्चात् ही वर्णित है । रामायण का यह प्रसंग[३] मानस की अपेक्षाकृत[४] अत्यन्त विस्तारपूर्वक उल्लिखित है अथवा यह कहना असंगत न होगा कि रामायण में उसका चित्रात्मक एवं व्यापक विवरण है जबकि मानस में केवल संकेत मात्र । रामायण में राक्षसाधिपति ने इस कार्य के निमित्त राक्षस यूथपों को प्रेषित किया जबकि मानस में स्वयं । प्रथम में राजा की मर्यादा तथा द्वितीय में उसकी व्याकुलता का आधिक्य व्यंजित है । रामायण में कुम्भकरण स्वयं रावण के मन्दिर गया और उसे नैतिक उपदेश[५] दिया जिसे सुन रावण क्षुभित हो उठा । रावण को कुपित एवं अतिव्यथित देख कुम्भकर्ण ने फिर निज गर्वोक्तियों द्वारा रावण को आश्वस्त किया ।[६]

मानस में रावण का स्वयं कुम्भकर्ण के समीप जाना तथा वहीं पर कुम्भकर्ण द्वारा राम के आध्यात्मिक स्वरूप का विवेचन एवं तात्विक उपदेश वर्णित है ।[७]

कुम्भकर्ण रावण संवाद के अन्तर्गत रामायण में महोदर की सीता को मायाजाल से वश में करने की षड्यंत्र योजना[८] का मानस में अभाव है । इसका कारण 'विद्युज्जिह्व प्रसंग' में उल्लिखित किया जा चुका है ।

रामायण में युद्ध क्षेत्र में आते ही सैन्य रहित कुम्भकर्ण ने एकाकी ही आकर घोर तम युद्ध प्रारम्भ कर दिया परन्तु मानस में युद्ध करने से पूर्व कुम्भकर्ण विभीषण मिलन प्रसंग[९] में कवि को भक्त रूप की प्रेरणा स्पष्टत: परिलक्षित होती है जिसने भीषणातिभीषण कुम्भकर्ण में भी भक्ति की शीतल रश्मियों को विकीर्ण कर दिया है ।

'विभीषण कुम्भकर्ण मिलन' का कारण स्पष्ट है । रामायण की अपेक्षाकृत मानस का कुम्भकर्ण भक्त है जो कि रावण प्रति आध्यात्मिक उपदेश से प्रमाणित हो चुका है । अतएव युद्ध के पूर्व इस संवाद को लिखना गोस्वामी जी के लिये नितान्त आवश्यक था ।

मानस पीयूषकार भी इसका आधार इस प्रकार लिखते हैं:—[१०]

---

१. वा० रा० ६।५९।१३८,१४५।
२. वा० रा० ६।६०।११६।
३. वा० रा० ६।६०।२२ से ५६ तक ।
४. मा० ६।६१।६।
५. वा० रा० ६।६३।१,२१।
६. वा० रा० ६।६३।३१,५७।
७. मा० ६।६२ से ६।६२।६ तक ।
८. वा० रा० ६।६४।२१ से ३५ तक ।
९. मा० ६।६३।३ से ६।६४। तक ।
१०. मानस पीयूष लं० कां० पृष्ठ ३४२।

'लंका से श्रीराम जी की शरण में आते समय विभीषण जी अपनी माता और बड़े भाई कुबेर से मिल कर तब आये थे। कुम्भकर्ण भी बड़े भाई हैं और राम विमुख नहीं हैं, अतएव उनसे मिल कर आशीर्वाद लेने आये।'... ....

दूसरा कारण यह भी कहा जा सकता है कि विभीषण ने सोचा कि संभवत: रावण ने इससे मेरी निन्दा अवश्य की होगी कि विपत्ति आने पर मुझे छोड़ कर राज्य लोभ से वह शत्रु से जा मिला और जाकर अपना तिलक भी करा लिया।....अत: अपने को निरपराध सिद्ध करने और वास्तविक वृत्तान्त बताकर उसका संदेह मिटाने के लिये सुअवसर जान मिलने गये। श्रीमान् गौड़ जी एक कारण और भी लिखते हैं........

'अब कुम्भकर्ण का मरण समय है। लंका में तो वह सभी भाई बन्धु कुटुम्बियों से मिलकर चला है। एक बेचारा छोटा भाई विभीषण ही रह जाता है। इसलिये ग्रन्थकार गोसाईं जी ने किसी न किसी मिस से सब भ्राताओं का मिलन वर्णन कर दिया है क्योंकि अब आगे मिलन होना असम्भव है। यदि विभीषण का मिलन कुम्भकर्ण से न होता तो रावण के कथनानुसार विभीषण पर पूरा पूरा-संदेह रहता, जो मरने के समय साथ ही मन में चला जाता। अत: कुम्भकर्ण का मोक्ष न होता, इससे दोनों का मिलन कराके संदेह मिटाकर कुम्भकर्ण को मोक्ष का अधिकारी बनाया।'

रामायण में कुम्भकर्ण का युद्ध वर्णन मानस की अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसमें प्रथम हनुमान् के साथ[१] फिर नील के साथ,[२] तत्पश्चात् पंच महावानरों के साथ[३] उसका युद्ध का प्रारम्भ हुआ। कालाग्नि सदृश कुम्भकर्ण के वानर सैन्य को दग्ध करने पर[४] सभी व्यथित वानरगण राम के शरणापन्न हुए। इसी मध्य अंगद एवं सुग्रीव को युद्ध में परास्त कर मूर्च्छित करने का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में सम है।[५] सुग्रीव ने सचेत होते ही उसे नाक-कान से विहीन कर दिया।[६] क्षत विक्षत होने पर उसका क्रोध द्विगुणित हो उठा और वानर सैन्य का भक्षण आरम्भ कर दिया।[७]

---

१. (१) वा० रा० ६।६७।१५,२०।
 (२) मा० ६।६४।७,८।
२. (१) वा० रा० र० ६।६७।२२,२४।
 (२) मा० ६।६४।९।
३. वा० रा० ६।६७।२५,३१।
४. (१) वा० रा० ६।६७।३५,४०।
 (२) मा० ६।६४।१०।
५. (१) वा० रा० ६।६७।५१,६७,६८।
 (२) मा० ६।६५।
६. (१) वा० रा० ६।६७।८७।
 (२) मा० ६।६५।७।
७. (१) वा० रा० ६।६७।९४,९८।
 (२) मा० ६।६५।९।

इस युद्ध प्रसंग में अन्तर यह है कि रामायण में राम कुम्भकर्ण युद्ध के पूर्व लक्ष्मण कुम्भकर्ण युद्ध[१] भी वर्णित है जब कि मानसकार ने व्यथित एवं शरणागत वानर सैन्य की रक्षार्थ राम द्वारा ही[२] कुम्भकर्ण युद्ध कराना विशेष उपयुक्त समझा। रामायण में अपेक्षाकृत राम कुम्भकर्ण युद्ध का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है।[३]

कुम्भकर्ण के अन्त के विषय में दोनों ग्रन्थों में अन्तर है। जहाँ रामायणकार ने कुम्भकर्ण के कटे सिर को लंका के कोट पर और धड़ पाताल तक पहुँचा दिया,[४] वहाँ मानसकार ने उसे राम द्वारा निज[५] धाम दिला कर अपने भक्ति तत्व का पोषण किया।

कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् दोनों ग्रन्थों[६] में रावण के विलाप का उल्लेख है। परन्तु रामायण में यह करुण क्रन्दन विशेष मार्मिक है।

रामायण में भ्रातृ शोक से परितप्त दशमाथ को त्रिशिरा ने रावण को अपनी गर्वोक्तियों द्वारा आश्वस्त किया,[७] मानस में मेघनाद ने।[८] इस अन्तर का कारण यह है कि यहाँ पर गोस्वामी जी त्रिशिरा द्वारा रावण को आश्वासन किस प्रकार दिला सकते थे जब कि अरण्य कांड में ही त्रिशिरा के वध का उल्लेख वे कर चुके हैं।

अतएव रामायण में कुम्भकर्ण वध के अनन्तर दोनों दलों में घनघोर युद्ध के पश्चात् निशिचरवृन्दों से प्रमुख भटों त्रिशिरा, नरान्तक, देवान्तक, महोदय महापार्श्व तथा भीम कभी अतिकाय के वध का उल्लेख है।[१०]

इन प्रमुख योद्धाओं की मृत्यु के शोक से ग्रस्त महाबलाधिकृत रावण को फिर मेघनाद ने मान की भाँति (पूर्व कथित) आश्वस्त किया।[११]

द्वितीय मेघनाद युद्ध के प्रसंग में दोनों ग्रन्थों में अन्तर है। रामायण में युद्ध के पूर्व मेघनाद का यज्ञ कर्म वर्णित है[१२] मानस में राम को व्याल पाश बद्ध करने के पश्चात् 'अजय मख' प्रारम्भ किया।

---

१. वा० रा० ६।६७।१०२,११३।
२. मा० ६।६७।१ से ६।७१ तक।
३. वा० रा० ६।६७।११७,१७४।
४. वा० रा० ६।६७।१७३,१७४।
५. मा० ६।७१।
६. (१) वा० रा० ६।६८।६,८ से २४ तक।
(२) मा० ६।७१।४,५।
७. वा० रा० ६।६९।२,७।
८. मा० ६।७१।६,९।
९. 'खर दूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जो सब गाता।।' मा० ३।२१।१२।
१०. वा० रा० ६।६७।१८ से ६।७१।१०८ तक।
११. वा० रा० ६।७३।४ से ७।
१२. वा० रा० ६।७३।१८,२६।

मानसकार ने रामायण में वर्णित[1] कई प्रसंगों का एकीकरण कर समास शैली को अपनाया है। रामायण में दो बार मेघनाद के यज्ञ करने का उल्लेख है।[2] मानस में एक बार। उसके यज्ञ विध्वंस का उल्लेख दोनों में समान है। रामायण में मेघनाद के द्वितीय यज्ञ का विध्वंस वर्णित है मानस में उस यज्ञ को युद्ध के मध्य में उल्लेख कर, उसी यज्ञ का विध्वंस उल्लिखित कर दिया है।

मेघनाद युद्ध प्रकरण के अधिकांश प्रसंगों में दोनों ग्रन्थों में साम्य है। दोनों में मेघनाद का अदृश्य होकर मायावी युद्ध करने[3] एवं उसकी बाण वृष्टि द्वारा सकल वानर सैन्य के आहत होने[4] का उल्लेख है।

इसी प्रसंग के पश्चात् कथावस्तु में भेद है। रामायण में राम को ब्रह्मास्त्र से विद्ध एवं संज्ञाशून्य देख वानर सेना निराश एवं हतप्रभ हो गई परन्तु जामवन्त के आदेशानुसार हनुमान् हिमालय से मृत संजीवनी आदि औषधियाँ लाकर आहत राम लक्ष्मण एवं वानरगणों को शल्यरहित एवं वेदनामुक्त कर दिया।[5] इस प्रसंग का मानस में अभाव है। वस्तु योजना कि दृष्टि से यह त्रुटि अवश्य खटकती है कि :—

'सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन'[6] के पश्चात् उन पीड़ितों के स्वस्थ होने के आधार का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु वहाँ तो गोस्वामी जी का राम के प्रति दृष्टिकोण ही भिन्न है अत: वाह्य उपचार की उन्हें आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। गोस्वामी जी के संभवासंभवकर्ता विश्व पालक पोषक राम की कृपादृष्टि में ही वह सामर्थ्य है जो सबको विगतश्रम कर सकती है[7] तो फिर वह अलौकिक कृपादृष्टि में स्वस्थ करने की भी शक्ति हो सकती है। यह व्यंजना इस प्रसंग में भी व्यंजित है।

---

१. मा० ६।७४।२,६।७५।१।

२. वा० रा० ६।७३,१८,२६ तथा ६।८४।१४,६।८६।२।

३. (१) 'ते केवलं संदहशुः शिताग्रान्बाणान्‌णे वानर वाहिनीषु माया विगूढं च सुरेंद्र शत्रु न चात्र तं राक्षसमप्यपश्यन् ततः सुरक्षोऽधिपतिर्महात्मा सर्वा दिशो बाणगतैः शिताग्रैः प्रच्छादयामास रविप्रकाशैर्विदारयमास च वानरेन्द्रान्।

'अंतरिक्षं निरीक्षंतो दिशः सर्वाश्च वानराः।
न चैनं माययाछन्नं ददृशे रावणिं रणे ।।'

वा० रा० ६।७३।५३,५४।

(२) दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई ।।
धरु-धरु मारु सुनि अधुनि काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना ।।

मा० ६।७२।३,४।

४. (१) वा० रा० ६।७३,५१। से ६२।
(२) मा० ६।७२।२ से १० तक।

५. वा० रा० ६।७४।१,७४।

६. मा० ६।७२।९।

७. 'राम कृपा करि जुगल निहारे। भए विगतश्रम परम सुखारे ।।
राम कृपा करि चितवा जबहीं। भए विगतश्रम वानर जबहीं ।।' मा० ६।४५।२,६।४७।२।

इस प्रसंग के अतिरिक्त रामायण में व्यास शैली का प्रदर्शन कराया गया है। युद्ध के ये अतिरिक्त विवरण निम्नांकित हैं :—

मेघनाद वध के पूर्व वानर द्वारा लंका दाह,[1] राम द्वारा युद्ध के लिये प्रयाण,[2] वानर राक्षसों में घनघोर युद्ध,[3] सुग्रीव द्वारा कुम्भ की मृत्यु,[4] हनुमान् द्वारा निकुम्भ की मृत्यु,[5] राम द्वारा खर पुत्र मकराक्ष का वध[6] इत्यादि।

उपर्युक्त प्रतिभटों के वधों से रावण चिन्तित हो पुनः विचारमग्न हो उठा और मेघनाद को माया-युद्ध का आदेश प्रदान किया।[7] यज्ञ में आहुति दे मेघनाद पुनः रणांगण में आकर, अदृश्य होकर, बाण वृष्टि करने लगा तथा राम लक्ष्मण सहित वानर सैन्य को धराशायी कर दिया। परन्तु इतने से ही उसके आकुल मन[8] को शान्ति न मिली। उसे यह निश्चय हो गया कि प्रत्यक्ष युद्ध में राम लक्ष्मण पर विजय पाना असम्भव है अतएव मायामयी सीता को रथासीन कर युद्ध भूमि में वध का नाट्य किया।[9] इसे सत्य मान वानरगण युद्ध से पराङ्-मुख होने लगे।[10] इतना ही नहीं उक्त सूचना पाकर राम भी विषाद मग्न हो गये। उद्भ्रान्तचित्त एवं व्यथित राम को लक्ष्मण[11] ने आश्वस्त करने की चेष्टा की ही थी कि[12] विभीषण ने आकर यथार्थ तथ्य का उद्घाटन कर सबको चिन्ता विनिमुक्त किया।[13]

मानस में उक्त घटना के अभाव का कारण गोस्वामी जी की भक्ति भावना है जिसका उल्लेख विद्युज्जिह्व के माया जाल के प्रसंग में किया जा चुका है। साथ ही दूसरा यह कारण भी स्पष्ट है कि गोस्वामी जी अपने मायाधीश्वर राम को राक्षसों की माया से अनभिज्ञ कैसे दर्शा सकते थे।

माया सीता वध के षड्यन्त्र द्वारा अपने विपक्षियों को संकटग्रस्त कर मेघनाद निकुम्भिला में यज्ञ करने लगा। उसकी सूचना एवं महत्व विभीषण ने राम से निवेदित

---

१. वा० रा० ६।७५।६,३०।
२. वा० रा० ६।७५।३४,३९।
३. वा० रा० ६।७५।४०,४१,५९,७०।
४. वा० रा० ६।७६।६४,९२।
५. वा० रा० ६।७७।१०,२२।
६. वा० रा० ६।७७।२३,६।७९।२१,३९।
७. वा० रा० ६।८०।२,४।
८. वा० रा० ६।८०।२१ से ३६ तक।
९. वा० रा० ६।८१।५। से ३१ तक।
१०. वा० रा० ६।८१।३५,६।८१।२०,२१।
११. वा० रा० ६।८३।१०।
१२. वा० रा० ६।८३।१४,४४।
१३. वा० रा० ६।८४।९,१३।

किया[1] और लक्ष्मण के लिये उसके विनाशार्थ जाने की आज्ञा राम से माँगी ।[2] मानस में अन्तर्यामी राम ने स्वयं लक्ष्मण सहित जाने की आज्ञा प्रदान की ।[3] इस भेद का कारण भी स्पष्ट है कि रामायण में राम माया सीता वध से किंकर्त्तव्य विमूढ़ एवं विक्षुब्ध थे अतएव विभीषण के सचेत करने की आवश्यकता थी, मानस में इस परिस्थिति का अभाव था ।

मेघनादवधार्थ दृढ़ संकल्प कर लक्ष्मण के ससैन्य प्रयाण का उल्लेख दोनों में है ।[4] इस अभियान एवं लक्ष्मण मेघनाद युद्ध का प्रसंग रामायण में मानस की अपेक्षाकृत विस्तृत है । रामायण में विभीषण के आदेशानुसार लक्ष्मण ने शर सन्धान कर याज्ञिक मेघनाद को विचलित कर डाला । जिससे हवन की परिसमाप्ति के पूर्व ही उसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा ।[5] सर्वप्रथम हनुमान के साथ द्वन्द युद्ध[6], विभीषण के साथ वाग्युद्ध किया ।[7] वाग्युद्ध में परास्त होकर लक्ष्मण को शराविद्ध कर वल्गना करने लगा । दोनों ओर से ललकार के साथ ही तुमुल युद्ध होने लगा ।[8] दोनों में घनघोर युद्ध का सजीव एवं चित्रात्मक वर्णन रामायण में किया गया है ।[9]

मानस में हनुमान् अंगद के साथ युद्ध का संकेत मात्र है ।[10] विभीषण के प्रति विगर्हणा एवं ललकार का प्रथम युद्ध में ही उल्लेख किया जा चुका है[11] अतएव इस स्थल पर उसका अनावश्यक विस्तार करना तुलसी ने उचित नहीं समझा । युद्ध विवरण संक्षिप्त होने का एक कारण यह भी है कि विपक्षी दल के वीरों का पराक्रम वर्णन करने में तुलसी की चित्तवृत्ति कहीं नहीं रमी है । यही कारण है कि जहाँ वाल्मीकि ने विपक्षी दल के

---

१. (१) चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति हुतवानुपयातो हि,
देवेरपि सवासवैः दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ।'

वा० रा० ६।८४।१४,१५।

(२) मेघनाद मख करइ अपावन । खल मायावी देव सतावन ।।
जो प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ।।

मा०।६।७४।४,५।

२. वा० रा० ६।८४।१८।२२।

३. मा० ६।७४।७।

४. (१) वा० रा० ६।८५।२६,२७।
(२) मा० ६।७४।१३,१४।

५. वा० रा० ६।८६।३ से १७ तक ।

६. वा० रा० ६।८६।१९ ३१।

७. वा० रा० ६।८७।११ ३१।

८. वा० रा० ६।८८।३४।

९. वा० रा० ६।८८।३१ से ७७, ६।९०।१८ से ७४ तक ।

१०. कोपि मरुतसुत अंगद धाए । हति त्रिसूल उर धरनि गिराए ।।
उठि बहोरि मारुति जुबराजा । हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ।।

मा० ६।७५।६,७।

११. 'कहाँ बिभीषन भ्राता द्रोही । आज सबहिं हठि मारउँ ओही ।' मा० ६।४९।३।

महारथियों का स्तुत्य युद्ध कौशल अनेक सर्गों में वर्णित किया है वहीं तुलसी ने केवल संकेत मात्रकर राम दल के सामने उस युद्ध नैपुण्य को नगण्य सा सिद्ध कर दिया है। हम लक्ष्मण मेघनाद युद्ध को केवल चार चौपाइयों में देखकर इसका प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं।[१]

रामायण में उक्त युद्ध के अन्तर्गत इन्द्रजीत द्वारा विभीषण पर शक्ति प्रहार और लक्ष्मण द्वारा उससे रक्षा का भी प्रसंग है जबकि तुलसी ने इस घोर शक्ति का[२] प्रहार रावण द्वारा कराया है और उससे रक्षा भी शरणागत वत्सल राम के द्वारा ही कराई है। मानस में इस 'प्रसंग परिवर्तन' में भी तुलसी भक्ति माधुरी अपनी छटा दर्शा रही है जिसने अपने भक्त वश्य भगवान् से ही उस घोर शक्ति का प्रहार सहन करवाया है।[३]

मेघनाद वध का आधार भी दोनों ग्रन्थों में ही राम का प्रताप है। रामायण में व्याख्यात्मक रूप में है,[४] मानस में सांकेतिक।[५] परन्तु रामायण की अपेक्षाकृत मानस में गोस्वामी जी ने मेघनाद को भी परम गति का अधिकारी बना दिया क्योंकि उसने राम लक्ष्मण का नामोच्चारण करते हुये अपना प्राण त्याग किया।[६] तुलसी की भक्ति साधना ही इस भेद का भी मूल है जिसने मेघनाद को 'मरती बार कपट सब त्यागा' कहकर परम पावन बनाकर 'निज कर्म से गति' प्राप्त करवाई।

मेघनाद का शव रामायण में रणभूमि में ही पद्म वर्णित किया गया है परन्तु मानस मे उसे वीर हनुमान् द्वारा लंका द्वार पर रखवाया गया है इस भेद का कारण निम्नांकित है—

'लंका द्वार पर रख आए जिसमें रावण को शीघ्र ही उसके वध की खबर मिल जाय और उसे शोक प्राप्त हो। या भाव यह कि, ले देख जिसके बल का तुझे गर्व था उसकी क्या गति हुई। अब भी समझ जा·······या 'लंका द्वार' पर रख आने का भाव यह है कि इसकी दाहादि क्रिया रावण कर ले।····

इस कर्म से राम दल के अभयत्व और वीरत्व का दिग्दर्शन कराया गया है और लंका के रावण दल की हीनता दिखाई गई है।[७]

दोनों ग्रन्थों में मेघनाद की मृत्यु पर देवादि की प्रसन्नता दर्शायी गई है।[८]

---

१. मा० ६।७५।१० से १४ तक।

२. वा० रा० ६।९०।४४,४५।

३. 'तुरत बिभीषन पाछे मेला। सन्मुख राम सहेव सोइ सेला॥' मा० ६।९३।२।

४. 'धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम्॥'

हे बाण! यदि राम धर्मात्मा व सत्य प्रतिज्ञ हों तो तुम इस इन्द्रजीत को मार डालो।

५. 'सुमिर कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥ मा० ६।७५।१५।

६. मा० ६।७६।

७. मानस पीयूष—लं० कां० पृ० ४०१।

८. (१) मा० ६।७६।२,३।
(२) वा० रा० ६।९०।८७,८९।

यहाँ तक कि रामायण में तो स्वयं मेघनाद वध से देवों को सुख प्राप्ति का वर्णन करता है।[1]

देवादि आनन्दोत्सव प्राकट्य के पश्चात् ही लक्ष्मण का राम के समीप आने का दोनों ग्रन्थों में उल्लेख है। रामायण में राम की प्रसन्नता, लक्ष्मण के प्रति स्नेहार्पण आदि का उल्लेख है[2] मानस में[3] केवल 'कृपा सिन्धु' शब्द में उपर्युक्त भावों की सांकेतिक व्यंजना मात्र है।

रामायण में इस युद्ध का समय तीन दिन उल्लिखित है।[4] मानस में केवल एक दिन का संकेत है।[5]

रामायण में इस युद्ध के अनन्तर लक्ष्मण के विशल्यकारण का भी उल्लेख है[6] जो कि सामान्यत: यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य है परन्तु मानस में इस प्रसंग का अभाव है क्योंकि अवतारवाद के दृष्टिकोण से लक्ष्मण 'अनन्त एवं जगदाधार' हैं अत: उनका अंग क्षत विक्षत कैसे दिखा सकते थे तथा मायावी राक्षस द्वारा शेषावतार के अप्रतिम लक्ष्मण पर अमोघ आघात का वर्णन करना तुलसी के सिद्धान्त के विरुद्ध था।

दोनों ग्रन्थों में पुत्र शोकाभितप्त एवं अत्यन्त व्यथित रावण मूर्च्छा एवं विलाप का उल्लेख है।[7] रामायण में अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक, विस्तृत एवं मनोवैज्ञानिक है। मानस में उस पर भी मर्कट वैराग्य एवं ज्ञान की झलक दर्शायी गई है।[8]

राम रावण युद्ध के पूर्व रामायण में क्रोध से परितप्त रावण ने पुत्रादि के वध की कारण स्वरूपा सीता वध करने का ही निश्चय कर डाला परन्तु अपने मंत्री सुपार्श्व द्वारा उपदिष्ट किये जाने पर उसे क्रियान्वित नहीं किया।[9] मानस में इस प्रसंग का अभाव है जिसका कारण भी अन्य इसी प्रकार के मायावी षड्यन्त्रों के प्रसंग में लिखा जा चुका है।

मेघनाद वध के अनन्तर दोनों ग्रन्थों में रावण ने सर्वप्रथम अपनी अपार चतुरंगिणी सेना को युद्ध करने के हेतु प्रेषित किया।[10] वाल्मीकि रामायण में राम रावण युद्ध के पूर्व द्विदलों के पारस्परिक युद्ध का अपेक्षाकृत अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। सर्वप्रथम निशिचर अनी

---

१. वा० रा० ६।९३।१०।
२. वा० रा० ६।९१।८,२०।
३. मा० ६।७६।५।
४. वा० रा० ६।९१।२८।
५. मा० ६।७४।१३।
६. वा० रा० ६।९१।१०,११,२१ से २७ तक।
७. (१) वा० रा० ६।९२।५,६ से १५,२२।
   (२) मा० ६।७६।७।
८. मा० ६।७७।
९. वा० रा० ६।९२।१९ से ६६ तक।
१०. (१) वा० रा० ६।९३।६,२२,२८।
   (२) मा० ६।७८।१।

एवं वानर वृन्दों के साथ[१] तत्पश्चात् राम द्वारा उनका विध्वंस[२] वर्णित है जिसे देख राक्षसियों ने चिन्ता से व्याकुल होकर रावणादि के कर्मों की कटु आलोचना की तथा भयाक्रान्त होने से आक्रोश करने लगीं ।[३] यह लंका व्याप्त रोदन सुनते ही रावण ने अत्यन्त क्षुभित होकर महाबली, महोदय, महापार्श्व एवं विरूपाक्षादि मंत्रियों के सहित अपनी विजय निमित्त प्रस्थान किया ।[४] उसके प्रस्थान करते समय अपशकुनों का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है ।[५]

रावण के युद्धस्थल पर आने के पश्चात् रामायण में सुग्रीव विरूपाक्ष युद्ध[६], सुग्रीव महोदर युद्ध[७], अंगद महापार्श्व युद्ध[८], का व्यापक वर्णन है जिनमें रामदल के सैनिकों ने ही अपने विपक्षी सेनानियों का वध कर विजय प्राप्त की । अपने महारथियों का वध सुनकर क्रोधोन्मत्त रावण युद्ध में प्रवृत्त हुआ । दोनों ग्रन्थों में सर्वप्रथम लक्ष्मण रावण के बाण-युद्ध का वर्णन है । परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि रामायण में राम ने भी लक्ष्मण का सहयोग दिया[९] जब कि मानस में एकाकी लक्ष्मण रावण के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुए ।[१०] रावण की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का प्रसंग दोनों में है[११] अन्तर यह है कि रामायण का यह शक्ति प्रहार प्रसंग मानस के मेघनाद शक्ति प्रहार प्रसंग के समकक्ष है[१२] क्योंकि रामायण के इस प्रसंग में हनुमान द्वारा औषधि आनयन एवं राम का भ्रातृ प्रेमातिरेक से करुण विलाप[१३] मानस में पूर्वोक्त प्रसंग में ही वर्णित हैं । मानस में इस अवसर पर शक्ति प्रसंग रामायण के पूर्व, लक्ष्मण मेघनाद युद्ध प्रसंग[१४] के समान है । इस प्रकार दोनों स्थलों के साम्य में परस्पर परिवर्तित घटनाओं का साम्य है ।

रामायण के पूर्वोक्त प्रसंग में ही रावण द्वारा विभीषण पर भी वज्रसम शक्ति का

---

१. वा० रा० ६।९३।७,१६।
२. वा० रा० ६।९३।१८,३४।
३. वा० रा० ६।९४।४,४२।
४. वा० रा० ६।९५।३४,४२।
५. (१) वा० रा० ६।९५।४४,४८।
   (२) मा० ६।७७।८ से छंद तक ।
६. वा० रा० ६।९७।७ से ३६ तक ।
७. वा० रा० ६।९७।६,३२।
८. वा० रा० ६।९८।१,२३।
९. वा० रा० ६।९९।१३ से ६।१००।१६ तक ।
१०. मा० ६।८२,६।८३ छंद तक ।
११. (१) वा० रा० ६।१००।३०,३६।
    (२) मा० ६।८२।८ तथा छंद ।
१२. मा० ६।५३।७ से ६।६१।४ तक ।
१३. वा० रा० ६।१०१।१ से ४४ तक ।
१४. रा० ६।५९।१२०।

प्रहार किया जिससे लक्ष्मण ने विभीषण की रक्षा की[1] परन्तु मानस में यह श्रेय गोस्वामीजी ने रामायण के दोनों शक्ति प्रहार के प्रसंगों का समाहार कर विभीषण रक्षा का श्रेय राम को ही देना उचित समझा है[2] जिसका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है।

मानस में रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार करने के पश्चात् हनुमान रावण युद्ध का भी उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग लक्ष्मण रावण युद्ध के पूर्व ही वर्णित है। मानस में प्रथम रावण ने हनुमान् पर मुष्टि प्रहार किया[3], वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण में प्रथम हनुमान् ने आघात किया।[4]

रामायण की अपेक्षाकृत मानस का यह प्रसंग विशेष उपयुक्त है क्योंकि मूर्च्छित लक्ष्मण को रावण द्वारा अपहृत किया जाना राम भक्त हनुमान् को कैसे सह्य हो सकता था अत: सुरक्षार्थ उनका ऐसा प्रतिकार लेना अत्यन्त स्वाभाविक ही था।

शक्ति मुक्ति होते ही लक्ष्मण ने रामायण में राम को साथ लेकर ही रावण पर प्रहार करने के लिये प्रेरित किया[5] जब मानस[6] में एकाकी ही लक्ष्मण ने दशकंधर को बाणाविद्ध कर रथरहित कर दिया।

दोनों ग्रन्थों में रघुवीर को विरथ देख दर्शकों को चिन्ता हुई और उस चिन्ता की निवृत्ति इन्द्र द्वारा प्रेषित मातलि सारथी एवं रथ द्वारा हुई।[7] दोनों में प्रथम दिवस के राम रावण युद्ध के पश्चात् इन्द्र ने युद्ध में प्रेषण किया। रामायण में यह चिन्ता स्वयं देवादि को हुई।[8] मानस में भक्त विभीषण एवं देव दोनों को।[9] मानस में यह रथ रूपक प्रसंग तुलसी की भक्तिमत्ता एवं गीतोपदेश की छटा का दिग्दर्शक[10] है जिसका वाल्मीकि रामायण एवं अन्य रामायणों में अभाव है।

रामायण में राम रावण के लोमहर्षण युद्ध का वर्णन है[11] जबकि मानस में लक्ष्मण द्वारा बाणाविद्ध होने के पश्चात् अध्यात्म रामायण के समान रावण के यज्ञ सिद्ध करने एवं विभीषण द्वारा इसकी सूचना पाकर उस यज्ञ विध्वंस का उल्लेख है।[12]

तदुपरान्त दोनों ग्रन्थों में पुन: राम रावण का द्वन्द युद्ध क्रमश: उग्रतर रूप लेता

---

१. वा० रा० ६।१००।१८,२४।
२. मा० ६।९३ से १,२।
३. मा० ६।८३।
४. वा० रा० ६।५९।५३,५५।
५. वा० रा० ६ १०१।५०,५५।
६. मा० ६।८३।८ स छंद तक।
७. (१) वा० रा० ६।१०२।१२।
   (२) मा० ६।८८।२,३।
८. वा० रा० ६।१०२।६।
९. मा० ६।७९।१, ६।८८।२।
१०. मा० ६।७९।४ से ६।८० तक।
११. वा० रा० ६।१०२।१९ से ४४ तक।
१२. मा० ६।८४ से ६।८५ तक।

रहा ।[१] इस प्रकरण में भी तुलसी ने एकांगी शौर्य का विवरण ही दिया है जबकि रामायण-कार ने दोनों पक्षी प्रतिपक्षी को समान बली प्रमाणित किया है । इस अन्तर का कारण तुलसी की भक्तिमत्ता ही है रामायणकार का सजीव चित्रण करना उनका दृष्टिकोण नहीं रहा ।

रामायण में युद्ध से श्रान्त एवं चिन्ताक्रान्त राम को अगस्त्य ऋषि ने 'आदित्य हृदयस्तोत्र' का महत्व दर्शाकर उसका जप करने की आज्ञा दी । राम तथा विधि अनुष्ठान जप के अनन्तर संतुष्ट एवं आनन्दोत्साह से प्रेरित होकर रावण ने वधार्थ प्रस्थान किया ।[२] मानस में इस प्रसंग का अभाव है । तुलसी के राम को वाह्य साहाय्य की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे तो स्वयं समर्थ जगन्नियन्ता भगवान् राम ठहरे ।

रामायण के युद्ध प्रसंग में रावण सारथि प्रसंग के अन्तर्गत[३] दोनों में कुछ साम्य हैं । रामायण में वार्तालाप एवं विषय की महत्ता का विशेष प्रतिपादन दृष्टिगत होता है जबकि मानस में[४] प्रसंगवश उल्लेख मात्र ही किया गया है ।

जब राम द्वारा रावण के सिर काटने पर भी बढ़ने लगे तब रामायण में मातलि ने राम को ब्रह्मास्त्र द्वारा रावण वध का परामर्श दिया[५], मानस में विभीषण ने ।[६] तुलसी ने इस प्रसंग में भी अपनी भक्ति माधुरी की छटा प्रदर्शित की है । रावण सिर वृद्धि के दो कारणों का निर्देश किया है ।

त्रिजटा द्वारा रावण का सीता का ध्यान, एवं विभीषण द्वारा 'नाभिकुंड पियूष' का वृत्तान्त । इन दोनों कारणों का आधार क्रमशः हनुमन्नाटक[७] एवं अध्यात्म रामायण[८] में है ।

रावण वध का साधन जानते ही राम ने मर्म घातक ब्रह्मास्त्र द्वारा रावण का वध किया[९] जब कि मानस में राम ने ३१ बाणों का संधान किया ।[१०]

---

१. (१) वा० रा० ६।१०२।३९।४४, ६।१०३।२३,२७।
(२) मा० ६।८९ से ६।९७।

२. वा० रा० ६।१०५।३,२६।

३. वा० रा० ६।१०३।३०। ६।१०४।२२।

४. मा० ६।९९।७,९।

५. वा० रा० ६।१०८।२।

६. मा० ६।१०१।४।५।

७. हनु० ६।१४।२६।

८. अ० रा० ६।११।५३,५४।

९. वा० रा० ६।१०२।३, १८ ।

१०. मा० ६।१०२ ।

३१ बाण संधान का कारण—१० सिरों के लिये, २० भुजाओं के लिये और १ हृदय बेधन के लिये ।

अन्य राक्षस भटों की भाँति रावण मृत्यु के प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों में अन्तर है। रामायण में रावण का हृदय विदीर्ण होने के उपारान्त वहीं रथ से रण भूमि में गिर जाने का उल्लेख है जब कि मानस में :

'तासु तेज समान प्रभु आनन'[१] लिखकर गोस्वामी जी ने अध्यात्म रामायण की भाँति[२] रावण को भी सारूप्य भक्ति का अधिकारी बना दिया।[३]

रावण वध पर देवादि के परमोल्लास का उल्लेख दोनों में है।[४] रामायण में विभीषण के मार्मिक एवं करुण विलाप को, रावण पत्नियों के विलाप से पूर्व उल्लिखित किया गया है जब कि मानस में बाद में तथा इसमें विभीषण शोक सहानुभूति जन्य अधिक है, क्योंकि

'रुदन करत देखीं सब नारी। भयउ विभीषनु मन दुख भारी।।[५]'
बंधु दसा बिलोकि दुःख कीन्हा।[६]

रामायण में राम ने विभीषण को आश्वस्त किया है,[७] मानस में[८] अध्यात्म रामायण[९] की भाँति लक्ष्मण ने।

रावण पत्नियों के विलाप का विवरण वाल्मीकि जी ने विस्तृत रूपेण प्रस्तुत किया है।[१०] मानस में सक्षिप्त है।[११] दोनों ग्रन्थों में मन्दोदरी ने विलाप करते समय राम के अलौकिक स्वरूप का भी विवेचन किया है।[१२]

---

१. मा० ६।१०२, ९।
२. अ० रा० ६।११।७८।
३. 'मुख में तेज प्रवेश कर जाने का भाव यह है कि सारूप्य मुक्ति पाकर सखारूप होकर पर विभूति को अन्तर्ध्यान करा दिया है।

'अद्वैत मतानुसार वह रामचन्द्र में लीन हो गया और द्वैत मतानुसार यह अर्थ होगा कि उसका तेज श्रीरामचन्द्र जी के बदन के समान हो गया अर्थात्, उसने सारूप्य मुक्ति पाई।' मा० पी० लं० का० पृष्ठ ५४८।

४. (१) वा० रा० ६।१०८।२७, ३०।
(२) मा० ६।१०२।१० से छंद तक।
५. वा० रा० ६।१०९।२, १३।
६. मा० ६।१०४।४, ५।
७. वा० रा० ६।१०९।१५ से १९ तक।
८. मा० ६।१०४।६।
९. अ० रा० ६।१२।७, २३।
१०. वा० रा० ६।११० संपूर्ण सर्ग। तथा ६।१११।३ से ९० तक।
११. मा० ६।१०३।२ से ६।१०४ तक।
१२. (१) वा० रा० ६।१११।११, १४। (२) मा० ६।१०३।१३, ६।१०४ तक।

तत्पश्चात् रामायण में रावण की अन्त्येष्टि क्रिया का व्यापक चित्रात्मक विवरण है,[1] मानस में संक्षिप्त कथात्मक उल्लेख मात्र है।[2] दोनों में रावण पत्नियों द्वारा तर्पण का उल्लेख है।[3] इस प्रसंग में भी तुलसी अपने सभी पात्रों की भाँति इन राक्षसियों को भी राम भक्ति के रंग में रँगना नहीं भूले हैं।[4] इस प्रकार गोस्वामी जी घटना योजनाओं पर भक्ति का मधु सिंचन अनवरत रूप से आद्यन्त करते रहे हैं।

मानस की अपेक्षाकृत[5] रामायण में विभीषण का राज्याभिषेक भी विस्तृत रूपेण उल्लिखित है।[6]

विजय कार्य सम्पन्न करने के पश्चात् रामायण में राम ने हनुमान् को सीता के समीप अपना संदेश एवं कुशल समाचार लेकर उनका संदेश लाने का[7] तथा मानस में समाचार सुनाकर कुशल लाने का आदेश दिया।[8] दोनों में हनुमान् द्वारा राम की कुशल सीता को तथा सीता का कुशल सहित संदेश राम को सुनाने का विवरण लगभग समान ही है।[9] उक्त प्रसंग में अन्तर केवल यह है कि रामायण में हनुमान् द्वारा सीता को भयभीत करने वाली क्रूर विकृतानना राक्षसियों के वध की इच्छा प्रकट की गई परन्तु दीन वत्सला सीता ने इसका प्रतिरोध कर हनुमान् को नैतिक सिद्धान्त का उपदेश दिया।[10] मानस में उक्त प्रसंग का अभाव है जो कि न्यायसंगत भी है। तुलसी भक्ताग्रगण्य हनुमान के द्वारा वाचिक नारी-वध का संकल्प भी कैसे सहन कर सकते थे?

दोनों ग्रन्थों में लंका से सीता-आनयन के प्रसंग में विभीषणादेश द्वारा भूषण वस्त्राभिषिक्त कर सीता को शिविका पर लाने का उल्लेख है।[11] केवल अन्तर यह है कि रामायण में सीता-विभीषण संवाद का मानसकार के मर्यादा-पालन के कारण उल्लेख नहीं है।[12]

---

१. वा० रा० ६।१११।१०४, १२१।
२. मा० ६।१०४।८।
३. (१) वा० रा० ६।१११।१२२, (२) मा० ६।१०५।
४. भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माँहि।'
मा० ६।१०५।
५. मा ६।१०५।५,६।
६. वा० रा० ६।११२।१२ १८।
७. वा० रा० ६।११२।२४ से २६ तक।
८. मा० ६।१०६।२।
९. (१) वा० रा० ६।११३।६, २७, ४७, ५१, ६।११४।२, ४।
(२) मा० ६।१०६।७ से ६।१०७।३ तक।
१०. वा० रा० ६।११३।२८ से ४४।
११. (१) वा० रा० ६।११४।१४,१५।
(२) मा० ६।१०७।७,८।
१२. वा० रा० ६।११३।९ १३।

सीता दर्शनार्थ उत्सुक वानर समूहों को बलपूर्वक हटाने पर राम ने रामायण में विभीषण पर क्रोध किया[१] परन्तु मानस में 'कहामम मानहु, सीतहि सखा पयादेहि आनहु'[२] कहकर अपनी दया वीरता एवं शील स्वभाव का परिचय दिया।

पार्श्वस्थित सीता को देख रामायण में राम ने लोकापवाद के भय से[३] तथा मानस में[४] अग्नि को थाती रूप में प्रदत्त वास्तविक सीता के ग्रहणार्थ उनकी अग्नि परीक्षा ली। समन्वय-कर्ता तुलसी ने अपने आधार ग्रन्थों के दोनों कारणों का एकीकरण[५] इस प्रसंग में किया है। जिसका निष्कर्ष हमें निम्नांकित पंक्ति में मिलता है :

'प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।'[६]

परन्तु राम द्वारा सीता के प्रति 'दुर्वादों' का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है,[७] मानस[८] एवं अध्यात्म रामायण[९] में इनका उल्लेख नहीं अपितु संकेत मात्र है। इसीलिये वाल्मीकि रामायण में ही सीता का दैन्यमय उत्तर है,[१०] मानस में नहीं है। दोनों ग्रन्थों में राम की रुचि एवं सीता के आदेशानुसार लक्ष्मण द्वारा विरचित चिता में दृढ़ संकल्प कर सीता के अग्नि प्रवेश का उल्लेख है।[११]

रामायण में दर्शक वानर एवं राक्षस वृन्दों के शोक प्रकट करने का भी विवरण है,[१२] मानस में तो केवल 'प्रभु चरित काहु न लखे' का रहस्य था। अतः सबका मूकवत् ही होना संगत था।

रामायण में ब्रह्माशंकरादि के द्वारा राम को उनका एवं सीता का वास्तविक स्वरूप बताने के पश्चात् अग्नि ने सीता को निर्दोष सिद्ध करते हुये राम को अर्पित किया।[१३] मानस में केवल अग्नि द्वारा थाती सीता के समर्पण का संकेत है।[१४]

---

१. वा० रा० ६।११४।२५, ३०।
२. मा० ६।१०७।११।
३. (१) 'जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा' वा० रा० ६।११५।११।
(१) 'प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रय' वा० रा० ६।१२१।१३।
४. 'सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि यह अंतर साखी ॥ मा० ६।१०७।१४।
५. अध्यात्म रामायण में माया-सीता का उल्लेख, वाल्मीकि-रामायण में लोकापवाद का भय।
६. मा० ४।१०८। छंद द्वितीय पंक्ति।
७. वा० रा० ६।११५।२ २४।
८. मा० ६।१०८।
९. अ० रा० ६।१२।७४,३५।
१०. वा० रा० ६।११६।५, १६।
११. (१) वा० रा० ६।११६।१८ से २७ तक।
(२) मा० ६।१०८।१ से छंद तक।
१२. वा० रा० ६।११६।३२, ३४।
१३. वा० रा० ६।११७।६ से ६।११८।४ से १० तक।
१४. मा० ६।१०८।१ छंद पंचम एवं षष्ठ पंक्ति।

तदनन्तर रामायण में शंकर, इन्द्र[1] का तथा मानस में ब्रह्मा, इन्द्र, शंकरादि देवों[2] का राम के समीप आने का उल्लेख है परन्तु दोनों के वृत्तान्तों में महान् अन्तर है क्योंकि रामायण में देवों की उक्तियाँ राम के पराक्रम की सराहना से युक्त हैं जब कि मानस में भक्ति रसा-प्लावित स्तुतियाँ हैं। राम के आदेश पर इन्द्र द्वारा कपि भालु के पुनर्जीवित करने का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में समान है।[3] दोनों ग्रन्थों के दशरथ आगमन संवाद[4] में भी वही अन्तर है जो कि उक्त देवों की स्तुतियों में कहा जा चुका है। रामायण में यह संवाद सांसारिक स्तर पर है तथा मानस में भक्ति पक्ष पर आधारित है।

तदनन्तर दोनों में राम के अयोध्या प्रत्यार्तन की इच्छा प्रकट करने पर विभीषण के पुष्पक विमान ले आने[5] तथा वानरगणों को रत्न, वस्त्रादि वितरित करने का उल्लेख है।[6] सब सखा एवं सैन्यगणों के प्रति कृतज्ञता अर्पित कर राम द्वारा अपने सखागण को भी विमानारूढ़ करने के प्रसंग में भी साम्य है। विमानासीन राम द्वारा सीता को मार्ग निर्देश का विवरण दोनों ग्रन्थों में समान है।[7]

रामायण में भरद्वाज आश्रम पर आकर अयोध्या के कुशल प्रश्नादि जानने के पश्चात् हनुमान् के अयोध्या-प्रेषण का प्रसंग है किन्तु मानस में 'भरत दसा' स्मरण करने वाले राम भ्रातृ वात्सल्यासिक्त होने के कारण आतुर थे, अतएव कर्तव्य एवं नीति के दृढ़तम पथ से भावना का श्रोत प्रबल हो उठा, इसी कारण मानस में :

'प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई' के अनुसार 'तुरत पवनसुत गवनत भयऊ के पश्चात् 'तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ' का वृत्तान्त वर्णित है।

राम भरद्वाज संवाद रामायण में मानस की अपेक्षाकृत विस्तृत है क्योंकि महर्षि वाल्मीकि के लिये मुनि भरद्वाज का तप माहात्म्य वर्णन करना नितांत अनुकूल एवं संगत था।

रामायण में राम ने स्वयं भरत के पास हनुमान् को समाचार वाहक के रूप में भेजते समय निषादराज को भी संदेश दिया[8] परन्तु मानस के भावग्राही राम ने स्वयं जा कर निषाद से मिलकर दृढ़ स्नेह एवं कृपा प्रदान की।[9]

रामायण में हनुमान् भरत मिलन,[10] भरत द्वारा राम का स्वागत समारोह,[11]

---

१. वा० रा० ६।११९।२, ६, ६।१२०।२, १६।
२. मा० ६।१०९।१ से ६।१११, ६।११२ से ६।११५ तक।
३. वा० रा० ६।१२०।१७।, मा० ६।११३।५।
४. वा० रा० ६।११९।१२, ३५।, मा० ६।१११।१, ५।
५. (१) वा० रा० ६।१२१।९ से ११।, (२) मा० ६।११६।३,४।
६. (१) वा० रा० ६।१२२।१०।, (२) मा० ६।११६।६।७।
७. (१) वा० रा० ६।१२३।३ ५२।, (२) मा० ६।११८।९ से ६।१२० तक।
८. वा० रा० ६।१२५।२० २४।
९. मा० ६।१२०।६ से प्रथम छंद तक।
१०. वा० रा० ६।१२५।३७ से ६।१२६।५ ५४ तक।
११. वा० रा० ६।१२७।१ से ६३ तक।

राम राज्याभिषकोत्सव एवं रामराज्य के प्रसंग[1] तथा कथा का उपसंहार[2] लंका कांड में ही वर्णित कर दिया गया है जब कि मानस में इन प्रसंगों का उल्लेख[3] उत्तर कांड के अन्तर्गत है ।

इस भेद का प्रधान कारण है तुलसी का सिद्धान्त निरूपण । रामराज्य से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों को लेकर भक्ति के सरस दृश्य उपस्थित किये हैं। इसके अतिरिक्त उनका समस्त उत्तर कांड भी दार्शनिक तत्वों एवं विश्लेषणों से युक्त है अतएव विषय साम्य एवं सभी कांडों में आद्यन्त राम कथा का निर्वाह करने के हेतु ही शेष प्रसंगों का उल्लेख तुलसी ने लंका कांड में न करके पृथक् कांड में वस्तु, घटना एवं भाव का सुतारतम्य स्थापित किया है । राम भक्त तुलसी के लिये राम कथा किसी भी कांड से निकाल देने से वह कांड ही निरर्थक हो जाता इस कारण से भी शेष उत्सव का समाहार अगले कांड में प्रस्तुत करना आपने सर्वथा उचित समझा ।

उत्तर कांड

अन्य कांडों की अपेक्षाकृत रामायण एवं मानस के इस कांड की कथावस्तु में नितान्त भेद है। रामायण का कथानक राम कथा से पूर्णतः स्वतन्त्र है जिसके तीन मुख्य खंड हैं। रावण चरित, सीता त्याग एवं अश्वमेध प्रकरण । इन तीनों ही प्रसंगों का मानस के उत्तर कांड में पूर्णत: अभाव है ।

मानस के उत्तर कांड में राम कथा के शेष अंश रामराज्याभिषक की परिसमाप्ति है । यह कहना असंगत न होगा कि इस कथांश के अतिरिक्त शेष कांड में तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों का संकलन एवं समाहार है। भक्ति ज्ञान का तुलनात्मक विवेचन है, सामयिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है तथा कलियुगी जीवों के लिये नाम संजीवनी पान का प्रकार भी वर्णित है ।

वाल्मीकि रामायण में उत्तर कांड की कथावस्तु का संक्षिप्त विवरण

राम के राज्य सिंहासनासीन होने के पश्चात् चतुर्दिक निवासी महर्षियों का आगमन हुआ । राम द्वारा पूजित ऋषियों ने राम की तथा इन्द्रजीत की प्रसंशा की । इस विषय पर राम के उत्सुकता प्रकट करने पर अगस्त्य जी ने रावण पितामह पुलस्त्य जी की कथा एवं वंश परम्परा का आद्यन्त वर्णन कर उनके पूर्व इतिहास को अवगत कराया जिससे रावण के दिग्विजयी होने का पूर्ण प्रमाण प्राप्त हुआ । रावण की विजय प्राप्ति के साथ ही साथ पराजय का भी इतिहास अगस्त्य जी ने सुनाया ।

---

१. वा० रा० ६।१२८।४८ से ७१, ६।१२८।९८, १०२ ।
२. वा० रा० ६।१२८।१०५, १२२ ।
३. (१) मा० ७।१ से २ ।
   (२) मा० ७।२ से ३, ७।४ से ९ तक ।
   (३) मा० ७।९।४ से १२ तक ।
   (४) मा० ७।१९।७ से ७।२३ तक ।
   (५) मा० ७।२८ से छंद तक ।

महर्षि ने हनुमन् जन्म कथा का वृत्तान्त भी राम को विदित कराया।

रामाभिषेक के अनन्तर ऋषियों के प्रस्थान करते समय राम ने उन महर्षियों से यज्ञ में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। महर्षियों के पश्चात् नृपगणों को विदा कर वानर यूथपतियों एवं सुग्रीव विभीषणादि को उनके निवासस्थानों की ओर प्रेषित किया।

राज्य कार्यों में संलग्न राम कर्त्तव्य क्षेत्र में भरत के साथ राज्य व्यवस्था पर चर्चा करते रहे। साथ ही भाव क्षेत्र में सीता के साथ वन विहार भी। इसी मध्य लोकापवाद के भय से राम ने सीता के परित्याग हेतु लक्ष्मण को आदेश दिया। लक्ष्मण सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़कर अयोध्या को लौट आये और शोक विह्वल राम को आश्वस्त किया।

प्रमुख राम कथा के अतिरिक्त राज धर्म के प्रसंग में श्रीराम ने अनेक गौण कथाओं में राजा नृग, महाराज निमि, वशिष्ठ एवं निमि, राजा ययाति आदि के आख्यान सुनाये।

यमुनातटवासी महर्षियों ने राम के समीप आकर मधु का वृत्तान्त सुनाया तथा लवणासुर के अत्याचारों का निरूपण करते हुए राम से स्वरक्षार्थ प्रार्थना की। राम ने प्रतिज्ञाबद्ध होकर शत्रुघ्न को लवणासुर वध के लिये नियुक्त किया। युद्ध सम्बन्धी समस्त आदेश राम से प्राप्त कर शत्रुघ्न ने रण यात्रा हेतु प्रस्थान किया। मार्ग में वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में निवास किया, उसी समय सीता ने दो राजकुमारों को जन्म दिया। वहाँ से चलकर शत्रुघ्न च्यवन ऋषि से लवणासुर का पूर्व वृत्तान्त जानकर परस्पर युद्ध में तत्पर हुये। उसका वध करने के उपलक्ष्य में शत्रुघ्न को देवों की वरदान स्वरूपा मथुरा नगरी बसाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ १२ वर्ष निवास करने के पश्चात् पुनः अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में पुनः वाल्मीकि आश्रम में रुक कर महर्षि के साथ सहवास एवं संलाप कर लव कुश द्वारा सुमधुर रामायण गान श्रवण किया। अयोध्या पहुँचने के सात दिवस पश्चात् ही वे पुनः मथुरा चले गये।

राम के राज्य में एक ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु हो जाने के कारण ब्राह्मण ने राज्य में अधर्म होने की आशंका प्रकट की। उसका कारण जानने की प्रेरणावश राम ने मंत्रिसभा का अधिवेशन बुला कर परामर्श लिया। उसके कारण स्वरूप शूद्र शम्बूक का राम ने वध कर देवों से वर माँग कर मृत ब्राह्मण कुमार को जीवित किया। मार्ग में अगस्त्य ऋषि ने राम से एक आभूषण प्राप्ति की, अद्भुत कथा के प्रसंग में राजा श्वेत, राजा दंड एवं दंडक वन के वृत्तान्त कहे।

अयोध्या लौट कर राम ने भरत से राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव रक्खा परन्तु उसे महा अनर्थकारी जानकर स्थगित कर देना पड़े।

लक्ष्मण जी ने अश्वमेध यज्ञ को प्रस्तावित करते समय वृत्रासुर वध का उपाख्यान राम को सुनाया। राम ने प्रसंगवश राजा इल का अद्भुत वृत्तान्त सुनाया।

तदनन्तर कश्यपादि ऋषियों से परामर्श एवं अनुमति ले राम ने यज्ञानुष्ठान किया जिसमें महर्षि वाल्मीकि जी भी लव, कुश एवं सीता सहित पधारे। वाल्मीकि द्वारा उपदिष्ट विधान से लव कुश ने यज्ञशाला में राम चरित का गान किया जिसे सुनकर सभी

आश्चर्यान्वित हो गये। राम ने अपने पुत्रों को पहचान कर द्वितीय दिवस सीता सहित महर्षि के आगमनार्थ निमन्त्रण भेजा। वाल्मीकि के साथ यज्ञशाला में सीता के उपस्थित होने पर महर्षि ने सीता की निष्कलंकता के विषय में प्रभावशाली भाषण दिया। राम ने स्वयं सीता के निष्कलंक होने का समर्थन किया और सीता से भी इस विषय में प्रश्न पूछे। प्रत्युत्तर देते देते सीता अपनी माँ पृथ्वी में ही समाहित हो गईं। यह हृदय विदारक दृश्य देख राम शोकान्वित हो क्षुभित हो उठे। ब्रह्मा ने उन्हें आश्वस्त किया।

अश्वमेध की समाप्ति के पश्चात् राम की तीनों माताओं का स्वर्गवास हो गया। सभी भाइयों एवं उनके पुत्रों को यथानुकूल देशों के राज्याधीश्वर बनाने का प्रबन्ध किया गया।

श्रीराम एवं मुनि वेषधारी काल से गुप्त वार्तालाप होते समय दुर्वासा का आगमन हुआ। उसी समय दुर्वासा शाप के भय से त्रसित होकर लक्ष्मण ने रामाज्ञा के विरूद्ध राम से दुर्वासा गमन की सूचना दे दी जिसके दंड स्वरूप उनके लिये प्राण दंड के स्थान पर राम ने त्याग दंड निर्धारित किया। लक्ष्मण सरयू तट पर योगाभ्यास कर सशरीर दिवंगत हुये।

सभी भ्रातृगण अपने-अपने पुत्रों का राज्याभिषेक कर राम के साथ महाप्रस्थान के लिये तत्पर हो गये। वरप्राप्त विभीषण, भक्ति प्रचार हेतु हनुमान्, कलियुग प्रवृत्त होने तक मैन्द द्विविद एवं जामवन्त को छोड़कर अन्य सभी वानरगण भी राम के साथ सरयू तट पर पहुँच गये। वहाँ से ब्रह्मा जी द्वारा लाये हुये सौ करोड़ विमानों पर आसीन होकर यथोचित लोकों में सबने गमन किया।

मानस में उत्तर कांड की कथावस्तु का संक्षिप्त विवरण।

रामायण को अपेक्षाकृत मानस के इस कांड में उपाख्यानों का बाहुल्य नहीं है। अपितु जिन कथानकों का उल्लेख गोस्वामी जी ने किया भी है उसमें किसी न किसी सिद्धान्त का निरूपण अन्तर्निहित है।

प्रथमतः भरत की अविरल एव आकुल प्रतीक्षा करते हो हनुमान ने भरत के समीप आकर सुधा सिंचन सा किया। दोनों अनन्यानुरागी राम भक्तों के मिलन के पश्चात् ही राम का स्वागत समारोह बड़ी सज धज के साथ सम्पन्न किया गया। तत्पश्चात् अमित रूपधारी राम के सबसे मिलने एवं यथोचित अभिवादन के अनन्तर सभी आगन्तुक महानुभावों को मज्जनादि कराकर वस्त्राभरणों से अलंकृत किया और फिर सबका चिरभिलषित राम का राज्याभिषेक समारोह मनाया गया जिसमें त्रिलोक सम्मिलित हुये। अपौरुषेय वेद एवं देवाधिदेव महादेव ने भी राजा राम की स्तुति कर अभीष्ट वर प्राप्त किया।

राम ने अपने साथ आये हुये वानरगण एवं विभीषणादि को यथोचित सम्मानादि से सन्तुष्ट कर विदा किया। अंगद एवं राम का भक्त भगवान् के रूप में संवाद उनके भावशिरोमणि रूप का प्रतीक है।

इस प्रकार रामराज्य का विवरण देते हुये कथावस्तु का उपसंहार कर तुलसी ने अनेक संवादों की चर्चा की। राम सनकादि मिलन प्रसंग में सत्संग महिमा, राम भरत वार्ता के अन्तर्गत सन्त असंत स्वभाव वर्णन, खल प्रकृति का विश्लेषण, पुरवासी गीता में राजा राम की इह लौकिक एवं आमुष्मिक श्रेयस्कारिणी शिक्षा का उल्लेख है। वशिष्ठ

राम संवाद में भी भक्ति की प्रवरता वर्णित है। नारद द्वारा प्रस्तुत शीतल अमराई में स्थित राम की झांकी उनकी जीवन गाथा का उपसंहार है।

उसके पश्चात् पार्वती शंकर संवाद में पार्वती अपने वक्ता शंकर के प्रति कृतज्ञतार्पण करती हुई शंकर द्वारा कथित राम कथा की परम्परा के अधिनायक काग भुशुंडि के आख्यान के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करती हैं। शंकर गरुड़ भुशुंडि संवाद का विस्तृत उल्लेख कर भक्ति तत्व का मार्मिक विश्लेषण करते हैं। इस प्रकरण में काग भुशुंडि द्वारा राम के अलौकिक विराट् रूप का अद्भुत दर्शन, उनसे अभीष्ट भक्ति की प्राप्ति, अनेकों नैतिक गुणों का उल्लेख, काग भुशुंडि के पूर्व जन्मों के वृत्तान्त, कलिकाल वर्णन लोमश भुशुंडि संवाद, ज्ञान दीप एवं भक्ति चिन्तामणि का विवेचन तथा मानस रोगों का विश्लेषण आदि मुख्य सारगर्भित एवं तात्कालिक प्रसंग हैं।

राम कथा माहात्म्य वर्णन करते हुये गोस्वामी जी अपने भगवान् से अविरल भक्ति एवं अनन्यानुराग की याचना करते हुये स्वान्तः सुखाय एवं जन हिताय की परितुष्टि के लिये जनता जनार्दन के कर कमलों में अपना मानस समर्पण कर दिया।

दोनों ग्रन्थों में उत्तर कांड की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन।

रामायण का उत्तर कांड आख्यान प्रधान है, मानस का उद्देश्य प्रधान है, अतएव दोनों की कथावस्तु में पर्याप्त भेद है। रामायण में सर्वप्रथम राज्याभिषेकोत्सव पर बधाई देने के निमित्त आये हुये ऋषिगणों का उल्लेख है[1] तो मानस में देवगणों का।[2] इस भेद का कारण स्पष्ट है कि महर्षि वाल्मीकि ने सर्वत्र निज कालीन संस्कृति के अनुसार ऋषियों का महत्व प्रदर्शित किया है। अतएव इस महत्वपूर्ण प्रसंग में भी उनका आगमन दर्शाकर राम द्वारा उनका अर्घ्य, पाद्यार्घ्य द्वारा पूजित कर गोदान दिलवाया।[3] मानसकार ने देव हितकारी अभीष्ट रावण वध कर्त्ता राम के समीम देवों का आगमन स्वाभाविक एवं अनुकूल दर्शाया है। दूसरा कारण यह भी है कि वाल्मीकि राम, आदर्श मानवरूप में अधिकांशतः चित्रित किये गये हैं और मानस के भगवान् रूप में अतएव देवों एवं अनादि रूप देवों की स्तुति अनुरूप ही कराई गई।

रामायण में उन आत्मदर्शी अगस्त्य मुनि ने राम की जिज्ञासा की परितृप्ति हेतु रावण जन्म एवं वरदान प्राप्ति इत्यादि का पूर्व वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया।[4] जिसमें रावण के आदि पूर्वज ब्रह्मा के तपोनिष्ठ पुत्र पुलस्त्य, राजर्षि तृण बिन्दु की कन्या को अंगीकरण करते हैं, उस राज कन्या से विश्रवा नामक धर्मनिष्ठ पुत्र की उत्पत्ति होती है, आदि प्रसंगों का विस्तृत रूपेण वर्णन किया।[5] तदनन्तर विश्रवा पुत्र वैश्रवण (कुबेर) का

---

१. वा० रा० ७।१।१, ६।

२. मा० ७।११, ७।१३।

३. वा० रा० ७।१।१३, १४, १५।

४. वा० रा० ७।२।४।

५. वा० रा० ७।२।४, ३२।

धनाध्यक्ष बनना चतुर्थ लोकपाल रूप से गण्यमान होना, पुष्पक विमान सहित लंकापुरी की प्राप्ति का उल्लेख किया।[1]

लंका निर्मित होते ही राक्षसों के उसमें निवास करने का वृत्तान्त सुन राम के इस विषय की जिज्ञासा प्रकट करने पर अगस्त्य ने राक्षस एवं यज्ञोत्पत्ति का सृष्टि के आदि क्रम से वर्णन करना प्रारम्भ किया।[2] हेति प्रहेति नामक राक्षसाधिपति उत्पन्न हुये। प्रहेति तपस्वी बन गया परन्तु हेति ने कालभगिनी भया नामक स्त्री से विवाह कर विद्युत्केश नामक महातेजस्वी पुत्र को जन्म दिया।[3] उसकी पत्नी सालकटंकटा से सुकेश नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई जिसको उसकी माता द्वारा निर्जन प्रदेश में परित्यक्त देख पार्वती की अभिस्तुति वश महादेव ने उसे अमर कर दिया।[4] सुकेश के तीन बलशाली पुत्र माल्यवान्, सुमाली और माली उत्पन्न हुये। तीनों ने घोर तपश्चर्या करके चतुर्मुख ब्रह्मा से अजर अमर होने का वरदान प्राप्त कर लिया तथा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंकापुरी में जा बसे।[5] इस प्रकार सभी प्रकार से निर्द्वन्द्व होकर उन राक्षसों ने अपने विशाल वंशजों सहित देव, ऋषि, नाग, यज्ञादि को पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया।[6] इन अत्याचारों से पीड़ित हो देव राक्षस युद्ध हुआ जिसमें मधुसूदन विष्णु की कृपा से उन पर विजय प्राप्त की गई तथा राक्षस सेनाधिपति माली का वध हुआ।[7] तथाहत शेष राक्षसगण सुमाली को राजपद पर अभिषिक्त कर लंका त्याग कर पाताल में जा बसे।[8]

कुछ समय पश्चात् सुमाली ने अपनी कन्या कैकसी को पुलस्त्य पुत्र विश्रवा मुनि के समीप उन्हें वरणार्थ भेजा।[9] प्रदोष के दारुण काल में उसे पुत्राभिलाषावश अपने समीप आया देख विश्रवा मुनि ने उसके लिये क्रूर कर्मा पुत्रों को जन्म देने की भविष्य वाणी की।[10] इस अभिशाप से आशंकित होकर उसने सदाचारी पुत्र होने की इच्छा प्रगट की और महर्षि ने कनिष्ठ पुत्र को धर्मात्मा होने का आशीर्वाद दिया।[11] फलतः कैकसी से तीन पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ।[12] माता ने दशग्रीव से विश्रवा के ज्येष्ठ पुत्र वैश्रवण (कुबेर) की भाँति तेजस्वी बनने की इच्छा प्रकट की और उसने भी प्रतिस्पर्धा की प्रेरणा से कठिन तप में

---

१. वा० रा० ७।३।६ से ७।४।३५ तक।
२. वा० रा० ७।४।९ से १७ तक।
३. वा० रा० ७।४।१४ से १७ तक।
४. वा० रा० ७।४।२४ से २९ तक।
५. वा० रा० ७।५।५ से २८ तक।
६. वा० रा० ७।५।४४।
७. वा० रा० ७।७।६९ से ७।८।२१ तक।
८. वा० रा० ७।८।२२,-२३।
९. वा० रा० ७।९।१२।
१०. वा० रा० ७।९।२२,२४।
११. वा० रा० ७।९।२५,२७।
१२. वा० रा० ७।९।२८,३४,३५।

तन्मय हो गया।[१] अन्य भाइयों ने भी अनेक यज्ञविधानों द्वारा सिद्धि प्राप्ति के भगीरथ प्रयत्न किये।[२] जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने तीनों भाइयों द्वारा याचित अभीष्ट वरदान देकर उन्हें परितुष्ट किया।[३] अभीष्ट सिद्धि प्राप्ति से रावण मदोन्मत्त हो उठा तथा इस समाचार से पाताल को पलायन करने वाले सुमाली इत्यादि राक्षसगण भी पुनः भूलोक में आ गये।[४] सुमाली ने अपने दौहितृ रावण को पुनः कुबेर से लंका नगरी छीन, उस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहित किया।[५] प्रथमतः तो उसने इस कर्म को शिष्टाचार से विरुद्ध बताया परन्तु फिर सुमाली के सचिव प्रहस्त द्वारा कूटनीति से समझाने पर सहमत हो गया।[६] रावण द्वारा प्रेषित दूत द्वारा कुबेर ने बड़ी शान्ति पूर्वक लंका नगरी एवं राज्य समर्पण का सदेश भेज दिया।[७] इस घटना से कुपित विश्रवा मुनि ने कुबेर को कैलाश पर्वत पर निवास करने की आज्ञा प्रदान की।[८] रावण कुबेर पालित लंका में राज्य सिंहासनासीन हो गया तथा कुबेर अमरावती सम अलकापुरी में निवास करने लगे।[९]

सिंहासनासीन रावण ने अपनी भगिनी शूर्पणखा का विवाह कालकेय वंशी दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व के साथ कर दिया।[१०] तदनन्तर उसने मय की हेमा नामक अप्सरा से उत्पन्न कन्या मन्दोदरी के साथ अपना विवाह सम्पादित किया।[११] तत्पश्चात् उसने वैरोचन की पुत्री वज्रज्वाला के साथ कुम्भकर्ण तथा गन्धर्वराज शैलूष की दुहिता सरमा के साथ विभीषण का विवाह किया।[१२] इसके पश्चात् मेघ सम गर्जन करते हुये 'मेघनाद' का जन्म हुआ।[१३] ब्रह्मा द्वारा प्राप्त वरदान के अनुसार कुम्भकर्ण को घोर निद्रा ने आबद्ध कर लिया। रावण निरंकुश होकर देव, ऋषि यज्ञ गन्धर्वों को प्रपीड़नार्थ चल दिया।[१४] उसके दुष्कर्मों को देख कुबेर ने रावण को दूत द्वारा सचेत करने की चेष्टा की परन्तु रावण ने खड्ग द्वारा उस दूत को ही समाप्त कर डाला[१५] तथा त्रिलोक विजयगीषु रावण सर्वप्रथम कुबेर की

१. वा० रा० ७।९।४३,४६।
२. वा० रा० ७।१०।२,११।
३. वा० रा० ७।१०।१६,३५,४५।
४. वा० रा० ७।११।१,२।
५. वा० रा० ७।११।७,८।
६. वा० रा० ७।११।११,१४ से २० तक।
७. वा० रा० ७।११।३२,३३ प्रथम पंक्ति।
८. वा० रा० ७।११।४०।
९. वा० रा० ७।११।४९,५०।
१०. वा० रा० ७।१२।२।
११. वा० रा० ७।१२।२०।
१२. वा० रा० ७।१२।२४,२५।
१३. वा० रा० ७।१२।२८।
१४. वा० रा० ७।१३।८।
१५. वा० रा० ७।१३।१८, ४०।

अलकापुरी में पहुँचा। वहाँ यक्ष राक्षसों का घनघोर युद्ध हुआ।[1] मायावी रावण ने कुबेर को छलबल से पराजित कर जयचिह्न रूप उनका पुष्पक विमान छीन लिया।[2]

तत्पश्चात् उसने कैलाश पर्वत पर पहुँचकर नंदी का अट्टहास किया जिसके प्रतिकार स्वरूप नंदी ने उसे घोर श्राप दिया कि वानर वंश द्वारा तेरा सर्वनाश होगा।[3] कैलाश पर्वत को अपने मार्ग का अवरोध रूप देखकर उसे अपनी समस्त भुजाओं से उठा लिया परन्तु शंकर अलौकिक शक्ति द्वारा उनके पादांगुष्ठ से उस पर्वत को दबाते ही रावण की भुजाएँ दबने लगीं और वह चीत्कार कर उठा जिसे सुनकर त्रिलोक कम्पित हो उठे।[4] मंत्रियों का परामर्श मानकर रावण ने एक हजार वर्ष तक शिव का अभिवादन करते हुये विविध मंत्रों से स्तवन किया। आशुतोष शंकर ने उसका 'रावण' नामकरण कर उसे दीर्घायु होने का वरदान तथा चन्द्र हास नामक दीप्ति युक्त खड्ग भी दिया।[5]

कैलाश से प्रस्थान कर वह हिमालय के एक वन में पहुँचा तथा तपोनुष्ठानरता बृहस्पति पुत्र की कन्या देववती के सम्मुख कामुकता व्यंजक प्रस्ताव रक्खा। विष्णु को वरण करने का संकल्प कर्त्री उस तपस्विनी ने क्रोध से उद्दीप्त होकर अग्नि प्रदीप्त की तथा रावण को शाप दिया कि मैं तेरा वध करने के लिये किसी धर्मात्मा के घर में जन्म लूंगी[6]। उसी ने अगले जन्म में सीता का जन्म धारण किया।[7]

वेदवती के दग्ध होने के पश्चात् रावण ने, पुष्पक विमानासीन होकर चतुर्दिक परिभ्रमण करते हुए, उशीरबीज देश में राज मरुत्त को माहेश्वर यज्ञ करते देखा।[8] उसे युद्ध के लिये ललकारा परन्तु गुरू के आदेशानुसार राजा मरुत्त यज्ञकर्म में प्रवृत्त रहे। यह देख रावण मंत्री शुक ने राजा मरुत्त के पराजित होने तथा रावण के जयी होने की घोषणा कर दी।[9] रावण यज्ञ में आये हुये ऋषियों का भक्षण कर पुन: पृथ्वी मंडल का पर्यटन करने लगा।[10]

राजा दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय तथा पुरुखा ने वरदान बल के कारण रावण से वाचिक पराजय स्वीकार कर ली।[11] तदनन्तर अयोध्या नरेश अनरण्य के साथ रावण

---

१. वा० रा० ७।१४।८।
२. वा० रा० ७।१५।३५।
३. वा० रा० ७।१६।१७,१६।
४. वा० रा० ७।१६।२५,२९।
५. वा० रा० ७।१६।३४,४४।
६. वा० रा० ७।१७।३०,३१।
७. वा० रा० ७।१७।३५,३८।
८. वा० रा० ७।१८।२।
९. वा० रा० ७।१८।१८।
१०. वा० रा० ७।१८।१९।
११. वा० रा० ७।१९।५,६।

का घोरतम युद्ध हुआ जिसमें मरणासन्न अनरण्य ने इक्ष्वाकु कुल के अपमान से पीड़ित होकर उसे शाप दिया कि 'महाराज इक्ष्वाकुकुल में दाशरथी राम द्वारा तेरा वध होगा ।[1]

अयोध्या से प्रस्थान कर, नारद द्वारा प्रबोधित किये जाने पर, रावण मनुष्यों, देवों आदि पर आक्रमण करना छोड़ कर, यमलोक जीतने की कामना से प्रेरित राजनगर की ओर चल दिया ।[2] वहाँ पर भी कर्म भोग भोगने वाले यातनाग्रस्त जीवों को मुक्त कर, यम किंकरों के अतिरिक्त 'यम' के साथ भी लोमहर्षण युद्ध किया ।[3] प्रेतराज को रावण पर अमोघ काल दण्ड प्रहार करने को उद्यत देख ब्रह्मा ने पूर्व प्रदत्त 'वरदान' की वाणी को सत्य करने का आदेश दिया ।[4] तदनुसार यमराज रथ सहित अदृश्य हो गये और इस प्रकार रावण ने अपने को विजयी घोषित किया ।[5] यमलोक के पश्चात् वह नागलोक पहुँचा । वहाँ दोनों पक्षों में एक वर्ष तक समान युद्ध होते देख लोकपितामह ब्रह्मा ने रावण तथा निवात कवचों से मैत्री कराई ।[6] तत्पश्चात् वरुण लोक जाते समय मार्ग में कालकेय दैत्यों तथा विद्युज्जिह्व को तलवार के घाट उतार दिया ।[7] वरुण लोक पहुँचकर वहाँ वरुण के पुत्र पौत्रों को परास्त किया । वरुण-मंत्री द्वारा वरुण को अनुपस्थित सुनकर वहाँ भी अपनी विजय घोषणा कर वह लंका की ओर चल दिया ।[8] मार्ग में अनेक राजर्षि, देवों और दानवों की कन्याओं का अपहरण किया ।[9] उन अपहृत अबलाओं ने भी उसे शाप दिया ।[10]

इधर लंका पुरी लौटने पर निज कुकर्मों का परिणाम स्वरूप उसकी भगिनी कुम्भीनसी के मधु दैत्य द्वारा अपहृत होने का समाचार उसे प्राप्त हुआ ।[11] क्रोधाविष्ट होकर उसने मधु दैत्य पर आक्रमण कर दिया परन्तु बहिन के स्नेहसिक्त अनुरोध से उसने मधु दैत्य से मित्रता कर ली ।[12]

तदनन्तर उसने स्वर्ग विजय के लिये प्रस्थान किया । मार्ग में रम्भा के साथ दुराचार करने से उसे नलकूबर द्वारा भी शापित होना पड़ा ।[13]

उसके इन्द्रलोक पहुँचने पर उसने देवों तथा दानवों के साथ घनघोर युद्ध किया ।[14]

---

१. वा० रा० ७।१९।३०।
२. वा० रा० ७।२०।७,२६।
३. वा० रा० ७।२१।२२,७।२२।१२,१६।
४. वा० रा० ७।२२।३९,४५।
५. वा० रा० ७।२२।४९।
६. वा० रा० ७।२३।१४।
७. वा० रा० ७।२३।१७,१८।
८. वा० रा० ७।२३।४७,५०,५३।
९. वा० रा० ७।२४।१,३।
१०. वा० रा० ७।२४।२१।
११. वा० रा० ७।२५।१९।
१२. वा० रा० ७।२५।४९,५०।
१३. वा० रा० ७।२६।५५,५६।
१४. वा० रा० ७।२७।२६।, वा० रा० ७।२८।३३।

इन्द्र रावण का भी लोमहर्षण संग्राम हुआ ।[1] जिसमें इन्द्र मेघनाद द्वारा बन्दी किये गये और रावण अस्त्र प्रहारों द्वारा जर्जरित दशा को प्राप्त हुआ ।[2] परन्तु अन्ततः विजयी रावण ही हुआ । ग्लानि से व्यथित इन्द्र को ब्रह्मा ने मुक्त कराया और इन्द्र के पूर्वकृत कुकर्मों एवं गौतम शाप का स्मरण कराकर वैष्णव यज्ञ करने का आदेश दिया ।[3]

रावण के पराक्रम कथन के पश्चात् अगस्त्य जी ने जिज्ञासु राम को उसके सहस्रार्जुन तथा बालि से पराजय सम्बन्धी वृत्तान्त भी सुनाये ।[4]

मानस के बाल कांड मे रावण चरित का उल्लेख राम चरित के पूर्व किया गया है । भानुप्रताप की कथा के पश्चात् रावण परिवार का विवरण दिया गया है । परात्पर ब्रह्म के अवतार राम को अवतरित कराने का हेतु भी रामावतार के पूर्व ही उल्लेख करना गोस्वामी जी ने संगत समझा । इसी कारण से रावण के दिगन्त व्यापी अनाचारों एवं अत्याचारों के भार से पीड़िता पृथ्वी ने अपना करुण क्रन्दन चराचर नायक को सुनाया जिससे द्रवित होकर विश्वास प्रभु ने भू भार हरणार्थ अवतरित होने का आश्वासन दिया । इस कारण से गोस्वामी जी ने रावण चरित का विवरण वाल्मीकि रामायण की अपेक्षाकृत उत्तर कांड में न देकर बाल कांड में दिया जो कि अधिक संगत एवं वस्तु योजना की दृष्टि से अनुकूल है ।

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में रावण चरित का ३४ सर्गों में अत्यन्त विशद वर्णन नहीं है प्रत्युत् प्रमुख घटनाओं का ही उल्लेख किया गया है ।

मानस में रावण जन्म को भानु प्रताप के शाप से सम्बन्धित किया गया है । इसी कारण से रावण को भानु प्रताप, कुम्भकर्ण को अरिमर्दन तथा विभीषण को धरम रुचि सचिव का अवतरित रूप निर्दिष्ट किया गया है ।[5] दोनों ग्रन्थों के इस प्रसंग में पर्याप्त अन्तर है । मानस में रावण एवं कुम्भकर्ण सहोदर भ्राता कहे गये तथा विभीषण विमातृज जब कि रामायण में तीनों ही सहोदर कहे गहे हैं ।[6] परन्तु उक्त प्रसंग में ही तुलसी ने रामायण के समान उन्हें 'पुलस्त्य' का वंशज भी उल्लिखित किया है ।[7] तत्पश्चात् तीनों भ्राताओं की उग्र तपश्चर्या की ओर संकेत करते हुये ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त वरदान का भी उल्लेख वाल्मीकि रामायण के समान है । अन्तर यह है कि रामायण में विशद एवं चित्रात्मक है[8] तथा मानस में संक्षिप्त एवं समीक्षात्मक ।[9] तथा रामायण में केवल ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त वर का उल्लेख है जब कि मानस में ब्रह्मा और शिव दोनों के द्वारा :

---

१. वा० रा० ७।२८।४५,४८।
२. वा० रा० ७।२९।२७,३०।
३. वा० रा० ७।३०।१६,३०,४७।
४. वा० रा० ७।३१। से ३४। सर्ग तक ।
५. मा० १।१७५।२,४।
६. वा० रा० ७।९।१,३५।
७. 'उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप ।' मा० १।१७६।
८. वा० रा० ७।१०।२ से ४५।
९. मा० रा० १।१७६। से १।१७७ तक ।

'मैं ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा ।'[1]

मयपुत्री मन्दोदरी के साथ रावण विवाह, सुरम्य लंका में निवासादि, इन विवरणों में साम्य है ।[2] कुबेर पर आक्रमण, कैलास पर्वत को अपनी भुजाओं पर उठा लेना इत्यादि रामायण के इन प्रसंगों का भी मानस में उल्लेख है ।[3] भेद यह है कि मानस कल्प के रावण का कैलाश के नीचे दबने का उल्लेख नहीं किया गया । रामायण की भाँति मानस में भी रावण की दिग्विजय का संक्षिप्त विवरण दिया गया है ।[4] उसकी पराजय के विवरणों का इस प्रसंग में मानस में अभाव है । यद्यपि कथा के मध्यान्तर में अंगद रावण संवाद में अवश्य उनकी ओर संकेत किया गया है । इस भेद का कारण मानस पीयूषकार इस प्रकार देते हैं ।

'भानुप्रताप रावण, जिसके लिये परब्रह्म का आविर्भाव हुआ वह वस्तुत: किसी से हारा न था और कल्पों में रावण कहीं-कहीं हार भी गया था । यदि कहें कि अंगद रावण संवाद में तो उसकी पराजय लक्षित होती है परन्तु उसका उत्तर यह होगा कि जैसे इस ग्रन्थ में चार कल्प के अवतारों की कथा मिश्रित है वैसे ही अंगद के संदिग्ध वचनों में अन्य कल्पों के रावण की कथा भी जानिये ।'[5]

'इन्द्रजीत पराक्रम' का रामायण के समान मानस में विशद उल्लेख तो नहीं परन्तु उसकी विजय का संकेत है ।[6]

मानस में 'रावण चरित' के उपसंहार में गोस्वामी जी ने निजकालीन परिस्थिति की प्रेरणावश, रावण के आदेशानुसार विहित सामाजिक विशृंखलता का विवरण विशद रूपेण दिया है । इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठ-भूमि तुलसी ने अत्यन्त संगठित रूपेण प्रस्तुत की है जिसके कारण भगवान् को अवतरित होना अनिवार्य हो गया ।

रामायण में रावण चरित के अनन्तर राम द्वारा समागत अभ्यातिथियों की विदाई का प्रसंग वर्णित है ।[7] मानस में सिंहासनासीन होने के पश्चात् ही इस प्रसंग की क्रमिक योजना की गई है ।[8] दोनों ग्रंथों के प्रसंगों में अन्तर यह है कि रामायण में यह सामाजिक शिष्टाचार का प्रतीक प्रतीत होता है, मानस में भक्त भगवान् की आध्यात्मिक विरह की झाँकी परिलक्षित होती है । इस भेद का कारण स्पष्टत: कवियों का व्यक्तित्व है ।

---

१. मा० १।१७६।५
२. मा० १।१७७।२ से १।१७८ तक ।
३. मा०।१।१७८।८, १।१७९।
४. आपुन चलेउ गदा करि लीन्हीं से
   जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदरि बर नारि ।'
   मा० १।१८१।४। से १।१८२ तक ।
५. मानस पीयूष बाल कांड पृष्ठ १८१, १८२।
६. 'इन्द्र जीत सन जो कछु कहेऊ । सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ ।' मा० १।१८२।१।
७. वा० रा० ७।३८ से ४० सर्ग तक ।
८. मा० ७।१६ से ७।१९।५ तक ।

रामायण में पुष्पक विमान के पुनरागमन[1] एवं सीता राम के वन विहार[2] का वर्णन है जब कि मानस में इन दोनों प्रसंगों का नितान्त अभाव है। पुष्पक विमान को तो प्रथमत: ही एक से विदा मिल गई अतएव पुनरागमन के प्रसंग से कथा की पुनरावृत्ति एवं राम की आज्ञा का उल्लंघन होता तथा अपने इष्टदेव एवं इष्टदेवी अम्बा की विहार लीलाओं का चित्रण तुलसी की मर्यादा के प्रतिकूल था।

तदनन्तर रामायण में सबसे प्रमुख घटना जनश्रुति की प्रेरणा से सीता वनवास है[3] जिसका मानस में किंचित् मात्र भी उल्लेख करना मर्यादावादी एवं भक्त तुलसी ने उचित न समझा। उन्होंने राम के चरित्र में समाज की आदर्शभूत आवश्यकताओं का समावेश किया है। जिस प्रसंग को उन्होंने अनुपयुक्त समझा उसका अनुल्लेख किया और जिसे आवश्यक एवं उपयुक्त माना उस पर विशेष ध्यान देकर विस्तृत वर्णन किया। यही 'निगमागम-सम्मत' मानस की मौलिकता है, विशिष्टता है।

'सीता वनवास' जैसे महत्वपूर्ण प्रसंग को न लिखने के कई कारण हैं मानस के उपसंहार में।

तुलसी विशिष्टाद्वैतवादी थे। वे अपने आराध्य एवं आराध्या, ब्रह्म एवं शक्ति, को विलग कैसे देख सकते थे। प्रबन्ध काव्य के उपसंहार में नायक एवं नायिका दोनों के द्वारा फल प्राप्ति अपेक्षाकृत अधिक वांछनीय थी। इसके अतिरिक्त रामायण में पूर्व कथावस्तु में माया सीता का प्रसंग नहीं है। जबकि मानस में है। अतएव अग्नि द्वारा प्रदत्त वास्तविक सीता को प्राप्त करने के पश्चात् जनश्रुति का राम पर प्रभाव दिखाना तुलसी के लिए अनर्गल था। वस्तु योजना में अव्यवस्था हो जाती यदि वास्तविक सीता में संदेह दर्शाया जाता इसके अतिरिक्त तुलसी ने मानस में रामायण की भाँति भृगुशापादि का भी उल्लेख नहीं किया है जिसके कारण रावण राम के भावी जीवन की दु:खद अभिव्यक्ति घटनाओं की उनके लिये अनिवार्य हो जाती।

तुलसी ने अवधपुर वासियों का चित्रण राम भक्त रूप में किया है अतएव वे अपनी माता जानकी के चरित्र का छिद्रान्वेषण क्यों कर, कर सकते थे? इन कतिपय कारणों के आधार पर मानस में इस प्रसंग का अभाव, संगत एवं अनुकूल ही है।

रामायण में अनेक पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख है। राजा नृग,[4] निमि,[5] ययाति,[6]

---

१. वा० रा० ७।४१।
२. वा० रा० ७।४२।
३. वा० रा० ७।४३ से ७।५२ सर्ग तक।
४. वा० रा० ७।५३,५४।
५. वा० रा० ७।५५,५६।
६. वा० रा० ७।५८,५९।

कल्माषपाद,[१] श्वेत,[२] दंड,[३] वृत्तासुर वध[४] तथा इल[५] इत्यादि नृपतियों के उपाख्यानों का रामायण जैसे विशाल ग्रन्थ में व्यापक विवरण दिया गया है। तुलसी ने केवल राम से सम्बन्धित गौण पौराणिक आख्यानों का ही विवरण देना उपयुक्त समझा। अतः उपर्युक्त उपाख्यानों का उल्लेख नहीं किया है। अपितु उत्तर कांड में अनेक भक्तों के चरित्रों की योजना की है। काक-भुशुंडि-गरुड़ संवाद के अन्तर्गत काक भुशुंडि के प्रस्तुत एवं अन्य जन्मों के रहस्यमय चरित्रों का विशद वर्णन,[६] वशिष्ठ-राम-संवाद,[७] नारद राम समागमादि[८] प्रसंगों की अपेक्षाकृत अतिरिक्त योजना उनके व्यक्तित्व एवं उद्देश्य की परिचायिका है। इनके अतिरिक्त 'राम-राज्य' की झाँकी,[९] संत असंत स्वभाव वर्णन,[१०] अधम स्वभाव वर्णन,[११] कलिकाल धर्म निरूपण[१२] एवं ज्ञान भक्ति के तुलनात्मक विवेचनादि[१३] प्रसंगों की कथावस्तु योजना कर तुलसी ने अपने विभिन्न राजनीतिक, नैतिक, दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टिकोणों को प्रस्तुत कर अपना मौलिक रूप प्रतिष्ठित कर लिया। इसके साथ ही साथ साहित्य के उद्देश्य की अभिवांछनीय सिद्धि ने उन्हें तथा उनके काव्य को अमरत्व प्रदान कर दिया।

रामायण में राम के जीवन से सम्बन्धित कतिपय घटनाओं का भी व्यापक वर्णन किया गया है जिनका मानस में नितान्त अभाव है। वे हैं :—

शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर वध,[१४] राम द्वारा शूद्र शम्बूक वध,[१५] अश्वमेघ यज्ञ का चित्रात्मक वर्णन,[१६] महर्षि वाल्मीकि का लव कुश एवं सीता सहित यज्ञ शाला में आगमन,[१७]

---

१. वा० रा० ७।६५।
२. वा० रा० ७।७७,७८।
३. वा० रा० ७।७९ से ७।८१। तक।
४. वा० रा० ७।८४ से ७।८६ तक।
५. वा० रा० ७।८७ से ७।९० तक।
६. मा० ७।७४।२ से ७।८८।२ तथा ७।९६ से ७।११३।४ तक।
७. मा० ७।४७।१ से ७।४९।१ तक।
८. मा० ७।५० से ७।५१ तक।
९. मा० ७।१९।७ से ७।२३ तक।
१०. मा० ७।३६।२ से ७।३८ तक।
११. मा० ७।३८।१ से ७।४० तक।
१२. मा० ७।९६ से ७।१०३ तक।
१३. मा० ७।११६ से ७।१२० तक।
१४. वा० रा० ७।६१ से ६४,६७ से ६९ तक।
१५. वा० रा० ७।७५,७६।
१६. वा० रा० ७।९२।
१७. वा० रा० ७।९३।

सीता का पृथ्वी प्रवेश,[1] माताओं का स्वर्गवास,[2] भ्राताओं एवं भ्रातृजो को राज्य विभाजन,[3] मुनिवेष में काल का राम से गुप्त वार्तालाप,[4] दुर्वासा मुनि का आगमन,[5] लक्ष्मण को त्याग दण्ड,[6] विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान् मैन्द तथा द्विविद को राम द्वारा पृथ्वी पर रहने का आदेश देना[7] तथा राम का परिजन पुरजनों के साथ महा प्रस्थान।[8]

इन प्रसंगों का अनावश्यक विस्तार तुलसी ने अपने राम चरित मानस में करना उचित न समझा क्योंकि वे अपने काव्य ग्रन्थ का निष्कर्ष लिख चुके हैं :

'एहि महँ आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य भगवाना ।।'

अतएव भगवान् राम से अतिरिक्त प्रसंगों की ओर उनकी वृत्ति नहीं रमी।

उपर्युक्त प्रसंगों में से पृथक् का विवेचन निम्नांकित है :

लवणासुर वध का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राम से न होकर 'शत्रुघ्न चरित' से है अतएव गोस्वामी जी ने उस पौराणिक गाथा को राम चरित में समाविष्ट करना असंगत समझा।

शम्बूक का वध केवल इसीलिये किया गया क्योंकि वह शूद्र जाति का था परन्तु वर्णाश्रम धर्म के परिपोषक तुलसी प्रत्येक वर्ण के भक्त को बराबर ही मान्यता देते थे[9] अतएव अपने 'अगुन अलेप अपान एकरस' राम द्वारा तपस्वी शम्बूक का वध तुलसी की दृष्टि से न्यायोचित न था।

तुलसी की अपेक्षाकृत वाल्मीकि का अश्वमेध यज्ञ का शाब्दिक चित्रण नितान्त स्वाभाविक था क्योंकि वाल्मीकि की तत्कालीन याज्ञिक परिस्थिति यज्ञ प्रधान थी। 'यज्ञ' युगधर्म का महत्वांकन उनके काव्य में पूर्ण अनिवार्य था क्योंकि कवि अपने समय का प्रतिनिधि हुआ करता है।

सीता वनवास के प्रसंग का अभाव होने के कारण तत्सम्बन्धित अन्य प्रसंगों, यज्ञशाला में लव कुशादि सहित वाल्मीकि का आगमन तथा सीता का पाताल प्रवेशादि आदि का भी मानस में उल्लेख नहीं है।

अन्य महाप्रस्थान सम्बन्धित समस्त प्रसंग भी भक्त तुलसी क्योंकर लिख सकते थे। उनके राम परब्रह्म के अवतार थे। अतएव वे मानवोचित लीलायें करते हुये भी मानवोपरि थे। वे केवल प्रगट एवं अन्तर्ध्यान हो सकते थे। 'विश्ववासी' के लिये महा प्रस्थान या स्वर्ग

---

१. वा० रा० ७।९७।
२. वा० रा० ७।९९।
३. वा० रा० ७।१०० से १०२ तक।
४. वा० रा० ७।१०३,१०४।
५. वा० रा० ७।१०५।
६. वा० रा० ७।१०६।
७. वा० रा० ७।१०८।
८. वा० रा० ७।१०९,११०।
९. मा० ३।३५।६।

यात्रा का प्रसंग कैसा ? इसके अतिरिक्त प्रबन्ध काव्यकार तुलसी भावुक एवं मार्मिक घटना स्थलों के चयन में भी अत्यन्त निपुण हैं अतएव उनके लिये इस प्रसंग चित्रण में कोइ आकर्षण या उद्देश्य कैसे मिल सकता था और फिर भक्त अपने भगवान् के स्वर्गवास की घटना किसे प्रकार अंकित कर सकता है ?

उक्त प्रसंग का विवेचन डा० बलदेव प्रसाद जी मिश्र इस प्रकार करते हैं।[१]

'गोस्वामी जी के समान भावुक भक्त तो भगवान् राम के इच्छुक थे न कि गमन के। वे तो समझते थे कि भक्तों के मानस में एक बार जब भगवान् का आगमन हो गया तब फिर वह धाम तजकर उनका गमन कहाँ हो सकता था। 'किमि गवने निज धाम ?' का उन्होंने' उत्तर तक नहीं दिलाया है। ऐसी स्थिति में स्वभावतः ही वे अपनी राम कथा को 'रामायण (राम का वन गमन) नाम दे ही न सकते थे। यह प्रकरण विशेष को लेकर लिखी हुई कोई इतिहास की पोथी तो थी ही नहीं। यह तो थी पूरे चरित्र की चर्चा, जो मानस में (शिव के मानस में) समुद्भूत हुई और मानस (जन मानस) को शान्ति देने के लिये मानस (मानसरोवर) के समान ही शीतल तथा सुखद पाई गई। अतएव इसका नाम रक्खा गया 'राम चरित मानस।'

दोनों कथाओं के उपसंहार में उसका माहात्म्य वर्णित है। वालमीकि रामायण में युद्ध कांड[२] एवं मानस में उत्तर कांड के अन्त में है।[३] इस भेद का कारण स्पष्ट है कि वालमीकि के उत्तर कांड में राम चरित के अतिरिक्त अन्य उल्लिखित चरित्रों का विकास किया गया है जब कि मानस में नहीं। अतएव वालमीकि ने राम चरित की समाप्ति के स्थल पर उसका माहात्म्य भी वर्णित किया। दूसरा कारण यह है कि प्रतिष्ठित शोध कर्ता डा० बुल्के आदि ने वालमीकि रामायण के उत्तर कांड को आदि रामायण का विकास माना हैं। इस प्रकार मूल केवल युद्ध कांड तक ही होने से उसी स्थल पर माहात्म्य वर्णन भी नितान्त संगत है। जब कि गोस्वामी जी ने देव संवाद, खग संवाद, मुनि संवाद एवं गोस्वामी सुजन संवाद का उपसंहार किया अपितु मानस के चारों घाटों का प्रतिरूप दर्शाया जिनमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी एवं ज्ञानी इन चतुर्विध भक्तों का रूप प्रदर्शित किया। पार्वती जी आर्त, गरुड़ जिज्ञासु, भरद्वाज ज्ञानी तथा सुजनगण अर्थार्थी श्रोता के प्रतिरूप हैं। इस प्रकार भक्ति एवं दर्शन दोनों के सभी दृष्टिकोण की पूर्ण परिसयाप्ति पर तुलसी ने पूर्णाहुति दे दी। 'बहुजन हिताय' बहुजन सुखाय' के आदर्श का विस्तरण कर पुनः अपने को 'स्वान्तः सुखाय' में संयमित कर लिया और समष्टि से व्यष्टि में स्थित होकर वे अपनी सम्बद्ध भावना एवं भक्तिमता से पुकार उठे :

'मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबस मनि हरहु विषम भव भीर'।।[४]

---

१. मानस में राम कथा पृष्ठ १३१।
२. वा० रा० ६।१२८।१०५ से १२२ तक।
३. मा० ७।१२८ से ७।१२८।६ तक तथा ७।१२९ से अन्तिम श्लोक तक।
४. मा० ७।१३० क।

और फिर 'विषम भव' वेदना के निवारण की कामना करते ही अत्यन्ता नुराग एवं तन्मयतासक्ति में स्थित हो कर अन्तिम याचना कर उठे :

'कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।'[१]

अन्य दोनों कथाओं के उपसंहार में भी पर्याप्त अन्तर है। वाल्मीकि रामायण में परम्परा निर्वाह हेतु माहात्म्य निरूपण किया गया है, मानस में आत्मीयता से ओत-प्रोत, कुछ भी हो दोनों की कथा सर्वार्थ सिद्धि प्रदायिनी है :

'मन कामना सिद्धि नर पावा ।
जो यह कथा कपट तजि गावा ।।'

———

१. मा० ७।१३० ख।

पञ्चम परिच्छेद

रामायण एवं मानस में चरित्र चित्रण

महर्षि वाल्मीकि तथा महात्मा तुलसी ने राम चरित्र का प्रधान रूप से अवलम्बन करके सभी आवश्यक सामाजिक सुखों के साधनों का विकास अन्य चरित्रों के माध्यम से करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श ग्रहिणी, आदर्श मित्र, आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मंत्री, आदर्श पुरोहित, आदर्श सेवक, आदर्श पुरजन सभी क्षेत्रों में चरित्र-चित्रण आदर्श एवं अनुकरणीय चित्रित किया है। राम एक मध्यम बिन्दु एवं केन्द्र हैं जिनके चतुर्दिक अन्य पात्र परिक्रमा-सी कर अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित किये रहते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मित्र ही नहीं शत्रु वर्ग के चरित्र भी अपनी कोटि के आदर्श हैं।

वाल्मीकि एवं तुलसी ने अनेक चरित्र उपस्थित किये हैं जिनका वर्गीकरण राम चन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार किया है :

(१) सात्विक—सीता, राम, भरत, हनुमान्

(२) राजस—दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, कैकेयी

(३) तामस—रावण

वाल्मीकि ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अपना चरित्र-चित्रण यथार्थ शैली पर अधिकांशत: किया है, तुलसी ने सामयिक परिस्थिति की आवश्यकतानुसार आदर्श शैली पर।

वाल्मीकि रामायण के चरित्रों के विषय में संक्षिप्तानुशीलन निम्नांकित है :

'रामायण ने भारत की चित्तवृत्ति, प्राणी की धारा को स्पर्श किया है, उसका निर्माण किया है, हृदय के अवदान से तथा सरल सुकुमार अथवा समर्थ भावशीलन के कल्याण से (रामायण का मूल मंत्र है सत्य) सत्ता की सहज स्फूर्ति ही सत्य है, एक सहज बोध, सरल अनुभव उसे व्यक्त करता है। परन्तु धर्म की उत्पत्ति है सम्यक् बुद्धि से, कर्त्तव्य ज्ञान से और आदर्श परायणता से। धर्म की स्थिति है न्यायसंगत और युक्तियुक्त विचार के आधार पर परन्तु सत्य तो स्वत: सिद्ध है। वह एक नैसर्गिक आधार पर स्वयं प्रकाशित है।

रामायण के दशरथ, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण आदि सभी पात्रों ने कर्त्तव्य के निर्धारण और सम्पादन में विचार विवेचन पर विशेष निर्भर नहीं किया है।······ इनके कर्म हैं अन्तर की महत्ता के, उदारता के, विशालता के। यहाँ तक कि कैकेयी, मन्थरा एवं रावण सरीखे पात्र भी अपने विकर्म के पथ पर जितने उत्साह के साथ चले हैं उतने बुद्धि, युक्ति अथवा किसी उद्देश्य का आश्रय करके नहीं।'

वाल्मीकि के हाथों से जिस सृष्टि की रचना हुई है उसका सत्वगुण रजोगुण को अतिक्रम कर गया है । वे हमारे प्राणों में जिस शक्ति का संचार कर रहे हैं वह शक्ति है वर्द्धन शील हृदय शिशु या तरलता की अटूट अव्यर्थ अथच प्रशान्त अन्त: सलिला जीवनी शक्ति जो के अन्तस्तल में प्रतिष्ठित है ।[1]

श्री राम रतन भटनागर के अनुसार तुलसी के चरित्र-चित्रण के आधार निम्नांकित हैं :[2]

(१) वाल्मीकीय रामायण का यथार्थ चित्रण
(२) अध्यात्म रामायण की धर्म एवं भक्ति प्राणता
(३) तुलसी की भक्ति भावना
(४) आदर्श मानव चरित्र उपस्थित करने की भावना
(५) तुलसी का यथार्थ निरीक्षण
(६) मूर्ति मत्ता

तुलसी के चरित्र-चित्रण की सर्व प्रमुख विशेषता उनके पात्रों का द्विविध रूप है अथवा यों कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा कि सभी पात्रों का लौकिक चित्रण भक्ति रूप से समन्वित ही हैं सभी पात्रों में वाल्मीकि के पात्रों की अपेक्षा अधिक संयत स्वभाव एवं गम्भीरता का समावेश है । इसमें स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता एवं यथार्थ का भले ही कहीं अभाव हो गया हो पर तुलसी का ध्येय भक्ति प्रतिपादन किसी भी चरित्र चित्रण में कम नहीं होने पाया है ।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय जी मानस के चरित्र चित्रण का विश्लेषण करते हुये कहते हैं :

'वह (मानस) मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की मर्यादाशीलता से मर्यादित है, पतिप्राणा विदेह नंदिनी के प्रसिद्ध पतिव्रत प्रसंग से प्रतिष्ठा प्राप्त है, भारत भुविभूषण महाप्राण भरत की भक्ति से महा प्राणित है और तेजस्विता मूर्त्ति सुमित्रा सुवन की चकितकरी तेजस्विता से तेज पुंज कलेवर है । उसमें सत्यव्रत महाराज दशरथ जैसे आदर्श पिता का, नितान्त तरल हृदया औदार्यमयी कौशल्या जैसी आदर्श माता का, आत्मोत्सर्ग व्रतरता सुमित्रा देवी जैसे आदर्श सपत्नी का, लोकोत्तम प्रेम परायणा, पूजनीया जनकजा जैसी आदर्श सपत्नी का, आत्मत्याग मंत्र के प्रसिद्ध देवता भरत और सुमित्रा कुमार जैसे आदर्श भ्राता का और सेवा समान कठोर, धर्म के कर्मठ व्यक्ति पवनकुमार जैसे आदर्श सेवा का उदात्तचरित बड़ी ही ज्वलन्त भाषा में बहुत ही निपुणता के साथ वर्णित है ।'[3]

---

१. कल्याण रामायणांक पृष्ठ ११४,११५।
२. तुलसी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ५३,५४।
३. तुलसी ग्रन्थावली तीसरा खंड पृष्ठ ११।

भारतीय आलोचक ही नहीं मानस के चरित्र चित्रण के विषय में विदेशी विद्वानों की भी सम्मत्ति प्रशंसास्पद ही है।[1]

श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी मानस के पात्रों के विषय में अपना वक्तव्य यथातथ्य प्रस्तुत करते हैं जो कि रामायण के चरित्र चित्रण के लिये भी पूर्ण संगत ठहरता है :

'चरित्र चित्रण में तुलसीदास अतुलनीय हैं। उनके सभी पात्र हाड़ मांस के बने हमारे ही जैसे जीव हैं। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मधुर और समझ में आने लायक है। उनके पात्रों के प्रत्येक आचरण में कोई न कोई विशेष लक्ष्य होता है। मानव जीवन के किसी न किसी अंग पर उनसे प्रकाश पड़ता है या किसी न किसी सामाजिक या वैयक्तिक कुरीति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है या मानव मानव में सद्भावना की पुष्टि की ओर इशारा रहता है। लीला के लिये लीला गान उन्होंने कहीं नहीं किया। वे आदर्शवादी थे और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे।'[2]

मानस के निष्पक्ष समालोचक श्री रजनीकांत शास्त्री भी मानस की अलौकिक लोकप्रियता का उल्लेख करते समय चरित्र चित्रण के महत्व का प्रदर्शन करते हैं :

'महाकवि ने हर्ष, विषाद, राग, द्वेष, प्रसन्नता, क्रोध आदि विविध मनोवृत्तियों के चित्रण में कमाल कर दिखाया है। रामायण के पात्रों के साथ साथ पाठक जन भी उनके हर्ष में हँसते, विपत्ति में रोते, प्रेमी जनों के साथ प्रेम करते, प्रसन्न होते तथा समय पड़ने पर क्रोध करते हैं। इतना ही नहीं, वरन् पात्रों के अस्तित्व में अपना अस्तित्व लीन कर देते हैं और अपने को उनका समकालीन समझ, रामायण वर्णित घटनाओं का अनुभव प्रत्यक्ष-सा करने लगते हैं।'[3]

हिन्दी महाकाव्यों एवं महाकाव्यकारों के अन्वेषणकर्ता एवं आलोचक प्रो० राम चरण महेन्द्र भी विश्रुत महाकाव्य रामचरित मानस को हिन्दी साहित्य का सर्वगुण सम्पन्न काव्य ग्रन्थ का कारण भी, इसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि समन्वित चरित्र चित्रण ही बताते हैं :

'मनुष्य स्वभाव से उनका सर्वांगीण परिचय था। भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पड़कर

---

1. His characters live and move with all the dignity of a heroic age. Dasarath, the man of noble resolves which fate had doomed to be unfruitful, Ram of lofty and unbending rectitude, well contrasted with his loving but impetuous brother Lachman; Sita the perfect woman nobly planned'·········Then what a tender devotion there. is in Bharat's character, which by its sheer truth overcomes the false schemes of his mother Kaikeyee and her maid. His villains, too, are not one black picture. Each has his own character and none is without his redeeming virtue.' (Notes on Tulsi Das by Sit G. A. Grierson, Page 12)

२. हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ १०५, १०६।

३. मानस मीमांसा पृष्ठ २०२, २०३।

मन की क्या दशा होती है, इसको वे भली भाँति जानते थे। इसी से उनका चरित्र चित्रण बहुत पूर्ण और दोषरहित हुआ है। 'राम चरित' में प्राय: सभी प्रकार के चरित्र अंकन में उन्होंने अपनी सिद्धहस्तता दिखाई है....जिस पात्र का जो स्वभाव देना उन्हें अभीष्ट है, उसे उन्होंने कोमल वय में बीज रूप में दिखला कर आगे बढ़ते हुये भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उसका नैसर्गिक विकास दिखाया है।'....

तुलसीदास जी ने इन चरित्रों के द्वारा लोक संग्रह एवं मर्यादावाद, सत्य की रक्षा और प्रतीक्षा के पालन के उच्चतम आदर्श उपस्थित किये हैं। ''मानव जीवन के कोने कोने तक उनकी पहुँच रही है। पात्रों के प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक, परोक्ष या नाटकीय चारित्रिक विश्लेषण में वे पूर्णत: सफल हो रहे हैं।'[1]

मानस के चरित्र चित्रण की भाँति ही रामायण के चरित्र चित्रण के प्रति भी भारत तथा विदेश के प्रमुख आलोचकों ने भी अपनी सारगर्भित निष्कर्ष अंकित किये हैं।[2]

भरत

'प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना।
जासु नेम व्रत जाइ न बरना।।'

सात्विक प्रवृत्तियों के उन्नायक एवं प्रतीक भरत का चरित्र सर्वोपरि है। राम के चित्रण के समक्ष ही उनका चरित्र गाम्भीर्य अंकित है।

रामायण के सभी पात्रों में भरत का ही चरित्र सर्वांग पूर्ण, सर्वांग सुन्दर चित्रित किया गया है। अनेक संघर्षमयी परिस्थितियों की कसौटी पर भरत दोनों काव्य ग्रन्थों में अपने अदम्य साहस अटूट धैर्य एवं अविकम्पित शक्ति द्वारा पूर्ण रूपेण खरे उतरते हैं। प्रलोभनों का विशाल जाल चतुर्दिक फैला हुआ है, दशरथ मरण, राम बनवास, मातृ परित्याग, आत्मिक ग्लानि, जनसाधारण की उनके प्रति आशंकित दृष्टि इत्यादि असख्य एवं विशाल गर्जन करती हुई ऊर्मियों के आवर्त में भी भरत का धैर्य, भक्ति-युक्त एवं कर्त्तव्यनिष्ठ रूप शैल की भाँति अडिग एवं अचल है।

विशुद्ध भक्ति के प्रतीक एवं प्रेमावतार भरत का चरित्र दोनों ग्रन्थों में ही परमोज्ज्वल है। वे पावनता की पराकाष्ठा एवं निष्काम कर्मयोग की ज्वलन्त ज्योति स्वरूप भी हैं। अपने अटूट धैर्य एवं नि:स्पृह अन्त:करण के द्वारा आपने अपनी सभी विषम परिस्थितियों

---

२. हिन्दी महाकाव्य एवं महाकाव्यकार पृष्ठ ४०, ४१।

३. 'मानव मनोवृत्तियों का जैसा व्यापक और विशद विश्लेषण रामायण में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। रामायण में महाभारत के समान पात्रों की प्रचुरता नहीं है, पर जितने भी हैं, उनकी अन्त: प्रकृति और वाह्य चेष्टाओं का ऐसा अद्भुत चित्रण किया गया है कि सहृदय भाव विभोर हो उठता है। श्लिगल के शब्दों में रामायण के जीवन्त पात्रों की तुलना में यूरोप के क्लासिकल साहित्य के पात्र फीके पड़ जाते हैं। रामायण, यत्न संस्कृत चरित्रों की वनस्थली है।'

(संक्षिप्त वाल्मीकि रामायण पृष्ठ ११)
(डा० श्री शान्ति कुमार नानू राम व्यास)

पर विजय प्राप्त की।' पूर्ण निष्कलमष भरत को अनेकानेक विकट निकषोपल पर अपनी परीक्षा देनी पड़ी परन्तु सर्वत्र अपने निःस्पृह त्याग, संयम, धैर्य के आश्रय पर जाम्बूनद सम जाज्वल्यमान ही रहे। कुन्दन की भाँति दमकते ही गये।

विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनों काव्य ग्रन्थों में भरत का चरित्र किस प्रकार का है। उसमें साम्य एवं वैषम्य के स्थल अवलोकनीय हैं।

वाल्मीकि ने सर्वप्रथम अपने विशाल काव्य ग्रन्थ में भरत का परिचय उनके चित्रांकण की झांकी दिखाते हुये ही किया है :

'पुष्ये जातस्तु भरतो मीन लग्ने प्रसन्नधीः।'[1]

(पुष्प नक्षत्र और मीन लग्न में निर्मल बुद्धि भरत उत्पन्न हुये)

तत्वद्रष्टा तुलसी ने नामकरण के अवसर पर सर्वप्रथम भरत का तात्विक परिचय दिया :

'विस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।'[2]

वाल्मीकि ने भरत का कर्तव्यनिष्ठ रूप चित्रित किया है तुलसी ने कर्तव्यनिष्ठ के साथ साथ राम प्रेम की प्रतिमूर्ति भी बनाकर उसे अनन्य निष्ठा एवं सेवा भावना से प्राणान्वित भी किया है जो कि आगामी विवेचन से स्पष्ट हो जायगा।

भरत चित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं कैकय देश से प्रत्यावर्तन पर भरत की दशा, चित्रकूट प्रसंग, अवध में निवास स्थिति, तथा राम के अयोध्या लौटने पर उनका अप्रतिम रूप।

उपर्युक्त सभी स्थलों में भरत का चरित्र अपने अलौकिक तेज एवं गाम्भीर्य से अनुप्राणित है। धर्मनिष्ठा एवं कर्तव्य परायणता दोनों अपनी पूर्णता पर हैं।

दशरथ मरण के पश्चात् वशिष्ठ ने भरत को बुलाने के लिये दूत भेजे। उधर पूर्व ही अनिष्ट की आशंका से भरत स्वतः आशंकित एवं आतंकित हो उठे। नाना प्रकार के अनिष्टकारी दुस्वप्न देखने लगे जो कि उनकी निष्कपटता के प्रमाण हैं। दोनों काव्य ग्रन्थों में[3] इस प्रसंग में पूर्ण साम्य है। वरंच वाल्मीकि रामायण में तो यहाँ तक स्पष्ट उल्लेख है कि भरत ने दूतों से सर्वप्रथम पिता दशरथ, राम तथा लक्ष्मण की जिज्ञासा ही प्रकट की।[4] तत्पश्चात् अन्यों की चर्चा की।

मातुलगृह से लौटकर शून्य अयोध्या का दर्शन प्रसंग भी दोनों ग्रन्थों मे[5] समान है।

---

१. वा० रा० १।१८।१५।

२. मा० १।१९६।७।

३. (१) वा० रा० २।६९ सर्ग।
   (२) मा० २।१५६।५, ८।

४. 'कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम।
   कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि॥' वा० रा० २।७०।७।

५. (१) वा० रा० २।७१।
   (२) मा० २।१५७, १५८।१।

शनैः शनैः विपरीत रूप रेखाओं से प्रकम्पित भरत का धैर्य—शैल कैकेयी के भवन में पैर रखते ही दुःसंवाद के वज्राघात से विदीर्ण ही नहीं, चूर चूर हो गया। कैकेयी की कुबुद्धिपूर्ण कुयाचना के परिणामस्वरूप राम का वन गमन एवं महाराज दशरथ का स्वर्गवास इस दुःसंवाद के द्विजिह्व सर्प ने भरत को मर्माहत कर डाला। उससे भी अधिक दारुण वेदना हुई यह जानकर कि

'त्वत्कृते मम हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम्।'[१]
(तुम्हारे ही कारण मैंने यह सब इस प्रकार किया)

'हेतु-अपनपौ' जानि जिय थकित रहे धरि मौनु।'[२] की जड़ अवस्था को प्राप्त हो गये।

रामायण के भरत मानस की भाँति गम्भीर न रह सके। उनका मानव हृदय क्षोभ से भर उठा और वे कैकेयी पर असंख्य कटूक्ति शरों का प्रहार करने लगे।[३] जिसमें यह विवेकशीलता नहीं दर्शायी गई कि वे वचन मर्यादित हैं अथवा अमर्यादित। जहाँ रामायण में भरत कैकेयी को 'कुल पांसनि'[४] या 'कालरात्रि'[५] कह कर उपेक्षा भाव प्रदर्शित कर ग्लानिमय उद्गार प्रदर्शित करते हैं वहाँ पर तुलसी के भरत अत्यन्त गंभीरता से 'जननी तु जननी भई विधि सन कछु न बसाइ'[६] कह कर अपनी भाग्यवादिता एवं असमर्थतामय मर्यादित पश्चाताप करके ही रह जाते हैं। परन्तु कहाँ तक दमन करते अपने विक्षुब्ध हृदय के फेनोद्गारों को, मुख से उद्गलित हो ही गया क्षुब्ध सागर की उर्मिवत् :

'गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।'[७]

परन्तु तुरन्त ही पुनः संयत होकर अपनी मर्यादा में स्थित हो उठे भाग्यवादिता की परिधि में शोभित होकर :

'मरन काल विधि मति हरि लीन्हीं।'[८]

इस प्रसंग में वाल्मीकि के भरत का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सजीव, मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है जबकि मानस के भरत गम्भीरता, संयम एवं मर्यादाशीलता के बंधन में अन्दर ही अन्दर ग्लानिमय अग्नि में सुलगते रहते हैं :

'मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहिं।'[९]

---

१. वा० रा० २।७२।५२।
२. मा० २।१६०।
३. वा० रा० २।७३।१, ५।
४. वा० रा० २।७३।५।
५. वा० रा० २।७३।४।
६. मा० २।१६१।
७. मा० २।१६१।२।
८. मा० २।१६१।३।
९. मा० २।१६२।

'रामायण' में भरत राजनीति,[१] कुलनीति[२] आदि के तर्कों द्वारा कैकेयी के प्रति अपने श्राप द्वारा तिरस्कार प्रदर्शित करते हुये,[३] अपना कटु विरोध[४] दिखाते हैं। केवल इतना ही नहीं दंड निर्धारण करने में भी संकोच नहीं करते :

'सात्वमग्नि प्रविश वा स्वयं वा विश दंडकान्।
रज्जुं बध्वाथवा कंठे नहि ते न्यत्परायणम्॥'[५]

मातृ मर्यादा की तनिक भी चिन्ता उनके वास्तविक उद्गारों में बाधक नहीं बनती। 'हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्। यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।'[६]

क्रोध एवं शोकावेग से भरत कैकेयी के सम्मुख ही क्षुभित होकर सर्प की भाँति फुंफकारते हुये गिर पड़े[७] परन्तु मानस में शान्त मूर्ति भरत स्वतः कौशल्या के पास पहुंच कर भक्ति के आवेश में स्तम्भ दशा को प्राप्त होते हैं।[८]

इस प्रसंग में भी दोनों ग्रन्थों के चित्रण में अन्तर है। रामायण में प्रथम कौशल्या भरत की ओर उन्मुख होकर प्रस्थान कर देती है, मानस में भरत स्वयं शत्रुघ्न सहित उनके पास[९] पहुँचकर अपनी पूज्य बुद्धि एवं कर्तव्यशीलता का परिचय देते हैं।[१०]

रामायण में भरत कौशल्या द्वारा क्रूर वचन सुनकर अपने हृदय की निष्कपटता एवं सहृदयता प्रगट करने के लिये नाना प्रकार की शपथ ग्रहण करते हैं[११] परन्तु मानस में यह प्रसंग अनावश्यक सा लगता है[१२] क्योंकि वहाँ तो कौशल्या के हृदय में कोई शंका है ही नहीं। परन्तु तुलसी का उद्देश्य यहाँ पर आदर्शवाद की ओर अधिक है। केवल कौशल्या की शंका निवारणार्थ ही नहीं अपितु भरत के नीति क्षेत्र के ज्ञान का अगाध परिचय भी दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार दिया है।

---

१. 'सततं राज पुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते' वा० रा० २।७३।२२।
२. 'अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते' वा० रा० २।७३।२०।
३. (१) 'भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात्।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम्।' वा० रा० २।७४।४।
(२) 'मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि।' वा० रा० २।७४।७।
४. 'सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्र गर्धिनीम्।' वा० रा० २।७३।१७।
५. वा० रा० २।७४।३३।
६. वा० रा० २।७८।२१।
७. वा० रा० २।७४।३५।
८. मा० २।१६३।२।
९. वा० रा० २।७३।७।
१०. मा० २।१६२।८।
११. वा० रा० २।७५।२१, ५९।
१२. मा० २।१६६।५ से २।१६८ तक।

दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार की स्पष्ट हृदयता दर्शाने के पश्चात् कौशल्या के वात्सल्य के पूर्णाधिकारी भरत दिखाये गये हैं एवं कौशल्या का हृदय भरत की ओर से शंका रहित होकर वात्सल्य रस से उमड़ उठता है।

दोनों में अन्तर यह है कि वाल्मीकि रामायण में नाना तर्क उपस्थित करने के पश्चात् भरत कौशल्या के स्नेह भाजन बनते हैं[१] मानस में सरल हृदया, उदारशीला कौशल्या के हृदय में भरत के प्रति कभी स्वप्न में भी आशंका उठी ही नहीं। अतः उन शपथों के पूर्व भी कौशल्या उन्हें अपनी सुखद क्रोड में स्थान देती हैं।[२]

इस प्रकार भरत भाव सागर में डूबते उतराते हुये भी कर्तव्य नौका पर सुदृढ़ रूपेण आरूढ़ होकर सभी पुत्रोचित अन्त्येष्टि संस्कारादि से निवृत्त होकर नीति पथ पर अग्रसर होते हैं।

वशिष्ठादि प्रमुख राज्य संचालक तथा मुख्य मंत्रि मण्डल के समक्ष भरत का नीतिज्ञ रूप सराहनीय है।

रामायण एवं मानस में उस प्रसंग में भरत का रूप लगभग समान ही है परन्तु भावमयता मानस में विशेष है। रामायण में कर्तव्य पक्ष की गुरुता अधिक है।

जहाँ रामायण में....

'ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः।'[३]

कहकर सभा के प्रस्ताव का तीव्र विरोध भरत करते हैं वहीं भरत सुधामय वचनावली द्वारा अपना विनम्र, ग्लानियुक्त, दीन भक्त का रूप प्रस्तुत करते हैं।[४] अपना अपराधी रूप,[५] माता की कुटिल मति,[६] राम का 'वनवासादि'[७] सभी कारण—बाण उनके हृदय को आहत करते हैं[८] और वे अपने ग्लानिमय संघर्षात्मक रूप की शान्ति एकमात्र प्रभु दर्शन में ही प्राप्त करते हैं।[९]

वाल्मीकि रामायण में भरत तथा सभासद राज्य कर्मचारियों का विवरण दो बार दर्शाया गया है। मानस में एक बार ही उसका उल्लेख है। इस भेद का कारण दोनों काव्य ग्रन्थकारों के दृष्टिकोण में भिन्नता है।

---

१. वा० रा० २।७५।६३।
२. मा० २।१६४ से ४ तक।
३. वा० रा० २।७९।७।
४. मा० २।१७६।
५. मा० २।१७८।५।
६. मा० २।१७९।
७. मा० २।१७८।४।
८. मा० २।१८०।
९. मा० २।१८२।

वाल्मीकि वस्तु स्थिति का यथार्थ चित्रण कर रहे हैं जबकि भक्त मानसकार भरत का नितान्त मौलिक एवं भाव ग्राही आर्त भक्त का चित्र चित्रित करने में संलग्न हैं। 'रहइ न आरत के चित चेतू' के चित्रण करने वाले तुलसी भरत द्वारा अनेक सभाएँ किस प्रकार करवा सकते थे। वहाँ तो केवल रट लगी थी, केवल एक, हृदय की ज्वाला शान्त करने की, और उनकी प्रवृत्ति एवं रुचि एक मात्र उपाय की ओर थी।

'आन उपाय मोहिं नहिं सूझा। को जिय कै रघुवर बिनु बूझा ।।
एकहिं आंक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ।।'[1]

यहाँ पर ज्येष्ठ भ्राता का भाव नहीं अपितु सेवक सेव्य भाव जो ठहरा। करुण रस की अति वृष्टि के वातावरण में भक्ति सरिता कहीं भाव सिन्धु की ओर अबाध द्रुत गति से प्रवाहित करने में तनिक भी अवरोध कर सकती है? कदापि नहीं! वही भावदशा भरत की है। तुलसी का दृष्टिकोण भरत चित्रण में निम्नांकित है:

'होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ।।'

अयोध्या के पश्चात् अन्य वन प्रदेशों में भरत का चरित्र विशेष अवलोकनीय है। स्वर्ण को केवल एक बार ही अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है परन्तु भरत के जाज्वल्यमान रूप को भी तीन बार परीक्षा देनी पड़ी। इतना ही नहीं, चित्रकूट में भी लक्ष्मण के आशंकित रूप का समाधान हुआ। निष्कलंक चंद्र सम भरत अनेक व्यंग बाणों से आहत किये गये और उनमें कलंकारोपण किया गया, यह कैसा वैषम्य है? परन्तु अविकम्पित धैर्य, साहस एवं अटूट लगन ने उन्हें विश्व विश्रुत गाथा-सम्पन्न बनाकर सर्वोपरि उनका चरित्रांकण कर दिया।

अच्छा, तो अब उन परीक्षाओं के चित्रों का अवलोकन करना अनिवार्य होगा:

कौशल्या तथा अवधपुरवासियों के सशंकित हृदयों को शान्त कर भरत अग्रसर हुये अपने पुरजन एवं परिजनों सहित वन मार्ग की ओर। मार्ग में राम के अनन्य सखा गुह ने उन्हें आड़े हाथों लिया उसी आशंका की प्रेरणा से उत्पीड़ित होकर।

गंगातीर पर भरत कोससैन्य आया हुआ देखकर वह मन में कटु आशंकाएँ धारण करने लगा।[2] केवल मन में ही नहीं मुख से उन्हें भरत के सामने भी व्यक्त किया।

'अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महा बल। कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्ट कर्मण: इयं ते महती सेना शंका जनयतीव मे।'[3]

'मानस' में इस प्रसंग में थोड़ा सा अन्तर है। निषादराज के द्वारा इतने कटु वाक्य बाण भक्त भरत के सामने कहलाना उनके भावुक हृदय के लिये असम्भव था अत: उन्होंने आशंकाएँ तो 'रामायण' के समान ही उत्पन्न की हैं परन्तु अपनी कला कुशलता का परिचय

---

१. मा० २।१८२।१,२।
२. वा० रा० २।७४।२,४।
३. वा० रा० २।८५।६,७।

'छींक' के प्रसंग योग द्वारा दिया है ।[1] स्वयं तुलसी की अस्वीकृति ही छींक का रूप धारण कर निषाद को मौन कर देती है और भेंट द्वारा शिष्ट मौन परीक्षण ही करता है ।[2]

भरत के ग्लानि पीड़ित विशुद्ध हृदय की वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह वन्य जीव भी उनकी भावमयता से अभिभूत होकर भूरि भूरि सराहना कर उठा :—

'धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ।'[3]

केवल इतना ही नहीं वह राम सखा राम भ्राता को उज्ज्वल अमर यश प्राप्ति का वरदान भी दे देता है :

'शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति
यस्त्वं कृच्छ्रगतं राम प्रत्यानयितुमिच्छसि ।'[4]

भरत गुह मिलन प्रसंग में वस्तु साम्य होते हुये भी भाव भेद है, व्यवहार अंतर है । रामायण में जहाँ लौकिक स्तर का मिलन है, मानस में वहीं आध्यात्मिक स्तर का । जहाँ रामायण में 'ममगुरो: सखे' द्वारा ही निषाद का सम्बोधन किया गया वहाँ भक्ति के सरस भावों से ओत प्रोत भरत उसे आलिंगन बद्ध कर लषन 'सम' मानकर[5] आनन्द लाभ करते हैं । उस आनन्द की मात्रा का वर्णन नहीं किया जा सकता केवल उनके मधुर मिलन के अनुभावों द्वारा ही उसका अनुमान लगाया जा सकता है :

'तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता ।
मिलत पुलक परिपूरित गाता ।....
देखि भरत कर सीलु सनेहू । भा निषाद तेहि समय विदेहू ।।
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा । भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा ।।'[6]

एक साधारण वन्य असभ्य निषाद के प्रति 'श्लक्ष्णया वाचा' का प्रयोग करना उनकी शिष्टता, व्यवहार कुशलता, नम्रता एवं मधुरता का परिचायक है ।

सतत् जागरूक गुह की सतर्कता सदैव भरत का सरल, स्निग्ध, भ्रातृवत्सल एवं निष्कपट रूप ही पाती है । गुह द्वारा राम के पूर्व वृत्तान्तों का कथन[7] भरत को राम के निवास स्थल दिखलाये जाने के प्रसंग दोनों ग्रन्थों[8] में समान हैं और दोनों ही में भरत ने अपनी प्रोज्ज्वल आभा की ही छटा दर्शायी है । रामायण में स्वयं भरत अपने मन्त्रियों के साथ राम को

---

१. मा० २।१९१।४।
२. मा० २।१९२।२,३।
३. वा० रा० २।८५।१२।
४. वा० रा० २।८५।१३।
५. मा० २।१९३।
६. मा० २।१९३।४, २।१९४।४,५।
७. वा० रा० २।८७।१, ४।
८. (१) वा० रा० २।८८।२, १५।
(२) मा० २।१९७।६ से २।१९८.३।

शीया को, इंगुदी वृक्ष को देखकर तुलनात्मक विवेचन करते हुये शोक प्रकट करते हैं। मानस में अपने सखा से अपने प्रिय इष्टदेव राम के निवास स्थलों को दिखाने की आतुर प्रार्थना करते है अपने हृदय की ग्लानि ज्वाला को राहत देने के लिये।

'पूंछत सखहिं सो टाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ।'[१]

इस प्रसंगान्तर का कारण स्पष्ट दोनों कवियों का दृष्टिकोण है। रामायण के भरत मानव हैं जो कठिन परिस्थितियों के स्वयं वहन करते हुये चल रहे हैं, मानस के भरत आर्त भक्त। उनके स्वयं चित चेत कहाँ। अत: अपने सखा से ही मार्ग निर्देशन की कामना करते हैं।

राम सीता के तृणमय आसनों को देख जहाँ रामायण में भरत भाग्य को दोष देते हैं वहीं मानस में 'विधि गति अति बलवान' कहते हुये भी आत्म ग्लानि की कचोटन से उत्पीड़ित भरत बारंबार स्वयं ही मर्माहत होकर अपने को धिक्कृत करते हैं।[३] वरन् स्वयं निषाद विधाता को दोष देते हुये आर्त भरत को सान्त्वना प्रदान करते हैं।[४]

उनका दृढ़ संकल्पात्मक रूप रामायण में[५] तथा दैन्य प्रति मूर्ति रूप मानस में दर्शनीय है।[६] प्रथम में भ्रातृ पक्ष एवं स्नेह भाव प्रधान में द्वितीय में दास्य भाव विशेष है।

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में 'प्रयाग' प्रवेश के प्रसंग में भरत का भक्ति रसाप्लावित अत्यन्त आकर्षक स्निग्ध एवं सरस रूप है।

'भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत रामसिय रामसिय उमगि उमगि अनुराग।।'[७]

भरत की भावना का सजीव चित्रात्मक दर्शन हम इसमें अत्यन्त हृदय द्रावक पाते हैं।

'झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे।।'[८]

पुण्य तीर्थ पर पहुँचकर भरत का आहत हृदय वेदना से चीत्कार कर उठा और वे अपने आश्रम धर्म का परित्याग कर वरदान याचना कर उठे जो भक्तों के हृदय की

---

१. मा० २।१९७।६।
२. वा० रा० २।८८।११।
३. मा० २।२००।४,५।
४. मा० २।२००।८।
५. अद्य प्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन्।।
तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने।
तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति।। वा० रा० २।८८।२६,२७।
६. राम पयादेहि पायं सिधाए। हम कहं रथ गज बाजि बनाए।।
सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। सबतें सेवक धरमु कठोरा।। मा० २।२०२।६,७।
७. मा० २।२०३।
८. मा० २।२०३।१।

याचना का मूल मंत्र ही अब बन गया। निष्काम कर्म योगी भरत के निस्पृह रूप की छटा इस मनोकामना की व्यंजना में देखते ही बनती है :

'अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।'[1]

चातक का आदर्श उनका निजी रूप है[2] जिसकी सराहना केवल चेतन ही नहीं अपितु प्रकृति भी मुखरित होकर करने लगी तथा सहानुभूति प्रदर्शनार्थ द्रवीभूत हो उठी।

'तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं।।'[3]

भरत भरद्वाज मिलन भी भरत चरित्र चित्रण का अपूर्व प्रसंग है। रामायण में भरद्वाज ऋषि भी मानवोचित आशंकाओं का प्रदर्शन कर भरत की परीक्षा लेते हैं[4] परन्तु निषाद भरत मिलन के पूर्वोक्त कारण की भाँति तुलसी के भरद्वाज भरत को भक्त मानकर हार्दिक स्वागत एवं सम्मान कर उनकी सदैव सराहना ही करते हैं।[5] दोनों ग्रन्थों में इस प्रसंग में भेद है।

इस प्रकार रामायण के भरत भरद्वाज के प्रश्नों का समाधान कर परीक्षाग्नि में तप कर अपनी आभा से आलोकित करते हैं जबकि मानस में भरद्वाज के हृदय में भरत के प्रति आशंकाओं का कोई स्थान नहीं, कोई आधार ही नहीं उठता।

रामायण में भरद्वाज के व्यंग्य बाणों से बिद्ध मर्माहत भरत का चित्रण अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं मनोवैज्ञानिक है[6] जो कि हमारे हृदय के अधिक निकट है जबकि मानस के भरत का यह प्रसंग हममें पूज्य भावना का उद्‌गार ही उद्वेलित कर श्रद्धा भाव अर्पण कराता है और भरत को अपने सामान्य स्तर से अत्यन्त उच्च भाव भूमि पर उच्च ग्रीव करके देखने व साधारणीकरण करने की चेष्टा करता है। जिसके प्रति भरद्वाज जैसे ब्रह्म-निष्ठ तपोनिष्ठ महर्षि भी अपनी कृतज्ञता के भाव अर्पण करते हैं और उनके दर्शनों का माहात्म्य वर्णन करते हैं[7] उसके प्रति सामान्य मानव जितने भावों को व्यक्त करे उतने ही अल्प होंगे।

रामायण में एक सर्वज्ञ ऋषि द्वारा पवित्र हृदय भरत की परीक्षा का यथार्थ चित्रण है तो मानस में भरत के आदर्शतम रूप के चरमतम प्रतीक का निदर्शन है। तुलसी

---

१. मा० २।२०४।
२. मा० २।२०४।३,४।
३. मा० २।२०४।७,८।
४. वा० रा०२।९०।१०, १३।
५. मा० २।२०५।४ से २।२०९।६ तक।
६. 'एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रु नयनो दुःखाद्वाचा संसज्जमानया।
हतो ऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।' वा० रा० २।९०।१४,१५।
७. मा० २।२०९।३,४।

की अभिलाषा कि 'कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो'[1] का पूर्ण क्रियात्मक रूप अविचल भक्त भरत में परिलक्षित होता है। भरद्वाज के साधुवाद पर उनकी निरभिमानता, आत्म गौरव तथा स्वाभिमान का अभाव उनके दैन्य रूप तथा समत्वयोगी रूप का ही प्रदर्शन करता है। वे अपने हृदय की मलप्रक्षालिनी प्रवृत्ति ग्लानि की छाया से विलग नहीं होते। देवगण मुनिगण के 'जय जय नाद' की तुमुल ध्वनि में भी उनकी ग्लानिमयी वेदना का स्वर कहीं ऊँचा प्रतिध्वनित होता है। उस करुण निर्झारिणी का कारण है 'मैं सठ सदा सदोस' की कचोटन तथा रामानुराग उदधि की गम्भीरता में निमग्नावस्था। लोक एवं वित्तैषणा से परे भरत मन वच कर्म से भक्ति के अनुभावों की ही झाँकी दर्शाते हुये, भाव विभोर दशा में निमज्जित हो उठते हैं।

'पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गद्‌गद बैन॥'[2]

इसका तात्पर्य यह नहीं कि रामायण के भरत में उच्च भावों का प्रदर्शन है ही नहीं। उसमें यथार्थ करुण चित्रण के पश्चात् कसौटी पर खरे उतरने का प्रमाण भी महर्षि भरद्वाज देते हैं। वशिष्ठादि ऋषियों को भरत को निरपराध प्रमाणित करते हुये देखकर तथा स्वयं अपनी आशंकाओं का समाधान कर भरद्वाज भरत के सद्‌भावों की सराहना करते हुये उनकी नैतिक उच्चता का प्रमाण पत्र देते हैं।

'त्वयेतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे।
गुरू वृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता॥
जाने चैतन्मनस्थं ते दृढ़ीकरणमस्त्विति।
अपृच्छं त्वां तत्रात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन्॥'[3]

भावभूमि के स्तर पर मानस हंसकार कई ग्रन्थों के भरत चरित्र का अवलोकन कर सत्यतः अपना न्यायसंगत निष्कर्ष देते हैं।[4]

अध्यात्म और वाल्मीकि रामायण में भरत जी का वर्णन है तो सही, परन्तु गोस्वामी जी के भरत वर्णन की तुलना में इसका होना न होने के बराबर है।' क्योंकि

---

१. कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत सुभाव गहौंगो॥....
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भक्ति लहौंगो॥ विनय १७२।

२. मा० २।२१०।

३. हे पुरुषसिंह रघुवंश में उत्पन्न आपको यह उचित ही है। गुरुसेवा, शत्रु दमन तथा साधुओं के अनुयायी होना आदि गुण तुममें प्रस्तुत हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे मन में यही है पर उसे पुष्ट करने के लिये और तुम्हारी कीर्ति बढ़ाने के लिये मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था। वा० रा० २।९०।२०,२१।

४. मानस हंस पृष्ठ १६८।

'मानस में 'भरत के हृदय का विश्लेषण करने पर हम उसमें लोक भीरुता, स्नेहार्दता भक्ति और धर्म प्रवणता का मेल पाते हैं।'

मौलिक संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व[१] की कसौटी पर तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि पर रामायण के भरत का चित्रण महत्वपूर्ण है परन्तु तुलसी के भरत प्रेम विह्वल भक्ति के प्रदर्शन की भव्य झाँकी दर्शाते हुये, आत्म प्रताड़न एवं आत्म दोष दर्शन के परिष्कार से भक्तों के भावुक हृदयों पर उच्च स्थान प्राप्त कर, आनन्द लाभ कर भाव एवं कर्तव्य दोनों पक्षों में विजय के अधिकारो हैं।

धर्मनिष्ठ कर्त्तव्यपरायण भरत का चरित्र आद्योपान्त अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व की कसौटी पर सर्वत्र खरा उतरा है। इसका विशेष निदर्शन चित्रकूट प्रसंग में किया गया है। उस प्रसंग में सम्यक् व्याख्या एवं विश्लेषण करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है मानों रामायण के भरत में समस्त नैतिक सुमनों का तथा मानस में भाव पुष्पों के मकरन्द का भी संचयन कर भरत में समाहित कर दिया गया है। दोनों ही ग्रन्थ अपनी अपनी दृष्टि से भरत का चित्रावलोकन कराते हैं।

इस दृष्टिकोण भिन्नता का कारण पंडित रामकिंकर जी उपाध्याय देते हैं।

'भविष्यदृष्टा महाकवि अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से व्यथित हो गये। उन्होंने देखा प्रेम की आड़ में किस प्रकार कुछ लोगों के द्वारा जनता मार्ग-भ्रष्ट हो रही है और तब उन्होंने हमारे सक्षम प्रेम का एक ऐसा दिव्य आदर्श उपस्थित किया, जिसमें उन्होंने यह पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया कि प्रेम में नियम का त्याग अवश्यम्भावी नहीं। नेम का त्याग प्रेम में हो जाय यह सम्भव है पर यह कोई आवश्यक नियम नहीं और हमारे लिये यही प्रेमादर्श अनुकरणीय भी है। प्रेम के नाम पर मन अनर्गल होकर यत्र तत्र न बहने लगे, इसके लिए हमें सदा जागरूक रहना चाहिये। उन्हीं की लेखनी से श्री भरत जी का दिव्य प्रेमादर्श व्यक्त हुआ और हमारे हृदय को आकृष्ट करने लगा।'[२]

भरत के रूप में प्रेमबिन्दु में अगाध सिन्धु का दर्शन हमें चित्रकूट सभा में होता है जहाँ अटल एवं अचल बुद्धियुक्त महान् व्यक्ति भी उस सिन्धु की सरस स्निग्ध वचन वाचियों में निमग्न होने में ही अपना परम कल्याण मान कर उसी में आत्म विभोर हो उठते हैं।

अच्छा तो अब दोनों काव्यों के इस प्रसंग के अन्तर्गत भरत का तेजस्वी एवं मधुर रूप दृष्टव्य है।

'रामायण'[३] तथा 'मानस[४]' दोनों में लक्ष्मण के हृदय में नाना आशंकाओं व क्षोभ का उद्भव दिखाया गया है जिसका समाधान रामायण में स्वयं राम द्वारा होता है[५] तथा

---

१. तुलसी ग्रन्थावली तृ० खंड १८८।

२. कल्याण १३।१।

३. वा० रा० २।९७।१७-३०।

४. मा० २।२२६।६ से २।२३० तक।

५. वा० रा० २।९८।३ से १८ तक।

मानस में आकाशवाणी द्वारा 'समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ' सुनने के पश्चात् राम लक्ष्मण को शान्त करते हैं तथा भरत का गुण गान स्वत: करते हैं ।[1] इस प्रकार वाल्मीकि ने केवल राम द्वारा तथा तुलसी ने देव वर्ग तथा परम पुरुष दोनों की संयुक्त सराहना की सुहृद पृष्ठ भूमि के पश्चात् भरत को चित्रकूट के मंच पर उपस्थित करना विशेष उपयुक्त समझा है अत: यह स्पष्ट है कि रामायण की अपेक्षाकृत मानस में भरत का साधुवाद विशेष है ।

इधर राम के आश्रम का मार्गान्वेषण करते हुये अपनी अटूट लगन में लीन भरत की भावदशा दोनों में लगभग समान रूपेण ही वर्णित है । अन्तर कुछ इतना ही है कि रामायण में आकुलता व आतुरता है[2] तो मानस में संकोचशीलता की शालीनता की प्रबलता ।[3] प्रथम में 'न मे शान्तिर्भविष्यति' की झड़ी लग जाती है तो मानस में एक ओर आत्म संकोच, मातृ संकोच, सेवक धर्म एवं ग्लानि है तो दूसरी ओर प्रभु की शरणागत वत्सलता की द्विविध लहरों के थपेड़ों को खाते हुये भरत दिखाई पड़ते हैं । इस भाव दशा को देख स्वयं ही नहीं, वन्य प्राणी भी आत्म विभोर हो उठते हैं ।[4]

अपना अभीष्ट सामने उपस्थित देख रामायण में भरत अपने को निर्लज्ज आदि मानते हुये चेतना शून्य हो गये । रामायण का यह राम भरत मिलन अत्यन्त मार्मिक, हृदय

---

१. मा० २।२३०। से २।२३१।८ तक ।

२. 'यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्
वैदेहीं वा महा भागां न मे शान्तिर्भविष्यति ।।
यावन्न चन्द्र संकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम्
भ्रातु: पद्म विशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ।
सिद्धार्थ: खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युति
यावन्न चरणौ भ्रातु: पार्थिव व्यञ्जनान्वितौ
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति
यावन्न राज्ये राज्यार्ह: पितृपैतामहे स्थित:
अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति ।।' वा० रा० २।९९।६-१०।

३. समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मन माहीं ।'
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ।।
मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ।।
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ।।
अस मन गुनत चल मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ।
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी चलत भगति बल धीरज छोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।।
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ।।
मा० २।२३३।१ से ७।

४. देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ।। मा० २।२३३।८।

द्रावक एवं मनोवैज्ञानिक है[1] जबकि मानस में यह मिलन आध्यात्मिक स्तर की उच्च भाव भूमि पर ले जाता है। उसमें दर्शकगण भी भाव से साधारणीकरण कर 'अपान' शून्य हो जाते हैं।[2]

चित्रकूट की सभा का चित्रण भरत की विवेकशीलता का स्पष्ट निदर्शन है। इस प्रसंग में भी रामायण में लौकिकता प्रधान है तो मानस में भक्ति भावना एवं शालीनता। प्रथम में नैतिक रूप प्रधान है द्वितीय में आर्त भक्त रूप। इसीलिये रामायण की सभा में तर्क पक्ष या बुद्धि पक्ष की प्रधानता है मानस में भाव पक्ष की।

रामायण में राम के चित्रकूटागमन का कारण पूछने पर भरत अपने तर्क उपस्थित करते हैं। वे तीन तथ्यों का अवलोकन कराते हैं।

'इक्ष्वाकुवंश की परम्परानुसार राज्य के अधिकारी आप हैं, मैं नहीं।'[3]

'यह सर्वसम्मति है कि आप राज्य पुनः लौट कर राज्य का उत्तरदायित्व एवं कार्य-भार स्वयं ग्रहण करें।'[4]

'मैं अपनी माता की इच्छा का घोर विरोध करता हुआ यह नहीं चाहता कि किसी भी प्रकार उसकी कुमन्त्रणाओं एवं कुकार्यों को सफल होते देखूं।[5]

परन्तु राम इन तीनों तर्कों का खंडन करते हैं। कैकेयी की निन्दा का विरोध करते हुये[6] माता पिता की समन्वित आज्ञा पर आरूढ़ होने को ही गौरवशाली मार्ग कहते हैं।[7] इस प्रकार प्रथम दिवस का वाद विवाद समाप्त हो जाता है।

द्वितीय दिवस भरत पूर्व से भी अधिक तर्कशील होकर राम को भावार्पण करते हैं।

'सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकटण्कम्।।'[8]

(आपने मेरी माता को सन्तुष्ट किया तथा मुझको यह राज्य दिया पर अब मैं वह आपको ही देता हूँ उसका निष्कंटक भोग कीजिये)

यथार्थ है जिसे जो मिला हो वही यदि किसी को पुनः दे दे तो इसमें किसी का क्या अधिकार या इसका प्रत्युत्तर क्या हो सकता है?

परन्तु राम ने अपनी परिवर्तित दशा को 'कालगति' का वर्णन कर[9] भाग्य विधान के

---

१. वा० रा० २।१००।३६, ३९।
२. मा० २।२४०।
३. वा० रा० २।१०२।११, वा० रा० २।१०३।२।
४. वा० रा० २।१०२।१३।
५. वा० रा० २।१०२।५,९।
६. वा० रा० २।१०२।१७।
७. वा० रा० २।१०२।२१,२२।
८. वा० रा० २।१०६।४।
९. वा० रा० २।१०६।१५,२०।

आधीन रह कर पिता की आज्ञा मानने का ही आदेश दिया एवं स्वयं भी उसी में रहने का दृढ़ संकल्प ही प्रकट किया।[1]

रामायण के भरत बारम्बार धर्म निष्ठता की प्रेरणा से राम से आग्रह करते हैं राज्य शासनारूढ़ होने के लिये। नैतिकता, धर्मशीलता, विवेक का विचार करते हुये भरत अपने पिता में भी दोष दर्शन करते हैं।[2] इतना ही नहीं धर्मशीलता की दृष्टि से वे राम को भी उपदेश देते हैं कर्मठता का, क्षात्र धर्म का।[3] वे पिता के वरदान को उनका अविचार कह कर राम को 'पुत्र का कर्तव्य' समझाते हुये 'प्रजा पालन' ही एकमात्र क्षत्रियों के प्रथम कर्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं।

इन कर्तव्यों की ओर विशेष उन्मुखता न दिखाते हुये राम अकाट्य तर्कों की ओर बढ़ते हैं। उनके पिता द्विगुणित रूप से वचनबद्ध हो चुके थे।[4]

(१) कैकय नरेश के प्रति।

(२) अयोध्यावासियों के प्रति।

अतः राम असमर्थ हैं भरत की प्रार्थना स्वीकार करने में। राम की दृढ़ता देख भरत हताश हो गये, किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठे। एकमात्र हठधर्मी साधन ही शेष रह गया 'प्रायोपवेशन'।

स्वयं हताश होकर वे देशवासियों से प्रार्थना करते हैं राम को समझाने के लिये। परन्तु अयोध्यावासी भी इस विषय में राम की पितृ-भक्ति देख कर अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

यह देख कर भरत दूसरा साधन अपनाते हैं हठधर्मिता का, अपना दृढ़ संकल्पात्मक रूप, सब ओर से उदासीन होकर एक मात्र त्यागशील रूप को ही अपनाने में अपनी शान्ति मानते हैं। वे निश्चय कर लेते हैं।

सभी उपस्थित जनसमूह के सम्मुख निम्नांकित शपथपूर्ण घोषणा करते हैं।

> अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत।
> श्रृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः श्रृणुयुस्तथा॥
> न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम्।
> एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम्॥
> यदित्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
> अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः॥'[5]

(इस प्रकार, उठकर, जल हाथ में लेकर या छूकर भरत इस प्रकार के वचन बोले कि प्रजा, मंत्री तथा अन्य सब लोग सुनिये, न तो मैं पिता का राज्य माँगता हूँ, न माता ही

---

१. वा० रा० २।१०६।३७।
२. वा० रा० २।१०७।१४।
३. वा० रा० २।१०७।१८,१९,२०।
४. वा० रा० २।१०८।३।
५. वा० रा० २।१११।२४,२६।

को कुछ सिखाऊँगा, न श्री राम को ही वन से लौटाता हूँ। यदि उन्हें अवश्य ही पिता के वचनों का पालन कर यहीं रहना है तो मैं भी चौदह वर्ष तक वन में रहूँगा।)

इस प्रकार 'वाद विवाद' में तर्कशीलता के स्थान पर गम्भीरता आ गई। स्वयं राम भी इस दृढ़ संकल्प को सुन आश्चर्य चकित हो कर्तव्य की प्रेरणा से आशंकित हो उठे और उन्हें दृढ़ रूप के स्थान पर द्रवीभूत होना ही पड़ा तथा स्वतः कह उठे भरत की विनीत प्रार्थना को मानना ही पड़ा किंचित् कर्तव्य जनित संशोधन के साथ।

भरत की प्रशंसा करते हुये, उनको पुकारते हुये, गुरुतम गम्भीर वर्तमान स्थिति को सँभालने के लिये राम को स्वीकृति देनी पड़ी।

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः।।'[१]

(वन से पुनः लौटकर अपने धर्मशील भाई के साथ राज्य का अधिपति बनूँगा।)

तर्क में भरत विजयी हुये परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि राम के व्यक्तित्व में किंचित् हीनता आ सकी। राम ने अपने सत्यनिष्ठ कर्त्तव्य की आज्ञा पालन करने के लिये भरत को भी प्रेरणा दी, परन्तु भरत ने एक बार फिर शक्ति लगाकर उस आज्ञा पालन की असमर्थता प्रगट की। एक बालक की भाँति अपनी असहाय दशा की ओर संकेत किया। 'कुल धर्म' को दोहराते हुये, अपने को शक्ति हीन बताते हुये राम से अपना राज्य लेकर किसी अन्य को सौंपने का अनुरोध करते हैं।

इस विनय के साथ ही वे अपने भाई के चरणों पर गिर पड़े। उनके विनीत, विह्वल रूप के प्रति राम करुणार्द्र हो उठे और उनकी सराहना करने लगे। साथ ही कर्त्तव्य का निर्देश भी करते हैं।

'आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितु पृथ्वीमपि।।
अमात्यैश्च सुहृदभिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः।
सर्वं कार्याणि संमन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय।।'[२]

(हे तात! तुमको यह विनयशीला बुद्धि स्वतः आ गई है। तुम तो पृथ्वी की रक्षा अपनी इसी बुद्धि से कर सकते हो। अमात्य, सुहृदों और मन्त्रिजनों की मंत्रणा से बड़े-बड़े कार्य साधित कर लेना।)

राम के अनुरोध को गुरुजन सेवी भरत फिर न टाल सके परन्तु अपनी निरभिमानता और राम की शक्तिमत्ता का प्रदर्शन उन्होने 'पादुका ग्रहण' द्वारा किया। इस प्रकार स्वतः करणीय कार्यों का उत्तरदायित्व भाई को ही चरण पादुकाओं के मिस सौंपकर स्वयं निमित्त मात्र बन कर आज्ञाकारी भी सिद्ध हुये। इस वाद विवाद में दोनों अपने अपने पक्ष में विजयी हुये। लेखक की कला निपुणता का निदर्शन दोनों के महान् चरित्र के चित्रण में है जहाँ हार में भी जीत और जीत में भी हार दिखलाई पड़ती है तथा दोनों अपनी स्थिति में मग्न हैं।

---

१. वा० रा० २।११२।३१।
२. वा० रा० २।११३।१६, १७।

इस प्रकार रामायण में चित्रकूट सभा का अन्त अत्यन्त नाटकीय ढंग से हुआ। इसकी अत्यन्त संगत आलोचना श्री निवास शास्त्री जी ने की है।[1]

रामायण से मानस में चित्रकूट सभा के प्रसंग में पर्याप्त अन्तर है। रामायण के तार्किक भरत का नैतिक रूप देखने के पश्चात् भरत का भावुक रूप मानस में अवलोकनीय है।

चित्रकूट में प्रवेश करते ही भरत में अनेक भावों का उदय हुआ। सर्वप्रथम प्रभु के 'राम सैल' के दर्शन पाकर,[2] आनन्द विह्वल प्रेमानुभूति हुई, निषाद द्वारा प्रदर्शित राम सम्बन्धित नाना वृक्षों को देखकर प्रेमातिरेक से गद्‌गद हो उठे,[3] राम चरण चिह्नित भूमि को देखकर रंक के समान परमनिधि प्राप्ति का आनन्दानुभव करते हैं।[4]

इन भक्ति के अनुभावों का प्रेरक दृश्य हमें अध्यात्म रामायण में पूर्णरूपेण मिलता है[5]।

भरत के इस भावमग्न रूप ने 'मृग खग जड़ जीवों' को भी 'प्रेम मगन' कर दिया फिर सजीव भक्त सखा निषाद तथा देवगण क्यों न भाव मग्न हो उठते?[6] इतना ही नहीं उस भावमयता की उत्कृष्टता की चरमसीमा का निदर्शन इस प्रकार होता है कि उसने जीवन्मुक्त सिद्ध साधकों को भी रससिक्त कर दिया।[7]

इन दृश्यों में भरत के चरित्र चित्रण का मूल मंत्र भी तुलसी कह गये। वे भी अपने अन्तस्तल के उद्देश्य को किस प्रकार रोक सकते थे। सिद्ध साधकों के साथ ही सराहना करने लगे।

---

1. 'The last scene occurs in the most edifying drama. He produces a pair of Sandals ornamented with gold. Then he became the regent of his kingdom. Both won and lost in this debate. Outwardly Bharat lost but he won in this sense. Bharat by his obstinacy modified the position. He got Sri Rama to admit by actions that though exiled he still owned the kingdom and was king. So the honours were equally divided—Ram winning in facts while Bharat in law and in form deriving power from his Sandals.
(Lectures on V. Ramayana, Xth Lecture)

२. 'राम सैल सोभा निरखि भरतु हृदय अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु॥' मा० २।२३६।

३. 'सखा वचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥' मा० २।२३७।१।

४. हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हियं नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥
मा० २।२३७।३, ४।

५. 'इत्यद्‌भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढ़ चेता रघुनाथ भावने।
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तरः। अ० रा० २।९।१४।

६. 'देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥'
मा० २।२३७।५, ६।

७. निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे। मा० २।२३७।७।

'होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।'[1]

'राम शैल' के दर्शन के उपरान्त अपने प्रभु के सुमंगल, पावन आश्रम के दर्शन पाते ही दुखदावाग्नि म मुक्ति प्राप्त कर 'जोगी के परमार्थ की उपलब्धि सी सिद्धि प्राप्त करते हैं।[2]

तत्पश्चात् भागवत् रूप लक्ष्मण भक्ति रूपिणी जानकी और सच्चिदानन्द रूप राम के दर्शन पाकर तुरीयावस्था को प्राप्त हो गये।[3] आत्मविभोर हो उठे। राम वियोग के कारण अनन्त करुणा छाई हुई थी जिससे शका, दीनता, चिन्ता, स्मृति, लज्जा, आत्मग्लानि और विषादादि कष्टप्रद भावों की कटु अनुभूति हुई परन्तु 'राम दरस लालसा' के भावात्मक संयोग से भरत में त्याग वीरता के लक्षण लक्षित हुये। निर्वेद, स्मरण, धृति, हर्षादि हुये परन्तु अब साक्षात् अभीष्ट दर्शन पाते ही दुःख सुख दोनों का विस्मरण हो गया। स्थितप्रज्ञ की दशा को प्राप्त हो गये।

भरत के 'पाहि नाथ' का करुण स्वर सुनते ही राम भी करुणार्द्र हो आतुर हो उठे। दोनों के प्रगाढ़ मिलन के दर्शक भी स्थितिप्रज्ञ हो भाव विभोर हो उठे।[4] जिसका वर्णन जब कवि कुल अगम है तो फिर साधारण मानव की क्या सामर्थ्य ?

इस प्रकार भरत के भावों का सजीव एवं संगत विकासात्मक चित्रण तुलसी की ही निजी विशेषता है। 'भरत कौ भाउ' चित्रित करने के उद्देश्य को अनवरत उन्होंने ध्यान-मग्न रक्खा। राम द्वारा गुरु से की गई प्रार्थना[5] को सुनकर सभी संशयपूर्ण हो उठे कि राम अयोध्या चलेंगे अथवा नहीं और भरत का अन्तर्द्वन्द्व तो देखते ही बनता है।

'निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु विकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल संकोच ।।'[6]

धन्य है तुलसी की भाव प्रवणता, भरत का 'सोच' भी उन्होंने 'सुचि' बतलाया। राम स्नेह जनित चिन्ता में अशुचिता का स्थान ही कहाँ आ सकता है ? राम-राज्याभिषेक कराने की चिन्ता में निमग्न हो उठे। नाना प्रकार के साधन मन में आने लगे।[7] अपने आग्रह को वे 'निपट कुकर्म' मानकर अपनी आदर्श दास्य भावना का प्रमाण देते हैं। उनकी संकोचशीलता वाल्मीकि के भरत-वाचालता की अपेक्षाकृत कहीं श्रेष्ठतर हो गई है। यहाँ पर तुलसी ने दृश्य ही दूसरा उपस्थित किया है।

सर्वप्रथम सभा भरत, गुरु वशिष्ठ तथा अन्य मुनिगण, परिजन पुरजनों के समक्ष होती है जिसमें 'कहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ' की मन्त्रणा होती है। अन्य श्रोतागण में केवल

---

१. मा० २।२३७।८।
२. करत प्रवेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथु पावा ।। मा० २।२३८।३।
३. 'सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ।।' मा० २।२३९।१।
४. 'भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान' मा० २।२४०।
५. सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।। मा० २।२४७।७।
६. मा० २।२५२।
७. २।२५२।३, ६।

भरत ही संकोचशीलता से गुरु के समक्ष अपना प्रस्ताव प्रस्तावित करते हैं कि गुरु जी यही निर्धारित कर दें कि,

'तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ।'[१]

यह कहकर वे अपनी हठधर्मी न दर्शाकर गुरु आज्ञा पर ही सब उत्तरदायित्व सौंप कर, जन्म भर वनवास के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं ।[२] भरत की इस प्रेमाभक्ति को देख मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ भी स्तम्भित हो उठे, प्रेम विभोर हो उठे ।[३] उनकी अपूर्व भाव दशा तथा उससे भरत के उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट भावों का अनुमान करना संभाव्य है ।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा मानस के वशिष्ठ भरत संवाद में भरत का स्निग्ध, भावमय चित्रण विशेष छटा दर्शा रहा है । राम भरत मिलन का पूर्व रंग रूप यह चित्रण भरत की निष्कपटता, निस्वार्थ त्याग भावना से समन्वित भरत की गुरु भक्ति इत्यादि का मर्यादित चित्रण करता है ।

वाल्मीकि रामायण में दोनों ही सभा भरत राम मिलन की हैं इसमें प्रथम का वर्णन पूर्वोक्त किया जा चुका है, द्वितीय सभा का उद्घाटन वाल्मीकि रामायण की भाँति राम या भरत द्वारा नहीं वरंच गुरु मर्यादा के परिपोषक तुलसी ने स्वयं वशिष्ठ द्वारा ही कराया है क्योंकि सेवक भरत स्वामी राम से अपनी कामना कैसे प्रकट कर सकते थे और फिर सेवक सेव्य भाव के अन्तर्गत यह भी अनिवार्य न था कि स्वामी सेवक की बात मानने के लिये बाध्य होता परन्तु यहाँ तो स्वयं गुरू भरत के भाव से भावित होकर उन्हीं का समर्थन राम से कर रहे हैं ।[४] इस प्रकार भरत के वचनों को दृढ़ अवलम्ब मिल चुका है क्योंकि गुरू भक्त राम कभी अपने गुरू की अवहेलना नहीं कर सकते । यह भरत को पूर्ण विश्वास हो चुका है ।[५]

---

१. मा० २।२५५।३।

२. कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू । एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥
मा० २।२५५।७,८।

३. भरत बचन सुनि देखि सनेहू । सभा सहित मुनि गए बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबलासी ॥
मा० २।२५६।१,२।

४. भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥
भरत विनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥
मा० २।२५७।७ से २ २५८ तक ।

५. (१) 'अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी ।' मा० २।२५२।३।
(२) प्रथम जो आयसु मोकहुँ होई । माथें मानि करौं सिख सोई ॥
मा० २।२५७।४।

इस प्रकार वशिष्ठ द्वारा भरत का समर्थन देख राम स्वयं भरत के महान् व्यक्तित्व की सराहना बिना किये न रह सके ।[१] इतना ही नहीं कर्मशील राम भरत की भाव धारा में निमग्न होकर कह उठे :

'भरत कहहिं सोइ किए भलाई ।'[२]

स्वामी सेवक के मध्यस्थ गुरूदेव की आज्ञा पाकर, गुरू एवं स्वामी (राम) की समन्वित असीम कृपा अपने ऊपर देख शिष्टाचारवश सभा में खड़े तो हो गये पर कृतज्ञता एवं आत्मग्लानिवश वाणी के स्थान पर प्रेम जल धारा प्रवाहित हो चली । गद्‌गद कंठ, सजल नयन, भरत ने अपना हृदय खोलकर सभा के सामने रख दिया जिसमें स्नेहार्द्रता, भक्ति, धर्म-प्रवणता एवं लोक भीरुता सभी के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं । कहने चलते हैं 'निज हृदय की बात' स्मरण हो आता है प्रिय अतीत की बाल्यावस्था का सुदृढ़ भ्रातृ स्नेह तथा तत्क्षण ही ग्लानि की पीड़ा से कराह उठते हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भरत की इस आत्मग्लानि के उद्देश्य की ओर लक्ष्य करते हुये इसकी यथार्थ आलोचना करते हैं ।

'यह आत्म ग्लानि ही उनकी सात्विक वृत्ति की गहनता का प्रमाण है । इस आत्म ग्लानि के कारण का अनुसन्धान करने पर हम उस तत्व तक पहुँचते हैं जिसकी प्रतिष्ठा रामायण का प्रधान लक्ष्य है । आत्म ग्लानि अधिकतर किसी बुरे कर्म को सोच कर होती है । भरत जी कोई बुरी बात अपने मन में लाये तक न थे । फिर यह आत्म ग्लानि कैसी ? यह ग्लानि अपने सम्बन्ध में लोक की बुरी धारणा के अनुमान मात्र से उन्हें हुई थी । लोग प्रायः कहा करते हैं कि अपना मन शुद्ध है, तो ससार के कहने से क्या होता है ? यह बात केवल साधना की एकांतिक दृष्टि से ठीक है, लोक संग्रह की दृष्टि से नहीं । आत्म पक्ष और लोक पक्ष दोनों का समन्वय राम चरित मानस का लक्ष्य है ।[३]

अपनी प्रेमातुर दर्शन पिपासा की बाधकस्वरूपा माता को मानकर तुरन्त उस भावना का खंडन करते हैं । यह तुलसीदास जी के चित्रण की विशेषता है । वाल्मीकि के भरत कैकेयी की निन्दा स्वतः करते हुये देखे गये हैं परन्तु यहाँ कैकेयी पर दोषारोपण की कल्पना करते ही वे तुरन्त अपने को ही 'अघ परिपाक' मानकर सारा दोष अपने अभाग्य को ही देते हैं । इसके पश्चात् समस्त घटनाओं से व्यथित 'निज आहत हृदय' का दुःख निवेदन करते हैं । 'ग्लानि की कसक' प्रदर्शित करने की चेष्टा करते हैं । राम उनकी 'आरति, प्रीति

---

१. 'नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भएउ न भुअन भरत सम भाई ।।
जो गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी ।।

२. मा० २।२५८।८।

३. गोस्वामी तुलसीदास द्वारा श्री रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ १०४।

विनय, नयसानी'[१] वाणी सुन कर अपने आर्त भक्त को 'ईस आधीन जीव गति' के तर्क द्वारा सान्त्वना देते हैं। ज्ञान शिरोमणि वशिष्ठ की कथा वार्ताओं द्वारा भरत को प्रबोध न हुआ क्योंकि वे तो शोक रात्रि की अंधकारमयी दाहमयी धारा में प्रवाहित हो रहे थे उस समय रामचन्द्र की वचन चन्द्रिका से ही उन्हें शीतलता प्राप्त हो सकती थी। उनकी इस सात्विक शीलता से युक्त भरत ऐसे पुण्यश्लोक को राम ने आशीर्वाद रूप प्रसाद दे डाला तथा सूत्र शैली में तुलसी के भरत चरित का माहात्म्य भी अंकित हो गया।

'मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नाम तुम्हार॥'[२]

वाल्मीकि की अपेक्षा तुलसी के राम ने सारा श्रेय तथा क्षेत्र भरत को पुनः सौंप दिया।

'मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।'[३]

मुनिगण, देवगण, सभासद सभी उत्सुक श्रवणों से भरत का निर्णय सुनने के लिए आकुल हैं। भरत भक्ति रसाप्लावित अनेक प्रस्ताव राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।[४] परन्तु उनमें चतुरता की गंध नहीं है कुशाग्र बुद्धि की वाग्विदग्धता अवश्य विद्यमान है।

---

१. आरति 'देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नरनारी।'....
'महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला।'....
'विधि न सकेउ सहि' से 'मोर अभाग उदधि अवगाहू' तक'....
'विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा'
'बिन समुझे निज अघ परिपाकू।'
प्रीति 'भूपति मरन पेम पनु राखी' 'बहुरि निहारि निषाद सनेहू'
'महूँ सनेह सकोच बस'....
'बिनु समुझे निज अघ' से 'जानहिं मुनि रघुराउ' तक
'हृदय हेरि हारेउँ' से 'जानहिं मुनि रघुराउ' तक
'महूँ सनेह सकोच बस'....
विनय 'गुर गुसाइँ साहिब ...परिनामू' 'भूपति मरन' से 'संकर साखि' तक
गुर गुसाइं साहिब सिय रामू।'....
नय 'फरइ कि कोदव....
मुकुता प्रसव....
'बहुरि निहारि निषाद' से 'देउ सहावइ काहि' तक।
मानस पीयूष अयो० पृष्ठ ९८१।

२. मा० २।२६३।
३. मा० २।२६४।
४. देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥
सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
मा० २।२६७।७ से २।२६८।२ तक।

जनकागमन के पश्चात् भरत भावांकन में विशेष गाम्भीर्य प्रस्तुत किया गया।

भरत के इस भव्य स्नेह परिप्लावित रूप को देख कर सभी को पूर्ण सहानुभूति हो उठी। पर गम्भीर शान्तस्वरूप माता कौशल्या करुणार्द्र होकर विदेह पत्नी सुनयना से प्रस्तावित करने लगीं।

मोरे सोचु भरत कर भारी।
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं.......इत्यादि[1]

इस संदेश को समय पाकर सुनयना ने विदेह राज से कह सुनाया। परम योगि राज जनक ने भी भरत के शील स्वभाव सदाचारादि को दिव्य विशेषणों से समन्वित देखा।

'सोन सुगंध सुधा ससि सारू।'[2]

अनेक ताप से तप्त भरत का चिर प्रकाशमान प्रेम ही स्वर्ण है, भ्रातृस्नेह उस स्वर्ण की सुगंधि है। श्री भरद्वाज जी के शब्दों में श्री भरत कीर्त्ति कलाधर का रमणीय एवं संगत अवतरण कराया गया है।

'नव विधु बिमल तात जसु तोरा।[3]'

उस नव विधु की सुधा भी चिर नवीन है।

'पूरन राम सुपेम पियूषा' भी है।[4]

जनक द्वारा भरत के चरित्र का सर्वोत्तम सरस चित्रण[5] वाल्मीकि रामायण में अलभ्य है। उनके लिए समस्त चित्रांकन का एकमात्र निष्कर्ष है।

'साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।'[6]

वशिष्ठ से प्रेरित जनक स्वयं भरत की महत्ता से प्रभावित होकर भरत से ही 'आयसु' माँगकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।[7] वशिष्ठ, राम की भाँति जनक ने भी भरत को उत्तरदायित्व सौंपा।

परन्तु भरत ने भी सर्वत्र अपने विनयशील रूप की ही विभिन्न झांकियाँ दिखाई हैं। कहीं दीनता है तो कहीं मानमर्षता, कहीं भय दर्शना है तो कहीं भर्त्सना, कहीं मन को आश्वासन दिया है तो कहीं मनोराज्य की भूमिका पर पहुँच जाते हैं। 'विचरणा' के क्षेत्र में तो सतत् रहते ही हैं इस प्रकार के विनम्र भरत का रूप अन्यत्र मिलना असम्भव है। इस प्रकार भरत जनक से स्वयं नम्र आज्ञाकारी सेवक की भाँति शिक्षा याचना करते

---

१. मा० २।२८३।३, ४।
२. मा० २।२८७।१।
३. मा० २।२०८।१।
४. मा० २।२०८।५।
५. मा० २।२८७ से २।२८९ तक।
६. मा० २।८८।८।
७. 'राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत संकोच बस कहिअ जो आयसु देहु।
मा० २।२९२।

हैं ।[1] अपने सेवा धर्म की प्रेमोन्मत्त दशा का प्रदर्शन करते हुये जनक पर भार सौंप कर अपनी सुशीलता एवं सुजनता का परिचय देते हैं ।[2]

इस प्रकार पुनः सब प्रेमरस विभोर हो उठे तथा स्वार्थी देवगण प्रकम्पित । तुरन्त सरस्वती जी से प्रार्थना करने लगे भरत की बुद्धि परिवर्तित करने को । साक्षात् वागीश्वरी इस पापकर्म को कैसे स्वीकार करतीं । वे उन देवों को प्रताड़ना देती हुई स्वयं भरत चरित्र की सराहना करने लगीं ।[3]

चित्रकूट में पुनः सभा द्वितीय बार एकत्रित हुई । राम ने गुरू शपथ लेकर सबको विश्वास दिला दिया कि जो गुरू वशिष्ठ तथा राजा जनक आज्ञा देंगे वही राम के लिये मान्य होगा । सत्यसंघ राम से कौन प्रतिज्ञाभंग की आज्ञा देता अतः सब मौन हो गये परन्तु भरत ने उस संकोचमय वातारण में भी अपने उच्च दैन्य विनयावलि[4] से मौन सभा को प्रतिध्वनित कर दिया । सारी सभा स्नेह शिथिल हो गई ।

भरत की प्रीति नति युक्त विनय से प्रभावित सभासद प्रेम विभोर हो उठे । उसी समय राम ने सरस भाव धारा में ही कर्त्तव्य सूर्य को उदीयमान कर भरत को कुल धर्म की रक्षा का आदेश दिया ।[5]

निश्छल, निःस्वार्थ, अलौकिक, दैन्यपूर्ण विनय के पश्चात् भी भरत राम के 'प्रत्यावर्तन' की अदम्य अभिलाषा को पूर्ण न कर सके । स्वामी राम के कर्त्तव्यनिष्ठ रूप के सामने विनीत आज्ञाकारी सेवक भरत कैसे हठपूर्ण अनुरोध कर अपना विरोध प्रकट करते । सहर्ष पूर्ण स्वीकृति देनी ही पड़ी ।

'अब कृपाल जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ।।
सो अवलंब देव मोहि देई । अवधि पारु पावौं जेहि सेई ।।'[6]

राम की आज्ञानुकारिता का निदर्शन भरत ने मौन होकर पूर्ण रूपेण किया ।[7] यथा चित्रकूट के सभी आश्रमों एवं पुण्य स्थलों के दर्शन किये । तथा राम राज्याभिषेक निमित्त लाये हुये तीर्थ जल को अगाध कूप में रक्खा ।

चित्रकूट में तृतीय बार पुनः सभा एकत्र हुई । इस सभा का उद्घाटन पुनः भरत की विनीत वाणी द्वारा हुआ ।[8] राम से अवधि पर्यन्त करणीय राज कार्यों की शिक्षा ग्रहण

---

१. मा० २।२९२।४ ।
२. मा० २।२९२।८ से २।२९३ तक ।
३. 'विधि हरि हर माया बड़ि भारी । सोउ न भरत मति सकइ निहारी ।।
सो मति मोहि कहत करु भोरी । चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ।।
भरत हृदय सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।।'
मा० २।२९४।४ से ६ तक ।
४. मा० २।२९७ से २।३००।४ तक ।
५. मा० २।३०३।४ से २।३०६ तक ।
६. मा० २।३०६।७, ८ ।
७. मा० २।३०९ से २।३१८ तक ।
८. मा० २।३१२।६ से २।३१३।७ तक ।

कर अपनी आधार स्वरूपा चरणपादुकाओं को धारण कर विदा ली जिन्हें वाल्मीकि की अपेक्षाकृत स्वयं राम ने अपनी कृपा के प्रतीक रूप में दिया। अतः वाल्मीकि रामायण के भरत की अपेक्षा मानस के भरत विशेष कृपा पात्र हैं।

अयोध्या लौटकर, नगर की सुव्यवस्था का प्रबन्ध कर, पादुकाओं को सिंहासनस्थ कर, भरत के नन्द्रि ग्राम निवास का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है।

इस कर्मशील रूप पर वशिष्ठ दोनों में[1] अपने साधुवाद द्वारा भरत को धर्मध्वज की उपाधि से विभूषित करते हैं।

वाल्मीकि रामायण की अपेक्षाकृत मानस में[2] नन्दि ग्राम निवास के समय भरत रहनि प्रसंग में सेवक धर्म के अत्यन्त रमणीय, हृदय द्रावक रूप का चित्रण किया गया है जो उनके 'शुद्ध भक्त' रूप का ही सफलांकन है।

इस प्रकार भरत एक सन्यासी शासक की भाँति प्रभु प्रतीक पाँवरी से अनुशासन लेकर राज्य का अनुशासन कर, अपनी कर्त्तव्य गरिमा[3] तथा 'नंदि ग्राम रहनि' के भक्त रूप द्वारा अपनी भाव गरिमा दोनों के समन्वित रूप का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार सेवा के असि धारा व्रत का आपने पूर्णरूपेण पालन किया।

श्री राम रतन भटनागर का निम्नांकित अवतरण दोनों ग्रन्थों में भरत चरित्र के भेद को स्पष्टतः लक्षित कराता है।

'मानस में भरत तुलसी के सबसे मौलिक चरित्र हैं और उन्हें सप्राण बनाने के लिये तुलसी ने कुछ भी उठा ही नहीं रखा है। हो सकता है, भागवत के 'उद्धव' का थोड़ा प्रभाव भी हो, परन्तु शुद्ध भक्त के रूप में उपस्थित होकर भरत राम के भ्राता भरत के बहुत ऊपर उठ गये हैं और शिव एवं हनुमान की तरह भक्तों के लिये साधना का एक प्रतीक बन गये हैं।[4]

श्री व्रज बल्लभ के शब्दों में भी भरत के चरित्र की व्याख्या नितान्त संगत है।

'प्रेम की वेदी पर इन्होंने अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण किया परन्तु बदले में कुछ नहीं चाहा। इसी का नाम निष्काम धर्म है। इसी को निष्काम प्रेम कहते हैं। ऐसे ही भक्त अनन्त दिव्य आनन्द सागर में आनन्द रूप होकर सदा निमग्न रहते हैं।[5]

इन मार्मिक चरित्र चित्रात्मक चित्रणों के पश्चात् भरत चरित्र के दो दृश्य भी दोनों ग्रन्थों में अवलोकनीय हैं।

---

१. (१) वा० रा० २।११५।२, ३, ५।
   (२) मा० २।३१२।८।
२. मा० २।३२३।१ से २।३२५।८ तक।
३. (१) वा० रा० २।११६।२३, २४।
   (२) मा० २।३२३।१।
४. तुलसी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ७७।
   द्वारा श्री राम रतन भटनागर।
५. कल्याण जुलाई ३० पृष्ठ ७३।

(१) युद्ध कांड में संजीवनी बूटी ले जाते समय हनुमान् द्वारा भरत का सजग एवं जागरूक रूप देखना।

(२) अवधि समाप्त प्राय होने के समय पर प्रतीक्षक भरत की आकुल एवं आतुर दीन दशा।

प्रथम चित्रण का वाल्मीकि रामायण में नितान्त अभाव है। मानस में दो भक्तों के पूर्व परिचय कराने के हेतु,[१] भरत का सचेष्ट जागरूक रूप प्रदर्शनार्थ[२] तथा भरत शक्ति दिग्दर्शनार्थ[३] इस अंश का संयोग तुलसी ने किया है।

महर्षि वाल्मीकि का उद्देश्य भरत की भक्ति का चित्रण नहीं है। वे हनुमान् की संजीवनी आनयन की त्वरा में इस प्रसंग के संयोग से बाधा डालना उचित नहीं समझते।

मानसकार के इस प्रसंग में चरित्र चित्रण की दृष्टि से निष्पक्ष समालोचक श्री रजनीकान्त शास्त्री ने त्रुटि दर्शन किया है।

'यह अरुन्तुद समाचार हनुमान के मुँह से सुनकर भी भरत के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती, यह कैसी विचित्र बात है? जो भरत राम वन की वार्ता सुनकर पिता का भी मरण भूल गये और शीघ्रातिशीघ्र उनकी दाहादि क्रियाएँ कर रामचन्द्र को मनाकर वापस लाने के लिये अपने दल बल के साथ चित्रकूट चल पड़े, वे ही भरत रामचन्द्र को उक्त दारुण परिस्थिति के चंगुल में फँसे हुये सुनकर भी टस से मस नहीं हुये, यह एक ऐसी पहेली है जिसकी व्याख्या करना जरा टेढ़ी खीर जान पड़ता है। हनुमान् से लक्ष्मण मूर्च्छा विषयक उक्त दुःखद वृत्तान्त सुनकर भी वे केवल इतना ही कहकर चुप लगा जाते हैं।

'अहह दैव मैं कत जग जायेउँ। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ।'

....इतना ही नहीं वे रामचन्द्र के तत्कालीन संकट की सूचना वशिष्ठ, शत्रुघ्न, अमात्यगण व किसी भी अवधवासी को देते तक नहीं, उनकी सहायता का कुछ प्रबन्ध करना व करवाना तो दूर रहा।....

चाहे जिस दृष्टि से भरत के सम्पूर्ण आचरणों पर विचार किया जाए, उनके अन्यथा देदीप्यमान चरित्र में उक्त त्रुटि रह ही जाती है और उसके परिमार्जन का कोई भी उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता।[४]

---

१. सुमिरत राम राम रघुनायक
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए....से
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक। मा० ६।५८।१ से ६।५९ तक।

२. गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ।
अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।
देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ मा० ६।५७।८ तथा ६।५८।

३. चढ़ मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥ मा० ६।५९।६।

४. मानस मीमांसा पृष्ठ १७५, १७७।

और चाहे जो कुछ हो इस प्रसंग में भरत की कर्तव्य शिथिलता का आभास अवश्य मिलता है।

तत्पश्चात् अवधि समाप्ति पर भरत चित्रण दर्शनीय है।

राम द्वारा कुशल क्षेम पूछने पर भरद्वाज भरत की कार्यतत्परता का समाचार देते हैं।[१] तदनन्तर हनुमान् को भरत के भावादि जानने के लिये दूत रूप में प्रेषित किया।[२]

नंदिग्राम पहुँचकर हनुमान् ने भरत का अत्यन्त कर्मनिष्ठ राज प्रतिनिधि रूप देखा[३] जबकि मानस में आतुर भक्त का रूप प्रदर्शित है।[४] इस अन्तर का कारण पूर्वोक्त है। इस प्रसंग में जहाँ वाल्मीकि में उत्सुक आतुर भाव के अपार स्नेह का चित्रण है, राजा दूत का मिलन है, स्वामी सेवक के गहन भाव का चित्रण है। साथ ही आर्त भक्त की आन्तरिक वेदना का सजीव रूप भी स्पष्टतः अंकित है।

दोनों ग्रन्थों में राम के अयोध्यागमन प्रसंग पर भरत अपनी थाती (राज्य) का निर्वाह (पालनादि) व निक्षेप[५] सम्यक् रूपेण करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में राज्य समर्पण के पश्चात् भरत के चित्रांकन की समाप्ति हो जाती है परन्तु मानस के भरत अपने भक्त रूप में आगे भी भगवान् राम के साथ आध्यात्मिक मंच पर सदा विराजमान रहते हैं।[६] जीव और ब्रह्म के ऐक्य की भाँति दोनों की एकरूपता अबाध चलती है।[७]

तुलसी को 'राम सन्मुख' करने वाले भरत चरित्र की निजी विशेषताएँ हैं, मौलिकताएँ हैं, जिनको श्री साहित्याचार्य पंडित शालग्राम जी शास्त्री ने निम्नांकित विश्लेषण में समाहित करने का सफल प्रयास किया है।

'भरत का चरित पवित्र प्रेम[८] और निर्मल भक्ति का प्रशान्त महासागर है। यहाँ किसी नीति को स्थान नहीं। यहाँ तो सरलता, पवित्रता और निर्मलता के साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्ति की धारा बहती है।'[९]

इन्हीं कारणों से पुष्ट होकर यह निष्कर्ष अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि 'श्री रामचरित मानस में अंकित श्री भरत चरित्र की तुलना न तो प्राचीन काल के ग्रन्थों में कहीं मिलती है, न इस नवीन युग के इतिहास में।'[१०]

१. वा० रा० ६।१२४।४, ६।
२. वा० रा० ६।१२५।१४, १८।
३. वा० रा० ६।१२५।२९, ३५ तक।
४. मा० ७। प्रारम्भिक प्रथम दोहा।
५. वा० रा० ६।१२७।५४,५५।
६. मा० ७।२५।८ से ७ ३६।५ तक।
७ 'भरतहिं मोहिं कछु अंतर काऊ' मा० ७।३५।७।
८. 'सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सन्मुख करत को॥' मा० २।३२५। छन्द।
९. कल्याण वर्ष ५। सं० १। पृष्ठ ६७।
१०. कल्याण वर्ष २७। अं० ५। पृष्ठ १०५२।

और चाहे जो कुछ हो इस प्रसंग में भरत की कर्तव्य शिथिलता का आभास अवश्य मिलता है।

तत्पश्चात् अवधि समाप्ति पर भरत चित्रण दर्शनीय है।

राम द्वारा कुशल क्षेम पूछने पर भरद्वाज भरत की कार्यतत्परता का समाचार देते हैं।[१] तदनन्तर हनुमान् को भरत के भावादि जानने के लिये दूत रूप में प्रेषित किया।[२]

नंदिग्राम पहुँचकर हनुमान् ने भरत का अत्यन्त कर्मनिष्ठ राज प्रतिनिधि रूप देखा[३] जबकि मानस में आतुर भक्त का रूप प्रदर्शित है।[४] इस अन्तर का कारण पूर्वोक्त है। इस प्रसंग में जहाँ वाल्मीकि में उत्सुक आतुर भाव के अपार स्नेह का चित्रण है, राजा दूत का मिलन है, स्वामी सेवक के गहन भाव का चित्रण है। साथ ही आर्त भक्त की आन्तरिक वेदना का सजीव रूप भी स्पष्टतः अंकित है।

दोनों ग्रन्थों में राम के अयोध्यागमन प्रसंग पर भरत अपनी थाती (राज्य) का निर्वाह (पालनादि) व निक्षेप[५] सम्यक् रूपेण करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में राज्य समर्पण के पश्चात् भरत के चित्रांकन की समाप्ति हो जाती है परन्तु मानस के भरत अपने भक्त रूप में आगे भी भगवान् राम के साथ आध्यात्मिक मच पर सदा विराजमान रहते हैं।[६] जीव और ब्रह्म के ऐक्य की भाँति दोनों की एकरूपता अबाध चलती है।[७]

तुलसी को 'राम सन्मुख' करने वाले भरत चरित्र की निजी विशेषताएँ हैं, मौलिकताएँ हैं, जिनको श्री साहित्याचार्य पंडित शालग्राम जी शास्त्री ने निम्नांकित विश्लेषण में समाहित करने का सफल प्रयास किया है।

'भरत का चरित पवित्र प्रेम[८] और निर्मल भक्ति का प्रशान्त महासागर है। यहाँ किसी नीति को स्थान नहीं। यहाँ तो सरलता, पवित्रता और निर्मलता के साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्ति की धारा बहती है।'[९]

इन्हीं कारणों से पुष्ट हो..र यह निष्कर्ष अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि 'श्री रामचरित मानस में अंकित श्री भरत चरित्र की तुलना न तो प्राचीन काल के ग्रन्थों में कहीं मिलती है, न इस नवीन युग के इतिहास में।'[१०]

१. वा० रा० ६।१२४।४, ६।
२. वा० रा० ६।१२५।१४, १८।
३. वा० रा० ६।१२५।२९, ३५ तक।
४. मा० ७। प्रारम्भिक प्रथम दोहा।
५. वा० रा० ६।१२७।५४,५५।
६. मा० ७।३५।८ से ७।३६।५ तक।
७ 'भरतहिं मोहिं कछु अंतर काऊ' मा० ७।३५।७।
८. 'सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सन्मुख करत को॥' मा० २।३२५। छन्द।
९. कल्याण वर्ष ५। सं० १। पृष्ठ ६७।
१०. कल्याण वर्ष २७। अं० ५। पृष्ठ १०५२।

लक्ष्मण

वाल्मीकि रामायण एवं मानस में लक्ष्मण का चरित्र अनेक प्रसंगों में साम्य तथा अनेक स्थलों में वैभिन्य रखता है। सर्वप्रथमतः हमें लक्ष्मण का चरित्र राम में ही समाहित एवं अभिन्न दृष्टिगत होता है। दोनों ही ग्रन्थों में यह अभिन्नता दो रूपों में दर्शायी गई है। वाल्मीकि रामायण में ज्योतिष के व्यंजनात्मक संकेत[1] एवं कर्तव्य प्रेरणा द्वारा[2] तथा मानस में भक्ति की प्रेरणा से है।[3]

मानस की भक्ति भावना इस प्रसंग से भी विदित होती है कि त्रिकालदर्शी ऋषि विश्वामित्र जहाँ वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ से स्वयज्ञ समाप्त्यर्थ 'ततो रामं विसर्जय' कह कर केवल राम की ही याचना करते हैं उसी प्रसंग में मानस में चकोर के समान भक्त विश्वामित्र के अभिन्न संगी लक्ष्मण को किस प्रकार पृथक् कर सकते थे। अतएव वे याचना करते हैं।

'अनुज समेत देहु रघुनाथा।'[4]

यद्यपि लक्ष्मण प्रधान नायक न थे परन्तु यथा समय दोनों कवियों ने लक्ष्मण के सौन्दर्य की भी विशेष चर्चा की है। लक्ष्मण का सौन्दर्य भी राम के ही समान था। इसके प्रमाण दोनों ग्रन्थों में स्थान स्थान पर मिलते हैं।[5] सात्विक, राजस, तामस सभी प्रवृत्तियों के पात्र लक्ष्मण के अप्रतिम लावण्य पर मुग्ध हो उठते हैं।

वाल्मीकि रामायण में जनक लक्ष्मण सहित राम के महान् तेजस्वी रूप से आकृष्ट होकर पुनः दर्शन देने के लिए विश्वामित्र से प्रार्थना करते हैं[6] तो मानस में जिज्ञासा भाव प्रकट करते हुए, जनक लक्ष्मण दर्शन से भी आत्मतोष व आनन्द लाभ करते हैं तथा युगुल मूर्ति की सराहना करते हुए आत्मविभोर होकर कह उठते हैं।

---

१. 'राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक्।
गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रूच्यां प्रोष्ठपदोपमाः॥' वा० रा० १।१८।१६।

२. 'बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
रामस्य लोकरामस्न भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रिय करस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।
लक्ष्मणो लक्ष्मि संपन्नो बहिः प्राण इवापरः।
यदा हि हयमारूढ़ो मृगयां याति राघवः
अर्थनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्।' वा० रा० १।१८।२८,२९,३१।

३. 'बारेहि तें निज पतिहित जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥'
मा० १।१९७।३।

४. मा० १।२०६।१०।

५. (१) वा० रा० ४।३१।११, १५।
(२) हनुमान द्वारा वा० रा० ५।३५।२२।
(३) मा० १।२१६।२।

६. वा० रा० १।६५।३७।

'कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुलपालक।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा।।
सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनन्द हू के आनन्द दाता।।
इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि।।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।।'[1]

रौद्र रूप धारी परशुराम भी 'तनु सुंदर' एवं 'गौर शरीर' की सराहना बिना किये न रह सके।

लक्ष्मण का बाह्य सौन्दर्य केवल कनक की भाँति कान्तिमान् नहीं उसमें स्वर्ण सुगंधि संयोग भी है। वाल्मीकि रामायण में उनके चरित्र चित्रण में स्पष्टता, यथार्थता, तेजस्विता का समन्वय मिलता है तो मानस में इसके साथ-साथ राम के अभिन्न संगी 'चातक चतुर राम स्याम घन के' रूप में भी उनका सौन्दर्य रस प्रतिमूर्ति बन गया है। मर्यादा पालन, धर्म धुरीणता के साथ-साथ यशः प्रभा से आलोकित चरित्र किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उनके हृदय में भक्ति, ज्ञान और कर्म की समन्वयात्मिका त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहित होती दृष्टिगत होती हैं। इसका निदर्शन सूक्ष्मदर्शी कवि ने वन्दना प्रकरण में ही किया है।

'बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।।
रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।।'[2]

सत्य ही तो है ध्वजा को ऊँचे फहराने का श्रेय दृढ़ और उन्नत दंड को ही तो है तथैव लक्ष्मण के अनन्त सक्रिय सहयोग द्वारा ही तो राम अपने कर्म क्षेत्र में कृतकार्य हो सके और उस दृढ़ स्तम्भ के ही बल पर उनकी कीर्ति ध्वजा फहराने लगी।

इसका आद्यन्त निर्वाह उनके दृढ़ त्यागशील जीवन चरित्र का अवलोकन करने से मिलता है। सतत् उर प्रेरक रघुबंस विभूषण के भी प्रेरक लक्ष्मण बने। यह संचालन वस्तुतः श्लाघनीय है। इसके निदर्शक स्थल भी उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मण जनक प्रसंग, तथा लक्ष्मण परशुराम संवादादि का रामायण में अभाव है अतएव लक्ष्मण के अनन्य ऐवक एवं ओजस्वी रूप का दिग्दर्शन नहीं हुआ है जो कि मानस में निम्नांकित रूप में वर्णित है।

योगिराज जनक द्वारा कथित 'वीर विहीन मही मैं जानी' यह बाक्य श्री लक्ष्मण न सुन सके। 'रघुकुल मनि' को विद्यमान देख यह तिरस्कार वे सहन भी कैसे कर सकते थे। क्योंकि वे राम के अनन्य सेवक थे। अतएव जनक द्वारा अज्ञातावस्था में व्यक्त की हुई उपेक्षा के प्रति वे भरी राज सभा में गुरु गर्जन कर ही तो उठे। विदेहराज एवं योगिराज जनक के अनौचित्य की आलोचना कर बैठे।

'रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई।।
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी।।'[3]

---

१. मा० १।२१५।१, २ तथा १।२१६।२ से ४ तक।
२. मा० १।१६।५, ६।
३. मा० १।२५२।१, २।

उक्त प्रसंग में वे भ्रातृ गुण गौरव गान कर उठे । उनकी दर्पपूर्ण ललकार में यद्यपि ओज गुणमय गर्वोक्ति प्रवाहित हो रही है[1] परन्तु इसके साथ ही साथ उनकी निरभिमानता भी स्पष्ट: परिलक्षित हो रही है क्योंकि वे आत्म गौरव का मूल प्रेरक 'प्रभु प्रताप' ही बताते हैं ।

'तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ'[2]

उनकी ओजमयी उक्ति की प्रचंड उद्वेगमयी ललकार भी उच्छृंखल न थी अपितु अपने इष्टदेव राम के एक संकेत मात्र से लक्ष्मण शान्त एवं संयत हो गये । मानस के लक्ष्मण की यह प्रमुख विशेषता थी कि वे अपने स्वामी का संकेत प्रतिपल निरखा करते थे । 'रघुवंसमनि' राम के कायिक अनुभावों का अध्ययन करने का ज्वलन्त प्रमाण यह है कि ज्यों ही राम ने शिव धनुष की ओर दृष्टिपात किया त्यों ही उसकी प्रतिक्रिया लक्ष्मण पर हुई । पुलकित होकर शेषावतार लक्ष्मण ने पृथ्वी को वहन करने वालों को तुरन्त सचेत किया ।[3]

इसी प्रकार धनुर्भंग के पश्चात् भृगुपति के रौद्र रूप का प्रतिकार भी निर्भय स्वामिभक्त लक्ष्मण ने ही किया । धनुर्भंगकर्त्ता एवं विनयशील राम अपने लिये परशुराम की ललकार का प्रतिरोध कैसे करते ? तथा राम का अपमान लक्ष्मण कैसे सहन कर सकते थे ! अत: ज्यों ही परशुराम ने धनुर्भंगकर्त्ता के वध की ललकार सुनाई त्यों ही लक्ष्मण ने मान खंडन रूप अशस्त्र वध द्वारा उनका प्रतिरोध किया । अपने लिए नहीं, अपने स्वामी के लिए वे क्षुभित हो उठे । उनके इस रूप की नितांत संगत आलोचनात्मक व्याख्या निम्नांकित है ।

' मानस के लक्ष्मण एक तेजपुंज वीर हैं । गोस्वामी जी ने इन्हें चित्रित कर अपनी लेखनी को सार्थक किया है । परन्तु लक्ष्मण जी की ये सारी विशेषताएँ श्रीराम जी के प्रति उनके अनन्य सेवाव्रत और उत्कट अनुराग से अनुप्रेरित हैं । श्रीराम जी का अपमान तो दूर रहा, अपमान की कल्पना भी उन्हें असह्य है । उनके चरित्र में यही बात सर्वत्र दिखाई देती है । श्रीराम के प्रति इस अनन्यता के कारण उनका चरित्र इतना आकर्षक और सर्वजन प्रिय हो गया है कि उनकी उग्रता और असहिष्णुता भी मोहक हो गई है ।'[4]

'लक्ष्मण परशुराम संवाद' में लक्ष्मण का स्वतन्त्र व्यक्तित्व परिलक्षित है । लक्ष्मण परशुराम के रौद्र रूप के प्रति हास्य मिश्रित व्यंगों की बौछार करते हैं जिससे परशुराम की क्रोधाग्नि मानों बचनाहुतियों द्वारा और भी प्रज्ज्वलित हो उठती है और वे द्विगुणित आवेश से कटूक्तियों का प्रहार करने लगते हैं । परन्तु कठिनतम व्यंग बाण प्रहार कर्ता

---

१. मा० १।२५२।३ से ६ तक ।
२. मा० १।२५३ ।
३. मा० १।२५९।१, २ ।
४. कल्याण १३।२। पृष्ठ २०३२ ।

लक्ष्मण स्वयं परशुराम की कटूक्तियों से उद्विग्न नहीं होते हैं अपितु स्मित हास द्वारा अपनी सहनशीलता तथा वचन विदग्धता का परिचय देते हैं। इसके साथ ही साथ इस उग्र प्रसंग में भी वे राम का संकेत देखना नहीं भूले हैं। ज्यों ही राम ने संकेत किया त्यों ही वे केवल मौन ही नहीं हो जाते हैं अपितु व्यंग वाणी का परित्याग कर संकोच धारण कर लेते हैं। प्रभु रुख पाकर फिर वे वाक् संयम का परिचय देते हुए मौन धारण कर लेते हैं क्योंकि प्रभु इच्छा पालन ही तो उनका लक्ष्य था।

उक्त संवाद में लक्ष्मण की निर्भीकता, साहस, मर्यादा एवं विनयशीलता वस्तुतः श्लाघनीय है। यद्यपि उन्होंने इस प्रसंग में अपनी असहिष्णुता का परिचय दिया परन्तु अपने स्वामी के लिए वाचाल बन जाना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा और प्रभु की गम्भीरता की सुरक्षा हो गई। यद्यपि इसके विनिमय में उन्हें 'छोट कुमार खोट बड़ भारी' की उपाधि से पुरस्कृत होना पड़ा परन्तु अपने स्वामी का हित चिन्तन करते हुये अनन्य सेवक लक्ष्मण के लिये यह उपाधि दूषण नहीं अपितु भूषण सदृश हुई। उक्त कार्यों द्वारा उन्होने अपने यश का बलिदान कर प्रभु की विरद रक्षा की। बहुत कुछ संभव था कि यदि लक्ष्मण भी राम की ही भाँति नम्र एवं मौन बने रहते तो सभी कपटी राजा परशुराम की उग्रता का आश्रय लेकर एक महायुद्ध को आमन्त्रित कर देते जिससे 'रंग में भंग' तो उपस्थित होता ही साथ ही राम की मौन गम्भीरता की यशः पताका न फहरा पाती। इस प्रकार अपने वाग्युद्ध से उन्होंने अत्यन्त निपुणता से परिस्थिति को सँभाला। अंततः रौद्ररस वर्षा करने वाले भृगुपति को भी उनके महान् व्यक्तित्व का परिचय पाकर क्षमा याचना करनी पड़ी।

'छमहु छमामन्दिर दोउ भ्राता।'[१]

इसके अतिरिक्त 'राम वन प्रसंग' में भी लक्ष्मण का चरित्र दर्शनीय है।

रामायण में लक्ष्मण वन गमन का समाचार सुनते ही अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते है[२] तथा अवसरानुकूल अपना क्षोभ प्रदर्शन करते हुए अपने पिता के चरित्र की कटु आलोचना करते हैं। इतना ही नहीं वे क्रोध की पराकाष्ठा पर पहुँचकर अनेक गर्वोक्तियों एवं कटूक्तियों को कहने लगते हैं।

'निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये॥
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते॥'[३]

इस प्रकार भ्रातृ वत्सल लक्ष्मण करणीयाकरणीय साधनों द्वारा अपने ज्येष्ठ भ्राता राम को सिंहासनारूढ़ कराने का निश्चय करके बलपूर्वक अवध के राज्य पर अपना अधिकार करना चाहते हैं। भ्रातृ वत्सलता में पितृ वध, भ्रातृ वधादि सब कुछ करना उन्हें स्वीकार हो जाता है। इतना ही नहीं उनकी अनन्यता और आत्म बलिदान भी सराहनीय है। वे शपथ खाकर कहते हैं।

---

१. मा० १।२८४।६।
२. वा० रा० २।१९।३०।
३. वा० रा० २।२१।१०, ११।

'अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्वत: ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि राम: प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ।'[1]

'देवि ! भ्राता में मेरी भक्तिपूर्ण सच्ची प्रीति है। सत्य से, धनुष से, दान से और इष्ट से तेरी शपथ खाता हूँ कि जलती हुई अग्नि में, वन में यदि राम जायेंगे तो तुम मुझे पहले गया हुआ समझना।'

राम ने भी लक्ष्मण की अटूट भक्ति एवं शौर्य को स्वीकार करते हुए[2] 'अभि प्रतप्त[3] सौमित्रि को शान्त करने की चेष्टा की।[4] परन्तु आश्वस्त होने के स्थान पर वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठे। उनकी असहाय दशा एवं अन्तर्द्वन्द्व की परिचायिका मन:स्थिति के अनुभावों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है।

'अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् ।
सरोषमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम् ।।'[5]

लक्ष्मण सहज ही निरस्त न हुये। तब राम ने अपने वनवास का कारण प्रारब्ध बताया तथा गीता के कर्मयोग की भाँति उपदेश देकर खिन्नमना लक्ष्मण को आश्वस्त करने का पूर्ण प्रयास किया।[6] परन्तु लक्ष्मण सहज ही दैवाधीन होने वाले न थे। वे पुरुषार्थवादी थे। भाग्यवादिता का आश्रय न लेकर कैकेयी एवं दशरथ पर आशंका करते हुए क्रोध से फुफकार उठे[7] एवं राम के भाग्यवाद का विरोध करने लगे।

'किं नाम कृपणं देवमशक्तमभिशंससि ।'[8]

(क्यों ऐसे असमर्थ कृपण देव की प्रशंसा करते हो ?)

पुरुषार्थ का समर्थन करते हुये प्रारब्ध के समक्ष उसकी विजय निश्चित बताई। अपने पुरुषार्थ के सहारे भाग्य से प्राप्त वनवास को भी हटाकर राम को राज्य सिंहासीन कराने की प्रतिज्ञा की। स्व पराक्रम कथन कर अपनी दोनों भुजाओं को स्फुरित करते हुये ओजपूर्ण दर्पोक्तियाँ कहीं।[9] परन्तु राम को पिता की आज्ञा में तत्पर देख लक्ष्मण निरस्व हो गये और फिर तुरन्त ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। राम के ही साथ स्वच्छन्द वन में विचरण करना ही अपना परम कर्त्तव्य निर्धारित किया।

---

१. वा० रा० २।२१।१६, १७।
२. 'अहं हि ते लक्ष्मणं नित्यमेवजानामि भक्ति च पराक्रमं च।' वा० रा० २।२१।५६।
३. वा० रा० २।२१।४५।
४. वा० रा० २।२१।५५, ६०। तथा वा० रा० २।२२।२ से ३० तक।
५. वा० रा० २।२२।१।
६. वा० रा० २।२२।११ से २५ तक।
७. वा० रा० २।२३।२ से ५ तक।
८. वा० रा० २।२३।७।
९. वा० रा० २।२३।१९,४०।

'अहं त्वामनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ।'[1]

सर्वत्र प्रभु रक्षा के अविचल ध्यान में ही संलग्न रहे । सेवा धर्म ही उनका परमाधार बना । अपने को अनुचर की भाँति वन ले चलने का राम से आग्रह किया ।

'कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं विद्यते ।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्पते ।
धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ।
आहारयिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च ।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ।
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यसे ।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ।'[2]

भक्तवत्सल अपने निष्काम अनन्य सेवक का अनुग्रह कैसे टाल सकते थे । अपने प्राणसम, धर्मरत, निरन्तर सत्पथ पर स्थित सखा तुल्य भ्राता[3] के निष्काम हार्दिक अनुरोध को स्वीकार करना ही पड़ा ।

'व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ।'[4]

रामायण के राम वन गमन प्रसंग में जहाँ लक्ष्मण के आवेशमय विरोधात्मक रूप का प्रदर्शन कराया गया है वहीं मानस में अत्यन्त मर्यादित रूप से उनकी प्रेमाभक्ति का भावात्मक स्वरूप ही चित्रित किया गया है । गोस्वामी जी राम के अनन्य सेवक के मुख से अपने गुरुजनों, (दशरथादि) की निन्दा कैसे करवा सकते थे ? वहाँ तो 'वारेहि ते निज पति हित जानी' का भाव राम के प्रति था ही, अतएव जहाँ स्वामी हैं वहीं सेवक है । मानस में इस प्रसंग के अन्तर्गत उनके अनन्य प्रेम की सरस झाँकी दर्शनीय है । अपने स्वामी के विरह का आभास होते ही उनकी दशा विलक्षण हो गई । उनकी दशा प्रेम के चरमतम प्रतीक चातक एवं जल विहीन मीन की भाँति हो गई ।[5] उनकी षट् इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं ।[6]

समाचार पाते ही उनके श्रवण आकुल हो उठे, वे मुख से बिलखने लगे, चरणों से दौड़े, हृदय कम्पित हो उठा, नेत्र सजल हो गये, उनके हाथों ने आतुर होकर प्रभु चरणों को पकड़ लिया । उनमें अनेक सात्विक भावों का उदय हो गया ।[7]

---

१. वा० रा० २।३१।३।
२. वा० रा० २।३१।२४ से २७ तक ।
३. 'स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखाचमे ।।' वा० रा० २।३१।१०।
४. वा० रा० २।३१।२८।
५. 'मीनु दीनु जनु जलते काढ़े।' मा० २।६९।३।
६. 'समाचार जब लछिमन पाये । व्याकुल बिलख बदन उठि धाए ।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ।।' मा० २।६९।१,२।
७. वैवर्ण्य (बिलख बदन) कंप (वेपथुः) नयन सनीरा । अश्रु, स्वरभंग (कहि न सकत कछु) स्तम्भ (चितवत ठाढ़े) स्वेद (मीन दीन जनु जल ते काढ़े) रोमांच पुलक तन ।

कंठ अवरुद्ध हो गया, कुछ कह भी न सके पर उनकी भक्त मुद्राओं ने उनके रोम-रोम को वाचाल दर्शा दिया। धर्मधुरीण राम कर्त्तव्य ज्ञान कराने लगे[1] परन्तु वहाँ तो उसका प्रभाव भी आकुलता वर्द्धक ही हुआ। प्रेम परिप्लुत हृदय में अपनी वास्तविकता अपने स्वामी के समक्ष खोल कर रख दी। अविचल शरणागत अनन्य प्रेम के आगे प्रभु के समस्त तर्क स्तम्भित हो गये क्योंकि वह तो केवल प्रभु स्नेह में ही प्रतिपालित मरालवत् थे। वहाँ तो उनके सर्वस्व राम थे। वे मन, क्रम, वचन से चरण रत थे[2] फिर कृपासिन्धु कैसे उनका परित्याग करते। अपने अनन्य प्रेमी से उन्हें कहना ही पड़ा।

'माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु वेगि चलहु बन भाई॥'[3]

और माता भी अपने निष्काम भक्त पुत्र को देख उसे विदा देते समय कृतकृत्य हो उठीं।[4] लक्ष्मण भी परिस्थिति से विवश होकर राम के साथ वन प्रयाण नहीं करते हैं अपितु अपने को भाग्यशाली मानकर आहलादपूर्ण हृदय से राम के साथ वन गमन करते हैं।[5] इस प्रकार वे सेवा धर्म के परमाचार्य बनकर शुद्ध उपासना के मूल तत्वों को क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिए वन चल दिये।

अरण्य निवास में उनकी प्रतिपल, प्रति क्षण की सेवा परायणता स्तुत्य है। इसका सार गोस्वामी जी ने एक पंक्ति में रख दिया है।

'सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥'

अरण्य वास की प्रथम रात्रि से ही निरन्तर लक्ष्मण की जागरूकता तथा भाई में अटल अनुराग का समन्वय सराहनीय है। श्रीराम सीता के शयन करने के पश्चात् लक्ष्मण ने वह प्रथम रात्रि सुमन्त्र के साथ जागते हुये रामगुणगान में निरत होकर व्यतीत की।[6]

एक रात्रि ही नहीं अनेक रात्रियाँ इसी भाँति व्यतीत कीं। द्वितीय रात्रि सुमन्त्र एवं निषाद के साथ राम के विषय में सम्भाषण करते हुए व्यतीत हुई।[7] सारी रात्रि भर लक्ष्मण ने राम की विषम परिस्थिति पर खेद प्रकट किया और वेदना से पीड़ित होते रहे।[8]

---

१. मा० २।६९।८ से २।७०।७ तक।
२. 'मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला।............
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिन्धु परिहरिअ कि सोई॥' मा० २।७१।३,८।
३. मा० २।७२।१।
४. 'भूरि भाग भाजनु भयउ मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥'
५. 'बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृग भागवश।' मा० २।७५।
६. कथयामास सूताय रामस्य विविधान्गुणान्॥
जाग्रतोरेव तां रात्रिं सौमित्रेरूदिते रविः। वा० रा० २।४६।१५, १६।
७. परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत। वा० रा० २।५१।२६।
८. वा० रा० २।५१।८ से २५।

मानस में इन दोनों प्रसंगों में ऐक्य स्थापन कर गुह लक्ष्मण संवाद को आध्यात्मिक रूप प्रदान कर दिया है जब कि रामायणकार ने सांसारिकता पर ही दृष्टिपात किया है। रामायणकार के लक्ष्मण की भाँति मानस में लक्ष्मण ने राम के वनवास पर खेद प्रकट कर आयोध्या की दीन दशा एवं माता पिता के दुष्परिणाम की आशंकाएँ व्यक्त नहीं की हैं अपितु 'ज्ञान विराग भगति रस सानी' वाणी द्वारा निषाद के कैकेयी आदि के प्रति व्यक्त क्षोभ को प्रशमित किया है। कर्मयोग का विवेचन,[१] मोह निशा की व्याख्या,[२] परम परमार्थ स्वरूप राम भक्ति का निष्कर्ष,[३] प्रभु के अलख अनादि अनूप रूप का तात्विक निरूपण,[४] प्रभु अवतार कारण[५] तथा उनके चरित श्रवण का माहात्म्यादि वर्णित कर[६] निषाद को 'रघुवीर चरन रत' होने का आदेश[७] देकर अपने परम विज्ञानी रूप का परिचय दिया है।

तत्पश्चात् सुमन्त्र को विदा देते समय यह प्रसंग है कि :

'पुनि कछु लखन कही कटु बानी।
प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥'[८]

पूर्वोक्त प्रसंग के पश्चात् इस प्रसंग में लक्ष्मण को एक संसारी की भाँति कटु एवं अनुचित वचन भाषी देखकर आश्चर्य होता है। परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर इस आश्चर्य का समाधान भी हो जाता है।

सुमन्त्र द्वारा कथित संदेश[९] सुनकर लक्ष्मण के हृदय में उद्वेग उत्पन्न हो गया। लक्ष्मण के हृदय में शंका उत्पन्न हो गई कि पिता सत्यव्रत धारण करने के कारण धार्मिक हैं या इस संदेश द्वारा अपने प्रेमी रूप का परिचय दे रहे हैं ? यदि प्रेम प्रधान था तो फिर नेम कैसा वचन पालन का और यदि सत्य व्रत पालन है तो फिर इस प्रेम का संदेश

---

१. काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोगु सब भ्राता ॥
मा० २।९१।४।

२. मोह निसां सबु सेवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
मा० २।९१।२।

३. सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥ मा० २।९२।६।

४. राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥ मा० २।९२।७।

५. भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल। मा० २।९३।

६. करत चरित धरि मनुज धनु सुनत मिटहिं जग जाल ॥ मा० २।९३।

७. सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
मा० २।९३।१।

८. मा० २।९५।४।

९. नाथ कहेउ अस कोसल नाथा। लै रथ जाहु राम के साथा ॥
बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनहु फेरी। संसय सकल संकोच निबेरी ॥
मा० २।९३।६-८।

क्यों ? अतः तुरन्त लक्ष्मण ने विचार किया कि स्वधर्मरक्षा के लिए प्रेम राज्य में प्राण सम पुत्र का परित्याग कैसा ? अतएव इस द्विविधात्मक रूप को देख दशरथ के प्रति यही निश्चय किया कि दुर्वलतावश ही दशरथ कैकेयी की बात मान रहे हैं। अतएव लक्ष्मण जैसे आदर्श प्रेमी इस द्वन्द प्रधान रूप को प्रेम पट का कलंक ही मान बैठते हैं। इसीलिए प्रेम राज्य के आचार्य लक्ष्मण इस संदेश रूप में दशरथ के रूप को देख क्षुब्ध हो उठे और उन्हें कटु वचन कह उठे।

अतएव यद्यपि मर्यादा प्रेमी तुलसी ने वालमीकि रामायण की भाँति प्रारम्भ में वनवास का समाचार सुनकर लक्ष्मण को क्षुब्ध नहीं दिखाया है अपितु उनकी सहिष्णुता का ही परिचय दिया है परन्तु इस प्रसंग में उनको कटु वचन भाषी दर्शाकर उनकी भावुकता का ही निदर्शन किया है।

वालमीकि जी इस प्रसंग में लक्ष्मण को मौन दिखाते हैं क्योंकि वे पूर्वोक्त प्रसंग में लक्ष्मण का आवेशपूर्ण रूप दर्शा चुके हैं।

वालमीकि रामायण में लक्ष्मण ने वनवास के समय स्थान-स्थान पर अपने वेदनाभितप्त भ्राता राम को सान्त्वना प्रदान की, उन्हें ढाढस एवं अपने अनन्यानुराग का परिचय देते हुये राम को सब प्रकार से परितुष्ट किया।[1]
मानस में लक्ष्मण के इस आश्वासन रूप के अभाव के दो स्पष्ट कारण हैं।

तुलसी के राम तो—
'प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्लो वनवासदुःखतः।'

हैं अतएव उन्हें परिताप कैसा ? वेदना कैसी ? अभाव कैसा ? जब परिस्थिति ही वैसी नहीं तो फिर आश्वासन का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा कारण यह है कि ज्ञान शिरोमणि ज्येष्ठ भ्राता को कनिष्ठ भ्राता किस प्रकार आश्वासन दे सकता है। यह तुलसी के मर्यादा प्रेम के विपरीत था। अस्तु केवल सीता हरण प्रसंग के अतिरिक्त[2] और कहीं भी लक्ष्मण ने राम को आश्वासित नहीं किया। उस प्रसंग में लक्ष्मण का आश्वासन नितान्त संगत एव अनुकूल था क्योंकि राम आर्त दशा में, थे। विक्षिप्त आर्त व्यक्ति चेतना शून्य-सा होने लगता है।

'रहत न आरत के चित चेतू।'

दूसरा कारण यह है कि तुलसी के 'मनहुँ महा विरही अति कामी' का नाट्य कर रहे थे अतः उपनायक को भी तथैव सांसारिक अभिनय करना ही अपेक्षित था।

रामायण के चित्रकूट निवास प्रसंग में लक्ष्मण का सेवा परायण रूप दर्शनीय है। चित्रकूट का सुरम्य स्थल देखकर राम की इच्छा एवं आदेश पाते ही लक्ष्मण ने सुन्दर पर्णशाला का निर्माण किया।[3] तथा गृह प्रवेश के समय होने वाले संस्कारों का भी सम्यक्

---

१. वा० रा० २।५३।२८,३२।
२. पूँछत चले लता अरु पाँती। लछिमन समुझाए बहु भाँती॥ मा० ३।२९।८।
३. तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान्
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दम :॥ वा० रा० २।५६।२०।

प्रबन्ध किया ।[1] चित्रकूट में रहते समय लक्ष्मण सब प्रकार की सेवा अनवरत किया करते थे जिसको देख-देख कर राम पूर्णरूपेण परितुष्ट रहा करते थे ।[2]

मानस में भी चित्रकूट निवास के समय लक्ष्मण सेवा परायणता का उल्लेख है ।
'सेवहिं लखनु करम मन बानी । जाइ न सीलु सनेहु बखानी ।।
छिनु-छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु ।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु ।।,[3]

इस शान्तिपूर्ण व्यवस्थित स्थिति में सुख से समय यापन कर ही रहे थे कि भरत जी के ससैन्य, सपरिजन, स्वजन चित्रकूट पधारते ही लक्ष्मण आशंकावश क्षुभित हो उठे । भरत की सेना को आता देख 'प्रेमानिष्ट शंकी' लक्ष्मण ने अपनी आशंका को क्रोधावेश से व्यक्त कर डाला ।

'संपन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम् ।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुत ।'[4]

इतना ही नहीं अपने प्रिय आराध्य राम के अनिष्टकारी की कल्पना वश भरत के वध तक की ठान ली ।[5] राम की कल्याण कामना से प्रेरित लक्ष्मण ससैन्य भरत वध तक के प्रतिकार के लिये सन्नद्ध हो उठे और अपने को इस कुकृत्य को करने के पश्चात् उऋण होने तक की कल्पना करने लगे ।[6]

मानस में भी लक्ष्मण की यही स्थिति हुई । सतत् प्रभु मुखानुभावों के निरीक्षक लक्ष्मण ने श्री प्रभु के मुख पर द्वन्द्व के भाव परिलक्षित देख अत्यन्त व्याकुल हो उठे ।[7] राम के हृदय में आलोड़न या संघर्ष सेवाव्रती लक्ष्मण को कैसे सह्य होता वहाँ तो अपनी माता से दीक्षा लेकर आये थे कि :

'जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू ।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ।।'[8]

---

१. भ्रातुर्वचनमाज्ञाय लक्ष्मणः परवीरहा ।
चकार च यथोक्तं हितं रामः पुनरब्रवीत् ।। वा० रा० २।२६।२४।
२. तस्य दृष्ट्वा कर्म सौमित्रेर्भ्राता प्रीतोऽभवत्तदा । वा० रा० २।९६।३५।
३. मा० २।१३८।८,२।१३९।
४. वा० रा० २।९७।१७।
५. संप्राप्तो यमरिर्वीर भरतोऽवध्य एव हि ।
भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव ।
पूर्वाप कारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते । वा० रा० २।९७।२३,२४।
६. शरणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्मदावने ।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः । वा० रा० २।९७।३०।
७. लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खँभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।।
मा० २।२२६।६।
८. मा० २।७४।८।

अतएव उनके प्रेमी स्वभाव ने तुरन्त भरत को आक्रमणकारी मान लिया। ससैन्य भरतागमन इस आशंका की पुष्टि भी कर रहा था। प्रभु के विरोध में आये हुये भरत का ही नहीं सहोदर अनुज का भी वध करने के लिये तत्पर हो उठे।[1] प्रेमी भक्त की दृष्टि में व्यक्ति का नहीं प्रेम और प्रेमी का ही महत्व शेष रह जाता है। सच्चे प्रेमी की ममत्वहीनता एवं दृढ़ चित्तता का इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

परन्तु रूद्र वेशधारी लक्ष्मण के चरित्र की सबसे महान् विशेषता यह रही है कि लक्ष्मण की प्रचंड आवेशाग्नि राम के दृष्टि निक्षेप मात्र एवं संकेत मात्र से संकोच शान्ति में परिणत हो जाया करती थी। यह है उनकी आज्ञापालन की प्रमुख विशिष्टता, इस स्थल पर भी वही हुआ।

रामायण में राम की व्यंग्योक्ति सुनते ही लक्ष्मण लज्जा से संकुचित हो उठे।[2] मानस में आकाशवाणी द्वारा।[3] उनकी संकुचित दशा को देख सीता राम ने लक्ष्मण का सम्मान किया[4] जो यह प्रमाणित करता है कि राम ने लक्ष्मण द्वारा भरत के प्रति कथित कटूक्तियों का आधार भली प्रकार जान लिया था अर्थात् उन्हीं के प्रति अटूट प्रेम। लक्ष्मण का उसमें कोई स्वार्थ न था।

इस प्रसंग से यह प्रत्यक्ष चरितार्थ हो गया कि लक्ष्मण के सम्बन्ध की कसौटी राम प्रेम ही थी। पूर्वोक्त क्रोध के आलम्बन भरत को राम का अनन्यानुरागी देखते ही लक्ष्मण ने भावातिरेक से उनका अभिवादन कर अभिनन्दन किया।[5]

अरण्य निवास के समय भी लक्ष्मण का अटूट सहयोग, तत्परता सराहनीय है। संकट के समय पर लक्ष्मण की आश्वासनमयी गर्वोक्ति उनके ओज पर व्यापक प्रकाश डालती है। विराध द्वारा सीता अपहरण होते देख राम अश्रुपरिप्लुत हो उठे।

'अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे॥'[6]

हे काकुत्स्थ! इन्द्र के तुल्य सब प्राणियों के स्वामी! आप मुझ सेवक के होते हुये अनाथवत् क्यों विलाप करते हैं।

केवल वाचिक आश्वासन ही नहीं दिया स्वयं अपना शौर्य विराध के साथ युद्ध करते समय प्रदर्शित भी किया।[7]

---

१. राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
मा० २।२२९।४।

२. तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानिगात्राणि लज्जया। वा० रा० २।९८।१९।

३. सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। मा० २।२३०।५।

४. राम सीय सादर सनमाने॥ मा० २।२३०।५।

५. (१) वा० रा० २।१००।४१।
(२) भूरि भायं भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम। मा० २।२४१।

६. वा० रा० ३।२।२३।

७. वा० रा० ३।३।२०, ३।४।७।

इस प्रसंग में ओजपूर्ण आश्वासन, कर्मशील, कार्य कौशल तथा विनीत आज्ञापालन[1] की त्रिवेणी के सौन्दर्य की झाँकी दर्शा रहा है।

पंचवटी निर्माण प्रसंग में भी लक्ष्मण की कार्य कुशलता एवं विनम्र सेवक रूप प्रत्यक्ष है। राम द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर स्वयं अकेले ही शोभनीय एवं रमणीय पर्णशाला का निर्माण किया। विधिवत् पुष्प बलि आदि संस्कारों को करने के पश्चात् राम की आज्ञा का सम्यक् निर्वाह किया।[2]

इस प्रसंग में कृतज्ञ राम को लक्ष्मण के प्रति उक्ति लक्ष्मण के कर्मठ चरित्र पर समुचित प्रकाश डालती है।

'प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतं प्रभो
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वंगो मयाकृतः
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृतः पितामम॥'[3]

हे प्रभो! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, तूने बड़ा भारी कर्म किया है। इसलिये पुरस्कार देना उचित है। अतः इस निमित्त मैंने तुम्हारा आलिंगन किया है। मेरे चित्त के भाव को जानने वाले, कृतज्ञ, धर्मात्मा तुम्हारे जैसें पुत्र के रहते मेरा पिता मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ।

लक्ष्मण के चरित्र का संक्षिप्त परन्तु गुणों का व्यापक चित्रण हमें शूर्पणखा के कथन में मिलता है।

'भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्य विक्रमः।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः।'[4]

केवल शूर्पणखा ही नहीं अन्य राक्षसगण भी लक्ष्मण के इस व्यक्तित्व से परिचित हैं कि वे राम पर अपने प्राणों को सदैव न्यौछावर करने के लिये तत्पर रहते हैं। अतएव उनके दाहिने हाथ के समान हैं।[5]

---

१. 'इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति....
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम्
अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः। वा० रा० ३।४।२६, २७।

२. वा० रा० ३।१५।२२, २५।

३. वा० रा० ३।१५।२८,२९।

४. वा० रा० ३।३४।१२,१३।

५. 'एषो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः।
नये युद्धं च कुशलः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तश्च जयी बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः।
न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति' वा० रा० ६।२८।२३ से २५ तक।

केवल शारीरिक बल से ही लक्ष्मण राम के सहायक नहीं हैं अपितु मन, वच, कर्म से वे राम के अनन्य सेवक हैं। जब-जब राम विचलित एवं व्यथित हुये तब-तब लक्ष्मण ने राम को प्रबोधित किया तथा उन्हें कर्त्तव्य की ओर प्रेरित किया।

'संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥
स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने।
अतिस्नेहपरिष्वंगाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते ॥.......
स्वास्थ्यं भद्र भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः।...
त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुद्ध्यसे
एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः
त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत ॥'[1]

प्रेरणा प्रदायक लक्ष्मण के यदा कदा उद्बुद्ध किये जाने पर[2] राम उसकी स्वीकारोक्ति करते हुये लक्ष्मण के इस कार्य की सराहना करते हैं।

'वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च।
सत्यविक्रमयुक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया ॥'[3]

(हे लक्ष्मण! प्रेमयुक्त, तत्कालोचित प्रिय में तत्पर, हितकारी, सत्य पराक्रम युक्त मित्र द्वारा जो कहा जाना चाहिये वही तुमने कहा।)

इन प्रसंगों से भी अधिक धार्मिक एवं हृदयस्पर्शी प्रसंग वह है जब राम माया सीता का वध देखकर अचेत हो जाते हैं और लक्ष्मण गुरूजनों की भाँति उन्हें गोद में उठा कर आश्वस्त करते हैं।[4]

'तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थ संयुतम्।'[5]

(अति दुःखित होकर राम को उठाकर लक्ष्मण हेतुयुक्त वचन बोले।)

उनका निस्वार्थ कर्त्तव्य शील रूप उस समय और भी निखर उठता है जब कि वे स्वयं शक्ति से आहत होकर पुनर्जीवन प्राप्त करते ही शिथिल वाणी में भी राम को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराना नहीं भूलते तथा राम को अपनी चिन्ता से विमुक्त होने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

---

१. वा० रा० ४।१।११६,११७,१२१,१२४,१२५।
२. वा० रा० ४।२७।३४,४०।
३. वा० रा० ४।२७।४२।
४. वा० रा० ६।८३।१४,४४।
५. वा० रा० ६।८३।१३।

'तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम'
लघु: कश्चिदिवासत्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिन : ।
लक्षणं हि महत्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ।
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृते नघ ।[१]'

मानस में लक्ष्मण के इस रूप का अभाव है क्योंकि तुलसी के राम स्वयं सच्चिदानन्द घन, बोधस्वरूप हैं । अतएव तुलसी को अपने आराध्य देव में चेतना का अभाव दर्शाना रुचिकर नहीं ।

लक्ष्मण के चरित्र में सबसे अधिक प्रबलता उनके शौर्य एवं पराक्रम की है । इसका उल्लेख दोनों काव्य ग्रन्थों में है । परन्तु अन्तर केवल उसकी अभिव्यक्ति में है । रामायण में यह वीरता यथार्थ रूपेण चित्रित हुई है जिसमें स्वाभाविकता एवं सजीवता परिलक्षित होती है परन्तु मानस में लक्ष्मण शौर्य की पृष्ठभूमि में दो विशेष कारणों का योग किया गया है । प्रथमत: भक्त तुलसी ने दास्य भाव के उपासक लक्ष्मण के बल का कारण भी प्रभु प्रताप ही माना है ।[२] इसके अतिरिक्त लक्ष्मण स्वयं शेषावतार हैं इसलिये अंशी का स्वरूप अंश में लक्षित होना अनिवार्य ही है ।[३]

रामायण[४] तथा मानस[५] में लक्ष्मण के शौर्य की सराहना उनके परिजन तो करते ही हैं अपितु शत्रु भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।[६] यही शौर्य की पराकाष्ठा है ।

---

१. वा० रा० ६।१०१।५०,५२।
२. मा० ६।७४।१२।
३. (१) मा० ६।५४ से ६।५४।१ तक । (२) मा० ६।८२। छन्द ।
४. (१) सीता 'न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ।' वा० रा० ५।२६।२१।
(२) राम 'विससर्जकं वेगेनपञ्च बाणशलतानि य: ।
इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्चलक्ष्मण: ।
'अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मन : ।
(३) वानरगण वा० रा० ६।८९।४७।
५. (१) राम 'जग महं सखा निशाचर जेते । लछिमन हनहिं निमिष महँ तेते ।।'
मा० ५।४३।७।
(२) मा० ६।५४।१,२।
६. (१) शार्दूल (गुप्तचर) 'लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा मातंगानामिवर्षभ: ।
यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासव: ।।'
(२) कुंभकर्ण—'अन्तकस्याप्यकष्टेन युधि जेतारमाहवे
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया
प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे ।
तिष्ठन्नप्यग्रत: पूज्य: किमु युद्ध प्रदायक:
अथ त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमै :
तोषितो गन्तुमिच्छामि ''''वा० रा० ६।६७।१०८,१०९,१११।

लक्ष्मण के रण कौशल के भी रामायण[१] एवं मानस[२] में पर्याप्त निदर्शन हैं।

स्वभाव से ही उग्र, चपल, स्पष्टभाषी एवं वीर लक्ष्मण अपने कर्त्तव्य क्षेत्र में एक विनीत, त्यागी, आत्मनिष्ठ, संयत, अनन्य आज्ञापालक सेवक भी हैं। इन दो विरोधी प्रकृतियों का संयोग आपके चरित्र में स्वर्ण सुगंधि संयोग प्रस्तुत करता है।

रामायण के सीता हरण प्रसंग में लक्ष्मण विचित्र परिस्थिति का सामना करते हैं। एक ओर पितृ तुल्य राम की आज्ञा है कि 'सीता की रक्षा करना' दूसरी ओर[३] मातृ तुल्य जानकी आदेश देती हैं।

'तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम्'[४]

(सहायक की इच्छा करते हुये भाई के पीछे जल्दी जाओ।)

माता एवं पिता की विरोधी आज्ञाओं में माता की आज्ञा ही अधिक माननीय होती है[५] अतएव लक्ष्मण ने इसी आदर्श का अनुसरण किया यद्यपि इस आज्ञापालन में उन्हें अनेक कटु व्यंग्योक्तियाँ सहन करनी पड़ती हैं। राम एवं सीता दोनों ही लक्ष्मण की अवमानना करते हैं।[६] रामायण तथा मानस के इस प्रसंग में कुछ अन्तर है। रामायण के लक्ष्मण का चित्रण यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक है जब कि मानस के लक्ष्मण का चित्रण मर्यादित, आदर्श एवं पूर्ण संयत है। रामायण में वे सीता से तर्क करने के पश्चात्[७] सीता की आज्ञा का पालन करते हैं जब कि मानस में हरि भक्त कवि ने हरि प्रेरणा का आश्रय लेकर लक्ष्मण को राम की ओर जाने के लिये प्रेरित दिखाया है।[८]

इसी 'आज्ञापालक' रूप की ही भाँति उनका संयत एवं मर्यादित रूप भी दोनों काव्यों में अंकित है। सीता को मातृ तुल्य मान कर भी उन्होंने उनके पूर्णांग के दर्शन नहीं

---

१. (१) लक्ष्मण रावण युद्ध वा० रा० ६।५९।९९,१०६,६।९९।१७,१८।
वा० रा० ६।१००।१३-१५।
(२) लक्ष्मण कुंभकर्ण युद्ध वा० रा० ६।६७।१०२,१०६।
(३) लक्ष्मण मेघनाद युद्ध वा० रा० ६।८८।५२,५४।

२. (१) लक्ष्मण मेघनाद युद्ध वा० रा० ६।५२।११,६।५३।२।
(२) लक्ष्मण रावण युद्ध वा० रा० ६।८२ से ६।८२।७।

३. 'पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्सां समाचरन्।' वा० रा० ५।३८।५८।

४. वा० रा० ३।४५।४।

५. 'पितुर्दशगुणा माता'

६. (१) सीता द्वारा वा० रा० ३।४५।६,९।
(२) राम द्वारा वा० रा० ३।६०।२३।

७. वा० रा० ३।४५।११,२०।

८. हरि प्रेरित लछिमन मन डोला मा० ३।२७।५।

किये ।[१] उनका चरित्र अत्यन्त उच्च कोटि का है । कामना तो उनका स्पर्श तक नहीं कर सकती है ।[२] वे परम त्यागशील हैं । उत्सर्ग भावना उनकी चिरसंगिनी है । कबन्ध राक्षस के चंगुल में दोनों के ग्रस्त हो जाने पर लक्ष्मण राम की सुरक्षा की चिन्ता से आकुल होकर कह उठा :

'मां हि भूतबलिं दत्वा पलायस्व यथासुखम्'[३]

(कबन्ध को मेरी बलि देकर यथा सुख तुम भाग जाओ ।)

इसी प्रकार उन्होंने अपनी बलि देकर सम्पूर्ण अयोध्या को दुर्वासा के उग्र शाप से बचाने का संकल्प किया ।[४]

लक्ष्मण के कर्तव्यनिष्ठ रूप के साथ उनका माधुर्य रूप भी उनकी शोभा को चार चांद लगा देता है । राम की ओर से अनवधानता करने वाले सुग्रीव के प्रति लक्ष्मण अत्यन्त उग्र रूप में[५] किष्किन्धा नगरी में पदार्पण करते हैं परन्तु वहाँ पहुँचकर तारा को सम्मुख देख विनतवदन एवं लज्जायुक्त हो गये ।[६] यह है उनके व्यावहारिक आदर्श का चित्ताकर्षक रूप ।

रामायण तथा मानस में लक्ष्मण के भाग्यवाद पर विश्वास में अन्तर है । रामायण के अनेक प्रसंगों में उनमें 'भाग्यवादी का स्वरूप' मिलता है[७] परन्तु मानस में 'दैव दैव आलसी पुकारा'[८] कह कर भाग्यवाद की उन्होंने उपेक्षा ही की है ।

मानस की अपेक्षाकृत रामायण में लक्ष्मण में भौतिकता एवं मानवीय लक्षणों का भी रूप मिलता है । वे वन का महत्व वर्णित करते हैं[९] तथा धन की अपेक्षा धर्म को दुर्बल

---

१. (१) नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले
नूपुरे त्वामिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।' वा० रा० ४।६।२२।

(२) दृष्टपूर्वं न तो रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ॥
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने । वा० रा० ७।४८।२१,२२।

२. 'न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः । वा० रा० ४।३५।५५।

३. वा० रा० ३।७०।३९।

४. 'एकस्य मरणं मे स्तु मा भूत्सर्वविनाशनम् ।
इति बुद्धया विनिश्चत्य राघवाय न्यवेदयत् ॥' वा० रा० ७।१०५।९।

५. (१) वा० रा० ४।३१।२९, ३२।
(२) मा० ४।१७।८, ४।१८।८, ४।१९।

६ वा० रा० ४।३३।३९।

७. (१) व्यक्तं दैवावहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् ।
वैदेह्या सारथे नित्यं दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥
यो हि देवान्सगन्धर्वान् सुरान्सह राक्षसैः ।
निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवं पर्युपासते ॥' वा० रा० ७।५०।४,५।

(२) 'मा० शुचः पुरुष व्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी ।' वा० रा० ७।५२।१०।

८. मा० ५।५०।४।

९. वा० रा० ६।८३।३१, ४०। आर्थिक महत्व

बताते हैं।[४] भेद का कारण स्पष्ट है कि तुलसी के लक्ष्मण 'मोरे सबै एक तुम्ह स्वामी'[५] के आदर्श का यावज्जीवन पालन करते हैं। यही कारण है कि मानस के लक्ष्मण का व्यक्तित्व निराला है, वे मूर्तिमान् वैराग्य हैं।

'सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यान बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर।'[६]

दोहे में उक्त उत्प्रेक्षा उनके जीवन को पूर्ण रूपेण चरितार्थ करती है। उनके जीवन के सारतत्व वशिष्ठ जी ने नामकरण के समय ही विचार लिये थे अतएव

'लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरू बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।'[७]

हनुमान्

ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमान् रामायण में एक कुशल राजनीति निपुण वीर सेनानी एवं निपुण दूत हैं जब कि मानस में भक्ताग्रगण्य, राम के अनन्य सेवक के रूप में अपना मन वच कर्म अर्पण करने वाले 'अतुलित बल धाम' सम्पन्न कार्य कर्त्ता हैं।

रामायण में उनके गुणों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित श्लोक से मिल जाता है :

'शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः।।'[५]

'शौर्य, चातुर्य, बल धैर्य, पांडित्य, नीतिपूर्वक कार्यसिद्ध करने की योग्यता, विक्रम और प्रभाव के तो हनुमान् जी घर हैं अर्थात् इन गुणों के हनुमान् जी आश्रयस्थल हैं।'

मानस में भी उनके विशिष्ट गुणों का समाहार इस प्रकार है :

'अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपति प्रियभक्तं वात जातं नमामि।।'[६]

दोनों ग्रन्थों में कार्य निपुणता के अधिकांश प्रमाण लगभग समान ही हैं परन्तु रामायण में उनका सेनानी रूप प्रबल है जबकि मानस में भक्त कवि तुलसी की भक्ति के परमादर्श मारुतसुत भक्ति के लक्षणों से समन्वित होकर स्वयं आराध्य हो गये हैं जिसका कारण भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है। तुलसी के हनुमान् साधारण वानर नहीं अपितु साक्षात् शंकर के अवतार हैं

'जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह बस संका में हनुमान।।

---

१. धर्म की व्यर्थता वा० रा० ६।८३।१४; ३०।
२. मा० २।७१।६।
३. मा० २।२३।१।
४. मा० १।१९७।
५. वा० रा० ७।३५।३।
६. मा० ५।३ श्लोक।

जानि राम सेवा सरस समुझि करन अनुमान ।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ।।'[1]

रामायण में विवरणात्मक शैली का आश्रय लिया गया है, मानस में विवेचनात्मक एवं संक्षिप्त शैली का। अतएव मानस की अपेक्षाकृत रामायण में हनुमान जी के शौर्य एवं पराक्रम के स्थलों के वर्णन अत्यन्त विशद एवं अनेक हैं ।

हनुमान प्रारम्भ से ही पराक्रम एवं शौर्य के विधान दिखाई देते हैं क्योंकि पवन देव की प्रेरणा के अनुसार बुद्धिमान, पराक्रमी एवं तेजस्वी पुत्र की उत्पत्ति होगी यह उनके जन्म के पूर्व ही निश्चित हो चुका था ।[2] जन्म लेते ही बाल सूर्य के ग्रहण करने की इच्छा करना उनकी जन्मजात शौर्य प्रवृत्ति का ही निदर्शन है ।[3] उनके इस विक्रमशील स्वरूप की पृष्ठभूमि में प्रमुख देवों के वरदान हैं[4] जिनका प्रत्यक्षीकरण मारुति नन्दन ने अपनी जीवन चर्या में कर दिखाया ।

मानस में इस जीवनी का अभाव है क्योंकि तुलसी की रुचि उनके राम सम्बन्धित जीवनी में ही रमी है ।

रामायण तथा मानस दोनों में ही हनुमान जी के पराक्रम के असंख्य प्रसंग हैं । इनमें से कतिपय प्रमुख प्रसंग अवलोकनीय हैं ।

रामायण में मुहूर्त भर समुद्रोल्लंघन,[5] अशोक वनिका विध्वंस,[6] लंका दहन,[7] हनुमान् रावण युद्ध,[8] कुम्भकर्ण के प्रवल अस्त्रों को केवल हस्त बल से चूर चूर कर डालना[9] देवान्तक,[10] त्रिशिरा,[11] निकुम्भ[12] आदि प्रमुख राक्षस सेनानियों का वध करना आदि प्रसंग आपकी अलौकिक शक्ति के परिचायक हैं । इसी कारण राम,[13] सीता[14] ही उनकी शौर्य

---

१. दोहावली १४२,१४३।
२. वा० रा० ४।६६।१७,१९। वा० रा० ७।३५।२१।
३. वा० रा० ४।६६।२१।
४. वा० रा० ७।३६।११।२४।
५. वा० रा० ५।१।१३७।
६. वा० रा० ५।४३।
७. वा० रा० ५।५४,५५। सर्ग ।
८. वा० रा० ६।५६।५३।६९। ५।५९।११४।
९. वा० रा० ६।६७।६३।
१०. वा० रा० ६।७०।२३।२६।
११. वा० रा० ६ ७०।४९।
१२. वा० रा० ६।७७।१२।२४।
१३. वा० रा० ६।१११।११।
१४. (१) वा० रा० ५।३६।८।
(२) वा० रा० ५।३६।८।
(३) वा० रा० ६।११३।२४।२६।

प्रशंसा नहीं करते अपितु वानरगण[1] एवं विपक्षी राक्षसगण भी[2] उनके पराक्रम एवं बल की भूरि भूरि सराहना करते हैं।

उद्धरणों की ही भाँति मानस में भी समुद्रोल्लंघन,[3] अशोक वाटिका विध्वंस,[4] लंका दहन,[5] मेघनाद से युद्ध,[6] कुम्भकर्ण को मुष्टिका प्रहार द्वारा धराशायी कर देना,[7] किसी से न उठाए जाने वाले शेषावतार रूप लक्ष्मण को क्षण भर में रण प्रांगण से उठाकर राम के समीप ले आना[8] तथा संजीवनी आनयन[9] आदि प्रसंग उनके अतुल पराक्रम के प्रमाण हैं।

मानस में भी उनके बल की सराहना सभी प्रमुख पात्र करते हैं। रावण भी उन्हें 'हैं कपि एक महाबलसीला'[10] कहता है।

उनके पराक्रमशील शारीरिक बल के अनुरूप ही उनका तेजस्वी स्वरूप भी है जिसका चित्रांकण स्थान स्थान पर किया गया है।

रामायण में समुद्रोल्लंघन करते समय उनका विभ्राजमान तेज दर्शनीय है।

'तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ।
पिंगे पिंगाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले।
चक्षुषी संप्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ।
लांगूलचक्रो हनुमाञ्छुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः।
व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः।'[11]

मानस में भी जामवन्त से प्रेरणा पाकर हनुमान्
'कनक बरन तन तेज बिराजा'[12] दिखाई पड़ते हैं।

हनुमान् केवल 'पवन तनय बल पवन समाना' ही चरितार्थ नहीं करते वे 'बुधि

---

१. (१) (दधिमुख) वा० रा० ५।६३।२०,२१।
(२) (अंगद) वा० रा० ५।५७।४६।
(३) (जाम्बवान्) वा० रा० ६।७४।१८,२३।
२. (रावण) वा० रा ५।५२।२०।
३. मा० ५।१ से ५।२।५ तक।
४. मा० ५।१७।१४।
५. मा० ५।२५ से ५।२५।१,४,५,८ तक।
६. मा० ६।४२।४ से ४५ तक।
७. मा० ६।६४।७।
८. मा० ६।५४।६।
९. मा० ६।५५।
१०. मा० ६।२२।५।
११. वा० रा० ५।१।५६,५७,६०।
१२. मा० ४।२३।७।

बिवेक बिग्यान निधाना' भी हैं।[१] बल के अनुरूप बुद्धि बिरले व्यक्तियों में ही होती है। सूर्य से विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करने से हनुमान् की प्रखर बुद्धि होना स्वाभाविक ही है। इसका विवरण रामायण में पर्याप्त है।[२] सम्यक् रूपेण शिक्षित पवन तनय विविध भाषाओं के ज्ञाता हैं। वे जानकी से संस्कृत में परिचय देने का विचार करते हैं।[३] शिक्षा एवं संस्कार के अनुरूप ही उनका विवेक है। वे तत्वज्ञ, व्यवहारज्ञ, अर्थगर्भित रहस्यों के उद्घाटनकर्ता एवं नीतिज्ञ भी हैं। इसका परिचय हमें दोनों ग्रन्थों में तब मिलता है जब कि वे कांचन कामिनी में लिप्त सुग्रीव को 'राम काज' का स्मरण कराते हैं।[४] रामायण में सीता एवं रावण के साथ उपयुक्त व्यवहार उनकी व्यवहार कुशलता के प्रमाण हैं।

वे निपुण राजनीतिज्ञ हैं[५] इसीलिये वे सचिवोत्तम रूप में समयोचित मंत्रणा देते हैं।[६] वे कुशल एवं श्रेष्ठ दूत तथा स्वामिभक्त सेवक हैं। अशोक वाटिका में वे सुयोग्य कार्यकर्ता के लक्षण बताते हुये अपना अर्थ साधक का रूप भी प्रमाणित करते हैं।

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति
न ह्येक: साधको हेतु: स्वल्पस्यापहि कर्मण:
यो ह्यर्थं बहुधा वेदस समर्थोऽर्थसाधने।

इहैव तावत्कृत निश्चयो ह्यहं व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम्
परात्मसंमर्दविशेषतत्वविततः कृतं स्यान्मम भर्तु शासनम्'[७]

(कर्तव्य कर्म के पूरा हो जाने पर उससे अविरुद्ध अन्य कार्यों को भी जो साधता है, वही अच्छा कार्यकर्ता है। जो अर्थ सिद्धि के बहुत उपाय जानता है, वही अर्थ के साधन में समर्थ हो सकता है। राक्षसों का बल एवं अपने बल में अन्तर को भली भाँति से जान यदि वानरराज के पास जाऊँ तो स्वामी की आज्ञा का पालन ही होगा।)

उनके कुशल दूत का रूप उनके लंका के कार्यों एवं रावण के साथ संभाषणादि से तो प्रगट होता ही है इसके अतिरिक्त वे स्वयं दूतों के विभिन्न रूपों का विवरण देते हुये अपने कार्य कुशल दूत धर्म के विवेक का परिचय देते हैं।

---

१. मा० ४।२९।४।
२. वा० रा० ७।३६।४४, ४७।
३. वा० रा० ७।३०।१८।
४. (१) वा० रा० ४।२९।६, २८।
(२) मा० ४।१८ से १८।१।
५. वा० रा० ५।१७।५०, ६८।
६. 'भृत्यकार्यं हनमता सुग्रीवस्य कृतं महत्
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्यच' वा० रा० १।१।६।
७. वा० रा० ५।४१।५ से ७ तक।

'भूताश्चार्था विरूध्यन्ति देशकाल विरोधिता:
विक्लवं दूतमासाद्य तम: सूर्योदये यथा
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते
घातयन्ति हि कार्याणि दूत: पंडितमानिन: ।।'[१]

(डरपोक दूत को पाकर देश काल से विरोधित भूतार्थ सूर्योदय पर तमवत नष्ट हो जाते हैं। अर्थ और अनर्थ के बीच निश्चित बुद्धि भी नहीं शोभती और पंडितमानी दूतों को पाकर कार्य नष्ट हो जाते हैं।)

इसी प्रकार मानस के अनेक प्रसंगों में भी उनकी बुद्धिमत्ता स्तुत्य है। यथा

विभीषण से प्रथम परिचय प्राप्ति, कालनेमि को समयोचित दीक्षा दान, सुबेल तट पर चन्द्रमा की कालिमा के विषय में मौलिक उक्ति तथा राम गुण गान द्वारा सीता का ध्यान आकर्षित करना आदि।

रामायण में अनेक स्थलों में उनका नैतिक रूप भी उल्लिखित है। उदाहरणत: नारी पर पराक्रम दिखाना उनकी दृष्टि में वर्जित था। अतएव लंकिनी पर अत्यधिक पराक्रम से प्रहार नहीं किया[२] रावण के भवन में नारी दर्शन मात्र के पाप से वे चिन्तित हो उठते हैं।[३]

रामायण एवं मानस में हनुमान् के धार्मिक रूप में अन्तर है। जहाँ मानस में वे 'रामचरन सरसिज उर राखी' या 'चलेउ हरषि हियँधरि रघुनाथा' के पश्चात् कार्यारम्भ करते हैं वहाँ रामायण में तत्कालीन संस्कृति के अनुसार वे विविध वैदिक देवों की आराधना करते हैं।[४] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि रामायण में उनका राम भक्त रूप चित्रित नहीं है। इस ग्रन्थ में भी आप समय समय पर राम का ध्यान करते हैं[५] तथा वे सीता से अपना परिचय 'राम दास' रूप में देते हैं। हनुमान स्वयं राम एवं राम चर्चा में अटल भक्ति एवं प्रीति[६] की वर याचना करते हैं और राम उनका अभिलषित पूर्ण करते हैं।[७] वे राम के अतिरिक्त भी अन्य देवों[८] एवं महर्षियों से[९] अपनी कार्य सिद्धि की प्रार्थना करते हैं। परन्तु मानस के हनुमान् राम से यह गुरू मन्त्र प्रारम्भ में ही ले चुके हैं।

'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।।'[१०]

---

१. वा० रा० ५।३०।३७,३८।
२. वा० रा० ५।३।४१।
३. वा० रा० ५।११।३९।
४. वा० रा० ५।१।८।
५. वा० रा० ५।१५।५४।
६. वा० रा० ५।४२।३४।
७. वा० रा० ७।४९।१५ से २२ तक।
८. वा० रा० ५।१३।५५ से ६४ तक।
९. वा० रा० ५।१३।६३।
१०. मा० ४।३।

तुलसी ने हनुमान् को अन्य देवों का आराधक नहीं अपितु केवल अपने इष्टदेव राम का ही अनन्य उपासक दिखाया है क्योंकि तुलसी की दृष्टि में अन्य देवों की स्थिति निम्नांकित है ।

'देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस बिचारे'[1]

अतएव फिर, राम भक्त हनुमान् को, वे माया विवश देवों के आराधक कैसे दर्शा सकते थे । यह तुलसी के निजी सिद्धान्त के विरुद्ध था ।

रामायण तथा मानस में हनुमान् के चरित्र की अभिव्यक्ति में भी अन्तर है। रामायण में उनके चरित्र में मनोवैज्ञानिकता, यथार्थता एवं सांसारिकता की भी अभिव्यक्ति मिलती है जबकि मानस में उनका केवल आदर्श रूप ही चित्रित किया गया है। यथा रामायण में हनुमान् सीता से 'स्वपृष्ठारोहण' का प्रस्ताव रखते हैं और इस प्रकार वे सीता को अपनी पीठ पर चढ़ाकर लंका से स्वयं ले जाने का प्रस्ताव कर आत्मश्लाघा व्यक्त करते हैं ।[2] परन्तु मानस में उस प्रसंग को सेवक की अमर्यादा के भय से तुलसी नहीं लिखते और इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि

'अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई
प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ।।'[3]

रामायण में हनुमान् अपना शारीरिक एवं मानसिक चांचल्य मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रगट करते हैं[4] जबकि मानस में एक सन्त की नाईं शान्त एवं गम्भीर व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हैं । लंकिनी एवं विभीषण की सामान्योक्तियाँ[5] उनके इस व्यक्तित्व की साक्षिणी हैं ।

इतने विशाल व्यक्तित्व से युक्त होने पर भी विनम्रता, निरभिमानता, दीनता,[6]

---

१. विनयपत्रिका १०१।
२. वा० रा० ५।३७।२१ से २५ तक।
३. मा० ५।१५।३।
४. (१) वा० रा० ५।१०।५५।
   (२) हनुमान् के संकल्प विकल्प वा० रा० ५।१३।७, १५।
   (३) हनुमान् द्वारा मरने का निश्चय वा० रा० ५।१३।३८, ४४।
   (४) हनुमान् द्वारा विलाप वा० रा० ५।१६।१,२।
   (५) हनुमान् द्वारा सीता को त्रास देने वाली राक्षसियों को मार डालने का प्रस्ताव वा० रा० ६।११३।२८, ३५।
   (६) हनुमान् का डर कर रावण के पास जाना वा० रा० ५।१०।१२।
५. (१) मा० ५।४।
   (२) मा० ५।६।४।
६. (१) वा० रा० ५।३९।३९।
   (२) मा० ५।१।

वाणी की मनोहारिता,[१] कृतज्ञता[२] इत्यादि सत्वगुण उनकी महानता में स्वर्ण सुगंधि संयोग उपस्थित करते हैं।

अणिमा, महिमादि सिद्धियों से युक्त,[३] नैतिक, धार्मिक एवं तेजस्वी लक्षणों से समन्वित हनुमान् दोनों ग्रन्थों में ही देवतुल्य[४] माने गये। इतना ही नहीं राम ने स्वयं उनको इन्द्र, विष्णु एवं कुबेर से भी अधिक माना।

'न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥'[५]

(युद्धकाल में हनुमान् जी ने जैसे जैसे कार्य किये, वैसे न तो इन्द्र, न विष्णु और न कुबेर ही कर सकते हैं।)

समस्त वानर सेना के एकमात्र आधार,[७] सेना के प्रमुख एवं एकमात्र नेता,[६] तथा वानर सैन्य को सतत् प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने वाले[८] हनुमान् का अप्रतिम चरित्र वस्तुतः अनुकरणीय है।

'पुण्य पुंज पवन कुमार' दोनों ग्रन्थों में निष्काम उत्तम भक्त एवं दास्य धर्म के श्रेष्ठ अनुयायी, उज्ज्वल आदर्श हैं जिनके प्रति जगदाधार राम एवं जगदीश्वरी जानकी भी अपनी कृतज्ञतांजलि के भाव पुष्प ही अर्पित करती हैं।[९]

इस प्रकार दोनों महाकवियों के ही महावाक्यों में हनुमान् जी का चरित्र क्रमशः निम्नांकित रूपेण संश्लिष्ट रीति से उल्लिखित है।

रामायण में

'पराक्रमोत्साह मतिप्रताप, सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्य चातुर्य सुवीर्य धैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्तिलोके'[१०]

---

१. (१) वा० रा० ६।११३।२४।
   (२) मा० ५।१२।४।
२. वा० रा० ५।१।१०६।
३. वा० रा० ५।१।१५५।
४. वा० रा० ५।५४।३५, ३७, ५।४६।१३,१४।
५. वा० रा० ७।३५।८।
६. वा० रा० ४।६७।३५।
७. वा० रा० ६।७४।१८, २३।
८. वा० रा० ६।६२।१३, १९।
९. (१) राम 'एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यमिते कपे।
   शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥' वा० रा० ७।४०।२३।
   मा० ५।३१।५ से ७ तक।
   (२) सीता वा० रा० ६।११३।१९।
   मा० ६।१०६। छन्द।
१०. वा० रा० रा० ७।३६।६३।

(पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सौशील्य, माधुर्य, नीति, ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल एवं धैर्य में हनुमान् जी से बढ़कर इस लोक में और कौन है, अर्थात् कोई नहीं।)

मानस में गोस्वामी जी उनकी शूरता, बुद्धि एवं भक्ति आदि विशिष्टताओं का विचार अपनी वंदना में ही परिलक्षित करा देते हैं।

'महावीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना।।
प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आभार बसहिं राम सर चाप धर।।'[1]

श्री रामरतन भटनागर ने मानस में हनुमान् के चरित्र का आलोचनात्मक समाहार इस प्रकार किया है।

'निःस्वार्थ सेवा भाव और राम भक्ति, बुद्धिमत्ता, शौर्य, स्वामिभक्ति इन गुणों से हनुमान् का चरित्र विभूषित है। परन्तु शौर्य के वर्णन में अति प्रकृत कल्पनाओं को भी स्थान मिला है। राम की अलौकिता और उनकी भक्ति की महानता के द्वारा हनुमान् के प्रकृत कर्मों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। एक प्रकार से हनुमान्, का चरित्र दास्य भक्ति का प्रतीक है। राम जी की ओजस्विता और विवेक, भरत जी का वैराग्य और राम भक्ति, लक्ष्मण जी का शौर्य और सेवा रावण का पौरुष और प्रवणता, कुम्भर्ण का धैर्य, धड़क और निज का बुद्धिचातुर्य, अतुल बल और मनोजव, इन गुगों का समीकरण गोस्वामी जी के हनुमान् जी हैं।'[2]

दशरथ

रामायण में दशरथ का चरित्र मानवीय स्तर पर किया गया है जब कि मानस में उच्च आदर्श के स्तर पर आरुढ़ है। दोनों ग्रन्थों की प्रारम्भिक झांकी ही दशरथ के चरित्र पर व्यापक प्रकाश डालती है। रामायण में राजा दशरथ का परिचयात्मक विवरण निम्नांकित है।

'तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौर जानपद प्रियः।।
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी।
महर्षिकल्पी राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।
बलवान्निहतामित्रो मित्रवान्विजिनेन्द्रियः।
धनैश्च संचयैश्चान्येः शक्रवैश्रवणोपमः।।
यथा मनुर्महातेजालोकस्य परिरक्षिता।
तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता।
पालिता सा पुरिश्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती।।'[3]

---

१. मा० १।१६।१०,१।१७ सौ०।
२. तुलसी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ८१।
३. वा० रा० १।६। १,५।

अर्थात् 'उस अयोध्यापुरी में वेदवेत्ता, सब वस्तुओं का संग्रह करने वाला, आगे भविष्य का विचार करने में निपुण, अतितेजस्वी, पुर और जनपद निवासी जनों का प्रिय, इक्ष्वाकु के वंश में बड़ा बली, यज्ञ करने वाला, धर्मात्मा, सबको वश में करने वाला, महर्षियों के तुल्य, राजाओं में ऋषि रूप, तीनों लोकों में प्रसिद्ध अति बलिष्ठ, शत्रु नाशक, अच्छे मित्रों वाला, जितेन्द्रिय धन और अन्नादि के संग्रह में इन्द्र और कुबेर के तुल्य थे। जैसे वैवस्वत मनु लोक के रक्षक थे उसी प्रकार उस निवास करते हुये राजा दशरथ ने संसार का पालन किया। अमरावती का जैसे पालन किया था, उसी प्रकार सच्ची प्रतिज्ञा वाले राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी का पालन किया।'

इसी प्रकार मानस में दशरथ के चरित्र का सारतत्व एवं प्रारम्भिक परिचय कतिपय पंक्तियों में ही निहित कर दिया गया है।

'अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। वेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारंग पानी॥'[१]

रामायण तथा मानस में दशरथ के चरित्र के तीन प्रमुख अंगों का दृष्टिपात किया गया है।

(१) सत्य प्रेम
(२) पुत्र प्रेम
(३) कामुक प्रवृत्ति

दोनों में साम्य यह है कि सत्य प्रेम पुत्र प्रेम की अपेक्षाकृत कम प्रबल है परन्तु तुलसी में वह पुत्र प्रेम भक्ति की आधार शिला पर पूर्णतया अवलम्बित है। इसका सकारण उल्लेख मानस में किया गया है। मानस के दशरथ, कश्यप[२] एवं अन्य कल्प में स्वायंभुव मनु के अवतार हैं जिन्होने परात्पर ब्रह्म को ही अपने पुत्र रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा की।[३] उनके पुत्र प्रेम में ईश्वरीय ज्ञान अंतर्निहित है। इसका स्पष्ट दर्शन हमें तब होता है जब रामायण में दशरथ लौकिक वार्तालाप करते हैं।[४] वहीं मानस में वे अपने पुत्र में विषम परिस्थिति में भी तात्विक निरूपण करते हैं।

'सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं।
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥
औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥'[५]

---

१. मा० १।१८७।७,७।
२. मा० १।१८६।३,४।
३. मा० १।१४९। तथा ८।१४९।२।
४. वा० रा० २।३८ सर्ग।
५. मा० १।७६।६ से ७७ तक।

विषम परिस्थिति में ही नहीं जन्म से ही राम के प्रति उनकी भगवद्विषयक धारण विद्यमान है।

'दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुं ब्रह्मानन्द समाना ॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मम राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥'[१]

इतना ही नहीं जन्म जन्मान्तर में भी वे पुत्र राम के उपासक हैं। दशरथ रावण वध के पश्चात् रण प्रांगण में आकर वात्सल्य रसाप्लावित हो उठते हैं। अन्तर्यामी राम उनकी दृढ़ भावनानुसार दृढ़ ज्ञान प्रदान कर उन्हें भक्ति का परम अधिकारी मानते हैं।[२]

दशरथ समस्त मानस में राम के अनन्य उपासक हैं। उनकी आराधना में 'वत्सल भाव' प्रधान है। वे राम की पुत्र भाव से उपासना करते हैं क्योंकि दशरथ अपने पूर्व जन्म में मनु रूप में 'सुत विषइक तव पद रति होई' का वरदान प्राप्त कर चुके थे। उसी का व्यवहारात्मक रूप 'दशरथ' रूप में दर्शाया गया है। राम के अनन्योपासक दशरथ समय-समय पर गजानन की उपासना करना नहीं भूलते।[३] वे शंकर को भी आराध्य मानते हैं।[४]

रामायण में उनका याज्ञिक रूप ही सर्व प्रधान है।[५]

मानस की अपेक्षाकृत रामायण में दशरथ का राजनीतिज्ञ राजा का रूप अधिक प्रधान है। वे समय समय पर मन्त्रियों से परामर्श लेते हैं[६] उनकी सम्मति प्राप्त करने के हेतु अपने प्रस्ताव रखते हैं। वे स्वयं परम तेजस्वी राजाधिराज हैं।

'अथ तत्र सहासीनास्तदा दशरथं नृपम्।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भूमियाः
म्लेच्छाश्चार्याश्च ये चान्ये वन शैलान्त वासिनः
उपासां चक्रिरे सर्वे तं देवा वासवं यथा।
तेषां मध्ये स राजर्षिर्मरूतामिव वासवः।'[७]

(वहाँ उन्होंने दशरथ को बैठा देखा। चारों दिशाओं में राजा, आर्य, म्लेच्छ, वर्ना, पर्वतीय आदि सब राजा इस प्रकार उपासना कर रहे थे जैसे देवता इन्द्र की उपासना करते हैं और उनके मध्य में राजर्षि देवों में इन्द्र के समान शोभित थे।)

---

१. मा० १।१९२।३,५,६।

२. 'रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ॥
तातें उमा मोच्छ नहिं पायो। दशरथ भेद भगति मन लायो ॥'

मा० ६।१११।५,६।

३. मा० १।३०१, मा० १।३३८।८।

४. मा० २।४३।७ से २।४४ तक।

५. वा० रा० १।१२, १६।

६. वा० रा० १।१२।

७. वा० रा० २।३।२५। २७।

राजा दशरथ स्वयं कैकेयी से चक्रवर्ती सम्राट रूप का विवरण देते हैं।[1] राम से राजोचित पालन का उपदेश देते हैं[2] जिससे कि स्वयं उनके उच्च व्यक्तित्व का आभास होता है।

मानस में भी राज सभा का चित्रण उनके राजत्व की ओर संक्षिप्त प्रकाश डालता है।

'नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें।।'[3]

परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि रामायण में उनकी स्वतन्त्र कीर्ति है जबकि मानस में अन्य मर्यादाओं का भी निर्वाह करते हैं। दशरथ के 'त्रिभुवन तीनि काल जग माहि भूरि भाग' कहलाने का श्रेय राम को है।

सामाजिक क्षेत्र में उनकी कर्तव्य परायणता, व्यवहार कुशलता एवं शिष्टाचार दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। दशरथ गुरू एवं ब्राह्मणों को सर्वोपरि मान्यता देते हैं।[5] रामायण की अपेक्षाकृत मानस में दशरथ वशिष्ठ के प्रति अधिक श्रद्धालु हैं।[6] प्रत्येक कार्य गुरू की आज्ञा एवं प्रेरणा से सम्पादित होता है। विश्वामित्र की अभ्यर्चना उनके आतिथ्य धर्म का प्रतीक है।[2] दोनों ग्रन्थों में उनका अपने साथी जनक के प्रति अत्यन्त सरस व्यवहार वर्णित है।[3] वे अत्यन्त दानशील भी हैं।[4] वे पूर्ण कृतज्ञ हैं।[5]

---

१. वा० रा० २।१०।३६,३७।

२. 'भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः
काम क्रोध समुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च।
परोक्षया वर्तमानो वृत्या प्रत्यक्षया तथा
अमात्य प्रभृतीः सर्वाः प्रजाश्चैवानुरञ्जय।
कोष्ठागारायुधागारः कृत्वा संनिचयान्बहून्।
इष्टानुरक्त प्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम्।
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः।
तस्मात्पुत्र त्वामात्मानं नियम्यैव समाचर।।' वा० रा० २।३।४२, ४६।

३. मा० २।१।३।

४. 'मंगलमूल राम सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सब तासू।।' मा० २।१।५।

५. (१) वा० रा० १।२१।६। मा० १।१८८।३।
(२) ब्राह्मणों को आगे करके चलना वा० रा० १।६९।४। मा०।

१. (१) मा० १।२०७।८।
(२) मा० १।३०१।
(३) मा० २।५,६।

२. (१) वा० रा० १।१८।५०, ५५,५७,५८।
(२) मा० १।२०६।१, ४।

३. (१) वा० रा० १।६९।१४।
(२) मा० १।३३९।६।

४. [१] (१) वा० रा० १।१८।२३। (राम जन्म के समय) (शेष पृष्ठ ४७१)

इन विविध विशेषताओं के अतिरिक्त आप में मानव रूप अधिक प्रबल है। रामायण में उनका यह मानवत्व यथार्थ रूपेण चित्रित हुआ है। 'मानस' में उस पर भक्ति एवं मर्यादा का आवरण स्थित है। परन्तु मानवीय मनोभावों का दोनों काव्य ग्रन्थों में विवरण दिया गया है।

'सुत, वित लोक ईषना तीनी' में दशरथ प्रबल सुत 'ईषना' से युक्त हैं। रामायण में वे पुत्र के अभाव में विलाप करते हैं[1] तो मानस में ग्लानि।[2]

अपने सभी पुत्रों में राम उनको सर्वाधिक प्रिय हैं।[3] रामायण में वे राम को राज्याभिषेक देते ससय शीघ्रता करते हैं। यहाँ तक कि आत्मज भरत की अनुपस्थिति को वे अपनी कार्यसिद्धि में सहायक मानते हैं। इस प्रकार अपने ही अन्य पुत्र भरत पर वे संदेह करते हैं।[4] इसी भय से वे समस्त मांडलिक राजाओं को उस शुभावसर के आयोजनार्थ निमंत्रित करते हैं परन्तु कैकय नरेश एवं विदेहाधिपति को निमन्त्रण भी नहीं भेजते कि कहीं वे भरत का पक्षपात न करें।

यह है उनके दुर्बल संशय शील मानव हृदय की झाँकी। इसी प्रकार उनकी दूसरी प्रमुख दुर्बलता, उनकी कामुक प्रवृत्ति, दोनों ग्रन्थों में अभिव्यक्त हुई है।

(४७१ का शेष)

(२) वा० रा० १।७२।२१, २३। (**राम विवाह के समय**)

(३) वा० रा० १।१८।४९।

[२] (१) मा० १।१९३।

(२) मा० १।२२९।७।

(३) मा० १।३३०।१, ६।

(४) मा० १।३३८।६।

(५) मा० १।३५२।४, ६।

५. (१) वा० रा० ।

(२) मा० १।२२९।६।, मा० १।३३१।, मा० १।३५०।७,८।

१. 'मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वे सुखम्।'

।वा० रा० १।८।७ तथा वा० रा० १।१२।८।

२. 'एक बार भूपति मन माहीं। भइ ग्लानि मोरे सुत नाहीं।'

मा० १।१८८।१।

३. (१) वा० रा० १।२०।११,१२।

(२) मा० १।२०७।८।

(३) मा० १।१९०।१७।

४. वा० रा० २।४।२२, २७।

रामायण में इस दुर्बलता से अभिशप्त दशरथ[1] की कटु आलोचना अनेक पात्रों ने की है। स्वयं दशरथ भी इसे स्वीकार करते हैं। मानस में भी गोस्वामी जी ने बड़े मर्यादित ढंग से इसकी आलोचना की है।[2]

इसी भाँति रामायण में इनकी अन्य दुर्बलताओं पर भी दृष्टिपात किया गया है। जैसे कैकेयी के पैर छूना[3], कैकेयी की अपेक्षाकृत कौशल्या के साथ दुर्व्यवहार करना[4], तीन पटरानियों के अतिरिक्त अनेक रानियाँ रखना[5] इत्यादि।

इसी प्रकार जिन प्रसंगों में रामायणकार ने दशरथ की मनोवैज्ञानिक दशाओं एवं मनोभावों का यथार्थ चित्रण किया है वहाँ पर गोस्वामी जी के दशरथ शील, नियम, सत्य एवं धैर्य की प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ते हैं। परन्तु रामायण में उनका विक्षिप्त, क्षुब्ध रूप एवं अस्त-व्यस्त स्थिति अत्यन्त मार्मिक, स्वाभाविक एवं यथार्थ रूपेण अंकित है।[6] परन्तु मानस में वहाँ भी 'जीवनु मोर राम बिनु नाहीं' एवं 'जीवन राम दरस आधीना' पुकार-पुकार कर प्राणदान की याचना करते हैं।

'राम बिरह जनि मारसि मोही'[7]

तदनन्तर रामायण में जहाँ कैकेयी के प्रति दशरथ अपने हृदय की भर्त्सना से फुफकारते हैं, शाप देते हैं, कटु वचन कहते हैं[8] वहीं मानस के दशरथ ग्लानि के गर्त में निमग्न होकर केवल इतना ही कह पाते हैं।

'तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ।।'[9]

परन्तु इस भीषण कांड का आधार है पुत्र प्रेम के साथ साथ उनका सत्य प्रेम,[10] जो कि प्रथम की अपेक्षाकृत कम वर्णित है। परन्तु उनके जीवन का संक्षिप्त सार ही यह है कि अपनी स्त्री प्रेम एवं पुत्र प्रेम दुर्बलता एवं सत्य निष्ठा की प्रबल वेगमयी धाराओं में

---

१. (१) वा० रा० २।३४।३६,३७। (दशरथ)
   (२) वा० रा० २।१२।८३। (दशरथ)
२. (१) मा० २।२४।३। से २५।८ तक।
३. वा० रा० २।१२।१११, ११२, २।१३।१।
४. वा० रा० २।१२।६७,७०।
५. वा० रा० १।७७।१०।
६. वा० रा० २।१३।२६, २।१८।३, २।१९।१७, २।३४।६, २।१४।२४। (२) ४२।३,४।
७. मा० २।३३।७।
८. (१) कैकेयी को शाप। वा० रा० २।३८।११, २ ४२।२१।
   (२) वा० रा० २।११।७,१०।
   (३) कैकेयी को अपशब्द वा० रा० २।१२।६०,७६,७७।
   (४) वा० रा० २।४२।६,१०।
९. मा० २।३५।५।
१०. (१) वा० रा० २।२१।९।
    (२) मा० २।२७।४,५।
    (३) मा० २।१७।२।५,८।

उन्हें बहना ही पड़ता है। स्त्री परवशता एवं पुत्र मोह उनका प्राण घातक बन ही जाता है तथा वे अत्यन्त भीषण संघर्षों के मध्य अन्धड़ के वट वृक्ष की नाई धराशायी हो जाते हैं परन्तु गोस्वामी जी उनकी 'स्त्रैण प्रवृत्ति' को भवितव्यता के आवरण से ढक मर, सत्य-निष्ठा और पुत्र प्रेम दोनों का पूर्ण निर्वाह कर[1] उन्हें वन्दनीय उच्च आदर्श पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

'बँदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥'[2]

सीता

वाल्मीकि ने सीता का पुत्रीवत् पालन किया था, गोस्वामी जी की सीता उनकी आराध्या अम्बा हैं अतएव दोनो के चित्रांकण में भी तथैव भावों का निरूपण किया गया है। पिता को अपनी पुत्री के गुण दोष, दोनों की सम्यक् आलोचना करने का पूर्णाधिकार है परन्तु पुत्र अथवा सेवक अपनी माता एवं स्वामिनी के दोषों की ओर ध्यान नहीं देता है। फिर मर्यादावादी तुलसी इस मर्यादा का उल्लंघन कैसे कर सकते थे। अतएव जहाँ वाल्मीकि ने यथार्थ चित्रण किया है वहीं तुलसी ने उसे परिष्कृत कर आदर्श एवं मर्यादित चित्रण ही किया है।

सीता के जीवन का मूलाधार उनका अटल पातिव्रत धर्म है जिसका दोनों ग्रन्थों में व्यापक उल्लेख किया गया है। रामायण में इसके कुछ निदर्शन इस प्रकार हैं।

सीता के जीवन का एकमात्र आदर्श है।

'इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा'[3]

(स्त्रियों की गति एक पति ही है चाहे इस लोक में हो चाहे परलोक में।)

इसी आधार पर वे वनगमन प्रसंग में राम से दुर्गम वन में भी साथ जाने का आग्रह करती हैं तथा उसका वे तार्किक ढंग से समर्थन भी करती हैं।

'भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि'[4]

अर्थात् 'स्त्री पुरुष की अर्द्धांगी होने से अपने पति के भाग्य का भोग करती है इसलिये मुझे भी आप वन चलने की आज्ञा दीजिये।'

उनका वन गमन का ध्येय एक पति सेवा है।[5] राम उनके लिए देवता हैं,

---

१. 'राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥' मा० २।२६३।६।
२. मा० १।१६ सो०।
३. वा० रा० २।२७।६।
४. वा० रा० २।२७।५।
५. 'कृतज्ञणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव
वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते।' वा० रा० २।२९।१५।

एकमात्र गति हैं, इस लोक परलोक के स्वामी हैं।[१] वे अपने पति पर ही गर्वान्विता हैं[२], पति ही उनके वास्तविक प्राण हैं।[३] वे अपने पति के सुख दुःख की समभागिनी हैं। वे स्वयं अपने को सावित्री के समान आज्ञाकारिणी एवं पतिव्रता मानने का आत्मगौरव रखती हैं।[४] प्रत्येक स्थिति में राम का सहयोग उन्हें वांछित है। भले ही वह वनवास हो, अथवा स्वर्गवास।[५]

नारी धर्म की उन्हें सम्यक् शिक्षा प्राप्त है। माता पिता[६], कौशल्या[७] एवं अनुसूयादि[८] योग्य गुरुजनों की शिक्षा द्वारा उनकी यह शिक्षा दृढ़तम होती जाती है। इसका व्यावहारिक प्रत्यक्षीकरण उनके वन्य जीवन में पूर्णरूपेण निखर उठता है। अशोक वाटिका में स्थित जानकी को हनुमान् केवल उनके पतिव्रत धर्म के ही कारण पहचान लेते हैं जबकि वे जानकी को राम का अखंड चिन्तन करता हुआ पाते हैं।

'एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति
इत्येवमर्थं कपिरन्वेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः।'[९]

'एक मन होकर राम का ही चिन्तन करती हैं, इस प्रकार हनुमान् ने देख कर निश्चय कर लिया कि यह सीता ही हैं।'

सीता के पातिव्रत धर्म का ज्वलन्त उदाहरण वह दृश्य है जहाँ विषम परिस्थिति में भी उनकी सुरक्षा का आलबाल भी उनका सतीत्व है। चतुर्दिक् विकृतानना राक्षसियों के मध्य निर्भीक सीता स्वयं अपनी दृढ़ता का निदर्शन करती हैं। वे सती शिरोमणियों को ही अपना आदर्श मानती हैं।

'दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरूः
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला।
यथा शची महा भागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा

---

१. 'भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम्
प्रेत्याभावे हि कल्याणः संगमो मे सदात्वया।
इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल
अद्भिदत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा।' वा० रा० २।१९।१६,१८।

२. 'न हि त्वत्समीप स्थामपि शक्रोऽपि राघव
सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा।' वा० रा० २।२९।६।

३. 'पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम्
काममेवंविधं राम त्वया मम निर्दशितम्।' वा० रा० २।२९।७।

४. वा० रा० २।२९।१९, २।३०।६।

५. वा० रा० २।३९।१०।

६. वा० रा० २।३९।२७,३१।

७. वा० रा० २।३९।२२,२७।

८. वा० रा० २।११८।२३,२९।

९. वा० रा० ५।

सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ।
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।[1]

हनुमान् को लंकादहन के पश्चात् अचानक सीता के अग्नि दाह की आशंका हो उठती है परन्तु उन्हें फिर तुरन्त सीता के तप, सत्य एवं पातिव्रत धर्म का ध्यान आ जाता है जिसमें अग्नि को भी दहन करने का सामर्थ्य है ।[2] हनुमान् को यह दृढ़ विश्वास है कि उनका तेज एवं चरित्र स्वयं उनका रक्षक कवच है ।[3]

उनकी इस अनन्यनिष्ठा का प्रमाण वे स्वयं अग्नि परीक्षा के प्रसंग में देती हैं उन्हें अपने शुद्धाचरण एवं राम के प्रति अनन्य भावना का गौरव है, अटल आत्म विश्वास है जिसके दृढ़ अवलम्ब से ही वे अग्नि को साक्षी बनाकर उनसे दाहक के स्थान पर रक्षक बनने की प्रार्थना करती हैं ।

'यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।।
यथा मां शुद्ध चारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।।'[4]

स्वयं अग्निदेव साकार रूप में सीता की पतिपरायणता की साक्षी देते हैं ।

'एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्धया न चक्षुषा
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती
रुद्धा चान्तः पुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः ।'[5]

सर्वदर्शी राम स्वयं भी ओजपूर्ण स्वर से अपने प्रति सीता की अनन्यता को स्वीकार करते हैं ।

---

१. वा० रा० ५।२४।१० से १३ तक ।
२. 'तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ।।' वा० रा० ५।५५।२८।
३. 'अथवा चारुसर्वांगी रक्षिता स्वेन तेजसा
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते
न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः
स्व चरित्राभिगुप्ता तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ।' वा० रा० ५।५५।२२,२३।
४. वा० रा० ५।११६।२५,२६।
५. वा० रा० ६।११८।५,८।

'अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।[१]

प्रजापवाद से प्रेरित राम द्वारा परित्यक्ता सीता उस स्थिति में भी राम में अनन्य भक्ति ही अर्पित करती हैं तथा अपने पति के अपवाद पर अपना परित्याग भी सहर्ष स्वीकार करती हैं और कहती हैं ।

'मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गति:'[२]

'स्व' की उपेक्षा कर अपने पति के कर्मक्षेत्र में सहयोग देना ही वे अपना परम धर्म मानती हैं क्योंकि पति उनके लिये सर्वस्व है ।

'यथापवाद: पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्या: पतिर्बन्धु: पतिर्गुरू: ।।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तु: कार्यं विशेषत: ।[३]

यहीं तक नहीं रामायण में तो सीता का वह मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत है जहाँ वे अपनी अनन्यता एवं पातिव्रत धर्म की कसौटी पर खरी उतरती हुई अपने को बलिदान तक कर देती हैं । अन्तिम क्षण तक उनके मुख से यही ओजपूर्ण बचनावली नि:सृत होती हुई गुंजरित होती है ।

'यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।।'[४]

रामायण की ही भाँति मानस की सीता भी पातिव्रत धर्म की अखंड ज्योति हैं । इतना ही नहीं भक्त तुलसी ने अपनी जगदम्बा की ही भाँति उनके नाम को भी पतिव्रता शिरोमणि अनसूया द्वारा उस मार्ग का प्रेरक कहलाया है ।

'सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं'[५]

मानस में उनके चरित्र की एक विशेषता और है । तुलसी के भक्त व्यक्तित्व का भी प्रभाव सीता के चित्रण पर पड़ा है । सीता ने पत्नी सुलभ रूप के साथ-साथ राम की अनन्य भक्ता के गुणों का भी समावेश किया गया है । इस स्वर्ण-सुगंधि-संयोग की पृष्ठ-भूमि ही उसी ढंग से चित्रित की गई है । तुलसी ने सीता के प्रेम में 'अलौकिक प्रीति' एवं 'प्रीति पुरातन' की अखंडता का निदर्शन किया है जिसे कि सूक्ष्म पारखी तुलसी ने ही लखा और

---

१. वा० रा० ६।११८।१८,१९।
२. वा० रा० ७।४८।१४।
३. वा० रा० ७।४८।१७,१८।
४. वा० रा० ७।९७।१४ से १६ तक।
५. मा० ३।५ सो० ।

किसी ने नहीं। इसी पुरातन एवं अलौकिक प्रेम से ही[१] विवाह के पूर्व भी उनकी प्रीति मर्यादावादी तुलसी ने भी पुनीत ही कहा है।[२]

उनका यह भक्तारूप मानस में आद्योपान्त वर्णित है। वे निरन्तर राम के चरण कमलों के ध्यान में लवलीन रहा करती हैं।

'सिय मन राम चरन मन लागा।'[३]

तथा 'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित प्राण जाहिं केहि बाट॥'[४]

प्रतिपल वे विषम परिस्थिति में भी राम गुण जप एवं स्मरण द्वारा आत्मरक्षा करती हैं।[५] वही उनका एकमात्र कवच है।

आर्त भक्त के समान वे विलाप करती हुई प्रभु कृपा की याचिका हैं।

'हा जग एक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक॥'[६]

उनका सन्देश एक विह्वल आर्त शरणागत भक्त से किसी भी प्रकार कम नहीं।

'अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥'[७]
'दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'[८]

यह अन्तिम पंक्ति तो भक्तों की जीवनाधार बन गई है।

इस रूप के साथ-साथ उनके पातिव्रत रूप की अभिन्न झाँकी भी दर्शनीय है।

'प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहं भानु बिहाई। कहं चंद्रिका चंद्र तजि जाई॥'[९]

उनका परमधन राम के चरण कमल रज ही हैं जिसको वे अवध एवं जनकपुर के अतुल वैभव विलास के समकक्ष कहीं अधिक वरीयता प्रदान करती हैं।

---

१. 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' मा० १।२२८।८।
२. 'सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।' मा० १।२२९।
३. मा० २।७७।५।
४. मा० ५।३०।
५. (१) 'कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी॥' मा० ५।७।८।
(२) 'सुमिरि अवधपति परम सनेही।' मा० ५।८।६।
६. मा० ३।२८।१,२।
७. मा० ५।३०।३,५।
८. मा० ५।२६।४।
९. मा० २।९६।५,६।

'बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुं सुखद न लागा ॥'[१]

सीता के स्वरूप की राम के साथ अखंड अभिन्नता का तात्विक निरूपण गोस्वामी जी ने वाल्मीक द्वारा कराया है।

'श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की ॥'[२]

माया सदैव ब्रह्म के आधीना है उनकी अभिन्न रूपा एवं आश्रिता है, उन्हीं की अवतार स्वरूपा राम भक्ता जानकी हैं।

'उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता ॥
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितवन सोइ।
राम पदारबिन्द रति करति सुभावहि खोइ ॥'[३]

वाल्मीकि एवं मर्यादावादी तुलसी ने सीता का चित्रण सूर की राधा की भांति नहीं किया है अपितु उनमें धार्मिक एवं सामाजिक तत्व भी प्रदर्शित किये हैं।

दोनों ग्रन्थों में वे धर्मज्ञा हैं। रामायण में अनेक स्थलों पर उनका धार्मिक स्वरूप उल्लिखित है।

वे नित्यप्रति देवपूजन करती हैं।[४] अपने इष्टजनों की कल्याणकामनार्थ वे वन में गंगा[५] एवं यमुना[६] का पूजन करती हैं। एक सुगृहिणी की भाँति पंचमहायज्ञ करती हैं।[७] गुरुजनों एव वृद्धजनों की पूजा करना उनका आदर्श है अतएव अनसूया का वे पूजन करती हैं।[८] बटरूपधारी रावण का आतिथ्य सत्कार उनके अतिथि धर्म का निर्णायक है।[९] वे परमदानशीला हैं।[१०]

मानस में भी (कवि तुलसी के व्यक्तित्व के अनुसार) सीता प्रारम्भ से ही शंकर,[११] पार्वती[१२] गणेश[१३] की उपासिका दिखाई गई हैं। मार्ग में गंगा पूजनादि उनकी धार्मिक

---

१. मा० २।९७।६।
२. मा० २।१२५ (छन्द)
३. मा० ७।२४।
४. वा० रा० २।२६।४।, वा० रा० ७।४६।१८।
५. वा० रा० २।५२।८२,९१।
६. वा० रा० २।५५।२०,२१।
७. वा० रा० २।९६।३६ ३७। (भूतबलि)
८. वा० रा० २।११९।२२।
९. वा० रा० ३।४६।३३।३६।
१०. वा० रा० २।३०।४६, २।३३।
११. मा० १।२५६।५, ६, ७, ८।
१२. मा० १।२२७।२, ६, २३४।४।
१३. मा० १।२५६।६।

निष्ठा के प्रमाण हैं ।[१] वट छाया पर वेदिका निर्माण तथा तुलसी वृक्षारोपण भी उनकी धार्मिक प्रवृत्ति का निरूपण है ।[२]

रामायण में उनके धार्मिक व्यक्तित्व की ही भाँति सामाजिक विशेषताएँ भी उनमें अत्यधिक महान् हैं ।

वे सब प्रकार से रीतियों से भिज्ञ हैं । कुलरीति,[३] राजनीति,[४] नीति[५] के सभी तत्वों का उन्हें सम्यक ज्ञान है जिसकी सराहना स्वयं राम भी करते हैं ।[६] यावज्जीवन वे कर्त्तव्यपरायणा एवं व्यवहार कुशल राजवधू हैं इसका प्रत्यक्षीकरण हमें अवध नारियों के सीता के प्रति अनुरक्ति के प्रसंग में होता है ।[७]

वे नारी सुलभ लज्जा से समन्वित,[८] सुशीलता[९] एवं मृदुलता की प्रतीकस्वरूपा हैं । जिसकी भूरि भूरि सराहना राजा दशरथ भी करते हैं[१०] वे त्यागमयी रमणी हैं ।[११] एक वीर क्षत्राणी हैं, अपने वर्णानुकूल राम को वन प्रदेश में उनका क्षत्रिय धर्म स्मरण कराती हैं ।

'अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ।
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्
धनुषा कार्यमेतावदार्ता नामभिरक्षणम् ।'[१२]

(हे वीर ! निरपराध प्राणियों का मारना मैं पसन्द नहीं करती । वीर क्षत्रियों को वन में रहने वाले आर्त प्राणियों का रक्षण मात्र ही धनुष द्वारा कर्त्तव्य कर्म है, हिंसन करना नहीं) ।

वे परमविवेकशीला हैं जन्मजात बुद्धि कौशल के साथ साथ समय समय पर सदुपदेश ग्रहण की प्रवृत्ति ने उनकी प्रज्ञा को विशेष कान्ति प्रदान की है ।[१३] वे परम तार्किक भी हैं परन्तु सुतर्क करती हैं कुतर्क नहीं । अनेक अवसरों पर राम को उनके तर्कों को निर्विरोध स्वीकार करना पड़ता है ।[१४]

---

१. मा० २।१०२।२, ३ ।
२. मा० २।२३६।७, ८ ।
३. वा० रा० २।२६।१०, १५ ।
४ वा० रा० २।२६।४ ।
५. वा० रा० ३।९।२ से ४ । वा० रा० ५।२१।६, १० । वा० रा० ६।११३।१८, २० ।
६. वा० रा० २।३०।४१ ।
७. वा० रा० २।३७।१६, १९ ।
८, वा० रा० २।५५।१७ ।
९. वा० रा० ३।९।२४ ।
१०. वा० रा० २।३८।८ ।
११. वा० रा० ३।४।३ ।
१२. वा० रा० ३।९।२५, २६ ।
१३. वा० रा० २।११९ ।
१४. वा० रा० ६।११६।५ १०, ५।३४।२५ । २।२७।४, ६ ।

उनमें कुछ विशिष्ट नैतिक गुणों का भी समावेश है। वे सच्चरित्र शीला हैं,[१] दृढसंकल्पा हैं।[२] वे स्वयं दृढ़ साहसी,[३] निर्भीक हृदया[४] एवं गौरवशीला[५] हैं। वे भाग्य वादिनी भी हैं[६] तथा शक्तिशालिनी भी।[७] वे सुव्रता एवं सुधर्मचारिणी हैं।[८] उनमें अटूट धैर्य एवं स्थिर बुद्धि है।[९] वे कर्म मीमांसक हैं।[१०] परम त्यागमयी हैं।[११] राग द्वेष से रहित शरणागतवत्सलता से भी अभिप्रेत हैं।[१२] वे जितेन्द्रिय हैं[१३] तथा परम तेजस्विनी भी।[१४]

मानस में भी सीता के इन विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया गया है परन्तु रामायण की अपेक्षाकृत कम क्योंकि वहाँ तो वे प्रभु की अनन्त माया का अवतार हैं उनकी अनन्तता का वर्णन क्यों कर किया जा सकता है। परन्तु फिर भी प्रसंगवश उनके गुणों का निदर्शन किया गया है।

पुष्पवाटिका, वन गमन, वन ग्रामवधू प्रसंग के दृश्यों में उनकी लज्जाशीलता अत्यन्त शोभनीय है।[१५] वे अत्यन्त मर्यादानुरागिणी हैं,[१६] परम संतोषशीला हैं,[१७] सेवा धर्म परायणा हैं,[१७] एवं नम्रता उनके सहज अलंकार हैं,[१८] पावन प्रेम की आश्रय स्वरूपा

---

१. वा० रा० ५।५५।२८।
२. वा० रा० २।३७।३७।
३. वा० रा० ३।५६।२।
४. वा० रा० ५।२३।८, २५।
५. वा० रा० ३।५६।२२।
६. वा० रा० ६।११३।३८।
७. वा० रा० ५।२२।२०।
८. वा० रा० ७।९६।१५।
९. वा० रा० ५।२५।३।
१०. वा० रा० ३।५६।१६।
११. राम लक्ष्मण के स्थान पर अपने को विराध के समर्पण करना।
    वा० रा० ३।४।३।
१२. वा० रा० ६।२७।४८।
१३. वा० रा० २।२९।१२।
१४. वा० रा० ७।४९।३, ४, २२।
१५. १ मा० १।२३३।३।
    २ मा० २।५७ से ५७।६ तक।
    ३ मा० २।११६।३, ७।
१६. मा० २।५७, मा० ३।६।४।
१७. मा० २।१३९।१ से २।१४० तक।
१८. १ मा० २।२५१।२, ४।
    २ मा० ७।२३।४ से ८ तक।

हैं,[1] अत्यन्त निर्भीक हैं,[2] मन क्रम वचन से पुनीत हैं,[3] जड़ चेतन उनके प्रम के वशीभूत है ।[4]

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में सीता के चरित्र में एक विचित्रता दर्शाई गई है वह है उनकी अलौकिक महिमा जिसे केवल मायाधीश राम ही समझ सके ।

'जानी सियं बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ।।
हृदयं सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं । भूप पहुनई करन पठाई ।।
बिभव भेद कछु कोउ न जाना । सकल जनक कर करहिं बखाना ।।
सिय महिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदयं हेतु पहिचानी ।।'[5]

इसी प्रकार चित्रकूट में अनेक रूप से सबकी एक साथ सेवा करने का प्रसंग भी उनकी अलौकिक महिमा का दिग्दर्शक है ।[6]

पक्षि-हृदय की वेदना से प्रेरित वाल्मीकि ने तुलसी की अपेक्षाकृत सीता के चरित्र के अधिक मार्मिक, हृदयस्पर्शी, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक प्रसंग चित्रित किये हैं । तुलसी उन प्रसंगों के प्रति या तो मौन हो गये हैं या उन्हें मर्यादा के आवरण से आवृत कर दिया है । इनमें से कुछ प्रसंग अवलोकनीय हैं ।

वन गमन के समय रामायण में सीता का मानवीया रूप यथार्थत: अंकित हुआ है । वन गमन का समाचार सुनते ही वे विलाप करने लगीं[7] क्योंकि स्वयं उन्हें पद लालसा थी ।[8] सीता यह समाचार सुनकर विह्वल हो उठीं । राम से वन गमन के लिए आग्रह करने लगीं । साधारण आग्रह ही नहीं, वे धमकियाँ भी देने लगीं ।

'यदि मां दु:खितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाह्यास्थास्ये मृत्युकारणात् ।'[9]

(यदि मुझ दु:खिनी को वन नहीं ले जाना चाहते हैं तो मैं विष खाकर या अग्नि में गिर कर या जल में डूबकर प्राण त्याग कर दूंगी)

---

१. (१) मा० २।२८६।७ ।
   (२) मा० २।६५।६ ।
२. मा० २।२८५।४ ।
३. मा० ५।८।७ ।
४. मा० ६।१०८ ।
५. मा० १।३३७।१, ३ ।
६. मा० १।३०५।७, ८ तथा १।३०६।२, ३ ।
७. मा० २।२५।१२,४।
८. वा० रा० २।२६।१९, २।२९।२३।
९. वा० रा० २।२६।३।   वा० रा० २।२९।२१।

शोकावेग से पीड़िता सीता राम के प्रति कटूक्तियों को भी कह जाती हैं।[१] शोक सन्तप्त सीता वियोग का स्मरण करते ही उच्च स्वर से क्रन्दन करने लग जाती हैं। यहाँ तक कि वे संज्ञारहित सी हो जाती हैं।[२] कैकेयी द्वारा दिये हुये वल्कल वस्त्रों को देखकर कम्पित हो विलाप करने लगती हैं।[३]

इसी प्रकार चित्रकूट में सभी अवधवासियों एवं साधुओं को विदा देते समय भी वे शोक परिप्लावित हो अश्रुरस-सिक्त हो जाती हैं।[४]

उनकी करुणा 'हरण प्रसंग' में अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय विदारक है।[५] अशोक-वाटिका में स्थित जानकी की वियोग व्यथा अत्यन्त हृदय द्रावक है। वाल्मीकि ने उनकी इस करुण दशा का चित्रण अत्यन्त विशद एवं हृदयस्पर्शी किया है।[६] वे वहाँ भी रावण से धमकायी जाने के पश्चात् वन में परित्यक्त कन्यावत् विलाप करती हैं।[७]

इन सभी दृश्यों में सबसे अधिक मार्मिक दृश्य सीता का पृथ्वी प्रवेश है[८] जिसने पाठकों एवं अवधपुर वासियों को ही द्रवीभूत एवं मर्माहत नहीं किया अपितु अत्यन्त सहन शीला पृथ्वी का हृदय भी विदीर्ण हो उठा और वाल्मीकि की करुणा उमड़ पड़ी।

मानस मे सीता का रूप अत्यन्त संयत, मर्यादित, धीर एवं गम्भीर है। वन गमन के समाचार से वे दुःखित नहीं हुई, वरंच वे राम के वियोग की आशंका से व्याकुल हो उठीं। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को वे अन्दर ही अन्दर सीमित रखती हैं।[९] राम द्वारा वन के भीषण कष्टों का श्रवण कर वे अत्यन्त नम्रता से कौशल्या से क्षमा याचना कर मर्यादित रीति से अपनी अनन्यता एवं सेवापरायणता ही व्यक्त करती हैं।[१०]

अशोक वाटिका में उनका भक्ता रूप ही गोस्वामी जी ने चित्रित किया है अतएव वहाँ विलाप के स्थान पर 'प्रभु-स्मरण' को दृढ़ाधार माना है।

'सीता परित्याग' का प्रसंग गोस्वामी जी के सिद्धान्त के प्रतिकूल था। जिसका विवरण दिया जा चुका है। अतएव वाल्मीकि के उस मार्मिक दृश्य का मानस में कोई स्थान ही नहीं।

---

१. वा० रा० २।२९।३।, वा० रा० २।३०।५, ८।
२. वा० रा० २।३०।२२,२५।
३. वा० रा० २।३७।९,११।
४. वा० रा० २।१०५।२२।
५. (१) वा० रा० ३।४५।३७, ३८।
   (२) ।वा० रा० ३।५२।७।
६. वा० रा० ५।१९।२ २२।
७. वा० रा० ५।२८।२।
८. वा० रा० ७। । ।
९. मा० २।५७।३, ४।
१०. मा० २।६३।६ से २।६७ तक।

सीता के चरित्र चित्रण में 'दोष-दर्शन' का विवादग्रस्त प्रसंग 'मारीच वध' के समय का है।

वाल्मीकि रामायण में सीता का अत्यन्त उग्र, चपल, आतुर एवं कटुभाषिणी रूप दर्शाया गया है।[1] जब कि मानस के उस प्रसंग में भी गोस्वामी जी ने सीता में दोष दर्शन की आशंका के भय से मर्यादित आवरण में केवल संकेत मात्र कर दिया।

'मरम बचन जब सीता बोला' और फिर तुरन्त उसको भी 'हरि प्रेरणा' के आवरण से आवृत कर दिया।[2]

इस प्रसंग में रामायण का चरित्रांकण अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक एवं न्याय संगत बन पड़ा है। अपने एक पात्र आश्रय पाम को संकटग्रस्त देख उनका आतुर एवं अस्त-व्यस्त हो जाना स्वाभाविक था और फिर 'रहत न आरत के चित चेतू' के अनुसार उस भीषण संकटमयी परिस्थिति में उनका कटु भाषण करना पूर्णत: यथार्थ ही प्रतीत होता है।

इसी प्रकार 'सीता हरण प्रसंग' में सीता जी रावण के प्रति क्रोधावेश से उबल पड़ीं और उसे ललकारने लगीं। यह क्रोधोद्गार उनकी क्रोधी प्रकृति को नहीं अपितु समयानुकूल साहसी एवं वीर निर्भीक क्षत्राणी रूप को प्रमाणित करता है।

रामायण के इस क्रोधमय प्रसंग की अपेक्षाकृत गोस्वामी जी ने यहाँ भी सीता द्वारा राम की ही दुहाई देते हुए वर्णन करना उपयुक्त समझा है।

रामायण की सीता भी आदर्शमयी होने पर भी मानस की अलौकिक शक्तिरूपिणी सीता से कहीं अधिक मानवीय स्तर पर होने के कारण हमारे सन्निकट हैं। उसके कतिपय उद्धरण निम्नांकित हैं।

अपना अहित करने वाली कैकेयी के प्रति वे क्षोभ प्रकट किये बिना नहीं रह सकीं।

> हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह।
> ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः।'[3]

(खेद है कि अब बान्धवों सहित कैकेयी सफल मनोरथ हो जायेगी जो कि धर्म की कामना वाले यशस्वी राम की धर्मपत्नी में हरी जाती हूँ)

सत्पथावलंबिनी सींता रामायण में असत्य का भी प्रयोग करती हैं। कवि ने जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया है अतएव परिस्थिति के अनुसार सीता द्वारा हनुमान् के विषय में असत्य भाषण भी करवाया है।

अशोक वाटिका विध्वंस करने के उपरान्त पर्वत तुल्य अतिकाय वानर को देखकर

---

१. वा० रा० ३।४५।२१ २७।

२. मा० ३।२७।५।

३. वा० रा० ३।४९।२९।

भयभीत राक्षसियों ने सीता से जिज्ञासा प्रकट की कि 'यह वानर कौन है ?' क्यों यहाँ आया है, तथा तुम्हारे साथ इसने क्यों बातचीत की है ?' तब सीता उत्तर देती हैं ।

'रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम
यूयमेवास्य जानीत यो यं यद्वा करिष्यति ।
अहिरेव अहे: पादान्विजानाति न संशय:
अहमप्यति भीतास्मि नैव जानामि कोऽन्वयम्
वेद्मि राक्षसमेवेनं कामरूपिणमागतम् ।'[1]

भीम रूप राक्षसों के जानने में मेरी क्या गति है ? तुम्हीं जानो कि यह कौन है और क्या करेगा ? सर्प ही सर्प के पैर जान सकता है । मैं भी इससे भयभीत हूँ, मैं इसे नहीं जानती, यह भी कोई राक्षस यथेच्छ रूप धर कर यहाँ आया है ।

इस प्रसंग में सीता का असत्य भाषण ही राजनीति, धर्मनीति के अनुकूल[2] एवं मनोवैज्ञानिक था इसीलिये महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें इस प्रसंग में भी 'साध्वी'[3] शब्द से ही विभूषित किया है ।

गोस्वामी जी का चित्रण आदर्श धरातल पर है अतएव ऐसे यथार्थ की ओर न तो उनकी प्रवृत्ति ही रही और न उन्होंने ऐसे प्रसंगों को अपने काव्य में स्थान ही दिया ।

इसी प्रकार का सजीव एवं मार्मिक दृश्य सीता की अग्नि परीक्षा का है । उस प्रसंग में महर्षि ने सीता का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक विवशा, तर्कशीला एवं आतुर रूप में किया है । वे राम के कटु वचनों का प्रतिरोध करती हैं, उन्हें सामान्य मानव मानती हैं, अपने चरित्र के प्रति जागृत राम की प्रकट की हुई आशंकाओं का प्रतिवाद करती हैं, अपने अभिजात पर गर्व करती हैं तथा राम को कर्तव्य च्युत मानती हैं अन्त में विवश होकर एक विश्वसनीया पत्नी की भाँति अवरुद्ध कंठ से लक्ष्मण को 'चितानिर्माण' का आदेश देती हैं ।

परन्तु मानस में इन सब प्रतिवादों एवं तर्कों का कोई स्थान नहीं क्योंकि गोस्वामी जी को तो अपने पूर्वापर प्रसंग में सम्बन्ध योजना करनी थी । पंचवटी में अग्नि प्रवेश की हुई सीता की थाती को स्वयं अग्नि देव द्वारा पुन: राम के अर्पित कराना था, माया सीता को पुन: अग्नि प्रवेश कराकर वास्तविक सीता, राम को अर्पित कराने का प्रसंग वर्णित करना था अतएव उन्होंने सीता को इस प्रसंग पर मौन ही दर्शाना नितान्त उपयुक्त समझा क्योंकि इस प्रसंग की अब तुरन्त आवश्यकता थी । अतएव इस अलौकिक रहस्य एवं मर्म के प्रसंग में 'पिय हिय की सिय जान निहारी' का प्रतिवाद करना असंगत हो जाता इसीलिये

---

१. वा० रा० ५।४२।८, १०।
२. 'विवाह काले रति सप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे'
शास्त्रों में इन अवसरों पर असत्य भाषण वर्जित नहीं माना गया । इस प्रसंग में यदि वे असत्य भाषण न करतीं तो हनुमान के प्राणों का भय था ।
३. वा० रा० ५।४२।८।

तुरन्त अग्नि प्रवेश करते ही तुलसी ने अपना मन्तव्य समन्वयात्मिका प्रतिभा द्वारा प्रगट कर दिया।

'प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुं जरे।
प्रभु चरित काहुं न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।।
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।।'[१]

एक प्रसंग में सीता का नारी सुलभ दुर्बलता का चित्रण दोनों काव्य ग्रन्थों में समान रूपेण किया गया है।

दोनों में वन गमन के समय सीता देवी देवताओं से मनोरथ पूर्त्यर्थ स्तुतियाँ एवं मनौतियाँ करती हैं परन्तु उनको क्रियात्मक रूप देना वे भूल जाती हैं।[२]

परन्तु सीता का समष्टि चित्रण सर्वोपरि है, धर्म का प्राणपन से परिपालन स्त्री सीता का चरित्र जाज्वल्यमान ध्रुव नक्षत्र है जिसमें असाधारण पातिव्रत धर्म, त्याग, शील, अभय, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्मपरायणता, सेवातत्परता, संयम, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य, व्यवहार कुशलता आदि प्रखर किरणें उनकी कीर्ति ज्योति को विकीर्ण करती हैं।

दोनों काव्यों में उनके आन्तरिक आदर्श चरित्र की ही भाँति उनका वाह्य रूप भी अलौकिक अनुपमेय, दिव्य एवं सर्वोपरि चित्रित किया गया है। उसकी एक झलक के दर्शन कर लेना यहाँ असंगत न होगा।

उनके अद्वितीय सौन्दर्य का अनेक स्थलों पर वाल्मीकि ने वर्णन किया है जिसके अनुसार सीता पूर्ण चन्द्र सम वदन वाली, अपनी चन्द्र प्रभा से सब दिशाओं को प्रकाशित करने वाली,[३] कोमलांगिनी, शुद्ध सुवर्णवर्णा,[४] शुभ लक्ष्मी एवं रति की प्रतिरूपा नख शिख सौन्दर्यमयी, मनोहारिणी हैं।[५]

उनकी अप्रतिम शोभा के समकक्ष त्रिलोक में कोई नहीं।

'नैव देवी न गन्धर्वा न यक्षी न च किन्नरी।
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले।'[६]

तुम्हारे समान न देवी है, न यक्षी और न किन्नरी। मैंने पृथ्वी पर ऐसी स्त्री कभी नहीं देखी।

सीता के रूप चित्रण में भी लगभग दोनों ग्रन्थों में साम्य है। गोस्वामी जी भी

---

१. मा० ६।१०८। छन्द १,२।
२. (१) वा० रा० २।५२।८२,८३।
(२) मा० २।१०२।२,३।
३. वा० रा० ५।१५।२८,२९।
४. वा० रा० ३।४३।१,२।
५. वा० रा० ३।४६।१६ २२।
६. ।वा० रा० ३।४६।२३।

उनके लावण्य का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाकर बड़े संकोच से उसका यथा संभव चित्रण करते हैं ।

'सिय शोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ।।
उपमा सकल मोहि लघु लागी । प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकवि कहाइ अजसु को लेई ।।
जौं पट तरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ।।
....
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छप सोई ।।
सोभा रतु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ।।

एहि विधि उपजे लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल ।
तदपि संकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल ।।'[1]

अन्ततोगत्वा हमें रामायण विशारद श्री निवास शास्त्री के शब्दों में[2] यह निष्कर्ष देना यथार्थ एवं संगत हो जाता है कि वे अप्रतिम सौन्दर्य शालिनी, नारीत्व, मार्दल्य, बुद्धि चातुर्य, साहस एवं धारण शक्ति की समन्वित प्रतिमूर्ति हैं ।

वस्तुत: 'यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि अखिल विश्व के स्त्री चरित्रों में श्री राम प्रिया जगजननी जानकी जी का चरित्र सबसे उत्कृष्ट है । रामायण के समस्त स्त्री चरित्रों में तो सीता चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद-पद पर अनुकरण करने योग्य हैं ही । भारत ललनाओं के लिये सीता जी का चरित्र सन्मार्ग पर चलने के लिए पूर्ण मार्ग दर्शक है ।'[3]

जनक

विदेहराज तिरहुति नरेश जनक का चरित्र रामायण में परम तेजस्वी, धर्मात्मा एवं सत्यवानों में श्रेष्ठ रूप में चित्रित हुआ है जब कि मानस में वे परम तत्वज्ञ, धर्म ध्वज, नीति निपुण एवं असाधारण ज्ञानी होने के साथ-साथ परम गूढ़ भक्त रूप में अंकित हुए हैं ।

'प्रनवउँ परिजन सहित विदेहू । जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ।।
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ।।'[4]

रामायण में जनक के चरित्र की विशिष्टताएँ निम्नांकित है ।

---

१. ।मा० १।२४६।१ ४, ७, ८ १।२४७।

२. 'She is unapprachable. All the womanly attractions, beauty, tenderness of heart, compassion of the extreme type, fidelity, wisdom of the truest type, courage, endurance all these find in her a harmonious abode.'
(Lectures on V. Ramayana, 29th Lecture)

३. श्री सीता के चरित्र से आदर्श शिक्षा द्वारा श्री जयदयाल जी गोयन्दा का
।कल्याण ५।१ पृष्ठ ४५।

४. ।मा० १।१६।१, २।

वे परम तेजस्वी उत्तम कुल के वंशज हैं, विख्यात, धर्मातमा, सत्वयुक्त ह्स्वरोमा के सुपुत्र हैं।[1]

वे योग्य न्याय प्रिय शासक हैं।

'मिथिलाधिपति वीरो जनको नाम धर्मवित् ।
क्षत्र कर्मण्यभिरक्ते न्यायतः शास्ति मेदिनीम् ॥[2]

अर्थात् 'मिथिलापुरी के महान वीर राजा जनक धर्मानुसार, छात्र कर्म में रत होकर न्याय से पृथ्वी का पालन करते हैं।'

राजा सुधन्वा के साथ युद्ध कर उसे वीर गति प्राप्त कराना उनकी वीरता का प्रमाण है।[3]

वे परम तपस्वी भी हैं। उतकी तपस्या से प्रसन्न होकर देव वर्ग तक उनकी सहायता करने को प्रस्तुत हो जाते हैं।[4] वे परम याज्ञिक भी हैं।[5]

अपने वीर स्वभाव के अनुरूप ही अपनी वीर्य शुल्का कन्या सीता के लिये उपयुक्त 'वीर' वर के अन्वेणार्थ वे प्रतिज्ञा बद्ध हो उठते हैं।[6] वे सत्यप्रतिज्ञ हैं।[7]

उनके गुणों में उनकी व्यवहार कुशलता, विनय शीलता, शिष्टाचार, गुण ग्राहकता, कृतज्ञतादि परम श्लघ्य हैं। तथा वे विश्वामित्र के प्रथम दर्शन पाते ही अत्यन्त विनम्र भाव से उनके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पण करते हैं।[8] उनके दर्शनों द्वारा अपने को धन्य मानते हैं।[9] उनके गुणों की सराहना कर अपनी गुण ग्राहक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं।[10] विश्वामित्र तथा दशरथ का स्वागत अनुकूल शिष्टाचार द्वारा सम्पादित करते हैं।[11]

उनकी भावनाएँ अत्यन्त उदार हैं। अपने भाई कुशध्वज के प्रति भ्रातृ स्नेह से सदैव आप्लावित होकर उनके प्रति कर्त्तव्य शीलता के भी प्रमाण देते हैं सुधन्वा का विजित राज्य

---

१. वा० रा० १।७१।३, १३।
२. ।वा० रा० १।११९।२७।
३. ।वा० रा० १।७१।१८।
४. वा० रा० १।६६।२३।
५. ।वा० रा० १।५०।१।
६. ।वा० रा० २।११९।४२।
७. ।वा० रा० २।११९।५०।
८. ।वा० रा० १।६६।२, ३।
९. वा० रा० १।५०।१४।
१०. वा० रा० १।६५।३५,३६।
११. विश्वामित्र प्रति वा० रा० १।५०।६,१।६५।३७,३९,१।६६।२। तथा
दशरथ प्रति वा० रा० १।६९।९,११।

स्वयं न ग्रहण कर कुशध्वज को देना उनकी उदारहृदयता का सूचक है,[1] उनकी पुत्री के वर चिन्तन का भार भी अपने ही ऊपर वहन करते हैं।[2]

मन, वच[3] एवं कर्म सभी प्रकार से आप नृपोत्तम एवं मानवोत्तम ही प्रमाणित होते हैं।

मानस के जनक का चरित्र रामायण के जनक की अपेक्षाकृत विशेष गौरव एवं गरिमा से युक्त है। उनमें ज्ञानयोग, राजयोग एवं भक्ति योग की त्रिवेणी तरंगित होती हुई दर्शक हृदय को पावन एवं रसमय कर देती है।

एक ओर वे ऐश्वर्यशाली, नीति निपुण प्रजारंजक अधिपति हैं तो दूसरी ओर परम ज्ञान शिरोमणि योगिराज हैं। इन दोनों योग एवं भोग के मध्य उनका गूढ़ महान् व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है राम प्रेम का जिसका प्रथम दर्शन हमें जनक के प्रथम राम के दर्शन के समय ही मिल जाता है।[4] अनवरत साधना से प्राप्त ब्रह्मानन्द को भी उस प्रेमानन्द के सम्मुख उन्होंने हेय समझ लिया।

'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥'[5]

राम में परात्पर ब्रह्म के दर्शन पा वे आत्मविभोर हो उठे और विदा के समय भी वे अपने इस गूढ़ प्रेम को व्यक्त किये बिना न रह सके, उनकी स्तुति करने लगे और निष्काम कर्मयोगी ने आज सकामता का आवरण भी धारण कर लिया प्रेम मार्ग के पथिक बनकर और इस प्रकार वे याचना कर उठे।

'बार-बार मागौं कर जोरे। मन परिहरे चरन जनि भोरे॥'[6]

उनकी यही आत्म बिभोर दशा हमें चित्रकूट में भी दिखाई पड़ती है।

'राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर वैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥'[7]

इस प्रकार मानस के जनक की यह सर्वोपरि विशेषता है कि उनका ज्ञान प्रेम पवित्र प्रेम में परिणत हो स्वयं द्रवणशील बन अपनी प्रेमामृत की अजस्र धारा से अपने सम्पर्क में आने वाले प्राणियों को भी रस प्लावित कर देता है।

उनके प्रेमी रूप के अतिरिक्त रामायण के समान उनके अन्य गौण गुणों का भी निदर्शन मानस में किया गया है।

वे परम ऐश्वर्य निधान राजा हैं इसका परिचय उनके राज्य की समृद्धि से प्राप्त

---

१ वा० रा० १।७१।१९।
२. वा० रा० १।७१।
३. वा० रा० १।६८।४५।
४. वा० रा० १।२१४।८ से १।२१६।५ तक।
५. मा० १।२१५।५।
६. मा० ३४१।५।
७. मा० २।२७४।३,४। तथा मा० २।२८५।८।

ोता है ।[1] इस धन धान्य सम्पन्नता का प्रमाण मानस की इन एक दो पंक्तियों से ही प्राप्त हो जाता है ।

'जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी । तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी ।।
जो संपदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुरनायक मोहा ।।'[2]

जनक की व्यवहार कुशलता भी सराहनीय है । विश्वामित्र की अभ्यर्थना,[3] दशरथ के स्वागत सत्कार की अनुपमेयता,[4] तथा सबके प्रति यथोचित स्नेह, शील सदाचार का प्रदर्शन[5] उनके शिष्टाचरण को प्रदर्शित करता है । स्वयं राजा दशरथ भी उनके इस स्वरूप की प्रशंसा करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं ।

जनक सनेहु सील करतूती । नृप सब भाँति सराह बिभूती । '[6]

दशरथ ही नहीं अपितु सभी वर के लोग जनक के दान, मान, विनयशीलता एवं उत्तम वाणी की सराहना कर उनके प्रति श्रद्धार्पण करते हैं ।

'सकल बरात जनक सनमानी । दान मान बिनती वर बानी ।।'[7]

वे सत्य सन्ध है इसीलिये उन्हें अपनी एकमात्र प्राणोपमा कन्या सीता के विवाह से भी अधिक अपने 'दृढ़ संकल्प' निर्वाह का ध्यान विशेष है । अतएव वे आशंकावश हो कह उठते हैं ।

'सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ । कुँअरि कुआँरि रहै का करऊँ ।।'[8]

अवसरानुकूल कर्म करने की निपुणता भी उनमें पूर्ण रूपेण है । यह शुभ चिन्तन प्रेरित चातुरी आवेशमय परशुराम के आगमन पर तुरन्त सीता द्वारा अभिवादन कराने के प्रसंग से व्यक्त होती है ।[9]

उनका ब्रह्म ज्ञान भी सर्वोपरि उत्तम कोटि का वर्णित किया गया है ।

'जासु ग्यान रबि भव निसि नासा । वचन किरन मुनि कमल बिकासा ।'[10]

परन्तु 'सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू'[11] के अनुसार उनके 'प्रेम परायण' रूप में स्वर्ण सुगंधि संयोग भी उपस्थित है । वे अपने मानवीय रूप में अत्यन्त भावुक एवं स्नेह

---

१. मा० १।२११ ६ से २१३। तक । तथा मा० १।२८७ से १।२८८ तक ।
२. मा० १।२८८।७,८।
३. मा० १।२१४ से १।२१६।७,८ तक ।
४. मा० १।३२०।१,२।
५. मा० १।२१४ से १।२१४।२ तक ।
६. मा० १।३३१।१।
७. मा० १।३२०।५।
८. मा० १।२५१।५।
९. मा० १।२६८।४।
१०. मा० १।२७६।१।
११. मा० २।२७६।५।

प्रवण पिता भी हैं। रामायण की अपेक्षा मानस में सीता की विदा के समय उनका यह वात्सल्य प्रेरित भावोद्गार का दृश्य अत्यन्त मनोरम एवं हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। जहाँ कि

'सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी ।।'[1]

उनका यह स्नेह केवल मोहजनित अपितु कल्याण कामना से प्रेरित भी है। चित्रकूट में अपनी पुत्री को वनवासिनी तपस्विनी रूप में देख वे सांसारिक पिता की भाँति व्यथित नहीं होते अपितु अत्यन्त गद्गद हो उठते हैं और परम संतोष लाभ कर अपनी पुत्री की सराहना करने लगते हैं।

'पुत्रि पवित्रि किए कुल दोऊ।
सुजसु धवल जग कह सब कोऊ।'[2] इत्यादि...

रामायण के विपरीत तुलसी ने जनक को चित्रकूट पहुँचाकर उनके चरित्र चित्रण के विकास को समुचित स्थान दिया है। मानों रामायण के जनक के चरित्र के अभाव की पूर्ति की है।

चित्रकूट से लौटते समय हमें उनकी कर्त्तव्य परायणता एवं प्रबन्धात्मकता का परिचय मिलता है।

'जनकु रहै पुर बासर चारी। राज काज सब काज सँभारी ।।
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू ।।'[3]

इस प्रकार मानस के जनक प्रेम योगी, कर्म योगी एवं ज्ञान योगी तीनों के समन्वित रूप में चित्रित हुये हैं क्योंकि स्वयं राम ने उनका सम्मान पिता, विश्वामित्र एवं वशिष्ठ के समान मानकर किया है।

'करि वर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ।।'[4]
तथा मानस के प्रसंगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि उनके पिता प्रेमयोगी, विश्वामित्र यश कांडी होने के कारण कर्म योगी तथा 'योग वसिष्ठ' के रचयिता वशिष्ठ ज्ञान योगी के प्रतीक थे।

विभीषण

रामायण के विभीषण का स्वरूप पूर्ण राजनीतिज्ञ का है, जबकि मानस के विभीषण का चित्रण अर्थार्थी भक्त का है। विभीषण के चित्रण में उनके दो पक्षों का निरूपण किया जाता है, घर का भेद देने वाले, कुटिल राजनीतिज्ञ तथा भक्त रूप। प्रथम पक्ष रामायण में तथा द्वितीय मानस में प्रमुख है जिसका दिग्दर्शन निम्नांकित विवेचन से स्पष्ट हो जायगा।

---

१. मा० १।३३७।५।
२. मा० १।२८६।१।
३. मा० १।३२१।६,७।
४. मा० १।३४१।८।

विभीषण सुमंत्रणा देने में नितान्त पटु हैं क्योंकि राजनीति के रहस्य उन्हें भली प्रकार विदित हैं। जिस किसी भी पक्ष को वे मन्त्रणा देते हैं वह उसी पक्ष के लिये परम हितकारिणी होती है। इसीलिये वाल्मीकि ने उनको 'देशकालार्थसंवादि दृष्टलोकपरावर:'[१] विशेषणों से अभिषिक्त किया है।

रामायण के विभीषण एक सुयोग्य मंत्री के लक्षणों को[२] भली प्रकार जानते हुये तथैवाचरण भी करते हैं।

कथानक के दोनों पक्षों को आपने सदैव अनुकूल मंत्रणा देकर पूर्ण सहायता दी है। रामायण तथा मानस दोनों में उनका यह 'मंत्रीपद' विस्तृत रूपेण उल्लिखित है। उनकी मन्त्रणा की गम्भीरता पर पूर्ण विश्वास कर दोनों पक्ष उसे पूर्ण रूपेण ग्राह्य भी मानते हैं।

हनुमान् के नागपाशाबद्ध हो जाने पर 'दूत वध वर्जित है, उसे कोई अन्य दण्ड दिया जाय' यह मन्त्रणा[३] दोनों ग्रन्थों में परम अभिमानी रावण ने भी स्वीकार की।[४] और जब उसने बाद में बल दर्प के कारण उसकी मंत्रणा का तिरस्कार एवं अवहेलना की तभी उसका सर्वनाश भी हुआ।

विभीषण की मंत्रणा में सारगर्भित तत्वों का पूर्णत: समावेश भी दर्शनीय है।

विभीषण परम निर्भीक होकर चाटुकार मंत्रियों का कटु विरोध करते हैं।[५] राम की शक्ति का पूर्ण परिचय उन्हें प्राप्त है। अतएव वे अत्यन्त दृढ़ता से रावण को राम की शक्ति का परिचय देकर प्रबोधित करते हैं।[६]

'धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंश प्रभवस्य राज्ञ:।
पुरोस्य देवाश्च तथाविधस्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढा: ॥'[७]

(धर्म में प्रधान महारथी इक्ष्वाकुवंशीय और सब कार्य करने में इक्ष्वाकु ही के तुल्य राम के आगे देवता भी मूढ़ हो जाते हैं)

---

१. वा० रा० ६।१०।१३।
२. 'परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा स्थानं क्षयं चैव तथैव बुद्धिम्।
तथा स्वपक्षेप्यनुमृश्य बुद्धया वदेत्क्षमं स्वामिहितं च मन्त्री।' वा० रा० ६।१४।२२।
३. (१) वा० रा० ५।५२।४।
(२) मा० ५।२३।७।
४. वा० रा० ५।५३।१, ५।५४।१६।
५. (१) वा० रा० ६।१४।२,२०
(२) मेघनाद को प्रताड़ना देना वा० रा० ६।१५।९,१३।
६. वा० रा० ६।१४।१२,१६
७. वा० रा० ६।१४।१२।

स्वयं वाल्मीकि ने विभीषण की मंत्रणा को 'हितमयं युक्तम्',[1] 'महार्थवचनं'[2] तथा 'सुनिविष्टं हितं वाक्यं'[3] इत्यादि विशेषणों द्वारा विभूषित किया है।

द्वितीय पक्ष में आकर भी विभीषण ने अपनी सम्मंत्रणा को वहाँ भी नहीं त्यागा। तत्वग्राही राजनीति निपुण राम ने भी सभी योग्य महान् व्यक्तियों की अपेक्षाकृत विभीषण को ही सचिवोत्तम का स्थान दिया है।[4] आवश्यक समयों पर विभीषण ने ही उन्हें उपयुक्त मंत्रणा देकर क्रियाशीलता में सहयोग दिया।[5]

मानस में भी राम ने उन्हें यही स्थान प्रदान किया है। सुवेल पर्वत की झाँकी में विभीषण का स्थान गोस्वामी जी यथास्थान ही चित्रित करते हैं।

'कह लंकेश मंत्र लगि काना।'[6]

जलधि उल्लंघन की चिन्ता से चिन्तित राम को उन्होंने 'साम नीति' का परामर्श दिया।[7]

परन्तु राम उसके भाई रावण के विपक्षी थे अतएव राम को उचित मंत्रणा देना सांसारिक रीति से विभीषण के चरित्र पर लांछन ही है। अतएव उन्हें आलोचकों ने घर का भेदी, कूटनीतिज्ञ एवं स्वार्थी भी कहा है। उनके इस स्वरूप की पुष्टि के निम्नांकित स्थल कहे जाते हैं।

रावण पक्ष के गुप्त भेदों को बताना,[8] उसके सैन्य बल का पूर्ण परिचय देते रहना,[9] गुप्तचरों द्वारा रावण के सैन्य संगठन का ज्ञान कराते रहना,[10] मेघनाद तथा रावण के यज्ञों की सूचना देकर उनका विध्वंस कराने की प्रेरणा देना,[4] रावण के वध का वास्तविक उपाय बतलाना इत्यादि।[11]

मानस में भी इन स्थलों का विवरण दिया गया है परन्तु वहाँ उनका कूटनीतिज्ञ रूप उतना प्रबल नहीं हो पाया है जितना रामायण में है। यहाँ राम का सहयोगी रूप ही प्रबल लगता है उसका कारण यह भी है कि तुलसी के राम तो सर्वव्यापी हैं, अन्तर्यामी हैं। वे तो केवल अपने भक्त की परीक्षा मात्र लेते हैं।

---

१. वा० रा० ६।१४।१।
२. वा० रा० ६।१४।९
३. वा० रा० ६।१६।१।
४. वा० रा० ६।१९।१९,८३।
५. वा० रा० ६।१९।३०,३१,६।३७।१,६।८५।८,१६।
६. मा० ६।१०।६।
७. मा० ५।४९।९,५।५०।
८. वा० रा० ६।५९।१४,२५।
९. वा० रा० ६।१९।८,१६,२३।
१०. वा० रा० ६।३७।६,१९,२० से २४ तक।
११. वा० रा० ६।८४।१४,१६,२३।

'मर इन रिपु श्रम भयउ बिसेषा । राम बिभीषन तन तब देखा ॥
उमा काल मर जाकी ईछा । सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥'[1]

परन्तु मानस में भी वे राम को उनके विपक्ष के रहस्यों को विदित कराते हैं । उनमें से उल्लेखनीय स्थल हैं ।

दशशीश के अखाड़े का परिचय कराना,[2] मेघनाद[3] एवं रावण[4] के अजय मख की सूचना देकर उसका विध्वंस करने का प्रस्ताव करना तथा रावण के मरने का रहस्य बताना इत्यादि ।

भौतिक दृष्टि से इन रहस्यों के उद्घाटन से ही राम को विजय प्राप्ति में विशेष सरलता एवं सुविधा प्राप्त हुई ।

विभीषण के इस रूप की निन्दा के निराकरण का एक प्रबल तर्क यह है कि उन्होंने असत्य एवं अन्यायी पक्ष का अवलम्ब त्याग कर सत्य, न्याय एवं सदाचार के पक्ष का आश्रय लिया ।[5] इस तत्व को जानने वाली लंका निवासिनी राक्षसियाँ भी उनकी यथावसर, व्यवहार नीति की प्रशंसा करती हैं ।[6]

रामायण में उनके अर्थार्थी रूप का चित्रण अनेक स्थलों पर किया है । हनुमान् राम से विभीषण के उनके पास आने का कारण बताते हैं ।

'राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत् पुरस्कृत्य विद्यते तस्य संग्रह ।'[7]

(ये) रावण के मारे जाने पर राज्य पाने की इच्छा से अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ आ गये हैं । इन बातों से इनका संग्रह करना उचित है ।

विभीषण भी राम की शरण आने पर स्वयं अपनी लालसा राम के सामने व्यक्त करते हैं ।

'भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ।'[8]

(अब मेरा राज्य, प्राण व सुख आपके आधीन हैं ।)

मानस में वे स्वयं कहते हैं 'उर कछु प्रथम वासना रही ।'[9]

---

१. वा० रा० ६।७१।२७,३६। तथा वा० रा० ६।८५।८,१६।
२. मा० ६।१०।२,३।
३. मा० ६।१२।३,७।
४. मा० ६।७४।३,६। मा० ६।८४।१,३।
५. वा० रा० ६।८७।२२,२६।
६. वा० रा० ६।९४।४१।
७. वा० रा० ६।१७।६७।
८. वा० रा० ६।१८।६।
९. मा० ५।४८।६।

रामायण में विभीषण का सामाजिक रूप भी उल्लिखित है। मानस में उनके भक्त रूप के आगे अन्य पक्षों का विलय हो गया है। रामायण में उनमें अनेक मानवीय सद्भावनाओं एवं कर्मशीलता का प्रदर्शन किया गया है। वे स्वयं वीर सैनिक बनकर अपने मित्र राम की तन मन से सहायता करते हैं।[1] राम सैन्य को विचलित देख कर समय-समय पर आश्वासित कर प्रोत्साहित करते रहते हैं। राम लक्ष्मण के शक्ति लगने पर मरणासन्न सेना को पुनर्जीवन प्राप्त कराया।[2] स्वयं गदा धारण कर उत्साह का संचार किया।[3] ब्रह्मास्त्र से पीड़ित समस्त वानर यूथपों को ढाढ़स देते हैं[4] सकल वानर सैन्य का एकाकी ही निरीक्षण कर उनकी सम्यक् देख रेख करते हैं।[5] वे समय पड़ने पर राम को भी जय सूचक आशीर्वाद देते हैं तथा मानवोचित सहानुभूति दर्शाते हैं।[6]

रामायण में उनके दो रूप विशेष प्रधान हैं। धार्मिक एवं नीतिज्ञ। जन्म से ही उनका धर्मनिष्ठ रूप व्यक्त होता है। उनके जन्म के पूर्व ही मुनि विश्रवा ने अपनी पत्नी की इच्छानुसार भविष्यवाणी कर दी थी।

'मम वंशानुरूप: स धर्मात्मा च न संशय:'[7]

अर्थात् 'मेरे वंश के अनुकूल वह निस्संदेह धर्मात्मा होगा।'

इसी कारण उनके जन्म के समय देवों ने पुष्पवर्षा एवं दुन्दुभि वादन द्वारा अपना आह्लाद प्रकट किया था।[8]

वे प्रारम्भ से ही धर्मारूढ़, स्वाध्यायी, नियताहारी एवं जितेन्द्रिय रूप से रहा करते थे।[9]

'विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मे व्यवस्थित:।
स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रिय:।'

तपस्या से प्रणीत ब्रह्मा के दर्शन पाकर अपनी धर्मनिष्ठा को दृढ़ता रूप देने की वर याचना भी उन्होंने की।

'परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत्।
अशिक्षितं च ब्राह्मस्त्रं भगवन्प्रति मातु मे।
या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च।

---

१. वा० रा० ६।४२।३०,३१, वा० रा० ६।८५।५,६।
२. वा० रा० ६।४६।३८,४५।
३. वा० रा० ६।४९।३१।
४. वा० रा० ६।७४।३,४।
५. वा० रा० ६।७४।१५।
६. वा० रा० ६।५०।७।
७. वा० रा० ७।९।२७।
८. वा० रा० ७।९।३६।
९. वा० रा० ७।९।३९।

सा सा भवतु धार्मिष्ठ तं तु धर्मं च पालये ।
एष मे परमोदार वर: परमकेरमत: ।।'[१]

विभीषण का यह निजी सिद्धान्त है कि धर्मनिष्ठ के लिये संसार में कुछ भी अलभ्य नहीं हैं।

'नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम् ।[२]

उनकी इसी धार्मिक निष्ठा से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया ।

'नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।'[३]

स्वयं राम भी उनको धर्मात्मा मानकर तथैवाचरण के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

'लंका प्रशाधि धर्मेण धर्मज्ञस्त्वं मतो मम'[४]

उनके धार्मिक रूप में स्वर्ण सुगंधि उपस्थित करने वाला है उनका 'नीतिज्ञ' रूप । उनके मंत्रित्व रूप में उनका नैतिक रूप प्रदर्शित किया जा चुका है । इसके अतिरिक्त उनकी नैतिक सूक्तियाँ भी उनके इस रूप की झलक दिखाती हैं ।

'सुलभा: पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिन: ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।'[५]

तथा 'परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न ग्रहणन्ति सुहृद्भि रीरितम्[६]

गतायुष मनुष्य मित्रों की बात नहीं माना करते ।

मानस के विभीषण का अत्यन्त मनोहारी रूप है उनका भक्त रूप । श्री राम रतन भटनागर इस दृष्टि से आलोचना करते हुये निष्कर्ष देते हैं ।

'तुलसीदास ने विभीषण के निन्दनीय चरित्र को उनके सन्त स्वभाव और राम भक्ति की वीथिका देकर अत्यन्त मधुर कर दिया है । तुलसी के विभीषण आर्त और अर्थी भक्त हैं । वह नम्रता, दीनता और स्नेह की मूर्ति हैं ।'[७]

मानस के विभीषण के भक्त रूप का क्रमिक विकास भक्त तुलसी ने अत्यन्त सुदृढ़ एवं क्रमिक किया है । वे अपने पूर्व जन्म में भानुप्रताप के धरमरुचि मंत्री थे तथा इस रूप में वे 'विष्नु भगत बिग्यान निधान' रूप में प्रसिद्ध हुये ।[८]

उग्र तपस्या के फलस्वरूप

---

१. वा० रा० ७।१० ३०,३२।
२. वा० रा० ७।१०।३३।
३. वा० रा० ७।१०।३५।
४. वा० रा० ७ ६०। ० ।
५. वा० रा० ६। [illegible] ।
६. वा० रा० ६। [illegible] ।
७. तुलसी [illegible] की भूमिका पृष्ठ [illegible]
८. वा० रा० [illegible] ।

'तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ।'[1]

प्राचीन संस्कारों एवं वरदान से अभिसिंचित उनकी भक्ति दृढ़तर रूप धारण करती चली गई। उनके पुण्योदय का प्रतीक 'हनुमन्त मिलन' हुआ।[2] सन्त दर्शन एवं उपदेश पर उनमें आत्म विकास हुआ। सांसारिक रूप में 'जिमि दसनन महं जीभ' के समान दबने वाले विभीषण सन्त दर्शन के पश्चात् वैराग्य सलिल से अभिषिंचित हो गये और निर्भीक होकर भगवान की ओर प्रबलता से उन्मुख हो गये। उनका दर्शनोत्सुक 'प्रपन्न' रूप परम दर्शनीय है। प्रभु के चरण कमलों के देखने की प्रबल लालसा के साथ वे ६ भक्तों का स्मरण करते हुये आगे बढ़ते हैं जिसमें उनका शरणागत रूप प्रत्यक्षत: अंकित है। परम कृपालु ने, विपरीत सम्मतियों की अवहेलना कर, अपने शरणापन्न को अपनाया। राम के दर्शन पाते ही वे सजल नयन हो उठे, धैर्य धारण कर दैन्य भाव से अपना परिचय देकर अपने आने का वास्तविक लक्ष्य व्यक्त कर दिया।

'श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।'[3]

इस प्रकार प्रपन्न और शरण्य दोनों का मधुर मिलन हुआ। दोनों का वांछित सिद्ध हुआ।

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में उनका तेजस्वी, राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ, वीर, कर्मठ, अर्थार्थी एवं व्यवहार कुशल रूप प्रमुखत: अंकित हुआ है तथा मानस में आध्यात्मिक प्रपन्न रूप तो प्रबल है ही। इसके साथ साथ वे अत्यन्त विनयशील मर्यादित शिष्टाचार से युक्त, दैन्य भाव से समन्वित अर्थार्थी भक्त हैं।

कौशल्या

रामायण तथा मानस में दशरथ की ही भाँति कौशल्या के चरित्र में भी भिन्नता है। रामायण में उनके चित्रांकन का धरातल मानवीय एवं यथार्थ है तथा मानस में अलौकिक एवं आदर्श।

रामायण में राजा दशरथ की पटरानी के रूप में उनका प्रारम्भिक परिचय मिलता है[4]। मानस में वे सतरूपा की अवतार कही गई हैं। अपने पूर्व जन्म में ही वे प्रभु से परमानन्द की वर याचना करती हैं।

'जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।।
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु।।'[5]

---

१. मा० १।१७७।
२. मा० ५।४५।
३. मा० ५।४५।
४. वा० रा० १।१४९।९,१५०।
५. १।१४९।८,१।१५०।

उक्त 'मृदु, गूढ़ रुचिर' वर याचना पर करुणानिधि ने उनके अलौकिक ज्ञान की सराहना करते हुये 'एवमस्तु' कह दिया।

तुलसी ने इस प्रकार कौशल्या के चरित्र की पृष्ठभूमि 'शतरूपा' के रूप में ही दर्शा दी और कौशल्या का जीवन आद्यन्त पूर्वोक्त सुख, भक्ति एवं विवेक से युक्त रहा जिसका दिग्दर्शन आगे के प्रसगों में किया जायगा।

दोनों ग्रन्थों में कौशल्या का विशेष परिचय हमें राम वन गमन के प्रसंग में मिलता है। रामायण में इस प्रसंग में उनके दो रूप प्रधानत: परिलक्षित होते हैं।

१. परम धार्मिक रूप

२. सामान्य मातृत्व

राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर वे परिजन सहित प्राणायाम द्वारा जनार्दन पुरुष का ध्यान करने लगीं।

'प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्[१]

इसी प्रकार जब राम स्वयं अपने वन गमन का समाचार सुनकर माता से विदा याचना के हेतु जाते हैं उस समय भी वे पुत्र को शुभ कामना करती हुई विष्णु पूजा में निरत थीं, बेदमंत्रों से अग्निहोत्र कर रही थीं, तर्पण यज्ञ में भी निरत थीं।[२]

'इदं तु दु:खं यदनर्थकानि मे व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि।
तपश्च तप्तं यदपत्य काम्यया सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे।।'[३]

(यह बड़े दु:ख की बात है कि पुत्र को पाने की आशा से मैंने जो कुछ भी व्रत दान और नियम धर्म कर लिये थे, वे सभी निष्फल ठहरे जो तपश्चर्या की वह बंजर भूमि में बोये बीजों के समान अत्यन्त ही फल रहित हुई।)

रामायाण की कौशल्या की अपेक्षाकृत मानस की कर्मकांडिनी 'अलौकिक विवेकशीला'[४] कौशल्या केवल धर्मनिष्ठ नहीं, साक्षात् भक्ति की प्रतीक स्वरूपा हैं। सामाजिक मर्यादानुसार वे 'इष्टदेव' कुल देवता का नैत्यिक पूजन तो करती ही हैं[५] परन्तु राम के जन्म दिवस पर ही उन्हें अनन्त देव जानकर अपनी स्तुतिमय कृतज्ञतांजलि अर्पित करती हैं।[६]

अपने भौतिक जीवन में भी वे राम के प्रति 'वात्सल्यासक्ति' प्रदर्शित करती हुई अपने अलौकिक ज्ञान का सदैव परिचय देती रहती हैं।

इस प्रकार जहाँ रामायण की धर्मशीला कौशल्या में सकाम यज्ञों की प्रधानता वर्णित

---

१. वा० रा० २।४।३३।

२. वा० रा० २।२०।१४। से १६।

३. वा० रा० २।२०।५२।

४. मा० १।१५०।४।

५. मा० १।२००।२,३।

६. मा० १।१९१। छन्द।

की गई हैं, वहाँ मानस में वे 'श्रुति समस्त हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिवेक' की अनुगामिनी हैं।

मानस में राम जन्म के अवसर से ही कौशल्या का महत्व स्पष्ट हो उठा, विवेकजन्य सुखों का आनन्दानुभव कौशल्या को ही प्राप्त हुआ, अवतारी अंशी दर्शन भी केवल उन्हीं को हुये।

'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।
लोचन अभिरामा तनु घन स्यामा निज आयुध भुज चारी।।'[1]

इतना ही नहीं कौशल्या को, उनके पूर्व जन्म की कथा का स्मरण कराकर वह याचना का सम्बन्ध स्थापन करते हैं।

'कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै'[2]

केवल चतुर्भुज रूप के दर्शन की ही अधिकारिणी वे नहीं रहीं अपितु विश्वरूप दर्शनादि की आनन्दोपलब्धि भी उन्हीं को हुई।

'देखरावा मातहि निज अद्‌भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।'[3]

इस प्रकार 'मातु विवेक अलौकिक तोरे' के प्रत्यक्ष दर्शन तो हो जाते हैं अब उनके भौतिक क्षेत्र में विवेकशीलता भी तथैव अवलोकनीय है जिसका प्रत्यक्षीकरण रामायण की कौशल्या के चित्रांकन करते समय किया जायगा।

रामायण में कौशल्या का मानवी रूप प्रदर्शित है, मानस में देवी। उक्त तथ्य के प्रमाण निम्नांकित स्थल हैं।

रामायण की कौशल्या विपत्ति के अवसरों पर विचलित हो उठती हैं क्योंकि उनकी लालसाओं, महत्वाकांक्षाओं पर कुठाराघात होता है।[4] उनका हृदय वेदना के प्रपीड़न, म

१. मा० १।१९१। छन्द।
२. मा० १।१९१। छन्द।
३. मा० १।२०१।
४. (१) 'न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पति पौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामस्थितं मया।"
वा० रा० २।२०।३८।
(२) वा० रा० २।२०।४३ से ४५।

आर्त्तनाद करने लगता है,[1] वे मर्माहत हो उठती हैं,[2] धैर्य उनका साथ त्याग देता है।[3] उनकी हृदय विदारक दशा वस्तुतः अत्यन्त हृदयस्पर्शी हो उठती है।[4] वे शोकाकुल होकर सहनशक्ति के अभाव से संज्ञाशून्य हो जाती हैं।[5] वे भाग्यवादिनी हैं।[6] अपने दुखों का मूल 'भाग्य' तो बताती ही हैं परन्तु भौतिक क्षेत्र में वे उसका मूल कारण कैकेयी,[7] भरत[8] तथा अपने पति को भी मानती और बताती हैं[9] क्योंकि उनके हृदय में भौतिक रूपेण सापत्न्य द्वेष विद्यमान है और इसका कारण भी स्पष्ट है कि कैकेयी के ही कारण उन्हें यावज्जीवन दुःख ही सहन करने पड़े।[10] शोकावेग उन्हें अपने पति में भी दोष दर्शन[11] के लिये विवश कर देता है। उनका वाक् संयम भी शोक के प्रबल झंझावात से विनष्ट हो जाता है। अतएव उनका क्षोभ उनकी वाणी में कराह उत्पन्न कर देता है जिससे उस मूर्धाभिषिक्त पटरानी की यथार्थ पारिवारिक स्थिति प्रत्यक्ष अंकित हो उठी है और पाठकगण की सहानुभूति एवं करुणापूर्ण रूपेण उनके प्रति जागृति हो उठती है। इस रूप में वाल्मीकि ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से उनका सजीव एवं यथार्थाङ्कन किया है।

---

१. 'बद्ध वत्सा यथाधेनू राममाताभ्यधावत।
तथा रूदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम्।
क्रोशन्तीं रामरामेति हा सीते लक्ष्मणेति च।
राम लक्ष्मण सीतार्थं स्त्रवन्तीं वारि नेत्रजम्।
असकृत्प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिव मातरम्॥' वा० रा० २।४०।४३ से ४५।

२. 'सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुनावने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता॥....
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्।
उपावृत्योत्थितां दीनां बडवामिव वाहिताम्।
पांसुगुण्ठित सर्वाङ्गी विममर्श च पाणिना॥' वा० रा० २।२०।३२ से ३४।

३. 'तदक्षयं महद्दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात्
विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव
अपश्यन्ती तवमुखं परिपूर्ण शशिप्रभम्
कृपणा वर्त्तयिष्यामि कथं कृपणजीविका॥' वा० रा० २।२०।४६,४७।

४. वा० रा० २।२०।४९।

५. वा० रा० २।२१।५१।

६. वा० रा० २।२४।५,३३,३६।

७. वा० रा० २।२१।२२।

८. वा० रा० २।७५।११ से १७।

९. वा० रा० २।६१।२६।

१०. (१) वा० रा० २।१२।६७ से ७०।
(२) वा० रा० २।७०।१२।

११. वा० रा० २।

परन्तु मानस की कौशल्या

'धीरज धरम मित्र अरु नारी ।
आपत् काल परखिए चारी ।।'[1]

के अनुसार अपने धैर्य एवं पातिव्रत धर्म की परीक्षा देती हुई उस भौतिक संकट-कालीन परिस्थिति में सहनशीलता के बल पर साफल्य प्राप्त करती हैं । 'विवेक' उनका चिर सहचर है फिर वे 'दोष दर्शन' किस प्रकार से कर सकती थीं क्योंकि भक्ति के 'सपनेहुँ नहि देखिय पर दोषा'[2] के सिद्धान्त का अक्षरश: प्रतिपालन करना उनका ध्येय बन चुका था क्योंकि वे तो 'सोइ विवेक' प्राप्ति की अधिकारिणी बन चुकी थीं । अतएव वे वनवास का समाचार पाकर रामायण में वर्णित संकीर्ण हृदयता का परिचय न देकर अपनी उदारता का ही प्रमाण देती हैं । राम की विमाता के प्रति उनके हृदय में कोई क्षोभ नहीं, कोई आवेश नहीं अपितु उनमें अपने से दस गुणा महत्व ही दर्शाती हैं ।

'जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ काननु सत अवध समाना ।।'[3]

जहाँ रामायण में कौशल्या राम से वन गमन के लिये हठधर्मी करती हैं[4] वहीं मानस में उनकी भावना कर्त्तव्य का संघर्ष अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है जिससे उनकी स्नेह प्रवणता एवं अन्तर्द्वन्द के दर्शन होते हैं ।

'जौ सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरें हृदय होइ संदेहू ।।........
यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बड़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ।।'[5]

वे उस 'अवधि का सम्बल' ग्रहण कर अपनी वात्सल्य रस मय आतुर भाव प्रवणता का भी परिचय देती हैं ।

'बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात ।।'[6]

स्नेह कातर कौशल्या 'धरम', सनेह दोनों से अभिभावित हैं अतएव दोनों का एक साथ

---

१. मा०
२. मा० ३।३५।४।
३. मा० २।५५।१,२।
४. (१) मरण लालसा वा० रा० २।२०।५०,५१,५३, २।२१।२७।
(२) राम को परलोक भय दिखाना वा० रा० २।२१।२८।
(३) वरदानों का विरोध करना वा० रा० २।२१।२३,२५,५२।
(४) स्वयं को ले चलने का प्रस्ताव वा० रा० २।२४।१९।
५. मा० २।५४।६,२।५६।
६. मा० २।६८।

पालन करती हैं। स्वयं ही कर्त्तव्यशीला नहीं हैं। अपनी विवेकशीलता द्वारा वे रघुकुल शिरोमणि राजा दशरथ को भी धैर्य को प्रेरणा देती हैं।

'धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥'[१]

रामायण की शंकाशीला कौशल्या मानस में सबके प्रति अपनी स्नेहमयता का परिचय देती हुई रसप्लावित करती हैं। इस तथ्य के निराकरण के लिये यह स्थल ही पर्याप्त होगा।

रामायण में कौशल्या भरत गमन के प्रसंग में अपने हृदय का क्षोभ भरत के प्रति व्यक्त करती हैं।

'इदं ते राज्य कामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्
संप्राप्तं बतकैकेय्या शीघ्र क्रूरेण कर्मणा
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वन वासिनम्
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनो
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति........
काम वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि।........'[२]

कैकेयी ने बड़ा क्रूर कर्म करके यह राज्य, राज्याकांक्षी तुम्हारे लिये प्राप्त किया है। तुम्हें अब निष्कंटक राज्य मिल गया है। क्रूर कर्मा कैकेयी चीर वल्कल पहिनाकर मेरे पुत्र को वनवास देने में कौन लाभ देखती है? कैकेयी को मुझे भी शीघ्र वहाँ भेज देना चाहिये। जहाँ राम हैं। अथवा तुम्हो स्वयं ही मुझे (राम के पास) पहुँचा दो।

परन्तु इस स्थल पर मानस में अत्यन्त संयमशीला माँ की भाँति वे वात्सल्य रस से विभोर हो उठती हैं तथा उन्हें भी धैर्य एव आश्वासन प्रदान कर उदार हृदयता का परिचय देती हुई अपने गूढ़ विवेक का ही प्रतिष्ठापन करती हैं।

'मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥
सरल सुभाय मायं हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥....
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जानि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥'[३]

उक्त विवेचन का तात्पर्य यह नहीं कि रामायण की कौशल्या का चरित्र निम्न है। उनमें मानवोचित दुर्बलताओं के साथ-साथ मानवीय गुणों का भी पूर्ण विकास है। वे पातिव्रत धर्म की सम्यक् ज्ञाता हैं।[४] समाज मे नारी के रूप, धर्म को वे जानती हैं।[५]

१. मा० २।१५३।७।
२. वा० रा० २।७५।११-१३।
३. मा० २।१६४। से १६४ से १६४।१,४ से ६ तक।
४. वा० रा० २।३९।२० से २५।
५. वा० रा० २।६२।१०।

पत्नी के साथ-साथ मातृत्व का भी उनमें चरम विकास है। मंगलाकांक्षिणी माँ की शुभ कामनाओं का स्वरूप उनके स्वस्ति वाचन रूप में अंकित है।[1] जिसमें उनकी धार्मिकता, आशीर्वचन, देवनिष्ठा, विश्वाराधिका रूप तथा सर्वव्यापिनी दृष्टि का परिचय मिलता है।

'शीघ्रं च विनिवर्तस्य वर्तस्व च सतांक्रमे
यत्पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु
येम्य: प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभि:
यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणै: समुदितं सदा
पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा
सत्येन च महाबाहो चिरंजीवाभिरक्षित:।....
स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभि:।
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा।।....
आगमास्ते शिवा: सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमा:
सर्व संपत्तयो राम स्वस्तिमागच्छ पुत्रक....
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्ता तथर्षय:
ये च शेषा: सुरास्ते तु रक्षन्तु वन वासिनम्।'[2]

स्व पुत्र को आशीर्वचनों से अभिषिक्त कर, उसकी कल्याण कामना से अनेक धार्मिक कृत्य कर, अनेक सांस्कृतिक धर्म विधान सम्पन्न किये।

'गन्धैश्चापि समालभ्य राममायत लोचना।
औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च।।'[3]

(सिर में गन्ध माल्यादि किया और सिद्ध, विशल्यकारिणी औषधि हाथ में बांधी तथा मन्त्र पढ़कर उनकी रक्षा का विधान किया।)

मानस में उनके चरित्र की महानता का एक रूप है, वह है उनका सामाजिक रूप। वे भक्ति स्वरूपिणी हैं, पतिव्रता देवी हैं, धैर्यशीला हैं। इसी भांति वे आदर्श श्वश्रू के रूप में इस वर्ग के लिये आदर्श स्तम्भ हैं। उनका अपनी पुत्रवधू के प्रति व्यवहार श्लाघ्य है।

'नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउं प्रान जानकिहिं लाई।।
कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊं।।'[4]

---

१. वा० रा० २।२५।२ से ३६ तक।
२. वा० रा० २।२५।२ से ६, ८, २१,२५।
३. वा० रा० २।२५।३७,३८।
४. मा० २।५८।२,३.६।

उनका 'वधू प्रेम' अनेक स्थलों पर वर्णित है ।[1]

रामायण की भावप्रवण देवी कौशल्या अपने शील सदाचार में मानस से कुछ कम नहीं हैं । भरत स्वयं कैकेयी से कहते हैं ।

'तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी ।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते ।।'[2]

बहुदर्शिनी माता कौशल्या भी तुझसे बहिन का सा व्यवहार करती थीं । वे आदर्श गृहिणी थीं इसका परिचय स्वयं दशरथ देते हैं ।

'यदा-यदा हि कौसल्या दासीव च सखीव च ।
भार्यावत् भगिनीवच्च मातृवच्चो प्रतिष्ठति ।।'[3]

(मेरी रानी कौशल्या दासी के समान, सखी के समान, भार्या के समान, बहिन सम तथा माता के समान हर प्रकार की मेरा सेवा शुश्रूषा के लिये उपस्थित रहती है ।)

गृह में ही नहीं सामाजिक दातृत्व भी उनका कम न था । प्रतिवर्ष अनेकों स्नातक गुरुदीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उनसे विवाह निमित्त आर्थिक सहायता प्राप्त किया करते थे ।[4] कौशल्या अपने पिता के घर से प्राप्त 'स्त्रीधन'[5] द्वारा उनकी सहर्ष सहायता किया करती थीं ।

महाकवियों के दृष्टिकोण में भिन्नता के कारण दोनों में कौशल्या के चरित्रान्तर्गत पर्याप्त अन्तर है ।

रामायण में कौशल्या के मानवीय रूप का यथातथ्य इतिहास अंकित है तो मानस में उनके दैवी रूप का आदर्श तेजस्वी रूप चित्रित है । प्रथम के प्रति हम उनके समकक्ष स्थित होकर करुणा, सहानुभूति प्रगट करते हुये उसके दुःख सुख के सम भागी बनते हुये उनकी सराहना करते हैं तो मानस की कौशल्या को हम अलौकिक सोपान पर आसीन होकर उन्नत ग्रीवा कर उस पर अवलोकन कर श्रद्धा समर्पित करते हैं ।

कैकेयी

अन्य चरित्रों की भाँति कैकयी के चरित्रांकन में भेद है क्योंकि रामायणकार ने कैकयी का चित्रण करते समय यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है, वहाँ तुलसी ने दो दृष्टिकोण अपनाये हैं । वे अपने भक्त रूप के कारण कैकेयी के चरित्र की सुरक्षा करते हैं । वे

---

१. मा० २।६८।६ से २।६९ तक ।
२. वा० रा० २।७३।१०।
३. वा० रा० २।१२।६९।
४. 'मेखलीनां महासंघः कौसल्यां समुपस्थितः ।
तेषां सहस्रं सौमित्रे प्रत्येकं संप्रदापय ।।' वा० रा० २।४२।२१।
५. वा० रा० २।३१।२२,२३।

कैकेयी के दुर्गुणों की मूल प्रेरणा सरस्वती को बताते हैं, परन्तु इस निर्दोष रूप के साथ साथ ही कैकेयी का सदोष रूप भी अंकित किया। इस प्रकार कैकेयी के द्विविध रूपों में प्रथम में तुलसी का भक्त एवं भाग्यवादी रूप है तथा द्वितीय में उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है।

रामायण की कैकेयी के चरित्र में जीवन है, स्पन्दन है और महत्वाकांक्षा की प्रेरणा है। वे सौन्दर्य गर्व से अभिभूता हैं, उदात्त भावनाओं से समन्वित होने पर भी महत्वाकांक्षा की सिद्धि के लिये कठोरतम रूप भी धारण करती हैं।

रामायण की कैकेयी के चरित्र का विश्लेषण मानस की अपेक्षाकृत व्यापक है। उनके जीवन के सद्गुणों का भी विकास इसमें अंकित है। वे कैकेयी राज कन्या दशरथ की सबसे छोटी रानी थी, अप्रतिम सुन्दरी एवं वीरांगना थीं। अपनी बुद्धिमत्ता, सरलता, निर्भयता एवं पातिव्रत धर्मादि सद्गुणों के द्वारा वे राजा दशरथ के लिये सर्वोपरि मान्य हो गई थी। इन गुणों का परिचय उन्होंने शम्बरासुर युद्ध के समय दिया था। वे स्वयं दशरथ के साथ रण प्रांगण में गई थीं। वहाँ दशरथ के सारथी के मृत होने पर सारथी का कार्य किया तथा उनके रथ की धुरी टूट जाने पर धुरी के स्थान पर अपने हाथ का प्रयोग कर, राजा दशरथ युद्ध कार्य में अपनी सहनशीलता एवं बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया। दशरथ इस वृतान्त को जानकर अत्यन्त प्रसन्न एवं कृतज्ञ हो उठे परन्तु त्याग परायणा कैकेयी ने कोई प्रतिदान लेना स्वीकार न किया। केवल यही कह कर दशरथ का अनुरोध टाल दिया कि समय आने पर दो वर माँग लूँगी।[1]

रामायण तथा मानस दोनों में उनका हृदय पहले सपत्नी पुत्र राम के प्रति स्नेह प्लावित एवं शुद्ध ही दर्शाया गया है। मन्थरा द्वारा राम राज्याभिषेक का वृतान्त सुनकर वे आह्लाद ही प्रकट करती हैं।[2]

कैकेयी दोनों ग्रन्थों में राम के गुणों की प्रशंसा करती हुई[3] राम को भरत सम ही

---

१. वा० रा० २।९।११ से १७।

२. (१) 'दत्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा
कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाब्रवीत् इदम्
इदं तु मन्थरे मह्यं आख्यातं परमं प्रियम्
एतन्मे प्रिय माख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ।।' वा०रा० २।७।३३, ३४।

(२) 'सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ।।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ।।'
मा० २।१४।२।८।

३. (१) वा० रा० २।८।१४।
(२) मा० २।१४।५ से ७।

मानने का परिचय देती हैं ।[1] मानस में तो समान ही नहीं राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानती हैं ।[2]

रामायण में उसके चरित्र का विकास अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग पर किया गया है । 'को न कुसंगति पाइ नसाई' के अनुसार मन्थरा से प्रोत्साहित एवं प्रेरित होने के पश्चात् कैकेयी की प्रकृति में नितान्त परिवर्तन हो जाता है[3] जिसके पूर्वापर रूप का चित्रण आदि कवि ने यथातथ्य ही किया है ।

'अपापः पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले
लतामिव विनिष्कृतां पतितां देवतामिव
किन्नरीमिव निर्धूतां च्युतामप्सरसं यथा
मायामिव परिभ्रष्टां हरिणीमिव संयताम्'[4]

निष्पाप राजा ने पाप संकल्पा रानी को लता के समान विनिच्छन्न, देवता तुल्य पतित, किन्नरीवत् निधूत, अप्सरावत् च्युत माया के समान परिभ्रष्ट, हरिणीवत् जाल में फँसी देखा ।

उक्त अवतरण में उसके वास्तविक रूप एवं मन्थरा के कपट जाल का प्रत्यक्ष संकेत निर्दिष्ट है ।

आत्म सुखावह मार्ग की ओर प्रेरित, स्वार्थ लिप्त कैकेयी सामान्य नारीवत् महत्वाकांक्षा के मार्ग पर अग्रसर होती है, दुष्परिणामों का चिन्तन बिना किये हुये ।

मानस में कैकेयी के इस परिवर्तन में केवल कुसंगति ही दोषी नहीं है अपितु वहाँ प्रत्येक घटना जगन्नियन्ता की प्रेरणावश घटित होती है अतएव जन्म जन्मान्तर के लिए 'होहु राम सिय पूत पतोहू' का वरदान याचिका कैकेयी के हृदय में 'भावीवश प्रतीति उर आई ।'[5] का निर्देशन किया गया है । इस कारण का पुष्टीकरण एक स्थान पर नहीं अनेक स्थलों पर तुलसी ने किया है । स्वयं भारद्वाज ऋषि भी कैकेयी को निर्दोष ही प्रमाणित करते हैं ।

'तात कैकइहिं दोष नहिं गई गिरा मति धूति ।'[6]

यही नहीं परात्पर ब्रह्मावतारी राम भी इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं ।

'दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।'[7]

उक्त अलौकिक रहस्यों के आधार पर कैकेयी का चरित्र मानस में निर्दोष प्रमाणित हो जाता है कि उसने भवितव्यता के अधीन होकर ऐसा किया । इसी तथ्य का आधार

---

१. वा०रा० २।८।१८।
२. मा० २।१४।८।
३. वा०रा० २।१०।१।
४. वा० रा० २।१०।२४, २५।
५. मा० २।१८।१।
६. मा० २।२०६।
७. मा० २।२६२।८।

लेकर मानस में गूढ़ रहस्यान्वेषी भक्त गण कैकेयी में दोष दर्शन न करके उसकी सराहना अन्य कारणों के आधार पर करते हैं।

भगवान् श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविका थीं। जो सबसे गुह्य और कठिन कार्य होता है उसको सबके सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है और न हर कोई उसे करने में ही समर्थ होता है। वह कार्य तो अत्यन्त कठोर कर्मी, घनिष्ठ और परम प्रेमी के द्वारा ही करवाया जाता है।

राम रूपी सूत्रधार को कुछ भी भाग दें, उनके नाट की सांगता के लिये उनकी आज्ञानुसार इसे तो वही खेल खेलना है।....

....कैकयी अपना पार्ट बड़ा अच्छा खेलती है।....[1]

अतएव मानस में उनकी ग्लानि भी व्यक्त की गई है। "राजकाज" में सहायिका होने पर भी उन्हें ग्लानि होती है राम विरोधी बनने की। इसी लिए चित्रकूट में उनक ग्लानिमय रूप स्पष्टत: अंकित है। तुलसी ने अध्यातम रामायण के आधार पर कैकेयी के क्षोभ का संकेत किया है।

'अवनि जमहि जाचत कैकेयी। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।'[2]

परन्तु राम की दृष्टि में वे निर्दोष हैं क्योंकि उन की ही प्रेरणानुसार उन्होंने अपना कार्य किया है अतएव वे कैकेयी में भक्ति प्रवणता के ही दर्शन करते हैं।

'प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभायं भगति मति भेई।।'[3]

कैकेयी के उदात्त भावों का परिचय अन्त तक सूचित होता है कि एक बार रामा विरोधी बनने का दुःख यावज्जीवन उनके हृदय से नहीं गया।

'रामहिं मिलत कैकई हृदयं बहुत सकुचानि।'

'कैकई कहं पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।'[4]

यदि यह अलौकिक प्रेरणा का रूप हटा दिया जाय तो कैकेयी के चरित्र विकास में लगभग पूर्ण साम्य है।

वह महत्वाकांक्षिणी हो उठती है,[5] स्वार्थलालसा की प्रचंड प्रेरणा उसे सर्पिणी एवं सिंहिनी बनने के लिये बाध्य कर देती है,[6] पतिप्रिया एवं पति परायणा कैकेयी अपने संकल्प पूर्ति के लिए अपने पति का भी कटु विद्रोह करती है,[7] कटु व्यंग बाणों की वर्षा करती है।[8]

---

१. कल्याण, १३वां अंक, पृष्ठ ८४, ८५।
२. मा० २।२५११६।
३. मा० २।२४३।७।
४. मा० ७।६। क, ख।
५. (१) वा० रा० २।११।१-८१।
   (२) मा० २।१५८।२, ३।
६. मा० २।२२।३।
७. मा० २।२४।छंद।
८. मा० २।२९।२ से ८।

उनकी सत्यसंघता में उन्हीं को बाँध कर अपना स्वार्थ सिद्ध करती है ।[1] उसकी 'रोष तरंगिनी' में विवेक नौका जर्जरित हो जलमग्न-सी हो जाती है और वह अत्यन्त अमर्यादित रूप को ग्रहण करती है ।[2] संक्षेपतः सापत्न्य द्वेषकारिणी त्रिया चरित्र का[3] अनेक मनोदशाओं एवं चेष्टाओं का संकलन दोनों कवियों ने कैकेयी के चरित्र में किया है । वह दशरथ को सत्य बंधन तथा अनेक धमकियों द्वारा विवश कर त्रस्त करती है ।[4]

रामायण में वह अपने दुःसंकल्प का समर्थन पूर्वजों की परम्परा द्वारा करके अपने तार्किक रूप का भी परिचय देती है । उसे अनेक नैतिक सिद्धान्तों का भी सम्यक् ज्ञान है।[5] परन्तु उसकी तर्कशीलता एवं नीतिज्ञता स्वार्थान्धकार के गर्त के पतित होने में ही सहायिका हुई है, उन्नायिका नहीं । अतएव उसका परिणाम भी तथैव भयंकर प्राप्त हुआ ।

दोनो ही ग्रन्थों में उसका तिरस्कार एवं सर्ववहिष्कार ही वर्णित है । रामायण में गुरू वशिष्ठ, ग्राम निवासी सभी की वह निन्दा की पात्रा बनती है और उससे भी अधिक विषमता है आत्मज भरत द्वारा उसका परित्याग एवं कटु अवमानना प्राप्त होना ।

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में ही उनका जीवन सामान्य वर्ग को नारी के समान ही चित्रित किया गया है ।

रामायण में तेजस्विनी, कर्त्तव्य परायणा, सौन्दर्यमयी रमणी कैकेयी कपटनीतिज्ञा मन्थरा के वाग्जाल में आविद्ध होकर पति पुत्र एवं समाज के द्वारा तिरस्कृत जीवन यापन करती है ।

मानस में उदार हृदया, परोपकारिणी पति पुत्र प्रिया, साम्राज्ञी 'भावी' एवं मन्दमति चेरी के भुलावे में आकर राजमाता की महत्वाकांक्षा से अभिशप्त होकर यावज्जीवन प्रतारणा, ग्लानि एवं क्षोभमय जीवन व्यतीत करती है । रामायण की अपेक्षाकृत मानस में उसके चरित्र के दृष्टिकोण में परिष्कार किया गया है ।

सुमित्रा

दोनों काव्य ग्रन्थों में सुमित्रा का चरित्र चित्रण अत्यत संक्षिप्त रूपेण चित्रित किया गया हैं परन्तु इस संक्षिप्त झांकी में भी उनके अप्रतिम गुणों की भव्य प्रतिमा प्रदर्शित की गई है ।

रामायण में वे राम वन गमन के समय विलाप करती हुई कौशल्या को आश्वस्त करती हैं । इस प्रसंग में उनका अत्यन्त तेजोदृप्त एवं विवेकशील, धर्मनिष्ठ[6] एवं सूक्ष्म दृष्टा का रूप प्रतिभासित होता है ।

वे राम के उत्तम गुणों की सम्यक् सराहना करती हैं ।[7] जिसमें में राम के अप्रतिम

---

१. मा० २।२७।४ से ७ तथा २।२८।१ से ३।

२. मा० २।३३।१ से ४ तथा २।३४।३ से ८।

३. मा० २।२४।६, ७ तथा २।२६।

४. मा० २।३४।८, २।३३।

५. वा० रा० २।१२।४२, ४३।

६. 'इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत्' । वा० रा० २।४४।१।

७. 'तवार्य सदगुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः ।....
साधु कर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनम ।।

गुणशाली रूप के साथ साथ उनके अलौकिक दिव्य तत्व का भी सम्यक्रीत्या परिचय देती हैं।[1] असमय में इस प्रकार का संयत आश्वासन देना उनकी विवेकशीलता का ही निदर्शन है।

आदि कवि ने रानी सुमित्रा का संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय निम्नांकित श्लोक में ही समाहित कर दिया है।

"आश्वासयन्ती विविधैश्च वाक्यैर्वाक्योपचारे कुशालानवद्या।
रामस्य तां भातरमेवमुक्त्वा देवी सुमित्रा विरराम रामा।।'[2]

इस प्रकार संवादकुशल, निर्दोष और मनोहर राजपत्नी सुमित्रा विविध रीति से राम माता कौशल्या को आश्वासन देकर स्तब्ध हुई।

उक्त सभाषण प्रभावोत्पादक एव सारगर्भित था अतएव राजपत्नी कौशल्या का शोक तुरन्त नष्टप्राय भी हो गया।

'सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः'[3]

मानस में सुमित्रा का चरित्र केवल विवेकशील ही अंकित नहीं किया गया है अपितु उनके अनेक लक्षणों एवं अन्य मनोभावों का भी चित्रण है।

वे अत्यन्त मितभाषिणी हैं, सांसारिक प्रपचों से उन्हें सदा विरक्ति सी रहती है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि उन्हें अयोध्या की भीषण क्रान्ति का किंचित भी ज्ञान न था। लक्ष्मण जब स्वयं विदा माँगने गए तो उन्हें भयानक कौतुक का समाचार विदित हुआ जिसे सुनते ही सूक्ष्मदर्शी एवं दूरदर्शिनी सुमित्रा के नेत्रों के सन्मुख भावी अन्धकार छा गया।

'गई सहमि सुनि बचन कठोरा।
मृगी देखि जनु दव चहुं ओरा।।'[4]

इस प्रकार भावी दृढ़ आशंकाओं से त्रस्त सुमित्रा की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दशा का चित्रण सूक्ष्मदर्शी गोस्वामी जी ने अत्यन्त सफलता से किया है।

'समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील सुभाव।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि कोन्ह कुदाव।।'[5]

---

२ शिष्टैरा चरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन्।।....
न हि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः।।' वा० रा० २।४४।२, ३, ४, २६।

१ 'सूर्यस्यापि भवेत्सूर्या ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्रया कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा।।
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे।।' वा० रा० २।४४।१५, १६।

२. वा० रा० २।४४।३०।

३. वा० रा० २।४४।३१।

४. मा० २।७२।६।

५. मा० २।७३।

अपने परिजन के प्रत्येक पात्रों की भावी दशाओं का वास्तविक अनुमान तुरन्त लगा लेना उनकी बुद्धि निपुणता का परिचायक है। ऐसे विषम संकट के समय वे क्षण भर उपयुक्त चिन्तन करते समय अवाक अवश्य हुई परन्तु उनके मुख से किसी की कटु आलोचना का अमर्यादित शब्द न निकला अपितु परम धैर्यशीला रूप में अपने पुत्र को सहर्ष विदा देने लगीं। विदा ही नहीं दी अपितु उन्हें पथ का पाथेय भी दिया अत्यन्त सारगर्भित नीति, धर्म, भक्ति एवं वात्सल्य प्लावित उपदेशामृत रूप में।

'तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही।
अवध तहां जहं राम निवासू। तहंइ दिवस जहं भानु प्रकासू।।'
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नातें।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।
भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाऊँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ।।'[1]

इससे भी अधिक वे जीवन को पूर्ण कृतकृत्य बनाने के साधन का निर्देश करती हैं।

'रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।'[2]

इस प्रकार उक्त मन्त्रावली में सुमित्रा ने राम का अलौकिक रूप ज्ञान कराया। अपनी तत्वज्ञता तथा निष्काम सेवा धर्म का आदेश देकर उन्होंने अपनी सेवा परायणता का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया। अप्रत्यक्षरीत्या व्यावहारिक धर्म का भी आदर्श उपस्थित कर आपने सन्तोष लाभ किया।

'तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू।।'[3]

समस्त नारी समाज में राम भक्त पुत्र युक्ता माता को ही पुत्रवती की मान्यता प्रदान करना उनकी भक्ति प्रवणता का सूचक है जिसमें भक्त कवि तुलसी की भक्तिमत्ता का प्रभाव भी अंकित है।

इस प्रकार रामायण की अपेक्षाकृत मानस की सुमित्रा धैर्य एवं विवेक में समान होने पर भी विशेष स्थितप्रज्ञ एवं भाव प्रवण हैं। राम प्रेम का माध्यम ही उनका वात्सल्य प्रेरक है।[4]

सुग्रीव

चरित्र की दृष्टि से सुग्रीव का स्थान वस्तुत: सामान्य वर्ग में निर्धारित किया जा

---

१. मा० २।७३।२ से २।७४ तक।
२. मा० २।७४।५, ६।
३. मा० २।७४।७।
४. 'भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।' मा० ७।६। क।

सकता है परन्तु उनका महत्व दोनों ग्रन्थों में राजनीतिक ही अंकित किया गया है क्योंकि सुग्रीव से सन्धि के द्वारा ही राम के आवश्यकीय कार्य सम्पादित हुये।

रामायण में राम सुग्रीव मिलन का वातावरण भी राजनीतिक ही है जब कि मानस में आध्यात्मिक है।

रामायण में राम लक्ष्मण को देख भीरु सुग्रीव सशंकित हो उठते हैं और उनके वास्तविक परिचय की जिज्ञासावश अपने मंत्री हनुमान को भेजते हैं। उन्हें देखते ही राम लक्ष्मण से राजनीतिक दृष्टि से सुग्रीव का परिचय देते हैं।

'सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः।।'[1]

(यह वानरों के राजा महात्मा सुग्रीव का मंत्री है जो उन्हीं की आकांक्षा करते हुये मेरे पास आया है।)

इसी कारण सुग्रीव रामायण में 'शरण्य' वर्णित किये गये हैं[2] जबकि मानस में तुलसी ने 'शरणापन्न' सुग्रीव का चित्रण किया है।[3]

रामायण की अपेक्षाकृत मानस के सुग्रीव में भी तुलसी ने भक्ति भावना केन्द्रित करने की चेष्टा की है। राम के साथ प्रथम परिचय के समय सुग्रीव की भावना भक्ति भाव से अनुप्राणित ही दर्शायी गई है।[4]

रामायण में राम सुग्रीव मैत्री का लक्ष्य विशेषतः राजनीतिक है, मानस में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से युक्त है, क्योंकि अग्नि साक्षी के सम्मुख मित्रता के ग्रन्थि बंधन के पश्चात् गोस्वामी जी उस मैत्री की व्याख्या करते हैं जिससे सुग्रीव को निष्कपट हृदयता एवं भगवत्कथानुराग ही व्यक्त होता है।

'कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा।।'[5]

इस प्रकार मानस के सुग्रीव में दास भाव, सखा भाव दोनों का सम्मिश्रण है। वे मित्रवत् राम को आश्वस्त कर उनके सीतान्वेषण कार्य के प्रति तत्परता दर्शाते हैं।[6]

रामायण में मानस की अपेक्षाकृत सुग्रीव का मैत्री भाव अधिक दृढ़ एवं स्वाभाविक चित्रित हुआ है जैसा कि स्वयं राम के शब्दों मे व्यक्त होता है।

---

१. वा० रा० ४।३।२६।
२. 'सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा।
गुरूर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः।।' वा० रा० ४।४।२०
३. 'नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।' मा० ४।३।२, ३।
४. 'जब सुग्रीवं राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा।।' मा० ४।३।८।
५. मा० ४।४।१।
६. 'कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।' मा० ४।४।७।

'त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ ।'[१]

(तुम मेरे प्रिय मित्र हो, प्रिय हो, हमारा और तुम्हारा दुःख सुख एक है ।)

परस्पर मैत्री के परिणाम स्वरूप राम रामायण में 'सुग्रीव' को मित्र मानकर उनका उपकार करते हैं जब कि मानस में वे शरणागत वत्सलता का परिचय देकर अपने आर्त शरणापन्न भक्त की दीन दशा से पीड़ित होकर संकल्प करते हैं ।[२]

रामायण में स्वयं राम सुग्रीव के मित्र रूप की सराहना करते हैं ।

'कर्त्तव्यं यदवयस्येन स्निग्धेन च हितेन च
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्वया
एष च प्रकृतिस्थो हनुमनीतस्त्वया सखे
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ।'[३]

'अर्थात् हे सुग्रीव ! हितैषी और विश्वासी मित्र को जो करना चाहिये उसके अनुरूप और युक्त ही तुमने किया है । हे मित्र, तुम्हारे द्वारा समझाये जाने से मैं स्वस्थ चित्त हुआ हूँ । ऐसा बंधु विशेषकर इस काल में मिलना दुर्लभ है ।

रामायण के सुग्रीव को अपनी इस मैत्री पर गौरव एवं स्वाभिमान है जिसमें वे 'समानता में मैत्री' की शोभा का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुये आत्म प्रशंसा भी करते हैं[४] परंतु मानस में गोस्वामी जी उनके मुख से निज गुण प्रशंसा का संकेत नहीं करते क्योंकि सेवक तो स्वामी के समक्ष नितान्त लघु होता है अतएव निज प्रशंसा करना मर्यादोल्लंघन हो जाता ।

बालि के भीषण पराक्रम से त्रसित सुग्रीव की राम के बल के प्रति स्वाभाविक आशंका दोनों ग्रन्थों में वर्णित है परन्तु उस शंका की निवृत्ति के चित्रण में पर्याप्त अन्तर है । रामायण में दुन्दुभि अस्थि एवं सप्त ताल वेध देखकर सुग्रीव शंका रहित होकर बालि वध के लिये राम को प्रेरित करता है[५] परन्तु मानस में इस प्रभु प्रताप के अलौकिक दृश्य का दर्शन करते ही, ऐश्वर्य दर्शन से उनमें प्रीति की अनन्यता का विस्तार हो गया और वे बालि को भी अपना परम हित मानकर, विराग भावना से अभिभूत होकर 'सब तज हरि भज' के अनुयायी हो गये तथा कहने लगे ।

'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजनु करौं दिन राती ।।'[६]

---

१. (१) वा० रा० ४।५।१८।
(२) सुग्रीव द्वारा । वा० रा० ४।७।१४।

२. (१) 'मुनि सेवक दुख दीन दयाला । फरकि उठीं द्वै भुजा विसाला ।।' मा० ४।५।१४।
(२) संकल्प । मा० ४।६।

३. वा० रा० ४।७।१७, १८।

४. 'अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः ।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान्गुणान् ।।' वा० रा० ४।७।५।

५. वा० रा० ४।१२।१०, ११।

६. मा० ४।६।२१।

परन्तु फिर प्रभु माया की ही प्रेरणा से 'नट मरकट' की भाँति उन्हें कर्मक्षेत्र में निरत होना पड़ा ।[1]

बालि वध के अनन्तर सुग्रीव के चरित्र की मानवीय दुर्बलता का चित्रण दोनों काव्य ग्रन्थों में किया गया है परन्तु रामायण में मानवीय दुर्बलताओं का निदर्शन मानस की अपेक्षा अधिकतर है ।

रामायण में सुग्रीव बालि वध को प्रत्यक्ष देख शोक से पीड़ित हो उठा । बन्धु वियोग से वह स्वनिन्दा करता हुआ बालि के गुणों का स्मरण करता हुआ आक्रोश करने लगा[2] परन्तु मानस में प्रभु शरणागति के आतपत्र की छाया में आने से वह 'शोक मोह' से परे हो चुका था । अतएव इस स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक रूप का मानस में अभाव है ।

इसके अतिरिक्त सुग्रीव की असावधानी का दिग्दर्शन दोनों ग्रन्थों में है । दोनो ग्रन्थों में कर्त्तव्यनिष्ठ हनुमान द्वारा सुग्रीव को उनकी कर्त्तव्य मार्ग की अवहेलना के प्रति सचेत कराना वर्णित है ।[3]

रामायण में सुग्रीव का अत्यन्त विलासी, कामुक एवं मद्यप रूप भी चित्रित है[4] जब कि मानस में 'विषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना' ही कह कर उस रूप पर मर्यादा का आवरण डाल दिया गया है ।[5]

दोनों ग्रन्थों में सुग्रीव अपने अपराधों की क्षमा याचना करते हुए,[6] भोग वासना से विलग हो कर्तव्य मार्ग की ओर प्रेरित होते हैं ।

इस प्राथमिक वैभव प्राप्ति के मदोन्माद से जागृत होने के पश्चात् सुग्रीव के जीवन में गम्भीरता एवं कठोरता का आभास मिलता है । रामायण तथा मानस दोनों में उनकी राजाज्ञा, उनकी दृढ़ता की परिचायिका है । वे एक दण्डधारी राजा की भाँति अदिष्ट कार्य न कर सकने पर कठोर दंड भी निर्धारित कर देते हैं ।[7]

राजनीति की गुप्त चालें उन्हें भली प्रकार अवगत हैं इसीलिए एक मित्र राजा की भाँति वे राम को भी विभीषणागमन के प्रसंग में समयानुकूल मन्त्रणा देकर सचेत करते हैं ।

---

१. मा० ४।६।२६।

२. वा० रा० ४।२४।

३. (१) वा० रा० ४।२९।१० से २८ तक ।
   (२) मा० ४।१८।२।

४. वा० रा० ४।३१।२३, ३९, ४।३३।४३, ४८, ५४, ५५।

५. मा० ४।१८।३।

६. (१) वा० रा० ४।३६।११, ४।३८।१९।
   (२) मा० ४।१९।७, ४।२०।२१।

७. (१) 'अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया ।
   हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासन दूषका: ।।' वा० रा० ४।३७।१२।
   (२) 'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएं ।
   आवइ बनिहि सो मोहि मराएं ।।' मा० ४।२१।८।

रामायण[1] तथा मानस[2] दोनों की मन्त्रणा के भावों में लगभग साम्य ही है परन्तु मानस की अपेक्षा रामायण में उनका चरित्र उसी प्रसंग के उत्तरार्ध में उदात भावों से युक्त भी चित्रित किया गया है। विभीषण के प्रति राम के अभयदान दिये जाने पर सुग्रीव स्वयं अपनी अन्तरात्मा की स्वच्छता का परिचय देते हुये कहते हैं।

'ममचाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम्।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वत: सुपरीक्षित:।।
तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव।
विभीषणो महाप्राज्ञ: सखित्वं चाभ्युपेतु न:।।[3]

अर्थात्, मेरी आत्मा भी यही कहती है कि अनुमान भाव और सब प्रकार से परीक्षा लेने से यही ज्ञात होता है कि विभीषण का चित्त शुद्ध है सो हे राघव! विभीषण भी हम लोगों के समान व हम लोगों के सखा हों।'

सुग्रीव की कार्य कुशलता एवं सैन्य संचालन की शक्ति का अनुमान लगाकर ही रावण ने शुक नामक राक्षस को सुग्रीव के पास भेजा और भेद नीति का अवलम्ब लेकर सुग्रीव को राम पक्ष से हटाने का प्रयास किया[4] परन्तु सुग्रीव की स्थिरता, गम्भीरता का प्रमाण उनका रावण के संदेश का प्रत्युत्तर है।

'न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धस्ततोऽसि बालीव बधार्ह वध्य:।।'[5]

तुम हमारे मित्र, अनुकम्प्य, उपकर्ता या प्रिय कुछ भी नही हो किन्तु तुम राम के शत्रु होने से बाली के तुल्य वध्य हो। ·····इत्यादि।

उक्त संदेश में उनकी वीरोत्साहमयी दर्पपूर्ण ललकार अंकित है। इसके अतिरिक्त रामायण के अनेक प्रसंगों में उनका कर्मठ रूप अंकित है।

वे शोकाकुल राम को सारगर्भित आश्वासनों द्वारा शान्त करते हैं,[6] वीर समिति की स्थापना कर आदर्श सैन्य संचालन करते हैं।[7] सुबेल पर्वत के शिखर से उछलकर रावण के गोपर पर कूद कर अपने अप्रतिम साहस का परिचय देते हैं। वहाँ पहुँचकर रावण को

---

१. वा० रा० ६।१७।१९ से २९ तक।
२. मा० ५।४२। ४, ६, ७।
३. वा० रा० ६।१८।३७, ३८।
४. 'त्वं वै महाराज कुलप्रसूतो महाबलश्चर्क्षरज: सुतश्च
नकश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थस्तथापि मे भ्रातृसमो हरीश
अहं यद्यहां भार्यां राजपुत्रस्य धीमत:
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्य तारम्' वा० रा० ६।२०।१०, ११।
५ वा० रा० ६।२०।२४।
६. वा० रा० ६।२।२ से २६।
७. वा० रा० ६।२४।१

तुच्छ जानकर उसका अपमान करते हैं। उक्त ललकार से क्षुभित रावण के साथ द्वन्द्व युद्ध में अपने विभिन्न युद्ध कला कौशल का परिचय देते हैं।[1] रावण को राक्षसी माया का प्रारम्भ करते देख तुरन्त आकाश मार्ग से राम के समीप आ जाते हैं।

मानसकार ने तो रघुकुल शिरोमणि के प्रताप को ही मूल प्रेरक माना है अन्य जीव तो निमित्त मात्र ही हैं। । तथैव सुग्रीव की शूरता का वर्णन भी अत्यन्त अल्प मात्रा में किया है। मानस में भी उनके द्वारा सैन्य संचालन का संकेत किया गया है परन्तु उसमें मूल प्रेरणा 'रामस्मरण' की है। अतएव उनकी कार्य कुशलता नगण्यप्राय है केवल कुम्भकर्ण के साथ युद्ध प्रसंग में तथा मेघनाद की शर वर्षा के विवरण में हम सुग्रीव को युद्ध करते हुये पाते हैं जबकि रामायण में वे केवल कुम्भकर्ण के साथ ही युद्ध नहीं करते अपितु कुम्भ, विरूपाक्ष एवं महोदर जैसे विशालकाय दैत्यों का वध भी करते हैं।

देश देशान्तरों में परिभ्रमण करने के कारण उनका भौगोलिक ज्ञान भी चरम कोटि का रामायण में व्यापक चित्रण मिलता है।[2] मानस में केवल आभास मात्र।[3]

इस प्रकार सूर्य पुत्र सुग्रीव का चित्रण रामायण में कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में विशेष हुआ है तथा मानस में शरणापन्न सेवक धर्म का निर्वाह करने वाले सखा के रूप में (रामायण में उनका व्यक्तित्व मानस के सुग्रीव की अपेक्षा अधिक सबल है परन्तु मानस के सभी पात्रों की भाँति सुग्रीव भी 'सखा सोच त्यागहु बल मोरे') के कारण सब प्रकार सबल कहे जा सकते हैं। प्रासंगिक कथावस्तु के प्रमुख नायक की दृष्टि से भी रामायण के सुग्रीव का अपेक्षाकृत अधिक महत्व है।

अंगद

रामायण में अंगद का चरित्र मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ चित्रित किया है, मानस में आदर्श।

स्वपितृघाती सुग्रीव के प्रति अंगद का क्षोभ सामान्यतः नितान्त स्वाभाविक है। वे सुग्रीव की कटु आलोचना करते हैं।[4] उन पर पूर्णतः अविश्वास करते हैं और इसी कारण वे उनके दुःखमय बन्धन की अपेक्षाकृत अपनी मृत्यु को श्रेयस्कर समझकर मरने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं।[5]

---

१. वा० रा० ६।४०।७ से ३०।

२. वा० रा० ४।४,।१७ से ६९, ४।४१।७ से ४४. ४।४२।६ से ४९,
तथा ४।४३।१०। से ५८ तक।

३. मा० ६।११।५।

४. 'स्थैर्यमात्मनः शौचमानृशंस्यमथार्जवम्।
विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते ॥.......
तस्मिन्पापे कृतघ्ने तु स्मृतिभिन्ने चलात्मनि।
आर्यः को विश्वसेज्जातु तत्कुलीनो विशेषतः ॥' वा० रा० ४।५५।२,७।

५. (१) 'अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याहं पुरीम्।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥....
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मुखः ॥' वा० रा० ४।५५।१२,१६।
(२) मा० ४।२४।४, ५।

मानस के अंगद इस दृष्टि से संयमशील हैं। संकेत करते हैं परन्तु तुलसी राम भक्त के मुख से उनके सखा की व्यापक निन्दा किस प्रकार करवा सकते थे। उन्होंने अंगद के चित्रण के पूर्व ही उसे राम को सौंप दिया है।[1] तुलसी की भक्ति साधना के कारण मानस के अंगद का राम भक्त रूप ही प्रधान रूपेण चित्रित हुआ है। सुबेल पर्वत पर उन्हें चरण सेवा करते हुये दर्शाया गया है।[2] अयोध्या से लौटते समय उनके आर्त शरणागत रूप की अनन्य प्रीति परम दर्शनीय एवं सरस वर्णित है।[3]

अंगद का बुद्धि कौशल एवं शौर्य दोनों ग्रन्थों में लगभग समान रूपेण ही चित्रित हुआ है। वे एक कुशल सेनानायक हैं, समस्त सेना उनके प्रति स्नेह एवं श्रद्धार्पण करती है तथा उनकी समय-समय पर भूरि-भूरि सराहना ही करती है।[4]

विषम परिस्थिति में उनकी विवेकशीला वाक्चातुरी का परिचय दोनों ग्रन्थों में समान रूप में ही मिलता है। जब सम्पाती वानरों का आहार करने का संकल्प करता है तब उसके भाई जटायु का वृत्तान्त कहकर,[5] उसकी सहानुभूति प्राप्त कराने का श्रेय अंगद को ही है।

दोनों ग्रन्थों में उनका युद्ध कौशल भी वर्णित है। परन्तु रामायण में उनका शौर्य मानस की अपेक्षाकृत अधिक चित्रित है। उनके द्वारा प्रचंड राक्षसी सेना का भीषण संहार,[6] वज्रदंष्ट्रा[7] एवं नरान्तक[8] जैसे भीषण दानवों का वध करना उनकी युद्ध वीरता के निदर्शन हैं।

उनका अप्रतिम साहस वस्तुत: स्तुत्य है।

'स त्रिभिर्नैर्ऋत श्रेष्ठैर्युग पत्समभिद्रुतः।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥'[9]

---

१. 'यह तनय मम-सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये ॥' मा० ४।९। छन्द ॥२॥
२. 'बड़ भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना ॥'
मा० ६।१०।७।
३. मा० ७।१७। से ७।१८।५ तक।
४. (१) वा० रा० ४।६५।२२।
(२) मा० ४।२९।२। तथा मा० ५।२७।७।
५. (१) वा० रा० ४।५६।९ से १५।
(२) मा० ४।२६।७,८।
६. वा० रा० ६।५३।२७ से ३२।
७. वा० रा० ६।५४।१६ से ३५।
८. वा० रा० ६।६९।८२ से ९५।
९. वा० रा० ६।७०।१२।

उन तीनों राक्षसों (देवान्तक, त्रिशिरा एवं महोदर) ने एक साथ ही अंगद पर आघात किया परन्तु वह महातेजस्वी एवं प्रतापी अंगद व्यथित नहीं हुये।

मानस में भी उनके शौर्य पराक्रम का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है[1] परन्तु उनकी मूल प्रेरणा का श्रोत प्रभु प्रताप है।[2] इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें दूत अंगद में मिलता है। मानस के अंगद का दूत कर्म हनुमन्नाटक के आधार पर अत्यन्त विस्तृत रूपेण उल्लिखित है।[3] रामायण में अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया गया है।[4] मानस के दूत अंगद में उनकी तेजस्विता, निर्भीकता आत्मविश्वास एवं स्वामिभक्ति इत्यादि गुणों का उत्तरोत्तर विकास दर्शाया है। उक्त प्रसंग में उनका नीतिज्ञ रूप, उनकी व्यंगोक्तियाँ, धैर्य, साहस, दृढ़ संकल्प एवं सबल व्यक्तित्वादि उनके ऐश्वर्यमय गुणशाली रूप का चित्रण करते हैं। यद्यपि शिष्टाचार की दृष्टि से अंगद ने एक राजा के साथ अमर्यादित व्यवहार किया परन्तु तुलसी ने उक्त निदर्शन के द्वारा दो तत्वों को पुरःस्थापित किया। प्रथमतः आध्यात्मिक द्वितीय व्यक्तिगत।

राम ने अंगद को यही आदेश दिया था।

'काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥'[5]

रावण को युद्धोन्मुख करना ही उसके लिये 'हित' था जैसा कि रावण ने स्वतः संकल्प किया था। अतः वक्रोक्तियों द्वारा रावण उस मार्ग की ओर क्षुब्ध होकर तीव्रता से अग्रसर हुआ।

द्वितीय कारण स्वयं तुलसी का व्यक्तित्व है।

'जाके प्रिय न राम बैदेही।

तजिए ताहि कोटि बैरी सम.....'इत्यादि मानने वाले तुलसी राम विरोधी, स्वअम्बा के अपहरणकर्ता रावण की अंगद द्वारा अवमनाना न कराते तो क्या करते? उनका क्षोभ ही अंगद के माध्यम से अभिव्यक्त हो उठा।

इस प्रकार युवराज अंगद रामायण में अत्यन्त निपुण सेनानायक एवं युद्ध वीर के रूप में चित्रित हुये हैं तथा मानस में स्वामिभक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मवीर एवं 'दैन्य' के प्रतीक राम भक्त रूप में माधुर्य एवं ऐश्वर्य की मिश्रित छटा से सुशोभित हुये हैं।

रावण

यद्यपि दोनों ग्रन्थों में राम के प्रतिनायक रावण का चरित्र राजसी एवं तामसी प्रवृत्तियों का प्रतीक है तथा दोनों में ही वह कुटिल राजनीतिज्ञ, महान् पराक्रमशाली एवं अत्यन्त क्रोधी अंकित हुआ है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने के पश्चात् यह

---

१. मा० ६।१७।४,५।

२. मा० ६।१७।२।

३. मा० ६।१७ से ६।३५ तक।

४. वा० रा० ६।४१।७२,७८ से ८१ तक।

५. मा ६।१६।८।

स्पष्ट हो जाता है कि दोनों महाकवियों ने इस कुख्यात पात्र का चित्रांकन पृथक्-पृथक् रीति से किया है। प्रतिनायक होते हुये भी रामायण में रावण का चित्रण परम ऐश्वर्ययुक्त शोभा-सम्पन्न एवं शौर्य पराक्रम समन्वित किया गया है जब कि मानस में रावण को तामस आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। रामायण के लेखक की भाँति मानसकार निष्पक्ष विवेचक नहीं बन पाये हैं क्योंकि उनका तो एक मात्र आदर्श है।

'जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥'[1]

उक्त सिद्धान्त की झलक उनके द्वारा कृत रावण के चित्रांकन में भी मिलती है। वे वह उदाहरता नहीं दर्शा सके हैं जो महर्षि ने दर्शाई है। गोस्वामी जी राम द्वेषी रावण के प्रति उपेक्षा एवं उदासीनता परिलक्षित करने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। इसलिये उनके प्रतिनायक में वह तीव्रता नहीं आ सकी है जो 'रामायण' के रावण में है।

परन्तु इस अन्तर के अतिरिक्त उल्लेखनीय भेद यह है कि मानस का रावण प्रच्छन्न राम भक्त भी है।

शूर्पणखा से राम का ऐश्वर्य श्रवण करते ही वह संकल्प करता है।
'सुर रंजन भंजन महि भारा। जो भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥'[2]

परन्तु यह राम भक्ति की धारा अत्यन्त प्रच्छन्न ही प्रवाहित हुई जिसकी प्रथम झलक पूर्वोक्त उद्धरण में तथा अन्तिम झलक भी मृत्यु के समय आभासित होती है। वह 'राम नाम' का उच्चारण करते हुये[3] मरणोपरान्त सायुज्य मुक्ति लाभ करता है।

'तासु तेज समान प्रभु आनन।'[4]

इन विशिष्ट विभिन्नताओं के अतिरिक्त दोनों में उसके चरित्र की अनेक विशिष्टताओं एवं दुर्गुणों के उल्लेख में भी पर्याप्त साम्य है।

दोनों में ही उसके जीवन का आदि काल उसके तपस्वी रूप को प्रतिष्ठित करता है।[5] वरदान प्राप्ति द्वारा[6] वह अजेय एवं अमरवत् बन गया। तदनन्तर दिग्विजयी हुआ। रामायण में उसकी दिग्विजय का अपेक्षाकृत विस्तृत विवरण दिया गया है। वह

---

१. विनय पत्रिका ३४५।
२. मा० ३।२२।३ से ५।
३. 'कहाँ रामु रन हतौं प्रचारी' मा० ६।१०३।४।
४. मा० ६।१०३।९।
५. (१) वा० रा० ७।१०।२,१० से १२ तक।
   (२) मा० १।१७६।१ से ५ तक।
६. (१) वा० रा० ७।१०।१९ से २६।
   (२) मा० १।१७६।१

अपने चाचा कुबेर के प्रति विनीत होने पर भी[1] अपने नाना सुमाली से प्रोत्साहन पाकर[2] तथा प्रहस्त द्वारा पूर्व वृत्तान्त जानकर[3] उनसे लंका का राज्य छीना[4] और देव ऋषि, यक्ष गन्धर्वों पर अत्याचार करने लगा।[5] कैलाश यात्रा करते समय यक्षों से युद्ध किया[6] तथा कुबेर से द्वन्द युद्ध करके पुष्पक विमान का अपहरण किया।[7] कैलाश पर्वत तक को अपनी भुजाओं द्वारा उठाकर अपने अतुल पराक्रम का प्रमाण दिया।[8] तत्पश्चात् उशीर बीज देश में राजा मरूत को युद्ध के लिये ललकार कर, यज्ञ में आहूत ऋषिगणों को मारकर उनका रक्त पान किया,[9] अयोध्या नरेश अनरण्य से युद्ध कर उन्हें पराजित किया।[10] नारद की प्रेरणा से यमलोक में यमराज से भिड़ा,[11] यमकिंकरों को परास्त कर अपने को यमलोक का विजयी घोषित किया।[12] तदनन्तर रसातल जाकर वरुण पुत्रों को युद्ध में मारकर वरुणलोक में भी अपनी शूरता की पताका फहराई।[13] दिग्विजय से लौटते समय अनेक देव मुनियों का संहार कर उनकी सुललनाओं का अपहरण किया।[14] अपनी बहिन को मधु दैत्य द्वारा अपहृत सुनकर वह मधुपुरी गया परन्तु उसकी सन्धि हो गई।[15] इसके पश्चात् उसने स्वर्ग विजय के लिये प्रस्थान किया। इन्द्रलोक पहुँचकर मेघनाद की सहायता से इन्द्र को बन्दी किया।[16]

मानस में गोस्वामी जी की वृत्ति राम के प्रतिपक्षी के शौर्य कथन के विस्तार में नहीं रमी है अपितु केवल चार दोहों में ही उसकी दिग्विजय यात्रा का विवरण दिया है[17] परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से रामायण की घटनाओं से साम्य है। मानस में भी कुबेर को हटाकर लंका को अपनी राजधानी बनाना,[18] कुबेर पर आक्रमण करके पुष्पक विमान का अपहरण

---

१. वा० रा० ७।११।११।
२. वा० रा० ७।११।से१०।
३. वा० रा० ७।११।१४ से १९।
४. वा० रा० ७।११।२२ से२३।
५. वा० रा० ७।१४।४०,७।१५।२।
६. वा० रा० ७।१४।८ से ३०।
७. वा० रा० ७।१५।२७ से ३५।
८. वा० रा० ७।१६।२५।
९. वा० रा० ७।१८।२,१९।
१०. वा० रा० ७।१९।१० से २३।
११. वा० रा० ७।२०।३ से २५,७।२२।३ से १६ तक।
१२. वा० रा० ७।२२।४९।
१३. वा० रा० ७।२३।३०। से ५३।
१४. वा० रा० ७।२४।१ से ६।
१५. वा० रा० ७।२५।२४,२५ से ५०।
१६. वा० रा० ७।३०।१।
१७. मा० १।१७८।३ से १।१८२ तक।
१८. मा० १।१७८।३ से ६।

करना,[1] कैलाशोन्नयन,[2] ब्राह्मणों का भोजन करना,[3] यज्ञ विध्वंस करना,[4] उसके आतंक से दिग्पालों का पलायन,[5] देव, यक्ष, गन्धर्वादि की बर नारियों का वरण[6] तथा समस्त ब्रह्म सृष्टि को निजाधीन करना[7] इत्यादि प्रसंग उसके पौरुष का उल्लेख करते हैं ।

मानसकार ने दिग्विजय विवरण की संक्षिप्ति की अपेक्षाकृत उसके अत्याचारों का उल्लेख अधिक किया है जो कि भगवान् के अवतरण की अनिवार्यता सिद्ध करते हुये प्रसंगानुकूल सुयोजित है। असह्य धर्म की ग्लानि देख कर आकुल धरा का संताप सुनाना नितान्त अनुकूल है । प्रसंग की तीव्रता एवं अनुकूलतावश रावण का अनाचार चित्रण संगत ही है ।

दोनों ग्रन्थों में रावण को उत्तमकुल पुलस्त्य का वंशज बताया है ।[8] परन्तु चरित्र का क्रमिक विकास रामायण में विशेष है। रामायण में रावण के प्रतापवान् एवं पराक्रमयुक्त तेजस्वी बनने की प्रेरणा स्वरूप उसकी माता कैकसी का प्रोत्साहन बताया गया है ।[9] मानस में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है ।

उसके लोकव्यापी आतंक का चित्रण दोनों ग्रन्थों में मिलता है ।

'तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमा : ।
संदृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुत: ।
शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ।
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी ।।'[10]

(उस उग्र तथा पाप कर्म करने वाले रावण को देखकर जनस्थान के न वृक्ष कम्पित होते थे और न वायु ही चलती थी । शीघ्र बहने वाले श्रोत उस लाल नेत्र वाले रावण को देख कर मन्द चलने लगे और गोदावरी नदी भी भय से मन्द चलने लगी ।)

रावण सीता से स्वयं अपने आतंक का विवरण देता हुता स्वप्रभुत्व का परिचय देता है ।

'यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शंकित: ।
तीव्रांशु: शिशिरांशुश्च भयात्संपद्यते दिवि ।

१. मा० १।१७८।८।
२. मा० १।१७९।
३. मा० १।१८०।८।
४. मा० १।१८०।८
५. मा० १।१८१।६,७।
६. मा० १।१८२।
७. मा० १।१८१।१२।
८. (१) वा० रा० ७।२।४,७।३।२२,७।८।२९। (२) मा० १।१७६।
९. वा० रा० ७।९।४३।
१०. वा० रा० ३।४६।६,७,८।

निष्कम्पपत्रास्तखो नद्यश्च स्तिमितोदकाः
भवन्ति........ ।१'

(जहाँ मैं स्थित होता हूँ वहाँ पवन भी शंकित होकर चलता है। तीव्र किरणों वाला सूर्य भी भय से शीतल किरणों वाला हो जाता है, वहाँ के वृक्षों के पत्ते नहीं हिलते और नदियों का जल भी नहीं बहता ।)

मानस में उसका आतंक चित्रण निम्नांकित है।

'चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ।।
रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ।।'[२]

तथा

'जाके डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ।।'[३]

उसके विश्वव्यापी आतंक की ही भाँति उसका वाह्य रूप भी चित्रित किया गया है। रामायण में उसके परम तेजस्वी रूप का अंकन इस प्रकार है।

'आसीनं सूर्य सङ्काशे काञ्चने परमासने
रूक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ।'[४]

(उसने सूर्य समान सुवर्ण के आसन पर बैठे हुये तेजस्वी रावण को सुवर्ण वेदी को प्राप्त जलती हुई अग्नि के समान देखा।)

स्वयं राम भी उसकी दीप्ति से प्रभावित हो उठते हैं।[५]

उसकी भयानकता का चित्रण भी कम आतंक कारी नहीं है।

'क्रोधेन महताऽविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ।'[६]

वह क्रोध से युक्त काले मेघ के सदृश हो गया।

गोस्वामी जी को रामविरोधी रावण का तेजदृप्त रूप वर्णन करना क्योंकर रुचिकर हो सकता था अतएव मानस में उसके रूप चित्रण का अभाव है।

रामायण में उसके रसिक एवं संगीतज्ञ रूप का विस्तृत उल्लेख मिलता है ।[७] मानस में केवल संकेत मात्र किया गया है।[८]

रामायण में उसकी स्नेहशीलता के भी पर्याप्त निदर्शन हैं। अपनी बहिन शूर्पणखा के विधवा हो जाने पर उसके प्रति यथोचित व्यवहार सराहनीय है[९] और मानवता का परि

१. वा० रा० ३।४८।८,९।
२. मा० १।१८१।५,६।
३. मा० ३।२७।८।
४. वा० रा० ३।३२।५।
५. वा० रा० ६।५९।२६,२७,३०।
६. वा० रा० ३।४९।७।
७. वा० रा० ५।२४।३२।
८. मा० ६।१२।४,७
९. वा० रा० ३।४३।३

चायक भी। मानस में उसके सद्गुणों की ओर लेखक की प्रवृत्ति न होने से इस प्रकार के प्रसंगों का अभाव है।

रामायण में उसकी कामुकता का भी विस्तृत उल्लेख किया गया है।[१] वेदवती[२] एवं पुंजिकस्थली[३] नामक अप्सरा के प्रसंग एवं उसके कारण उसे प्राप्त शाप[४] इसके पर्याप्त उदाहरण हैं। परन्तु सम्पूर्ण मानस में आदर्श के प्रतिष्ठापक तुलसी ने अश्लीलता का निदर्शन न करना ही जनहित के लिये उपयुक्त मानकर इस प्रकार के उद्धरण नहीं दिये हैं।

उसके सभी रूपों में विशिष्ट है उसका राजा रूप, राजनीतिज्ञ रूप जिसका दोनों काव्य ग्रन्थों में व्यापकता से वर्णन किया गया है।

रामायण में उसका राजनीतिक रूप निम्नांकित है।

वह परम तेजस्वी, दिग्विजयी, सार्वभौमवशवर्ती सम्राट की भांति अपने सम्पन्न राज्य में अनुशासन करता है। उसके राज्य की कुशलता का प्रमाण उसके प्रजा की धन-धान्य ऐश्वर्य सम्पन्नता है।[५] उसके राज्य में निर्माण कला अपनी चरम सीमा पर प्रतिष्ठित थी।[६] उसकी नगरी समृद्धि एवं शोभा में स्वर्गलोक के समकक्ष ही थी।[७]

इसके अतिरिक्त वह अत्यन्त व्यवहार कुशल एवं वाक्यकोविद राजा की भांति मंत्रिमंडल से सदैव आवश्यक समयों पर परामर्श किया करता था। इसका अनेक स्थलों पर विवरण दिया गया है।[८] यही कारण था उसके मंत्री भी अत्यन्त निर्भीकता से उचित मंत्रणा देने में संकोच न करते थे[९] तथा समय पड़ने पर राजा की इच्छा के विरुद्ध भी उचित मत दिया करते थे।[१०] राजा सूक्ष्म बुद्धि द्वारा उन पर विचार करके उस मंत्रणा के अनुसार आचरण भी करता था।[११] मारीच द्वारा प्रदत्त मंत्रणा तथा उसे मानकर रावण का अपनी नगरी में लौट आना उक्त गुण का ही उदाहरण है।[१२] परन्तु इसके पश्चात् शूर्पणखा द्वारा शत्रु का बलाबल[१३] ज्ञात करने के उपरान्त वह स्थिर बुद्धि होकर संकल्पिता कार्य के

---

१. वा० रा० ७।२४,२६ सर्ग
२. वा० रा० ७।१७।
३. वा० रा० ३।३१।४१-५०।
४. वा० रा० ७।२६।५५-५६।
५. वा० रा० ५।४।२१ से २७।
६. वा० रा० ५। छठा अध्याय, ५।९।१२ से१७।
७. वा० रा० ५।९।३०।
८. वा० रा० ६।६।४।
९. वा० रा० ३।३१।४२ से ४९।
१०. वा० रा० ३।३८।२३ से ३३।
११. वा० रा० ३।३१।५०।
१२. वा० रा० ३।३१,५०।
१३. वा०रा० ३।३३।२ स २६।

लिये सन्नद्ध हो गया तथा अप्रकाश्य रूप से भेदनीति[1] का अवलम्ब लेकर वह पुनः मारीच के पास अत्यन्त विनीत रूप से जाकर शरणागत भाव से कहने लगा।

'आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमागतिः।[2]
(मैं पीड़ित हूँ और मुझ पीड़ित के आप ही परम गति हैं।)

इतना ही नहीं अत्यन्त वाक्यविशारद की भाँति निज स्वार्थ सिद्धि हेतु मारीच की चाटुकारी भी करने लगा।[3] यह रूप भी कार्य साधक उसकी नीति निपुणता की ओर ही संकेत करता है।

परन्तु उसके हठधर्म ने उसे इस बार मारीच के प्रति 'दंड नीति' के लिये विवश कर दिया[4] और मारीच की हितवार्ता की अवहेलना करा दी। उसके इस हठ धर्म ने अनेक स्थान पर[5] प्रबल रूप धारण किया जिसने उसके राजनीति कौशल चन्द्र में कलंक का स्थान ग्रहण किया तथा इसकी ही प्रेरणावश उसने अनेक बार हितमन्त्रणाओं का तिरस्कार किया और कुपरिणाम भोगी बना।

वह स्वयं आदर्श माननीय राजा के स्वरूप से परिचित था और अपने को उसी का प्रतिरूप मानता था इसीलिये वह राजा के प्रति मंत्री के कर्त्तव्य की ओर भी संकेत करता है।

'संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतियात्मजः
वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम्।
उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः
सावमर्दं तु यदवाक्यमथवा हितमुच्यते।'[6]

---

१. वा०रा० ३।३५।२ से ५।
२. वा० रा० ३-३५।१।
३. 'तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव
उपायतो महान् शूरो महामाया विशारदः
एतदर्थं महं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर।' वा० रा० ३।३६।१५ से १७।
४. वा० रा० ३।४०।२८।
५. वा० रा० ३।४०।७, ६।३६।११, ६।१६।२ से १६।
पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च
औदार्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम्
धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्सदा। वा० रा० ३।४०।१२ से १४।
६. वा० रा० ३।४०।९ से ११।

(पूछे हुये विद्वान मंत्री को हाथ जोड़कर अपनी विभूति की इच्छा करते हुये राजा से कहना चाहिये । राजा से अनुकूल, कोमल, हित, शुभ और मानपूर्वक वाक्य कहना चाहिये ।)

मंत्रि कर्त्तव्योल्लेख की ही भांति वह उचित मंत्रणा के महत्व एवं स्वरूप की भी व्याख्या करता है ।

'मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः ।
तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ।।'[1]

वह उत्तम, मध्यम एवं अधम मन्त्रणाओं के स्वरूप में शास्त्रसम्मत मन्त्रणा को ही सर्वोपरि स्थान देता है ।[2] उचित परामर्शदाता मंत्रिवरों का यथोचित सम्मान, सत्कार तथा प्रशंसा भी करता है ।[3] उसके इस रूप से प्रभावित होकर महर्षि उसका 'इन्द्र' के समकक्ष वर्णन करते हैं ।

'स रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ।।'[4]

(वह मनस्वी रावण शस्त्रधारी महाबलवानों मनस्वियों की सभा में वसुओं में इन्द्र की भांति प्रभा से प्रकाशमान हो रहा था ।)

उसकी भेदनीति का ज्वलन्त उदाहरण उसका सुदृढ़ गुप्तचर विभाग था[5] जो शत्रु सैन्य के बलाबल की प्रतिपल की स्थिति राजा को अवगत कराते थे ।

षाड्गुण्यमंत्र के 'विग्रह' रूप में वह अत्यन्त निपुण था । उसका युद्ध नैपुण्य उसके दिग्विजय अभियान से तो व्यक्त होता है इसके अतिरिक्त राम, रावण युद्ध के प्रसंग में तो उसके विविध प्रकार के युद्ध कौशल परम श्लाघनीय हैं । द्वन्द[6] युद्ध, अस्त्र युद्ध, शस्त्र युद्ध सभी में वह पूर्ण कुशल था । सुग्रीव[7], लक्ष्मण[8], वानरसेना[9], राम[10], हनुमान[11], नील[12]

---

१. वा० रा० ६।६।५।
२. वा० रा० ६।६।१२।
३. वा० रा० ६।१२।६ से ९।
४. वा० रा० ६।११।३२।
५. (१) वा० रा० ३।५४।२८।
   (२) वा० रा० ६।२० से ६।२५।२,३ तक ।
६. वा० रा० ६।४०।
७. वा० रा० ६।५९।३५ से ४१।
८. वा० रा० ६।५९।९३ से १०८।
९. वा० रा० ६।१००।
१०. वा० रा० ६।६।१०।१४८ से ५०।
११. वा० रा० ६।५९।५३ से ६९।
१२. वा० रा० ६।५९।७० से ८२।

इत्यादि के साथ युद्ध उसके शस्त्र शास्त्र कौशल[1] एवं शौर्य पराक्रम के पर्याप्त निदर्शन हैं।[2]

उसके युद्धवीर रूप में उदारता का संकेत महर्षि ने किया है। वह अपने शत्रु की भी प्रशंसा कर अपनी गुण ग्राहकता[3] का प्रदर्शन करता था। वह विवेकशील था। शत्रु को छोटा कभी नहीं समझना चाहिये[4], इस सिद्धान्त को वह भली प्रकार मानता था। ऋषि वचनों पर भी आस्था थी[5], ज्योतिष को भी मान्यता देता था।[6] यशलिप्सा उसका जीवनाधार थी।[7] अपने सेवकों के प्रति वह व्यवहार कुशल एवं उदार था। संकटापन्न परिस्थितियों में भी वह अपने सेवकों को अभय दान देना[8], आभरणादि दान देकर परितुष्ट करना[9] उसकी स्नेहशीलता का परिचायक है।

उसके सभी गुणावगुणों में सबसे अधिक प्रबलतम वर्णित रूप है उसका अहं भाव जिसका अनुभाव है उसकी आत्मश्लाघा। उसे स्वपराक्रम पर गर्व है क्योंकि उसे यह आत्म-विश्वास है कि उसका कोई प्रतिद्वन्दी विश्व में नहीं है।[10] अतएव उसे स्वाभिमान है[11] इसीलिये वह किसी भी परिस्थिति से भयभीत नहीं होता। उसकी गर्वोक्तियां इस मनः स्थिति की प्रतीक हैं।[12]

उसमें मानवोचित दुर्बलताओं का भी दिग्दर्शन कराया गया है। पुत्र शोक से व्यथित हृदय[13] का भी मार्मिक चित्रण वाल्मीकि ने मनोवैज्ञानिक रीति से किया है। वह चिन्ताकुल भी होता है।[14] महर्षि ने उसकी अवधानता एवं अदूरदर्शी स्वरूप की निन्दा प्रजा द्वारा भी करवाई है।[15] राक्षस होने के कारण उसमें हिंसात्मक प्रवृत्ति भी दर्शाई गई है।[16] उसका गर्व उसे प्रतिशोध के लिये विवश करता रहता है। मायाजाल का विस्तार भी करता है।

---

१. वा० रा० ६।९५।४२,५१,५४, ६।९६।१, ६।९९।८,२०।
२. वा० रा० ६।९९।४१ से ४५, ६।१००।६।
३. वा० रा० ६।५९।६५।
४. वा० रा० ६।५९।४१।
५. वा० रा० ६।६०।१२।
६. वा० रा० ६।९२।६४।
७. वा० रा० ३।१०४।५,६। तथा वा० रा० ६।९५।८।
८. वा० रा० ३।३१।९।
९. वा० रा० ६।१०४।२६।
१०. वा० रा० ५।२०।१९,२०।
११. वा० रा० ६।१०।२८।
१२. वा० रा० ३।५५।१५ से २०,२४।
१३. वा० रा० ६।९२।६,७,१७।
१४. वा० रा० ६।९३।१।
१५. वा० रा० ६।९४।१।
१६. वा० रा० ३।५६।२५। तथा वा० रा० ५।२२।९।

मानस में भी उसके राजनीतिक रूप पर भी विचार किया गया है परन्तु विस्तार अवश्य रामायण की अपेक्षाकृत कम है।

उसका राज्य श्री समृद्धिसम्पन्न, सुदृढ़ एवं कला सम्पन्न है। अपने मंत्रिवरों से समय-समय पर मंत्रणा भी करता है परन्तु वह नगण्य है क्योंकि मानस के रावण में उसकी मंत्रणा का महत्व विशेष नहीं दिया गया है। वहां उसकी निरंकुशता की ओर ही विशेष संकेत किया गया है क्योंकि वहाँ 'सचिवादि''''भय आस' प्रिय बोलते हैं। इसलिये वह स्वयं स्व पराक्रम के ही गर्व की प्रेरणा से ही बहुधा कार्य संचालन किया करता है और विषम स्थिति के पर्वत को 'अट्टहास' के अंधड़ से धराशायी कर देने की चेष्टा करता है।

'आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे ॥'
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ॥'[१]

वह राजनीति के चारों अंगों का प्रयोग करता।

'बहुबिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद दिखावा ॥'[२]

शत्रु के बलाबल ज्ञान के लिये शुक सारण को राम सेना में भेजना उसकी गुप्तचर नीति की ओर संकेत करता है।[३] शत्रु के दूत हनुमान् को मारने के स्थान पर बंधन का आदेश देना उसकी राजनीति विज्ञता है।

उसके युद्ध प्रयाण के समय उसकी चतुरंगिणी सेना का संचालन उसकी प्रबन्ध कुशलता एवं सैन्य संगठन का परिचायक है। युद्धवीरता के अनेक प्रसंग मानस में भी उल्लिखित हैं। जिनमें प्रमुख एकाकी रूपेण युद्ध,[४] विभीषण पर शक्ति प्रहार,[५] राम रावण युद्ध[६] इत्यादि हैं। मानस में मायावी युद्ध[७] का भी पर्याप्त उल्लेख है जिसका रामायण में कम वर्णन है। उसकी अन्य विशेषताओं की ओर तुलसी की दृष्टि व्यापक नहीं हुई है।

स्वगर्व कथन एवं आत्मश्लाघा मानस के रावण का भी प्रमुख रूप है।[८] अंगद के संवाद के प्रसंग में वह आत्म श्लाघा करते हुये नहीं करता जिससे खीझकर 'बसीठी' रूप अंगद भी कह उठता है।

'सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही ॥'[९]

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में रावण की मानवोचित दुर्बलताओं के अनुभावों का अथवा उसकी मानसिक स्थिति का चित्रांकन स्पष्ट रूपेण नहीं किया गया है वह समुद्र बन्धन

---

१. मा० ६।३९।३,४।
२. मा० ५।८।३।
३. मा० ५।५०।९।
४. मा० ६।८२।३।
५. मा० ६।९३।
६. मा० ६।९९।७।
७. मा० ६।९५।८ से ९६, ६।१००।१ से ८ छंद।
८. मा० ३।२२, ५।२३।२, ५।३६।१ से ५।
९. मा० ६।२८।७।

से आशंकित होता है, व्याकुल हो उठता है[१] परन्तु फिर तुरन्त उस आकुलता पर कृत्रिम मुसकान का आवरण डाल देता है।

'निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी।।'[२]

रामायण की भाँति वह पुत्र शोक से पीड़ित होता है परन्तु तुरन्त ही संयत होकर सभी पत्नियों को संसार की नश्वरता का उपदेश देकर अपने मर्कट वैराग्य' को परिलक्षित करता है।[३]

परन्तु फिर भी वह तुलसी के राम का प्रत्यक्ष विरोधी है इसलिये उसकी प्रच्छन्न भक्ति के लिये तुलसी उसकी सराहना नहीं करते अपितु सम्पूर्ण मानस में उसकी कटु आलोचना ही करते हैं। उसे नीच,[४] खल, अधम[५] आदि कटु विशेषणों से ही विभूषित करते हैं।

उक्त रौद्र रूपों के अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में उसकी शृंगारिकता, भावुकता एवं रसिकता की ओर भी प्रासंगिक रूपेण दृष्टिपात किया गया है। वह संगीत मर्मज्ञ एवं रसिक था। अनेक वाद्य यन्त्र एवं संगीत शालाएँ इसका निदर्शन हैं। परन्तु मानसकार की वृत्ति रावण के रसिक रूप के प्रतिपादन में नहीं रमी है अतएव उन्होंने केवल संकेत मात्र ही किया है।

'लंका सिखर उपर आगार। तहँ दस कंधर देख अखारा।।
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा।........ ....'[६]

दोनों ग्रन्थों में रावण के चित्रांकन का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि 'रामायण' के रावण के चरित्र का स्वाभाविक विकास वर्णित हुआ है। उसमें राम के समकक्ष प्रति नायकत्व विद्यमान है। दीप्ति, ऐश्वर्य, शक्ति एवं शौर्य समन्वित है। वह अपने राजा रूप में किसी भी भाँति ऐश्वर्य एवं अनुशासन में राम से कम नहीं है। युद्ध कौशल की भी सभी विधियों में वह निष्णात है। इसीलिये वह देवताओं से अवध्य दुर्दमनीय एवं लोक कंटक सिद्ध हुआ। परन्तु वेदवती एवं अनरण्य के शाप के अनुसार उसकी कामुक उच्छृंखलता का भीषण परिणाम उसे प्राप्त हुआ, जिसका कि वह पात्र एवम् अधिकारी था।

इसकी अपेक्षाकृत मानस का रावण 'इन्द्रिय लोलुप, कुटिल राजनीतिज्ञ, क्रोधी और महान् बलशाली चित्रित किया गया है।........वह विरोधी भक्त तो नहीं है परन्तु उसने एक निश्चित अर्थ सिद्धि के लिये राम का विरोध किया है।' तुलसी के 'रावण के चरित्र में

---

१. मा० ६।४।
२. मा० ६।५।१।
३. मा० ६।७७।
४. मा० ३।२३।८।
५. मा० ३।२८।८।
६. मा० ६।१२।४,७।

एक प्रवृत्ति प्रमुख चरित्र 'टाइप' उपस्थित किया गया है और यह 'प्रवृत्ति प्रमुख चरित्र' आदर्शवादी नहीं वरन् वस्तुवादी, कल्पनावादी, नहीं वरन् प्रत्यक्षवादी, निराशावादी नहीं वरन् आशावादी, अदृष्टवादी नहीं वरन् संकल्पवादी, संशयवादी नहीं वरन् निश्चयवादी और धार्मिक नहीं वरन् अधार्मिक का है।....

उनका रावण उनके पूर्व के रावणों से अधिक अभिमानी....और हठी है। वह मारीच, शुक, विभीषण माल्यवंत, प्रहस्त और कुम्भकर्ण के परामर्शों एवं अपनी पत्नी मंदोदरी की बारबार की गई प्रार्थनाओं पर किंचित् भी ध्यान नहीं देता। निस्संदेह इस समस्त अवमानना का एक पूर्ण कारण यह प्रतीत होता है कि यह सभी मंत्रकारी एक विशिष्ट दार्शनिक राग अलापते हैं....परन्तु इस समस्त अभिमान, दुराग्रह और दंभ के होते हुये भी इस रावण में एक बात आश्चर्यजनक है, वह है उसकी चतुरता और वाक्पटुता, आत्म विश्वास और विनोद प्रियता, किन्तु खेद है कि हमारा कवि अपने नायक के प्रति उत्कट भक्ति के कारण इस वीर चरित्र के साथ पर्याप्त न्याय नहीं करता है।....स्पष्ट ही इन स्थलों पर भक्त तुलसीदास के आगे कलाकार तुलसीदास भाग खड़े हुये हैं।[१]

अन्य पात्र

वशिष्ठ

इक्ष्वाकुवंश के कुल गुरू आचार्य वशिष्ठ रामायण में नीति विशारद, प्रमुख मंत्री एवं पुरोधा के रूप में विशेषत: चित्रित किये गये हैं।[२] उनकी राजनीति निपुणता स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। पुरोहित रूप में यज्ञादि के आयोजनादि के संचालन का प्रमुख उत्तरदायित्व इन्हीं पर है।[३]

इसके अतिरिक्त उनकी सर्वोपरि श्रेष्ठता का आधार उनका ब्रह्मज्ञानी एवं तपस्वियों में श्रेष्ठतम रूप है।[४] जिसके बल पर उन्होंने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया था। उनका व्यवहार कुशल, एवं अतिथि सेवी, गो सेवी रूप नितान्त सराहनीय है।[५] केवल ब्रह्मतेज ही नहीं,[६] शक्ति बल[७] भी उनमें चरम सीमा पर था। वे अत्यन्त क्षमाशील एवं सहिष्णु थे।[८]

मानस में भी उन्हें ब्रह्म-ज्ञानी,[९] व्यवहार कुशल,[१०] कुलगुरू[११] एवं पुरोहित[१२] रूप

---

१. तुलसीदास..........द्वारा डा० माता प्रसाद गुप्त.......पृष्ठ २८६, २८७।
२. वा० रा० १।८।६।
३. वा० रा० १।८।११ से १९।
४. वा० रा० १।५२।१, २०।
५. वा० रा० १।५२।१३, १४।
६. वा० रा० १।५२।११ से १५।
७. वा० रा० १।५५।२८, १।५६।१८ से २०।
८. वा० रा० १।५५। सर्ग
९. मा० २।१७०।८।
१०. मा० १।२००।८
११. मा० १।१८८।२, २।२।५, ६,
१२. मा० १।१८८।५।

में चित्रित किया गया है। परन्तु भक्त तुलसी ने उनमें राम के प्रति प्रेम परायणता का चित्रण भी किया है। वे जनक की भाँति राम में परमात्मारूप देखते हैं अतएव गुरू की मर्यादा का निर्वाह करते हुए प्रच्छन्न राम भक्ति का भी प्रदर्शन समयानुकूल करते हैं।

'नाथ एक बर मागऊँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुं घटै जानि नेहु।।'[1]

विश्वामित्र वशिष्ठ संवाद का मानस में अभाव होने के कारण उनके तेजस्वी शूर वीर रूप का प्रदर्शन मानस में नहीं हुआ है। केवल उनका गुरू रूप ही प्रधान रहा है।

निषाद

निषाद के चरित्र चित्रण में रामायण एवं मानस में पर्याप्त अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण के निषाद में तो कर्तव्य पक्ष प्रधान है[2] और मानस के निषाद में स्वयं भक्त तुलसी का हठी रूप अपने प्रभु के सम्मुख मचल रहा है।[3] उसमें राम भक्ति का तीव्र पुट दिया गया है और इस प्रकार मानस के निषाद में रामायण की अपेक्षाकृत उसका स्वामि भक्त, मधुरतर रूप चित्रित हुआ है।

कुम्भकरण

रामायण के कुम्भकरण में उसके महाबलाढ्य, तेजस्वी,[4] युद्ध कौशल में निष्णात रूप का चित्रण किया गया है। वह राजनीति विशारद है।[5] पराक्रम में नारायण एवं इन्द्र के समान[6] ही नहीं अपितु देव विजयी है।[7] उसका वाह्य आकार अत्यन्त विशाल, भीषण एवं भयोत्पादक है।[8] उसकी शारीरिक शक्ति के निदर्शक अनेक युद्ध स्थल के प्रसंग हैं। वही एक महारथी है जिसने हनुमान, नील, अंगद, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा राम सभी के साथ युद्ध कर अपनी अप्रतिम वीरता को प्रमाणित किया।[9] दिग्विजयी रावण स्वयं उसकी वीरता के कारण उसको समाहत करता था।[10] वह भी अपने भाई रावण का हित चिन्तन स्नेह

---

१. मा० ७।४९।
२. (१) आतिथ्य सत्कार — वा० रा० २।५०।३६ से ५०।
   (२) राम की रक्षा का भार अपने ऊपर लेना — वा० रा० २।५१।१ से ७।
   (३) भरत प्रति शंका तथा समाधान — वा० रा० २।८४।१ से १८।
   (४) भरत गुह संवाद — वा० रा० २।८५।१ से २२।
   (५) उन्हें गंगा पार उतारना — वा० रा० २।८९।७ से २०।
३. मा० २।९९।३ से २।१०२ तक।
४. वा० रा० ६।६२।१, ६।६२।१६।
५. वा० रा० ६।६३।५, २०। ६।६४।२५ से ३५। ६।६४।३६।
६. वा० रा० ६।६०।१६।
७. वा० रा० ६।६१।७ से १०।
८. वा० रा० ६।६१।५। तथा वा० रा० ६।६५।४१।
९. वा० रा० ६।६७ सम्पूर्ण।
१०. वा० रा० ६।६५।२५ से २७।

भाव से करता था[1] इसी कारण भाई रावण के दोषों की आलोचना भी निर्भीक भाव से की ।[2] परन्तु अन्ततोगत्वा प्रत्यावर्तन का कोई उपाय न देख उसने अपने पराक्रम का अनुपमेय परिचय दिया । राजनीति की दण्ड एवं भेद नीति दोनों का प्रयोग किया । अपने वज्र सदृश शरीर से अपने ऊपर फेंकी गई शिलाओं और वृक्षादि को चूर्ण करता हुआ वानर सैन्य का मथन कर डाला और सभी महारथियों को भी आहत कर दिया ।[3] राम द्वारा प्रक्षिप्त बाणों को जलधार के समान पान करते हुए अपने अद्‌भुत बल का परिचय दिया और घनघोर युद्ध में तत्पर रहा । मृत्यु के समय भी उसका आतंक ही वर्णित है ।[4]

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में उसके पर्वताकार रूप,[5] शौर्य निदर्शनादि के अतिरिक्त[6] उसका प्रच्छन्न राम भक्त[7] रूप विशेष है जो कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दर्शाता है ।

डा० राम रतन भटनागर के शब्दों में

'तुलसी के कुम्भकरण में हम उच्च कोटि की राम भक्ति पाते हैं। उसके राक्षस स्वभाव का प्रदर्शन दबाकर और उसमें दूरदर्शिता, कर्तव्य बुद्धि, आश्चर्यमय युद्ध कौशल और निरपेक्ष, निःसीम और नितान्त राम प्रेम की स्थापना कर तुलसी ने उसे एक अद्‌भुत चरित्र बना दिया हैं ।'[8]

उक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि रामायण के कुम्भकर्ण का सबल व्यक्तित्व अपने मौलिक रूप में चित्रित हुआ है जब कि मानस में प्रच्छन्न राम भक्ति के प्रवाह में उसका शौर्य निदर्शन आवृत सा हो गया है । उक्त अन्तर दोनों कवियों के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब स्पष्टतः अंकित करता है क्योंकि वाल्मीकि यथार्थवादी चित्रकार हैं तो तुलसी आदर्शवादी ।

मेघनाद

मेघनाद का चरित्र चित्रण दोनों काव्य ग्रन्थों में लगभग समान पीठिका पर ही चित्रित किया गया क्योंकि दोनों में ही उसका दिग्विजयी इन्द्रजीत रूप वर्णित है, उसका शौर्य, अतुल पराक्रम उल्लिखित है। केवल इसी प्रमुख पात्र में तुलसी ने रामभक्ति की स्थापना नहीं की ।

दोनों ग्रन्थों में ही वह याज्ञिक बताया गया है और साथ ही ऐन्द्रजालिक भी । उसका युद्ध कौशल चरम सीमा पर स्थित है । अनेक शक्तियाँ उसे वरदान के कारण उपलब्ध हैं ।

---

१. वा० रा० ६।६२।२३।
२. वा० रा० ६।६३।३२।
३. वा० रा० ६।६७।१९।
४. वा० रा० ६।६७।१७४।
५. मा० ६।६४।२।
६. मा० ६।६४।४ से ६।७०।३ तक।
७. मा० ६।६२।, ६।६२।१८, ६।६३।४ से ६।६४ तक।
८. तुलसी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ८३।

इस प्रकार दोनों ही काव्यों में वह एक वीर, जयी, पराक्रमी योद्धा रूप में ही चित्रित हुआ है।

विश्वामित्र

रामायण तथा मानस, दोनों ग्रन्थों, के विश्वामित्र धनुर्वेदाचार्य एवं आश्रम के आचार्य हैं, तपोनिष्ठ हैं, परन्तु अन्तर यह है कि रामायण में उनको तपस्यादि का पूर्व वृत्तान्त मानस की अपेक्षाकृत विस्तारपूर्वक उल्लिखित है। जब कि मानस में विश्वामित्र का प्रसंग केवल उतना ही उल्लिखित है जितना कि राम से सम्बन्धित है। इस अन्तर का कारण दोनों कवियों की तत्कालीन स्थिति एवं व्यक्तित्व का प्रभाव है। महर्षि वाल्मीकि स्वयं आचार्य थे और रामायण काल में आचार्यों का विशेष महत्व था। वह युग भी तप: प्रधान था। जब कि तुलसी के समय में तप की महत्ता तो समाप्त हो ही गई थी। इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के चरित्र चित्रण का दृष्टिकोण ही दूसरा था। वे अपने प्रत्येक उत्तम पात्र एवं पात्रा में राम भक्ति का बीज अंकुरित दर्शाते हैं। उनके सभी पात्र राम भक्ति की धुरी के चतुर्दिक ही वृत्ताकार आनन्द रस में परिभ्रमण करते हैं वही स्थिति मानस के विश्वामित्र की भी है जिसका प्रमाण यह है कि रामायण की भाँति वे मानस में केवल यज्ञ निमित्त अयोध्या नहीं आते हैं अपितु वे राम दर्शन की लालसा वश अयोध्या आते हैं।

'एहूं मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई ।।
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।।'[1]

उनके ये अनुभाव राम भक्ति के निदर्शन हैं।

'.........राम देखि मुनि देह बिसारी ।।
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा ।।[2]

इस अन्तर के अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में ही विश्वामित्र राम के सकल प्रकार हित-चिन्तक ही हैं। धनुर्वेद, अस्त्र शस्त्र विद्या के दाता के रूप में वे राम के आचार्य हैं, अनेक कथाओं के उपदेशक हैं तथा विवाहादि कार्य के प्रमुख संचालक हैं। इस प्रकार दोनों ही ग्रन्थों में राम कथा में उनका समान योग है।

परशुराम

दोनों ही ग्रन्थों में परशुराम के प्रति रोष व्यक्त करते हैं और अन्त में राम के पराक्रम एवं तेज से अभिभूत होकर अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं परन्तु रामायण की अपेक्षाकृत मानस में तुलसी ने अन्य पात्रों की भाँति इनको भी अन्त में राम का भक्त रूप ही दर्शाया है। वे राम की विनीत प्रार्थना कर, अन्त में क्षमा याचना करते हैं तथा राम की जय जयकार करते हुये प्रस्थान करते हैं।[3]

---

१. मा० १।२०५।७,८।
२. मा० १।२०६।५,६।
३. मा० १।२८४।१ से ७ तक।

दोनों ग्रन्थों में परशुराम चरित्र की योजना भिन्न प्रकार से की गई है। रामायण में जनकपुर से लौटते समय उनका प्रसंग वर्णित है, मानस में स्वयम्बर की रंग भूमि पर ही उनका आगमन दर्शाया गया है। अतएव रामायण में तो उनके पूर्व तपादि का उल्लेख करते हुये दशरथ उनसे अभयदान की याचना करते हैं परन्तु मानस के उक्त प्रसंग में परशुराम का शारीरिक, वाचिक रौद्र रूप प्रदर्शन कर तुलसी ने नाटकीय ढंग से लक्ष्मण द्वारा उनको वाक् युद्ध से उद्वेलित किया है तत्पश्चात् राम के शील एवं तेजस्वी स्वरूप से उनको अभिभूत दर्शाकर परम शान्त रूप में परिणत करना उनका लक्ष्य रहा है। मानस के परशुराम के चित्रण में भिन्नता का कारण तुलसी की मौलिकता है।

रामायण तथा मानस के गौण नारी पात्र

दोनों ही ग्रन्थों में तीनों ही प्रकार की गौण नारी पात्राओं का विवरण मिलता है।

(१) सात्विक गुण की प्रतीक स्वरूपा—शबरी

(२) राजसी गुण की प्रतीक स्वरूपा—मन्थरा

(३) तामसी गुण की प्रतीक स्वरूपा—शूर्पणखा

रामायण में शबरी

रामायण में शबरी का चरित्रांकन अत्यन्त तपोनिष्ठा श्रमिणी के रूप में किया गया है। इसका प्रमाण यह है कि शबरी के आश्रम में पहुँचते ही सिद्धा शबरी द्वारा स्वागत किये जाने पर राम उनकी तपस्या के विषय में प्रश्न करते हैं।

'तामुवाच ततो रामाः श्रमणीं शंसितव्रताम्
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि'[1]

वह अपनी तपस्या में साधक ही नहीं, सिद्धा भी थी। उसका प्रमाण यह है कि वह स्वयं कहती है कि आज मेरी तपस्या सफल हुई[2] इत्यादि परन्तु शबरी की तपस्या सकाम थी निष्काम नहीं क्योंकि वह कहती हैं कि मैं आज ही स्वर्ग को चली जाऊँगी।[3]

रामायण की शबरी की गुरु भक्ति भी वर्णित हुई है।[4]

इस प्रकार रामायण की शबरी समाधि योगिनी के रूप में चित्रित हुई है जो कि आत्म समाधि से स्वर्ग लोक सिधार गई।[5]

---

१. वा० रा० ३।७५।७ से ९ तक।
२. 'अद्य प्राप्तः तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया' वा० रा० ३।७५।११।
३. 'अद्य मे सफलं जन्म स्वर्गश्चैव भविष्यति।' वा० रा० ३।७५।१२।
४. वा० रा० ३।७५।२३।
५. वा० रा० ३।७५।३५।

मानस में शबरी

तुलसी की भक्ति भावनानुसार मानस की शबरी राम की अनन्य भक्ता के रूप में चित्रित हुई है। वह अपना दैन्य प्रदर्शन करती हुई प्रभु के दर्शन पाकर आत्मविभोर हो जाती है। भगवान राम उसकी तन्मयतासक्ति से प्रणीत हो उसके निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और कहते हैं—

'मानउँ एक भगति कर नाता।..........

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥'[1]

इतना ही नहीं उसे परमाधिकारिणी समझ कर नवधा भक्ति का उपदेश भी देते हैं।

मन्थरा

रामायण की मन्थरा कैकेयी की चिरकाल से पालिता दासी है जो राम का राज्याभिषेक सुनकर स्वत: क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठती है और कैकेयी को ललकारती हुई प्रबुद्ध करती है—

'उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते।
उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे।........'[2]

कैकेयी को अपने व्यंग बाणों से आविद्ध कर वाक्य विशारदा मन्थरा ने नाना प्रकार के भावी अनिष्टों के दर्शन कराकर कैकेयी को अपने वश में कर लिया, यहां तक कि कैकेयी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी।[3] तब मन्थरा ने योजनाएँ बनाकर नाना तर्कों के आधार पर कैकेयी को दोनों वरदान मागने के लिये विवश कर दिया।

मानस की मन्थरा भी रामायण की ही मन्थरा की भाँति कार्य करती है। परन्तु अन्तर यह है कि मानस की मन्थरा में आधिदैविक तत्व का योग कर मन्थरा को भी निर्दोष सा हो सिद्ध किया है क्योंकि तुलसी मन्थरा का कटु चित्रण करने के पूर्व यह कह देते हैं कि 'गई गिरा मति फेरि।' इसका तात्पर्य यह है कि राम के अहित चिन्तन में इसके पूर्व उसकी बुद्धि तत्पर न थी। तुलसी के लिये यह अन्तर स्वाभाविक ही था क्योंकि वे अपने राम का विरोधी उन्हीं के परिजन की दासी को स्पष्टत: कैसे लिख देते। दूसरा कारण यह है कि राम के अवतार कारण का लक्ष्य देव दु:ख निवृत्ति बतलाया गया है अतएव देवताओं को राम वनवास की प्रेरणा सरस्वती द्वारा देनी संगत ही हुई।

इसके अतिरिक्त दोनों ही ग्रन्थों में मन्थरा के चित्रण में साम्य ही है।

शूर्पणखा

दोनों ग्रन्थों में राम के प्रति शूर्पणखा की आसक्ति वर्णित है। अन्तर केवल यह है कि रामायण की शूर्पणखा का चित्रण यथार्थ रूपेण हुआ है अतएव उसकी कामासक्ति का

---

१. मा० ३।३४।४, ३।३५।७।

२. वा० रा० २।७।१३।

३. वा० रा० २।९।४१ से ५०।

विवरण विस्तृत है जबकि मानसकार ने शूर्पणखा की इस उच्छृंखलता को रामायण की अपेक्षा संयत करने का ही प्रयास किया है। मानस की शूर्पणखा नीतिज्ञा भी है। रामायण की भांति रावण को युद्ध के लिये उद्वेलित तो करती ही है परन्तु उसका नीतिज्ञा रूप भी परिलक्षित है जिसमें प्रत्येक प्रकार के आदर्श वर्णित हैं। यहाँ तक कि हरि भक्ति के तत्वों की भी वह ज्ञात्री है। इस रूप चित्रण में तुलसी की मौलिकता स्पष्ट है जो शूर्पणखा जैसी अधम पात्राओं में भी गूढ़ तत्वों का ज्ञान दर्शाया है।

अन्य पात्र

रामायण के मुनि वर्ग तपस्वी हैं, मानस के भक्त रूप में चित्रित किये गये हैं जिसके प्रतिनिधि रामायण में अगस्त्यादि हैं,[1] मानस में सुतीक्ष्णादि।[2]

रामायण के वानर, भालु, गीध कर्मनिष्ठ हैं जबकि मानस के ये वर्ग पूर्णतः राम परायण हैं। तुलसी ने उन्हें भी भगवान् की लीला का एक अंग बना दिया है।

'कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद।'[3]

गीधराज जटायु तो सतत् 'राम चरन की रेखा' का ही स्मरण करते रहते हैं।

समस्त 'चरित्र चित्रण' में दोनों कवियों की युगकालीन संस्कृति एवं लेखक का व्यक्तित्व सर्वत्र सफलरूपेण प्रतिविम्बित है।

---

१. वा० रा० ३।१२ सर्ग।

२. मा० ३।९।१ से ३।११ तक।

३. मा० ६।११७।

रामायण एवं मानस में विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण

सांस्कृतिक

'सम्' उपसर्ग, 'कृ' धातु तथा 'क्तिन्' प्रत्यय से समन्वित शब्द 'संस्कृति' बनता है जिसका तात्पर्य है....'भूषण भूत् सम्यक् कृति'। मानव योनि मात्र ही बुद्धि प्रधान होने से सम्यक् असम्यक् के विचार में समर्थ है। अतएव जिन चेष्टाओं द्वारा मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों में विकास प्राप्त करें उन्हीं को भूषणभूत् चेष्टाएँ कहना नितान्त संगत होगा। इन चेष्टाओं का आधार है देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इनमें से प्रथम दो की चेष्टाएँ 'आचार' तथा अंत:करण चतुष्टय की चेष्टाएँ 'विचार' कही जाती हैं। अतएव मानव के लौकिक एवं पारलौकिक सर्वोन्नति के अनुरूप आचार विचार ही 'संस्कृति' है।

किसी देश या जाति के अभ्युदय पथ पर चलने के 'आचार विचार' के निर्देशक नीति ग्रन्थ एवं धर्म ग्रन्थ होते हैं। इस प्रकार संस्कृति का अत्यन्त व्यापक एवं विशाल क्षेत्र है जिसमें वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, कलात्मक, भाषा, वेष-भूषा, उपासना सम्बन्धी सभी दृष्टि से विचार किया जाता है।

विभिन्न देश के आचार विचारानुसार विभिन्न जातियों की विभिन्न संस्कृतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति की कुछ निजी विशेषताएँ हैं जिनका दिग्दर्शन सभी धर्म ग्रन्थों में कराया गया है। रामायण तथा महाभारतादि काव्य ग्रन्थ भी आख्यानों के द्वारा भारतीय संस्कृति की झाँकी ही प्रस्तुत करते हैं।

रामायण में भारतीय संस्कृति को उदाहरण रूप में देखने के पूर्व भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का अवलोकन असंगत न होगा।

अनन्त श्री १००८ श्री पूज्य स्वामी जी श्री करपात्री जी के शब्दों में

'वेद एवं वेदानुसारी आर्ष धर्म ग्रन्थों के अनुकूल लौकिक पारलौकिक अभ्युदय एवं नि:श्रेयसोपयोगी व्यापार ही मुख्य संस्कृति है और वही हिन्दू संस्कृति, वैदिक संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति है।....जैसे इस्लाम संस्कृति और मुस्लिम जाति का आधार 'कुरान' है,

है, वैसे ही वैदिक सनातन संस्कृति एवं हिन्दू जाति का आधार वेद एवं तदनुसारी आर्ष धर्म ग्रन्थ हैं।'[१]

इस सनातन संस्कृति के कुछ प्रमुख मूलाधार हैं।

धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार 'आचार' तथा आत्मा की ओर उन्मुख करने वाली बौद्धिक प्रकृति 'विचार' धर्म प्राण जाति के जीवन के प्रमुख आलम्बन हैं। 'समष्टि क्षेत्र' में सुकरता से जीवन संचालन हेतु 'वर्ण' व्यवस्था की व्यवस्था की गई है। व्यष्टि क्षेत्र में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को पूर्ण रूपेण प्राप्त करने के हेतु आश्रम व्य. वस्था भी पूर्ण वैज्ञानिक है। दैव जगत् पर अटूट श्रद्धा एवं विश्वास करना भी जीवन की सुरक्षा एवं शान्ति की सुदृढ़ आधार है। उस अखिल ब्रह्मांड नायक ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा एवं भक्ति पूज्य बुद्धि का संचार कर असत् प्रवृत्तियों की ओर से पराङ्मुख करती है। ईशोपासना की योग एवं भक्ति दो प्रणालियाँ हैं। उस सर्वव्यापी प्रभु के प्रतिमा में दर्शन कर मूर्त्ति पूजा का विधान भी पूर्वोक्त भक्तिमार्ग पर अग्रसारित करता है। प्रशस्त पथ के पथिक जीव के लिये शुद्धाशुद्ध विवेक भी परमावश्यक है क्योंकि पंच कोषों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय) द्वारा आच्छादित जीवात्मा इसी ज्ञान द्वारा अपने को इनके दोषों से अपने को अनावृत रख सकता है। इसी को अन्य शब्दों में कर्मकांड भी कहा जा सकता है। इसके द्वारा जीवात्मा मल, विकार, विक्षेप, आवरण एवं अस्मिता आदि दोषों से अपने को मुक्त कर सकता है।

'यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्म समुद्भव:' के अनुसार कर्म कांड का प्रमुख ध्येय यज्ञ भी है। शास्त्रों में पंच महायज्ञों का सतत् विधान है। ब्राह्मयज्ञदेवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ एवं नृयज्ञ दैनिक धर्म के प्रधान अंग हैं।

धर्म ग्रन्थों (वेद, स्मृति, तन्त्रादि) पर अटूट श्रद्धा एवं विश्वास भी भारतीय संस्कृति का प्रधान स्तम्भ हैं। 'पुनर्जन्मवाद' का सिद्धान्त एक जन्म के लिये ही नहीं जन्मान्तरों के लिये भी सद्व्यवस्था स्थापित कर अत्यधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप उपस्थित करता है। इस प्रकार इहलोक एवं परलोकार्थ, भूत, भविष्य, वर्त्तमान के लिये उपयुक्त त्रिकालदर्शी भारतीय संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त सुदृढ़, सुव्यवस्थित, श्रेयस् एवं प्रेयस् का स्वर्ण सुगंध रूप प्रस्तुत करता है जिसका एक मात्र आनन्द लौकिक सुख एवं पारलौकिक आनन्द है तथा कैवल्य प्राप्ति है। जीवन्मुक्ति एवं मरण मुक्ति दोनों के लिये नितान्त उपयोगी है।

इस प्रकार स्वर्गीय कवि सम्राट् पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय के शब्दों में ....

'संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति, जीवन का विशाल प्रासाद निर्मित होता है। जिस दिन वह आधार शिला स्थान च्युत होगी, उसी दिन पुष्ट से पुष्ट प्रासाद भी भहरा पड़ेगा।'[२]

---

१. कल्याण २४।१।३६।

२ कल्याण २१४।१ पृष्ठ ३१६।

'संस्कृति' का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विशाल है। व्यक्तिगत एवं समष्टिगत दोनों क्षेत्रों में इसकी अतिव्याप्ति है। भारतीय संस्कृति का विशिष्टतम स्थान है। है। इसकी निजी विशेषताएँ हैं जिनका उल्लेख हम निगमागम पुराणान्तर्गत पाते हैं।केवल उल्लेख ही नहीं ये ग्रन्थ हमारी भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ एवं मार्ग निर्देशक भी हैं। श्री बलदेव उपाध्याय का कथन इस सम्बन्ध में नितान्त न्यायसंगत है।

'संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झांकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के बहुल प्रचार तथा प्रसार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य है।.........साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है, तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने के हेतु संस्कृति के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन रहा है। यदि संस्कृत के काव्यों में संस्कृति अपनी अनुपम गाथा सुनाती है, तो संस्कृत के नाटकों में वह अपनी कमनीय क्रीड़ा दिखलाती है। भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन में संवर्धित भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में अपनी सुन्दर झाँकी दिखलाता हुआ सहृदयों के हृदय को बरबस खींचता है। महर्षि वाल्मीकि तथा व्यास, कालिदास तथा भवभूति, बाण तथा दंडी पाठकों की हृदयकली को विकसित करने वाले मनोरम काव्य की रचना के कारण जितने मान्य हैं उतने ही वे भारतीय संस्कृति के विशुद्ध रूप के चित्रण करने के कारण भी आदरणीय हैं।'[१]

संस्कृत साहित्य के तीनों कालों में भारतीय संस्कृति का दिग्दर्शन सर्वत्र दर्शनीय है। श्रुतिकाल में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक् और उपनिषदों के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति का मूल अंकित है। स्मृति काल में रामायण, महाभारत, पुराण तथा वेदांगों के रूप में संस्कृति के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। तृतीय काल 'लौकिक संस्कृति के काल' का साहित्य भी संस्कृति से पूर्णतया अनुप्राणित है।

अतएव वैदिक साहित्य यद्यपि सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ है जिनमें आर्य सभ्यता एवं संस्कृति तथा धर्म तत्वों का साधन प्राप्त है परन्तु उनका व्यावहारिक रूप है, वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूपेण दृष्टिगत होता है। वस्तुत: यह कहना असंगत न होगा कि रामायण के द्वारा हम वैदिक धर्म एवं संस्कृति के अज्ञात तथ्यों का साक्षात्कार कर सकते हैं। प्राचीन धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का सांगोपांग चित्रण हमें रामायण में मिलता है।

वेद सूक्ष्म तत्वों का भंडार है। उनको समझने एवं मनन करने के हेतु भी व्युत्पन्न बुद्धि एवं सूक्ष्म ग्राहिणी बुद्धि की आवश्यकता है। रामायण अपेक्षाकृत इतिहास ग्रन्थ एवं आदि काव्य होने के कारण लोक ग्राह्य एवं सर्वजन सुलभ है। दुष्क्रमणीय वेद रूप पर्वत शिखर से खोदकर लाई हुई मणियों की लड़ियाँ इस आदि काव्य में पिरोई हुई हैं। जिन्हें जनसाधारण वर्ग भी भी देखकर सराहना कर अनुकरण एवं अनुसरण द्वारा ग्रहण कर सकता है।

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३,४,५।

रामायण कालीन संस्कृति का दिग्दर्शन कराने के पूर्व वेदकालीन संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दे देना असंगत न होगा। कारण कि यह स्वाभाविक सत्य है कि कवि की रचनाएँ अपने समाज की प्रतिबिम्ब हुआ करती हैं। वह तत्कालीन स्थितियों का चित्रण तो करता ही है, परन्तु इसके साथ ही साथ पूर्व कालीन साहित्य से प्रेरणा पाकर पर कालीन साहित्य को प्रेरणा व सम्बल प्रदान करता है।

वेदकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार एवं विस्तार विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध है। साहित्यिक क्षेत्र में मंत्रदृष्टा ऋषियों ने वेद के अन्तर्गत अपार ज्ञान राशि का संग्रहीत रूप प्रस्तुत किया। विश्व के इतिहास में साहित्यिक प्रतिभा के जाज्वल्यमान रूप का यह एक अन्यतम निदर्शन था।

रामायण काल में राजनैतिक जीवन का भी विकास हो चुका था। आर्यों ने राष्ट्र की कल्पना कर ली थी जिनमें राजनैतिक संस्थाएं निर्धारित हो चुकी थीं। राजा का चुनाव करना समग्र प्रजा के अधिकार में था। प्रथम बड़ी संस्था थी, द्वितीय छोटी। राज्य के कर्मचारियों में पुरोहित, सेनानी तथा ग्रामणी का विशेष स्थान था।

राज्य तत्र के साथ-साथ गण तांत्रिक शासन प्रथा का भी स्वरूप विद्यमान था जिसका उल्लेख अथर्ववेद में है।

सामाजिक क्षेत्र में भी कार्य विभाजन की सुविधा का विचार रख कर विभिन्न जातियों का निर्माण हो चुका था जिनका प्रसंग 'पञ्चजनाः' तथा पञ्च कृष्टयः के रूप में विशेष आता है। आर्य से इतर वर्ग की जातियाँ 'आर्येतर' वर्ग में कही जाती थीं। फिर आर्य जातियाँ तथा आर्येतर जातियों का मिश्रण हो गया, आर्थिक और सामाजिक जीवन के विकास के आधार पर श्रम विभाग किये गये और गुण, कर्म के अनुरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियां बनीं। ब्राह्मण वर्ग बौद्धिक एवं धार्मिक कार्यों के लिये, क्षत्रिय राजनैतिक एवं सुरक्षा के कार्यों के लिये, वैश्य आर्थिक सम्पन्नता के लिये, तथा शूद्र तीनों वर्गों की सहायता एवं शारीरिक परिश्रम के लिये उत्तरदायी हुये।[1] इस विभाजन का प्रारम्भिक रूप सरल और सुविधा-जनक था परन्तु शनैः शनैः परस्पर सम्बन्ध एवं व्यवसाय विनिमयादि में बाधा आ गई और समाज का यह वर्ण विभाजन रुद्र रूप धारण करने लगा। इस प्रकार आर्य जातियों के विस्तार की रूप रेखा ने जब स्थिर रूप धारण कर लिया तो सामाजिक व्यवस्था भी स्थिर रूप धारण करने लगी।

---

1. 'These divisions answer to four cosmic principles, the wisdom that conceives the order and principle of thing, the power that sanctions upholds and enforces it, the Harmony that creates the arrangement of its Parts, the work that carries out what the rest direct. Next, out of this idea there deveoloped a firm but not yet rigid social order based primarily upon temperament and psychic type with a corresponding euthical discipline and secondarily upon the social and economic functions.

(*Indias culture through the Ages, by M. L. Vidyarthi, Page 71*)

उत्तर वैदिक काल में इन वर्गों को स्थायित्व प्राप्त हुआ और ऋग्वेदकालीन गुण कर्म पर आधारित वर्ण अब जन्म पर आधारित होने लगा। व्यावसायिक वर्ण विभाजन के स्थान पर पैतृक वर्ण निर्धारण हो गया। आर्थिक विकास के साथ-साथ इन जातियों में भी उत्तरोत्तर विकास हुआ। इस प्रकार समाज इस वर्ण व्यवस्था पर आधारित था जो कि अब जन्म पर निर्धारित होने लगी थी। इस प्रकार अनेक जातियाँ एवं उपजातियाँ विकासोन्मुख होकर विविध नाम गुण धारिणी हो गई।

रामायण में वर्ण व्यवस्था

उत्तर वैदिक काल अथवा रामायण काल में वर्ण व्यवस्था का विकास हुआ। अन्तर्जातीय विवाह में कुछ नियमों के बन्धन लग गये। वर्ण परिवर्तन असम्भव हो गया।[1] ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों वर्णों की प्रमुखता स्थापित हुई जिसका ज्वलन्त उदाहरण 'रामायण' है। एक ओर 'ऋषिवर्ग' दूसरी ओर 'रघुकुल'।

श्री शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने 'रामायण में हिन्दू संस्कृति' पर व्यापक प्रकाल डाला है तथा तत्कालीन सामाजिक वर्ण व्यवस्था का चित्रण किया है।

'रामायणकालीन आर्यों की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम की भिति पर अवलम्बित थी। वर्ण चार थे। वेदों का अध्ययन, व्रत, नियम का पालन, यज्ञों का अनुष्ठान तथा दान ये प्रथम तीन वर्ण द्विजों के साधारण धर्म थे।'[2]

उस समय वर्ण व्यवस्था जन्म पर ही आधारित थी कर्म पर नहीं, क्योंकि रामायण में ऐसे उदाहरण हैं जहाँ 'जन्मना ब्राह्मण' कर्मणा क्षत्रिय, वैश्य के प्रसंग भी हैं परन्तु उन्हें 'ब्राह्मण' ही कहा गया है। ब्राह्मणों के भी कर्मानुसार कई वर्ग मिलते है। कुछ ब्राह्मण अपने नित्य नैमित्तक कर्मों को करते हुये सदाचरण के मार्ग का अवलम्ब लेते थे उन्हें 'देव-ब्राह्मण' कहा जाता था। राजा दशरथ के राज्य में उनका उल्लेख मिलता है।

'तामाग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमेर्वेदषडङ्गपारगैः
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च केवलैः।'[3]

इनके अतिरिक्त कुछ विरक्त ब्राह्मण 'ऋषि वर्ग के रूप में वन में तपस्या करते हुये अपना तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे। वे मुनि 'ब्राह्मण' कहलाते थे।

महर्षि वाल्मीकि ने वन निवासी तपस्वी मुनियों का अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत वर्णन किया है जिससे तत्कालीन तपोनिष्ठ महात्माओं का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण प्राप्त होता है।

---

1. No one is allowed to marry out of his own caste, or to exchange one profession or trade for another, or to follow more than one business."
(*Mc. Crindle Magasthenes*, *PP. 85-86*)

२. 'रामायण में हिन्दू संस्कृति' पृष्ठ ३०७।

३. वा०रा० १।५।२३।

'वैखानसा वालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचियाः
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः।
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मुज्जकाः परे।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानव काशिकाः
मुनयः सलिलादारा वायुमक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थंडिलशायिनः
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्र पटवाससः।
सजपश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्विताः
सर्वे ब्राह्मयात्रियायुक्ष्या दृढ़योग समाहितः।'[1]

इस मुनि वर्ग के चित्रण के अन्तर्गत केवल हठ योगियों के विभिन्न रूपों को ही चित्रित नहीं किया गया वरन् उनके आध्यात्मिक स्तर की भी स्पष्ट व्याख्या की गई है।

'धर्म नित्यैस्तपोदान्तैर्विशिरवैरिव पावकैः'[2]

उन पुण्यशील ऋषियों का व्यक्तित्व है।

'दीप्ति युक्तान्महोत्साहान्क्षत्रधर्मचिकीर्षया।'[3]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपने वर्णानुसार कर्मों का पालन करते थे। इसका उल्लेख इस प्रकार है :

'स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ।।'
वर्णेष्वग्रय चतुर्येषु देवता तिथिपूजकाः
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः
क्षत्रं ब्रह्ममुखं नासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुप चारिणः ।।'[4]

कुछ जन्म से ब्राह्मण होते हुये भी क्षत्रिय के लक्षणों को धारण कर क्षत्रियत्व के कार्य भी किया करते थे। उन्हें 'क्षात्र ब्राह्मण' कहा जाता था। परशुराम की पूर्व कथाएँ तथा उनका उग्र रूप उनमें क्षत्रियत्व का प्रदर्शन करता है।

'ददर्श भीमसंकाशं जटा मण्डल धारिणम्।
भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम्।।

---

१. (१) वा०रा० ३।६।२ से ६।
(२) 'तत्र वैखानसा भाषा बालखिल्या मारीचियाः।
अजाबभूवुर्घू स्राश्च संगताः परयर्षयः ।। वा० रा० ३।३५।३०।
२. वा० रा० ३।८।७।
३. वा० रा० ३।८।
४. वा० रा० १।६।१३,१७,१९।

कैलासमिव दुर्धर्षं कामाग्निमिव दुःसहम्
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथक् जनैः ।
स्कन्धे चा सज्य परशुं धनुर्विद्याद्गुणोपमम् ।
प्रगृह्यशरमुग्रं च चित्रपुरघ्नं यथा शिवम् ।'[1]

ब्राह्मण के इस रूप के अतिरिक्त रामायण में कुछ ब्राह्मण इस वर्ग के भी मिलते हैं जो जन्मना ब्राह्मण होते हुये भी वैश्य वृत्ति अपनाते हैं परन्तु फिर भी ब्राह्मण ही कहलाते हैं । 'त्रिजट' नामक ब्राह्मण का प्रसंग इस तथ्य का प्रमाण है ।[2]

वाल्मीकि रामायण में ब्राह्मण धर्म की भाँति क्षात्र धर्म की मर्यादा का भी दिग्दर्शन कराया गया है ।

'क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति'

अर्थात् 'क्षत्रिय इसलिये धनुष धारण करते हैं जिससे दुःखी की ध्वनि ही न हो ।'

रामायण में 'राम' का समस्त चरित्र ही क्षात्रधर्म का जाज्वल्यमान प्रतीक है ।

वैश्यों का भी समाज में विशेष महत्व था । जिनका विस्तृत उल्लेख 'आर्थिक दृष्टि-कोण' शीर्षक के अन्तर्गत विशेष किया जायगा । यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वैश्य वर्ण में भी कई संगठित संस्थाएँ थीं । उनकी समृद्धि एवं ऐश्वर्य उनकी कर्मशीलता के सफल निदर्शन हैं ।

शूद्र वर्णन का भी समाज में व्यापक स्थान था । तीनों वर्णों का समुचित सहयोग प्रदान करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था जिसे वे मन, वच, कर्म से पूर्ण करने में ही अपना परम कल्याण मानते थे । रामायण में सामाजिक संगठन की रूप रेखा में शूद्रों का पृथक्करण नहीं मिलता । केवल धार्मिक क्षेत्र में शूद्रों के लिये प्रतिबन्ध अवश्य था जिसका स्पष्ट उदाहरण 'शम्बूक वध' का प्रसंग है[3] जिसमें वह तपस्या के क्षेत्र में आने के कारण ही अनधिकारी माना गया और उसका वध किया गया ।

इस प्रकार रामायण में चातुर्वर्ण्य के पूर्णांग व्यवस्था का रूप मिलता है जिसमें वर्ण-संकरता का कोई दोष न था ।[4]

ब्राह्मण वर्ण के प्रति क्षत्रिय सदैव अपनी श्रद्धा अर्पित कर उसे शीर्षस्थान देते थे । समस्त क्षेत्रों (धार्मिक, राजनैतिकादि) के कार्य ब्राह्मण वर्ण द्वारा ही संचालित होते थे । रामायण में वशिष्ठादि ऋषियों का स्थान उक्त तथ्य को प्रमाणित करता है ।

आश्रम व्यवस्था

वर्ण के साथ ही साथ आश्रम की व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग है । जहाँ वर्ण की व्यवस्था समष्टि के लिये उपयोगिनी थी तथैव आश्रम की व्यवस्था व्यष्टि

---

१. वा० रा० १।७४।१७ से १९।
२. वा० रा० २।३२।३० से ४४ तक ।
वा०रा० ३।१०।३।
३. वा० रा० ७।७६। सर्ग ।
४. 'कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः' । वा० रा० १।६।१२।

के लिये परम हितकारिणी एवं जीवन का संतुलनकारिणी थी। जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त्यर्थ यह व्यवस्था परमोपयोगिनी थी। रामायण काल में इसका भी व्यापक संदेश है।

'कश्यप ऋषि के प्रपौत्र ऋष्यश्रृंग का उदाहरण 'ब्रह्मचर्याश्रम' का दिग्दर्शक है।

'स वने नित्य संवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा।
मान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रनुवर्तनात्।
द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः।'[1]

'गुरूकुल' की व्यवस्था ब्रह्मचर्याश्रम के निमित्त ही की जाती थी।

विश्वामित्र के आश्रम में राम को अस्त्र-शस्त्र विद्या का ज्ञान कराना 'आधुनिक सैनिक प्रशिक्षण' की ओर ही संकेत करता है। वेद वेदांगवित् राम ने वशिष्ठ के समीप रहकर अध्यात्मविद्यादि का अध्ययन किया[2] तथा विश्वामित्र के आश्रम में क्षात्र धर्म की शिक्षा पा पूर्णता प्राप्त की।[3]

आदर्श गृहस्थाश्रम दशरथ, जनकादि का दर्शाया गया है जिसका विशद चित्रण उनके चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत किया गया है। गृहस्थाश्रम की महत्ता प्रतिपादित करते हुये वाल्मीकि ने उसकी श्रेष्ठता भी वर्णित की है।

'चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।'[4]

अरण्य कांड में 'ऋषि ब्राह्मणों' के विवरण में 'वानप्रस्थ' एवं सन्यास आश्रम में निवास करने वाले मुनियों का व्यापक चित्रण है जिसका उल्लेख वर्ण व्यवस्था के प्रसंग में किया जा चुका है।

मानस में वर्णाश्रम व्यवस्था का रूप

मानसकार की तत्कालीन परिस्थिति रामायणकार से नितान्त विपरीत थी अतः उसके सांस्कृतिक दृष्टिकोण की व्याख्या के दो रूप अपनाने अनिवार्य होंगे।

(१) यथार्थ परिस्थिति
(२) आदर्श दृष्टिकोण

आर्य संस्कृति के परिपोषक तुलसीदास तत्कालीन वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था को कुंठित होते हुये देख क्षुब्ध हो उठे और सामयिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण काक भुसुंडि के शब्दों में कर उठे :

'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

---

१. वा० रा० १।८।५,६।
२. वा० रा० १।१८।३४।
३. वा० रा० १।२२,२६वां सर्ग।
४. वा० रा० २।१०७।२२।

से लेकर..........
भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग
करहिं पाप पावहिं दुख भय रूज सोक बियोग ।।'[1]

तुलसी के समय वर्णाश्रम धर्म के ह्रास का कारण था। नास्तिक जैनों एवं बौद्धों द्वारा वैदिक संस्कृत पर प्रहार। परन्तु भाष्यकार तथा वेदान्तियों ने अपने कर्मठ प्रचार द्वारा उसकी रक्षा की। भागवत धर्म तथा वैष्णव सम्प्रदाय ने भी इस मार्ग में सहायता की। परन्तु साहित्य क्षेत्र में कबीरादि निर्गुण रहस्यवादियों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों की सामञ्जस्य भावना के आवरण में वर्णाश्रम धर्म का उच्छेद करने की प्रबल चेष्टा की। ज्ञान मार्गी तथा प्रेम मार्गी दोनों निर्गुण शाखाओं ने इस व्यवस्था का विरोध किया।

समन्वयात्मिका शक्ति सम्पन्न गोस्वामी तुलसी दास ने 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ' के पथिक बनकर प्राचीन एवं नवीन वर्ण व्यवस्थाओं का समुचित संगठन किया। शास्त्रानुमोदित मार्गावलम्बी तुलसी शास्त्रोक्त 'वर्णाश्रम धर्म मर्यादा' का अनुशीलन क्यों न करते अतः उन्होंने यथार्थ सामयिक चित्रण करने के साथ ही साथ अपना आदर्श दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि तुलसी ने जन्म से वर्ण व्यवस्था को माना है या कर्म से, उनके काव्यानुशीलन के उपरान्त यही निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी मधुकरी वृत्ति को ही अपनाया। दोनों प्रकार के विभाजन के मधु का संचय करना ही उन्हें अभीष्ट हुआ।

यद्यपि पारम्परिक रूप से सामाजिक मर्यादा के पोषक होने के नाते वर्ण व्यवस्था उन्हें जन्मना भी मान्य थी परन्तु वे उसकी कट्टरता पर विश्वास न करते थे। भक्ति का समावेश हो जाने से अन्य वर्ण भी उन्हें उतने ही मान्य थे जितना कि ब्राह्मण वर्ग। यद्यपि यह कहने में तनिक भी संकोच न होगा कि अन्य वर्गों की अपेक्षाकृत उन्होंने 'ब्राह्मण' के प्रति विशेष पूज्य भाव अर्पित किये हैं।[2] उसका कारण भी यही है कि वे उनमें गीतोक्त[3] सभी लक्षणों को विद्यमान देखने की उच्चाभिलाषा करते थे अतः यह अनिवार्य था कि इन लक्षणों से सम्पन्न ब्राह्मणों को ही वे ब्राह्मण मानते। इसके विपरीत इन लक्षणों से हीन केवल जन्मना ब्राह्मण उन्हें कदापि मान्य न था।

'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ।।'[4]

उक्त प्रसंग में कर्म भ्रष्ट ब्राह्मण की कटु एवं तीव्र आलोचना भी आपने की है।

इसी प्रकार उन सबका आदर्श कैसा होना चाहिए इसका दिग्दर्शन 'राम राज्य' प्रसंग के अन्तर्गत आपने किया है।

---

१. मा० ७।९७।१ से १०० तक।
२. सापत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता ।। मा० ३।३३।१।
३. 'शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम्।' गीता १८।४१।
४. मा० ७।९९।८।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।'[1]

पूर्व प्रसंगों में वर्ण व्यवस्था की ही भाँति आश्रम व्यवस्था पर ही आपने व्यापक प्रकाश डाला है। वाल्मीकि की ही भाँति गृहस्थाश्रम को आपने भी श्रेष्ठ स्थान दिया है। उनके वशिष्ठ, विदेहराज जनक, भक्ताग्रगण्य भरत सभी गृहस्थाश्रम की कसौटी द्वारा परीक्षित कुन्दन स्वर्ण की नाईं प्रकाशमान हैं। 'जोग भोग महं राखेहु जोई।' में 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' का आदर्श परिलक्षित है।

'वान प्रस्थ' का उल्लेख विशेष न कर सन्यासाश्रम की आलोचना आपने सम्यक् की है।

'नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।'[2]
'अनाश्रितः कर्म फलं कार्यं करोति यः
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः।[3]

अपने पात्रों के रूप में इसी सिद्धान्त का ही आपने सक्रियरूप प्रदान किया है।

रामायण में पारिवारिक संस्कृति

वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा पर स्थित समाज सुसंगठित एवं सुदृढ़ होगा इस संस्कृति के दिग्दर्शन के साथ ही साथ समाज की इकाई 'परिवार' का भी इसमें सांगोपांग चित्रण है।

संयुक्त परिवार में परस्पर पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-वधू, पति-पत्नी इत्यादि के क्या-क्या उच्च आदर्श हो सकते हैं इन सभी दृश्यों का चित्रण दोनों काव्य ग्रन्थों में किया गया है।

पारिवारिक संस्कृति का उल्लेख करने के पूर्व विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनों महाकाव्यकारों की तत्कालीन पारिवारिक स्थिति क्या थी और उनका कहां तक यथार्थवादी एवं कहां तक सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है।

वैदिक युग के पश्चात् सूत्र काल में सामाजिक विकास अधिक हुआ। गृह्य सूत्रों में परिवारोपयोगी सूक्तियों का निदर्शन तत्कालीन संस्कृति का परिचायक है। उसी प्रकार आदि काव्य ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण में भी कथात्मक रूप में इसकी व्याख्या की है।

श्री बलदेव उपाध्याय के शब्दों में यथार्थ व्याख्या की गई है।

'भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण का मुख्य उद्देश्य प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श पत्नी आदि जितने आदर्शों को इस अनुपम महाकाव्य में आदि कवि की शब्द तूलिका ने खींचा है वे सब

---

१. मा० ७।२० १,२।
२. मा० ७।९९।६।
३. गीता ६।१।

गृह धर्म के पट पर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों, राम रावण का वह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम जानकी पति पत्नी की परस्पर विशुद्ध प्रीति को पुष्टि करने का एक उपकरण मात्र है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा है, गृहस्थाश्रम। अतः यदि इस गार्हस्थ्य धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आदि कवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया है तो इसमें आश्चर्य क्या है? यह तो भारतीय सभ्यता का प्रतीक ठहरा, दोनों में परस्पर उपकार्योपकारक भाव बना हुआ है।'[1]

'रामायण काल' में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। समाज के इकाई रूप परिवार का मुख्य गुरुजन कर्मनिष्ठ गृहस्थ हुआ करता था तथा उसकी पत्नी गृहस्वामिनी कहलाया करती थी। सारा उत्तरदायित्व इस युगल दम्पति पर हुआ करता था। उसकी आज्ञा ब्रह्मा की आज्ञा मानी जाती थी। परिवार में पुत्र की उत्पत्ति का विशेष महत्व हुआ करता था। ज्येष्ठ पुत्र पिता का उत्तराधिकारी हुआ करता था। परिवार में अनुशासन वांछनीय था। मुखिया के विरुद्ध किसी में उसका उल्लंघन करने का दुस्साहस न था। दशरथ तथा उनके पुत्र राम का उदाहरण इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि उन्होंने हठात् नहीं वरन् स्वेच्छा से आज्ञा पालन करना अपना परम कर्त्तव्य माना। परिवार में उच्छृंखलता के व्यवहार का कोई स्थान न था। इस प्रकार परिवार स्नेह, श्रद्धा, त्याग, सेवा आदि दिव्य भावनाओं द्वारा विकसित एवं परिवर्द्धित होता रहा। रामायण के परिवार में भारतीय संस्कृति के उत्कृष्टतम रूप का निदर्शन है।

गोस्वाभी तुलसीदास जी के समय में परिवार की जो स्थिति थी, उसी का चित्रण उन्होंने सफलतापूर्वक किया। पारिवारिक जीवन को अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से गोस्वामी जी ने देखा और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी के आदर्श परिवार की कल्पना करके उसका महत्व एवं आदर्श समाज के सम्मुख रक्खा।'[2]

सभी क्षेत्रों की भाँति सामाजिक जीवन में भी मर्यादा भाव को प्रतिष्ठित किया। वाल्मीकि एवं तुलसी में यही अन्तर है कि वाल्मीकि ने सामयिक पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया है, तुलसी ने युग की उच्छृंखलता से पीड़ित होकर राम परिवार की प्रतिष्ठा करके, उसकी प्रतिक्रिया की।

तुलसी ने पारिवारिक जीवन का सैद्धान्तिक निरूपण नहीं अपितु व्यावहारिक निदर्शन 'राम परिवार' के रूप में दर्शाया है। इस दृष्टि से डा० राजपति दीक्षित का प्रस्तुत कथन पठनीय होगा।

'भारतीय' 'परिवार' संघटन शैली के द्वारा घर में ही 'बाहर' की, व्यष्टि में ही

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ८०।

२. गोस्वामी तुलसीदास जी का सामाजिक आदर्श
द्वारा श्रीमती सुधारानी शुक्ल पृष्ठ ४८।

समष्टि की 'स्व' के साथ 'पर' की, थोड़े में या एक शब्द में 'धर्म' की शिक्षा दी जाती है। इसी से सामाजिक तुलसीदास ने 'परिवार' पर विशेष ध्यान दिया है। 'मानस' में राम चरित के भीतर राम परिवार में उन्होंने उसके स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति की है। यदि 'मानस' को दृष्टि में रखकर कोई कहना चाहे तो कह सकता है कि गोस्वामी जी 'पारिवारिक कवि' हैं। वे भाई-भाई, पति-पत्नी, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, स्वामी-सेवक आदि, यहाँ तक कि लालित पालित पशु पक्षियों के सम्बन्धों और उनके निर्वाह की जैसी झलक दिखाते हैं उसमें 'सम्मिलित परिवार' शैली का पूर्ण समर्थन निहित है।'[1]

काव्य कला में सत्यनिरूपण के साथ-साथ 'शिवं' तत्व के परिपोषक तुलसी ने 'विनय पत्रिका' एवं 'मानस' के अनेक प्रसंगों में सामयिक सामाजिक चित्रण करने के साथ-साथ अपने युग की उच्छृंखलता के प्रति प्रतिक्रियात्मक उत्तर भी उसी में प्रस्तुत कर आदर्श प्रणाली को अपनाया है। आपकी इस प्रणाली का मेरुदंड 'मर्यादा निर्वाह' है।

कवि अपने काल का प्रतिनिधि भी हुआ करता है तथा उन्नायक भी। तुलसी यह देखकर किस प्रकार मौन रह सकते थे।

'सब नर कल्पित करहिं अचारा'

भारतीय संस्कृति के शरीर में कदाचार, असत्य, अनुदारता, पाखंड, मर्यादा हीनता एवं कुत्सित प्रवृत्तियों के कीट प्रवेश कर चुके थे और उसे छलनी बना रहे थे। तुलसी ने लोक नायक राम के चरित्र को माध्यम बनाकर आर्य संस्कृति के मरणप्राय, शुष्कप्राय श्रोत को पुन: प्रस्रवित कर जन जीवन को सरसित किया।

परिवारों के दो प्रमुख वर्गों का स्पष्ट निदर्शन गोस्वामी जी ने किया

(१) भौतिकवादी

(२) अध्यात्मवादी

भौतिकवादी में अशुभ वृत्तियां निवास करती हैं, अध्यात्मवादी में शुभ! रावण एवं राम के परिवार इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

तुलसी ने दशरथ परिवार में सत्य प्रेम मिश्रित वात्सल्य, पितृ भक्ति, भ्रातृ भक्ति, पति भक्ति, पश्चात्तापाग्नि का निखरा रूप इत्यादि दिव्य रत्नों का समावेश कर उसे स्वर्गोपम बना दिया है जिसमें अपूर्व त्याग एवं बलिदान की प्रखर आभा प्रकाशमान हो उठी है।

रामायण तथा मानस में 'संस्कार'

भारतीय परिवार में संस्कारों का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति के ये अभिन्न अंग हैं। संस्कृति और संस्कार में अंगांगी का घनिष्टतम सम्बन्ध है। भारतीय वाङ्मय में शरीरोपयोगी एवं अध्यात्म विकासार्थ अनेकों संस्कारों का उल्लेख किया गया है।

---

१. तुलसी और उनका युग पृष्ठ ६३।

गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, विवाह, द्विरागमन तथा अन्त्येष्टि ।

इन संस्कारों के सम्बन्ध में श्रीमती विद्या देवी महोदया का मत पठनीय है ।

'पृथ्वी की अन्य सब जतियों से हिन्दू जाति की अपनी कुछ विशेषता है । इस विशेषता की आधारशिला इसकी आध्यात्मिकता में निहित है । हमारे त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियों ने मनुष्य के वैयक्तिक और सामूहिक जीवन का सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चे आनन्द का तत्व अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया था । इस कारण उन्होंने हिन्दू जाति के प्रत्येक क्रिया कलाप, आचार व्यवहार एवं प्रत्येक चेष्टा को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कुछ नियमों द्वारा नियन्त्रित कर दिया । इसी कारण हिंदू जाति की सामान्य से सामान्य क्रिया में भी धर्माधर्म का सम्बन्ध बांधा गया है ।'[1]

भारतीय पारिवारिक जीवन में उपर्युक्त संस्कारों में से जातकर्म, उपनयन, विवाह एवं अन्त्येष्टि संस्कार का विशेष महत्व एवं उपयोगिता व्यवहृत की गई है। वाल्मीकि रामायण में 'जात कर्म संस्कारों' का संक्षिप्ति में उल्लेख है ।[2]

गोस्वामी ने 'नंदीमुख श्राद्ध', 'जातकर्म', 'दान' एवं 'नामकरण' संस्कारों[3] का भी विधिवत् उल्लेख किया है । तदनन्तर 'चूड़ाकरण',[4] 'यज्ञोपवीत' एवं 'उपनयन'[5] का वर्णन किया है । पारिवारिक स्थिरता के प्रधान साधन 'विवाह' संस्कार का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में कुछ भिन्न है । धर्म शास्त्रों में विवाह के आठ प्रकार वर्णित हैं ।

ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच ।

इनमें से प्रथम चार विधियां धर्मसम्मत एवं वैधी मानी गई शेष अधर्मयुत् तथा अवैधी ।

वाल्मीकि रामायण में विवाह के पूर्व 'वर वधू' का परिचय नहीं कराया गया है। सीता, शान्ता, मन्दोदरी सभी ने विवाह के पूर्व अपने पतियों के दर्शन नहीं किये थे । उनका विवाह स्वेच्छाधीन न होकर उनके पित्राधीन था । सम्मिलित परिवार में 'गृहपति', ज्येष्ठ स्वामी अथवा पिता का विशेष महत्व था । विवाह संस्कार के पश्चात् स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा अपनी समस्त प्रवृत्तियों को एक दूसरे में केन्द्रित एवं नियन्त्रित कर आत्म संयम

---

१. हिन्दू संस्कृति में विवाह का आदर्श पृष्ठ ६१४ ।

२. वा० रा० १।१८।२०,२१,२३।

३. 'नंदी मुख सराध करि'

४. (२) 'जातकरम' सब कीन्ह ।

(३) 'हाटक धेनु बसन मनि नृप विप्रन्ह कहं दीन्ह ।।'

मा० १।१९३।

(४) 'धरे नाम गुर हृदयं बिचारी ।।' मा० १।१९७।१।

५. 'चूडा करन कीन्ह गुरू जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।।'

मा० १।२०२।२।

एवं आत्म त्याग का अभ्यास करना भारतीय संस्कृति का प्रथम उद्देश्य है। इसी कारण नारी के लिये पातिव्रत धर्म एवं पुरुष के लिये एक पत्नीव्रत धर्म की आदर्श प्रतिष्ठा का सफल निदर्शन इन पावन ग्रन्थों में कराया गया।

इस विवाह संस्कार के अन्तर्गत वाल्मीकि से तुलसी की भिन्नता का कारण तुलसी के समय की तात्कालिक परिस्थितियां थीं। वाल्मीकि रामायण में धनुर्भंग के पश्चात् राम लक्ष्मणादि का विवाह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में सम्पन्न हुआ विवाह संस्कार में भी वैभिन्न्य परिलक्षित होता है। रामायण में राजा जनक द्वारा प्रार्थित होने पर वशिष्ठ ने वेदी सज्जा, अग्नि स्थापनादि कर आहुति कार्य प्रारम्भ कर अग्नि को साक्षी कर मन्त्र पूत जल छिड़क कर पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न किया, इसमें अग्नि, वेदी को ही प्रमुख महत्व दिया गया। मानस में गोस्वामी जी ने 'पुष्पवाटिका प्रसंग' में सीता का पूर्व परिचय भी कराया जिसकी प्रमुख प्रेरणा उन्हें 'प्रसन्नराघव' नाटक से मिली। प्रेमाख्यानक काव्य की शैली को तुलसी ने अपनाया अवश्य परन्तु उस प्रसंग को अलौकिक 'प्रीति पुरातन' एवं मर्यादा के अनतिक्रमण के आवरण में ही सुसज्जित रक्खा।

तत्पश्चात् 'धनुर्भंग' होते ही 'प्रणविवाह' सम्पन्न होने की उन्होंने सूचना दी।

'टूटत ही धनु भयउ बिबाहू।'

तदनन्तर स्वयंबर की रूप रेखा का भी सम्यक् निर्वाह किया जिसका कि तत्कालीन हिन्दू राजाओं में प्रचलन था।

रासो आदि वीर काव्यों की भाँति विवाह प्रसंग में अपने विरोधियों को पराभूत करके शौर्य प्रदर्शन भी प्रचलित परम्परा बन गई थी। स्वयम्बर सभा के मध्य परशुराम को श्री हत करना भी इसी प्रथा का अनुसरण करना था।

समन्वयकारी तुलसी ने लौकिक विधियों की भी उपेक्षा नहीं की। समस्त वैवाहिक विधियों का व्यापक वर्णन आपने किया है।[१] जो कि तात्कालिक विधियों के साथ-साथ आधुनिक युगीन विवाह संस्कारों की झलक दर्शा रहा है।

'तेहि अवसर कर बिधि व्यवहारू।
दुहुं कुल गुर सब कीन्ह अचारू॥'[२]

गोस्वामी जी ने शास्त्र सम्मत, लोक सम्मत समस्त विवाह परम्पराओं, वैदिक

---

१. भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुर गृह गए पढ़न रघुराई॥ मा० १।२०३।३,४।

२. (१) वर की द्वार पर परछन (आरती) करने की प्रथा
मा० १।३१७ से १।३१८।४ तक।
(२) राम का मंडप में आगमन, निछावरि बांटना मा० १।३१९।
(३) समधी-समधी का गले मिलना—सामघ प्रथा मा० १।३१९।१ से ५।
(४) बारात का व्यापक चित्रण मा० १।२९७।४,१।३००।२ क्रमशः

एवं लौकिक रीतियों का सम्यक् निर्वाह कर मर्यादाबद्ध ढग से उनका विस्तार पूर्वक चित्रण किया है। तुलसी को तत्कालीन प्राप्त विवाह परम्पराओं का आदर्श रूप दर्शाना परमावश्यक था जब कि वाल्मीकि के समय में ऐसी कोई स्थिति न थी। उस समय सभी संस्कार प्रत्यक्ष देवताओं पर अधिकांशत: आधारित थे। अतएव अग्नि द्वारा ही विवाह सम्पादित दर्शाई गई।

अन्त्येष्टि क्रिया संस्कार

यह संस्कार मरण के पश्चात् मृतक देह को अग्नि प्रदान करके मन्त्र विधि से दाह क्रियादि के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। वर्णाश्रमानुसार दशगात्र, षोडश श्राद्ध, सपिण्डीकरणादि क्रियाएँ इसी क्रिया के अन्तर्गत हैं। स्थूल शरीर की परिसमाप्ति पर सूक्ष्म शरीर को वायवीय शरीर की प्राप्ति होती है। इस स्थिति को जीव को प्रेत संज्ञा कहते हैं। इससे मुक्ति प्राप्त कराने के हेतु इस क्रिया का विधान शास्त्रों में बताया गया है।

भारतीय संस्कृति के प्रधान स्तम्भ इन दोनों काव्य ग्रन्थों में इस संस्कार का व्यापक उल्लेख है। तत्कालीन सामाजिक परम्परानुसार रामायण में मानस की अपेक्षाकृत अधिक विस्तार है। इस संस्कार के निर्देशक प्रसंग प्रमुखत: निम्नांकित हैं :

दशरथ मरण, जटायु देह त्याग, बालि स्वर्गवास तथा रावण मृत्यु।

यह संस्कार अत्यन्त पावन एवं धार्मिक कृत्य समझा जाता था यही कारण है कि दशरथ कैकेयी पर क्षुभित होकर भरत को इस संस्कार से च्युत करने के लिये कह बैठे—

'प्रियं चेद्भरतस्यैतद्राम प्रव्रजनं भवेत्।
मा स्म मे भरत: कार्षीत् प्रेतकृत्यं गतायुष: ॥'[1]

इतना ही नहीं उस अन्तिम संस्कार की गुरुता का संकेत निम्नांकित उद्धरण से भी

---

(५) गौरि, गनपति पूजन मा० १।३२२ (छंद)
(६) आहुति देना (यज्ञ) मा० १।३२३।
(७) जनक सुनयना का पद प्रक्षालन मा० १।३२३ (छंद)
(८) वेदोच्चारण सहित पाणि ग्रहण संस्कार मा० १।३२३।
(९) गांठ जोड़कर भांवरी घूमना मा० १।३२४।१।
(१०) राम द्वारा सिंदूर दान मा० १।३२४।८।
(११) कनक मणि मंडप के नीचे दहेज में दिये उपहारों का विस्तार मा० १।३२५।२। तथा मा० १।३३२ से ३३३।
(१२) वर वधू में लहकौरि खिलाना मा० १।३२६ (छंद)
(१३) जेवनार वर्णन मा० १।३२७ से ३२९ तक।

२. मा० १।३२२।८।

१. वा० रा० २।१२।९२।

मिलता है जब दशरथ अत्यन्त विक्षोभ से प्रताड़ित होकर कहने लगे कि यह संस्कार भरत या कैकेयी द्वारा सम्पादित करवाने की अभिलाषा प्रकट करते हैं ।[1]

इतना ही नहीं इस संस्कार का गुरुत्व इससे और भी ज्ञात होता है कि पुत्र द्वारा कृत अन्तिम संस्कार में जो कुछ अन्न जल दिया जाता है वह पितृ लोक में पितृ गण को प्राप्त होता है इसलिये यदि भरत को भी राम का वन गमन अभीष्ट हो तो दशरथ भरत द्वारा कृत श्राद्ध तर्पण को भी परलोक में प्राप्त न करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं ।[2]

परन्तु विशुद्ध काम भरत ने कितनी श्रद्धा और सद्भावना के साथ और्ध्व दैहिक संस्कार सम्पन्न किया यह दर्शनीय है ।[3]

दशरथ के मृतक शरीर को तेल नाव से बाहर निकाल कर सजी हुई पालकी में रखना, लोगों द्वारा पालकी उठाना, उस पर वस्त्र, सुवर्णादि बिखेरते चलना, चन्दन, अगुरु, गुग्गुल, पद्मक एवं विभिन्न सौरभ पूर्ण देवदारुओं की चिता पर उस मृतक शरीर को रखना तथा मन्त्र पाठ के पश्चात् भरत द्वारा अग्नि दाह संस्कार सम्पन्न करना इत्यादि ।........

सामगाताओं ने साम गान किया, स्त्रियों तथा अन्यों ने दशरथ की प्रदक्षिणाएं कीं । जल तर्पण के पश्चात् सग अयोध्या लौटे । ११वें दिन भरत शुद्ध हुये । १२वें दिन श्राद्ध करके उन्होंने ब्राह्मणों को प्रचुर परिमाण में धन, रत्न, अन्न, वाहन, गृह, गौ आदि वस्तुओं का दान किया । १३वें दिन अस्थि संचयन की अन्तिम क्रिया सम्पन्न कर प्रेत संस्कार का विधिवत् सम्पादन किया ।

मानस में भी इस क्रिया का वर्णन संक्षिप्त शैली में किया गया है ।[4] अधिकांश साम्य भी है परन्तु इस प्रसंग में भेद यह है कि मानसकार ने स्त्रियों को स्वभावतः दुर्बल-हृदया मानकर एवं मर्यादा न भंग हो इस कारण श्मशान भूमि पर उन्हें नहीं दिखाया है । इस कृत्य का विवरण न देकर निष्कर्ष में ही गोस्वामी जी ने उसका स्तुत्य वर्णन कर दिया है ।

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी । सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ।।'[5]

केवल भरत ने ही नहीं राम ने भी जैसे ही दशरथ की मृत्यु का दुःखद समाचार सुना तुरन्त ही उत्तर क्रिया सम्पन्न की । मृत्यु का समाचार प्राप्त करते ही अशौच प्रारम्भ हो जाता है । मानस की अपेक्षा इसमें इस संस्कार का उल्लेख अधिक विस्तृत और हृदयस्पर्शी है जिसका प्रत्यक्ष कारण गोस्वामी जी के राम का परब्रह्मत्व है और वाल्मीकि जी के राम का मानवत्व ।

---

१. वा० रा० २।१४।१४,१६,१७।

२. भरतश्चेत् प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्यैतदव्ययम् ।
यन्मे स दधात्पित्रर्थं मा मां तद्दक्षमागमत् ।। वा० रा० २।४२।९।

३. वा० रा० २।७६।३५,११,१४,२०। तथा
वा० रा० २।७७।१ से ३,२२,२६।

४. मा० २।१६९।१ से २।१७० दो० तक ।

५. मा० २।१७०।१।

धर्म क्रिया कलाप में निष्णात राम ने भरत से दु:संवाद सुनते ही स्वयं अन्त्येष्टि क्रिया न कर सकने का पश्चात्ताप किया और फिर यथाविधि मन्दाकिनी नदी के तट पर पहुँच कर लक्ष्मण तथा सीता सहित इगुदी, बेल के पिंड सहित जल अर्पण कर सपिंडकरण तक की क्रियाएं स्वत: ही सम्पन्न कीं ।[1]

इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि उस समय इस क्रिया का कितना महत्व था कि वन-वासी राम ने भी इस मर्यादा का निर्वाह सर्वप्रथम करना ही' श्रेयस्कर मानकर येन केन प्रकारेण उसे सम्पादित किया ।

मानस में भी इस प्रसंग[2] का संक्षिप्त उल्लेख मात्र है ।

'करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक तम तरनी ।।'[3]

गृद्धराज जटायु को भी राम ने पितृवत् ही माना अतएव उसके शरीर त्याग पर भी राम ने पुत्रवत् उसका अन्त्येष्टि संस्कार विधिवत् सम्पन्न किया ।[4] यह क्रिया केवल शिष्टाचारवश या परोपकार विनिमय हेतु ही नहीं की वरन् राम ने इस संस्कार द्वारा गृध की निकृष्टयोनि में जन्म लेने पर भी उसे उत्तम लोकों की प्राप्ति कराई । इसी निमित्त उन्होंने पक्षीन्द्र को अरण्याग्नि की प्रज्वलित चिता पर आरोपित कर दाह संस्कार किया । इतना ही नहीं उसी के जाति बन्धुओं को भोज निमित्त तदनुकूल पिंड दान भी दिया । रोहियों को मारकर उसका मांस लेकर पिंड बनाए और पृथ्वी पर कुशा बिछाकर पक्षियों के निमित्त रख दिये । तदनन्तर पितृ देवताओं के सूक्तों का जप किया और दोनों बन्धुओं ने साथ ही गोदावरी नदी में स्नान किया और तर्पण करने लगे । इस प्रकार राम द्वारा तुरन्त कृत यथा विधि संस्कार प्राप्त गृध्रराज शुभ गति को प्राप्त हो गये ।[5]

इस प्रसंग का विस्तृत उल्लेख नहीं अपितु संकेत मात्र है ।

'तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्हीं राम ।।[6]

इस संक्षिप्त का कारण भी गोस्वामी जी की आगे की पंक्तियों में पूर्णतया स्पष्ट है ।[7] स्वयं गति दाता ही संस्कार कर्त्ता हैं अत: उस संस्कार का निर्वाह शिष्टाचार मात्र

---

१. वा० रा० २।१०३।९,१०,१७ से ३० तक ।
२. मा० २।२४६।७,८,२।२४७।
३. मा० २।२४७।१।
४. 'राजा दशरथ: श्रीमान्यथा मम महायशा: ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथा यं पतगेश्वर: ।' वा० रा० ३।६९।२६।
५. वा० रा० ३।६९।२७ से ३७।
६. मा० ३।३२।
७. कोमल चित अति दीन दयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ।।
गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।।'
मा० ३।३२।१,२।

सा लगता है जबकि वाल्मीकि ने राम द्वारा जटायु की सद्गति की प्रार्थना वेदमंत्रों द्वारा कराई है मानव रूप में ही स्थित होकर।[1] इस प्रसंग का भावात्मक निरूपण गोस्वामी जी ने गीतावली में किया है।

इस संस्कार का निदर्शन नर और पक्षियों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु वानर जाति में भी इसका व्यापक वर्णन है। बालि बध के पश्चात् राम का उपदेश एवं लक्ष्मण का आदेश पाकर सुग्रीव ने समस्त प्रेत कार्य सम्पन्न किये जो किसी भी प्रकार दशरथ के अन्तिम संस्कार से कम नहीं लक्षित होता अपितु उससे भी अधिक समारोह एवं सामग्रियों से यह कार्य सम्पन्न किया गया।

बाली को पालकी में रखकर अनेकाभरण, पुष्प, वस्त्रादि से अलंकृत किया गया। कुछ वानर रत्नादि उस पालकी के इधर-उधर विखेरते हुये आगे बढ़े। नारियाँ भी पीछे-पीछे गईं। नदी की बालुका के तट पर पहुँचकर चिता बनाकर उचित रीति से अग्नि प्रदीप्त कर प्रदक्षिणा की और तदनन्तर सभी ने उदक क्रिया समाप्त की।[2]

मानस में इस संस्कार का भी उल्लेख न होकर संकेतमात्र है।

'तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म विधिवत् सब कीन्हा॥[3]

इस भिन्नता का कारण भी दोनों ग्रन्थकारों की उद्देश्य भिन्नता है। रामायण एक विशाल ग्रन्थ है। उसमें प्रत्येक कार्य का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। राम भक्त गोस्वामी जी का उद्देश्य केवल राम सम्बन्धी या उनकी भक्ति सम्बन्धी चरित्रों एवं प्रसंगों का चित्रण करना था अतः उनके अनुसार इसका विशद चित्रण अनावश्यक विस्तार होता।

नर, वानर, पशु की ही भाँति राक्षस राज रावण का क्रिया कर्म भी शास्त्र प्रतिपादित ढंग से सम्पन्न किया गया। निर्वैर राम विभीषण द्वारा अन्तिम संस्कार का विरोध करने पर अपने प्रतिपक्षी की भी अन्त्येष्टि क्रिया के हेतु वे विभीषण को आदेश देते हैं।[4]

यह आज्ञा पाकर विभीषण ने अग्नि होत्री ब्राह्मण के अग्निहोत्र को प्रज्वलित किया। गाड़ियाँ, काष्ठों के पात्र, यज्ञाग्नि, यज्ञ कराने वालों इत्यादि को श्मशान भूमि में भेजा। माल्यवान् के साथ शिबिका पर मृत रावण को रखकर रेशमी वस्त्रों से आच्छादित कर सभी ब्राह्मण वृन्द, वाद्य यन्त्र वाहक एवं चारण भाट आदि चले। पताका एवं पुष्पादि से अलंकृत शिविका के आगे विभीषण रहे। सभी स्त्रियाँ भी पीछे-पीछे गईं। चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों एवं काष्ठों से निर्मित चिता पर काले मृग की छाल वेद मंत्रोच्चारण सहित बिछाई और दक्षिण पूर्व के कोने पर वेदी बनाकर उस पर अग्नि स्थापित की और

---

१. वा० रा० ३।६९।३०।
२. वा० रा० ४।२५।२९।३८,४९ से ५३ तक।
३. मा० ४।१०।८।
४. वा० रा० ६।१११।१००।

उस पर रावण का सिर रख कर दही व घी भर कर स्रुवा से कन्धे पर छोड़ा और पैरों पर शकर और जंघाओं पर उलूखल छोड़ा । सब पात्र आरणी व मूसल शास्त्रानुसार निश्चित स्थान पर स्थापित किया । गंधमाला, भूषण, उत्तम वस्त्रादि की वर्षा की । गीले वस्त्रों से सभी ने कुश व तिल सहित जलांजलि देकर प्रेत कार्य सम्पन्न किया ।[1]

इस प्रकार रावण के इस संस्कार को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि रावण के क्रिया कर्म किसी भी प्रकार से आर्य जाति से कम सम्पन्न नहीं हुये । उपर्युक्त संस्कारों की भाँति 'मानस' में भी इस प्रसंग का केवल संकेत मात्र ही है ।[2]

यज्ञ प्रकरण

भारतीय पारिवारिक संस्कृति में संस्कारों का उल्लेख करते समय पंच महायज्ञों एवं सप्त प्रकार के पाक यज्ञों, सात प्रकार के हवियज्ञों एवं सात प्रकार के सोमयज्ञों का विवरण उपलब्ध है ।

पंच महायज्ञों के अन्तर्गत निम्नांकित हैं—

(१) ब्रह्म यज्ञ ।
(२) पितृ यज्ञ ।
(३) देव यज्ञ ।
(४) भूत यज्ञ ।
(५) मनुष्य यज्ञ ।

भारतीय जीवन का मूलाधार ही धर्म है । धर्म के आधार स्तम्भ इन काव्य ग्रन्थों में इसका सर्वांगीण विवेचन होना स्वाभाविक ही है । दोनों में यत्र तत्र इन पंच महायज्ञों की अनिवार्यता एवं उनका चित्रात्मक वर्णन दृष्टिगत होता है ।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कर्म कांड का विवेचन करते हुये यज्ञ का माहात्म्य वर्णित करते हैं ।

'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।'[3]

श्री हनुमान् प्रसाद पोद्दार का कथन है कि—

'गृहस्थ के घर में जो नित्य पाँच तरह के पाप होते हैं उनके प्रायश्चित के लिये तत्वज्ञानी ऋषियों ने पंचमहायज्ञ की व्यवस्था की थी ।.... बलिवैश्वदेव इन पांचों में

---

१. वा० रा० ६।१११।१०४ से १२२ तक ।
२. कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिसोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ।।
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी । बिधिवत देस काल जियं जानी ।।'
मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ।।
मा० ६।१०४।६,७ से ६ १०५ तक ।
३. गीता ३।१३।

से एक महायज्ञ है।.........इससे अन्न की शुद्धि होती है, पापों का प्रायश्चित होता है, निष्काम भाव से करने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है।'[१]

हिन्दू संस्कृति का यह पंच महायज्ञ इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि उसका लक्ष्य समस्त विश्व की सुख समृद्धि है। इस जगत का संचालन दैवी सहयोग से होता है। दैवी जगत् के संचालक ऋषि वर्ग कहे गये हैं अतएव उनके संवर्धन एवं परितुष्टि के लिये नित्य यज्ञ करना भी परम अनिवार्य है। वही 'ब्रह्म यज्ञ' या 'ऋषि यज्ञ' कहलाता है। अनेक देवों की सन्तुष्टि निमित्त देव यज्ञ किया जाता है क्योंकि कर्म के शुभाशुभ फल दाता देव वर्ग हैं। इनके अतिरिक्त वंशवृद्धि के हेतु 'पितृ-यज्ञ' अपेक्षित होता है। इन विभिन्न वर्गों के अतिरिक्त इस जगत में दो प्रकार के जीव हैं (जड़ एवं चेतन) चेतन मानव सृष्टि के अतिरिक्त शेष जीव सृष्टि (जड़ एवं अर्ध चेतन) के कल्याण के निमित्त 'भूत यज्ञ' किया जाता है। तथा चेतन मानव के लिये 'नृयज्ञ' होता है जिसका प्रधान रूप आतिथ्य धर्म है।

इस प्रकार इन पंच महायज्ञों में हिन्दू संस्कृति की विशालता, उदारता एवं आचार की व्यापकता 'लक्षित' होती है। रामायण एवं मानस इसी रूप के क्रियात्मक प्रतीक हैं।

रामायण में यज्ञ

रामायण में अयोध्यानगरी में 'देव गृह' तथा 'यज्ञ गृह' का निर्माण उपर्युक्त यज्ञों के विधान का स्थिर रूप प्रमाणित करता है जिनका उल्लेख निम्नांकित प्रसंगों में किया गया है।

प्रारम्भ से ही यज्ञ विधान के दर्शन होते हैं। राम का जन्म ही यज्ञ का सुफल है।[२] तदनन्तर कौशल्या का 'यज्ञ शाला' में हवन करना[३], राम का वन प्रदेश में भी नित्य आह्निक कर्मों के अनुसार हवन करना[४], अनेक ऋषियों के द्वारा कृत हवन क्रियादि का दर्शनादि प्रसंग[५] तत्कालीन याज्ञिक संस्कृति के निदर्शन हैं।

आर्य वर्ग में ही नहीं, राक्षस वर्ग में भी 'यज्ञ' क्रियाओं का उल्लेख किया गया है।[६]

मानस में यज्ञ

मानस में रामायण की अपेक्षा ब्रह्म यज्ञ विधान का चित्रण नहीं है क्योंकि तुलसी के युग की संस्कृति भिन्न हो चुकी थी। राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव याज्ञिक क्रियाओं पर भी पड़ना अनिवार्य हो गया जिनका विवेचन आगे किया जायगा।

---

१. तत्व चिन्तामणि, भाग २, पृष्ठ ५४।
२. वा० रा० १।१८।
३. वा० रा० १।२०।१९।
४. वा० रा० २।५६।३२।
५. वा० रा० ३।१।५।
६. वा० रा० ६।८४।१४।

अतएव लोक वेद के समन्वयकर्ता तुलसी ने यज्ञों का उल्लेख मात्र प्रसंगवश करके सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रक्खा। विश्वामित्र का आश्रम 'यज्ञों' का प्रमुख केन्द्र था जिसकी सुरक्षा के लिये राम की आवश्यकता हुई।

'विस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।।
जहं जग जग्य जोग मुनि करहीं।'[1]

रामायण में पितृ यज्ञ

रामायण में 'पितृ-यज्ञ' का स्पष्ट निदर्शन' अन्त्येष्टि संस्कार' के अन्तर्गत किया जा चुका है फिर भी इतना उल्लेख कर देना असंगत न होगा कि इस यज्ञ को भी विशेष प्रमुखता प्रदान की गई है। 'भरत राम संवाद' तथा 'जाबालि राम संवाद' इन दोनों प्रसंगों में इस यज्ञ की अनिवार्यता पर विशेष ध्यान दिया गया है। राम भरत से कहते हैं कि पुत्र नामका आधार ही यह' पितृ यज्ञ'है।

'पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितृन्यः पाति सर्वतः।।'[2]

इस यज्ञ का माहात्म्य आर्य, अनार्य, वानर सभी जातियों में पूर्व प्रसंग में दिखलाया जा चुका है इसका तात्पर्य है कि यह यज्ञ भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग सर्वमान्य था।

'पितृ यज्ञ' का प्रधान रूप तर्पण एवं श्राद्ध है जिसके द्वारा प्राणी अर्यमा आदि नित्य पितृ गण एवं अपने दिवंगत पूर्वजों की तृप्त्यर्थ यज्ञ करता है। स्वयं भरत राम से इस 'यज्ञ' का महत्व निर्देश करते हैं।

'प्रियेण किल दत्तं हि पितृ लोकेषु राघव।
अक्षय्यं भवतीत्याहु'[3]

यह (धर्मशास्त्र में) कहा गया है कि जो कोई प्रिय जलादि देता है वह पितृलोक में सर्वदा रहता है।

तदनुसार स्वयं राम ने पिता को पिंडदान कर तिलांजलि अर्पित की।[4]
गया में 'श्रद्धा' करने का विधान भी रामायण में उल्लिखित है।

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गया व्रजेत्।'[5]

इसी से बहुत गुणवान् बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न करने चाहिये जिससे उनमें से कोई तो गया में जा श्राद्ध करेगा।

---

१. मा० १।२०५।२,३।
२. पुन्नाम नरक से बेटा पिता की रक्षा करता है इसी से वह पुत्र कहलाता है।
वा० रा०, २।१०८।१२।
३. वा० रा० २।१०३।८।
४. (१) वा० रा० २।१०४।२६ से ३०।
(२) वा० रा० ३।१६।४२।
५. वा० रा० २।१०८।१३।

राम ने अपने पिता को ही नहीं, गृध्रराज को भी पितृ तुल्य मानकर दशरथ से भी अधिक उसकी तर्पण क्रिया सम्पादित की ।[1]

आर्य वर्ग की ही भाँति वानर जाति तथा राक्षस जाति में भी इस पितृ यज्ञ के विवरण रामायण में मिलते हैं ।

मानस में पितृ यज्ञ

मानस में ब्रह्म यज्ञ की ही भाँति 'पितृ यज्ञ' भी प्रासंगिक ही उल्लिखित है ।

'करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी । भे पुनीत पातक तम तरनी ।।'[2]

रामायण में देव यज्ञ

'यज्ञ विधान' में 'हवि' ऋषियों एवं देव वर्ग को अर्पण की जाती थी[3] तथा देवायतनों में भी देवोपासना के दैनिक कृत्य किये जाते थे क्योंकि देवगण विश्व संचालक एवं कर्म निर्णायक कहे जाते हैं अतएव उनका संवर्द्धन एवं परितुष्टि अनिवार्य है । दोनों काव्य ग्रन्थों में देव पूजन का विधान वर्णित है, केवल अन्तर यह है कि वाल्मीकि के समय में अधिकतर वैदिक देव आराध्य थे, तुलसी के समय तक अनेक धार्मिक सम्प्रदाय विकसित हो चुके थे । अतएव विभिन्न देवी देवताओं के यजन का उल्लेख मिलता है ।

कौशल्या जनार्दन पुरुष का ध्यान, एवं पूजन करती हैं,[4] राज्याभिषेक का समाचार सुनने के पश्चात् राम सीता सहित नारायण की उपासना करते हैं तथा रात्रि पर्यन्त विष्णूपासनागृह में ही व्यतीत करते हैं ।[5]

सुन्दरकांड में हनुमान् सीतान्वेषणार्थ लंका की ओर प्रयाण करते समय देव वन्दना करते हैं ।[6] अन्वेषण कार्य में प्रवृत्त होकर भी वे देव नमस्कार करते हैं तथा उन देवों से सिद्धि प्राप्त्यर्थ प्रार्थना करते हैं ।[7]

रामायणकाल में मान्य देवों की तालिका राम की सभा में दर्शक रूप में उपस्थित देव वर्ग के रूप में दे दी है ।

'पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।

---

१. वा० रा० ३।६९।३२ से ३६ तक ।
२. मा० २।२४७।१।
३. वा० रा० १।१३।५,६।
४. वा० रा० २।४।३३।
५. वा० रा० २।६।४।
६. 'स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुव ।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमन मतिम् ।।' वा० रा० ५।१।८।
उपर्युक्त देवगण वैदिक हैं ।
७. (१) वा० रा० ५।१३।५८।
(२) वा० रा० ५।१३।६४ से ६६ तक ।

स।ध्याश्च देवा: सर्वे ते सर्वे च परमर्षय: ।
नागा: सुपर्णा: सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसा: ।।'[१]

मानस में देव यज्ञ

रामायण की अपेक्षाकृत मानस के निर्माण काल में यज्ञ प्रथा का प्राय: लोप हो गया था अतएव देवों के प्रति दैनिक आहुति का चित्रण गोस्वामी जी ने नहीं किया वरन् सामयिक ही किया है परन्तु 'देव यजन' की प्रतिष्ठा दृढ़तम रूप में की है। कौशल्या प्रतिदिन 'कुल देवता' का पूजन करती हैं।[२] जानकी नित्य गणेश एवं गौरी पूजन का अनुष्ठान करती हैं'[३] अयोध्या नगरी में 'तीर-तीर देवन्ह के मंदिर' तत्कालीन देव यजन को ही प्रमाणित करते हैं।[४]

गणपति, गौरि, शंकर एवं तमारी सब के आराध्य देव हैं।[५]

राम स्वयं स्थान-स्थान पर 'पार्थिव पूजन' करते हैं।[६]

रामायण एवं मानस में भूत यज्ञ

मनुष्येतर प्राणि वर्ग का यजन 'भूत यज्ञ' के अन्तर्गत आता है। जड़, अर्धचेतन का पूजन इसी यज्ञ के अन्तर्गत आता है। वट पूजन, तुलसी पूजनादि इस यज्ञ के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

रामायण में सीता का 'वट पूजन' इसी संस्कृति का परिचायक है।[७]

मानस में भी जड़ चेतन का पूजन उल्लिखित है। सीता का गंगा पूजा इसी यज्ञ का उदाहरण है।[८] परन्तु वह दैनिक यज्ञ के अन्तर्गत नहीं कहा जा सकता। परन्तु 'तुलसी वृक्ष' का पूजन स्मार्त वैष्णवों की दैनिक पूजा का अंग है। गोस्वामी जी ने उसका स्पष्ट संकेत दैनिक पूजा विधान के अन्तर्गत किया है।

'तीर-तीर तुलसिका सुहाई। बृंद-बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।'[९]

रामायण में मनुष्य यज्ञ

भारतीय संस्कृति के पंचम महायज्ञ 'नृ यज्ञ' का अत्यन्त महत्व है। भोजन से पूर्व

---

१. वा० रा० ७।९७।७,८।
२. मा० १।२००।२,३।
३. (१) मा० १।२३४।३ से ३३५।४ तक।
   (२) मा० १।२६।७।
४. मा० ७।२८।४।
५. स्मार्त वैष्णवों के पांच विशिष्ट आराध्य देव हैं....
   राम, गणश, शंकर, पार्वती, सूर्य
६. (१) मा० २।१०२।१।
   (२) मा० ६।१।६।
७. वा० रा० २।५५।२४-२६
८. मा० २।१०२।२,३।
९. मा० ७।२८।६।

किसी भी वर्ण या आश्रम के व्यक्ति को देव सम मानकर उसका आतिथ्य सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है। इससे इस यज्ञ की सर्वव्यापकता एवं ऊँचनीच की अधिकार भावना का सर्वथा अभाव प्रमाणित होता है। समस्त मानव सृष्टि में श्रद्धामयी समत्व भावना का यह प्रमुख साधन है जिसका रामायण में स्थान-स्थान पर क्रियात्मक चित्रण किया गया है।

राजा दशरथ ने विश्वामित्र का यथोचित वाचिक एवं कायिक आतिथ्य धर्म सम्पादित किया।[१]

राजा ही नहीं अपितु संसार से विरक्त एवं तटस्थ मुनिवर्ग भी उस नृयज्ञ का समुचित सम्पादन करते थे।[२] मुनि भरद्वाज का अतिथि सत्कार विश्व में अनेखे एवं निराले ढंग का कहा जा सकता है जिसमें कि आतिथ्य धर्म के किसी भी दृष्टिकोण का अभाव दृष्टिगत नहीं होता वरन् पूर्णांग वैभव सम्पन्नता एवं अवधानता ही लक्षित होती है।[३] नृप वर्ग एवं ऋषि वर्ग की ही भाँति वन्य जाति के निषादादि भी इस यज्ञ को सम्यग् रूपेण सम्पन्न करते हैं।[४] अनार्य जाति का मुनिवेषधारी रावण भी सीता के आतिथ्य धर्म का अधिकारी पात्र बनता है।[५]

वाल्मीकि के आश्रम में सीता, शम्बूकादि को आश्रय मिलना तथा जीवनान्त उस आतिथ्य धर्म का निर्वाह करना भी इसी यज्ञ के विस्तृत रूप का परिचय देता है।[६]

मानस में मनुष्य यज्ञ

मानस में भी रामायण के ही प्रसंगों की भाँति दशरथ द्वारा विश्वामित्र का आतिथ्य सत्कार[७], जनकपुर में राजा विदेह द्वारा विश्वामित्र का स्वागत सत्कार एवं आतिथ्य[८] इसी 'यज्ञ' का प्रतिरूप है।

विशिष्ट वर्ग में ही नहीं, आतिथ्य पूजन का दर्शन वन्य जातियों में भी प्रदर्शित किया गया है। सपरिवार निषादराज राम लक्ष्मण सीता का स्वागत सत्कार करते हैं।[९]

---

१. 'उवाच परमोदारो दृष्टस्तमभिपूजयन्॥
यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके।
यथा सदृशदारेषु पुत्र जन्माप्रजस्य वै॥
प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥" वा० रा० १।१८।४९ से ५१।
२. वा० रा० ३।१।१६।
३. वा० रा० २।९१।१२ से ८४ तक।
४. वा० रा० २।८९।७।
५. वा० रा० ३।४६।३२ से ३६।
६. वा० रा० ७।४९।१२।
७. मा० १।२०६।२ से ४।
८. मानस १।२१६।६ से ८।
९. मा० २।८७।१ से ३।

सहज उदासीन वृत्ति में निरत ऋषि वर्ग भी इस यज्ञ का यथा सम्पादन करते हैं। भरद्वाज मुनि प्रयागराज में राम लक्ष्मणादि का आतिथ्य धर्म सम्पन्न करते हैं[१] तो पथिक वर्ग भी बड़ी उत्सुकता एवं त्वरा के साथ यथासम्भव सेवार्पण करके ही अपना आतिथ्य धर्म निर्वाह करते हैं।[२]

इसी प्रकार ऋषि वर्य वाल्मीकि भी इस 'यज्ञ' में पूर्णाहुति देते हैं।

'करि सनमानु आश्रमहिं आने।
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मंगाए।।
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए।।
बालमीकि मन आनंदु भारी।'.........[३]

इसी प्रकार पात्रानुकूल आतिथ्य के विभिन्न रूपों का भी मानस में सम्यक् निदर्शन कराया गया है। मुनि भरद्वाज राम की अपेक्षा भरत का आतिथ्य विशेष समारोह के साथ सम्पन्न करते हैं[४] क्योंकि मुनि स्वयं कहते हैं।

'मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता।।'[५]

इसी प्रकार अनेक प्रसंगों में 'आतिथ्य देवोभव' के सांस्कृतिक आदर्श का क्रियात्मक निदर्शन मानस में कराया गया है।

रामायण में अन्य यज्ञ

उपर्युक्त आह्निक पंच महायज्ञों के अतिरिक्त अनेक सामयिक एवं प्रासंगिक यज्ञों के अनुष्ठान का भी विवरण इन दोनों काव्य ग्रन्थों में मिलता है जिनमें पाक् यज्ञ, हवि यज्ञ तथा सोम यज्ञों का वर्णन है।

प्राचीन इतिहास के सुवेत्ता श्री आर० सी० मजूमदार ने यज्ञों का उल्लेख किया है। आप द्वारा उल्लिखित विभिन्न प्रकार के यज्ञों का रामायण में प्रसंग मिलता है।[६]

'पाक यज्ञ' का विवरण इस प्रकार है।

'नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवता:।
कृताग्रयणका: काले सन्तो विगतकल्पमषा:।।'[७]

मनुष्यगण आग्रयण नामक यज्ञानुष्ठान के समय में नूतन धान्यों से पितृ देवताओं का पूजन करके आग्रयण यज्ञ समाप्त करके पापरहित हुये हैं।

---

१. मा० २।१०६।१ से ३।
२. मा० २।११४ से २।११४।२ तक।
३. मा० २।१२४।२ से ४।
४. मा० २।२१२।८ से २।२१५ तक।
५. मा० २।२१२।७।
६. (१) **'पाक यज्ञ'**—
(i) 'The '*Ashtakas*' are sacrifices offered on the 8th day of the dark halves of the 4 months from '*Kartika*' to '*Magh*'. The '*Shravani*' is offered on the full moon day of '*Sravana*', the *Agrahayani* on the

क्रमशः

गार्हस्थ्य जीवन में तो इनका व्यावहारिक रूप मिलता ही है। परन्तु इससे भी अधिक यज्ञों की महत्ता इस प्रसंग से अभिव्यक्त होती है कि राम वनवासी जीवन में भी इन पाक यज्ञों को अपनी दैनिक चर्या का अंग बनाना नहीं भूलते। यथा सुलभ वस्तुओं से ही वे इन यज्ञों को सम्पादित करते हैं।

चित्रकूट में पर्णशाला निर्मित हो जाने के पश्चात् राम ने वास्तु—शान्ति का महत्व बतलाया—

'कर्त्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिर जीविभि:।'[१]

जो लोग चिर काल तक जीवित रहना चाहते हों उन्हें वास्तु शान्ति अवश्य पूरी करनी चाहिये।

क्रमश:

14th or on the full moon day of *Agrahayani*, the *Chaitri* on the full moon day of *Chaitra* and the *Asvayuji* on the full moon day of the month of *Asvina*. *Parvana* is offered on new and full moon days. The *Shradha* is one of the most important domestic rites. It is the monthly funeral offering to the names on the new moon days.'

—(Ancient India, Page 83)

(ii)—

1. **Agnya dheya**—The establishment of the sacred fires, 3 or more in number. It was the bounden duty of every house-holder to set up these sacrificial fires in his house.
2. **The Agnihotra**—Daily oblation in the three sacred fires.
3. **The Darsa Paurnamasas**—Yajnas of the full and new moon.
4. **The Agrayana**—The oblation of the 1st fruits of the harvest.
5. **The Chaturmasyas**—Yajnas at the beginning of each of the three seasons.
6. **The Nirudhapasubandha**—The animal sacrifice effected separately not as an integral part of another ceremony.
7. **The Santramani**—The essence of this is the offering of '*sura*' to the Asvins and Saraswati.

—(Ancient India, Page 84)

(iii)—

The *Agnistoma* or *Jyotir Agnistoma*, the *Atyagnistoma*, the *Ukthya*, the Shodasin, the Vajpeya, the Atriratra and the Aptoryama. All these were more or less different forms of the Agnistoma and varied only in the number of victims and some details.'

—(Ancient India, Page 84)

७. वा० रा० ३।१६।६।

१. २।५६।२३।

वे उपदेश ही नहीं देते अपितु क्रियात्मक रूप भी प्रदर्शित करते हैं।

राम के दैनिक यज्ञ विधान का प्रमाण निम्नांकित अवतरण से मिलता है।[१]

दंडक वन में रहने वाले ऋषि वर्ग अग्निहोत्र एवं पर्वणि यज्ञ किया करते थे इसका संकेत भी रामायण में स्पष्ट है।

'होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकालेषु चानघ।
घर्षयन्तिस्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः ॥'[२]

रामायण में पाक यज्ञों से भी अधिक विस्तृत वर्णन हविर्यज्ञों एवं सोमयज्ञों का है जो कि तात्कालिक संस्कृति के प्रतिबिम्ब हैं। इन यज्ञों में रामायण की कथावस्तु के अनुकूल अश्वमेध यज्ञ का अत्यन्त व्यापक चित्रण है। इस यज्ञ का प्रसंग दो रूपों में है।

प्रथमतः 'सकाम पुत्रेष्टि यज्ञ' के रूप में
द्वितीय 'निष्काम' कर्तव्य रूप में

प्रथम अश्वमेध यज्ञ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रात्मक वर्णन मिलता है जिसमें पुरोहितों का महत्व, यज्ञ भूमि निर्माण, यज्ञ के विधि विधान एवं विविध आयोजन सभी अंगों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है।[३] यज्ञ में अनेकानेक विघ्न भी उपस्थित हो जाया करते थे अतएव उनकी निवृत्ति के लिये पूर्व ही सचेत हो जाना अनिवार्य हुआ करता था।

दशरथ ने भार्याओं सहित दीक्षा में प्रवेश किया,[४] यज्ञ के लिये अनेक आयोजन हुये,[५] उपयुक्त ऋत्विज की नियुक्ति की गई[६] तथा सफलतापूर्वक अश्वमेध यज्ञ सम्पादित किया गया। इसी प्रकार रामायण के उत्तर कांड में राम का अश्वमेध यज्ञ वर्णित है[७] इन यज्ञों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों का चित्रण करना वाल्मीकि जी नहीं भूले हैं। इनका व्यापक निरीक्षण स्थान-स्थान पर 'यज्ञ' के प्रसंगों में आपने समुचित रूपेण किया है।[८] अश्वमेध यज्ञ तथा राजसूय यज्ञ, इन प्रमुख यज्ञों के अतिरिक्त वाल्मीकि जी ने अन्य प्रकार के सामान्य यज्ञों का भी विवरण दिया है। दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ करते समय अन्य यज्ञों का भी सम्पादन किया।[९]

इससे भी अधिक यज्ञ की महत्ता एवम् अनेक रूपता के दर्शन हमें राम के याज्ञिक रूप में मिलते हैं।[१०]

मानस में अन्य यज्ञ

तुलसी की समकालीन परिस्थितियाँ वाल्मीकि से नितान्त भिन्न थीं। जब कि

---

१. वा० रा० २।१००।५,१२।
२. वा० रा० ३।१०।११।
३. वा० रा० १।७।२,५ से ८,११,१२।
४. वा० रा० १।८।२४।२५।
५. वा० रा० १।११।४, १।१३।६ से ३०, ३६ से ४१।
६. वा० रा० १।९।६।
७. वा० रा० १।१४।४१।
८. वा० रा० ७।९२।१ से १९ तक।
९. वा० रा० ७।८३।४।
  (१) यज्ञ लक्षण वा० रा० ७।८३।१३।
  (२) याज्ञिक क्रियाएँ वा० रा० ७।९२।४।
  (३) यज्ञावधि वा० रा० ७।९२।१९।
  (४) यज्ञ विधान वा० रा० २।६१।१७।
१०. वा० रा० १।१४।४० से ४२ तक।

वाल्मीकि ने रामायण में यज्ञों का चित्रण निज युगीन संस्कृति का प्रतिबिम्ब रूप किया है तो तुलसी ने उन यज्ञों का प्रासंगिक रूप में ही उल्लेख किया है । पुत्रेष्टि[1] एवं अश्वमेध यज्ञ[2] का संकेत मात्र किया है । इस अन्तर का कारण भी तुलसी ने युग धर्म निरूपण करते समय बताया है ।

'त्रेता विविध जग्य नर करहीं । प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।।
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ।।'[3]

तुलसी ने याज्ञिक संस्कृति का वर्णन इसी कारण से अपने मानस में नहीं किया कि उनके युग की स्थिति में यह सब यज्ञ नितान्त असम्भव प्राय हो चुके थे । अत: उनके भक्त रूप ने वाह्याचारों एवं कष्टसाध्य प्रयत्नों पर विशेष ध्यान नहीं दिलाया अपितु 'राम' के 'नाम' रूप, लीला की ओर ही जगत की जनता का ध्यान आकृष्ट कराकर समाज को स्थिर रूप प्रदान कर सम्बल प्रदान किया ।

रामायण एवं मानस में ललित कलाएँ

भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग ललित कलाएँ हैं । अतएव सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत इन कलाओं का निरीक्षण करना असंगत न होगा । रामायण एवं मानस में इन कलाओं का विवरण एवं चित्रण भी व्यापकरूपेण किया गया है । दोनों काव्य ग्रन्थों में कलात्मक विवेचन करने के पूर्व कला का स्वरूप अथवा कला का महत्व ज्ञान अनिवार्य है । साहित्य के अंगों एवं उपांगों के सम्यक् विवेचक डा० श्यामसुन्दर दास का कथन है ।

'यद्यपि अव्यिंजना को ही कला का नाम दिया गया है तथापि सम्पूर्ण अभिव्यंजना कला नहीं है ।........कला का सम्बन्ध नियमों से नहीं है, वह तो रूप की अभिव्यक्ति मात्र है । वाह्य जगत् की भिन्न-भिन्न वस्तुओं का एक-एक वस्तु का जैसा प्रतिबिम्ब मानस मुकुर पर पड़ता है कला का सीधा सम्बन्ध उसी से है । वह सदैव व्यष्टि से संपर्कित रहती है । .... सारांश यह कि मनुष्य की भावनाओं का जहाँ तक विस्तार है वह सब कला का विषय है और यह तो विदित ही है कि मानव भावनाओं का विस्तार विराट् और प्राय: सीमारहित है (साहित्यालोचन) ।

इस दृष्टि से कला के दो विभाग होते हैं।
(१) उपयोगी कला ।
(२) ललित कला ।

ललित कला के अन्तर्गत वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत तथा काव्य कला है । यह श्रेणी विभाग इन कलाओं के आधारतत्वों पर निर्भर है । रामायण तथा मानस काव्य

---

१. वा० रा० ७।९९।८,९।
२. मा० ७।२३।१।
३. मा० ७।१०२।२ से ५ तक ।

कला के प्रकाश स्तम्भ तो हैं ही जिसका विशद् विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा परन्तु अन्य चार कलाओं का सांस्कृतिक रूप भी इन काव्य ग्रन्थों में अवलोकनीय है।

रामायण एवं मानस में वास्तु कला

रामायण युग में यज्ञ यागों की प्रधानता थी अतएव तन्निमित्त यज्ञ मंडपों की सतत् आवश्यकता रहती थी। रामायण में इन यज्ञ मंडपों का सूक्ष्म चित्रण मिलता है जो केवल साधारण वर्ग के नहीं वरंच शिल्प शास्त्रियों के संचालन में निर्मित किये जाते थे।[१] यज्ञशाला निर्माण से भी विशद् एवं व्यापक चित्रण भवन निर्माण का रामायण में है जिसके कि तात्कालिक निर्माण कला के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। राजा दशरथ के राज्य के नगर, भवन, उपवन सार्वजनिक स्थानों में शिल्प कला का आदर्श स्वरूप अवलोकनीय है। नगर निर्माण कला का सूक्ष्मतम उच्चतम रूप रामायण में दर्शाया गया है।[२]

तत्कालीन राजमहल अत्यन्त भव्य, बृहदाकार, गगनचुम्बी चित्रित किये गये हैं जिनमें अनेकों मंजिलें एवम् अनेक चौकें हुआ करती थीं।[३] इन भवनों का बृहदाकार एवं परिधि की विशलता इस तथ्य से भी ज्ञात होती है कि उन भवनों में एक कक्ष से दूसरे कक्ष में जाने के लिये रथ का प्रयोग किया जाता था।[४] आर्य जाति के भवन निर्माण की कला ही उच्च शिखर पर न थी अपितु किष्किन्धा नगरी में वानर जाति के निवास गृह भी अवलोकनीय हैं।[५]

आर्य एवं वानर जाति की ही भाँति अनार्य जाति के प्रतीक राक्षसराज रावण की नागरी भी शिल्प कला में किसी से कम न थी। वाल्मीकि ने रावण के घर को भी 'देवगृहोपमम्'[६] ही चित्रित किया है जिसमें अनेक अट्टालिकाएँ, अनेक कक्ष, सुवर्णमय, स्फटिक एवं चाँदी से निर्मित सुन्दर स्तम्भ थे। सुवर्ण का ही सोपानमार्ग था जिसमें हाथी दाँत एवं चाँदी के मनोहर गवाक्ष थे। पर्वत शिखर पर स्थित, प्राकाट से आवृत्त रावण के गृह की समृद्धि वैभव के साथ-साथ उसकी सुदृढ़ स्थिति का भी विवरण दिया गया है।[७]

प्रासाद में विभिन्न प्रयोजनार्थ विभिन्न प्रकार के प्रकोष्ठों का भी निर्माण किया जाता था। इसका विवरण अयोध्या नगरी[८] एवं लंकापुरी[९] दोनों की भवन निर्माण कला में मिलता है। उन प्रकोष्ठों के नामकरण भी तथैव थे। उदाहरणतः शयनागार, क्रोधागार, क्रीड़ागृह, दिन के विनोदगृह, पानभूमि, लतागृह इत्यादि।

---

१. वा० रा० १।१४।२२ से २८ तक।
२. वा० रा० १।५।७,८।
३. वा० रा० १।१५।३० से ३३, ६६, ३७। वा० रा० १।७७।९। वा० रा० २।१७।२१, २२। वा० रा० २।७।१। वा० रा० २।५।२२। वा० रा० २।७।१२।
४. वा० रा० २।२०।८।
५. वा० रा० ४।३३।१२,१५।
६. वा० रा० ३।५५।६,१२।
७. (१) वा० रा० ५।४।२४, २५। (२) वा० रा० ५।१५।१६, १८।
८. वा० रा० २।१०।१२ से १५, २१।
९. वा० रा० ५।६।३६ से ३८, ५।१२।१५।

रामायण में भवनों की ही भाँति 'राज मार्ग' निर्माण भी उच्च कोटि का ही दृष्टिगत होता है जिनमें 'जन पथ' की सभी सुविधाओं की ओर ध्यान दिया गया है। भरत के वन गमन प्रसंग पर पथ निर्माण के विभिन्न आयोजन तत्कालीन पथ निर्माण का विकास प्रमाणित करते हैं।[१] आदि कवि ग्रामीण शिल्प कला की सूक्ष्मता का भी अपनी रामायण में अंकन करना नहीं भूले हैं। सुरम्यता एवं सुरक्षा का निर्वाह उसमें भी आद्यन्त हैं। 'पंचवटी' निर्माण का विवरण एक सुन्दर उटज निर्माण का रूप उपस्थित करता है।[२]

इस प्रकार रामायण में वास्तु कला के पर्याप्त निदर्शन हैं जिससे तत्कालीन शिल्प कला की समृद्धि एवं कवि की काल्पनिक चित्रमत्ता का सुवर्ण सुगंधि संयोग प्रस्तुत है।

मानस में वास्तु कला

मानस की 'पुर व्यवस्था' का विवरण 'राजनीतिक परिस्थिति' में आगे विस्तार पूर्वक किया गया है परन्तु यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि तुलसी ने मानस में भवनों एवं मंदिरों का जो चित्रण किया है उसमें वास्तु कला का रूप मिलता है।[३]

रामायण एवं मानस में मूर्ति कला

रामायण में मूर्ति कला का संकेत कौशल्या के 'पूजा विधान' के प्रसंग में मिलता है। देवताओं में देवों की मूर्तियों के विधान का भी उल्लेख मिलता है,[४] परन्तु उसकी रूप रेखा का नहीं। मानस में कौशल्या द्वारा इष्टदेव पूजन, सीता द्वारा 'पार्वती पूजन' आदि के प्रसंगों में मूर्ति पूजन का उल्लेख है।

रामायण एवं मानस में चित्रकला

रामायण में चित्र कला का प्रसंग रावण के महलों के विवरण में प्रस्तुत है।[५]

तुलसी के समय में चित्रकला अपने चरम विकास पर थी क्योंकि उस समय मुगल कालीन संस्कृति का भी समन्वय हो चुका था। दोनों के सम्मिश्रण से कला की उन्नति हो चुकी थी। तुलसी की मौलिक प्रतिभा एवं भक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी चित्र कला में भी निर्दिष्ट है। उनकी चित्रकला भी राम चरित्र से परिवेष्टित है।

'चारू चित्र साला गृह-गृह प्रति लिखें बनाइ।
रामचरित्र जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ ॥[६]

रामायण एवं मानस में संगीत कला

रामायण में दुन्दुभी, मृदंग, वीणा, पणवादि वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मिलता है।[७] लव कुश द्वारा रामायण गान के प्रसंग से यह प्रमाणित हो जाता है कि उस समय गायन शास्त्र भी पर्याप्त विकसित था।[८]

रामायण में गान की स्वर लहरी का भी समुचित संकेत है।[९] मानस में संगीत का

---

१. वा० रा० २।८० सर्ग।
२. वा० रा० ३।१५।२१ से २३।
३. मा० ७।२६।३, ४, ७, ८, तथा छन्द।
४. वा० रा० २।२५।४।
५ वा० रा० ५।१२।१३।
६. मा० ७।२७।
७. वा० रा० १।५।१२।
८. वा० रा० १।४।३६।
९. वा० रा० २।६१।२७।

सांकेतिक रूप है । गायन वादन नृत्यादि का संकेत गोस्वामी जी ने देवों एवम् अप्सराओं के प्रसंग में किया है ।[1] वाद्य यन्त्रों में पण्व, निशान, दुन्दुभी का उल्लेख मानस में भी किया गया है ।[2]

'सामाजिक परिस्थिति'

रामायण में जाति व्यवस्था

रामायण में सामाजिक रूप रेखा का प्रतिष्ठापन उच्च कोटि का है । सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विवरण देते समय वर्णक्रम धर्म का आदर्श प्रस्तुत किया जा चुका है । अब विचारणीय विषय है कि तत्कालीन अन्य जातियों का क्या अस्तित्व था तथा, रामायण में उनका विवरण किस प्रकार से दिया गया है ?

रामायण में अनेक जातियों का उल्लेख किया गया है । यह कथा प्रमुख चार जातियों में विस्तृत है—देव, आर्य, वानर तथा राक्षस । इन सभी जातियों के कर्म व्यापारों पर आलोचनात्मक दृष्टि डालने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि जातियाँ मानवों की ही थीं । इसका प्रमाण स्थान-स्थान पर मिलता है ।

राम जन्म के पूर्व दशरथ के सभांगण में ऋषि वर्ग, देव वर्ग एवम् आर्य वर्ग तीनों की सम्मिलित सभा हुई थी जिसमें रावण की पाशवी शक्ति का विनाश प्रस्तावित हुआ था । यह प्रस्ताव देवों एवम् ऋषियों द्वारा ही प्रमुख रूपेण प्रस्तावित हुआ था और आर्यों ने उसका अनुमोदन किया था । इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर आर्य जाति ने क्रियाशीलता का बीड़ा उठाया । देवों एवं ऋषियों के सहयोग से राक्षस जाति पर विजय प्राप्त की तथा उनके प्रबल अत्याचारों से आतंकित भूमंडल एवं देव जाति को निर्विघ्न कर दिया । परन्तु इस राक्षस जाति पर विजय प्राप्त करने के पूर्व वानर जाति जैसी अत्यन्त प्रबल जाति को बिना निजाधीन किये राक्षस जाति पर विजय पाना असम्भव था । अतएव आर्य जाति के प्रतिनिधि राम ने महान् बली राजा बालि का छल से वध किया तथा सुग्रीव से मैत्री की । इस प्रकार राजनीतिक दृष्टिकोण से इस अनुचित कार्य को भी न्याय संगत मानना पड़ा क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वानर जाति एवं राक्षस जाति के सम्मिलित संघ को पराजित करना नितान्त कठिन था । बालि और रावण में परस्पर मैत्री थी । अतएव आर्य जाति ने वानर जाति को अपनी ओर करके सर्वप्रथम अपना पक्ष दृढ़तर किया । अतएव यह भी मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक ही है कि 'नरवरोत्तम' राम सम मैत्री एवं समवैर के सिद्धान्त को भली प्रकार जानते थे अत: उन्होंनें मित्रता मानव जाति से ही की अन्य विकृत वानर पशु से नहीं ।

इसके अतिरिक्त किष्किन्धा एवं लंका राज्य की सम्पत्ति, श्री, वैभव सम्पन्न संस्कृति एवं सभ्यता के उद्धरण भी इन जातियों को मानव की ही जातियों का रूप प्रदान करते हैं अन्य योनि या जंगली रूप नहीं । अत: यह कहा जा सकता है कि रामायण की कथा चार जातियों की कथा है जिसमें 'संगठन ही शक्ति है' सूत्र के अनुसार आर्य जाति ने निज बुद्धि

---

१. ७।११। छंद ।

२. 'हरषहिं मुनि-मुनि पवन निसाना' मा० १।२९८।२।

बल द्वारा अन्य जातियों को अपने में समाहित कर पाशविक शक्ति सम्पन्न राक्षस जाति को विजित करने का श्रेय लाभ किया।

इन जातियों के अतिरिक्त किन्नर एवं गन्धर्व जातियों का भी उल्लेख दोनों ग्रन्थों में आता है परन्तु वे भी मानव जातियाँ थीं। रामायण में उनके रहन-सहन द्वारा यह तथ्य इंगित होता है। चित्रकूट में राम लक्ष्मण से किन्नरों का उल्लेख करते हैं।[1] इनके अतिरिक्त कुछ जंगली किरातादि जातियों का भी विवरण रामायण में मिलता है।[2]

मानस में जाति व्यवस्था

वाल्मीकि के युग की तुलना में तुलसी का युग सामाजिक क्रान्ति का समय था। भारतीय एवं विदेशी संस्कृतियों के संघर्ष के परिणामस्वरूप आदान प्रदान होने लगे थे। वर्ण व्यवस्था का रूप शिथिल हो गया था अतएव समन्वयवादी तुलसी ने वर्ण व्यवस्था के उन्मूलन के दुष्परिणामों को भली प्रकार समझा और मानव समाज के लिये राम राज्य के समाज का आदर्श स्तम्भ प्रदान किया। वह मणि स्तम्भ युगों से भारतीय समाज को प्रकाश दे रहा है और यावज्जीवन देता रहेगा। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के पुनरुज्जीवक आदर्श के प्रतिष्ठापक तुलसी ने अपने मानस में जाति व्यवस्था का भी चित्रण किया है।

वाल्मीकि एवं तुलसी की भाव व्यंजना में अन्तर है, अतः अन्य जातियों के पुरः स्थापन में भी अन्तर है परन्तु उनका मूल रूप वही है जो कि ऊपर चित्रित किया जा चुका है। अर्थात् मानस में भी देव, वानर, एवं राक्षस जातियों का चित्रण तथैव ही है। 'चरित्र चित्रण' के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वानर एवं राक्षस जाति के व्यक्ति भी आर्य एवं (मानव) जाति से किसी भी प्रकार बल, बुद्धि, विद्या, कला, कौशल में कम न थे। अतएव उन्हें मानव से इतर योनि का नहीं कहा जा सकता। मानस के हनुमान्, सुग्रीव, मेघनाद, विभीषण मानव वर्ग के व्यक्तियों के समकक्ष किसी भी प्रकार न्यून नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त दो प्रसंगों में इन जातियों के मानव सदृश रूप का भी चित्रण मानस में किया गया है। सर्वप्रथम असुरों का रूप अवलोकनीय है।

'रहे असुर छल छोनिप वेष।'[3]

अब समस्त वानरों का भी वाह्य रूप भी तथैव लक्षित होता है।

'लंकापति कपीस नल नीला, जामवन्त अंगद सुभ सीला।
हनुमदादि सब बानर बीरा, धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥'[4]

इन प्रमुख जातियों के अतिरिक्त मानस में भी किरातादि जंगली जातियों का भी चित्रण किया गया है, परन्तु अन्तर केवल तुलसी की भक्ति भावना का है। गोस्वामी जी ने इन जातियों का उल्लेख भी भक्ति भावना से अनुप्राणित ही किया है।[5]

रामायण में वैवाहिक रूप

भारतीय सभ्यता का सिंहावलोकन करते समय श्री मोहनलाल विद्यार्थी रामायण

---

१. वा० रा० २।९४।११,१२।
२. वा० रा० ४।४०।२७,२८।
३. मा० १।२४०।७।
४. मा० ७।७।१,२।
५. मा० २।२२३।४,६।, २।२५०।२,४,५,६।

कालीन सामाजिक स्थिति की आलोचना करते हैं जिसमें वे आर्यों के सामाजिक विचारों का विवेचन करते हैं कि आर्य सदैव सामाजिक विचारों एवं संस्थाओं में भी धार्मिक एवं दार्शनिक रूप देखते थे। प्रत्येक सामाजिक संस्कारादि को वे प्रतीकात्मक दृष्टि से देखते थे। विवाह भी सामाजिक संस्था है अतएव उसका स्वरूप भी धार्मिक ही है। भारतीय परिवार की विशेषताओं का उल्लेख करते समय परिवार का आधार भी धर्म एवम् आध्यात्मिकता माना गया है।

'संस्कार से अन्त:शुद्धि होती है। अन्त:करण में तत्वज्ञान एवं भगवत्प्रेम का प्रादुर्भाव होता है जो जीवन का चरम पुरुषार्थ है। भारतीय परिवार में सन्तानोत्पत्ति 'पितृ ऋण' से उद्धार होने के लिये की जाती है। ....इस प्रकार भारतीय परिवार का आधार धर्म और आध्यात्मिकता है, भोग और भौतिकता नहीं।'[१]

उक्त कथन के अनुसार ही भारतीय संस्कृति के इस विवाह संस्कार का भी स्वरूप अत्यन्त पावन, भावपूर्ण एवं महत्व से युक्त है। रामायण में भी इसकी महत्ता तथैव प्रतिपादित की गई है। इस वैवाहिक कर्म के दो पक्ष होते हैं। दाता एवं प्रतिगृहीता[२] दो विभिन्न गोत्र के वंशज परस्पर इस धार्मिक कृत्य द्वारा सम्बन्ध सूत्र में जन्मजन्मातर के लिये आबद्ध हो जाते हैं।[३] प्रत्येक सामाजिक कृत्य के साथ उसकी मर्यादा, श्री एवं शोभा भी सन्निहित रहती है, तथैव विवाह में भी दाता, प्रतिगृहीता को केवल कन्या ही नहीं, उसके साथ-साथ धन सम्पत्ति आदि भी यथाशक्ति दान करनी पड़ती है। यह प्रथा रामायण में वर्णित है।[४]

इस प्रकार वैवाहिक संस्था में दाता (पिता) का अत्यधिक महत्व होता है, जिसे राजा कुशनाभ की कन्याएँ स्वीकार करती हैं।[५] इसी कारण पिता को इस उत्तरदायित्व निर्वाह की चिन्ता होती है।[६] वाल्मीकि के समय में अधिकांशत: ऋषि विवाह प्रचलित थे जिसका प्रमुख उद्देश्य केवल उत्तम सन्तान से उन्नत समाज का निर्माण करना था। इस तथ्य के उदाहरण हमें कई प्रसंगों में मिलते हैं। राजा सोमपाद ने ऋष्यश्रृंग ऋषि से अपनी कन्या शान्ता का विवाह सम्पन्न किया।[७] राजा कुशनाभ ने अपनी सौ कन्याओं का विवाह महातेजस्वी ऋषि ब्रह्मदत्त से किया।[८]

रामायण काल में गोत्र, प्रवर एवं पिंड के आधार पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जाते थे। 'अन्तर्विवाह' के स्थान पर 'बहिर्विवाह' ही प्रचलित थे। इसका स्पष्ट निदर्शन सूर्यवंशीय राम का चन्द्रवंशीया सीता से विवाह है।[९] इसके अतिरिक्त 'अनुलोम', 'विलोम' दोनों प्रकार की विवाह रीतियों का भी उस समय प्रचलन था। 'विलोम' प्रथा का प्रसार अधिक था क्योंकि 'आर्ष विवाह' के अन्तर्गत ऋषियों का महत्व स्पष्ट था।

---

१. 'पारिवारिक समाज शास्त्र, द्वारा कैलाश चन्द्र शर्मा तथा शंभू रत्न त्रिपाठी, पृष्ठ ५०।
२. वा० रा० १।७३।११,१२।
३. वा० रा० १।७३।२३।
४. वा० रा० १।७४।३ से ६ तक।
५. वा० रा० १।३२।२१,२२।
६. वा० रा० २।११९।३४,३५।
७. वा० रा० १।११।३३।
८. वा० रा० १।३३।२२।
९. वा० रा० १।७०। वा० रा० १।७१।

'क्षत्रिय' वर्ण के राजागण ऋषि वर्ग में अपनी कन्याओं को अर्पण करना अपना सौभाग्य समझते थे।

वैवाहिक आदर्शों के अतिरिक्त सामाजिक दुर्गुणों का भी समावेश रामायण काल में हो चुका था। डा० मजूमदार ने उनका उल्लेख रामायण की आलोचना में किया है जिसमें आपने 'बहु पत्नी प्रथा' के दुर्गुणों की ओर संकेत किया है।[1] केवल दशरथ जैसे राजाओं में ही इस प्रथा का प्रसार नहीं था अपितु वानर[2] एवं राक्षस जाति में भी[3] इसका प्रचार मिलता है।

मानस में वैवाहिक रूप

रामायण काल की अपेक्षाकृत मानस काल की वैवाहिक स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन आ गये थे। विशृंखल से क्षुभित समाज में स्थैर्य स्थापन के अतिरिक्त सामाजिक उत्थान का और कोई उपाय अवशेष न था। 'भए वर्ण संकर कलि' का भीषण दृश्य रह-रह कर गोस्वामी जी की मर्यादित दृष्टि को बेध रहा था अतएव आपने 'विवाह' का उच्चादर्श ही सम्मुख रक्खा। 'अनुलोम' एवं 'विलोम' का आदर्श जनता के सामने प्रस्तुत करना भ्रमोत्पादक था क्योंकि राजवर्ग विदेशी था वह स्वयं विजातियों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। अतएव विवाह की एक पद्धति ही समाज का आदर्श बन सकती थी। वह एक ही वर्ण में विभिन्न गोत्रों में विवाह की प्रथा थी। सामाजिक संगठन, विवाह के उद्देश्य इसी विधि के द्वारा अविकल रूप से सम्पादित किये जा सकते थे। विवाह सम्बन्धी सम्पन्नताओं, मर्यादाओं का भी आपने सम्यक् विवरण दिया है परन्तु उसका 'दहेज' का रूप कर दिया है।[4] अतएव आपने राम सीता के विवाह में उसका ज्वलन्त प्रदर्शन किया। इतना ही नहीं उसका अटूट सम्बन्ध भी स्थापित किया —

'प्रीति पुरातन लखै न कोई।'

मानस में तुलसी ने एक परिवर्तन और किया। उन्होंने 'बहु विवाह' का रूप भी संयमित ही रक्खा। आर्य जाति में दशरथ का 'बहु विवाह' तो प्रस्तुत करना ही था क्योंकि वह तो कथावस्तु का ही एक अंग था परन्तु अन्य आपत्तियों की 'बहु पत्नीत्व' का दुष्परिणाम न दर्शाकर 'गई गिरा मति धूति' कहकर भवितव्यता पर आश्रित कर दिया है। तुलसी ने अपने 'सामाजिक आदर्श' में तो 'बहु पत्नीत्व प्रथा' के दुर्गुणों की ओर नहीं वरन् उनके प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण को ही अपनाना उचित समझा क्योंकि दुर्गुण तो उनके समाज में प्रचलित थे ही। उन्हीं को दुहराने से 'सुरसरि सम सब कर हित होई' अतएव उन्होंने कैकेयी का यही आदर्श दिखाया—'कबहुँ न किएहु सवति आरेसू।'[5]

तुलसी ने वानर जाति में 'बहु पत्नीत्व' प्रथा का रामायण की भांति उल्लेख नहीं किया है। केवल-तारा को ही बालि की पत्नी निर्दिष्ट किया है, अन्य पत्नियों का कोई उल्लेख नहीं है। 'अनुज वधू' को तो कन्या सम ही आदर्श मानकर उसको हठात् वर्ण

---

1. (Ancient India, by R. C. Maj., Page 208)
२. वा० रा० ४।२०।२१।
३. वा० रा० ६।११०।१।
४. मा० १।२३३।
५. मा० २।४८।७।

करने का दंड ही निर्धारित किया है। राक्षस जाति के अधिराज रावण के बहुपत्नीत्व का उल्लेख अवश्य है परन्तु उसमें भी तुलसी ने रामायण की अपेक्षाकृत अपनी मर्यादा का बंधन उस अनार्य जाति के प्रतीक पर लगाकर प्रस्तुत किया है।[1]

रामायण में नारी

वस्तुत: भारतीय नारी पति की अर्धांगिनी, पारिवारिक केन्द्र गृह की लक्ष्मी, पुरुष की मर्यादा की संरक्षिका, कुल परम्पराओं की प्रतिमूर्ति तथा भावी पुरुष रूप अथवा सन्तान के लिये प्रेरिका स्वरूपा उज्ज्वल ज्योति है। रामायण काल के पूर्व वैदिक काल में नारियों की स्थिति का अनुमान इतिहास वेत्ता श्री मोहनलाल विद्यार्थी के आलोचनात्मक विवेचन से लगाया जा सकता है जिसमें उन्होंने भारतीय नारी के अन्त: एवं वाह्य क्षेत्र में महत्वशाली रूप दर्शाया है।[2]

भारतीय समाज में नारी को एक विशिष्ट गौरव का पद सदा से प्राप्त रहा है। भारतीय नारी अपने सभी रूपों में पूजनीया है। सद्गुणवती कन्या देवी स्वरूपा है, सुवासिनी सत्कर्मशीला युवती परिवार की 'लक्ष्मी' है, निज कर्म परायणा तपस्विनी वृद्धा आयु एवं गुण दोनों के कारण श्रद्धेया माता मही है। सौभागिनी के समान ही वैधव्य से अभिशप्त नारी भी संन्यासिनी की आदर्श प्रतिमूर्ति होने के कारण परम श्रद्धेया है। नारी के इन विभिन्न रूपों के दर्शन हमें रामायण में मिलते हैं।

सर्वप्रथम नारी का 'कौमार्य' रूप सामने आता है। आजकल की भाँति बालिका का जन्म उस समय अवांछनीय नहीं माना जाता था अपितु उन्हें कन्या रत्न मानकर उनका लालन पालनादि किया जाता था, उन्हें समुचित शिक्षा दीक्षा एवम् उपदेश दिया जाता था। वे कन्याएँ सभी प्रकार से नैतिक एवं व्यावहारिक शिक्षा से सम्पन्न की जाती थीं। कुशनाभ की कन्याएँ संगीत शास्त्र में निष्णात थीं, नैतिक शिक्षा का वे व्यावहारिक प्रयोग करती थीं।[3] राजकुमारी सीता को राजधर्म एवं नारी धर्म की भी शिक्षा प्रदान की गई[4] नारी के लोक परलोक का भी उन्हें सम्यक् ज्ञान था।[5] इन कुमारी कन्यकाओं का महत्व मंगल उत्सवों एवं शुभावसरों पर विशेष हुआ करता था। राम के राज्याभिषेक के समय उक्त तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कराया गया है।[6]

कुमारियों के विवाह की चिन्ता अनिवार्य थी परन्तु वह चिन्ता विषादजन्य न थी अपितु कर्त्तव्य प्रेरणावश थी। अपनी पुत्री को यावज्जीवन सुखी देखने की अभिलाषा से पितृ वर्ग चिन्तित हो जाया करते थे। इस लालसा पूर्ति के लिये महान् आयोजन किये जाते थे। जनक की चिन्ता एवं धनुषयज्ञ का विशाल आयोजन अपनी कुमारी कन्या के लिये

---

१. मा० १।१८२। (ख)।
2. 'Women also occupied a distinguished place not only in the family but also in the public freely participating in ceremonial functions and public debates.'
2. (India's Culture through the Ages. Page 67)
३. वा० रा० १।३२।१२,१९,२०।
४. वा० रा० १।२७।१०।
५. वा० रा० २।२९।१७।
६. वा० रा० ६।१२८।६२।

श्रेष्ठ वर की खोज करना ही प्रतिरूप है।[१] राजा कुशनाभ ने अपनी कुब्जा कन्याओं के लिये भी योग्य भर्ता तपस्वी ब्रह्मदत्त को खोजा।

विवाह में भी कुमारियाँ स्वतन्त्र न थीं अपितु पितृवशा ही रहती थीं। यद्यपि स्वयम्बर की प्रथा प्रचलित थी परन्तु कन्याएँ मर्यादा का उल्लंघन न करती थीं। भारतीय संस्कृति के अनुसार गान्धर्व विवाहों का प्रचलन न था। कुमारियों के विवाह पितृ वर्ग के लिये अभिशाप न थे क्योंकि आधुनिक 'दहेज प्रथा' का प्रचार न था, वर पक्ष की ओर से किसी माँग का प्रस्ताव न होता था। हाँ, कन्या दान के समय कन्या धन अवश्य दिया जाता था।[२]

बाल विवाह का प्रचलन न था क्योंकि सीता विवाह के समय 'समुपस्थित यौवना' थी।[३] रामायण में अनेक विवाहों का उल्लेख हुआ है जिनसे यही प्रकट होता है कि वे सभी कन्याएँ वयस्क ही थीं।[४]

नारी के 'युवती रूप' का तो रामायण में चरम विकास ही दर्शाया गया है जिसकी भारतवासियों ने ही नहीं अपितु विदेशियों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मिस मेरी स्काट् का कहना है—"सीता स्त्रीत्व का वह मधुरतम आदर्श है जिसका मैंने पहले कभी अध्ययन नहीं किया था।"[५]

नारी को गुणों के अनुसार कई रूपों में सम्बोधित किया जाता है। नारी, वामा, अबला, सुन्दरी, प्रमदा, मानिनी, महिला, जाया, माता इत्यादि। रामायण इन सभी रूपों में नारी का व्यक्तित्व प्रस्तुत करती है। 'सायण' के अनुसार 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति 'नृणां महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारिः।' 'न अरिः नारिः।' के अनुसार नारी का अर्थ नरों का उपकारक या शत्रु का न होना कहा गया है। कौशल्या, सीता, मन्दोदरी, आदि सभी इस रूप को चारितार्थ करती हैं। 'वामा' रूप का अर्थ सौन्दर्य बिखेरने वाला है। सीता का सौन्दर्य इस रूप का प्रमाण है।[६]

'बल' शब्द शारीरिक शक्ति का वाचक है अतएव 'अबला' शब्द शारीरिक शक्ति के अभाव का सूचक है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें शक्ति ही नहीं होती अपितु उसकी मानसिक शक्ति अपरिमित हुआ करती है। इसका ज्वलन्त उदाहरण राक्षसराज रावण के वश में पड़ी हुई सीता का निर्भीक रूप एवं दृढ़ आत्मबल है।[७]

'सुन्दरी' शब्द के कई अर्थ हैं 'सुष्ठु नन्दयति इति' 'स्त्री भली प्रकार प्रसन्न करती है। सुन्दरी का अर्थ शोभा सम्पन्ना तथा चित्त द्रवित करने वाली भी है। सीता,[८] कौशल्या, अनसूया आदि सभी नारियाँ इस गुण से सर्वथा समन्वित हैं। स्त्री का ही अन्य रूप 'प्रमदा' भी है। 'प्रमदा संमर्दो हर्षे च' के अनुसार हर्षित प्रकृति सम्पन्ना नारी प्रमदा

---

१. वा० रा० १।११९।३७ से ४२।
२. वा० रा० १।७४।३ से ५।
३. वा० रा० २।११९।३४।
४. वा० रा० ७।२।३०।
५. कल्याण मानसांक, पृष्ठ १५८।
६. वा० रा० ३।४६।
७. वा० रा० ५।२६।१०।
८. वा० रा० ६।४८।

है। यह नैसर्गिक गुण भी रामायण की सभी नारियों में मिलता है।[1] स्त्री मान प्रियता के कारण 'मानिनी' भी कहलाती है। 'कैकेयी' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यह उसका मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व है।[2] उसी का ही अन्य रूप 'ललना' है। जो कि उसकी मानसिक भावना का द्योतक है। 'लल' शब्द का अर्थ इच्छा करना है। नारी में लालसा एवम् इच्छा प्रबल होती है।[3] नारी के अन्य नाम रूप महिला, जाया, दुहिता, माता, आदि हैं जो सभी भारतीय संस्कृति के अनुसार भारतीय नारी के प्रति उत्तम भाव ही अर्पित करते हैं। महिला का मूल शब्द मह् स्वयं पूजावाचक है। जाया रूप में वह पुत्र की साधन स्वरूपा होने के कारण महिमा, गरिमा एवं शोभा से समन्विता हो जाती है। 'माता' शब्द की गरिमा तो सर्वप्रसिद्ध है ही।[4] उसका तात्पर्य माननीया एवं निर्मातृ दोनों ही हैं। इस प्रकार नारी के विभिन्न स्वरूपों में कुछ भौतिक व्यक्तित्व के द्योतक हैं, कुछ शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के सूचक हैं। भौतिक आवरण से ऊपर उसका व्यक्तित्व इससे भी कहीं महान् है जब कि वह साक्षात् श्री, शक्ति, चिति, मान्या, आराध्या, भक्ति, श्रद्धा एवम् उत्सर्गमयी देवी है। हर्ष का विषय है कि नारी के ये विभिन्न रूप रामायण में समाहित हैं।

नारी के इन दिव्य रूपों के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में नारी के अन्य रूप भी उस समय विद्यमान थे इसका भी उल्लेख रामायण में मिलता है।[5] रामायण में गणिका एवम् अप्सराओं के प्रसंग कई स्थानों पर हैं। परन्तु उनके स्वरूप तथा आधुनिक रूप में पर्याप्त अन्तर है। उस समय गणिका को 'वारांगना'[6] से सम्बोधित किया जाता था। जबकि आधुनिक वेश्या अपने अनिर्बन्ध व्यवहार के कारण निन्दनीया एवं उपेक्षिता है। तत्कालीन गणिका 'गण' विशेष की पत्नी होकर भी पातिव्रत धर्म का पालन करती है। यह बहुत कुछ 'बहु पति प्रथा' का प्रमाण है। इस प्रथा का अस्तित्व देव वर्ग की अप्सराओं में उल्लिखित है।[7] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें व्यभिचार था। रावण-रम्भा प्रसंग में नल कूबर शाप द्वारा इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।[8]

नारी के मनोवैज्ञानिक चांचल्य,[9] दुष्ट स्वभाव[10] का उल्लेख भी रामायण में किया गया है। सामान्य नारी में सापत्न्य द्वेष एवम् ईर्ष्या पर तो रामायण की कथा का मूलाधार ही है। इसके अतिरिक्त रामायण में अनेक पौराणिक प्रसंगों का भी उल्लेख है।[11]

रामायण में नारियों की सामाजिक स्थिति के भी महत्वपूर्ण प्रसंग हैं। 'नारी सदैव

---

१. वा० रा० २।५०।२३, ४।२७।२३।
२. वा० रा० २।९।१ से ८।
३. वा० रा० ५।२०।३५।
४. कौशल्या का व्यक्तित्व वा० रा० २।४।३० से ३३।
५. गणिकास्तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः स्वलंकृताः वा० रा० १।९।५।
६. 'विभाण्डकसुतस्तत्र ताश्चापश्यद्वरांगनाः' वा० रा० १।९।१०।
७. 'पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्री परिग्रहः।' वा० रा० ७।२६।४०।
८. वा० रा० ७।२६।४० से ५६ तक।
९. (१) वा० रा० २।१०।४९।
(२) वा० रा० ३।१३।५, ६।
(३) वा० रा० ३।१३।५, ६। तथा
१०. 'स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम्।' वा०रा० ३।४५।३३।
११. वा० रा० २।१११।२१।

अवध्य है,[१] पातिव्रत धर्म ही नारी का परम धर्म है,[२] पुत्र उसका आत्मीय रूप है[३]। इस प्रकार वह एक ओर पति के प्रति उत्सर्गमयी है तो दूसरी ओर पुत्र के प्रति त्यागमयी। स्त्रियों का सामाजिक महत्व अनेक धार्मिक अनुष्ठानों से भी व्यक्त होता है। यज्ञादि में पत्नी की उपस्थिति परम अनिवार्य थी[४] क्योंकि पत्नी पति की अभिन्न आत्मा समझी जाती थी।[५]

रामायण में नारियों के आदर्श के साथ-साथ उनके प्रति सामाजिक शिष्टाचार भी सम्यक् रूपेण वर्णित है। उनकी प्रत्येक सुरक्षा का ध्यान पुरुष वर्ग को रहता था। सभी समयों में उनको प्राथमिकता प्रदान की जाती थी।[६] नारी वर्ग के प्रति उच्च श्रद्धा सूचक सम्बोधनों का प्रयोग किया जाता था। अम्ब,[७] देवि,[८] आर्य,[९] भद्रे,[१०] मनस्विनि,[११] चारुस्मिते,[१२] ललने,[१३] इत्यादि भावमय सम्बोधन नारियों के प्रति उदात्त भावों के सूचक हैं। उस समय समाज में 'विधवा' उपेक्षिता न थी। इसके उदाहरण भी रामायण में पर्याप्त मिलते हैं। दशरथ की विधवा रानियाँ सम्मानित एवम् आदरणीय जीवन यापन करती थीं। समस्त युद्ध ही रावण ने अपनी विधवा बहिन शूर्पणखा की सम्मान रक्षा के लिये किया।[१४] उसके विधवा होने पर रावण ने उसे परितुष्ट एवं संतुष्ट किया तथा उसकी सुरक्षामय जीवन का समुचित प्रबन्ध किया।[१५] 'मातृवत् परदारेषु' का आदर्श सम्यक् रूपेण परिपालित होता था। लक्ष्मण सीता का व्यवहार आद्यन्त माता पुत्र का ही है। हनुमान् सीता का प्रसंग तो परम श्लाघ्य है।[१६] पर नारी की ओर दृष्टिपात करना या उस पर क्रोध करना भी अवांछनीय था। वानर जाति की साम्राज्ञी तारा के सम्मुख उग्र प्रकृति वाले लक्ष्मण विनतवदन ही स्थित रहे।[१७]

मानस में नारी

रामायण की ही भाँति मानस में भी नारी का अप्रतिम सौन्दर्य एवम् उसके उदात्त भाव ही अंकित हुये हैं। यद्यपि तुलसी पर 'नारी निन्दा' का आरोप लगाया जाता है परन्तु प्रसंगानुकूल सम्यक् विवेचन करने के पश्चात् इस आरोप का निराकरण भी हो जाता है।

---

१. ।१। 'अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाक्षम्यता मिति।' वा० रा० २।७८।२१।
 ।२। वा० रा० ५।३।४०।
२. वा० रा० २।६२।८, ९।
३. वा० रा० २।७४।२५।
४. वा० रा० ४।२४।३८।, वा० रा० ७। ९१।२५।
५. वा० रा० ७।२४।३७, ३८।
६. ।१। वा० रा० २।५२।७५, ७६।
 ।२। वा० रा० २।४३।१२
७. वा० रा० २।२१।५०।
८. वा० रा० २।१८।१८।
९. वा० रा० २।२१।२।
१०. वा० रा० ६।११५।२।
११. वा० रा० २।२६।२८।
१२. वा० रा० ३।४६।२१।
१३. वा० रा० ५।२०।३५।
१४. वा० रा० ३।३६।१३, १४।
१५. वा० रा० ७।२४।३३ से ३६।
१६. वा० रा० ४।६।२३।
१७. वा० रा० ४।३३।३९।

मानस में नारी चित्रण करने के पूर्व तुलसी युगीन परिस्थितियों का निरीक्षण कर लेना न्याय संगत होगा। तुलसीदास ने जिस युग में जन्म लिया था, वह अभिशापों का युग था। जिस समाज में भले लोग अपनी विवाहिता सहधर्मिणी को निकालकर, निकृष्ट कोटि की स्त्रियों को घर में बैठाकर भी बड़े बने रह सकते थे। उस समाज में तुलसीदास जैसे लोक नेता ने नारी निन्दा करके भोग विलास की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को, उद्दंड और कामुक वासनाओं को शमन करने का केवल एक स्तुत्य प्रयत्न भर किया था। इस प्रयत्न के लिये तुलसीदास मनुष्यमात्र के श्रद्धा के पात्र हैं, निन्दा के कदापि नहीं।''[1]

डा० राजपति दीक्षित गोस्वामी जी की नारीगत भावना की मीमांसा करते समय अपना निष्कर्ष देते हैं—'तुलसीदास की तीन दृष्टियाँ हैं। एक तो वे कवि रूप में हमारे सामने आते हैं, दूसरे समाज संस्कर्ता के रूप में और तीसरे साधक के रूप में। कवि के रूप में उन्होंने नारियों के विभिन्न स्वरूपों की कल्पना की और उनका अपने प्रबन्ध में यथा-स्थान चित्रण किया। नारी जाति के चरित्रगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से जो विभिन्न रूप दिखाई देते हैं वह कवि तुलसीदास की दृष्टि है। समाज संस्कार की दृष्टि से उन्होंने नारी के सम्बन्ध में वह धारणा ग्रहण की जो परम्परा से चली आ रही थी, या यों कहिये कि उस समय जैसी धारणा थी उसे ही मान्य ठहराया। साधक की दृष्टि से उन्होंने नारी को बहुत ही गर्हित कहा।''[2]

समन्वयकर्त्ता लोक नायक तुलसी सामयिक परिस्थितियों से पूर्णतया भिज्ञ थे। अतएव तत्कालीन सामाजिक विषमताओं से अभितप्त तुलसी ने नारी के विभिन्न रूपों के चित्रण किये। रामायण काल की अपेक्षाकृत पुराण काल से ही नारियों की प्रतिष्ठा, मान एवं शक्ति में क्षीणता आती गई। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का आदर्श विलीन होता गया। पुरुष वर्ग ने स्वाभिमान, स्वार्थ एवम् अहंभाव की प्रेरणा से नारी पर एकाधिपत्य स्थापित किया और इसलिये नारी के प्रति संकीर्णता ही अर्पित की। पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक एवम् आर्थिक क्षेत्रों में नारियों के प्रति संकीर्णता का व्यवहार होने लगा। ऐसी विषम परिस्थिति में 'नारि सहज जड़ अज्ञ' ही वस्तुत: बनी रही। वह गृह की चहार दीवारी में ही रहने लगी। रामायण काल की विदुषी न रह सकी। मुगल कालीन यन्त्रणाओं एवं धर्मसंकट की परिस्थिति में नारी जीवन की गति कुंठित हो चली। उसकी स्वतंत्रता तो अपहृत हो ही चली, उसके सम्मान पर भी आघात होने लगे। सूक्ष्म पारखी समाज सृष्टा तुलसी ने अपने समय की उच्चातिउच्च एवं हीनातिहीन स्तर की नारियों के स्वभाव का निरीक्षण किया।

उनके समय में नारी सौन्दर्य एवं वासना का ही साधन मानी जाने लगी थी इस सामान्य पद्धति का तुलसी ने घोर विरोध किया। 'सुरसरि सम सबकर हित' करने वाले लोक उन्नायक कवि के लिये यह परम अनिवार्य था कि वे पुरुष समाज की नारी विषयक

---

१. तुलसीदास का नारी सौन्दर्य, द्वारा पं० श्री देवीरत्न जी अवस्थी, पृष्ठ १८६, १८७।

२. तुलसीदास तथा उनका युग, पृष्ठ ७३।

इस कामासक्ति एवम् उच्छृंखल वातावरण के स्थान पर मर्यादा का स्थापन करते। यही कारण था कि उन्होंने मर्यादाहीन नारियों की ओर लक्ष्य करके कुछ कटूक्तियाँ कही हैं परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि गोस्वामी जी ने नारी जाति की भर्त्सना या निन्दा करने के लक्ष्य से उनको अभिव्यक्त किया है। उनकी भावनाओं का दिग्दर्शन हमें निम्नांकित उदाहरणों से हो सकता है जिनसे नारी के प्रति उदात्त भावों के ही हमें दर्शन होते हैं। अतएव मानस की नारी का अध्ययन करने के पूर्व तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं नारी विषयक उदाहरणों के प्रसंग को पूर्ण रूप से अवगत कर लेना परमावश्यक है।

रामायण की ही भाँति मानस में भी नारी का कौमार्य, युवती इत्यादि के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। कन्या रूप में नारी अपने विकास का प्रारम्भ करती है। वह अपने सहज निश्छल सौन्दर्य रूप में माता-पिता पर विश्वस्त रहती है। किशोरी जानकी का यह रूप अत्यन्त रमणीय एवं चित्ताकर्षक है। वे नैत्यिक पूजनादि सात्विक कार्य करती हुई माता-पिता के अनुशासन से शासित होती हैं। वाटिका में विलम्ब होने के कारण भयभीत होती हैं।[1] इस वयः सन्धि में भी उनका संयम, मर्यादा का ध्यान एवं संयत मानसिक स्थिति आदर्श है।[2] कन्या के गुरूतर कर्त्तव्य पालन करने के पश्चात् युवती रूप में वे 'पत्नी' रूप में गुरूतम जीवन यापन करती हुई सुशोभित होती हैं। कर्त्तव्य निष्ठा एवं स्वावलंबन युत पातिव्रत धर्म के सबल पाथेय के आश्रय से राजकुमारी सीता दुर्वह अरण्य जीवन यापन करती हुई अग्नि परीक्षा में सफल होकर आदर्श स्थापन करती हैं।

इन दोनों रूपों के अतिरिक्त 'मातृत्व पद' की भी प्रतिष्ठा मानस में की गई है परन्तु उनमें रामायण की अपेक्षाकृत भक्ति की प्रबलता की विशिष्टिता है। माता कौशल्या एवं सुमित्रा वात्सल्य की आश्रय रूपा एवं त्यागमयी तो हैं ही परन्तु उनमें प्रमुखता कवि के व्यक्तित्व की प्रेरणा की है जो कि स्पष्ट कहता है।—

'पुत्रवती युवती जग सोई। रघुवर भगतु जासु सुत होई ।।[3]

रामायण की भाँति नारी के अन्य रूपों का भी चित्रण किया गया है परन्तु उनकी अभिव्यक्ति भिन्न रूप में की गई है। मानस में 'प्रमदा' एवं 'अबला' रूपों का अंकन नारी के विरूप को ही प्रस्तुत करता है। तुलसी के समय में सन्त कवियों एवं साधकों का यह सर्वमान्य सिद्धान्त बन चुका था कि 'कांचन' एवं 'कामिनी' को एक ही श्रेणी में रखा जाय। इसी परम्परा का अनुशीलन एवं साधना पथ में कामना का बहिष्कार का संकेत करना ही गोस्वामी जी का लक्ष्य था। अतएव उनका कथन है।'""प्रमदा सब दुःख खानि।'[4]

इसी प्रकार 'अबला' शब्द का प्रसंग भी गोस्वामी जी के मर्यादा चिन्तन की ओर ही संकेत करता है। 'का न करै अबला प्रबल'[5] में गोस्वामी जी का लक्ष्य नारी की अमर्यादित प्रबलता पर है जिसमें वह क्या नहीं कर सकती जिसमें वे कैकेयी का अनुकूल प्रसंग प्रस्तुत करते हैं। अस्तु उनका सांकेतिक उद्देश्य है नारी को इस प्रकार की उच्छृंखलता से विहीन

---

१. मा० १।२३३।७।
२. मा० १। पुष्पवाटिका प्रसंग।
३. मा० २।७४।१।
४. मा० ३।४४।
५. मा० २।४७।

देखना । गोस्वामी जी ने नारी के अमर्यादित, उग्र एवं अवांछनीय रूप का यथार्थ चित्रांकन कर सांकेतिक आदर्श प्रदान किये हैं । परन्तु अधिकांशत: नारी चित्रण में उनकी प्रवृत्ति आदर्श ही रही है ।

मानव इतिहास के प्रारम्भिक युग में नारी के कार्य व्यापार घर तक ही सीमित थे अतएव उसकी गति की सीमाएँ भी संकुचित हुई । अतएव उसे वाह्य ज्ञान, अनुभव से वंचित रहने के कारण बौद्धिक हीनता ही उपलब्ध हुई । अतएव पुरुष ने अपने पौरुष एवं गौरव के समकक्ष नारी को नगण्य मानकर उसे 'सहज जड़ अज्ञ' ही माना । सामाजिक विकास के साथ-साथ पुरुष के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का क्षेत्र विस्तृत होने लगा । इस प्रकार पुरुष शासक एवं नारि समेत अन्य पारिवारिक सदस्य शासित हुये । साथ ही साथ शक्ति में पुरुष से निम्न एवं हीन भी । अतएव स्मृतिकारों ने उन शासितों के नियन्त्रणार्थ नियमों का निर्माण किया । कृषि युग के पश्चात् समाज का विभाजन वर्ण व्यवसायादि के आधार पर होने लगा परन्तु नारी की स्थिति को शूद्र कोटि में ही शास्त्रों ने अनुमोदित किया [1] ।

इस प्रकार पुरुष के एकाधिकार ने नारी को वेद पाठ, श्रवण स्मरणादि से वंचित किया । अपरिमित ज्ञान के अभाव के कारण गूढ़ दार्शनिक रहस्यों को प्राप्त करने में वह अनधिकारिणी रहकर परतन्त्र ही रही । इस तथ्य का अनुमोदन मानव में मैना पार्वती जी प्रसंग में करवाया है ।[2] इस प्रकार नारी प्रत्येक स्थिति में पुरुष के पूर्णाधीना थी अन्यथा वह उच्छृंखल हो जाती ।[3] अतएव पुरुष मुखापेक्षी नारी गृहिणी एवं दासी ही बन सकी । प्रत्येक दृष्टि से वह पुरुष के परतन्त्र थी । आर्थिक तो स्पष्ट है ही । एक मात्र गृह ही उसका सीमित क्षेत्र होने से राजनैतिक क्षेत्र से उसका कोई सरोकार न था । इस सार्वदेशिक परतंत्रता से ही 'नारी में समाज की क्या स्थिति थी' इसका अनुमान लगाया जा सकता है । इस शास्त्रीय एवं लौकिक रूप रेखा का प्रतिबिम्ब शास्त्रानुमोदक तुलसी के मानस में पड़ना स्वाभाविक था ।

इन्हीं परिस्थितियों से जन्य कतिपय दुर्बलताओं का आरोप भी नारी जाति पर किया जाता है । साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौच एवम् अदाया उसमें आठ अवगुण देखे गये ।[4] मानसिक प्रशिक्षण के अभाव में उसमें चपलता आई । अपनी उपर्युक्त संकीर्ण परिस्थिति में उसमें भय एवं अविवेक की स्थिति भी स्वाभाविक थी । पुत्र पति का अन्धानुसरण उसका विहित था अतएव अविवेक ही उसका आधार बना । इस अविवेक का सदुपयोग उसे पतिव्रता रूप देकर किया गया तथा इससे सामाजिक संघर्ष की शान्ति भी हुई । पति के गुणों में दोष दृष्टि का विवेक रखने से, परित्याग रूप में सामाजिक संघर्ष होने की सम्भावना थी । उसने समाज विरूप हो जाता । अतएव यह अविवेक नारी जाति की मूल प्रकृति के अन्तर्गत नहीं वरंच उपार्जित हुआ । अपनी जटिल

---

१. मा० ५।५८।६। २. मा० १।१०१।५।
३. मा० ४।१४।७। ४. मा० ६।१५।३।

गृहस्थी के आलबाल की सुरक्षा एवं मन के संकल्प को पूर्ण करने के लिये वह 'माया' एवम् 'अनृत' का आश्रय लेती है। यह उसके लिये आवश्कीय हो जाता है। इस प्रकार 'माया' उसकी कामना पूर्त्ति की साधनस्वरूपा बनती है तथा 'अनृत' द्वन्द्वात्मक स्थिति में कवच का काम करता है।

'अदाया' रूप नारी के सबल व्यक्तित्व का ही प्रतीक है। वह अपनी कार्य प्रणाली में दृढ़ संकल्पात्मिका होती है भले ही उसे अधिक से अधिक मूल्य चुकाना पड़े। कैकेयी एवं शूर्पणखा इसी के निदर्शन हैं।

सीता का व्यक्तित्व आदर्श का प्रतीक है जो स्वयम् अपने में स्वतन्त्र एवं सबल है तथा नारी जाति के लिये आलोकस्तम्भ है। 'सती' के चित्रण में यथार्थ तत्वों का निदर्शन है जो अपने संशय, भय एवम् अनृत के कारण परित्याग दण्ड की अधिकारिणी बनती हैं और अन्तत: अपने अखंड पातिव्रत धर्म का आश्रय ग्रहण कर नारी की साधना के उच्च स्तर को प्राप्त करती हैं। विधि के विधान से प्रेरिता एवम् आदर्श यथार्थ के संघर्ष से पीड़िता कैकेयी का चित्रण भी अत्यन्त न्यायसंगत है। अनार्य जाति की नारियों का प्रतिनिधित्व मंदोदरी एवं तारा करती हैं जिनका भव्य दूरदर्शी, नीतिमय रूप किसी भी प्रकार कम भव्य नहीं कहा जा सकता। उनमें भी वृन्दा जैसी सती नारियों का भी अस्तित्व है। निम्न वर्ग की नारियों की आदर्श प्रतीक शबरी है, विदुषी रमणियों का आदर्श अनुसूया उपस्थित करती है। मध्यम वर्ग की नारियों (अयोध्या, जनकपुर की वन वधुएँ) का भी चित्रण अत्यन्त भव्य एवं नैसर्गिक छटा से युक्त है। इस प्रकार तुलसी ने मानस में नारी चित्रण अत्यन्त व्यापक एवम् उदार वृत्ति से किया है जिसमें सभी नारी वर्ग अपना स्वतन्त्र मुखरित अस्तित्व रखते हैं।

अत: अब विचारणीय प्रश्न है कि मानस में नारी के प्रति कटूक्तियों के उद्धरणों का स्वरूप क्या है? तुलसी पर नारी निन्दा का आरोप लगाने के पूर्व उन उक्तितों के प्रसंगों का अध्ययन करने से यह आरोप स्वत: निर्मूल सिद्ध हो जायगा। मानस में इस प्रकार के नारी निन्दा के स्थल तीन प्रकार के हैं। कहीं नारी ने निन्दा की है, कहीं पुरुषों ने और कहीं स्वयं राम के मुख से कराई है। इन प्रसंगों के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायगा कि उनमें वस्तुतः तुलसी का उद्देश्य नारी निन्दा नहीं था। कैकेयी मन्थरा 'का परिहास करती है।[1]' इस प्रसंग की मुद्रा हास परिहास की है सैद्धान्तिक निरूपण की नहीं।

इसी प्रकार शबरी स्वयम् अपना दैन्य प्रदर्शन करती हुई कहती है।

'केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम-अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥'[2]

उक्त प्रसंग में नारी की अधमता तो तब प्रमाणित होती जब स्वयं राम उस कथन से सहमत होते या मौन स्वीकृति देते। परन्तु यहाँ तो विपरीत उत्तर है। 'मानउँ एक भगति कर नाता'[3] कहकर राम नारी को भक्ति पथ की अधिकारिणी मानते हैं अधम नहीं। शबरी की उक्ति उसकी अधमता के स्थान पर उत्तमता ही व्यंजित करती है।

---

१. मा० २।१४।　　२. मा० ३।३४।२,३।
३. मा० ३।३४।४।

पुरुषों द्वारा नारी निन्दा के स्थल भी सार्वजनीन न होकर व्यक्तिगत हैं। नारी निन्दा की प्रमुख अर्धाली निम्नांकित उद्धृत की जाती है।

'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥'[1]

वैसे इस पंक्ति के अनेक भाव आलोचकों ने लगाए हैं परन्तु वस्तुत: सन्दर्भ यह है कि यह उक्ति जड़ समुद्र के द्वारा कही गई है जो कि उसकी शठता का ही एक आवरण मात्र हो सकती है। समष्टिगत सिद्धान्त नहीं। राम ने समुद्र से विनय की परन्तु विनय से वह द्रवीभूत न हुआ। यह उसकी शठता का प्रमाण है। राम क्षुब्ध हो उठे और कराल धनुष-संधान कर डाला। समुद्र की सम्पत्ति प्रज्वलित हो उठी तुरन्त ब्राह्मण रूप धारण कर प्रार्थना करता हुआ इसे कहता है। यह भी उसकी परवशता एवं शठता का ही प्रच्छन्न रूप है।

राम के प्रगति पथ के अवरोधक समुद्र का चरित्र किसी भी प्रकार से आदर्श न था अतएव उसकी उक्ति तुलसी की धारणा कैसे कही जा सकती है। इस उक्ति में केवल तुलसी के समकालीन आदर्श च्युत व्यक्तियों की नारी के प्रति अनार्थ धारणा का ही यथार्थ चित्रण मिलता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं।

'अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि।।'[2]

उक्त दोहे के आधार पर तुलसी नारी निन्दा के भागी बनाए जाते हैं। परन्तु इस दोष दृष्टि का निराकरण द्वितीय पंक्ति से ही तुरन्त हो जाता है। प्रथमत: तो 'प्रमदा' शब्द नारी की विशेष स्थिति का पारिचायक है, नारी जाति का नहीं। दूसरा प्रमुख कारण इस दोहे में है, निवृत्तिमार्गी साधक नारद के प्रति उपदेश। निवृत्ति मार्गी साधक को कांचन कामिनी के अवगुण दर्शाना ही राम ने उपयुक्त समझा। वैराग्य की साधना करने वाले मुमुक्षु के लिये, सन्यासी, वानप्रस्थ एवं ब्रह्मचारियों के लिए नारी मात्र ही साधन पथ का अवरोध कर्त्री है। इसलिये ऐसे प्रसंगों पर नारी निन्दा की प्रसंगानुकूल सार्थकता भी है। मानस में तुलसी ने नारी जाति का भी लोक नायकत्व किया है। परम्परागत नारी की अनधिकार भावना के स्थान पर तुलसी ने उसे भी भक्ति, ज्ञान और मुक्ति की अधिकारिणी बनाया और स्वयं राम द्वारा कहलाया।

'नवमहुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनी मोरे।.... '[3]

इसके अतिरिक्त पूर्वोल्लिखित शास्त्रानुमोदित परतन्त्रता पर भी गोस्वामी जी ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है। उस मूक क्रान्ति की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है।

'कत विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ॥'[4]

---

१. मा० ५।५८।६।
२. मा० ३।४४।
३. मा० ३।३५।६,७।
४. मा० १।१०१।५।

परन्तु इसके साथ ही साथ उस क्रान्ति को पातिव्रत धर्म के सुन्दर आवरण से आवृत्त कर मनमोहक रूप भी चित्रित किया।

तुलसी ने नर नारी के साथ समान रूप से व्यवहार किया है। 'सीयराममय सब जग' को मानने वाले तुलसी अर्धांग (नारी) की निन्दा कैसे कर सकते थे? उनके निजी विचार जहाँ कुलटाओं की आलोचना करते हैं वहीं कुपुरुषों की भी।[1] समाज में दोनों (नर-नारी) को समान स्थान प्रदान किया है। मानस में स्वयंबर के समय नर-नारी दोनों ही समान रूप से दर्शक बनते हैं। सभी उत्सवों में दोनों वर्ग समान उल्लास सहित भाग लेते हैं। मानस में इस तथ्य के पर्याप्त उद्धरण हैं। अन्य क्षेत्रों की भांति बौद्धिक क्षेत्र में भी नारियों का आदर्श तुलसी ने किसी भी भाँति न्यून नहीं रक्खा है।

संक्षेपत: हम मानस के महिला चित्रण के विषय में पं० रामनिवास शर्मा की सम्मतियाँ नितान्त उपयुक्त पाते हैं। महिलाओं के आदर्श दो रूप में चित्रित हैं—माधुर्यात्मक, ऐश्वर्यात्मक।

माधुर्यात्मक में उच्च आदर्शों का पर्याप्त वर्णन है। वह आदर्श चरितावली के यश: सौरभ से परिपूर्ण है। ऐश्वर्यात्मक में ऐश्वर्यात्मक तत्वों के सफल अभिनय की उत्कट झाँकी-स्वातन्त्र्य, बल पौरुष, प्रचंड शक्ति, नैसर्गिक तत्वों का दिग्दर्शन, अदम्य शक्ति, संसार संहारिणी महामाया का चित्रण है।....

महिलाओं के विभिन्न रूप सभी चित्रित हैं जो अपने आप में आदर्श अपितु एक दूसरे से विलक्षण भी हैं। यथा सौतरूप गर्हित होता है पर यहां आदरणीय एवं पूजनीय है। निर्दोष सापत्न्य रूप की आदर्श प्रतीक भगवती कौशल्या, सुमित्रा विशेषत: तथा अंशत: कैकेयी हैं। उनमें परिष्कृत, उदात्त, अभिनन्दनीय एवं पूजनीय सापत्न्य भाव, अकपट सहानुभूति आत्मीयता, लोकोत्तर स्नेह की अमृतोपम धारा प्रवाहित है।........'सास रूप' पुण्य चरित्र है........ यह भी तुलसी की स्वर्गीय साधना का फल है इसमें जितना सौरभ, माधुर्य एवं सौन्दर्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है।........ पत्नी रूप के विषय में कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। कौशल्या, सुमित्रा, सुनयना और जगदम्बा सीता का पवित्र नाम लेना ही पर्याप्त है।........माता रूप स्वर्ग को भी लजाने वाला और समाजोद्धार के लिये मानवीय उच्चादर्शों को अनुप्राणित करने वाला है।........

मानस का प्रत्येक महिला पात्र अपने व्यक्तित्व में पुरुष पात्र से श्रेष्ठ है। ऐश्वर्य प्रधान पुरुष जाति की अपेक्षाकृत माधुर्य प्रधान महिला जाति का माहात्म्य ही विशेष अभिनन्दनीय ठहरता है।...... मानस का प्रत्येक महिला पात्र प्राय: समधिक सत्य, शिव एवं सौन्दर्य का प्रतीक है। स्त्री पात्रों की आध्यात्मिक, सामाजिक एवं नैतिक भावना भी कल्पनातीत, लोकोत्तर एवं कलात्मक है।........कैकेयी, मन्थरा, शूर्पणखा के चरित्र भी प्रशंसनीय, कलापूर्ण एवं यथार्थ हैं। फिर महिला चरित्र के भी तो कुछ दोष हैं। कुछ समष्टि सम्बन्धी कुछ व्यष्टिगत।........अतएव यदि भर्त्सना सुधार, उद्धार एवं भलाई की दृष्टि से की गई तो वह भलाई ही है।........'[2]

---

१. मा० ७।९८।१ से ३।

२. मानस का अनिन्द्य महिला चरित्र चित्रण माधुरी, फरवरी, १९३९।

अन्ततः महिला-हृदयात्मक माधुर्य की सृष्टि पूर्णता, परिपक्वता, अद्वितीयता की दृष्टि से तो मानस समस्त आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक सौन्दर्य के भी सार का सार मालूम होता है।

रामायण तथा मानस में शिक्षा का स्वरूप

वाल्मीकि रामायण में 'वर्ण व्यवस्था' के प्रसंग में यह निर्देश किया जा चुका है कि सभी वर्ण अपने वर्ण नियमानुसार कर्त्तव्य निर्वाह किया करते थे। अपने कर्त्तव्य निर्वाह की स्थिति के पूर्व वे ब्रह्मचर्याश्रम में तथैव शिक्षा उपलब्ध कर अपने भावी जीवन के लिये लोग समुचित पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत कर लेते थे। जैसा कि इतिहास वेत्ता एवं शिक्षा शास्त्री डा० राधा कुमुद मुकर्जी भी कहते हैं कि आश्रम का, जीवन की अन्य अवस्थाओं से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि कली का पुष्प या फूल से।[1]

रामायण में तत्कालीन शिक्षा के स्वरूप पर व्यापक रूपेण दृष्टिपात किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख चार तत्व विचारणीय हैं : गुरु, विद्यालय, शिष्य और शिक्षा के विषय।

वाल्मीकि रामामण में अनेक स्थल 'गुरू' के रूप को परिलक्षित कराते हैं जिनमें गुरु वशिष्ठ एवं गुरू विश्वामित्र विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। इन दोंनों के आश्रमों के विवरण में उपर्युक्त सभी रूपों का व्यापक परिचय मिल जाता है। वशिष्ठ के आश्रम में विद्यालय के शान्त एवं सुरम्य वातावरण के साथ-साथ विद्यार्थियों के स्वरूप का भी सम्यक् ज्ञान हो जाता है।[2]

इसी प्रकार 'सिद्धाश्रम' में गुरू विश्वामित्र का तपोमय रूप तत्कालीन गुरू की जीवन चर्या का व्यापक दिग्दर्शन कराता है।[3]

उपर्युक्त आश्रमों की व्यवस्था से यही निष्कर्ष निकलता है कि तत्कालीन विद्यालय गुरू के निवास स्थान पर ही स्थित थे और शिष्य वर्ग वहीं पर रह कर निजानुकूल शिक्षा प्राप्त किया करते थे। इन तत्वों से अधिक महत्वपूर्ण विषय शिक्षा के विभिन्न रूपों का है। तत्कालीन शिक्षा के प्रमुख विषय निम्नांकित थे। धनुर्वेद, वेद, नीति शास्त्र, वाहन विज्ञान, आलेख्य। चित्र कला लेख्य, (लेखन कला) लंघन (शारीरिक विज्ञान), प्लवन (तैरना), गान्धर्व शास्त्र, न्याय, भूगोल विज्ञान, निर्माण शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आर्युर्वेद, गणित, पशु विज्ञान, समाज शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान इत्यादि। इन सभी विषयों के शिक्षण का स्वरूप रामायण में स्थान-स्थान पर मिलता है। राजाओं एवं राजकुमारों को धनुर्वेद

---

1. The tender youth is first subjected to a process of rigorous discipline and training the aim of which is to purge him of all the impurities and imperfections, physical and moral, which obstruct the free operation of the vital principles of growth of individual. Thus endowed with a sound mind in a sound body the budding youth blossoms into a noble manhood.

(*Ancient India Education—Page 326*)

२. वा० रा० १।५१।२३ से २९ तक। ३. वा० रा० १।२९।२७ से ३१ तक।

में निष्णात होना परम अनिवार्य हुआ करता था । इसका प्रमाण यह है कि जब विश्वामित्र दशरथ से राम को मांगने आते हैं तब दशरथ यही कहते हैं:—[1] 'राम अभी बालक है, अभी धनुर्विद्या भी नहीं प्राप्त की है, न बलाबल को जानता है, न अस्त्र विद्या में निपुण है और ना ही युद्ध में चतुर है ।'

उक्त उद्धरण से यही ज्ञात होता है कि युद्ध विद्या में निष्णात् होना राजकुमार के लिये परम अनिवार्य होता था । इस धनुर्वेद के अन्तर्गत विद्यार्थी को अनेक सहायक विषयों का भी अध्ययन करना अनिवार्य होता है जिसका विस्तृत उल्लेख विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त बला अबला विद्याओं के प्रसंग में किया गया है, जिसमें गुरू विश्वामित्र राम को शस्त्रास्त्र प्रयोग ही नहीं सिखाते हैं अपितु इनके उपसंहार एवम् इनसे सुरक्षा की शिक्षा भी देते हैं ।[2]

गुरू विश्वामित्र स्वयं आदि गुरू शंकर से इस धनुर्वेद शिक्षण की याचना करते हैं जिसमें केवल मानवों को ही नहीं देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस सभी द्वारा प्रयुक्त अस्त्र शस्त्र विज्ञान के ज्ञान की अभिलाषा व्यक्त की गई है :—

'साङ्गोपाङ्गोपनिषद: सरहस्य: प्रदीयताम्
यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु ।
गन्धर्वयज्ञरक्ष:सु प्रातिभान्तु ममानघ'[3]

धनुर्वेद विद्या का रामायण में व्यापक उल्लेख इसीलिये किया गया है क्योंकि रामायण युद्ध प्रधान ग्रन्थ है और क्षत्रिय कुल (राम) से सम्बन्धित है । परन्तु अन्य शास्त्रों के ज्ञान का भी प्रसंग स्थान-स्थान पर मिलता है ।[4] इन शास्त्रों के संक्षिप्त विवरण द्वारा भी यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि रामायण काल में शिक्षा का स्तर कितना उन्नत एवं आदर्श था ।

---

१. वा० रा० १।२०।७
२. वा० रा० १।२७, २८ सर्ग ।
३. वा० रा० १।५५।१६, १७।
४. (१) ज्योतिष ज्ञान (१) पुष्य नक्षत्र शुभ वा० रा० २।४।२।
(२) बृहस्पति देवता का पुष्य नक्षत्र वा० रा० २।२६।९।
(३) सामुद्रिक शास्त्री ब्राह्मणों का प्रसंग वा० रा० २।२९।८।
(४) नक्षत्रों की वक्र दृष्टि वा० रा० २।४१।१०।
(५) ग्रहण में रोहिणी का मन्द पड़ना वा० रा० २।११५।३।
(६) विन्द नामक मुहूर्त्त में हरण की हुई वस्तु के पुर्नमिलन का उल्लेख वा० रा० ३।६९।१२।
(२) वनस्पति शास्त्र (१) वेणु का स्वपुष्प जलाना वा० रा० २।३८।६।
(२) वनस्पति विवरण वा० रा० ७।२६।६
(३) नौका विज्ञान नौका निर्माण का प्रसंग वा० रा० २।५५।१४ से १६।
(४) वैद्यक शास्त्र औषधि विवरण वा० रा० ६।७४।३२, ३३।
(५) भौगोलिक विज्ञान सुग्रीव के चरित्र में वा० रा० ४।४१ से ४५ सर्ग ।
(६) स्वास्थ्य विज्ञान वा० रा ७।९३।८।
(७) समाज शास्त्र वा० रा० ७।३२।८।
(८) छंद, व्याकरण शास्त्र वा० रा० १।२।४१ से ४३।
(९) शरीर विज्ञान वा० रा० ७। ५३।५०।

तुलसीदास के युग में सामाजिक व्यवस्था का रूप विदेशियों के आगमन एवम् सांस्कृतिक वर्ण संकर के कारण नितान्त परिवर्तित हो गया था जिसका 'कलिकाल के प्रसंग' में पर्याप्त उल्लेख किया जा चुका है। स्वयं तुलसी शिक्षा के प्रमुख तत्वों की यथार्थ स्थिति की ओर दृष्टिपात करके अपनी ग्लानिमय उपेक्षा व्यक्त करते हैं:—

'गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।'[1]

......................इत्यादि का उल्लेख कर 'जाइ न बरनि अनीति अपारा' कहते हैं।

अतएव तत्कालीन शिक्षा का आदर्श वे क्या प्रस्तुत करते परन्तु फिर भी यथार्थ के अतिरिक्त तुलसी की आदर्श दर्शिणी दृष्टि ने 'राम चरित' के मिस शिक्षा के आदर्श का संकेत किया है। गुरु विश्वामित्र के साहचर्य में रहकर विद्याध्ययन करना, उनकी चरण सेवा करना, पूजार्थ प्रसून चयनादि करना शिष्य के विनीत, सेवा परायण रूप का आदर्श प्रस्तुत करता है। गुरु विश्वामित्र ने तो अपने शिष्य का शुभचिन्तन हर प्रकार से किया ही, यह तो कथा से ही स्पष्ट परिलक्षित है।

मानस में शिक्षा शास्त्र के विभिन्न तत्वों की ओर स्पष्ट संकेत तो नहीं हैं परन्तु समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, गणित, ज्योतिषादि वनस्पति शास्त्र के प्रसंग भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तुलसी आर्यकालीन शिक्षा की व्यवस्था के परिपोषक थे जिसका प्रमाण याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवादादि हैं।

धार्मिक परिस्थिति

वैदिक युग साम्प्रदायिकता से रहित था जिसमें अग्नि, सोम, इन्द्र, विष्णु, पृथ्वी, रुद्र बृहस्पति, वरुण, पूषा, ऊषा, अश्विनीकुमार, यम, सरस्वती, प्रजापति आदि देवों के विरद् गान गाये। उत्तर वैदिक काल में शनैः शनैः वैदिक देवों का महत्व कम हुआ। विष्णु की मान्यता विशेष हुई। पौराणिक काल में वेद कालीन प्राकृतिक देवों के अतिरिक्त विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश की प्रतिष्ठा विशेष हुई। रामायण काल संधि युग था अतएव उसमें वैदिक देवों एवम् विष्णु शिव का देव रूप भी प्रतिबिम्बित होता है। राम को 'विष्णु' का अवतार कहने के स्थल इसके प्रमाण हैं।

इस रामायण काल में 'यज्ञ' युग का प्रधान धर्म था। 'गायत्री' का महत्व था। अग्नि प्रधान देव थे। वैदिक देवताओं के अतिरिक्त धर्म क्षेत्र में अन्य देवों का भी महत्व परिवर्द्धित हो चुका था। तत्कालीन पूज्य देवों का विस्तृत विवरण रामायण में मिलता है।[2] जिससे यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन पूज्य देवगण धाता, विधाता, पूषा, अर्यमा, इन्द्रादि लोकपाल, भगवान् स्कन्द, चन्द्रमा, बृहस्पति, सप्तर्षि तथा नारद, वरुण आदि थे। शुक्र, चन्द्र, सूर्य, कुबेर, यम भी पूज्य देवों में माने जाते थे।[3] इनके साथ-साथ इसी प्रसंग

---

१. मा० ७।९८।६,७।
२. वा० रा० २।२५।८,९,११,१२,१३,१४।
३. वा० रा० २।२५।२३।

में वैदिक देवों की भी उपासना का स्वरूप विद्यमान था। प्रकृति तत्वों की भी उपासना होती थी।

उक्त देवों की सकाम पूजा का भी निर्देश रामायण में मिलता है। विष्णु देवता विशेष पूज्य थे।[१] कौशल्या राम के वनवास का समाचार सुन निराश होकर यही कहती हैं कि 'पुत्र को पाने की आशा से अब तक जो कुछ भी व्रत, दान, नियम धर्म किये थे वे सब निष्फल हो गये।'[२] धार्मिक कृत्यों के अन्तर्गत दान,[३] व्रत,[४] यज्ञ,[५] सूर्योपासना[६] आदि प्रमुख थे। यज्ञ कराने वालों की विधिवत् पूजा करना भी धर्म के अन्तर्गत ही था।[७]

तुलसी के समय में तत्कालीन धार्मिक स्थिति का रूप रामायण कालीन स्थिति से नितान्त भिन्न था। विविध विचार पद्धतियों के कारण धार्मिक शक्ति एक से अनेक हो चली थी। शैव वैष्णवों में पर्याप्त मतभेद था। इन दो सम्प्रदायों में भी शाखा प्रशाखाएँ बनती गईं जिसका परिणाम हुआ धार्मिक शक्ति का ह्रास। धर्म के उन्नायक तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में अप्रतिम योग दिया और उसका मूल कारण उनकी समन्वयात्मिका प्रतिभा है जिससे धर्म का, देश का, जाति का कल्याण हुआ जिसकी प्रशंसा भारतीय ही नहीं विदेशी तत्वान्वेषक भी भूरि-भूरि सराहना करते हुये कहते हैं कि : 'भारतवर्षीय धर्मोन्नति के इतिहास में जो आसन तुलसी को दिया जाता है उससे कहीं उच्चतर आसन के वे अधिकारी हैं, क्योंकि हम किसी धर्म प्रचारक महातमा की श्रेष्ठता का अटकल उसके फल से लगाते हैं, यह कहने में कि नौ करोड़ मनुष्य महात्मा तुलसी की रचनाओं पर ही अपने धर्म तथा सदाचार के तत्वों की स्थापना किये हुये हैं, हम सामान्य गणना से बहुत कम आँकते हैं। वर्तमान काल में इनकी रचनाओं ने लोगों पर जो प्रभाव डाल रखा है, यदि हम इसी को मानदंड मानकर जाँच करें तो एशिया के तीन या चार महान् लेखकों में गोस्वामी जी एक ठहरते हैं।'[८]

गोस्वामी जी ने वैदिक देवों को भी अपने मानस में मान्यता दी है। 'पृथ्वी' देवी को देवकोटि में ही स्थान दिया है। वह 'गो रूप' में देवों ने परित्राणार्थ प्रार्थना करती है। 'ब्रह्मा' देवता भी सर्वज्ञ बताये गये हैं। 'यम' भी देव योनि में गिने गये हैं परन्तु वे नरक के अधिकारी भी माने गये हैं। 'सरस्वती' भी सम्पूर्ण मानवों की सहायिका दर्शाई गई हैं। वैदिक 'देव' 'इन्द्र' का भी उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। परन्तु तुलसी ने इन वैदिक देवों का उल्लेख मात्र ही किया है इनकी आराधना को प्रतिष्ठापित नहीं किया है। इन देवों से

---

१. वा० रा० २।२०।१४।
२. वा० रा० २।२०।५२।
३. सीता द्वारा वस्त्राभूषणों का दान वा० रा० २।३२ सर्ग।
४. राम द्वारा उपवास वा० रा० २।४६।१०।
५. सांस्कृतिक स्थिति में विविध यज्ञों का निरूपण किया जा चुका है।
६. वा० रा० ४।४२।४१,४२।
७. वा० रा० २।३२।१५,१६।
८. 'जर्नल आफ़ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी' १९०३, पृष्ठ ४५५।

राम के कर्म क्षेत्र में प्रोत्साहन कर्ता का सा काम लिया है। इतना ही नहीं उनकी स्वार्थ प्रियता की कटु आलोचना भी की है।[1]

उपर्युक्त देव पूजा के विवरण न देने का कारण तुलसी कालीन साम्प्रदायिकता की स्थिति है। तुलसी ने अपने धर्म को विशालता प्रदान की है। तत्कालीन प्रचलित शैव एवम् वैष्णव सम्प्रदायों में समन्वयवाद स्थापित कर राम को शिव भक्त[2] और शिव को राम भक्त[3] दर्शाकर तुलसी ने तत्कालीन धार्मिक स्थिति का वैषम्य शान्त कर आदर्श पथ निर्मित किया।

'शाक्त सम्प्रदाय' की शक्ति उपासना को भी मानस में स्थान दिया और जगज्जननी, आराध्य देवी जानकी से उनकी पूजा का स्वरूप दर्शाकर[4] शाक्त सम्प्रदाय को भी अपने विशाल मानस में समाहित किया।

इतना ही नहीं स्मार्त वैष्णव होने के नाते तुलसी ने पंच देवों (गणेश, सूर्य, शिव, शक्ति, विष्णु) का भी विवरण दिया है उन पाँचों को 'उपास्य' पद पर प्रतिष्ठित किया है। इस देवोपासना में तुलसी ने ग्राम देवों एवम् कुल देवों को भी अपने उदार धर्म ग्रंथ में स्थान दिया है।[5] अपने धर्म ग्रंथ में वैष्णव सम्प्रदाय की महत्वशालिनी 'तुलसी' को भी मान्यता प्रदान की है।[6] इस प्रकार तुलसी ने मानस में अपनी विश्व संग्राहिका बुद्धि द्वारा सभी प्रचलित धर्मों को सुसमन्वित किया है।

दोनों कवियों की धार्मिक भावना युगानुकूल है तथा आदर्श पथ प्रदर्शन करती है।

नैतिक परिस्थिति

रामायण एवम् मानस राम काव्य, भक्ति काव्य होते हुये भी नीति काव्य के भी सुदृढ़ स्तम्भ हैं जिनमें स्थान-स्थान पर नीति की सूक्तियाँ दोनों ग्रन्थों में नैतिक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराती हैं। आदर्श चरित्र-चित्रण के स्वरूप जीवन के नैतिक पक्ष को आलोकित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अमर ग्रन्थ नीति वाक्यों के भी आकर हैं। रामायण में निम्नांकित कतिपय नैतिक सूक्तियाँ इसका प्रमाण हैं:

---

१. 'बार-बार गहि चरन संकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥'
मा० २।११।५,६।

२. 'शंकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि' मा० ७।४५।

३. 'तुम पुनि राम-राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥
मा० १।१०७।७।

४. मा० १।२३४।५ से १।२३६ तक।

५. मा० २।७।५।

६. मा० २।२३६।७।

'धैर्य, एवम् उत्साह जीवन के महान बल हैं । उत्साही के लिये इस लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।'[१] बुद्धि का अवलम्ब न लेने वाला राजा प्रजा पर अधिकार जताने में समर्थ नहीं होता ।'[२] 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृति:' के अनुसार कृतघ्न के लिये प्रायश्चित न होने का विधान वर्णित है । कार्य सिद्ध करने वाला और सत्य परायण मित्र आवश्यक होता है :

'मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्य धर्मपरायणम्'[३]

'अपरिचित मनुष्य पर विश्वास न रखना अच्छा है ।'[४]

'कर्मो के फल दैवी घटनानुसार प्राप्त होते हैं ।'[५]

'वीरों की स्त्रियाँ रोया नहीं करतीं'[६]

'लोक व्यवहार के अनुसार कार्य करना चाहिये'[७]

'राजा का घात करने वाला, ब्रह्म घातकी, चोर, प्राणियों का वध करने वाला, नास्तिक, ज्येष्ठ भाई के पूर्व विवाह करने वाला, कृपण, मित्र घातकी, गुरु पत्नी रत, ये सब नरक भागी होते हैं ।

'लोक व्यवहारानुकूल व्यवहार करना चाहिये'

उपर्युक्त संकेतों में विभिन्न क्षेत्रों के नैतिक उपदेश महर्षि के नैतिक उच्च स्तर को पूर्ण रूप से निदर्श करते हैं ।

मानस सूक्तियाँ तो धर्म प्राण जनता की कंठहार ही हो गई हैं । तुलसी की नैतिक सूक्तियाँ भी दर्शनीय हैं : 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करहि सो तस फल चाखा ।।' में जीवन की कर्म प्रधानता वर्णित है । 'मंगल मूल विप्र परितोषू' में ब्राह्मण तुष्टि में कल्याण की भावना का उपदेश है ।

'जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी । नहि लखहिं परतिय मन दीठी ।।
मगन लहहिं न जिनके नाहीं' में सच्चे सज्जनों के लक्षण का उपदेश है ।।

'किये कुवेषु साधु सन्मानु' में प्रत्येक वेश में स्थित सज्जन का सम्मान करना निर्दिष्ट है ।

'को न कुसंगति पाइ नसाई' में कुसंग से बचने का आदेश है ।

'यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा । जाइअ बिनु बोले न संदेहा ।।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गए कल्याण न होई ।।' में विरोध मानने वाले सुहृदों के घर भी न जाने का निर्देश है । 'मोह न अन्ध कीन्ह केहि के ही इत्यादि प्रसंग में मनुष्य पर विकारों का महत्व दर्शाकर उनसे बचने का संकेत है । 'नारि धर्म पतिदेव न दूजा' में नारी क्षेत्र की नीति की ओर भी उल्लेख किया है ।

उपर्युक्त विवरणों द्वारा तुलसी ने अपने मानस में प्रत्येक प्रसंग में नैतिक आदर्शो का कहीं संकेत और कहीं स्पष्ट उल्लेख कर दिया है ।

इस प्रकार दोनों ही काव्य ग्रंथ नैतिक शास्त्र के स्वरूप हैं ।

---

१. वा० रा० ४।१।१८२।
२. वा० रा० ४।२।१८।
३. वा० रा० ४।३३।४८।
४. वा० रा० ४।८।२१।
५. वा०रा० ४।५६।४।
६. वा० रा० ४।२२।४४।
७. वा० रा० ४।२५।३।

राजनीतिक परिस्थिति

रामायण में राजनीति

रामायण में राजनीति का सम्यक् एवं व्यापक चित्रण है। राजनीति के सिद्धान्तों एवम् अंगों का सर्वांगीण विवेचन मिलता है। अतएव 'रामायण में राजनीति' का अध्ययन करने से पूर्व रामायणकालीन स्थिति का अवलोकन कर लेना असंगत न होगा क्योंकि कवि निज युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर निज आदर्शों का समावेश कर अपने महाकाव्य का सृजन करता है।

रामायण कालीन राजनीतिक परिस्थिति

डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास के गहन अध्ययन के आधार पर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन इस प्रकार किया जा सकता है।[1]

'रामायणकालीन भारत में कई स्वतन्त्र राज्य थे, जैसे मिथिला, काशी, कौसल, केकय सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, विशाला, सांकाशी, बंग, अंग मगध और मत्स्य। हिमालय और विन्ध्य पर्वतों के मध्य का भूभाग आर्यावर्त था। विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में वानरों और राक्षसों के प्रदेश थे। उस समय भारत में कोई एकछत्र साम्राज्य नहीं था। पर अयोध्या के राजा की सत्ता निकटवर्ती सामन्त राजाओं पर पर्याप्त थी। दशरथ को नत सामन्तः कहा गया है। विश्वामित्र उनसे पूछते हैं कि क्या आपके सामन्त राजा तथा शत्रुगण आपके अधीन हैं?'[2]

रामायण काल से पूर्व वैदिक काल में भी राजनीतिक जीवन का विकास कई रूपों में मिलता है। सर्वप्रथम मूलतः कुलया परिवार राजनीतिक इकाई का स्वरूप था। तत्पश्चात् कई कुलों से 'गोत्र' बना, 'गोत्र' से 'जन', 'जन' से 'विश' तथा 'विशों' का समन्वित रूप राष्ट्र था।[3] इन विभिन्न रूपों को जातीय रूप ही कहा जा सकता है। इससे भी आगे साम्राज्य, चक्रवर्ती राज्य तथा सार्वभौम राज्य की कल्पना एवं स्थापना की गई।

उत्तर वैदिक काल तक आर्य राज्य जाति के आधार पर निर्मित हुआ करते थे। जिस जाति के लोग जहां रहते थे वह प्रदेश उसी जाति के नाम से प्रसिद्ध हो जाया करता था। शनैः-शनैः राजनीतिक जीवन में परिवर्तन होने लगे। भिन्न-भिन्न प्रदेश अब जाति के नाम पर नहीं वरन् जनपद या प्रदेश कहलाने लगे। उस समय तक कई जनपदों का निर्माण हो गया था जिनमें अंग, मगध, काशी, कौशल, वज्जि (उत्तरी बिहार), मल्ल (देवरिया, गोरखपुर), वत्स व वंश, चेदि, कुरू, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अवन्ति, गांधार, काम्बोज तथा अश्मक आदि प्रमुख जनपद थे।

इस प्रकार जनपदों के विकसित हो जाने से विकेन्द्रीकरण का विकास हो चुका था। जनपद स्वतन्त्र रूप से विकसित होने लगे थे। राज्य के भी अनेक स्वरूप विद्यमान थे।

(१) राजतान्त्रिक—मगध, काशी, कौशल, (२) गणतान्त्रिक—वज्जि एवं मल्ल संघ।

---

१. कल्याण २४।१। रामराज्य, पृष्ठ ४८९। २. बा० रा० १।१८।४६।
3. Hindu Polity by K. P. Jayaswal, Page 12.

रामायण के अध्येता, विद्वान, 'पीटर' अपनी तुलनात्मक विवेचनमयी पुस्तिका 'Beownlf And The Ramayana' रामायण काल की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करते हैं।[१] जिससे यह ज्ञात होता है कि रामायण काल में राजतान्त्रिक प्रथा का प्रयोग अधिक था। राजा विहीन राज्य कष्टमय माना जाता था। अतएव रामायण काल में राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप को प्राप्त थी। अतएव रामायण में भी कथा के अतिरिक्त सामयिक प्रभाव भी स्पष्टत: परिलक्षित है या यह कहना असंगत न होगा कि रामायण में निज सामयिक परिस्थितियों का आदर्श रूप प्रतिबिम्बित है।

मानस कालीन राजनीतिक परिस्थिति

रामायण काल की अपेक्षाकृत मानस काल की राजनीतिक दशा नितान्त भिन्न थी जिसका विवरण इतिहासकारों ने अनेक प्रकार से दिया है। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—'राजनीति की इन दु:खपूर्ण परिस्थितियों से ऊबकर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।'[२]

उक्त कथन से तो यह संकेत मिलता है कि तुलसी की समकालीन राजनीतिक स्थिति अव्यवस्थित एवं दु:खप्रद थी अतएव उन्होंने नई पद्धति के आदर्श का प्रतिष्ठापन अपने मानस में किया है। श्री रामरतन भटनागर के निम्नांकित कथन से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी पर निज कालीन राजनीतिक दशा का क्या परोक्ष प्रभाव पड़ा। वे लिखते हैं—

'तुलसी की रचनाओं से कई बातें स्पष्ट हैं। उन्होंने कई स्थानों पर कलियुग का वर्णन किया है..........उनके काव्य पर यदि राजनीतिक प्रभाव है, तो परोक्ष में उन्होंने अपने समय के विदेशी राज्य में रावण राज्य का प्रतिबिम्ब पाया, अत: उन्होंने विशेष उत्साह से उसका चित्रण किया और उसके विरोध में आदर्श राज्य, राम राज्य की कल्पना उपस्थित की। (उत्तर० २० से २३ तक).......जिस शक्ति से उन्होंने राम कथा लिखी है और रावण के प्रति विरोध का प्रदर्शन किया है, वह शक्ति प्रच्छन्न रूप से सामयिक व्यवस्था और विदेशी राज्य के प्रति विद्रोह से ही जन्म ले सकती है।'[३]

उक्त अवतरण से यही सिद्ध होता है कि तुलसी की तत्कालीन राज्य व्यवस्था में शोषण नीति का बोलबाला था जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं। 'नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।'[४]

'भूप प्रजासन।'[५]........ इत्यादि

निज समय से प्रेरणा पाकर तुलसी ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का तो दिग्दर्शन कराया ही है परन्तु इससे भी अधिक आपका लक्ष्य राजनीतिक आदर्श की प्रतिष्ठा पर भी रहा है। इस प्रकार यह कहना असंगत न होगा कि जहाँ उन्होंने निज कालीन परिस्थिति

---

1. 'Kingly govt. was universal in the epicage...A kingless country was regarded as miserable as cattle without their keeper. (Page 42).
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४८८।
३. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३१०,३११।
४. मा० ७।१००।५।　　　　५. मा० ७।९७।२।

का वस्तु चित्रण करने में 'सत्य' का प्रतिपादन किया है,[१] वहीं 'रामराज्य' के आदर्श की प्रतिष्ठा[२] द्वारा इससे कहीं अधिक शिवं तत्व का निरूपण भी किया है जो कि समाज के लिये अनुकरणीय एवम् उपादेय है जिसका व्यापक विवेचन आगे किया जायगा।

राज्य के प्रमुख अंग

भारतीय राजनीतिक विचारकों ने राज्य के सात अंग निर्धारित किये हैं। महाभारत में यह सप्तांग इस प्रकार हैं। आत्मा, अमात्य, कोष, दंड, मित्र, जनपद तथा पुर।[३] कौटिल्य ने स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दंड और मित्र को सप्त प्रकृति माना है।[४] मनु ने स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दंड और सुहृद् यह राज्य की सात प्रकृतियों का निर्धारण किया है।[५] उक्त अंगों का व्यावहारिक रूप हमें रामायण तथा मानस के पूर्णांग विवेचन से ज्ञात हो जायगा। सभी प्रमुख अंगों में राजा सर्वप्रधान अंग है अतएव उसका स्वरूप सर्वप्रथम अवलोकनीय है।

रामायण तथा मानस में राजा का स्वरूप

राजा की उत्पत्ति विषयक विभिन्न विचारधाराओं में 'दैवी सिद्धान्त' अत्यन्त प्राचीन माना गया है। वेदों से लेकर महाभारत रामायण काल तक इसकी सर्वमान्यता प्रतिष्ठित थी। रामायण में भी राजा को देव माना गया है। वह मानव रूप धारण कर पृथ्वी मंडल पर विचरण करता है।[६] राजा सत्य, धर्म एवम् माता पिता एवम् शुभचिन्तक एवम् कल्याणकारी है।[७] इतना ही नहीं वह अपने गुणों एवम् चरित्र बल से यम, कुबेरादि देवों से भी महान्तर है।[८] अतएव राजा का तिरस्कार करना देव अपमान करना है।[९] वह देवोपम माननीय एवम् शरण्य है। उसे साधारण मानव मानना पाप है। मानस में भी इस दैवी सिद्धान्त का ही रूप मिलता है।

'साधु सुजान सुशील नृपाला। ईश अंस भव राम कृपाला।।'[१०]

इस प्रकार राजशास्त्रियों के अनुसार वर्णित सप्तात्मक राज्य के प्रधान अंग 'राजा' के स्वरूप के महत्व का व्यापक उल्लेख दोनों महाकाव्यों में किया गया है। 'मानव धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म स्थापना के निमित्त ही राजा का निर्माण किया था और धर्म की स्थापना राजा दंड द्वारा करता है।'[११] 'भीष्म ने राजा की आवश्यकता एवम् उसका महत्व जगत के सुचारू रूप से स्थिर रहने और उसके विकास एवम् सम्वर्द्धन के लिये अनिवार्य माना है।'[१२]

---

१. कलिधर्म निरूपण — मा० ७।९७ से ७।१०२ तक।
२. राम राज्य — मा० ७।१९।७ से ७।३१। तक।
३. महाभारत, शान्ति पर्व, ६५।६९। ४. अर्थशास्त्र, वार्ता १, अध्याय १, अधिकरण ६।
५. मनुस्मृति, श्लोक २९४, अध्याय ९।
६. 'देवा मानुषरूपेण चान्त्येते महीतले।' वा० रा० ४।१८।४२।
७. वा० रा० २।६७।३४। ८. वा० रा० २।६७।३५।
९. वा० रा० ४।१८।४२। प्रथम पंक्ति। १०. मा० १।२७।८।
११. मनु का राजधर्म, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ २०।
१२. भीष्म का राज धर्म, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ ३१।

पूर्वोक्त राजशास्त्रियों ही की भाँति वाल्मीकि ने भी राजा के महत्व एवम् उसकी आवश्यकता पर व्यापक प्रकाश डाला है।[१]

मानसकार ने भी अनेक प्रसंगों में राम रूप में ईश्वर का चित्रण करते हुये राजा के महत्व की ओर इंगित किया है। इसका एक प्रत्यक्ष निदर्शन हमें राम राज्य विवरण में मिलता है।

'जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज।
माँगें बारिद देहि जल रामचंद्र के राज।
सहस सेष कहि सकहि जहँ नृप राम बिराज।।'[२]

राज्य के 'प्राण' रूप 'राजा' की नियुक्ति के सिद्धान्तों की ओर भी महर्षि वाल्मीकि दृष्टिपात करते हैं। संविधान में राजपद प्राप्ति के कुछ विशिष्ट सिद्धान्त भी उल्लिखित थे जिनमें से प्रमुख पैतृक अधिकार का सिद्धान्त है। परन्तु इसके साथ-साथ ज्येष्ठता का अधिकार भी समन्वित है। कैकेयी मन्थरा से कहती है "राम राजा का ज्येष्ठ पुत्र है अत: वही युवराज बन सकता है। भरत भी राम के पितृ पैतामहिक राज्य को शतवर्षपर्यन्त अवश्य भोगेगा।[३] मन्थरा[४] एवम् राज्यकर्ता[५] के कथन द्वारा भी उक्त सिद्धान्तों का पुष्टीकरण होता है। वानर जाति में भी पैतृक अधिकार का समर्थन किया गया है। हनुमान् कहते हैं 'हे प्रभो आपके प्रसाद से सुग्रीव वानरों को दुष्प्राप्य पिता दादा के इस राज्य को प्राप्त हुआ है।'[६]

मानस में भी राजा की नियुक्ति के अधिकारों की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। मनु अपने पुत्र को राज्य देकर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करते हैं।[७] पैतृक अधिकार के साथ ही ज्येष्ठता का अधिकार भी स्थान-स्थान पर परिलक्षित हुआ है—

'जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा।'[८]
'जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।'[९]

स्वयं राजा दशरथ भी इसको प्रमाणित करते हैं। 'मैं बड़ छोट बिचारि नियँ करत रहेउँ नृपनीति।'[१०]

इन प्रमुख अधिकारों के अतिरिक्त राजनीतिविदों द्वारा वर्णित अन्य अधिकारों की ओर भी दोनों महाकवि व्यापक रूपेण दृष्टिपात करते हैं। राजा की नियुक्ति में प्रजा की अनुमति भी परमावश्यकीय हुआ करती है क्योंकि उसका पूर्ण सम्बन्ध प्रजा से ही होता है। 'प्रजानुरंजन' ही उसका प्रमुख कर्त्तव्य हुआ करता है। राजा दशरथ राम के

---

१. वा० रा० २।६६।८ से १४ तक, इससे आगे भी २।६६।३६ तक।
२. मा० ७।२२,२३,२६।
३. वा० रा० २।८।१४,१६।
४. वा० रा० २।८।२२
५. वा० रा० २।७९।५।
६. वा० रा० ४।२६।४।
७. मा० १।१४२।१।
८. मा० १।१५२।८।
९. मा० २।१४।३।
१०. मा० २।३१।

युवराज्याभिषेक के समय प्रजा की अनुमति लेने की भावना से जनता एवम् मंत्रिमंडल के समक्ष कहते हैं।[1]

'मैंने जो कुछ कहा है, उस पर आप लोग अनुमति दें। यदि मेरा प्रस्ताव अनुचित लगे तो इससे अधिक हितकर सम्मति कहें' धर्मनिष्ठ एवं राजनीतिज्ञ दशरथ के भाव को समझकर ब्राह्मण, सेनापति एवं पुरवासियों ने अपनी स्वीकृत प्रदान की।[2]

मानस में भी 'प्रजानुमति' प्राप्ति का निर्देश किया गया है। दशरथ कहते हैं—

'जौ पांचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥'[3]

परन्तु इस प्रस्ताव को रखने के पूर्व ही वे राम की लोकप्रियता से परिचित हैं। अतएव कहते हैं—'सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥

सबहि रामु प्रिय जेहि विधि मोही'.......[4]

युवराज्याभिषेक के प्रसंग में प्रजानुमति के अधिकार का भी सम्यक् ध्यान मानस में भी रक्खा गया है। परन्तु इस अनुमति से तात्पर्य प्रजा का अन्धानुसरण नहीं था कि जैसा राजा ने कह दिया उसी का प्रजा ने अनुमोदन कर दिया। प्रजा को अनुमति देने का अधिकार युवराज की चारित्रिक योग्यता पर आधारित था। इस प्रकार राजकुलोत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र भी तभी राजपदासीन होने का अधिकारी हो सकता था जब उसे 'चारित्रिक अधिकार' प्राप्त हो अथवा उसमें राजोचित गुणों का समावेश होना परमावश्यकीय होता है। रामायण में इन आचरणों की ओर व्यापक दृष्टि डाली गई है। राजा दशरथ कहते हैं—

'राजाप्रभाव जुष्टां च दुर्वहा भजितेन्द्रियैः'[5] (लोक पालन का गुरुतर भार अजितेन्द्रियों द्वारा नहीं वहन किया जा सकता) स्वयं राम राजा के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं।[6]---

इसी प्रकार नारद ने राजा को समुद्र, हिमालय, विष्णु, चन्द्र, प्रलयाग्नि, पृथ्वी एवं धर्म के समान क्रमशः गम्भीर, धीर, पराक्रमी, सुन्दर, प्रबल, क्षमाशील एवम् अटल होने का निर्देश किया है।[7] मानस में भी राजा के गुण एवम् चारित्रिक विशेषता का सम्यक् निरीक्षण किया गया है।

'राम रूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥'[8]

दशरथ को भी 'धरम अवधि गुन रूप निधानू।'[9] ही कहा गया है तथा उनके 'रूप गुन सील'[10] की सराहना स्थान-स्थान पर उनकी चारित्रिक विशेषता को प्रमाणित

---

१. वा० रा० २।२।१५,१६।
२. वा० रा० २।२।२१,२२।
३. मा० २।४।३।
४. मा० २।२।२,३।
५. वा० रा० २।२।९।
६. वा० रा० ४।३८।२०,२१।
७. वा० रा० १।१।१८,१९।
८. मा० २। प्रारम्भ।८।
९. मा० २।१५५।६।
१०. मा० २।२७५।८।

करता है। इस चारित्रिक अधिकार का पुष्टीकरण राम, दशरथ, जनकादि राजाओं के चरित्र चित्रण वाले अध्याय से भी किया जा सकता है। अतएव यहाँ इतना कह देना ही अलम् होगा।

मानस में इसी चारित्रिक कसौटी के आधार पर ही चरित्रहीन राजाओं को अधम की श्रेणी में भी रक्खा गया है[1] तथा यह भी दर्शाया गया है कि राजपद के लिये 'चरित्र' ही सर्वाधिक योग्यता एवम् अधिकार है। उससे हीन होने के कारण उन्हें राजपद भी त्याग देना पड़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों काव्य ग्रन्थों में राजा की नियुक्ति के सम्बन्ध में 'शारीरिक', 'पैतृक', 'ज्येष्ठता', 'चारित्रिक योग्यता', एवम् 'प्रजानुमति' के अधिकारों की व्याख्या की गई है। अन्तर केवल इतना है कि रामायण में मानस की अपेक्षा विस्तार अधिक है।

रामायण एवं मानस में राजा के अधिकार एवं कर्तव्य

भीष्म ने राजा का प्रथम कर्तव्य राजोचित आचरण बतलाया है।[2] जिसका सम्यग् विवेचन नियुक्ति के अधिकार के अन्तर्गत किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त राजा का दूसरा प्रधान कर्तव्य 'लोकरंजन कार्य' है। उन लोकरंजन कार्यों में वर्णाश्रम की धर्म रक्षा, वाह्य एवं आन्तरिक विघ्न बाधाओं से सुरक्षा, न्याय व्यवस्था की स्थापना, राजकर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था, राजकर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण, आर्थिक कल्याण की व्यवस्था, सार्वजनिक कार्यों के देख-रेख की व्यवस्था तथा मद्यशालादि के निरोधक की व्यवस्थादि प्रमुख हैं। रामायण में दशरथ तथा राम के राज्य की स्थिति का चित्रण देखकर उनके कर्तव्यों का हमें पूर्णाभास हो जाता है।[3] इसी प्रकार मानस में भी 'राम राज्य' की व्यवस्था के चित्रण[4] द्वारा राजा के कर्तव्यों की ओर दृष्टिपात कराया गया है—

'बरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।'····

····इत्यादि'[5]

शुक्र नीति के अनुसार राजा का परम धर्म प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रह है। 'नृपस्य परमोधर्मः प्रजानां परिपालनम्।
पुष्ट निग्रहणं नित्यं ननीत्यातौ बिना ह्युमे।।'[6]

राजा प्रजा का रंजन करने वाला भी होता है।[7] शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में राजा के कर्तव्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है। 'दुष्ट को दण्ड देना, प्रजा का

१. मा० २।२२८। २. भीष्प का राज धर्म. द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ ३९।
३. बा० रा० १।६।१२,१५, १।७।१५,२०,२१। ४ मा० ७।१९।७ से ७।२३।२। तक।
५. मा० ७।२०। से ७।२०।१,२ तक।
६. शुक्र नीति १।१४।
७. 'रंजकः', शुक्र नीति १।२०।

परिपालन करना, राजसूय आदि यज्ञों का यजन करना, न्यायानुसार कोष का अर्जन करना, अन्य राजाओं को वश में रखना, शत्रु का परिमर्दन करना और भूमि का संग्रह करना, ये आठ कार्य राजा के कर्त्तव्य माने गये हैं।[1] रामायण में दुष्टों को 'दण्ड' देने का समर्थन करके राम बालि से उसका व्यावहारिक रूप भी चित्रित करते हैं।[2]

मानस में भी दुष्टों को 'वध' दंड तक देने का समर्थन राम करते हैं।

'अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।[3]

प्रजा का परिपालन एवम् उनका हितचिन्तन भी राजाओं का सर्वप्रधान कर्त्तव्य चित्रित हुआ है। राजसूयादि यज्ञ करना भी राजा का मुख्य कर्त्तव्य है जिनसे अन्य राजाओं को वश में किया जाता था जिसका विवरण यज्ञ शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है। न्यायानुसार 'कोष अर्जन' भी राजा का मुख्य कर्त्तव्य है परन्तु इसका उल्लेख दोनों ग्रन्थों में अन्य कर्त्तव्यों की अपेक्षाकृत कम है जिससे प्रतीत होता है कि महाकवियों ने कोषार्जन के प्रश्न विस्तार की आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि सार्वभौम सम्राट दशरथ एवं राम के कोष स्वयं समृद्ध एवं सम्पन्न थे। शत्रु को परिमर्दित करने का प्रमुख 'षड्गुणयमंत्र' भी राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है जिसका उल्लेख आगे युद्ध प्रसंग में किया जायगा।

रामायण तथा मानस में मन्त्रिमंडल

राजा के राज्य कार्य संचालन में सहायक राज्य का अनिवार्य अंग 'मंत्रिमंडल' है। इस 'मंत्रि परिषद्' के स्वरूप, कर्त्तव्य एवम् उसके महत्व पर इन दोनों ग्रन्थों में व्यापक विचार किया गया है। कौटिल्य ने यह कहा है....

'मंत्रिणां मंत्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते'[4] अर्थात् 'मंत्रियों की मन्त्रणा से ही राजा की राष्ट्रवृद्धि होती है।'

उक्त आधार का सम्यग् परिपालन दोनों ग्रन्थों में परिलक्षित है। मंत्रदाता एवं राज्य रूपी रथ के द्वितीय चक्र सम मन्त्रिवर्ग के लक्षण भी अत्यन्त महान होने चाहिये जिन से कि राज्य संचालन में विशेष सुविधा हो सके।

राजनीतिवेत्ताओं ने राजा की ही भांति इन मंत्रिवरों की नियुक्ति के कतिपय सिद्धान्तों का उल्लेख भी किया है। 'भीष्म' के अनुसार मंत्रि परिषद् की सदस्यता के लिये प्रमुख सिद्धान्त निम्नांकित हैं।[5]

(१) परीक्षा सिद्धान्त (२) कुलीनता का सिद्धान्त (३) राज्य में निवास का सिद्धान्त (४) आयु का सिद्धान्त (५) लोकप्रियता का सिद्धान्त (६) चारित्रिक सिद्धान्त।

उक्त सभी सिद्धान्तों का समर्थन रामायण में किया गया है।

---

१. **शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ ५८।**
२. **वा० रा०** ४।१८।६३,६४। ३. **मा०** ४।८।७,८।
४. **कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, द्वारा डा० श्यामलाल पाण्डेय, पृष्ठ ३१।**
५. **महाभारत, शान्ति पर्व,** १९।८३,४।११८।

रामायण में मंत्रिमंडल

'सौहृदेषु परीक्षित:'[१] से परीक्षा सिद्धान्त की ओर संकेत किया गया है। मन्त्रिवरों की कुलीनता का प्रमाण भी राम भरत मिलन के प्रसंग में मिलता है जब राम भरत से जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि क्या तुमने कुलीन मंत्रियों को नियुक्ति किया है?[२] दशरथ के सभी मंत्री राज्य निवासी थे ही। उनको परमख्याति[३] उनके प्रेमयुक्त व्यवहार एवम् उनकी लोकप्रियता की परिचायक थी। इन लक्षणों एवम् योग्यताओं के अतिरिक्त रामायणकार ने मंत्रियों के आयुवान होने का प्रतिपादन भी किया है।[४] रावण के मंत्रि परिषद् में भी वृद्ध मंत्रियों का विवरण मिलता है।[५] निषादराज गुह के मंत्री भी वृद्ध ही थे— 'वृद्धै: परिवृत्तोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागत:।'[६] किष्किन्धा में नल, नील, जामवन्तादि भी वृद्धि ही बताए गए हैं।

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों की अपेक्षाकृत सर्वोपरि स्थान चारित्रिक सिद्धान्त को दिया गया है। अतएव रामायण में लक्षण सम्पन्न, अभिजात, एवम् चरित्रवान् मन्त्रियों की चारित्रिक विशेषताओं का विशद् एवम् व्यापक उल्लेख मिलता है।[७]

उक्त विस्तृत विवरण द्वारा मंत्रियों के उच्चतम लक्षणों के अतिरिक्त मंत्रि परिषद् के सदस्यों की संख्या, उनकी राजभक्ति एवम् उनकी वयोवृद्धता, का भी उल्लेख किया गया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन राजनीति शास्त्र[८] के अनुसार ही उनकी संख्या एवम् आयु निर्धारित थी। इन मंत्रियों का वर्गीकरण भी उनके महत्व के परिमाण से किया गया है अतएव पुरोहित या पुरोधा का स्थान सबसे श्रेष्ठ माना गया है, तत्पश्चात् प्रतिनिधि, प्रधान, सचिव, मन्त्री, प्राड् विवाक्, पंडित, सुमंत्र, अमात्य एवम् दूत आदि का स्थान मंत्रि परिषद् में रक्खा जाता था। रामायण में भी राजपुरोहित गुरू वसिष्ठ को प्रवरता प्रदान की गई है। स्थान-स्थान पर उनकी मंत्रणा का उल्लेख रामायण में किया गया है। अन्यों का अपेक्षाकृत अत्यन्त अल्प उल्लेख है। इस परिषद् में 'कार्य प्रणाली' विभाग पद्धति द्वारा संचालित की जाती थी। इसका भी संकेत इस प्रकार मिलता है—'प्लक्षश्चैव प्रभावश्च मंत्रिणावर्थ-धर्मयो:।'[९] राजा मंत्रिमंडल पर पूर्ण निर्भर रहता था। जैसा कि मारीच रावण से कहता है।

कुमार्ग पर चलता हुआ स्वतन्त्र राजा अच्छे मन्त्रियों द्वारा सदा रोकने के योग्य होता है।[१०] परन्तु यदि मंत्रिवर्ग उक्त लक्षणोपेत नहीं होता तो वह निन्दनीय भी है।

---

१. वा० रा० १।७।१०।

२. वा० रा० २।१००।१५।

३. वा० रा० १।७।२४।

४. वा० रा० २।१४।४४।

५. वा० रा० ६।३४।२०।

६. वा० रा० २।५०।३४।

७. वा० रा० १।७।१ से १२ तक।

८. 'सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षिताम्।'
शुक्र की राजनीति, मानव धर्म शास्त्र, श्लोक ५४, अध्याय ७, पृष्ठ ६७।

९. वा० रा० ४।३१।४३।

१०. वा० रा० ३।४१।७।

'वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण।
ये त्वामुत्पथमारूढ न निगृहणान्ति सर्वशः ।।'[1]

हे रावण! वध योग्य तुम्हारे मंत्री निश्चय ही नहीं मारे जाते जो कुमार्ग में चलते हुये तुमको सब प्रकार से नहीं रोकते हैं।'

इस मन्त्रिवर्ग के महत्व की ओर दृष्टिपात करते हुये राम भरत से जिज्ञासा प्रकट करते हैं—'हे तात! क्या तुमने अपने तुल्य शूरवीर, वेदज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन इंगित जानने वाले मंत्री नियत किये हैं क्योंकि हे राघव! राजाओं के लिये मंत्री ही विजय का मूल होता है इससे शास्त्र निपुण मन्त्रियों से राजा को युक्त रहना चाहिये।[2] रामायण में मंत्रिमंडल का क्रियात्मक रूप भी अनेक रूपों में प्रदर्शित किया गया है। रामराज्याभिषेक, राम रावण युद्ध के प्रसंगों का इस दृष्टि से विशेष उल्लेख है जहाँ कि वे केवल मंत्रणा मात्र ही नहीं देते अपितु समय पड़ने पर युद्धनीति कौशल भी प्रदर्शन मन वच कर्म से राजभक्ति प्रदर्शित करते हैं। परन्तु सभी मंत्रियों से गुप्त मंत्रणा नहीं की जा सकती और महत्वपूर्ण रहस्यमय विषयों को गुप्त रखना परम अनिवार्य होता है अतएव मंत्रियों में से ही कुछ विशेष मंत्री होते हैं जिन्हें कि राजा की 'परम अन्तरंग समिति' कहा जाता है जिनसे कि राजा प्रत्येक समय मन्त्रणा ले सकता है। रामायण में इस व्यवस्था का चित्रण मिलता है।

'मंत्रिभिस्त्वं यथोदिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।'[3]
'कच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्च मंत्रं मंत्रयसे बुधाः ।।'[4]

मानस में मंत्रिमंडल

मानस में मंत्रिमंडल की सूक्ष्म एवम् व्यापक विवेचना रामायण की भाँति नहीं की गई है क्योंकि तुलसी का लक्ष्य राज्य व्यवस्था का चित्रण करना नहीं था अपितु 'राम चरित' ही उनका प्रमुख केन्द्र था। उनके ग्रन्थ की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक विशेष है अतएव मंत्रियों की स्वतन्त्र सत्ता का दिग्दर्शन न कराकर गोस्वामी जी ने मंत्रिवरों को भी राम के परिजनों[5] की ही भाँति चित्रित किया है। गुरू वशिष्ठ का स्थान अवश्य 'पुरोधा' की भाँति सर्वोपरि है। समय-समय पर उनसे मंत्रणा ली जाती है[6] परन्तु उन स्थलों पर उनका संचालक गुरू रूप ही विशेष प्रधान है 'प्रधान मंत्री' का रूप अनुभूत नहीं होता।

वशिष्ठ के अतिरिक्त मंत्रियों में केवल सुमन्त्र का नाम ही प्रसंगवश मानस में आया है। वे भी राम के अनन्य सम्बन्धी एवम् सेवक[7] भक्त की भाँति राम के सुख में सुखी एवम्

---

१. वा० रा० ३।४१ ६।
२. वा० रा० २।१०१।१५,१६।
३. वा० रा० २।१००।७१।
४. वा० रा० २।१००।१७।
५. (१) 'विनती सचिव करहिं कर जोरी' मा० २।४।१।
(२) 'सचिव सँभारि राउ बैठारे' मा० २।४३।२।
(३) 'सचिव धीर धरि कह मृदु बानी....से मा० २।१५२।३ तक।
(४)'सचिव उठाइ राउ बैठारे' मा० २।७५।७।
६. मा० १।१८८।२,३, १।२९३।, २।२।
७. 'सचिव चलायउ तुरत रघु इत उत खोज दुराइ' मा० २।८५।

दु:ख में दु:खी होते हुये दिखाये गये हैं । यद्यपि वे 'पंडित परमारथ ग्याता' कहे जाते हैं परन्तु राम का विरह उनको भी असह्य हो उठता है और 'दारून दाहू' से पीड़ित हो उठते हैं । उनके उस आर्त रूप में संयत मन्त्रित्व का तनिक भी आभास नहीं होता अपितु 'आर्त सेवक' ही उन्हें कहते बनता है । चित्रकूट का चित्रण रूपक बद्ध शैली में करते समय यहीं गोस्वामी जी 'बिरागु' को सचिव का स्थान देते हैं, वही झलक एवम् तटस्थ भावना उन्होंने सचिवों के प्रति एवम् सचिवों में भी दर्शायी है । भरत के अयोध्या आने पर 'प्रजा सचिव संमत' गुरू के उपदेश में भी नैतिक पक्ष प्रधान है । राजनीतिक विवेचन अपेक्षाकृत बहुत कम ।

उक्त रूपों का आधार हमें निम्नांकित प्रसंग में मिल जाता है । जबकि पुरोधा के रूप में गुरू एवम् प्रधान मंत्रणा दाता वशिष्ठ भी राम के प्रधान मन्त्री रूप में नहीं अपितु कृपायाचक भक्त रूप मे ही चित्रित किये गये हैं । वे स्वयं राम से याचना करते हैं ।

'नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।
जन्म-जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।।'[1]

मानस के अन्य प्रसंगों में सचिव की मर्यादा का उल्लेख किया गया है ।
'रिपु के समाचार जब पाए । राम सचिव सब निकट बोलाए ।।
लंका बाँके चारि दुआरा । केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ।'[2]
परन्तु फिर तुरन्त ही उनका भक्त रूप ही व्यक्त हो उठता है ।
'तब कपीस रिच्छेस बिभीषन । सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन ।।
करि बिचारि तिन्ह मन्त्र दृढ़ावा ।।'[3]

रामायण तथा मानस में विधि

राजा एवम् मंत्रिमंडल की मंत्रणा का महत्वपूर्ण कार्य 'विधि निर्माण' है । विधि निर्माण के अनेक साधनों का राजनीति शास्त्रों में उल्लेख किया गया है ।[4]

(१) जनता के आधार पर विधि का निर्माण,
(२) दैवी साधन से विधि का निर्माण, (३) आर्ष साधन से विधि का निर्माण
(४) स्थानीय संस्थाओं द्वारा विधि का निर्माण ।

स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्मित विधियों के निम्नांकित ३ भेद हैं ।
(१) कुल धर्म (२) जाति धर्म (३) देश धर्म ।

'विधि निर्माण' के प्रथम साधन का रामायण में उल्लेख नहीं है । 'दैवी साधन' के सिद्धान्त का प्रतिपादन रामायण में इस प्रकार मिलता है । लक्ष्मण, सुग्रीव को प्रतिबोधित करते हुये कृतघ्न मित्र' की विधि का उल्लेख करते हैं जिसे कि वे ब्रह्मा द्वारा निर्मित

---

१. मा० ७।४९।   २. मा० ६।३८।१,२।
३. मा० ६।३८।३,४।
४. महाभारत, शान्ति पर्व ।

बताते हैं ।[1] समय-समय पर देश, काल एवम् परिस्थिति के अनुकूल ऋषियों मुनियों एवम् राजनीतिविदों द्वारा निर्मित विधियों को आर्ष साधन के अन्तर्गत रक्खा गया है । वेद एवम् शास्त्र के विशेषज्ञ ही इसके अधिकारी निर्माता होते थे ।[2] इस प्रकार की विधियों का विवरण स्थान-स्थान पर रामायण में मिलता है ।[3]

संस्थामय भारतीय जीवन में लघु से लेकर विशाल तक प्रत्येक संस्था की महत्ता प्रतिपादित की गई है जिनमें तीन प्रमुख हैं, कुल, जाति एवम् देश। प्रत्येक की निजी विशिष्टताएँ होती हैं । इनमें से प्रत्येक को निजी स्वतन्त्रता प्राप्त होने का प्रमाण उनके 'कुल धर्म' हैं । कुल संचालन इन्हीं द्वारा होता है । रामायण में भी इन कुलधर्मों का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है ।[4] साथ ही उनका परिपालन भी विधि पालन का अनिवार्य अंग निर्देशित किया है ।[5] विभिन्न जातियों के अनुसार उनकी रीतियाँ एवम् संस्कृतियाँ भी भिन्न हुआ करती हैं, तदनुकूल जाति धर्म भी होते हैं । रामायण में मानव जाति,[6] वानर जाति[7] एवम् राक्षस जाति[8] के धर्मों का भी वर्गीकरण मिलता है ।

रामायण तथा मानस में विधियों का उल्लेख तो अनेक स्थलों पर किया गया है परन्तु विधि निर्माण के स्वरूप पर कोई दृष्टि नहीं डाली गई है । रामायण की अपेक्षा मानस में विधियाँ अपेक्षाकृत कम हैं परन्तु अनेक सूक्तियों के रूप में उनकी न्यूनता का अभाव समाप्त हो गया है जिनका उल्लेख नैतिक पक्ष के अन्तर्गत किया जा चुका है।

रामायण तथा मानस में कार्यपालिका

विधान पालिका से विधानों का क्रियाशील रूप कार्यपालिका में दर्शनीय होता है। अतएव राज्य के विभिन्न कार्यों का विभाजन एवम् वर्गीकरण उनकी व्यवस्था के अनुसार किया जाता है । इस दृष्टि से राज्य के शासन भार वाहक अनेक राजकर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी । यह कर्मचारी वर्ग भी राजाधीन ही हुआ करता था । राजा के पश्चात् महत्वपूर्ण पद युवराज का था । तदनन्तर अनेक विभागों के मंत्रि परिषद् के सदस्य हुआ करते थे । उसके पश्चात् विभिन्न विभागों के अध्यक्ष एवम् उपाध्यक्षादि हुआ करते

---

१. 'गीयोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोक नमस्कृतः' वा० रा० ४।३४।१०

२. वा० रा० १।७।७।

३. विधियाँ वा० रा० ४।३४।९,११।
   (२) स्त्रीवध-निषिद्ध वा० रा० २।७८।२१।
   (३) पापी को राजा द्वारा दण्ड मिलना अनिवार्य वा० रा० ४।१८।२५।

४. (१) 'तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम् । वा० रा० २।७३।२३।
   (२) 'स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः सनातनं नाथ विहन्तुमर्हसि ।।' वा० रा० २।११०।३७

५. वा० रा० १।१।९६।

६. पूर्वोक्त विधियों का विवरण ।

७. राजनीतिक रूप वा० रा० ४।२।२१ से २३।

८. वा० रा० ५।२०।६।

थे। स्थान एवम् विषयानुसार उनका वर्गीकरण किया जाता था जैसे शिक्षाधिपति, वनाधिपति, कोषाध्यक्ष, पुर का साहसाधिपति, ग्रामनेता इत्यादि जिनका उल्लेख राजनीति शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है।

'अर्थशास्त्र में इनके पद इस प्रकार बतलाये गये हैं।—

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तर्वंशिक, प्रशास्तृ, समाहर्तृ, संनिधातृ, प्रदेष्टृ, नायक, व्यावहारिक, कार्तान्तिक, मन्त्री परिषदध्यक्ष, दंडपाल, दुर्गपाल, अन्तपाल एवम् अटविपाल।'[1]

उक्त अधिपतियों के आधीन उनके सहायक राजकर्मचारी होते थे। विचारणीय विषय यह है कि रामायण तथा मानस में इनका विवरण किस रूप में दिया गया है। रामायण में इनका व्यापक विवरण राम की प्रश्नावली में मिलता है।[2]इन राज कर्मचारियों एवम् राजसेवकों के प्रति व्यवहार का स्वरूप भी इसमें उल्लिखित है।

'बलवन्तश्च कच्चित्ते मुख्या युद्धविशारदाः।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः
कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
संप्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे
कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्कृतः'[3]

अध्यात्म पृष्ठभूमि से युक्त मानस में इनका संकेतात्मक रूप प्रासंगिक ही है, विवरण नहीं 'सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।'[4]

'अस बिचारि सुचि सेवक बोले।'[5]

रामायण तथा मानस में न्यायपालिका

प्राचीन परम्परानुसार न्याय संस्था का अध्यक्ष राजा ही हुआ करता था जो धर्माध्यक्ष नाम से सम्बोधित किया जाता था तथा उसकी धर्म सभा हुआ करती थी जिसमें वेदज्ञ एवम् नीतिज्ञ धर्माधिकारीगण हुआ करते थे जो कि जाति, देश, श्रेणी, कुल धर्म एवम् सदाचरणादि के विशद् ज्ञाता हुआ करते थे। अतः स्पष्ट है कि जनता के अधिकारों का सम्यक् निर्वाह कराने के लिये राजा न्यायाधीश के रूप में न्याय व्यवस्था का समुचित संगठन किया करता था। राजा के प्रधान कर्त्तव्यों में राजा का प्रमुख कर्त्तव्य दुष्ट दमन है। इस कार्य सम्पादन में उसको न्यायाधीश रूप ही धारण करना पड़ता है। परन्तु राजा की धर्म सभा के अतिरिक्त भी न्यायालयों की व्यवस्था थी जिनमें प्रमुख दो रूप थे।

---

१. अर्थशास्त्र, वार्ता ८, अध्याय १२, अधिकरण १, शुक्र की राजनीति, पृष्ठ ९१।

२. वा० रा० २।१०१।३६,३७।

३. वा० रा० २।१०१।३१ से ३३।

४. मा० २।१८७।

५. मा० २।१८५।६।

(१) स्थानीय संस्थाओं द्वारा संगठित न्यायालय—:१: कुल :२: श्रेणी :३: गण
(२) सरकार द्वारा संचालित न्यायसंस्थाएँ :१: साहसाधिपति की न्याय संस्था—

इसमें साहसाधिपति,
ग्रामनेता, भागहार,
शुल्कग्राहक लेखक तथा
प्रतिहार प्रमुख थे।

:२: समय न्यायालय—राजा की ओर से विशिष्ट नियुक्त ५ या ७ व्यक्ति।

:३: अध्यक्ष-न्याय सभा—न्यायाध्यक्ष तथा अन्य विशिष्ट सभ्य।
:४: राजा की न्याय सभा—राजा, प्राड्विवाक, अमात्य,
ब्राह्मण, पुरोहितादि।

उपर्युक्त सभी न्याय सभाएँ उत्तरोतर एक दूसरे से उच्च थीं। इनमें से राजा की न्याय सभा 'सर्वोच्च न्यायालय' के स्थान पर थी जिसमें मौलिक विवादों का निर्णय देने के अतिरिक्त लघु न्यायालयों के निर्णय पर पुर्नचिन्तन भी किया जाता था।

वाल्मीकि रामायण में कुल के अतिरिक्त श्रेणी, गण इत्यादि महत्वपूर्ण स्थानीय न्याय संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है जिनमें कि मुखिया लोग अध्यक्ष एवम् न्यायाधीश का कार्य किया करते थे। 'श्रेणीमुख्यास्तथागणाः ॥'[1]

'ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान्गण बल्लभान्।'[2]

राजा की न्याय सभा का चित्रण रामायण में इस प्रकार देखने को मिलता है।[3]

उक्त विवरण में 'धर्मासनगतः' राजा के धर्माध्यक्ष रूप की ओर तथा राजधर्म एवं वेद शास्त्रज्ञ की ओर तथा व्यवहार विभिन्न विवादग्रस्त अभियोगों के पारिभाषिक शब्द की ओर तथा 'सभा' शब्द न्याय सभा या धर्म सभा की ओर संकेत करता है।

सभी न्यायालयों में अपराध का निर्णय हो जाने के पश्चात् चार प्रकार के दंडों की व्यवस्था थी धिक् दण्ड, वाक् दंड, अर्थ दंड, वध दंड इनमें से अन्तिम दो दंड देने का अधिकार राजा को ही था। मानस में इनका सूक्ष्म विवेचन नहीं किया गया है।

रामायण तथा मानस में कोष

राज्य के मूलाधार 'कोष' अंग की सम्यक् रूप रेखा तो चित्रित नहीं की गई है परन्तु उसकी अनिवार्यता दोनों ग्रन्थों में उल्लखित है।[4] कोष वृद्धि के विभिन्न साधनों में से

---

१. वा० रा० ६।१२७।४।
२. वा० रा० २।८१।१२।
३. वा० रा० ७।६०।१ से ३।
४. (१) वा० रा० १।५५४।, १।१३।३६,३७। (२) मा० १।२०६।३।

कुछ का रामायण में उल्लेख हुआ है।[१] जबकि मानस में राम स्वयं 'धनद कोटि सत सम धनवाना,[२] हैं। अतएव कोष वृद्धि के साधनों का उल्लेख करना व्यर्थ सा ही समझकर तुलसी इस विषय में मौन हैं।

रामायण में पुर व्यवस्थादि

राज्य का प्रमुख अंग राष्ट्र है। 'शुक्र' के अनुसार 'जो कुछ किसी राजा के अधीन होता है वह राष्ट्र कहलाता हैं' स्थावर और जंगम यह दोनों राष्ट्र के अन्तर्गत माने गये हैं।[४] प्रजा के निवास के आधार पर पुर और ग्राम दोनों प्रमुख रूप थे। प्राचीन व्यवस्थानुसार ग्राम आकार के अनुसार मुख्य तीन प्रकार के थे।

(१) कुम्भ (२) पल्लि (३) ग्राम

इनमें से लघुतम रूप कुम्भ का था उसके पश्चात् उससे द्विगुणित रूप को पल्लि तथा ग्राम इन सबसे महान् हुआ करता था। इन विभिन्न रूपों के संगठन के भी विशिष्ट नियम निर्धारित थे जिनमें भवन निर्माण कला के अतिरिक्त पुर निर्माण की निश्चित रूप रेखा भी हुआ करती थी। रामायण में पुर निर्माण की व्यवस्था का सूक्ष्मांकन किया है जिसमें नगर निर्माण कला के सभी विस्तार, स्वास्थ्य एवम् सिद्धान्तों के विधानों का सम्यक् पालन भी किया गया था।[३]

'मनुष्यों में श्रेष्ठ मनु ने जिस पुरी का स्वयं निर्माण किया था, वह विशाल कान्तिमती नगरी तीस कोस लम्बी और साढ़े सात कोस चौड़ी, (अनेक जनपदों को जाने वाले) विस्तृत मार्गों वाली, लम्बे और सीधे बनाए हुए, बिना गुथे पुष्पों से व्याप्त और जिसमें नित्य जल छिड़का जाता था ऐसे राजमार्ग से शोभित थी। यह नगरी सुन्दर कपाट एवम् बाहर के सुन्दर फाटकों से युक्त एवम् चौड़े बाजारों से युक्त थी। ....चारों ओर विशाल परकोटे से घिरी हुई नगरी किले की बड़ी गहरी खाई वाली तथा साधारण जनों के न पहुँचने योग्य थी। ......यह रत्नजटित राजभवनों, क्रीड़ा पर्वतों एवम् स्त्रियों के क्रीड़ागृहों से व्याप्त होने के कारण इन्द्र की अमरावती पुरी के समान शोभायमान थी।

अयोध्या की ही भांति लंकापुरी की स्थिति का भी चित्रण पुर व्यवस्था का रूप प्रस्तुत करता हैं।[४]

---

१. वा० रा० बा० कां० अयो० कां० २. मा० ७।९।१।७।
(१) 'यस्याधीनं भवेद्यावत्तद्राष्ट्रं तस्य वै भवेत' शुक्र नीति ४।२४३।
३. (शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ २६६)
(२) 'स्थावरं जंगमं वापि राष्ट्रशब्देन भीयते ॥' शुक्र नीति ४।२४२।
शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ २६६।
बा० रा० १।५।६ से ८,१०,१२, १३,१५।
४. वा० रा० ६।३९।१९ से २२।,५।२।४८,४९।

नगर के विशिष्ट विभाजन एवम् प्रसाधन स्थानों का भी रामायण में व्यापक उल्लेख किया गया है[1] तथा भवनों की आन्तरिक निर्माण कला का भी स्पष्ट दिग्दर्शन कराया गया है[2] जिनमें राजभवनों की अनेक ड्योढ़ियाँ तथा अनेक कक्षाओं का स्पष्ट निदर्शन है। ये सभी पुरियों (अयोध्या, लंका एवम् किष्किन्धा) के विवरणों द्वारा उनकी विशालता, श्री सम्पन्नता एवम् सुव्यवस्था दृश्यमान होती है। विशाल प्राकार, खाइयाँ एवम् अभेदनीय दुर्ग, खाइयाँ दृढ़ता के पर्याप्त प्रमाण हैं तथा सुन्दर। भवन, पक्षिगणों के कलरवों से युक्त उपवनादि तत्कालीन शिल्पविकास एवम् स्थापत्य कला की श्रीवृद्धि का परिचय देते हैं।

इसके अतिरिक्त कोप भवन,[3] व्यक्तिगत एवम् सार्वजनिक देवतायन,[4] अग्निशाला,[5] चित्रशाला,[6] नर्तनशालादि[7] विभिन्न गृह के आन्तरिक विभागों एवम् मनोवृत्तियों के दिग्दर्शक हैं। राजपथ पर चन्दन का प्रज्वालन[8] नागरिक स्वच्छता की अक्षुण्णता का प्रतीक था। इस प्रकार रामायण कालीन नगर प्रबन्ध का स्पष्ट एवम् उत्तम नगर निर्माण का सांस्कृतिक रूप रामायण में प्रस्तुत है जो कि राजधानी के निर्माण के सभी सिद्धान्तों से पूर्ण है।[9]

रामायण की कथा का सम्बन्ध 'पुर' से विशेष है अतएव इनका विशेष विवरण दिया गया है। भीष्म के अनुसार—'पुर के क्षेत्र को वहिष्कृत करने के उपरान्त राज्य का जो भाग अवशेष रह जाता था उसको जनपद अथवा राष्ट्र के नाम से सम्बोधित किया गया है।' रामायण में पुर के अतिरिक्त 'जनपद' का भी संकेतात्मक उल्लेख मिलता है।

दशरथ 'पौरजानपदप्रिय:'[10] नाम से सम्बोधित किये गये हैं तथा दशरथ को 'पौर

---

१. (१) चौराहों का विवरण वा० रा० ५।४।१४।
(२) उद्यानादि उल्लेख (लतागृहाणि, चित्रशाला गृहाणि, क्रीडागृहाणि, दारुपर्वतकाणि-कामस्य गृहकं, दिवागृहकं)
(३) वाटिका वा० रा० ५।१४।२ से ५, ५।१५।२ से १५।
२. (१) सातमंजिल वाले घरों की उच्चता एवम् भव्यता वा० रा० १।७७।९।
(२) राज सभा का रूप वा० रा० २।५।४ से ७।
(३) विभिन्न ड्योढ़ियाँ वा० रा० २।१७।२१,२२।,२।२०। ९ से १३,१६।
(४) वानरों के निवासगृह वा० रा० ४।३३।१५ से २०।
(५) राक्षसों के प्रासाद वा० रा० ५ ७।२ से १०।
३. वा० रा० २।९।८। ४. वा० रा० २।६।११।, वा० रा० १।१२।७७।
५. वा० रा० २।२०।१६। ६. वा० रा० ५।३।१९ से २९।
७. वा० रा० २।१०।१३।
८. वा० रा० २।१७।३७।
९. 'शुक्रनीति के अनुसार राजधानी निर्माण के सिद्धान्त, पृष्ठ २८८ से २९३ तक।
१०. भीष्म का राजधर्म, द्वारा डा० श्याम लाल पाण्डेय, पृष्ठ ११४।
वा० रा० १।६।१।

जानपदों' के साथ मन्त्रणा करते हुये दिखाया गया है ।[1] 'जनपद' शब्द का अभिप्राय 'जनपद' भाग के निर्वाचित शासनाधिकारी सदस्यों से है जो कि राजा के शासन कार्य में अपने स्थानीय प्रदेशों का प्रतिनिधित्व द्वारा सुविधा एवम् सुकरता प्रदान करते थे जिससे तत्कालीन राज्य व्यवस्था के प्रतिनिधित्व का भी उल्लेख मिलता है ।

आधुनिक 'नगर पालिका' की भाँति 'पौर' नामक संस्था स्थानीय विषयों का शासन प्रबन्ध किया करती थी तथा इसे पुर एवम् राजधानी का प्रमुख स्थान प्राप्त था ।[2] इस संस्था का अध्यक्ष हुआ करता था । उसके अधीन सम्पादित कार्य 'पौर कार्य' कहे जाते थे ।

'पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वश:'[3]

इस प्रकार ग्राम, नगर, जनपद सभी प्रमुख भूमि भागों का विवरण रामायण में मिलता है ।

मानस में पुर व्यवस्थादि

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में पूर्वोक्त व्यवस्थाओं का व्यापक एवम् सूक्ष्म विवेचन नहीं किया गया है प्रत्युत् प्रासंगिक पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है । इसमें तुलसी ने दशरथ के नगर की नहीं अपितु राम राज्य के समय 'नगर व्यवस्था' का चित्रण किया है इस पक्षपात का स्पष्ट कारण उनकी भक्ति एवम् राम महिमा का निरूपण है । अतएव उनके राम के प्रताप से प्रकाशित[4] अयोध्या नगरी का चित्रण रामायण में वर्णित 'पुरी' के समकक्ष ही हुआ है ।[5]

मानस में अयोध्या नगरी के सुव्यवस्था से अधिक लेखक का ध्यान उसके माहात्म्य की ओर अधिक गया है । अतएव उसकी मनोहारिता में अलौकिक तत्व का समावेश सा प्रतिभासित होने लगता हैं ।[6] रामायण की भाँति नगरी का यथातथ्य चित्रण नहीं प्रतीत होता है। परन्तु जनकपुर की व्यवस्था में अलौकिक आवरण से अनाच्छादित रूप का यथातथ्य वर्णन भी मानस में किया गया है ।[7]

---

१. वा० रा० २।१।१९।
२. पौर जानपद श्रेष्ठा नैगमाश्च गणै: सह' वा० रा० २।१४।४।
३. वा० रा० १।७७।२१।
४. 'रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ' मा० ७।२९।
५. मा० ७।२६।३,४,६,७,८, छंद,७।२७,७।२७।१,८,७।२८,७।२८।४,७।
६. (१) 'पुर सोभा संपति कल्याना । निगम सेष सारदा बखाना ।।
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं । उमा तासु गुन नर किमि कहहीं ।।'
मा० ७।८।८,९।
(२) 'नारदादि सनकादि मुनीसा ।........
........। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं ।।'
मा० ७।२६।१,२।
७. मा० १।२११।५,६, १।२१२।१,२,४,५,७, १।२१३, १।२१३।१,३।

प्रासंगिक रूप से लंका नगरी के चित्रण में नगरी की चारुता, समृद्धि एवं सुदृढ़ स्थिति की ओर विशेष संकेत किया गया है।[1] रामायण की अपेक्षाकृत मानस में 'पुर' अथवा 'पुरी' के अतिरिक्त अन्य रूपों का विवरण नहीं मिलता है क्योंकि तुलसी का लक्ष्य केवल राम कथा से सम्बन्धित नगरों का प्रासंगिक चित्रण करना था वृहद् महाकाव्य की भाँति राष्ट्र के अन्य भूमिभागों का विशद् एवं सूक्ष्मांकन करना नहीं।

रामायण तथा मानस में सेना का स्वरूप

राज्य का प्रमुख अंग 'बल' बताया गया है जिनमें 'सैन्य बल' भी प्रधान बल है। भीष्म के अनुसार यह सैन्य बल राज्य के प्रमुख अंग दंड का प्रकाश्य रूप है। इसके आठ अंग माने गये हैं। 'रथारोही, गजारोही, अश्वारोही, नौकारोही, पैदल, विष्टि (भार वाहक), गुप्तचर और उपदेशक।'[2] विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनों काव्य ग्रन्थों में इस अंग का निरूपण किस रूप में किया गया है। युद्ध प्रधान ग्रन्थ होने के कारण राज्य के उक्त अंग का दोनों ग्रन्थों में सम्यग् रूपेण विवेचन मिलता है।

रामायण तथा मानस दोनों काव्य ग्रन्थों में सेना का स्वरूप, उसके प्रकार, संगठन आदि का पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। शुक्र के अनुसार सेना दो प्रकार की कही गई है—(१) स्वगमा, (२) अन्यगमा।

स्वगमा के अन्तर्गत पैदल सेना और अन्यगमा में रथ, घोड़े, हाथी आदि। दोनों ग्रन्थों में ही राम की सेना स्वगमा तथा रावण की सेना में दोनों रूपों का वर्णन है।[3] प्रत्येक सेना का सेनापति उसका मुख्य अध्यक्ष होता था, उस सेना के अधीन छः प्रकार की सेना होती थी। प्रत्येक प्रकार की सेना का अध्यक्ष बलाध्यक्ष कहलाता था तथा इन अध्यक्षों के अधीन अनेक प्रकार की टोलियाँ हुआ करती थीं और उन प्रत्येक टोली का नायक गुल्मपति कहलाता था।

दोनों ग्रन्थों में सेनापति[4], अध्यक्ष[5], गुल्म[6] इत्यादि का उल्लेख किया गया है। सेनानायक एवं सेना के गुणों की ओर भी दृष्टिपात किया गया है।[7] सेना को प्रोत्साहन

---

१. मा० ५।२।१०,११ छन्द।
२. भीष्म का राजधर्म, द्वारा डा० श्याम लाल पाण्डेय, पृष्ठ १३४।
३. शुक्र की राजनीति द्वारा डा० श्याम लाल पाण्डेय, पृष्ठ २०३।
स्वगमान्यगमा चेति द्विधा'। शुक्र नीति ४।८६४।
४. सेनापति (१) वा० रा० ६।१०।१।
(२) मा० ४।१८।६। तथा मा० ६।२८।४,५।
५. अध्यक्ष का यूथप (१) वा० रा० ६।२७।३०।
(२) मा० ६।४२।३ से ६।४३ तक।
६. गुल्म, टोलियाँ (१) वा० रा० ६।२६। सम्पूर्ण।
(२) मा० १।१९१।३। तथा मा० ६।४२।३।
७. (१) वा० रा० ६।२७।१। (२) मा० ४।१८।६।

देने के हेतु सैन्य संचालक के व्यवहार कुशल अनुशासन कर्त्ता होने की नितान्त आवश्यकता हैं। राम[1] तथा सुग्रीव[2] दोनों में ही यह विशिष्टता दर्शाई गई है। राजा सदैव सेना को प्रोत्साहन देता रहता है।[3] प्रलोभन, वाचिक प्रशंसादि से परितुष्ट करता रहता है।[4] सैनिकों के साथ अपनी व्यवहार निपुणता का परिचय देता है।

सेना की संख्या की अपरिमित के विषय में भी दोनों ग्रन्थों में साम्य है।[5] सैन्य संगठन की रूपरेखा का भी व्यापक चित्रण किया गया है। राजनीतिवेत्ताओं के अनुसार सेना का व्यूहाकार रूप में स्थिति भी रामायण में वर्णित है।[6] सेना की सुरक्षा के लिये सैन्य विभाजन किया जाता है। इस व्यवस्था का भी स्वरूप इन ग्रन्थों में देखने को मिलता है।[7] सेना प्रयाण का समय राजनीति शास्त्रों के अनुसार वर्षा ऋतु के पश्चात् का उत्तम माना गया है।[8] रामायण तथा मानस दोनों में वर्षा और शरद् ऋतु के वर्णन के पश्चात् ही युद्ध प्रसंग प्रारम्भ होता है। सेना प्रस्थान के समय सम्यग् विधि का भी परिपालन किया गया है। समयानुसार व्यूह निर्माण कर सैन्य संचालन करना उचित होता है।

रामायण तथा मानस में युद्ध प्रणाली

राजनीति शास्त्रों के अनुसार युद्ध दो प्रकार का कहा गया है। धर्म युद्ध तथा अधर्म युद्ध।[9] रामायण तथा मानस का युद्ध, धर्म युद्ध के अन्तर्गत कहा जायगा क्योंकि 'भीष्म प्रजा रक्षण कार्य, लोक रक्षा कार्य, शिष्ट रक्षा कार्य और अत्याचारों से पीड़ित, शरण में आये हुये लोगों की रक्षा एवम् ऐसे ही अन्य निमित्तों के हेतु युद्ध घोषित करना वैध मानते हैं।'[10] इन ग्रन्थों में धर्म युद्ध के कतिपय नियमों के भी उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

'यो हि मत्तं प्रमत्तं वा भग्नं वा रहितं कृशम्।
हन्यात्स भ्रूणहर लोके त्वद्विधंमदमोहितम्।।'[11]

---

१. (१) वा० रा० ६।१२।७ से ९। (२) मा० ५।३४।२,३।
२. (१) वा० रा० ६।१०।१। (२) मा० ६।४०।२,३।
३. (१) वा० रा० ६।१२।६ से ९। (२) मा० ६।३८।४ से ६।
४. (१) वा० रा० ७।६४।५,६। (२) मा० ७।७।७,८।
५. (१) वा० रा० ६।२६।१४ से ४७ तक।, वा० रा० ६।२८।४,३४,३६,४०। तथा वा० रा० ६।४१।५०। (२) मा० ५।३४।८।
६. वा० रा० ६।७३।२४ से ३० तक।
७. वीर समिति (१) वा० रा० ६।२४।१४ से १९, वा० रा० ६।२४।१।
(२) मा० ६।३८।४,५।
८. शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्याम लाल पाण्डेय पृष्ठ २२५।
९. शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्यामलाल पाण्डेय, पृष्ठ २१७।
१०. भीष्म का राजधर्म, द्वारा डा० श्यामलाल पाण्डेय, पृष्ठ १३७।
११. वा० रा० ४।११।३६।

'अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्रांजलिं शरणागतम् ।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ।'[१]

'राम कहते हैं युद्ध न करने वाले, अदृश्य, हाथ जोड़े हुये विनीत शरणागत, युद्ध से भागने वाले, मत्त को कभी नहीं मारना चाहिये ।

मानस में भी धर्म युद्ध के इन नियमों का उल्लेख इस प्रकार है । राम खरदूषण के दूतों से कहते हैं —'समर बिमुख मैं हतउँ न काहू'[२] तथा 'सन्मुख मरन वीर कै सोभा'[३] धर्म युद्ध के ही कारण हैं । क्योंकि गीता में भी कृष्ण ने यही कहा है—'हत्वा वा भोक्ष्यसे स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।'

इसका भी यही आशय हुआ कि जो समर क्षेत्र में युद्ध करता हुआ मारा जाता है उसको वीर गति प्राप्त होती है । इस मर्यादा का प्रतिष्ठापन तुलसी ने अपने मानस में किया है । युद्ध के अनेक प्रकारों का भी विवरण इनमें मिलता है । युद्ध मुख्य तीन प्रकार के कहे गये हैं ।[४] दैविक, आसुर व मानव ।

दैविक युद्ध वह कहलाता था जिसमें मन्त्र प्रेरित बाणों द्वारा युद्ध किया जाता था । इसे मान्त्रिक युद्ध भी कहा जाता था । राम द्वारा मन्त्र प्रेरित बाण युद्ध इसी के प्रमाण हैं ।[५]

अग्निचूर्ण युक्त नालिक अस्त्रों का प्रयोग आसुर युद्ध कहलाता है ।[६] मानस युद्ध के दोनों प्रकारों शस्त्र युद्ध,[७] बाहुयुद्ध,[८] का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है । इन विधियों के अतिरिक्त शत्रु विनाश हित 'कूट युद्ध' का भी विवरण इनमें मिलता है ।[९] दोनों में वर्णित 'माया युद्ध'[१०] भी इसी प्रकार के निदर्शन हैं ।

युद्ध के समयोचित अनेक उद्दीपन सम्बन्धी उपादानों का भी उल्लेख दोनों काव्य ग्रन्थों में मिलता है । युद्ध के समय परस्पर ललकार,[११] तथा रण वाद्य[१२] उत्साह परिवर्धन में

---

१. वा० रा० ६।८०।३९।
२. मा० ३।१८।१२।   ३. मा० ६।४१।८।
४. शुक्र की राजनीति, द्वारा० डा० श्यामलाल पाण्डेय, पृष्ठ २१४।
५. (१) वा० रा० ६।१०७। सम्पूर्ण सर्ग । (२) मा० ६।६७।३ से ६।६८ .... इत्यादि ।
६. (१) रामायण में अग्नि बाणों का उल्लेख है, नालिक अस्त्रों का आविष्कार उस काल तक नहीं हुआ था ।
(२) गोला चलने का उल्लेख मा० ६।४८। छंद ।
७. (१) वा० रा० ६।३१।२२,२३।   (२) अस्त्र, शस्त्र विवरण मा० ६।३९।७,८।, मा० ५।३४।९।
८. (१) वा० रा० ६।४०।१३ से २६ तक । (२) मा० ६।६४।७ से ९ तक ।
९. (१) वा० रा० ३।३१।४२। तथा मायावी सीता वध वा० रा० ६।८३।८।
(२) कालनेमि प्रसंग मा०
१०. (१) वा० रा० ६।४५।६।
(२) माया युद्ध (कूट युद्ध) वा० रा० ६।३१।४२। (३) माया युद्ध मा० ६।४५।१०, ११,४६, ६।७२।१ से ४, ६।१००। छंद ।
११. (१) वा० रा० ६।८७।९।   (२) मा० ६।४५।६।
१२. (१) वा० रा० ६।९५।३५।   (२) मा० ६।४०।२,३। तथा मा० ६।३८।१०।

सहायक होते हैं। मदिरा भी उद्वेगकारिणी होने के नाते उद्दीपन का ही कार्य करती है परन्तु इसका प्रभाव तामसी होता है अतएव असुर पक्ष में ही युद्ध प्रयाण के समय इसका प्रयोग दर्शाया गया है। मानस में 'राम प्रताप'[1] तथा उनकी 'जय जयकार'[2] ही प्रमुख उद्दीपन का कार्य करती है। भक्त तुलसी युद्ध नीति के प्रमुख संबलों एवम् उपादानों में अपने सर्व स्वराम प्रताप का किस प्रकार विस्मरण कर सकते हैं। युद्ध काल में गुप्तचरों का अत्यधिक महत्व होता है।[3]

चतुर राजा दूतों द्वारा वैरी के आचरणों को जानकर थोड़े ही यत्न से युद्ध में वैरी को भगा देते हैं।

राम,[4] रावण[5] दोनों ही पक्षों में गुप्तचर विभाग सुदृढ़ एवम् सुचारु रूप में सुव्यवस्थित था जो शत्रु के बलाबल का ज्ञान यथा समय पर कराया करता था। यहाँ तक कि साम्राज्ञी सीता के पास भी उनका निजी गुप्तचर विभाग बन गया था जो उन्हें राम एवम् रावण पक्ष की कार्यवाहियों को अवगत कराया करता था।[6] रामायण में मानस की अपेक्षाकृत राम के गुप्तचर विभाग का विवरण संक्षिप्त है क्योंकि तुलसी के राजा राम रण-धीर योद्धा ही नहीं अपितु सर्वान्तर्यामी हैं। 'कृपानिधान रामु सब जाना' उनका स्वरूप है। अन्य वाह्य साधन तो केवल निमित्त मात्र ही हैं।

इन गुप्तचरों एवम् दूतों के सम्बन्ध में भी राजनियमों का पालन दोनों ग्रन्थों में दर्शाया गया है। 'दूत' अवध्य होता है। अतएव उसके लिये वध 'दंड' की अपेक्षा अन्य दंड निर्धारित किये गये हैं जिनका क्रियात्मक रूप भी दोनों में उल्लिखित है।[7] विपक्षी के गुप्तचर दूत को अपने सैन्य व्यूह में आया हुआ देख विशेष सतर्कता का व्यवहार करना अपेक्षित होता है। अतएव रामायण में राम ने सुग्रीव से शुक नामक दूत को तब मुक्त करने का आदेश दिया जब कि सेना समुचित स्थानों पर स्थापित कर दी गई।[8] मानस में इतनी सतर्कता नहीं व्यवहृत हुई है उसका भी पूर्वोक्त कारण ही है।

राजनीति शास्त्रों की ही भांति 'षाड्गुण्य मंत्र'[9] का महत्व भी इनमें निर्दिष्ट है। रामायण में राम द्वारा वध किये जाने पर महातेजस्वी कबन्ध हंसयुक्त विमानासीन होकर

---

१. मा० ६।३८।६ से ८। २. मा० ६।४०।७।, मा० ६।३८।८।
३. वा० रा० ६।२९।२२। ४. वा० रा० ६।३।७ से २८, वा० रा० ६।१९।७।, वा० रा० ६।३६।७।
५. वा० रा० ६।२०।१ से ७।, ६।२०,९। ६. वा० रा० ६।३४।११ से २६ तक।
७. (१) वा० रा० ६।२०।१८। (२) मा० ५।२३।७ से ९ तक।
८. वा० रा० ६।२४।२४।
९. 'संधि च विग्रहं चैव यानमासनमेव च
द्वैधी भवं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।'
मानव धर्म शास्त्र, श्लोक १६०, अध्याय ७।
(शुक्र की राजनीति, द्वारा डा० श्याम लाल पांडेय, पृष्ठ १११)

स्वर्गलोक को जाते समय राम से इस षाड्गुण्य मंत्र का परिचय देता है[1] और तदनुसार राम को 'सन्धि' मंत्र के अनुसार मित्र बनाने के लिये परामर्श देता है। 'सन्धि' के अनेक प्रकार नीतिशास्त्रों में वर्णित हैं इनमें से उसके कुछ रूप ही उल्लिखित हैं।[2]

राजा के लिये उचित है कि वह बढ़े हुये और समान शत्रुओं से सन्धि तथा छोटे से युद्ध करे पर शत्रु को तुच्छ न समझे। सो मुझे हे रावण ! राम के साथ तुम्हारी सन्धि अच्छी लगती है। मानस में इस प्रकार के सन्धि प्रस्तावों का विवरण तो है परन्तु उनको शरणागत भक्ति का स्निग्धावरणों से आवृत कर दिया गया है।[3] राम और सुग्रीव की मैत्री भी सन्धि का एक प्रकार है जिसके अनुसार राम और सुग्रीव महद् एवम् अद्वैध्य मित्र[4] हुये। सन्धि के पश्चात् द्वितीय प्रमुख तत्व 'विग्रह' वह क्रिया है जिसके द्वारा शत्रु वश में किया जाता है। 'विग्रह' करने का आश्रय तभी लिया जाता है जब अपना पक्ष सबल माना जाता है। राम का पक्ष तो सबल था ही, रावण का शक्ति सामर्थ्य भी कुछ कम न था। विग्रह की विभिन्न प्रणालियों का उल्लेख किया जा चुका है।

'यान' एक राजा का दूसरे पर आक्रमण को 'यान' कहते हैं। 'यान' की मंत्रणाएँ रामायण[5] तथा मानस[6] दोनों में पर्याप्त हैं। ऐसा करते समय स्वराज्य की समुचित रक्षा का प्रबन्ध[7] तथा आक्रमण की व्यवस्था[8] एवम् सैन्य संगठन दोनों पर सम्यक् विचार पूर्व ही कर लेना पड़ता है।

किसी सुरक्षित स्थान पर अपनी रक्षा और शत्रु नाश की भावना से बैठने को 'आसन' कहते हैं। सुबेल पर्वत पर आसीन राम की यह स्थिति 'आसन' का ही द्योतक है।[9] अपने शत्रु या शक्तिशाली राजा को आत्मसमर्पण करना 'संश्रय' कहलाता है। इसका उल्लेख इन दोनों ग्रन्थों में नहीं है। यद्यपि विभीषण की शरणागति को भी कुछ लोग 'संश्रय' का ही उदाहरण बताते हैं। एक राजा के साथ सन्धि कर दूसरे के साथ विग्रह करना 'द्वैधी भाव' कहलाता है। सुग्रीव के साथ मैत्री और उस मित्रता का रावण के साथ विग्रह में उपयोग भी 'द्वैधी भाव' है जो दोनों में समान् रूपेण वर्णित है।

---

१. 'राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते' वा० रा० ४।७३।८।
२. वा० रा० ४।७३।१०,११।
३. मा० ६।१३।८, ६।१९।७,८, ६।२०।, मा० ६।४८।१।
४. 'जो महान् सेना युक्त मित्र राजा होता है वह महद् मित्र कहलाता है। जिनका परस्पर एक ही स्वार्थ सम्बन्ध हो, जो उपकारी और विकारहीन हो और आपत्ति में भी दूर न होने वाला हो ऐसा मित्र अद्वैध्य मित्र कहलाता है।
(कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, द्वारा डा० श्याम लाल पाँडेय, पृष्ठ २२८)
५. वा० रा० ६।४।१५ से २१ तक।
६. 'करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा।' मा० ६।३८।२ से ४।
७. किष्किन्धा का प्रबन्ध वा० रा० ६।४।१४।
८. चतुर्विक् यान मा० ६।३८।२,१०। तथा मा० ६।४८।८,९।
९. (१) वा० रा० ६।३८।३ से ६।४०।६ तक। (२) मा० ६।१०।१ से ६।११। तक।

रामायण तथा मानस में राजनीति के प्रमुख उपाय

षाड्गुण्य मंत्रों के समान ही साम, दाम, दंड, भेद, इन प्रमुख राजनीति के साधनों का भी महत्व अत्यधिक है।[1]

'हे राक्षस श्रेष्ठ ! जो पुरुष दाम, साम, भेद, पराक्रम (दण्ड), नीति और अनीति, धर्म, अर्थ, काम इन सबका सेवन मंत्रियों की सम्मति से करता है वह दुःख नहीं पाता।'

मानस में भी इनका उल्लेख निम्नांकित किया गया है।

'साम दाम अरू दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।'

'नीति धर्म के चरन सुहाए।............[2]'

सामादि चारों उपायों का व्यवहृत रूप भी दोनों में यथास्थान मिलता है। सुग्रीव के प्रति 'साम', विभीषण के प्रति 'दाम', बालि के प्रति 'भेद' तथा रावण के प्रति 'दंड' तो इनके प्रत्यक्ष निदर्शन हैं ही।

रामायण तथा मानस में राज्य व्यवस्था का रूप

इन ग्रन्थों में कोशल, किष्किन्धा तथा लंका तीन प्रमुख वर्णित राज्य हैं। अतएव तीनों की राज्य व्यवस्था की रूपरेखा पर भी व्यापकता से चित्रण किया गया है। कथानक में प्रमुख कोशल ही है अतएव उसका दिग्दर्शन कराना ही अधिक समीचीन होगा। दोनों काव्य ग्रन्थों में इस रूप पर व्यापक प्रकाश डाला गया है।[3]

तुलसी ने भी सुराज्य का स्वरूप भी अत्यन्त हृदयग्र ही चित्रित किया है जिसमें अलौकिक तथा नैतिक पक्ष विशेष प्रबल है।[4]

———

१. वा० रा० ६।६३।११,१२। तथा वा० रा० ५।३७।१७।
२. मा० ६।३७।९,१०।
३. वा० रा० ६।१२८।९८ स १०१, १०३ से १०४ तक।
४. मा० ७।१९।७ से ७।२१, ७।२१।६ से ७।२२ तक।

सप्तम परिच्छेद

रामायण तथा मानस में काव्य कला

वाल्मीकि रामायण एवं मानस दोनों ही विश्व विश्रुत काव्य ग्रन्थ हैं। दोनों में ही कलात्मक तत्वों का भी समावेश सम्यक् रूपेण मिलता है। यद्यपि वाल्मीकि रामायण संस्कृत का विशाल महाकाव्य है तथा मानस अवधी भाषा का प्रवन्ध काव्य परन्तु मूल तत्व दोनों में ही विद्यमान है। दोनों काव्य ग्रन्थों में कलात्मक विवेचन करने के पूर्व कला का स्वरूप अथवा कला का महत्व ज्ञान अनिवार्य है। साहित्य के अंगों एवं उपांगों के सम्यक् विवेचक डा० श्याम सुन्दर दास का कथन है— 'यद्यपि अभिव्यंजना को ही 'कला' का नाम दिया गया है तथापि सम्पूर्ण अभिव्यंजना कला नहीं है। ....कला का सम्बन्ध नियमों से नहीं है, वह तो रूप की अभिव्यक्ति मात्र है। वाह्य जगत् की भिन्न-भिन्न वस्तुओं का एक-एक वस्तु का जैसा प्रतिबिम्ब मानस मुकुर पर पड़ता है कला का सीधा सम्बन्ध उसी से है। वह सदैव व्यष्टि से संपर्कित रहती है। ....सारांश यह कि मनुष्य की भावनाओं का जहाँ तक विस्तार है वह सब कला का विषय है और यह तो विदित ही है कि मानव भावनाओं का विस्तार विराट् और प्रायः सीमारहित है।' (साहित्यालोचन)

'कला एक अखंड अभिव्यक्ति है। अतः उसको खंडित नहीं किया जा सकता। वह तो वस्तु जगत् के भिन्न-भिन्न प्रभावों को मानव मस्तिष्क में मूर्त या अभिव्यक्ति होने को ही कला मानता है। अतः इस दृष्टि से कला एक नैसर्गिक विधान है। उसका विभाग नहीं किया जा सकता। परन्तु जब हम भिन्न-भिन्न कला सृष्टियों पर विचार करते हैं, कलाओं के उस मूर्त रूप पर दृष्टि डालते हैं जो कभी किसी सुगठित मूर्ति और कभी किसी मनोहर काव्य के रूप में हमारे इन्द्रिय गोचर होता है तब हम कलाओं की भिन्नता के दर्शन करते हैं। 'इस दृष्टि से कला के दो विभाग होते हैं........एक उपयोगी कला दूसरा ललित कला।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की इस आदि काव्य रचना में हमें कवि के सच्चे रूप की ही नहीं अपितु महाकाव्य की झाँकी भी देखने को मिलती है। श्री बलदेव उपाध्याय के शब्दों में—'कवि और काव्य के विशुद्ध रूप की कसौटी है आदि कवि का परम पावन, माननीय तथा मननीय आदि काव्य रामायण। कवि का पद ऋषि के समान है। ऋषि का भी अर्थ है दृष्टा। वस्तुओं के विचित्र भाव, धर्म तथा तत्व को भली भाँति अवगत करने वाला व्यक्ति ही 'ऋषि' के महनीय पद का वाच्य है। ....कवि की कल्पना में 'दर्शन'

के साथ 'वर्णना' का भी मनोरम सामञ्जस्य है और इस कल्पना के जनक स्वयं महर्षि वाल्मीकि ही हैं।'[1]

'आदि कवि का यह समग्र काव्य ही कविता के सच्च रूप को प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का एक विराट् भव्य प्रासाद है, परन्तु उसके वाह्य आवरणों में उसका विशुद्ध रसमय हृदय भली भाँति झलक रहा है, इतने स्पष्ट रूप में कि उसकी सत्ता का परिचय हमें पद-पद पर प्राप्त होता है। रामायण का हृदय है रस पेशल वर्णन और इस वर्णन में सर्वत्र विद्यमान है समग्र काव्यगत व्यापक औचित्य। महाकाव्य का प्रथम तथा भव्य निदर्शन है, यही वाल्मीकीय रामायण।

डा० राजपति दीक्षित भी उनकी काव्य प्रतिभा की सराहना करते हुये लिखते हैं — 'उन्होंने ऐसा महाकाव्य प्रस्तुत किया जिसमें प्रबन्ध पटुता की सर्वांगीण कला का पूर्ण परिपाक हुआ और जो हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों का आदर्श तथा शिरोमणि बना।.......[1] 'मानस' महाकाव्य के प्राय: सभी लक्षणों से सम्पन्न है। गोस्वामी जी ने इस महाकाव्य में ऐसी विशेषताएँ भी सन्निविष्ट की हैं जो उनके जीवनोन्नायक व्यक्तित्व, अलौकिक प्रतिभा एवं मानवीय उच्च आदर्शों में अखंड आस्था के रुचिर परिणाम स्वरूप हैं।'[2]

शास्त्रीय दृष्टि से दोनों ग्रन्थों की समीक्षा

महाकाव्य के लक्षणानुसार दोनों काव्य ग्रन्थों में काव्यकला की विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। प्राचीन दृष्टिकोण के आधार पर—'सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।' यह उसका प्रथम लक्षण माना गया है। रामायण में तो 'सर्गबद्ध' कांड है ही, मानस के सप्त सोपान भी इसी शैली के प्रतिरूप हैं।

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्'[3] के अनुसार रामायण के आमुख भाग में 'वस्तुनिर्देश' किया गया है जब कि मानस में 'देवनमस्कार' से ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है। इस अन्तर का कारण भी स्पष्ट है कि आदि कवि रामचरित नायक की 'कथा' को अपना प्रमुख लक्ष्य मानते हैं जब कि भक्त तुलसी मर्यादानुसार देवों का आवाहन कर 'प्रभु' का प्रतिपादन करना विशेष उपयुक्त मानकर 'वाणी विनायकादि' की वन्दना से अपने काव्य का श्री गणेश करते हैं। 'इतिहास कथाद्भतमितरद्वा सदाश्रयम्'[4] का तो कोई तुलनात्मक प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि दोनों ही काव्यों के कथानक एक ही लोकप्रिय कथा पर आधारित हैं।

'चतुर्वर्गफलायेत्तं'[5] लक्षणानुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि चारों मानव लक्ष्यों का

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ७६।
२. तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ३८२।
३. तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ३९४।
४. काव्यादर्श १।१४।
५. काव्यादर्श १।१५।

उल्लेख दोनों में ही सहज प्राप्य है उक्त लक्षण की पुनरावृत्ति करना यहाँ पर उचित न होगा क्योंकि इस तत्व का सम्यग् विवेचन 'विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण' करते समय किया जा चुका है। 'चतुरोदात्तनायकम्'[1] का गुण तो दोनों काव्यों का लक्ष्य ही है। नायक राम का चरित्र उनके उदात्त गुणों का ही परिचायक है। 'नगरार्णव शैलर्तु चन्द्रार्कोदय वर्णनैः'[2] के अनुसार महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन होता है। उक्त लक्षणों में 'नगर' का चित्रण राजनीतिक दृष्टिकोण के विवेचनान्तर्गत किया जा चुका है। अतएव इसके अतिरिक्त यहाँ प्रकृति चित्रण का विश्लेषण करना ही समाचीन होगा।

रामायण तथा मानस में प्रकृति चित्रण

रामायण के अन्तर्गत प्रकृति वर्णन का व्यापक विस्तार मिलता है। आदि कवि ने प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से चित्रण किया है। प्रकृति प्रांगण में तपोनिरत महर्षि के लिये नितान्त स्वाभाविक था कि वे स्वानुभूति के आधार पर सरल एवं स्पष्ट चित्रांकन कर सकते। अतएव उन्होंने मानव के समकक्ष ही प्रकृति के उन्मुक्त रूप का विवरणात्मक ढंग से चित्रण किया है। अन्य कवियों की भाँति प्रकृति को मानवीय दृष्टि से ही नहीं देखा। रामायण के अधिकांश प्रसंगों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाल्मीकि ने प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण अधिक किया है। प्रकृति के अनेक मनोरम रूपों का विवरण हमें रामायण में मिलता है। जिनमें प्रमुख रूप हैं उपवन, वन, पर्वत, सरिता, सर, सागर, ऋतु, काल, दिन, रात्रि इत्यादि। उक्त सभी रूपों का व्यापक चित्रण दर्शनीय है।

लंका में उपवन का सांगोपांग विवरण दिया गया है[3] जिनमें अनेक जाति के वृक्ष कर्णिकार, खजूर, प्रियाल, कुटज, केतकी, नीपादि का उल्लेख मिलता है। साल, अशोक, चम्पक तथा आमादि वृक्षों की नामावली भी दी गई है। पुष्पित, पल्लवित वृक्षों पर कोकिलादि का कलरव भी वहाँ प्रतिध्वनित हो रहा था। उस उपवन में अनेक बावलियाँ उसकी शोभा का परिवर्धन कर रहीं थीं जिनमें मणिजटित सोपान थे। हंस, सारसादि मधुर ध्वनि कर रहे थे। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित उस अशोक वाटिका की रमणीयता देखते ही बनती है जिसे कि इन्द्र के नन्दन वन तथा कुबेर के 'चैत्ररथ' से भी अधिक सुन्दरतर बताया है। इसका चित्रात्मक वर्णन कवि की सजल, सरस एवं विस्तृत सूक्ष्म कल्पना का परिचायक है।

रामायण में कथा प्रसंग के अनुकूल पृष्ठभूमि वनस्थली का सजीव चित्रण उपवन से भी अधिक परिमाण में मिलता है। राम, वन की भयानकता का आभास[4] कराते हुये सीता

---

१. काव्यादर्श १।१५।
२. काव्यादर्श १।१६।
३. वा० रा० ५।१४। सर्ग।
४. वा० रा० २।२८।२९।

के वन चलने के आग्रह का निषेध करते हैं। कौशल्या वन्य प्रकृति का अप्रत्यक्ष ढंग से उल्लेख करती हुई प्रकृति द्वारा ही राम की सुरक्षा की मंगल कामना करती हैं। उक्त अवतरण में प्रकृति के भयानक स्वरूप का भी शब्द चित्र मिलता है।[1]

उक्त अनुमानित विवरणों के अतिरिक्त रामायण में वन के वातावरण के संश्लिष्ट चित्र भी अनेक प्रसंगों में चित्रित किये गये हैं। चित्रकूट के अरण्यारण्य का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। पर्वत प्रदेश की सुरम्य भूमि का सरस एवम् सूक्ष्मांकन मिलता है।[2]

अयोध्या से विश्वामित्र के साथ प्रयाण करते समय[3] तथा भरत की सेना द्वारा आक्रान्त वन का भीषण रूप भी[4] कवि ने अंकित किया है।

दण्डकारण्य का वर्णन हेमन्त ऋतु के अनुकूल ही नितान्त संगत रूपेण किया गया है।[5] पंचवटी से प्रस्थान करने के पश्चात् 'क्रौञ्च वन' का विवरण मिलता है जो कि मेघ घटावत् गहन था परन्तु यत्र तत्र विकसित पुष्पों के कारण तथा पक्षि समूह के कलरव तथा अनेक वन्य जन्तुओं की प्रतिध्वनियों के कारण वह हँसता सा प्रतीत होता था।[6] तदनन्तर कबंध द्वारा वर्णित पम्पा सरोवर की ओर जाने वाले मार्ग के वन का प्रसंग उल्लिखित है जिसका स्वरूप भी शोभनीय ही चित्रित है। इस प्रकार निर्दिष्ट पथ पर बढ़ते-बढ़ते राम को गतंम वन का परिचय शबरी से प्राप्त होता है।[7] किष्किन्धा की मार्गस्थ वन्य प्रकृति का भी अत्यन्त मनोरम चित्रण किया गया है जिसमें हरिण मृदुल अंकुर चर रहे थे, श्वेत दाँत वाले मत्त हाथी विचरण कर रहे थे। इसी प्रकार अन्य विशालकाय अनेक पशुओं द्वारा वह वन आकीर्ण था।[8]

उक्त संश्लिष्ट, शब्द चित्रात्मक विवरणों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि आदि कवि वन प्रकृति के अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टा थे। अतएव उन्होंने भौगोलिक तथा स्वाभाविकता दोनों आधार-शिलाओं पर आधारित अरण्य-चित्रण अत्यन्त सजीव एवम् सफलता पूर्वक किया है।

वन्य जीवन के महत्वपूर्ण अंग, आश्रम का, महर्षि ने निजानुभूति की प्रेरणा से अत्यन्त सजीव एवम् व्यापक चित्रण भी किया है। जिसमें तत्कालीन स्थिति भी प्रतिबिम्बित

---

१. वा० रा० २।२५। सर्ग।
२. वा० रा० ३।८।१३,१५।
३. वा० रा० १।२४।१३,१६।
४. वा० रा० २।६०।१५,१६ २०।
५. वा० रा० २।९३।१,१४।
६. वा० रा० ३।६८।६,१०।
७. वा० रा० ३।७३।२,११,७५।२२।
८. वा० रा० ४।१३।५,११।

होती है। वशिष्ठ,[१] राम,[२] अगस्त्य[३] तथा अन्य तपस्वियों के आश्रमों[४] का सूक्ष्मातिसूक्ष्म सांगोपांग विवरण देते हुये आदि कवि ने उनका सफल अंकन किया है।

उक्त सजीव चित्रात्मक विवरणों के अतिरिक्त आश्रम का भावात्मक एवम् मानवीय संवेदनात्मक चित्रण भी वाल्मीकि ने किया है। सीताहरण के पश्चात् राम की पर्णशाला का शोकाभिभूत वर्णन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।[५]

वनस्थली के विवरणों के प्रसंग में तत् स्थानीय पर्वतीय प्रदेशों का भी प्रसंगवश चित्रण करना अनिवार्य था अतएव कथा के क्रमानुसार चित्रकूट,[६] ऋष्यमूक,[७] महेन्द्र,[८] मैनाक,[९] अरिष्ट,[१०] सुबेल,[११] एवम् संजीवनी युक्त पर्वत,[१२] नामक पर्वतों का भी चित्रण आदि कवि ने अत्यन्त संश्लिष्ट रीति से किया है। उक्त विवरणों में नयनाभिरामता, चित्रात्मकता, सूक्ष्मांकन, सजीवता, मार्मिकता तथा मानवीय जीवन से अनुप्राणित वर्णनों का समावेश है। भूमि प्रदेशों के साथ-साथ जलस्थानों के भी व्यापक प्रसंग रामायण में मिलते हैं। सरिता, सर, सागर, के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण इसमें प्राप्य हैं। सरिताओं में, गंगावतरण का समस्त प्रसंग ही वर्णित है,[१३] चित्रकूट की मन्दाकिनी नदी के रमणीय घाटों, उसमें स्नानकर्ता ऋषियों तथा उसके जल प्रवाह की उज्ज्वलता आदि का सुखमय चित्रण किया गया है।[१४] इन सुरम्य वर्णनों के विपरीत वन प्रदेश में प्राप्त दुर्गम नदियों के भीषण दृश्य भी अंकित किये गये हैं। 'यमुना' का वर्णन उनमें से एक है।[१५] इसी प्रकार पंचवटी में

---

१. वा० रा० १।५१।२३ से २५।
२. वा० रा० २।१००।६,७,१८,१९।
३. वा० रा० ३।११।८०,८१।
४. वा० रा० ३।१।१ से ७ तक।
५. वा० रा० ३ ६१।४ से ७ तक।
६. (१) वा० रा० १।५४।२८ से ३० तक।
   (२) चित्रकूट वर्णन वा० रा० २।५४।३९, ४३।
   (३) चित्रकूट वर्णन वा० रा० २।९२।११,१२।
   (४) चित्रकूट वर्णन वा० रा० २।९३।९। से ११।
७. (१) ऋष्यमक वा० रा० ३।७४।३०,३२।
८. (२) ऋष्यमूक वर्णन वा० रा० ३।७४।३८ से ४१ तक।
९. महेन्द्र वा० रा० ५।१।५ से ७ तक।
१०. मैनाक पर्वत वा० रा० ५।१।९४,९६,१००,१०१।
११. अरिष्ट पर्वत वा० रा० ५।५६।२६ से ३६ तक।
१२. वा० रा० ६।३। वा० रा० ६।७४।
१३. गंगावतरण प्रसंग वा० रा० १।३५।१५।
१४. वा० रा० २।४३।२१ स २५ तक।
१५. वा० रा० २।५५।५,६।

गोदावरी की शोभा,[१] लंका में अमुक नदी का मानिनी नायिका सम चित्रण,[२] उत्तर कांड में नर्मदा नदी का भयभीत ललनावत वर्णन[३] कवि की व्यापक एवम् भावात्मक दृष्टि की ओर लक्षित कराते हुये उनकी प्रकृति प्रियता का प्रमाण देते हैं। उक्त प्रमुख नदियों के अतिरिक्त कथा प्रसंग में अनेक अन्य नदियों का भी उल्लेख किया गया है। जैसे वेदश्रुति, स्यन्दिका, गोमती, तमसा, शोण, शरदंड, ह्लादिनी, शतद्रू तथा इक्क्षुमती इत्यादि। सरोवरों में, मांडकर्णि ऋषि द्वारा निर्मित पंचाप्सर का हृदयग्राही वर्णन मिलता है जिसमें उसकी रमणीयता के साथ-साथ सीता हरण के कारण उसका संवेदनात्मक रूप भी किया गया है।[४] तदनन्तर किन्नरादि द्वारा सेवित, हंसादि से निनादित तथा अरविन्दादि से सुशोभित तथा सुन्दर उपवनों से आवृत पम्पा सरोवर का चित्रात्मक उल्लेख मिलता है।[५]

लंका में भी जलाशयों के प्रसंग राजाओं के क्रीड़ास्थल का रूप दर्शाते हैं।[६] सर के समान सागर का भी चित्रात्मक विवरण रामायण में कई स्थानों पर मिलता है। हनुमान् के समुद्रोल्लंघन करते समय, उनके तीव्र वेग से महार्णव की तरंगों का उद्वेलन तथा उससे समुद्र में स्थित तिमि, ग्राह, मछली, कूर्म इत्यादि का दर्शन सागर की क्षुब्धावस्था का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।[७] इसके अतिरिक्त सेतु बन्धन के पूर्व समुद्र तट पर स्थित सेना भी समुद्र की भीषण दुर्गमता का अवलोकन करती है। उक्त प्रसंग में समुद्र का उद्वेलन, उसकी भयानकता, उसका फेन, चन्द्र दर्शन से उसकी उत्ताल तरंगों का उन्नयन, घड़ियालादि के कारण जल का संघर्ष तथा रत्नों एवम् जल जन्तुओं से युक्त शब्द चित्र सागर का साक्षात् रूप उरेह देता है।[८]

प्रकृति के रूप चित्रण के साथ-साथ काल एवम् ऋतुओं का भी वर्णन महाकाव्य के प्रकृति चित्रण का ही एक अंग होता है। इस अंग का भी रामायण में व्यापक उल्लेख किया गया है। अहर्निश के सभी कालों में सूर्योदय,[९] चन्द्रोदय[१०], दिवा रात्रि के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त सन्ध्याकाल[११] तथा रात्रि[१२] का विवरण भी समय के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करता है। उक्त सभी रूपों का चित्रण रामायण में विद्यमान है। ऋतुओं का क्रमिक वर्णन प्रकृति चित्रण का पूर्णांग प्रस्तुत करता है। प्रत्येक ऋतु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण कवि के ऋतु

---

१. वा० रा० २।२८।९१, ३।५५।५,६।
२. वा० रा० ५।१४।२६ से ३१ तक। ३. वा० रा० ७।३१।२२,२३,३०।
४. वा० रा० ३।११।७, ३।५२।३५।
५. वा० रा० ३।७३। ११,१३,१७,२१। ६. वा० रा० ५।७५।१९,२४। वा० रा० ६।२।१२,१३।
७. वा० रा० ५।१।६९,७२। ८. वा० रा० ६।४।११४,११८,१२४।
९. वा० रा० २।५२।१,२।, वा० रा० २।५४।१। वा० रा० ५।१८।१ से ३।
१०. (उद्दीपन) वा० रा० ५।२।४६ से ५६, ५।५।१ से ७, ४।२७।३२।
११. वा० रा० १।३४।१६,१७। १२. वा० रा० २।११९।८,९।

सुलभ व्यापारों एवम् तत्वों के ज्ञान को प्रदर्शित करता है। राम, सीता तथा लक्ष्मण को चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते समय वसन्त ऋतु की शोभा का अवलोकन कराते हैं।[1]

पम्पा सरोवर के समीप भी वसंत की शोभा अत्यन्त उल्लासमयी वर्णित है। परन्तु इस वसंत वर्णन में पूर्वोक्त प्रसंग से अधिक विशिष्टता यह है कि इसमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है तथा सीता विरह के कारण राम के लिये यह ऋतु उद्दीपन रूप में भी प्रस्तुत हुई है।[2] ऋष्यमूक पर्वत पर राम के स्थित होने के पश्चात् वर्षा ऋतु का भी वर्णन किया गया है[3] जिसमें ग्रीष्म ऋतु की विषमताओं का संकेत[4] उनके शमन में ही कर दिया गया है। वर्षा वर्णन में चित्रात्मकता, स्वाभाविकता तथा सजीवता का समावेश है। उस संश्लिष्ट विस्तृत चित्रण में मानवीय जीवन का भी आरोप मिलता है। समस्त प्रकृति वर्षा की हरीतिमा से उल्लसित एवम् तरंगित सी दिखाई पड़ती है। परन्तु वह वर्षा का वातावरण भी विरही राम को उद्दीप्त करता रहता है।[5] अतएव इस वर्षा वर्णन को हम स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण की श्रेणी में रखते हुये कथा प्रसंग की अनुकूलता में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत स्थान देंगे।

दशरथ के मृगया प्रसंग में भी वर्षा वर्णन का स्वतन्त्र रूप अंकित है।[6] किष्किन्धा में राम के ऋष्यमूक पर्वत पर ही निवास करते समय शुभ्र ज्योत्सनामयी शरद् ऋतु का भी सरस एवम् चित्रात्मक वर्णन किया गया है।[7] हेमन्त ऋतु की शीत का यथार्थ अंकन राम ने गोदावरी नदी के तट पर किया है जिसमें शस्य श्यामला पृथ्वी, हिमाच्छादित हिमालय, हिमध्वस्त वनस्थली, शीतोत्पादक पवन तथा नीहाराच्छादित वन राजि आदि का सजीव चित्रण मिलता है।[8]

मानस में प्रकृति चित्रण

रामायण की अपेक्षाकृत मानस में प्रकृति चित्रण अत्यन्त संक्षिप्त एवम् प्रासंगिक अनुकूलता से समन्वित है। तुलसी ने प्रकृति का स्वच्छन्द निरीक्षण नहीं किया है। अतएव महर्षि वाल्मीकि की भांति उनके प्राकृतिक चित्रण संश्लिष्ट नहीं हो पाये हैं।

उपवन का प्रसंग 'मानस' में कई स्थलों पर आया है। जनकपुर की पुष्प वाटिका[9], अशोक वाटिका[10], मधुवन[11] तथा अयोध्या के उपवनों[12] का उल्लेख मानस में किया गया

---

१. वा० रा० २।५६।६ से ९ तक।
२. वा० रा० ४।१।५ से १०२ तक।
३. वा० रा० ४।२७।२ से ४।४२।८।५४ तक।
४. वा० रा० ४।२७।७।
५. वा० रा० ४।२७।१४,५९।
६. वा० रा० २।६२।१६,१८।
७. वा० रा० ४।३०।२२,५९।
८. वा० रा० ३।१६।४,५,९,११,१२,१५,२२,२४,२६।
९. मा० १।२२६।३ से ८ तक।
१०. प्रसंग मात्र। मा० ३।२९। तथा मा० ५।१७।३।
११. प्रसंग मात्र। मा० ५।२७।७।
१२. मा० ७।२७।१ से ३।

है जिनमें प्रथम नायक नायिका के पृष्ठ भूमि एवं वातावरण रूप में अंकित है। अशोक वाटिका का चित्रात्मक वर्णन नहीं किया गया केवल प्रासंगिक नामोल्लेख मात्र है, इसी प्रकार मधुवन का भी प्रासंगिक नामोल्लेख मात्र है। अयोध्या की वाटिकाओं का भी अत्यन्त संक्षिप्त विवरण मात्र दिया गया है। उक्त वाटिका वर्णन के स्थलों में कवि परम्परा की सी प्रतीति होती है, मौलिकता का समावेश नहीं।

मानस में उपवनों से भी कम विवरण नवस्थल का मिलता है यद्यपि कथानक का अधिकांश भाग अरण्य से ही सम्बन्धित है परन्तु वन का चित्रात्मक वर्णन तुलसी ने कहीं भी नहीं किया है। केवल नाम परिगणन सा किया है।[1] राम सीता को वन की विपत्तियों का दिग्दर्शन कराते हुये वन का विवरण देते हैं[2] जिससे वन्य प्रकृति का भयावह रूप प्रस्तुत होता है। तद्विपरीत वन का मनोहारी रूप भी चित्रित किया गया है परन्तु मनोहारिता का श्रेय भी राम की उपस्थिति को है, वन्य भूमि की निसर्ग सुषमा को नहीं।[3] उक्त विवरण भी वन श्री राम शोभा में विलीन सी लगती हैं। उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं उभर पाया है।

वन्य प्रकृति के महत्वपूर्ण स्थल 'आश्रमों' का भी परिगणन मात्र ही मानस में किया गया है[4] उनका वर्णनात्मक चित्रण नहीं। पर्वतों में चित्रकूट, प्रवर्षण गिरि, मैनाक, सुबेल, सुमेरु, हिमालय तथा कैलाश का उल्लेख किया गया है। इनमें से चित्रकूट पर्वत का संश्लिष्ट चित्रण किया गया है परन्तु उसमें भी तुलसी की धार्मिक भावना का आवरण छा गया है।[5] प्रवर्षणगिरि[6], मैनाक[7], तथा सुबेल[8] का भी प्रसंगवश नामोल्लेख मात्र ही किया गया है। सुमेरु पर्वत में कागभुसुंडि जी के आश्रम की पृष्ठभूमि वत् प्राकृतिक दृश्य अंकित है। इसमें भी धार्मिक वातावरण की पूर्ण प्रतिच्छाया मिलती है।[9] हिमालय[10] तथा कैलाश[11] पर्वत के प्रसंग भी क्रमशः उमा और शंकर के प्रताप के कारण ही महत्वपूर्ण हो गये हैं। यद्यपि अनेक सरिताओं का प्रसंग मानस में आया है। मंदाकिनी, तमसा, देवसरि, गंगा, सई, जमुना, त्रिवेणी तथा सरयू का उल्लेख किया गया है। जिनमें तमसा[12],

---

१. चित्रकूट का वन, दण्डकारण्य। २. मा० २।६१।४ से २।६२।३ तक।
३. मा० ३।१३।२ से ४।
४. (१) 'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ-जाइ सुख दीन्ह' मा० ३।९।
(२) मा० २।१३२।२,४। (३) मा० ४।११।४०।
५. मा० २।१३२।२ से ४।
६. मा० ४।१२।१ से ४। ७. मा० ५ प्रारम्भिक ९वीं चौ०।
८. मा० ६।१०।१ से ३। ९. मा० ७।५५।७ से ७।५६।
१०. मा० १।६५ से ६५।३ तक। ११. मा० १।१०४।८ से १०५।३।
१२. मा० २।८४।

सई[1], सरयू[2] का तो केवल नाम परिगणनमात्र ही है। गंगा[3] तथा त्रिवेणी[4] का मानवीकरण कर उनको भी तुलसी ने भक्ति रसाप्लावित ही दर्शाया है। वे स्वयं मूर्त रूप होकर क्रमशः सीता और भरत के महत्व से प्रभावित हो गदगद कंठ से मुखरित हो मंगलाकांक्षिणी बन जाती हैं एवम् भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगती हैं।

मानस में सरोवरों का उल्लेख तीन स्थलों पर प्रमुखतः हुआ है। जनकपुर के उद्यान के अन्तर्गत इसका चित्रात्मक वर्णन है[5], किष्किन्धा में पम्पा सरोवर का विवरण दिया गया है परन्तु उस वर्णन में नैतिक एवं दार्शनिक पक्ष का स्तर प्रबल हो गया है और सरोवर सौन्दर्य प्रच्छन्न सा हो गया है।[6]

मानस में सागर के चित्रण भी रामायण की भाँति वर्णनात्मक या चित्रात्मक न होकर भावात्मक[7] तथा मानवीकरण के निदर्शक हैं। सागर भी स्वयं विप्र रूप धारण कर अलौकिक शक्ति के अधिष्ठाता राम के प्रति दयनीय प्रार्थना कर आत्मसमर्पण ही करता है[8] क्योंकि गोस्वामी जी की धारणा का लक्ष्य ही भिन्न है, वहाँ तो—

'जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू।'[9]

का आदर्श है इसलिये जड़ चेतन सभी को राम के चरणों में प्रणत कराना ही तुलसी का ध्येय रहा, जिसे मानस में उन्होंने व्यक्त किया है।

काल के विविध रूपों सूर्योदय, चन्द्रोदय तथा संध्यादि का चित्रण भी मानस में किया गया है। परन्तु इन प्रसंगों में भी काल वर्णन कवि का लक्ष्य नहीं रहा है प्रत्युत् इन विवरणों के माध्यम से कवि ने आलंकारिक रूपेण राम के प्रताप का ही वर्णन किया है। सूर्योदय का प्रसंग इनमें से एक है।[10]

चन्द्रोदय का प्रसंग दो स्थलों पर आया है। प्रथमतः उद्दीपन के रूप में उसका आलंकारिक ढंग से स्वरूप चित्रण हुआ है। सौन्दर्यांकन की दृष्टि से नहीं। सीता के सौन्दर्य के साथ उसका तुलनात्मक विवेचन कर प्रतीप अलंकार द्वारा उसकी हीनता का चित्रण किया गया है।[11] द्वितीय प्रसंग में सुबेल पर्वत पर आसीन चन्द्र की ओर अनेक पात्रों की ऊहात्मक कल्पनाओं का प्रदर्शन कराया गया है जिसमें कवि ने प्रत्येक को मनोगत विचारधाराओं का निदर्शन अत्यन्त सतर्कता से किया है।[12] अतएव इसी 'चन्द्रोदय' प्रसंग में भी उसके स्वाभाविक चित्रण की अपेक्षा कल्पनाएँ विशेष प्रधान हो गई हैं। सन्ध्या' का रूपक बद्ध शैली में स्वरूप चित्रण किया गया है।[13]

---

१. मा० २।१८८।१।
२. मा० ७।३।५।
३. मा० २।१०२।४ से १।१०३ तक।
४. मा० २।२०४।७,८।
५. मा० १।२२६।७,८।
६. मा० ३।३८।६ से ३।४० तक।
७. मा० ६।३।३ से ८ तक।
८. मा० ५।५७।६,७ से ५८।८, ५९।१ से ५ तक।
९. मा० २।२१६।१,२।
१०. मा० १।२३७।७, १।२३८।
११. मा० १।२३६।७ से १।२३७।४ तक।
१२. मा० ६।११ से ६।१२ तक।
१३. मा० १।१९४।३ से ७ तक।

मानस के आधार ग्रन्थों का उल्लेख करते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि मानस में वर्षा[1] एवं शरद्[2] ऋतु का वर्णन बहुत कुछ भागवत की शैली के आधार पर किया गया है जिसमें विशुद्ध चित्रण के अतिरिक्त नीति शिक्षा एवं धर्म शिक्षा पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित हुई है। तुलसी के उक्त ऋतु वर्णन प्रकृति के माध्यम से उपदेशात्मक शैली का रूप प्रस्तुत करते हैं तथा उनमें प्रकृति का धर्मप्राण व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया है। सन्तों के गुणों एव लोक सदाचार की ओर लक्ष्य किया गया है। ऋतु वर्णन तथा लोकाचार संकेत दोनों समानान्तर ही मिलते हैं। इन स्थलों पर धर्म सादृश्य, आलंकारिक चित्रण तथा प्रकृतिवर्णन सभी का साथ-साथ उल्लेख किया गया है। तुलसी के मानस के प्रकृति सम्बन्धी स्थलों को अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि—

(१) रामचरित मानस में उन्होंने प्रकृति को गौण रूप दिया है।

(२) प्रकृति का प्रयोग कई प्रकार से हुआ है।

(क) परम्परागत, (ख) कवि प्रसिद्धियों के भीतर से, (ग) भक्ति भावना के साथ, (घ) अलंकारों को सजाने अथवा मूर्तिमत्ता के लिये, (ङ) परिगणनात्मक रूप से, (च) नीति धर्म के विचारों को स्पष्ट करने के लिये।

प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र, मौलिक नवीन उद्‌भावनापूर्ण वर्णन, ग्रामीण चित्र मानवीय भावनाओं का आरोपक आदि बातें हमें रामचरित मानस में नहीं मिलतीं। परन्तु कवि प्रसिद्धियों और परम्पराबद्ध कल्पनाओं के भीतर से रूपक गढ़ने में तुलसी अद्वितीय हैं।'[3]

शास्त्रीय परम्परानुसार महाकाव्य के उक्त लक्षणों के पश्चात् अन्य लक्षण यह निम्नांकित हैं—'मंत्रदूतप्रयाणाजिन नायकाभ्युदयैरपि' मंत्रणा, दूत प्रयाण, युद्ध तथा नायक के अभ्युदयादि के रूप में सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का चित्रण करना भी महाकाव्य का एक प्रधान लक्षण है। यहां पर उक्त लक्षण की विस्तृत व्याख्या एवं तुलनात्मक विवेचन करना पूर्व लिखित परिस्थितियों के अध्याय की पुनरावृत्ति मात्र होगा। अतएव इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख लक्षण के विश्लेषण की ओर अग्रसर होना अधिक समीचीन होगा। 'अलंकृतमसंक्षिप्त रसभावनिरन्तरम्' के अनुसार अलंकार, रस तथा भाव का निरन्तर चित्रण होना महाकाव्य का प्रधान लक्षण है तथा उस काव्य ग्रन्थ का आकार भी विस्तृत होना चाहिये। उक्त कसौटी के आधार पर सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि दोनों महाकाव्यों में अलंकार विवेचना का स्वरूप क्या है।

रामायण में रस योजना

अलंकार शास्त्र काव्यात्मक सौन्दर्य के उत्पादक समस्त उपकरणों का प्रतिपादक शास्त्र है। इसके प्रमुख ६ सम्प्रदाय कहे गये हैं। रामायण में रस, अलंकार, गुण, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य सभी सम्प्रदायों का सम्यक् समावेश मिलता है। आदि काव्य में ही इन सम्प्रदायों का अंकुर दृढ़ता से जम चुका था जिसका निदर्शन समग्र काव्य में किया गया

---

१. मा० ४।१२।८ से ४।१५ तक। २. मा० ४।१५।१ से ४।१७ तक।

३. तुलसी साहित्य की भूमिका पृष्ठ १७१।

है। उक्त सभी रूपों का सन्तुलित रूप सहज एवं स्वाभाविक रूप में मिलता है। रामायण में ये कलात्मक तत्व काव्य में सहज सौन्दर्य, सरसता स्थापित करते हैं। इन तत्वों का यथानुकूल प्रदर्शन ही काव्य की सफलता निर्धारित करता है। रस सम्प्रदाय के मूलभूत सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः' का सम्यक् प्रतिपादन रामायण में किया गया है। क्योंकि काव्य का जीवन रस है और काव्य की आत्मा रस है। रामायण के 'रस' की ओर दृष्टिपात करते हुये ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का कथन उल्लेखनीय है।[1] जैसा कि आदि कवि की रसामृतधारा का पान करते ही उनके शिष्यगण इस रहस्यमय सरस तत्व को पहचान गए—'समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।

सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः।'[2]

संस्कृत साहित्य के इतिहासकार श्री बलदेव उपाध्याय की यह विश्लेषणात्मक उक्ति नितान्त संगत है—'आदि कवि का यह समग्र काव्य ही कविता के सच्चे रूप को प्रकट कर रहा है। वाल्मीकीय रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का एक विराट् भव्य प्रासाद है, परन्तु उसके वाह्य आवरणों में उसका विशुद्ध रसमय हृदय भली भाँति झलक रहा है, इतने स्पष्ट रूप में कि उसकी सत्ता का परिचय हमें पद-पद पर प्राप्त होता है। रामायण का हृदय है, रस पेशल वर्णन और इस वर्णन में सर्वत्र विद्यमान है, समग्र काव्यगत व्यापक औचित्य।' (इस आलंकारिक दृष्टि से भी) 'महाकाव्य का प्रथम तथा भव्य निदर्शन है, यही वाल्मीकि रामायण। रामायण का ही विश्लेषण कर आलंकारिकों ने महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है।[3]

रामायण का रस विवेचन करते समय यह कहना कदापि असंगत न होगा कि 'The work is a supreme example of the definition—'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'—All nine rasas or sentiments from शृंगार to शान्त are finely portrayed in the course of the work.[4]

कुछ आलोचकों का कहना है कि रामायण करुण रस प्रधान काव्य है क्योंकि क्रौंच वध की करुण घटना से इसका प्रारम्भ होता है और सीता के भूमि प्रवेश के हृदय विदारक प्रसंग से अन्त।[5] परन्तु वस्तुतः तथ्य यह नहीं है। सभ्यता के प्रधानस्तम्भ रूप इस काव्य में समग्र जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति की गई है और अपने काव्य में भगवान् राम का चित्रण इसका लक्ष्य न होने के कारण इसमें धार्मिक भावना की प्रबलतम रूप में व्यक्त नहीं हुई है अपितु 'तैः युक्तः श्रूयतां नरः' के अनुसार उत्तम गुणों से युक्त नर चरित्र

---

१. ध्वन्यालोक १।५। २. वा० रा० १।२।४०।
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७७,७८।
४. The Ramayan by Pt. Jawahar Lal Nehru (Indian Inheritance) Page 35.
५. 'रामायणे हि करुणो रस स्वयमादिकविना सूचितः' शोकः श्लोकत्वमागतः इत्येववादिना। निर्व्यूढश्च स एवम् सीतात्यन्त वियोग पर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।' ध्वन्यालोक, उद्योत ४, पृष्ठ २३७।

का चित्रण ही इसका प्रमुख लक्ष्य है। इसमें मानव जीवन से सम्बन्धित अनेक स्थितियों का दिग्दर्शन कराया गया। अतएव जहाँ इसमें एक ओर 'राम रावण युद्ध' के प्रमुख प्रसंग में वीर[१], रौद्र[२], करुण[३], भयानक[४], अद्भुत[५], वीभत्स[६] आदि रसों का प्रबल वेग तरंगित है वहीं दूसरी ओर वनस्थली के शान्त[७] मनोरम तपोवन शान्त रस की प्रतिष्ठा करते हैं। परन्तु जीवन से उपरामता के ये दृश्य निश्चेष्टता की ओर प्रेरित नहीं करते। इसी वनस्थली में रामायण के प्रमुख नायक के संयोग[८] तथा वियोग श्रृंगार[९] के प्रसंग पाठक को रसाभिभूत कर देते हैं तथा आदि कवि की शब्द तूलिका द्वारा चित्रित ये प्रसंग उनकी रसज्ञता का व्यापक परिचय देते हैं तथा रस के सभी तत्वों का दिग्दर्शन कराते हैं।

विस्तार भय से उक्त सभी रसों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण न करके प्रत्येक रस का एक उदाहरण देना ही यहाँ पर्याप्त होगा जिससे कि महर्षि की कलात्मिका प्रतिभा का आभास हो सकता है।

मानस में रस योजना

'काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकार प्रचक्षते।' इस सूत्र के अनुसार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहा गया है। काव्य के दो प्रदान पक्षहोते हैं। (१)आन्तरिक पक्ष (२) वाह्य पक्ष।

रस शास्त्र उसकी आन्तरिक शोभा का परिवर्धन है, भाषा तथा अलंकारादि वाह्य पक्ष के। रस तथा अलंकार दोनों की सुष्ठु योजना मानस के सौन्दर्य को चरम सीमा पर प्रतिष्ठित कर देती है। भक्त तुलसी के व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया को हम मानस के 'रस' युक्त प्रसंगों में भी सर्वत्र प्रतिबिम्बित देखते हैं इसीलिये रामायण की अपेक्षाकृत मानस में विशेषता यह है कि 'मानस भक्ति रस प्रधान काव्य है, अन्य रस इस रस के सहायक एवं पूरक हैं। केवल अयोध्या कांड में ही हम कवि को लौकिक रसों की ओर थोड़ा बहुत उन्मुख पाते हैं। सारे मानस में भक्ति रस के साथ शान्त रस भी व्याप्त है। रस की परिणति शान्ति रस में ही है।''''प्रत्येक कांड में अनेक रस हैं। परन्तु फिर भी कुछ कांडों में कुछ विशेष रस प्रधान हैं। इस दृष्टिकोण से हम कांडों और उनके रसों की एक तालिका इस प्रकार बना सकते हैं।

---

१. (१) वा० रा० १।७५।२९। (२) वा रा० ६।७६।८।
२. (१) वा० रा० १।७५।२९। (२) वा० रा० ६।७६।८।
३. (१) वा० रा० २।४० सर्ग। (२) वा० रा० ६।१०२ सर्ग।
४. (१) वा० रा० ३।२।४ सर्ग। (२) वा० रा० ६।८० सर्ग।
५. (१) वा० रा० ६।८१ सर्ग।
६. वा० रा० ६।१७।१३,१८ सर्ग। ७. वा० रा० ३।५,७,११ सर्ग।
८. वा० रा० २।९६ सर्ग। ९. (१) वा० रा० ३।६१ सर्ग। (२) वा० रा० ४।६ सर्ग।

बाल कांड—वात्सल्य,[१] रौद्र,[२] शृंगार,[३] अद्भुत[४]

अयोध्या कांड—(पूर्वार्द्ध) भयानक,[५] करुण,[६] रौद्र,[७] वात्सल्य[८]

(उत्तरार्द्ध) भक्ति,[९] विरह[१०]

अरण्य कांड—भक्ति,[११] करुण,[१२] वात्सल्य,[१३] शृंगार[१४]

किष्किन्धा कांड—भक्ति,[१५] वीर[१६]

सुन्दर कांड—वीर,[१७] भयानक,[१८] रौद्र,[१९] करुण,[२०] वात्सल्य[२१]

लंका कांड—वीर,[२२] भयानक,[२३] रौद्र,[२४] करुण[२५] वात्सल्य,[२६] वीभत्स[२७]

---

१. संयोग वात्सल्य मा० १।१९७।८, १।१९९।१ से १।२०० तक।
२. परशुराम क्रोध मा० १।२७१।४ से १।२७२, १।२७५।५ तक।
३. संयोग शृंगार मा० १।२२९ से १।२३४ तक।
४. कौशल्या को राम का अद्भुत रूप दर्शन मा० १।२००।१ से १।२०१।४ तक।
५. (१) कैकेयी का भीषण रूप मा० २।२४।६ से छंद तक।
(२) वन के भयानक दृश्य मा० २।६१।४ से २।६२।३ तक।
(३) राम विरह में अयोध्यावासियों का भीषण चित्रण मा० २।८२।५ से ८।
६. राम विरह में अयोध्यावासियों का करुण चित्रण मा० २।८५।२ से ८।
७. भरत के प्रति लक्ष्मण का रोष मा० २।२२७।४ से २।२२८।५ तक।
८ सीता के प्रति जनक का वात्सल्य मा० २।२८५। २ से २।२८६।२ तक।
९. भरत भक्ति मा० २।३२३ से २।३२५।२ तक।
१०. अयोध्यावासियों का विरह मा० २।३२२।
११. सुतीक्ष्ण अगस्त्य प्रसंग मा० ३।९।१ से ३।११।, मा० ३।१२।४ से १३ ३ तक।
१२. सीता का करुण विलाप मा० ३।२८।१ से ५।
१३. जटायु का सीता के प्रति भावार्पण मा० ३।२८।९।
१४. वियोग शृंगार सीता हरण पर राम का करुण रूप मा० ३।२९।६ से १६ तक।
१५. हनुमान्, सुग्रीव का भक्ति प्रदर्शन मा० ४।१।५ से ४।३, ४।६।१३ से २१ तक।
१६. बालि सुग्रीव युद्ध मा० ४।७।१ से ४।८।
१७. अशोक वनिका में हनुमान् राक्षस युद्ध मा० ५।१७।३ से ५।१८।७ तक।
१८. लंका दहन प्रसंग मा० ५।२४।५ से ५।२५।२ तक।
१९. रावण का विभीषण पर क्रोध मा० ५।४०।२ से ६ तक।
२०. सीता का करुण चित्रण मा० ५।२६।४ से ८।
२१. जानकी का मारुति पर अनुग्रह मा० ५।१५।६ से ५।१६।६ तक।
२२. अनेक युद्ध प्रसंग मा० ६।३८।६ से ६।४७ तक।
२३. कुम्भकरण युद्ध प्रसंग मा० ६।६५।९ से ६।६६।८ तक।
२४. लक्ष्मण रावण युद्ध मा० ६।८२ से ६।८३। ६ तक।
२५. लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप मा० ६।६०।२ से १८ तक।
२६. हनुमान् जानकी संवाद मा० ६।१०६।६ से ६।१०७ तक।
२७. युद्ध दृश्य मा० ६।५१।१ से ४ तक।

उत्तर कांड—अद्भुत,[1] शान्त[2]

.....................'सच तो यह है कि मानस में तुलसी एक अत्यन्त रस सिद्ध कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्हें किसी भी रस विशेष की ओर से क्रमण करते हुये देर नहीं लगती। परन्तु कविता के अनेक रसों के साथ मानस में आद्योपान्त प्रवाहित उत्कृष्ट भक्ति रस का भी मेल स्वतः हो जाता है, जो प्रकृत रसों को परिष्कृत कर ऊपर उठा देता है।'[3]

रामायण में अलंकार निरूपण

वर्ण्य विषय में चामत्कारिक एवम् आकर्षक रूप अलंकारों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भले ही वह चमत्कार शब्दगत हो अथवा अर्थगत। शब्दगत चमत्कार उत्पादक शब्दालंकार तथा अर्थगत चमत्कार उत्पन्न करने वाले अर्थालंकार की श्रेणी में आते हैं। अलंकार ही काव्य का जीवातु कहा जाता है। इस विशाल आदि काव्य में भी इन दोनों प्रकार के अलंकारों का सम्यक् प्रयोग मिलता है।

शब्दालंकारों में अनुप्रास की छटा एवम् अनवरत प्रवाह तो समस्त काव्य में ही दृष्टिगत है। आदि काव्य की आदि पंक्ति ही श्रुत्यनुप्रास युक्त प्रवाह से प्रारम्भ होती है।

'तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।'[4]

छेक, वृत्ति आदि अनुप्रास के विविध रूप भी इसमें परिलक्षित हैं।

शब्दालंकारों से अधिक अर्थालंकारों की सुषमा अपने नैसर्गिक रूप में काव्य को विभूषित करती है। इन अलंकारों में भी 'उपमा' का सर्वाधिक प्रयोग विविध रूपों में मिलता है। इसी कारण वे अपनी उपमाओं के लिये संस्कृत साहित्य में सुविख्यात हैं। अतएव उपमा के कतिपय विविध रूपों का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा।

'तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम्।
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये।'[5]

(उस अतिप्रिय वचन से बड़ी तेजस्विनी उन राजपत्नियों के मुख हिमऋतु के बीतने पर कमल की भाँति शोभित हुये।)

'तथा तु बुद्ध्वा भ्रकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः
निशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः
बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सुदृशं मुखम्'[6]

(भृकुटि चढ़ाए लक्ष्मण बिल में स्थित सर्प के समान रुष्ट होकर श्वास लेने लगे.... उनका क्रोधी मुख सिंह के समान हो गया।)

'विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव'[7]

---

१. कागभुसुंडि राम प्रसंग मा० ७।७८।४ से ७।८२ (क) तक।
२. राम सनकादि प्रसंग मा० ७।३१।२ से ७।३४ तक।
३. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ८५,८६।
४. वा० रा० १।१।१।
५. वा० रा० १।८।२५।
६. वा० रा० २।२३।२,३।
७. वा० रा० ३।१७।३।

(महाबाहु राम चित्रा के साथ चन्द्रमा के समान सुशोभित हुये ।)

'रामरावणयोर्युद्धं रामरावयोरिव ।'[१]

(राम रावण का युद्ध राम रावण के युद्ध के ही समान है ।)

पूर्वोक्त विविध रूपों में क्रमशः रूप साम्य, भाव साम्य, पौराणिक उपमा तथा अनन्वयोपमा विद्यमान है । इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर मालोपमा,[२] ललितोपमा,[३] तत्कालीन सांस्कृतिक उपमा,[४] शिक्षाप्रद उपमा[५] के विविध रूपों द्वारा महर्षि ने अपने काव्य को अलंकृत कर भाव साम्य, रूप साम्य, वर्ण साम्यादि स्थापित किया है ।

उपमा के अतिरिक्त साम्य मूलक अनेक अलंकारों पर भी आपको समानाधिकार प्राप्त है । उत्प्रेक्षा,[६] उदाहरण,[७] रूपक[८] (सांग तथा निरंग), संदेहादि[९] के पर्याप्त उदाहरण रामायण में सहज प्राप्य हैं । अलंकारिक छटाओं की संक्षिप्त झाँकी के आधार पर उस समस्त काव्य की आभा का अनुमान कर हम यह उक्ति सत्य ही चरितार्थ पाते हैं कि.......

'आदि कवि का का यह समग्र काव्य ही कविता के सच्चे रूप को प्रकट कर रहा है । वाल्मीकीय रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का एक विराट् भव्य प्रासाद है ।'[१०]

मानस में अलंकार विवेचन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गोस्वामी जी के अलंकार विधान का सम्यक् अनुशीलन करने के उपरान्त उनका वर्गीकरण इस प्रकार करते हैं—

'(१) भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक

(२) वस्तुओं के रूप (सौन्दर्य, भीषणत्व आदि) का अनुभव तीव्र करने में सहायक ।

(३) गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक

(४) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक'[११]

गोस्वामी जी भावोत्कर्ष व्यंजक अलंकार का प्रयोग इस प्रकार करते हैं ।

'सीता हरन जनि जनि कहेउ पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहिं दसानन आइ ॥'[१२]

---

१. वा० रा० ६।१०७।५२।
२. मालोपमा वा० रा० ३।४७।३३ से ३५।
३. वा० रा० ३।१७।३
४. 'त्रेताग्निसमविग्रहाम्' वा० रा० ७।५।२।
५. वा० रा० ७।५।८।
६. वा० रा० ३।२७।१०।
७. उदाहरणमाला वा० रा० ६।१६।११ से १५।
८. (१) वा० रा० ६।१०९।१०।
(२) गंगा वर्णन में रूपक वा० रा० २।५०।१६।
९. वा० रा० ६।१११।९,१०।
१०. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७७।
११. गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ १२८ ।
१२. मा० ३।२१।

इस पर्यायोक्ति में राम की धीरता एवम् सुशीलता अभिव्यंजित है। उसमें संकोच एवम् शिष्टता भी समाविष्ट है। 'राम' शब्द स्वयं अर्थगर्भित है।

मानस में रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकारों का अपरिमित प्रदर्शन है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षादि तो सर्वप्रमुख उदाहरण हैं।

इसी प्रकार क्रिया एवम् गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकारों में संदेह, उदाहरण, रूपक, अप्रस्तुत प्रशंसादि अलंकारों द्वारा प्रस्तु एवम् अप्रस्तुत में सादृश्य स्थापन किया है। व्यतिरेक, आदि अलंकारों द्वारा गुण का अनुभव तीव्र करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार आपने अलंकार को साध्य मानकर नहीं अपितु 'रसोद्रेक के लिये, क्रिया को स्पष्ट और चित्रमय बनाने के लिये, चरित्र-चित्रण के लिये, सौन्दर्य या दृश्य चित्रण के लिये और विचार को स्पष्ट करने के लिये'[1] उनका साधन रूप में नितान्त उपयुक्त प्रयोग पाते हैं। आपने अलंकार विधान में अप्रस्तुत का व्यापक प्रयोग किया है जिनमें कल्पना, प्रकृति, नीति, ज्ञान, लोकाचार, धर्न, अनुभवादि विभिन्न क्षेत्रों से संगत चयन किया है। ऐसा करते समय यह अवश्य हुआ है कि उन अलंकारों ने भी साधुता का बाना धारण कर लिया है और उस स्थल पर अलंकार योजना भी पाठकों के समक्ष अपना उपदेशात्मक रूप प्रस्तुत करती है। गोस्वामी जी को अलंकार के विविध रूपों पर व्यापक अधिकार प्राप्त था इसकी पुष्टि के लिये मानस में प्रयुक्त कतिपय प्रमुख अलंकारों का उल्लेख कर देना असंगत न होगा।

वाह्य चमत्कार प्रधान शब्दालंकारों की ओर आपकी भी रामायणकार की भाँति विशेष प्रवृत्ति नहीं रही है। अपितु गम्भीर प्रकृति वाले तुलसी ने सहज छटा संपन्न अलंकारों का ही स्वाभाविक प्रयोग अपने गहन काव्य में किया है।[2]

अर्थालंकारों में रूपक अलंकार पर तो आपको अप्रतिम अधिकार था जो कि मानस में उल्लिखित ३० प्रमुख सांग रूपकों से प्रमाणित होता है। रूप चित्रण, घटना वर्णन, भाव संघर्ष की वस्तु स्थिति सभी के लिये रूपकों का आश्रय लिया है। उनके रूपकों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये डा० राजपति दीक्षित कहते हैं।

'उन्होंने अपने इन लम्बे-लम्बे सांग रूपकों में भी मजाल नहीं है कि सादृश्य और साधर्म्य का आद्योपान्त निर्वाह न किया हो, साथ ही उसकी पूर्ण प्रभविष्णुता न दिखाई हो। उन्होंने ऐसे रूपकों की योजना सामान्यतया गम्भीर विषयों को सरस एवम् सरल रीति से हृदयंगम कराने के लिये ही की है और उसमें पूर्णतया सफल हुये हैं। उनके रूपक

---

१. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ११५।

२. 'गोस्वामी जी श्लेष, यमक, मुद्रा आदि खेलवाड़ों के फेर में एक तरह से बिलकुल नहीं पड़े हैं। इसका मतलब यह नहीं कि शब्दालंकार का सौंदर्य उनमें है ही नहीं। ओज, माधुर्य आदि का विधान करने वाले वर्ण विन्यास का आश्रय उन्होंने लिया है। उनकी रचना शब्द सौन्दर्य पूर्ण है। अनुप्रास के तो वे बादशाह थे।'
गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ १४१।

केवल परम्परागत उपमानों और अप्रस्तुतों की क्षुद्र परिधि में ही नहीं बँधे रहते, अपितु वे विशेषांश में अपनी सूक्ष्म प्रकृति पर्यवेक्षण शक्ति के सहारे प्रकृति के व्यापारों से ही ऐसे अप्रस्तुतों का चयन करते हैं कि उनसे रूपकादि के अतिरिक्त बड़ी ही स्वाभाविकता आ जाती है ।'[१]

मानस में उपमा का प्रयोग अपरिमित है जिसमें परम्परागत के अतिरिक्त मौलिक उपमान भी मिलते हैं। नवीन उपमानों का चयन आपने ज्ञान, अनुभव एवम् कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से किया है जिससे आपकी बहुमुखी प्रतिभा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है । इसके अतिरिक्त उपमानों का प्रयोग करते समय अत्यन्त सतर्कता एवम् सूक्ष्मता का आपने आश्रय लिया है ।[२] उत्प्रेक्षा के सभी रूपों का प्रयोग मानस में सौन्दर्यानुभूति भावोद्रेक के लिये विशेषत: किया गया है ।[३]

उल्लेख अलंकार की योजना द्वारा नायक के विविध गुणों का स्वाभाविक चित्रण सा किया गया है ।[४] 'प्रतीप' का प्रयोग सौन्दर्य के काल्पनिक चित्रण के लिये किया गया है ।[५] 'अपह्नुति' का चमत्कारिक रूप राम के गुणों के साथ-साथ सूर्योदय प्रसंग की ओर स्वाभाविक संकेत करता है ।[६] इसी प्रकार भेद प्रधान साधर्म्य मूलक अलंकारों में से दीपक,[७] निदर्शना,[८] व्यतिरेक आदि भी क्रमश: धर्म साम्य, भावोत्कृष्टता तथा अलौकिक सौन्दर्य अभिव्यंजित करते हैं ।

---

१. तुलसीदास तथा उनका युग, पृष्ठ ४३९, ४४०।

२. अवस्था एवम् भावानुकूल उपमाएँ
   (१) नील कमल दोउ नयन बिसाला' बाल रूप मा० १।
   (२) भुज प्रलंब कंजारुण लोचन' वीर वेष मा० १।

३. 'सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ।
   सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि समीत देत जयमाला ।।'
   मा० १।२६३।६,७।

४. जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।........
   से........मूरति परम अनूप... ...तक ।' मा० १।१२०। ४ से ८, १।२४१।१ से ८ ।

५. (१) राम सौन्दर्य चित्रण मा० १।२१९।६ से ८।
   (२) सीता सौन्दर्य चित्रण मा० १।२३६।७ से १।२३७।३ तक ।

६, 'रवि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया ।।'
   मा० १।२३८।५।

७. 'संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ग्यान पान ते लाजा ।।
   प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ।।'
   मा० १।२०।१०,११।

८. 'जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं ।।
   ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।।'
   मा० ७।११४।१,२,

अतिशयोक्ति अलंकार में केवल ऊहापोह रूप ही नहीं अपनाया है अपितु उसका स्वाभाविक रूप उरेहा है जिससे पाठक काल्पनिक लोक तक पहुँचने की कष्टसाधना न कर प्रभविष्णु भावोत्कर्ष की ही सराहना करने में तन्मय हो जाता है । जैसे—

'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाष तुम्हार ।।'[1]

विरोधमूलक अलंकारों का भी मानस में अभाव नहीं है । कवि निराकार ब्रह्म का अलौकिक विवरण विभावना अलंकार द्वारा देता है ।

'बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।'
इत्यादि ।[2]

उनका 'असंगति' अलंकार भी उनके राम के प्रति भावाकर्षण का रूप ही प्रस्तुत कर रहा है ।

'जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ।।'[3]

वाक्य न्यायमूलक अलंकारों में परिसंख्या,[4] विकल्प[5] और समुच्चयादि[6] भी क्रमशः सौख्याधिक्य, विरहाधिक्य एवम् कल्पनातीत भरत का वेदनाधिक्य अभिव्यंजित करते हैं ।

सभी लोक व्यवहार मूलक अलंकारों का भी प्रयोग मानस में किया गया है जिनमें स्वभावोक्ति[7] तथा विनोक्ति[8] मात्र का ही उद्धरण देना पर्याप्त होगा ।

वैचित्र्य मूलक अलंकारों में कारणमाला का निदर्शन पर्याप्त होगा ।

'बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।।'[9]

पूर्वोल्लिखित उद्धरणों के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि तुलसी को अलंकार पर पूर्णाधिकार था । डा० माता प्रसाद गुप्त इन अलंकारिक चित्रों की ओर इंगित करते हुये अपना न्यायसंगत निष्कर्ष देते हैं ।

---

१. मा० २।३।　　२. मा० १।११७।५,६।
३. मा० २।२०३।८।
४. 'दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज ।।'　मा० ७।२२।
५. 'की तनु प्रान कि केवल प्राना । बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ।।
मा० २।५७।४।
६. 'ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ।।'　मा० २।१८०।
७. 'भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।।' मा० १।२०३।
८. 'स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।'
मा० १।२२८।२।
९. मा० ७।६१।

'यह चित्र प्रायः उसे गुण स्वभाव चित्रण, भाव मनोविकार चित्रण, कार्य व्यापार चित्रण, घटना चित्रण और वस्तु चित्रण में कवि को बड़ी सहायता प्रदान करते हैं······· कवि के अत्यन्त सफल अलंकार उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण हैं, हमारे कवि में इन सबके समन्वय की असाधारण क्षमता है, दूसरे अनेक अलंकारों के रूप में भी उनके द्वारा अंकित उत्कृष्ट काल्पनिक चित्रों की कमी नहीं है और उनका भी जब समन्वय हुआ है वह अत्यन्त कलापूर्ण हुआ है। फिर भी एक बात बिना विवेचन और विश्लेषण के केवल इसलिये रह जाती है कि उसका विवेचन और विश्लेषण असंगत है। वह यह है कि इन कल्पनाचित्रों और अलंकारों को अपनी रचनाओं में लाने के लिये कवि को किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता है और यह विशेषता उसे एक महान् कवि और कलाकार का आसन निस्संदेह प्रदान करती है।'[१]

'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः' का लक्षण भी दोनों में पूर्ण रूपेण मिलता है। रामायण में सर्ग एवं कांड दोनों हैं, मानस में केवल सोपान (कांड) ही कथावस्तु का विभाजन करते हैं। अतएव दोनों में तुलनात्मक सामान्य आधार कांड या सोपान ही है। दोनों में ही बाल और अयोध्या कांड का रूप अन्य कांडों की अपेक्षाकृत विस्तृत है क्योंकि काव्य की कथावस्तु एवं भावात्मक स्थलों का विस्तार इन दोनों कांडों में विशेषरूपेण उल्लिखित है। शेष कांडों में, अरण्य, किष्किन्धा तथा सुन्दर कांड रामायण में मानस के समान ही अन्य कांडों की अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप ही परिलक्षित कराते हैं। हाँ, लंका तथा उत्तर कांड अवश्य मानस से अधिक विस्तृत है क्योंकि उनमें युद्ध वर्णन की प्रधानता तथा अनेक पौराणिक कथाओं का समावेश हो गया है जिससे रामायण का विशाल महाकाव्यत्व ही प्रगट होता है और मानस का सानुबंध प्रबन्ध काव्यत्व प्रमाणित होता है।

यदि रामायण के केवल सर्गों की ओर ही हम दृष्टिपात करें तब भी यही ज्ञात होता है कि इसमें वर्णन प्रधान स्थलों में ही सर्ग कुछ विस्तृत है अन्यथा उनकी सामान्य प्रवृत्ति अनति विस्तार की ओर हो रही है। 'श्रव्यवृत्तैः' लक्षण का भी दोनों काव्य ग्रन्थों में सम्यक् समावेश है। दोनों के छन्द विधान में पूर्णत्व एवं श्रव्यत्व गुण विद्यमान हैं। आदि कवि के मुख से निस्सृत आदि श्लोक 'मा निषाद···········'[२] अपनी नैसर्गिक आभा से सम्पन्न ही उद्भूत हुआ जिसका निदर्शन कथा के आरम्भ में ही किया गया है। उस करुणा से प्लावित श्लोक के प्रति स्वयं आदि कवि की आत्मीय प्रेरणा एवं प्रतीति मुखरित हो उठी और वे कह उठे—

'पाद बद्धोऽक्षर समस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।।'[३]

अर्थात् पक्षी के शोक से आर्त्त मुझसे आरम्भ हुई, चार पादों से युक्त, सम अक्षर वाली, वीणा, गुण और लय से सम्पन्न यह रचना सत्कीर्ति वर्धक ही हो, इसमें कुछ भी अन्यथा न हो।

---

१. तुलसीदास, पृष्ठ ३५८।

२. वा० रा० १।२।१५। ३. वा० रा० १।२।१८।

उनके शास्त्रज्ञ एवं मननशील शिष्य ने उक्त कथन पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर सन्तुष्टि प्रगट की।[१] इतना ही नहीं लोकरचयिता, स्वयंभू, महातेजस्वी ब्रह्मा ने भी प्रसन्न वदन से महर्षि के श्लोक की सराहना करते हुये अपनी सम्मति प्रकट की—

'श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती।'[२]

(हे ब्रह्मन्! यह श्लोक ही है। इसमें तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मेरी प्रेरणा से ही तेरे मुख से यह वाणी (श्लोक रूप में) निस्सृत हुई है।

इस प्रकार आदि सृष्टा द्वारा श्लाघ्य छंदों (श्लोकों) द्वारा रामायण काव्य निर्माण की प्रेरणा महर्षि के हृदय में उद्भूत हो गई और परम यशस्वी, उत्कृष्ट बुद्धि वाले महर्षि वाल्मीकि ने मनोहर अर्थ और पदों से युक्त, अति रमणीय और तुल्य अक्षर वाले श्लोकशतों से यशस्वी एवं राम का यश करने वाला रामायण नामक काव्य रचा। समास यथास्थान सन्धि, पदों की व्युत्पत्ति से युक्त, तुल्य, मनोहर और स्पष्ट अर्थ वाले वाक्यों से रचित काव्य है.........।[३]

इस काव्य के श्रव्यत्व गुण का स्पष्ट परिचय निम्नांकित प्रसंग से मिल जाता है। जब लवकुश ने इस विचित्रार्थपद युक्त वीणा के गुण एवं लय से युक्त इस रामायण के आख्यान का गान किया तो इसकी श्रवण सुखदता ने प्रत्येक श्रोता के तन, मन एवं कर्णेन्द्रिय को आह्लादित कर दिया।[४]

रामायण में संस्कृत के विविध छंदों का प्रयोग भी मिलता है जिनमें आर्या छन्द ही सर्वप्रधान है। इसके अतिरिक्त अन्य वर्णिक छन्दों में २२ से २६ वर्णों वाले छन्दों का भी प्रयोग सर्ग के अन्तिम श्लोकों में मिलता है।

तुलसी ने हिन्दी के छन्दों के अतिरिक्त संस्कृत छंदों का भी प्रयोग प्रत्येक कांड में यत्र तत्र किया है। मानस में मात्रिक, वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। मात्रिक छन्दों में दोहा, सोरठा, चौपाई, चौपैया[५], तोमर[६], डिल्ला[७],

---

१. वा० रा० १।२।१९।　　　　२. वा० रा० १।२।३०,३१।

३. वा० रा० १।२।४१ से ४३ तक।

४. वा० रा० १।४।३३,३४।

५. 'जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनत पाल भगवंता।' मा० १।१८५। (छन्द) (३० मात्राएँ)।

६. 'जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिस्राम।' मा० ६।११२। (छन्द) (१२ मात्राएँ)।

७. 'अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।' मा० ३। (१६ मात्राएँ, अन्त में भगण)।

त्रिभंगी[1] और हरिगीतिका[2] है तथा वर्णिक में अनुष्टुप[3], शार्दूल विक्रीडित[4], वसन्त तिलका[5], इन्द्र वज्रा[6], मालिनी[7], वंशस्थविल[8], स्रग्धरा[9], त्रोटक[10], रथोद्धता[11], नगस्वरूपिणी[12] तथा भुजंग प्रयात[13] हैं।

उक्त सभी छंदों का यथास्थान भावानुकूल प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है। अपने अनुकूल प्रसंगों पर वे जटित से प्रतीत होते हैं। इस छंद विधान पर डा० राजपति दीक्षित की अलंकारमयी निष्कर्षात्मक उक्ति भी नितान्त संगत है।

'गोस्वामी जी की प्रबन्ध धारा मानों उनके संस्कृत वर्णिकों के शुभ्र हिम शिला खंड से प्रसूत होकर चौपाइयों की सम भूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती है, मार्ग में दोहों सोरठों के मोड़ पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवम् भावावेश रूप वायु के झकोरों से विलोड़ित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिये हरगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, प्रमाणिका, त्रोटक, तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती कल-कल नाद करती हुई उत्तरोत्तर राम सागर में लीन हो जाती है।'[14]

---

१. 'भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।' मा० १।१९१। (छन्द) (३२ मात्राएँ)।
२. 'मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु, सहज सुन्दर सांवरो।' मा० १।२३५। (छन्द) (१६,१२ की यति से २८ मात्राएँ)।
३. 'रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ।।' मा० ७।१०७। (९वाँ श्लोक) (चार पदों में पाँचवा वर्ण लघु, छठा दीर्घ, समपदों में सातवाँ लघु।
४. 'यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः।' मा० १। (प्रारंभिक छठा श्लोक) (म, स, ज, स, त, त, ग)।
५. 'नाना पुराण निगमागमसम्मतं रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।' मा० १। प्रारम्भिक (७वाँ श्लोक) (त, म, ज, ज, ग, ग)।
६. 'नीलाम्बुज श्यामलकोमलांगं सीता समारोपितवामभागम्।........ मा० २। प्रारंभिक (३रा श्लोक) (त, त, ज, ग, ग)।
७. 'अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहं।.... मा० ५। (३रा श्लोक) (न, न, म, य, य)।
८. 'प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्लेवनवासदुःखतः।' मा० २। प्रारंभिक (२रा श्लोक) (ज, त, ज, र)।
९. 'रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहम्।' मा० ६। (प्रथम श्लोक) (म, र, भ, न, य, य)।
१०. 'जय राम रमा रमनं समनं ....।' मा० ७।१३। छन्द। (चार सगण)।
११. 'कौसलेन्द्र पद कंजमंजुलौ। कोमलावज महेस वन्दितौ। मा० ७। (२रा श्लोक) (र, न, र, ल, ग)।
१२. 'विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचासि मे।' मा० ७।१२२। (छन्द)।
१३. 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपं।' मा० ७।१०७। छन्द। (चार यगण)।
१४. तुलसीदास तथा उनका युग, पृष्ठ ३७९।

'श्रव्यवृत्त' के लक्षण की व्याख्या में 'सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरूपेतं' का लक्षण भी अप्रत्यक्ष रूपेण अंतर्निहित है। तदनुसार भिन्न-भिन्न वृत्तों का सर्गों में प्रयोग दोनों में ही मिलता है। विशेषता यह है कि सर्ग या सोपान के अंत में 'वृत्त' परिवर्तन प्रायः दोनों ही काव्य ग्रन्थों में मिलता है।

इन लक्षणों के अतिरिक्त 'सुसंधिभिः' के अनुसार नाटकीय संधियों से युक्त होना भी महाकाव्य का लक्षण है जो कि दोनों में ही समान रूपेण विद्यमान है क्योंकि दोनों की कथावस्तु का आधार एक है अतएव मुख, प्रतिमुख, विमर्श, अवमर्ष, निर्वहणादि संधियों के स्थल भी प्रायः एक ही हैं।

'लोकरंजनम्' लक्षण तो आर्य जनता की लोकप्रियता ही प्रमाणित कर देती है। दोनों ही पद प्रदर्शक ग्रन्थ अपने वाह्य एवम् आन्तरिक पक्ष से जनता के हृदय पर पूर्णाधिकार किये हैं। यह निर्विवाद सत्य है। अतएव दंडी के काव्यादर्श में प्रतिपादित लक्षणों के अनुसार दोनों में महाकाव्य के सभी लक्षण यथोचित मिलते हैं जिसके फलस्वरूप दंडिन् के शब्दों में ही इन काव्य ग्रन्थों के लिये यह उक्ति भी अनुकूल ही चरितार्थ होती है कि—

'काव्यकल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृतिः'[1]

रामायण के स्थायित्व का वरदान तो स्वयं ब्रह्मा अपनी ओजस्वी वाणी से भी दे चुके हैं कि—

'यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥'[2]

'मानस' की अमरता की प्रतीति एवम् अनुभूति भी सभी मानस प्रेमियों एवं मर्मज्ञों को है और सभी समवेत स्वर से इसे स्वीकार करते हैं कि—'तुलसी ने अपनी अद्वितीय कवित्व शक्ति और अनन्य साधुता के संयोग का अपूर्व अमृतमय सुभग फल हिन्दी साहित्य को देकर उसे युग युगान्तर के लिये अमर कर दिया है।[3]

दोनों महाकाव्य जन जीवन एवं साहित्य की अमर सम्पत्ति एवं काव्य कला के उत्तम निदर्शन हैं।

---

१. काव्यादर्श १।१९। २. वा० रा० १।२।३६।
३. तुलसीदास और उनका युग, द्वारा डा० राजपति दीक्षित, पृष्ठ ४९३।

उपसंहार

'राम कथा' का रसमय आलम्बन लेकर महर्षि वाल्मीकि ने अपनी करुणा-रस परिप्लाविता रस सिद्ध लेखिनी द्वारा अपना चमत्कार दर्शाया है। वाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का आदर्श चित्रांकन रसात्मिका शैली में किया है जिसे पढ़कर कर्ण सुखद वर्ण विन्यास ही नहीं, भावाह्लादकारी शब्द विलास का आधिक्य है। इस महाकाव्य रामायण में भाव पक्ष एवं कला पक्ष में मंजुल सामञ्जस्य है। इसमें आर्य सभ्यता पूर्ण रूपेण चित्रित की गई है। रामायण का समाज आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित है। राजनीति समस्या प्रधान काव्य होने से 'राज शास्त्र' का भी उत्तम निदर्शन मिलता है। 'राम राज्य की कल्पना' भी वाल्मीकि की ही देन है। इस महाकाव्य में नैतिक भावना भी उच्चातिउच्च आदर्श पर प्रतिष्ठित है। यह ग्रन्थ धर्म प्राण भारत की भारतीय संस्कृति की धार्मिक भावनाओं में ओत प्रोत है। यह श्रेय: एवं प्रेय: दोनों प्रकार के शास्त्रों का समन्वय है। राम चरित मानस भारतीय जीवन एवं संस्कृति का आदर्श दर्पण है। इसमें भारतीय चिन्तन एवं अनुभूति का स्वर्ण सुगंधि संयोग है। युग चेतना के महान् कलाकार तुलसी लोक मंगल की प्रतिष्ठा करने में सतत् जागरूक हैं।

श्रीयुत सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में 'वह (मानस) हमारी सनातन धर्म प्राण जातीयता का अविनाशी सूक्ष्म शरीर है, आर्य सभ्यता का विशाल आदर्श है, जिसमें उनका सूर्योज्ज्वल मुख स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। वह तुलसीदास के निर्मल मानस में अनन्त का अक्षय प्रतिबिम्ब है। उसकी सौ-सौ तारक चुम्बित सरल तरल वीथियों के ऊपर जो शक्ति का अमर सहस्त्र दल विकसित है वह मर्यादा पुरुषोत्तम की पवित्र पदरेणु से परिपूर्ण है।'[1]

तुलसी का यह ग्रन्थ रामचरित मानस, जीवन दर्शन, नीति शास्त्र, महाकाव्य, धर्म शास्त्र एवं भक्ति शास्त्र सभी कुछ है। रामायण की अपेक्षाकृत मानस युग की परि-स्थितियों के अनुसार भक्ति की दृष्टि से लिखा गया है जिसमें कथा सूत्र में ही जीवन के सत्य पिरोए हुये हैं। ग्रन्थानुशीलन के अनन्तर यह स्पष्टत: प्रतिभासित होता है कि राम चरित मानस जीवन का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन है। मानस वस्तुत: एक वह पार-दर्शी दर्पण है जिसमें जीवन दर्शन ही नहीं जीवन से परे भी जो कुछ है, सभी प्रकाशमान हो उठता है। तुलसी ने मानस को सहज स्वाभाविकता के साथ जीवन के परिष्कृत, एवम् उन्नत करने के समस्त साधनों का पुंज बना दिया है। अवस्था प्रवृत्ति के अनुसार सभी के लिये कल्प वृक्ष है।

उपादेयता की दृष्टि से यदि मूल्यांकन किया जाय तो दोनों ही इस क्षेत्र में विश्व विश्रुत हैं परन्तु महर्षि प्रणीत रामायण यदि उपजीव्य काव्य बनकर राम कथा काव्यों की प्रेरिका शक्ति रखती है तो मानस जन काव्य के रूप में उर प्रेरक के रूप में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

— —

१. पल्लव की भूमिका।

नवभारत प्रेस, नादानमहल रोड, लखनऊ।